बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी

में

हिन्दी विषयान्तर्गत

पी-एच.डी. की शोध उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

1998

शोध पर्यवेक्षक
डॉ. दुर्गाप्रसाद श्रीवास्तव
एम.ए., पी-एच.डी., डी.लिट्.
रीडर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग

अनुसंधित्सु
सर्वेश कुमार
5, प्राध्यापक निवास, राठ मार्ग,
उरई, जनपद जालौन (उ.प्र.)

शोध केन्द्र
दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उरई

डॉ० दुर्गाप्रसाद श्रीवास्तव
एम०ए०, पी-एच०डी०, डी०लिट्०
रीडर, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग

दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय
उरई – जनपद जालौन (उ०प्र०)
पिन– २८५ ००१

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री सर्वेश कुमार ने प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का प्रणयन मेरे पर्यवेक्षकत्व में किया है। वे उक्त गवेषणात्मक कार्य के लिये मेरे साथ दो सौ दिन की अपेक्षितावधि तक उपस्थित रहे हैं।

प्रस्तुत कृति में उनकी समीक्षात्मक दृष्टि, अनुसन्धानात्मिका वृत्ति एवं सर्जनात्मिका शक्ति का अभीष्ट संगम प्रतिबिम्बित है। नवोन्मेषी प्रतिभा, प्राञ्जल चिन्तन–मनन, अगाध वैदुष्य तथा सत्योन्मुख अमन्दाभ्यास से पुष्ट उनके इस ग्रन्थ की मौलिकता निर्विवाद प्रतीत होती है।

प्रस्तुत शोधात्मक प्रबन्ध में अज्ञात तथ्यों के उद्घाटन की तुलना में ज्ञात तथ्यों के नूतन निरूपण का अधिक प्रयास परिलक्षित है।

अनुसन्धाता श्री सर्वेश कुमार के इस मौलिक प्रयास से शोधार्थियों एवं समीक्षकों को तुलसी साहित्य के अनुशीलनार्थ नवीन दिशा दृष्टि उपलब्ध हो सकती है। मैं उनके कृतित्व से पूर्णतः संतुष्ट हूँ।

मैं उनके स्वर्णिम भविष्य एवं गवेषणात्मक पथ पर निरन्तर अग्रसर रहने के लिये हार्दिक कामना करता हूँ।

परम पिता परमात्मा से विनय है कि उनके कृतित्व की ज्योत्स्ना से हिन्दी–जगत का कण–कण आलोकित हो, उनकी सारस्वत–सम्पदा, साहित्यिक अनुसन्धान एवं अनुशीलन के लिये अधिकाधिक मंगल–विधायिका सिद्ध हो।

दिनाँक 12/11/98

शोधपर्यवेक्षक
दुर्गा प्रसाद श्रीवास्तव
(डॉ० दुर्गा प्रसाद श्रीवास्तव)

अनुक्रमणिका

प्राक्कथन

एम.ए. हिन्दी की स्नातकोत्तर कक्षाओं के पाठयक्रम में तुलसी विषयक विस्तृत जानकारी का बोध हुआ। मेरें परिवार में भी दैनिक पूजा उपासना के साथ-साथ तुलसी कृत श्री रामचरित मानस एवं उनकी अन्यान्य कृतियों का अध्ययन, मनन और अध्ययन साथ पूज्य पिताश्री **डॉ०रामस्वरूप खरे** द्वारा निरन्तर होता रहता था। मैं अनेक तर्क रखता और उनका सम्यक समाधान मिल जाता। इस प्रकार मैंने भी तुलसी-साहित्य-सिन्धु का विमन्थन करने का अनेक बार प्रयास किया। हो सकता था कि मुझे उसमें से एक भी रत्न उपलब्ध न हो पाता किन्तु पूज्य पिता श्री तथा सुधी-समीक्षक हिन्दी साहित्य मर्मज्ञ **डॉ० दुर्गा प्रसाद श्रीवास्तव** जैसे शोध पर्यवेक्षक का वरदहस्त सदैव मेरे मस्तक पर रहा इसलिये उनकी अनन्य अनुकम्पा के द्वारा मुझे हंस के रूप में उसके कतिपय कण चुनने का सौभाग्य मिला। इस प्रकार मेरी पी-एच०डी० करने की कल्पना साकार हुई। एतदर्थ जीवन पर्यन्त उनके ऋण से कदापि उऋण न हो सकूँगा।

विषय प्रतिपादन की सुविधा को ध्यान में रखते हुये मैंने अपने स्वीकृत शोध प्रबन्ध **''तुलसी साहित्य में सौन्दर्याभिव्यक्ति''** को दस अध्यायों में विभक्त किया है।

प्रथम अध्याय में **सौन्दर्य का तात्विक विवेचन** करते हुय मैंने सौन्दर्य की पाश्चात्य और पौरस्त्य परिभाषायें दी हैं। पुनश्च सौन्दर्य और औदात्य की अभिव्यंजना करते हुये सौन्दर्य के विविध रूपों जैसे पार्थिव सौन्दर्य, मानवीय सौन्दर्य, प्राकृतिक सौन्दर्य, दिव्य और अपार्थिव सौन्दर्य तथा कलागत सौन्दर्य के अन्तर्गत कला का स्वरूप और उसका समीचीन वर्गीकरण करते हुये सौन्दर्यानुभूति की अभिव्यक्ति पर सम्यक प्रकाश डाला है जिससे सौन्दर्य का तात्विक स्वरूप सुस्पष्ट और बोधगम्य बन सके।

द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत मैंने **सौन्दर्याभिव्यक्ति की परम्परा** बतलाते हुये सर्वप्रथम वैदिक वांग्मय का आकलन किया है। इसमें चतुर्वेदों से उदाहरण देने का प्रयास किया गया है। इस के अनन्तर औपनिषदिक साहित्य के अन्तर्गत शांकर भाष्यानुसार ईशोपनिषद् केनोपनिषद्, कठोपनिषद्, प्रश्नोपनिषद्, मुण्डोपनिषद, माण्डूक्योपनिषद्, तैत्तरीय उपनिषद्, ऐतरेयोपनिषद्, छान्दोग्योनिषद् एवं वृहदारण्यकोपनिषद प्रभृति दश उपनिषदों में इस परम्परा को खोजने का प्रयास करते हुये अष्टादश पुराणों की परम्परा की ओर अग्रसर हुआ। इसमें श्री मद्भागवत पुराण विशेष सन्दर्भ के रूप में उल्लिखित है। समापन करते हुये हिन्दी साहित्य के चारों कालों

वीर गाथाकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल के काव्य साहित्य में सौन्दर्याभिव्यक्ति के समुचित उदाहरण सम्पुष्टि के रूप में प्रस्तुत किये हैं।

तृतीय अध्याय **'तुलसी काव्य में सौन्दर्याभिव्यक्ति'** को समर्पित है। इस अध्याय में क्रमशः तुलसी की सुविख्यात एवं प्रामणिक १३ कृतियों का संक्षिप्त परिचय दिया है जिससे उनमें सन्निहित सौन्दर्य तत्व भलीभाँति उद्घाटित हो सके। फिर दूसरे उपशीर्षक में तुलसी की काव्यशास्त्रीय तथा सौन्दर्य शास्त्रीय धारणाओं का विशद विवेचन किया गया है जिसमें मानव हित सर्वोपरि माना गया है और साहित्य का मूल उद्देश्य सुरसरि के समान कल्याणकारी बताया गया है। तीसरे उपशीर्षक में तुलसी की रचना-प्रक्रिया पर विशेष रूप से ध्यान दिया गया है। चतुर्थ उपशीर्षक तुलसी साहित्य में सौन्दर्य के विविध रूप में पार्थिक, अपार्थिव, नागर, ग्राम्य, सामन्ती एवं जनवरी सौन्दर्य के उदाहरणों द्वारा तुलसी-सौन्दर्यानुभावन का प्रयास किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में **मानवीय सौन्दर्य** का भाव स्पष्ट करते हुये मैंने उसे प्रमुख रूप से पुरुष सौन्दर्य, नारी सौन्दर्य और बाल सौन्दर्य के उपशीर्षकों में विभाजित किया है। पुनः प्रत्येक उपशीर्षक के वाह्य और आन्तर से और उप विभाग किये हैं। यह केवल इसलिये कि तुलसी साहित्य में समग्र मानव सौन्दर्य की अवधारणा सुस्पष्ट हो सके।

पंचम अध्याय 'सौन्दर्य, शक्ति और शील का समन्वय' में तुलसी के अनन्त सौन्दर्य, अनन्त शक्ति एवं अनन्त शील के समन्वित रूप को विस्तार देते हुये मानव-जीवन में उसकी उपयोगिता पर केन्द्रित किया है। शील-सदाचार से जीवन की परिपुष्ट होती है। मानव-जीवन में शील का सर्वाधिक महत्व है। जब यह शील तत्व चरित्र में अवतरित होता है। तभी कोई सामान्य व्यक्ति पुरुषोत्तम बनकर अपने सद्क्रिया-कलापों द्वारा समष्टि को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है और वह असाधारणत्व की कोटि में आ जाता है। सच्चरित्रता मानव जीवन का सच्चा अलंकरण है। यह वह पारिजात प्रसून है जिसकी सुरभि चतुर्दिक ही नहीं वरन् दशों दिशाओं में व्याप्त हो जाती है। इस अध्याय में मात्र दो उपशीर्षक हैं। दूसरे उपशीर्षक में 'तुलसी की समन्यवय भावना' पर विशद विवेचन उपलब्ध कराया गया है और तुलसी को सबसे बड़ा लोकनायक प्रतिष्ठापित किया गया है। निःसंदेह तुलसी की समन्वय भावना एकता की विराट चेष्टा है।

षष्ठ अध्याय प्रकृति सौन्दर्य से सम्बन्धित है। इसमें मानव और प्रकृति के घनिष्ठ सम्बन्ध का वर्णन किया गया है। सृष्टि के प्रादुर्भाव से ही मनुष्य ने प्रकृति की मनोरम अंक में बैठकर माँ की गोदी की भांति शाश्वत आनन्द और सुख प्राप्त किया है। प्रकृति से दूर होने पर ही उसमें राक्षसत्व पनपता है किन्तु मानव जीवन का उद्देश्य एकमात्र देवत्व की प्राप्ति है। इसलिये मानव को प्रकृति का सेवक बनकर ही उसकी उपासना करना चाहिये। प्रकृति से तादात्मय रखने पर

ही मनुष्य श्रेयस प्राप्त कर सकता है। इसके पश्चात् दूसरे उपशीर्षक में 'तुलसी साहित्य में 'प्रकृति के विविध रूप' जैसे आलम्बन, उद्दीपन, पृष्ठभौमिक, औपमानिक, मानवीकरण, प्रतीकात्मक, उपदेशिकात्मक, आलंकारिक और रहस्यात्मक इत्यादि रूपों का सोदाहरण विवरण दृष्टव्य है। तुलसी की समूची प्रकृति उनकी अन्तर्दृष्टि के कारण सर्वत्र राममय प्रतीत होती है। इस प्रकार इस अध्याय में तुलसी ने प्रकृति को माध्यम बनाकर अपने कथ्य का सम्यक प्रस्तुतीकरण किया है।

सप्तम अध्याय 'वस्तु सौन्दर्य' से सम्बन्धित है। इसके अन्तर्गत तुलसी साहित्य में भवन, सरोवर, उद्यान, मण्डप, पलंग, दीप, पात्र एवं आभूषणादि का सोदाहरण विशद विवेचन उपलब्ध है। तुलसी साहित्य में अयोध्या, जनकपुर तथा लंका का अशेष वैभव वस्तु-वास्तु के रूप में उल्लेख्य है जो तुलसी की कलात्मक प्रतिभा का द्योतक है। इसमें तत्कालीन सामन्ती वैभव की छाप स्पष्ट है। इसी प्रकार राजा जनक के सरोवर और पम्पासर के वर्णन भी कम उल्लेख्य नहीं, जनक-वाटिका और अशोक-वाटिका के मनोरम प्राकृतिक दृश्य देखकर कौन सहृदय मुग्ध न हो उठेगा। उद्यान-वर्णन में तुलसी की कला चरम उत्कर्ष पर पहुँची दृष्टिगोचर होती है। यथा-

नव पल्लव फल सुमन सुहाये। निज सम्पत्ति सुर रूख लजाये।
"चातक कोकिल कीट चकोरा। कूजत विहग नटत कल मोरा।।"

इसी प्रकार एक और उदाहरण यहाँ दृष्टव्य है-

"हरित मनिन्ह के पत्र फल पदुमराग के फूल।
रचना देखि विचित्र अति जनु विरंचि कर भूल।"

मण्डप, पलंग, दीप, पात्र एवं आभूषणों के वर्णन भी तुलसी साहित्य में बड़ी कुशलता पूर्वक उपलब्ध कराये गये हैं। जैसे **"जरित कनक मनि पलंग सुहाये।"** तथा **"रतन दीप सुठि चारु चंदोवा। कहत न बनइ जान जेहि जोवा।" "कनक कलश भर कोपर थारा। भाजन ललित अनेक प्रकारा।"** इसी प्रकार आभूषणों के अन्तर्गत तुलसी साहित्य में मुकुट, माला, कंकण, नूपुर, कुण्डल, मुद्रिका, किंकणी इत्यादि के साथ जावक, तिलक, सिन्दूर, काजल एवं चन्दन के उदाहरण इस अध्याय को और अधिक मनोरम बनाने में सहायक दृष्टिगोचर होते हैं।

अष्टम अध्याय अभिव्यंजनात्मक सौन्दर्य से सम्बन्धित है। इसमें तुलसी की रस योजना का वर्णन करते हुये भाषा-शैली के अन्तर्गत पुराण शैली, आत्मनिवेदन शैली, कवित्त शैली, लोक शैली और तत्कालीन प्रचलित प्रायः सभी शैलियों का समन्वित रूप वर्णित है। अलंकार योजना का निर्देशन कराते हुये बिम्ब और प्रतीकों पर विचार व्यक्त किये गये हैं। छन्द विधान के अन्तर्गत तुलसी ने मुख्यतः श्लोक, दोहा, चौपाई, स्तोत्र, सोरठा, हरिगीतिका, छप्पय, सवैया, कवित्त,

अरिल्ल, इन्द्रवज्रा बरवै, अनुष्टुप, त्रोटक, मालिनी, रथोद्धता, भुजंग प्रभात, वंशस्थ विलम, वसन्त तिलका, स्रगधारा, शार्दूल विक्रीड़ित, नगस्वरूपिणी आदि छन्दों को अपने काव्य का आधार बनाया है। सुन्दर अप्रस्तुत विधान के साथ-साथ अभिधा, लक्षणा, व्यंजना, शक्तियाँ प्रसाद, माधुर्य, ओज गुण, वैदर्भी, पांचाली एवं गौड़ी रीतियों का उदात्त निरूपण तुलसी के काव्य सौन्दर्य का हेतु हैं। पुनश्च ध्वनि, वक्रोक्ति एवं औचित्य पर प्रकाश डालते हुये इस अध्याय का समापन किया गया है।

नवम अध्याय के अन्तर्गत साहित्य एवं कला पर तुलसी की सौन्दर्यभिव्यक्ति का प्रभाव प्रकट करते हुए समाज एवं संस्कृति पर भी उसके अमिट प्रभाव की चर्चा की है। इसमें स्वतः ही प्रसंगानुकूल साहित्य, कला, समाज और संस्कृति की सम्यक परिभाषायें आ गई हैं। इस प्रकार समाज, संस्कृति, कला और साहित्य एक दूसरे पर पूरी तरह अवलम्बित हैं और उनमें पूर्ण रूपेण तादात्म्य है। सभी अंगों का सम्यक विकास ही उनके उत्कर्ष का कारण सिद्ध हो सकता है। इसके अनन्तर इस अध्याय का समापन करते हुये मैंने सौन्दर्याभिव्यक्ति के क्षेत्र में तुलसी का स्थान सुनिश्चित किया है। इसमें यह प्रयास उद्घाटित है कि तुलसी वास्तव में इस लोक के कवि होते हुये भी अलौकिक और अप्रितम हैं। वे अपने क्षेत्र के एक छत्र सम्राट हैं। जब तक सूर्य, चन्द्र और गंगा का अस्तित्व इस धरा धाम में रहेगा। तब तक वे अपनी इस अनूठी देन के लिये सदा-सदा स्मरणीय रहेंगे। वे इस लोक के कवियों में मूर्धण्य और शिरोमणि तो हैं ही साथ ही, साथ वे एक ऐसे अनमोल रत्न हैं जिसकी दीप्ति पूर्णरूपेण मौलिक और अनूठी है। आज अन्यत्र ऐसा कवि रत्न अनुपलब्ध है।

दशम अध्याय इसका अन्तिम अध्याय है जो शोध प्रबन्ध के उपसंहार के रूप में अभिलिखित किया गया है। स्वाभाविक है इसमें तुलसी की सौन्दर्याभिव्यक्ति की सार-संक्षेप में अवतारणा प्रस्तुत की गई है।

इसके अतिरिक्त इस शोध प्रबन्ध में **चार परिशिष्ट** हैं जिनके अन्तर्गत क्रमशः विश्वकवि तुलसी के तेरह आधार ग्रन्थों की अकारादि क्रम से सूची बनाई गई है। पुनश्च संस्कृत के सन्दर्भित ग्रन्थ, आंग्लभाषीय सन्दर्भ ग्रन्थ एवं हिन्दी के सन्दर्भित ग्रन्थों की समवेत सूची अकारादि क्रम से वर्णित है। अन्तिम और चौथे परिशिष्ट में सन्दर्भित पत्र-पत्रिकाओं का उल्लेख किया गया है।

□□□

आभार

अच्छे काम करने में व्यवधानों का आना स्वाभाविक है। श्रेष्ठ व्यक्ति वही माना जाता है जो इन कठिनाइयों और व्यवधानों की ओर ध्यान न देकर उन्हें अपनी सफलता का सोपान बनाने में पूर्णरूपेण सक्षम होता है। **'गृह कारज नाना जंजाला'** तुलसी की अनुभव परक सूक्ति है, जो आज के संसारी जीव पर पूरी तरह घटित होती है। एक तो आधुनिक युग में 'आपा-धापी की जिन्दगी, बुजुर्गों की छत्र-छाया से दूर सीमित परिवार, बच्चों और जीवन-संगिनी की फरमाइशें इन सबके बीच समाज में स्तरीय जीवन व्यतीत करते हुये निरन्तर आगे बढ़ने की चाह-तोड़ देती है साहस का धनुष खण्ड-खण्ड।

फिर भी भयंकर तूफानों में टिमटिमाते हुये छोटे-छोटे दीप हिम्मत नहीं हारते। वे डटकर मुकाबला करते रहते हैं- **'पूरे प्राण-पण से कि कहीं लौ न बुझने पाये!** ऐसे ही परिपूर्ण स्नेह से युक्त प्रज्ज्वलित प्रदीप दिव्यालोक विकीर्ण कर के दूसरों को मार्ग-दर्शन का काम करते हैं और स्वयमेव अहरह जल-जल करके भी पंथ प्रशस्त करने का सुयश लेते हैं!

प्रत्येक मानव के जीवन में निश्चित रूप से कुछ ऐसे ही शुभ चिन्तक, मार्गदर्शक और प्रेरणादायी पुरुष, मित्र और स्नेही स्वजन-परिजन आते हैं, जिनकी परम सुखदायी आशीष मयी शीतल छाया में हृदय अत्यधिक हर्षित, पुलकित एवं आह्लादित हो उठता है। इन्हीं का संग-साथ जीवन को पूर्णता प्रदान करता है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में अथ से इति तक जिनका अहेतुक परामर्श और दिशा-निर्देश उपलब्ध हुआ, वह हैं दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उरई के हिन्दी विभागाध्यक्ष एवं रीडर **परमादरणीय डॉ. दुर्गाप्रसाद श्रीवास्तव** एम०ए०, पी-एच०डी, डी०लिट्०! आपके बहुमुखी व्यक्तित्व गंभीर अध्ययन, सम्यक चिन्तन और दार्शनिक मनन ने जो मुझे खोजी दृष्टि प्रदान की उसके लिये विनम्रता पूर्वक मात्र कृतज्ञता ही ज्ञापित कर सकता हूँ। **"त्वदीय वस्तु गोविन्दं तुभ्यमेव समर्पये"** की भावनांजलि स्वीकार करें, यही निवेदन है और मुझ पर सदा-सदा अपना वरद कर बनाये रहें जिससे मैं अपने भावी-जीवन की परीक्षाओं में भी भलीभांति उत्तीर्ण हो सकूँ।

डॉ. रामशंकर द्विवेदी, डा. श्रीमती यामिनी, डॉ. ब्रजेश कुमार एवं परमादरणीय **दीदी नीलम 'मुकेश'** का भी जो प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष मार्गदर्शन मिला, वह भी स्तुत्य है। इन सबको मेरा सश्रद्ध प्रणाम!

डॉ. नारायण दास समाधिया, एम.ए., पी.एच.डी., डी.लिट्. प्राचार्य गान्धी महाविद्यालय, **डॉ. दिनेशचन्द्र द्विवेदी, डॉ. कृष्ण जी** एम.ए., पी.एच.डी., डी.लिट्. प्राचार्य प्राच्य महाविद्यालय वृन्दावन, मथुरा का भी जो मार्ग दर्शन प्राप्त हुआ एतदर्थ हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ!

परम पूज्य ताऊ **श्री भवानी दास** एवं **श्री जमुना प्रसाद, अग्रज ब्रजेश श्रीवास्तव, राजेश श्रीवास्तव,** जीजा **श्री सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव** उपजिला विद्यालय निरीक्षक ललितपुर (उ.प्र.) **श्री वीरेन्द्र श्रीवास्तव** कन्या महाविद्यालय झुंझनू (राजस्थान) एवं अद्यावधि सहस्त्राधिक बाल पहेलियों के प्रणेता **बाल साहित्य सुधांशु** मूर्धन्य साहित्यकार **युगकवि डॉ रामस्वरूप खरे** अपने परमाराध्य पिता श्री का आजीवन आभारी और ऋणी रहूँगा। जिन्होंने मुझे निरन्तर सात्विक प्रेरणा देते हुये मुझसे यह शोधकार्य भली भांति सम्पादित करा लिया। यदि उनका विद्वतापूर्ण मार्ग-दर्शन सुलभ नहीं होता तो यह शोध ग्रन्थ अधूरा ही रह जाता, इस रूप में न आ पाता। इन सब के पुण्य चरणों में श्रद्धावनत हूँ।

तीनों अनुजों **अतुल कुमार, देवेश कुमार, ब्रह्मानन्द** परमादरणीया दीदी **स्नेहलता** प्रवक्ता, बालिका इण्टर कॉलेज ललितपुर एवं स्नेहमयी लघु भगिनी **कु. अपर्णा** सम्पादन विभाग, नई दुनियाँ भोपाल (म.प्र.) की हार्दिक अभिलाषा पूर्ण कर सका! इन सबका स्नेह-सौजन्य और शुभाशीष मेरे शोध-मार्ग का पाथेय सिद्ध हुआ। मेरे लिये परम सौभाग्य और गौरव की बात है।

परमश्रद्धेया माता श्री कमलादेवी 'धर्मरत्न' के प्रति कैसे आभार व्यक्त करूँ। क्योंकि उन्हीं ने तो पाल-पोस कर अनेकानेक कठिनाइयों को सहकर मेरी सारी त्रुटियों और दोषों का अनदेखा करते हुये मुझे उच्च शिक्षा दिलाकर पी-एच०डी० कराई और मुझे इस योग्य और समर्थ बनाया कि मैं सांसारिक दायित्वों का सम्यक् रूप से निर्वाह कर सकूँ। बारम्बार कृतापराधों के लिये क्षमा माँगता हुआ उनके चरणों में नतमस्तक हूँ यह कहकर-माँ! जो कुछ भी भला-बुरा हूँ तुम्हारा हूँ और तुम्हारा ही रहूँगा।

जीवन-संगिनी सौ. रश्मि ने जिस धीरता और गम्भीरता का परिचय शोध-ग्रन्थ प्रस्तुत करते समय दिया, वह अविस्मरणीय है। ज्येष्ठ पुत्र चिरंजीव प्रणव, आत्मजा कु० ऋचा एवं

कु. प्रज्ञा (अनुमेधा) का चांचल्य और नटखटपन सदैव याद रहेगा जिसने शोध ग्रन्थ लेखन में अर्धविराम और पूर्णविराम बनकर मुझे हँसा-हँसाकर निरन्तर आगे लिखने के लिये प्रेरित किया। इन तीनों को मेरा अशेष प्यार!

आदरणीया दीदी डॉ. (श्रीमती) रेनू एवं जीजा श्री डॉ. रमेश चन्द्र, श्रीमती नीलम एवं जीजा श्री मुकेश, श्रीमती सुमन एवं जीजा श्री अशोक श्रीवास्तव के अनेकानेक शुभाशीषों ने मेरा शोध-मार्ग अत्यन्त सुगम बनाया एतदर्थ इन सबके प्रति उपकृत हूँ।

अनुज शतमन्यु श्रीवास्तव प्रशासनिक अधिकारी, भारतीय जीवन बीमा निगम ग्वालियर (म. प्र.) चिरंजीव चिन्मय, तन्मय, मनु श्रुति सुभी आदि की बातें इस अवसर नहीं भुलाई जा सकती। इन सबसे मेरे लेखन को गति मिली है। इस सबको है हमारा प्यार।
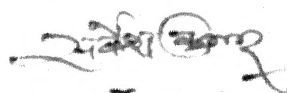
इस प्रबन्ध के लेखन में मुझे इष्ट मित्रों का सहयोग मेंरे लिए अंधे की लकड़ी के सदृश सदैव मिला जिसे विस्मृत करना संभव नहीं। इस प्रस्तुति के अवसर पर मैं श्री रवीन्द्र श्रीवास्तव, प्रदीप श्रीवास्तव , डॉ. सुनील कुमार पाण्डेय डॉ. अनिल कुमार अग्रवाल, श्री अनिल कुमार जैन, व अनुज सम राजेश श्रीवास्तव के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना अपना पुनीत कर्तव्य समझता हूँ।

इस शोध ग्रन्थ के लेखन के बीच जिन-जिन विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयाध्यक्षों और हिन्दी विभागाध्यक्षों ने आत्मीय सहयोग और सुझाव दिये तथा जिन-जिन महानुभावों ने परोक्ष और अपरोक्ष रूप किसी भी प्रकार का साहाय्य किया उन सबके प्रति आभार व्यक्त करना अपना परम धर्म मानता हूँ।

इति अलम्।

सर्वेश कुमार

५, प्राध्यापक निवास, राठमार्ग

उरई-२८५००१

● सर्वेश कुमार

समर्पण

जिन्होंने मुझे
संघर्षों से जूझने
और
संसार-सागर का
विमंथन कर
अभीष्ट सफलता के मोती
प्राप्त करने का
सुअवसर, साहस
और क्षमता प्रदान की
उन्हीं
सुधी साहित्यकार
पिता श्री
युगकवि डॉ. रामस्वरूप खरे
एवं
माता श्री
कमलादेवी 'धर्मरत्न' के
कर-कमलों में
सश्रद्ध
समर्पित है यह
मेरी प्रथम शोध कृति
'तुलसी साहित्य में सौन्दर्याभिव्यक्ति'
विनम्र
पुष्पांजलि
अपनी अस्फुट
एवं तोतली बोली के रूप में
जिसे सुनकर
निः संदेह
होगी आपको सन्तुष्टि

विनयावनत चरण किंकर

● सर्वेश कुमार

प्रथम अध्याय

सौन्दर्य का तात्विक विवेचन

(क) सौन्दर्य की परिभाषायें

१. पाश्चात्य मत

२. पौरस्त्य मत

(ख) सौन्दर्य और औदात्य

(ग) सौन्दर्य के विविध रूप

१. पार्थिव सौन्दर्य

(अ) मानवीय सौन्दर्य

(ब) प्रकृति सौन्दर्य

२. दिव्य या अपार्थिव सौन्दर्य

३. कलागत सौन्दर्य

(अ) कला का स्वरूप एवं वर्गीकरण

(ब) सौन्दर्यानुभूति की अभिव्यक्ति

सौन्दर्य का तात्विक विवेचन

(क) सौन्दर्य की परिभाषायें

किसी भी सुन्दर वस्तु अथवा व्यक्ति को देखकर आकर्षण का भाव उत्पन्न होना स्वाभाविक है। सौन्दर्य के प्रति यही सहजाकर्षण हृदय की वीणा के मौन तारों को छेड़ नानानुभूतियों का संचार करता है जिसके कारण मानस अपूर्वानन्द की सरिता में डूबने-उतराने लगता है।

वास्तव में प्रत्येक प्राणी सौन्दर्य से प्रभावित होता है। सौन्दर्य में गति समाहित रहती है। यही गति जीवन का पर्याय है। सौन्दर्य एक ऐसा तत्व है जो शिवत्व के साथ सत्य रूप में प्रकट हुआ करता है। यह मानव, प्रकृति, साहित्य कला एवं वस्तु इत्यादि अनेक रूपों में व्यक्त होता है। सौन्दर्य का कोई रूप हो, इसके दर्शनों की इच्छा बार-बार हुआ करती है। दृष्टा इसे कितना भी देखे, उसके नेत्र अतृप्त ही रह जाते हैं।

वाचस्पत्य कोशकार द्वारा दी गई सौन्दर्य की व्युत्पत्ति सर्वाधिक उपयुक्त और मूलभाव की श्रेष्ठ व्यंजना करने वाली है। इसके अनुसार **सुन्दर शब्द में सु उपसर्ग है उन्द धातु है और अरन् प्रत्यय है। 'सु' का भाव है, सुष्ठु अर्थात सम्यक रूप से, उन्द का अभिप्राय है आर्द्र करना और अरन् कर्तृवाचक प्रत्यय है जिससे संपूर्ण पद (सु + न्द + र) का व्युत्पत्ति परक अर्थ सम्यक रूप से द्रवीभूत करने वाला होता है।**[1] दूसरी ओर इसकी व्युत्पत्ति नन्द धातु से भी मानी जा सकती है। **सु + नन्दयति अर्थात जो सम्यक प्रकार से प्रसन्न या आनंदित करता है। दूसरे शब्दों में जो किसी को प्रमुदित करे, अपनी ओर आकर्षित करे अथवा भला लगे वही सुन्दर है।**[2]

उणादि सूत्र के आधार पर सुन्दर की व्युत्पत्ति सुन्द + अर से भी की जा सकती है।[3] सौन्दर्य शास्त्रियों ने इस शब्द का विश्लेषण अन्य प्रकार से भी किया है-

"जो चित्त अथवा हृदय को द्रवीभूत करता है। जिसमें आत्म-विभोर करने की क्षमता विद्यमान है, वह सुन्दर है।"[4]

सुन्द अर्थात कर्तनी अर्थात जो कर्तनी की तरह काटने वाला हो, उसको जो लाता हो, वह सुन्दर हुआ। सौन्दर्य हृदय पर नेत्र के द्वारा कैंची सी काट वाला पक्का प्रभाव करता है यह कौन नहीं जानता।[5]

सुन्दराति इति सुन्दरम् तस्य भाव सौन्दर्यम् अर्थात सुन्द को जो लाता हो वह सुन्दर, उसका भाव जहाँ हो वह सौन्दर्य कहलाता है।[6]

सौन्दर्य एक बहुआयामी तत्व है। इसे परिभाषा में बाँधना सहज नहीं है। जब इसे परिभाषा में बाँधने का प्रयास किया जाता है तब इसका कोई न कोई अंग या अवयव अथवा घटक परिभाषा की परिधि से बाहर पड़ा हुआ दिखाई देता है। **पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णम अवशिष्यते"**। कोई भी

वस्तु या तत्व हो उसे परिभाषा में बाँधना असंभव प्रतीत होता है उदाहरणार्थ साहित्य और कला की विविध परिभाषाएँ की गई हैं पर कोई भी परिभाषा पूर्ण नहीं कही जा सकती है। यही स्थिति सौन्दर्य की है।

सौन्दर्य के साक्षात्कर्ता विश्वकवि रवीन्द्र का कथन है-**"जाल में तैरने वाली मछली के सौन्दर्य का साक्षात्कार उसको पकड़ने वाला मछुआ नहीं कर सकता। स्वार्थ में लिप्त निजत्व की भावना रखने वाला व्यक्ति सच्चे सौन्दर्य का आत्म-साक्षात्कार नहीं कर सकता।"**[७]

सौन्दर्य का दृष्टा, भोक्ता या प्रमाता हर व्यक्ति नहीं होता। विरले लोग ही सौन्दर्य-बोध कर पाते हैं। जो सच्चे सौन्दर्य-दृष्टा या भोक्ता हैं वे ही कुछ सटीक परिभाषा कर सकते हैं। सौन्दर्य के निर्माताओं एवं भोक्ताओं की परिभाषाओं पर दृष्टिपात करने पर सौन्दर्य का स्वरूप ज्ञात हो सकता है।

पाश्चात्य मत

ह्यूम – **अंगों की एक ऐसी क्रमिक एवं सुगठित रचना को सौन्दर्य कहते हैं जो परम्परागत स्वभाव, रीति-रिवाज या मनोभाव के द्वारा हमारी आत्मा को आनन्द एवं सन्तोष प्रदान करती है।"**[८]

ह्यूम का यह भी मानना है कि **सौन्दर्य का अस्तित्व आनंद प्रद एवं संतोषदायक वस्तुओं में है और आनन्ददायक एवं दुखद प्रभाव सौन्दर्य व कुरूपता के ही लक्षण हैं।**[९]

विक्टर कूँजिया – इन्होंने सौन्दर्य की विस्तृत धारणा प्रस्तुत की है। **यह ईश्वर में ही चरम सौन्दर्य को मानते हैं।**[१०]

लिवनिज – **सामंजस्य या सुडौलपन (Harmony) की अभिव्यंजना को ही सौन्दर्य कहते हैं। यद्यपि उसमें प्रत्यक्ष रूप से कुछ विरोधी बातों के समावेश की योग्यता रहती है।**[११]

अरस्तू – **वह शिवत्व ही सुन्दर होता है जो सुखदायक हो क्योंकि वह मंगलमय होता है।**[१२]

हीगेल – **पदार्थ में प्रत्यय का प्रकाशन ही सौन्दर्य है।**[१३] **वह मानव के माध्यम से पूर्ण या दिव्य सत्ता की अभिव्यक्ति को ही सौन्दर्य मानता है।**[१४]

नाइट – **"शारीरिक, मानसिक व आत्मिक ऐक्य का परिणाम ही सौन्दर्य है।**[१५]

कांट – **"वही वस्तु सुन्दर है जो बिना किसी उपयोगिता के प्रसन्न करे।**[१६]

जार्ज सांत्याना – **"सौन्दर्य नैतिकता से युक्त सत्य, शिव स्वरूप है।**[१७]

सुकरात – **जो सर्वथा अनुरूप हो, अभीष्ट परिणाम का उत्तर दे सके तथा जो प्रिय लगे वही सुन्दर होता है।**[१८]

होमगार्थ – आप सौन्दर्य को क्षमता, विविधता, सम्मात्रा, स्पष्टता, जटिलता और विशालता में मानते हैं।[१९]

सिसरो – रंगों की एक रूपता, निश्चित अनुकूलता एवं अंगों का अनुपात एक साथ प्रस्तुत हों तो उसे सुन्दर मानते हैं।[२०]

एडमंड बर्क – आकार की लघुता, मसृणता, क्रमिक परिवर्तनशीलता, कोमलता, वर्ण प्रदीप्ति तथा शुद्धता को सौन्दर्य के दृढ़ घटकों के रूप में निरूपित करते हैं।[२१]

शेफ्ट्सबरी – विश्व के दैवी जीवन की अभिव्यंजना ही सौन्दर्य है।[२२]

कीट्स – सौन्दर्य ही सत्य है और सत्य ही सौन्दर्य, यही सब कुछ है जो आप जानते हैं और जिसकी इस पृथ्वी पर जानने की आवश्यकता है।[२३] वह मानता है कि सुन्दर वस्तु हमेशा आनन्द देती है।[२४]

प्लेटो – "सौन्दर्य शिवतत्व से निष्पन्न मंगल विधायक है।[२५]

प्लोटिनस – परमशक्ति में शिवतत्व की अवस्थिति स्वीकार करता है। उसके अनुसार सौन्दर्य ईश्वर के शिवरूप में ही है।[२६]

टालस्टाय – "विषयीगत रूप में हम उस वस्तु को सुन्दर स्वीकारते हैं जो हमें किसी प्रकार का आनंद प्रदान करती है तथा विषयगत रूप में यदि देखें तो सौन्दर्य वस्तु की पूर्णता में होता है।[२७]

बेकन – सौन्दर्य एक विचित्रता लिये अनुपात में होता है।[२८]

हरबर्ट – सौन्दर्य किसी वस्तु विशेष की सत्ता पर निर्भर नहीं करता, वह तो स्वाभाविक रूप से हमारे मन में विद्यमान रहता है।"[२९] हरबर्ट अमरत्व में ही सौन्दर्य मानता है।[३०]

शेलिंग – ससीम में असीम की अभिव्यक्ति ही सौन्दर्य है।[३१]

गेटे – "सौन्दर्य वह आदिम विषय है जो स्वयं कभी प्रगट नहीं होता परन्तु जिसका प्रतिबिम्ब सृजनशील मन की सहस्त्रों विविध उक्तियों में उद्भासित होता रहता है और जो उतना ही वैविध्यपूर्ण है जितनी स्वयं प्रकृति।[३२]

एडगर एलेन पो – सौन्दर्य को अनुभूतिजन्य मानता है–"जब मनुष्य सौन्दर्य के विषय में कुछ कहते हैं तो उनका आशय किसी गुण से नहीं वरन् प्रभाव से होता है। उनका आशय आत्मा की उस तीव्र और शुद्ध उदात्तता से होता है। जो सौन्दर्य की ध्यान जनित अनुभूति से उत्पन्न होती है।"[३३]

क्रोचे – सौन्दर्य को मानवीय सौन्दर्यात्मक प्रक्रिया[३४] तथा अभिव्यंजना[३५] में स्वीकारता है।

रास्किन – "वाह्य जगत में कुछ ऐसे उपादान हैं जिनके द्वारा ईश्वर के नानाविध गुण हमारे मन में अभिव्यक्त होकर चित्त में सौन्दर्य का संस्कार उत्पन्न करते हैं। इन समस्त उपादानों के माध्यम से ईश्वर ने अपने स्वरूप को जगत में लक्षित करा दिया।[३६] रस्किन सौन्दर्य का आवश्यक तत्व नैतिकता को मानते हैं।[३७] उनके अनुसार सौन्दर्य को आनंद से युक्त तो होना चाहिए, उपयोगिता तत्व उसके लिये जरूरी नहीं।"[३८]

बामगार्टेन – सौन्दर्य को पूर्णता में स्वीकार करता है उसके अनुसार "पूर्णता के आविर्भाव में ही सौन्दर्य अवस्थित है।[३९]

हॉबस – सौन्दर्य के दर्शन नैतिकता में करता है।[४०]

पीअर बफिअर, जे रेनाल्ड्स एवं एलसिन – इनके द्वारा प्रतिपादित आदत के सिद्धान्तानुसार जिस वस्तु को हम जिस रूप में देखते रहे हैं वही रूप उसका सौन्दर्य माना जाने लगता है।"[४१]

एच०एच० परखूरष्ट – "कला का मुख्य ध्येय अपने शब्दों के माध्यम से विश्वजनीन संघर्ष को प्रतिध्वनित करना है। वह प्रत्येक वस्तु सुन्दर है जो किसी सफल माध्यम के सही प्रयोग से उत्पन्न होती है, जो उसे व्यक्त करता है।[४२]

गिल्बर्ट मरे – "सौन्दर्य वह वस्तु है जिसे देखते ही उससे स्नेह किया जा सके।"[४३]

लोत्से – सौन्दर्य सुख (Pleasure) का ही एक विकसित रूप है और उससे भिन्न नहीं है। दोनों में यदि कोई भेद है तो इतना ही कि सुख इन्द्रिय गोचर है तथा वह हमारी वैयक्तिक आत्मा को आनंदित करता है जबकि सौन्दर्य अन्तःकरण (Intation) गम्य है और हमारी व्यापक (Universal) आत्मा को मुदित करता है।[४४]

"इष्ट बुद्धियों, साधनों एवं अनिवार्य नियमों के बीच जो एकता का प्रकाश या सौन्दर्य सुषमा है वही सौन्दर्य है।[४५]

रीड – ज्ञान शक्ति (Cognition) तथा इच्छा शक्ति (Affection) जो हमारे मन में है, वे वस्तुतः ईश्वरीय शक्तियाँ हैं और तत्वतः एवं मूलतः सुन्दर है। जो वस्तुएँ सुंदर कही जाती हैं उनमें इन्हीं ईश्वरीय शक्तियों की अभिव्यक्ति है। जिस वस्तु में यह अभिव्यक्ति जितनी अधिक होती है वह वस्तु उतनी ही सुन्दर होती है। रीड के अनुसार सौन्दर्य कोई वस्तुओं का गुण नहीं है और न वह मानसिक वस्तु है। वह ईश्वरीय शक्ति है जो अंतःकरण गम्य है।[४६]

ज्यायफ्रे – सौन्दर्य किसी अदृश्य शक्ति की अभिव्यक्ति है, वह शक्ति प्राकृतिक

अथवा भौतिक उपकरणों द्वारा व्यक्त होती है। यह दृश्य जगत वसन (वस्त्र) है, जिसको वह वासी (अदृश्य सत्ता) धारण किये हुये है।"[४७]

चर्नाशेब्सकी	– "सौन्दर्य ही जीवन है।"[४८]
प्लूटार्क	– सौन्दर्य एक प्रकार की कलात्मक कुशलता है।[४९]
लेसिंग	– सौन्दर्य अभिव्यक्ति में नहीं, वस्तु-विधान और पद्धति में है। इन्होंने केवल कविता और चित्रकला को ध्यान में रख सौन्दर्य को परिभाषित किया है।[५०]
एल्सन	– "सौन्दर्य विचारों का प्रवाह है।"[५१]
बेलिन्सकी	– सौन्दर्य सामाजिक जीवन के जीवन्त यथार्थ का ऐसा प्रतिबिम्ब है जो हमें आनन्द ही नहीं देता, प्रगतिशील होने की प्रेरणा भी देता है। सौन्दर्य के सम्बन्ध में ऐसी ही धारणा हर्जेन और दोब्रोल्यूबाव की भी है।"[५२]

इस प्रकार कोई सौन्दर्य को आनंदप्रदायक मानता है, कोई ईश्वर को सौन्दर्य निधान मानता है। कोई सामंजस्य में सौन्दर्य का दर्शन पाता है, कोई शिवत्व को सौन्दर्य का पर्याय स्वीकारता है, कोई प्रकाशन की कुशल अभिव्यक्ति में सौन्दर्यानुभूति करता है, कोई नैतिकता में ही इसका प्रादुर्भाव मानता है, कोई विश्व की दैवी अभिव्यंजना में सौन्दर्य का उत्स ढूँढ़ता है, कोई अमरत्व से सौन्दर्य का सम्बन्ध स्थापित करता है, कोई प्रभावान्विति में इसको प्रत्यक्ष देखता है, कोई पूर्णत्व को ही सुन्दर मानता है, कोई सौन्दर्य को दृष्टिकोण के माध्यम से जानता है, कोई सौन्दर्य को प्रेम का जनक मानता है, कोई इसे ऐन्द्रिक सुख का अभिधान देता है, कोई दिव्याति दिव्यवस्तुओं में सौन्दर्य का अधिवास देखता है, कोई ज्ञान, इच्छा और क्रिया के समन्वय में सौन्दर्य की प्रतिष्ठापना करता है, कोई गतिशीलता में सौन्दर्य का चैतन्य देखता है तो कोई विरोधाभास में सौन्दर्य का प्रत्यक्षीकरण करता है।

वस्तुतः **सौन्दर्य एक गुण है जिसमें आकृष्ट करने की अभूतपूर्व क्षमता विद्यमान होती है। अतएव प्रेक्षक की दृष्टि ही किसी वस्तु को सुन्दर और असुन्दर का अभिधान देती है। निःसन्देह अमरत्व ही दिव्य सौन्दर्य का प्रमुख तत्व है।**

पौरस्त्य मत

वामन	– "अलंकार ही सौन्दर्य है।[५३]
माघ	– शिशुपालवधकार प्रतिक्षण परिवर्तित होने वाले रूप द्वारा उत्पन्न रमणीयता तथा विचित्रता में सौन्दर्य स्वीकार करते हैं।[५४]
रूपगोस्वामी	– अंग-प्रत्यंग का यथोचित सन्निवेश ही सौन्दर्य है।[५५]
कालिदास	– कवि कुल गुरु रमणीयता में सौन्दर्य के दर्शन करते हैं।[५६] उनके अनुसार स्वाभाविकता में ही सौन्दर्य होता है उसे अलंकारों की आवश्यकता नहीं।"[५७]

एक और स्थल पर वे अपना मत यों देते हैं-सच्चा सौन्दर्य वह है जो पापवृत्ति की ओर अग्रसर न करके सात्विकता की प्रेरणा प्रदान करता है।[५८]

भारवि – कालिदास के सदृश सौन्दर्य को स्वाभाविक मानते हैं।[५९]

पंडितराज जगन्नाथ– रमणीयता में आह्लाद तत्व समाहित रहता है। यह तत्व ही सौन्दर्य का मूल होता है।[६०]

विद्यापति – सौन्दर्य को सहज और अपरूप मानते हैं।[६१]

बिहारी – नित्य नवीनता में ही सौन्दर्य है।[६२]

सुमित्रानंदन पंत – सत्यं शिवं सुन्दरम् के समुच्चय में ही सौन्दर्य है। सत्य ही प्रज्ञा के रूप में प्रोद्भासित होकर अंतः करण में प्रेम का स्वरूप धारण कर लेता है तथा यही लोक सेवा में मंगलमय बन जाता है।[६३]

प्रसाद – चेतना का उज्जवल वरदान सौन्दर्य है।[६४]

डॉ० रामस्वरूप खरे –जो तत्व मन को दयार्द्र कर दे, अन्तः करण में स्नेह सुधा की सरिता सरसा दे, जिसे देखकर नेत्रों को आनन्द की चरमोपलब्धि हो और अकृत्रिम, एक अकलुष प्रेम प्रादुर्भूत हो उठे तथा जिसके कल्याणकारी विधान में सारी सृष्टि गत्यात्मक हो सके। वह मानव जीवन का श्रृंगार तथा सत्य का वाचक अनुपमेय सौन्दर्य है।[६५]

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी– सामंजस्य में ही सौन्दर्य निहित है। वे कहते हैं- सुन्दरता सामंजस्य में होती है और सामंजस्य का अर्थ होता है किसी चीज का बहुत अधिक और किसी चीज का बहुत कम न होना। इसमें संयम की बड़ी जरूरत है। इसलिये सौन्दर्य, प्रेम में संयम होता है, उच्छृंखलता नहीं।[६६]

''सौन्दर्य का अर्थ और स्पष्ट करते हुये वे कहते हैं कि ''उदाहरण के लिये किसी बन या पर्वत की शोभा ले ली जाये तो उसका मतलब यही होता है कि वहाँ रंग का सामंजस्य होता है, ऊँचाई नीचाई बेनाप नहीं हो गई है, सबमें एक मीठा सम्बन्ध है, कोई किसी को दबा नहीं रहा है मगर श्मशान की खरस्रोता नदी अपनी हड्डियाँ, कंकालों, नरमुण्डों और चिता भस्म के साथ वीभत्स होती है क्योंकि उसमें सामंजस्य नहीं होता और सुन्दरता सामंजस्य में होती है।''[६७]

हंस कुमार तिवारी – ''वास्तव में सौन्दर्य एक विशेष बोध है जिसके पीछे ज्ञान, आनंद क्रियात्मक वृत्ति आदि का सामंजस्य है। इसलिये इसका कोई सर्वमान्य लक्षण देना संभव भी नहीं। इस सौन्दर्य का आनंद भी एक स्वतंत्र कोटि का है, जोकि अनुभववेद्य है। न तो वह प्रत्यक्ष अनुमित हो सकता है न प्रमाणित।

लेकिन सौन्दर्य की उपलब्धि होती है।"[६८]

रामचन्द्र शुक्ल – "सौन्दर्य बाहर की कोई वस्तु नहीं है, मन के भीतर की वस्तु है। योरपीय कला समीक्षा की यह एक बड़ी ऊँची उड़ान या बड़ी दूर की कौड़ी समझी गई है, पर वास्तव में यह भाषा के गड़बड़झाले के सिवा और कुछ नहीं है। जैसे वीर कर्म से पृथक वीरत्व कोई पदार्थ नहीं वैसे ही सुन्दर वस्तु से पृथक सौन्दर्य कोई पदार्थ नही। कुछ रूप-रंग की वस्तुयें ऐसी होती हैं जो हमारे मन में आते ही थोड़ी देर के लिये हमारी सत्ता पर ऐसा अधिकार कर लेती हैं कि उसका ज्ञान ही हवा हो जाता है और हम उन वस्तुओं की ही भावना के रूप में परिणित हो जाते हैं। हमारी अन्तः सत्ता की यही तदाकार परिणति सौन्दर्य की अनुभूति है। जिस वस्तु के प्रत्यक्ष ज्ञान से या भावना से तदाकार परिणति जितनी ही अधिक होगी उतनी ही वह वस्तु हमारे लिये सुन्दर कही जायेगी।[६९]

श्री लीलाधर गुप्त – "सौन्दर्य प्रकृति के कुछ दृश्यों अथवा कलाकृतियों और मानव मन के मध्य एक विशिष्ट सम्बन्ध का द्योतक है।"[७०]

हरिवंश सिंह – "स्थूल या सूक्ष्म जगत में आत्मा की अभिव्यक्ति ही सौन्दर्य है।"[७१]

प्रेमचंद – "हमने सूरज का उगना और डूबना देखा है, ऊषा और संध्या की लालिमा देखी है, सुन्दर सुगन्ध भरे फूल देखे हैं, मीठी बोली बोलने वाली चिड़ियाँ देखी हैं, कल-कल निनादिनी नदियाँ देखी हैं, नाचते हुये झरने देखे हैं-यही सौन्दर्य है।"[७२]

डॉ० दास गुप्त – "अन्तः वाह्य की युगपत क्रिया के द्वारा ही सौन्दर्य की सृष्टि होती है।"[७३]

लालता प्रसाद सक्सेना – "सौन्दर्य मन, आत्मा, मानव एवं प्रकृति अथवा वस्तु जगत के वाह्य रूपाकार की वह विशेषता है जो प्राणी को आनंद विह्वल एवं आत्म-विभोर करने की क्षमता रखती है।"[७४]

डॉ० सम्पूर्णानन्द – "कुछ ऐसे दृग्विषय हैं जिनको देखकर हृदय में रस का संचार होता है... .....हम इन सबमें जो मनोहारिता पाते हैं उसको सौन्दर्य कहते हैं।[७५]

भगवतीचरण वर्मा – "जहाँ तक मेरा मत है, हम जिसके अभ्यस्त हैं या हम जो कुछ भी चाहते हैं वह सब सुन्दर है। सुन्दरता को मैं मानव का गुण मानता हूँ।"[७६]

डॉ० रामविलास शर्मा – "सौन्दर्य की वस्तुगत सत्ता होती है इसलिये शुद्ध सौन्दर्य नाम की कोई चीज नहीं होती। शुक्ल जी के शब्दों में सुन्दर वस्तु से अलग सौन्दर्य नहीं होता।"[७७]

सौन्दर्य-बोध एक संश्लिष्ट इकाई है। सौन्दर्य प्रकृति में है मनुष्य के मन में

भी। उसकी अनुभूति व्यक्तिगत होती है समाजगत भी। व्यक्ति समाज का अंग है इसलिये न तो समाज निरपेक्ष व्यक्ति की सत्ता होती है, और न समाज निरपेक्ष सौन्दर्यानुभूति की संभावना होती है।[७८]

प्रकृति मानव-जीवन तथा ललित कलाओं के आनंद दायक गुण का नाम सौन्दर्य है।[७९]

डॉ० हरद्वारी लाल शर्मा – "अपनी अनुभूति, स्मृति, कल्पना आदि द्वारा आनंद को उत्पन्न करने वाले वस्तु के गुण को सौन्दर्य और वस्तु को सुन्दर कहते हैं।"[८०]

"सौन्दर्य के सम्पूर्ण अनुभव में सुन्दर वस्तु का पार्थिव रूप और इसका आनंदमय आध्यात्मिक रूप इतने संश्लिष्ट रहते हैं कि इनके वियुक्त करने से ये दोनों विलीन हो जाते हैं। कोई वस्तु स्वतः सुन्दर नहीं होती, जब तक आनंद का अनुभव नहीं है, और आनंद का स्वतः वस्तु बिना अनुभव सौन्दर्य का अनुभव नहीं होता है। सौन्दर्यानुभूति में पार्थिव रूप और आध यात्म रूप का इतना घनिष्ठ संबंध है कि एक यदि चेतन आत्मा है तो दूसरा उसका रूपवान व्यक्त शरीर है, सुन्दर वस्तु मूर्तिमति अनुभूति है और अनुभूति स्वयं के सौन्दर्य से स्वरूप पाती है।[८१]

डॉ० दशरथ ओझा – "सौन्दर्य को हम केवल आँखों से नहीं देख सकते, उसके लिये मानसिक दृष्टि की भी आवश्यकता है। मन की अनेक तरंगें हैं। केवल बुद्धि और विचार ही से काम नहीं चल सकता, उनके साथ हार्दिक भावों को भी जोड़ना चाहिये। धर्मबुद्धि का भी बल लगाना चाहिये। ऐसा करने से आध यात्मिक दृष्टि खुल जाती है और कलाकार दिव्यदृष्टा हो जाता है। यहीं सौन्दर्य के साथ मंगल का मेल होता है। मंगलमय वस्तु सदा हमारा भला करती है। अथवा कहना चाहिये, जो वस्तु सदा हमारा भला करे वही मंगलमय है। वास्तव में मंगलमय वस्तु का रूप ही यह है कि वह हमारी आवश्यकता भी पूरी करे और देखने में भी सुन्दर हो। फूल जब अपनी वर्णगन्ध की प्रगल्भता को फल की मधुरता में परिणत करता है तब उस परिणति में ही सौन्दर्य और मंगल का मेल होता है। मंगल की भाँति सत्य का भी सौन्दर्य से मेल होना चाहिए। जब सत्य और सुन्दर एक हो जाते हैं तब चरम सौन्दर्य का दर्शन होता है।[८२]

नर्मदेश्वर चतुर्वेदी – "जिस किसी वस्तु अथवा भाव में चित्तवृत्ति टिककर रम जाये, उसे 'सुन्दर' कहते हैं और उसकी अनुभूति को सौन्दर्य की संज्ञा प्रदान करते हैं।[८३]

डॉ. गुलाबराय – "धार्मिक भावमिश्रित भय उत्पन्न करने वाली वस्तुओं को उदात्त कहा गया है सुन्दर नहीं।" सुन्दर वस्तु वह है जिसमें रमणीयता के साथ-साथ माधुर्य भी हो।" रमणीयता का अर्थ है क्षण-क्षण में उत्पन्न होने वाली नवीनता। माधुर्य का अर्थ है चित्त को द्रवित करने वाला आह्लाद।"[८४]

रवीन्द्र नाथ ठाकुर – सत्य के साथ मंगलमय के पूर्ण सामंजस्य को देख सकें तो फिर सौन्दर्य हमारे लिये अगोचर नहीं है।.......मंगलमय वस्तु हमारा भला करती है इसलिये हम उसे भली कहते हैं। वास्तव में जो भी वस्तु मंगलमय होती है वह हमारी आवश्यकताओं को पूरा करती है और सुन्दर भी होती है।[८५]

"कवीन्द्र रवीन्द्र सत्य को ही सौन्दर्य स्वीकारते हैं।"[८६] साथ ही इस बात पर भी वे बल देते हैं कि–"सौन्दर्य के साक्षात्कार के लिये व्यापक दृष्टि की आवश्यकता है.....दृष्टि की संकीर्णता सौन्दर्य-प्रतीति को कुरूप और सुरूप दो टुकड़ों में बाँट देती है। मनुष्य जब स्वार्थ या भोगेच्छा की प्रवृत्तियों से सर्वथा वीतरागी, सर्वथा निरपेक्ष होकर वस्तुओं को देखता है तभी वह सौन्दर्य का सच्चा रूप देख सकता है। यह सौन्दर्य सर्वत्र है तभी वह अनुभव कर सकता है कि हमें अरुचिकर प्रतीत होने वाली सब वस्तुएं आवश्यक तौर पर असुन्दर नहीं होतीं। उनका सौन्दर्य उनकी सच्चाई पर निर्भर होता है।"[८७]

डॉ०बी०एल०आत्रेय– "योग की सविकल्प समाधि की दशा ही सौन्दर्य की अवस्था है।"[८८]

इलाचन्द्र जोशी – "अन्त में हम फिर यह कहना चाहते हैं कि सौन्दर्य का कोई निश्चित मानदंड न होने पर भी उसका झुकाव और विकास एक विशेष आदर्श की ओर होता है। वह आदर्श है– आत्मा, हृदय और मस्तिष्क का संयोग, सुन्दर, मंगल और सत्य का सामंजस्य।[८९]

शकुंतला शर्मा – वस्तु, समाज, देश, और काल के दृश्य अथवा अदृश्य संस्कार से भावित मानव अंतःकरण की अनुकूल रोचकता ही सौन्दर्य है।"[९०]

जैनेन्द्र – "वह सुन्दर कैसा जो शिव भी नहीं है और शिव तो अनिवार्य सुन्दर है ही।"[९१]

नन्ददुलारे बाजपेयी – व्यष्टि सौन्दर्य-बोध एक सार्वजनिक अनुभूति है। यह सहज ही हृदयस्पर्शी है, यह सक्रिय और स्वावलम्बी काव्य-चेतना की जन्मदात्री है। इसे मैं प्राकृतिक आध्यात्म कह सकता हूँ। समष्टि सौन्दर्य-बोध उच्चतर अनुभूति है।[९२]

डॉ० सुरेश त्यागी – वस्तु के पक्ष में सौन्दर्य यदि बाह्य रूपाकार की समुचित संयोजना है तो

व्यक्ति के पक्ष में वह एक आनन्दमयी अनुभूति है।[९३]

छोटेलाल दीक्षित – सौन्दर्य वह है जो अविकल्प रूप से पूर्ण है। जो बिना इच्छा जगाये ही हमें आनन्दित करे, जिसमें आकर्षित करने की क्षमता हो, जो हमारी इन्द्रियों को अभिभूत कर सके जिसको देखकर हमारी चेतन विचारगति रुक जाये अथवा जिसको सदैव बनाए रखने की इच्छा जाग्रत हो।[९४]

डॉ०लालताप्रसाद सक्सेना– सौन्दर्य मन, आत्मा एवं मानव, प्रकृति अथवा वस्तु जगत के वाह्य रूपाकार की वह विशेषता है जो प्राणी को आनन्द विह्वल एवं आत्म–विभोर करने की क्षमता रखती है।[९५]

डॉ० रामकुमार वर्मा –सौन्दर्य स्थूल से उत्पन्न सूक्ष्म की वह सहज परिस्थिति है जिसकी प्रगति सुख या आनन्द की ओर है। सुख इन्द्रियों का विषय है और आनन्द अन्तःकरण का।....... अन्तः सौन्दर्य इन्द्रियजनित या अंतः करण जनित रागात्मक मनोवेग के विश्राम में है।[९६]

डॉ० फतह सिंह – हमारा मन ही 'सुम' अनुभूति का दाता होने से सुन्द है और जिस वस्तु या विभाव द्वारा आकर्षित होकर मन में अनुभूति विभावित होती है। उसे सुन्दर कहा जाता है। अतः उस वस्तु या विभाव के आकर्षण को ही सौन्दर्य कह सकते हैं। इसीलिये मनोहारिता, मनोज्ञता आदि शब्द सौन्दर्य के पर्यायवाची शब्द समझे जाते हैं।[९७]

इसी प्रकार भारतीय मनीषियों में यदि कोई अलंकृति को सौन्दर्य मानता है, तो कोई अंग-प्रत्यंग के यथोचित सन्निवेश में सौन्दर्य देखता है, कोई ऋजुता को सौन्दर्य का पर्याय मानता है, कोई रमणीयता में सौन्दर्य का प्रत्यक्षीकरण करता है, कोई प्रतिक्षण परिवर्तित होती हुई नवीनता को सौन्दर्य का मूल स्वीकार करता है, कोई चेतना के उज्ज्वल रूप वरदान को सौन्दर्य मानता है, कोई विभिन्न एवं विरोधाभासी वस्तुओं के समन्वय में सौन्दर्य का अनुभव करता है, कोई सौन्दर्य को अन्तःकरण में देखता है, किसी को निसर्ग सौन्दर्य सुख प्रदान करता है, कोई आनन्द, प्रेम और आकर्षण में सौन्दर्य की बाँकी झाँकी देखता है, कोई आत्मा के व्यक्तीकरण को सौन्दर्य अभिधान देता है, कोई जो मन को भला लगे, उसे सुन्दर मानता है, कोई आनन्द प्रदायिनी क्रिया को सुन्दर मानता है, कोई सत्यं शिवं सुन्दरम के सममिलन को सुन्दर स्वीकार करता है, कोई आत्मा की प्रतिच्छाया को सौन्दर्य नाम देता है तो कोई मनोनुकूल वस्तु को सौन्दर्य का स्वरूप प्रदान करता है।

मेरा विचार है कि वास्तव में सौन्दर्य एक अखण्ड और अविभाज्य वस्तु है। आकर्षण इसका सशक्त एवं प्रभावी तत्व है। निःसन्देह सौन्दर्य को वाणी से परे मात्र अनुभवगम्य और अनिवर्चनीय माना जाता है। लालित्य, माधुर्य और दिव्यत्व उसे पूर्णता के शिखर पर पहुँचाते हैं।

पाश्चात्य दृष्टिकोण

वास्तुवादी विचारक- सौन्दर्य विषयक पाश्चात्य परिभाषाओं से स्पष्ट है कि पाश्चात्य सौन्दर्य शास्त्रियों की एक सुविस्तृत अलग परम्परा रही है। यह बात अलग है कि उनके दृष्टिकोणों में एक रूपता का अभाव है। मत विभिन्नता स्पष्टतः लक्षित होने के कारण तीनों वर्गों के विचारकों का अलग-अलग समुदाय बनाया जा सकता है।

वस्तुगत सौन्दर्य के समर्थकों में **सुकरात** (Socrats), **अरस्तू** (Aristotle), **बर्क** (Burke), **एलीसन** (Alison), **रिचर्ड प्राइस** (Richard Price), **ज्योफ्रे** (Geoffery), **बेन** (Baine), **लेसिंग** (Lessing), **सली** (Sully), **हर्बर्ट स्पेन्सर** (Herbert spencer), **स्टुअर्ट** (Stuart), **डार्विन** (Darwin), **हैमिल्टन** (Hamilton), **शेन्स्टन** (Shenstone), **पियर बफियर** (Pere Buffier), **कैमे** (Cames), **ट्यूकर** (Tucher), **होगार्थ** (Hoggarth), **जेरार्ड** (Gerard), आदि के नाम प्रमुखतः लिये जा सकते हैं।

इन विचारकों के अनुसार **व्यक्ति, दृश्य या किसी वस्तु के आकार रूप-रंग, व्यवस्था, मसृणता** (Smothness), **नियमितता** (regularity), **सामंजस्य** (Harmony), **औचित्य** (Propriety), **समन्वय** (Synthesis), **अनुपात** (Proportion), **संतुलन** (Balance), **एकान्विति** (Unity), **संबद्धता** (Connectedness), **नव्यता** (Freshness), **माधुर्य** (Sweetness), **सम्मात्रा** (Symmetry), **वैविध्य** (Variaity), **वैषम्य** (Contrast), **शुद्धता** (Purity), **सजीवता** (Liveness), **वर्ण दीप्ति आदि आत्मनिरपेक्ष गुणधर्मों में ही सौन्दर्य का अस्तित्व निहित होता है।**

इन विचारकों की दृष्टि मूलतः वाह्य रूप पर ही केन्द्रित रही है। **अरस्तू** इसी वाह्य रूप को अधिक महत्व देते हैं। वे निश्चित आकार एवं आयाम में ही सौन्दर्य के दर्शन करते हैं-

"किसी भी सुन्दर वस्तु में चाहे वह जीवधारी हो अथवा अवयवों से संघटित कोई अन्य पूर्ण पदार्थ, अंगों का व्यवस्थित अनुक्रम मात्र पर्याप्त नहीं है वरन् उसका एक निश्चित आयाम भी होना चाहिये क्योंकि सौन्दर्य आयाम और व्यवस्था पर ही निर्भर होता है। इसलिये कोई अत्यन्त सूक्ष्म प्राणी सुन्दर नहीं हो सकता क्योंकि उसे देखने में इतना कम प्रायः नहीं के बराबर समय लगता है कि उसका बिम्ब सर्वथा अस्पष्ट रह जाता है। इसी तरह अत्यन्त विराट आकार का पदार्थ भी सुन्दर नहीं हो सकता क्योंकि हमारी दृष्टि उसके समग्र रूपकों को एक साथ ग्रहण नहीं कर सकती जिसके फलस्वरूप दृष्टा के मन में उसकी पूर्णता और एकत्व की भावना खंडित हो जाती है मानो किसी एक हजार मील लम्बे पदार्थ को देखने का प्रयास हो। अतः ऐसे जीवधारियों में एक निश्चित आकार आवश्यक होता है ऐसा आकार जिसे दृष्टि एक साथ समग्र रूप में ग्रहण कर सके।"[९८]

होगार्थ सौन्दर्य को सम्मात्रा, स्पष्टता तथा आयतन में मानते हैं।[९९] **दिदिरो वस्तु के पारस्परिक सम्बन्धों में सौन्दर्य देखते हैं।**[१००] **बर्क वस्तु की लघुता, स्निग्धता, कोमलता, मसृणता**

और वर्णदीप्ति में सौन्दर्य का अवलोकन करते हैं।[१०१] वहीं रस्किन सौन्दर्य के अन्तर्गत, एकता, स्थिरता, सम्मात्रा शुद्धता आदि को स्वीकारते हैं।[१०२] डॉ० जेरार्ड ने जहाँ विभाव की दृष्टि से आकृति और वर्ण सौन्दर्य को स्वीकार किया है वहाँ प्रमाता को दृष्टि में रखकर उपयोग सौन्दर्य को भी माना है।[१०३]

एलीसन, बेन, ज्योफ्रे आदि ने वस्तुगत सौन्दर्य के अधूरेपन को दूर करने के लिये साहचर्यवाद के सिद्धान्त की प्रतिष्ठा की। इस सिद्धान्त के अनुसार.........जो सुखद अनुभूतियाँ सौन्दर्य का कारण बनती हैं, वे वस्तुतः और अनिवार्यतः विभाव या वस्तु को लक्ष्य करके ही उपजती और संचित होती हैं।[१०४] अतः साहचर्यवाद का महत्व इतना ही माना जा सकता है कि वह अनुकूल परिस्थिति में भाव का प्रकर्ष कर सकता है और प्रतिकूल परिस्थिति में या तो दुखद भाव को कुछ कम कर सकता है या सुखद भाव में कुछ न्यूनता ला सकता है।"[१०५]

कुछ सौन्दर्यशास्त्रियों ने विभाव को अलग कर जातियों में प्रचलित सौन्दर्य आदर्शों के आधार पर सौन्दर्य की विवेचना की है और उसे ही सौन्दर्य का मूल माना है। ऐसे विचारकों में पियर बफियर का नाम अग्रणी है। पर विस्तृत अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि इन आदर्शों का मूल विभाव ही है। ये आदर्श विभावों से ही युक्त हैं। "केमे, अब्राहम, ब्रूकर.......तथा विलियम शेन्स्टन प्रथा और स्वभाव को सौन्दर्य का हेतु स्वीकार करते हैं।"[१०६] रेनाल्ड्स आदि सौन्दर्य मीमांसा में सर्वाधिक महत्व प्रकृति को देते हैं। उनके अनुसार- "प्रत्येक पौधे और प्राणी की प्रकृति उसके पूर्व निर्णीत रूप की ओर लिये जा रही है और यदि हम उनके रूपों में सौन्दर्य देखते हैं तो केवल इसलिये कि हम ऐसा करते आये हैं। हमारी यह आदत उसी प्रकार की है जिस प्रकार हाँ से स्वीकृति तथा ना से निषेध का ज्ञान होना।[१०७]

आत्मवादी विचारक

वस्तुवादी विचारकों की भाँति ही पश्चिम में आत्मवादी विचारकों की एक सुदीर्घ परम्परा है। इस वर्ग के विचारकों ने सौन्दर्य को आत्मा अथवा आध्यात्म के साथ समन्वित कर सौन्दर्य की व्याख्या प्रस्तुत की है। वास्तविक सौन्दर्य की अनुभूति के लिये आध्यात्मिक धरातल की पूर्व पीठिका से जुड़ाव आवश्यक है। जबकि इस वर्ग के चिन्तकों की अवधारणायें वैयक्तिक अनुभूति और बुद्धि की तार्किकता से विनिर्मित हैं। जिसके कारण धारणाओं में इतना उलझाव स्पष्टतः लक्षित होता है। प्रायः वे स्वयं कहीं अपनी धारणा का समर्थन करते हैं तो कहीं स्वयं ही खंडन करते प्रतीत होते हैं।

इस वर्ग के विचारकों में प्लेटो (Plato), प्लूटोनस (Plotinus) सेंट आगस्टाइन (St. Augustine) बाम गार्टेन (Baum garten) पियर एन्ड्री (Pere Andre) लिवेक (Leveque) शेफ्टस बरी (Shaftesbury) रीड (Read) शिलर (Schiller) आडगन (Odgen) लोज (Lotze) हरबर्ट (Herbart) विशर (Vischer) मेन्डल्सोन (Mendelessohn) कांट (Kant) हीगेल (Hegel) शापेन हावर (Schopen hawar) बर्कले (Berkley) शेलिंग (Schelling) हचसन (Hutcheson) आस्कर वाइल्ड

(Oscar wild) कीट्स (Keats) क्रोचे (Croce) आदि प्रमुख हैं।[१०८]

प्लेटो की धारणा है कि **सृष्टि का सौन्दर्य सदैव एकरस एवं अखण्ड रहता है। यही सौन्दर्य समस्त सृष्टि में व्याप्त है। यह समस्त सृष्टि परमसत्ता के सौन्दर्य की अनुकृति है।**[१०९]

बामगार्टेन सौन्दर्य को वृत्तियों का आदर्श लक्ष्य स्वीकार करते हुये कहते हैं- **सौन्दर्य शास्त्र हमारी चेतना, अनुभूतियों अथवा वृत्तियों का धर्म है।**[११०]

कांट के विचार में सौन्दर्य मन की ही वस्तु है। वह मानव मन के विशिष्ट अंश को प्रभावित करता है। उनके अनुसार- **मस्तिष्क की अस्त-व्यस्त अनुभूतियों की बुद्धि एवं कल्पना एकत्रित एवं समन्वित करके एक रूप प्रदान करती है। यही सौन्दर्य होता है। सौन्दर्यमय रूप वही है जिससे आनंद की उपलब्धि होती है।**[१११]

रस्किन सौन्दर्य का सम्बन्ध ईश्वर से जोड़ते हैं। वस्तु की अनन्तता, एकता, स्थिरता, सम्मात्रा, शुद्धता और संयति आदि विशेषताओं का महत्व प्रतिपादन करने के साथ ही वे मानते हैं कि ईश्वर **सर्वत्र अपनी महिमा व्यक्त कर रहा है। ईश्वर ही सौन्दर्य स्वरूप है।** रस्किन ने अपनी महत्वपूर्ण कृतियों में सौन्दर्य के दो भेद बाह्य और आंतरिक माने हैं और सौन्दर्य तत्व को **लेक्चर्स आन आर्ट**[११२] तथा **माडर्न पेन्टर्स**[११३] में परिभाषित किया है।

इस वर्ग में सबसे उल्लेखनीय नाम क्रोचे का है। **क्रोचे** ने आत्मा की रचना चार वृत्तियों के समन्वय से मानी हैं। ये वृत्तियाँ निम्न हैं-

१. वीक्षा मूलक वृत्ति[११४]

२. अन्वीक्षा मूलक वृत्ति[११५]

३. विधिमूलक वृत्ति[११६]

४. योगक्षेम मूलक वृत्ति[११७]

क्रोचे की धारणा है कि **केवल वीक्षावृत्ति के व्यापार से ही समस्त रूप इत्यादि का ज्ञान संभव है अतः सौन्दर्य की कोई वाह्य सत्ता नहीं होती। सौन्दर्य बोध ही सौन्दर्य या सुन्दर माना जाना चाहिये।**[११८]

क्रोचे के अनुसार सौन्दर्य केवल आंतरिक वस्तु है अतः सौन्दर्य का निर्णय वाह्य रूप को आधार मानकर नहीं किया जा सकता है। सौन्दर्य केवल कल्पनामूलक अन्तर्व्यापार होता है। क्रोचे का कथन है कि हम ज्ञान मात्र को दो भागों में बाँट सकते हैं। कल्पना प्रसूत विशेषावलंबी ज्ञान और अन्वीक्षा प्रसूत सामान्यावलम्बी।"[११९]

क्रोचे के अनुसार कला या सौन्दर्य का सृजन 'इनटयूटिव नालेज' से ही संभव है। इसी से बिम्ब निर्माण होता है। यह स्वयं प्रकाश ज्ञान जितना विशुद्ध और मुक्त होता है कला उतनी ही सुन्दर होती है।[१२०] **क्रोचे की दृष्टि में सौन्दर्य केवल अभिव्यक्ति में निहित है। स्वयं प्रकाश ज्ञान और अभिव्यक्ति की अभिन्नता के सिद्धान्त को क्रोचे की मौलिक देन स्वीकारा जा सकता है।**[१२१]

क्रोचे ने अपने निष्कर्षों को अपनी पुस्तक के प्रथम अध्याय में निम्नवत प्रस्तुत किया है-

We may thus add this to the Various verbal discriptions of intuition noted at the begining, intutive knowledge is expressive knowledge, Independent and outonomus in respect to intellectual function, indifferent to later impirical discriminations, to reality and to reality and to unreality to formations and appear options of space and time, which are also later. Intution or representations is distinguished as form from what is felt and suffered, from the flux or wave of sensation or from psychic matter and this from thus taking possession is expression. To intuit it to express and nothing else (nothing more, but nothing less) then to express."[१२२]

सेन्ट आगस्टाइन की मान्यता है कि असीम शिवत्व, सत्य एवं सौन्दर्य ईश्वर के ही गुण हैं और वस्तुओं को ये गुण ईश्वर ही प्रदान करता है। प्लेटो ने सृष्टि के दो प्रकार माने हैं-चेतन (Ideal) और प्रतीयमान (Phenomenal)। प्रतीयमान जगत का मूल रूप भी चेतन जगत में है जो अद्वैत तथा आत्यन्तिक सौन्दर्य है जो सदा एक रूप रहता है। प्रत्येक सुन्दर वस्तु इसी आत्यंतिक सौन्दर्य (Absolute beauty) से ही सुन्दर है।[१२३] प्लाटीनस ने परमशक्ति के शिवरूप पर ही बल दिया है। उनके अनुसार इसी शिवत्वमय एक से बुद्धि का उदय होता है और यही आंत्यिक सौन्दर्य है।[१२४] प्लेटो और प्लाटीनस दोनों की धारणा में एक साम्य स्पष्ट होता है कि "सभी प्रकार का सौन्दर्य हममें सत्य और मंगल को बढ़ाता है।[१२५] इन दोनों का आंत्यिक सौन्दर्य शेफ्टसबरी के उस प्रथम सौन्दर्य (First beauty) से तुलनीय है जिसे उन्होंने स्वयं ईश्वर मानकर बतलाया है कि उसी के प्रतिबिम्ब स्वरूप सृष्टि में सारे सौन्दर्य विद्यमान हैं।[१२६]

कालरिज सौन्दर्य की मानसिक सत्ता मानता है। कवि के मन तथा वाह्य जगत के मन में ही कला अथवा सौन्दर्य की सत्ता है। इनके सम्मिलन से आनन्द की अनुभूति होती है। यही आनन्दानुभूति सौन्दर्यानुभूति है।[१२७]

हीगेल अपना विचार देते हैं कि आत्मा का इन्द्रिय ग्राह्य विषयों द्वारा अपनी आत्मा को व्यक्त करना ही सौन्दर्य है।[१२८] गोथे मानता है कि सौन्दर्य मायारूपी माध्यम द्वारा दिखाई पड़ने वाला अपना प्रतिबिम्ब है, यह आत्मा का प्रतिबिम्ब है। यद्यपि यह प्रतिबिम्ब सत्य नहीं कहा जा सकता पर असत्य भी नहीं है क्योंकि प्रतिबिम्ब सत्य का ही है।[१२९]

ज्योफ्रे ईश्वर को ही सौन्दर्य मानते हैं। उनके अनुसार सुन्दर के साथ स्वार्थ भावना का सम्बन्ध नहीं होता। उससे प्राप्त आनन्द निष्काम आनन्द होता है।[१३०] वे कहते हैं कि - सौन्दर्य किसी अदृश्य शक्ति की अभिव्यक्ति है। वह शक्ति प्राकृतिक अथवा भौतिक उपकरणों द्वारा व्यक्त होती है। यह दृश्य जगत वसन (वस्त्र) है जिसको वह वासी (अदृश्य सत्ता) धारण किये हुये है।[१३१]

विक्टर कूंजां ने सौन्दर्य की व्यापक व्याख्या की है। उनके अनुसार- समस्त शारीरिक और

प्राकृतिक दोनों ही प्रकार का सौन्दर्य आध्यात्मिक अथवा नैतिक सौन्दर्य का प्रकाश है और यह सौन्दर्य भी ईश्वर के सौन्दर्य पर आधारित है। अतः ईश्वर ही परम सुन्दर है।[१३२]

रीड ने ज्ञान (Cognition) और इच्छा (Affection) को ईश्वरीय शक्तियाँ मानकर मूलतः सुन्दर माना है।[१३३] रीड के अनुसार सौन्दर्य कोई वस्तुओं का गुण नहीं वह तो ईश्वरीय शक्ति है।[१३४]

कुछ सौन्दर्य शास्त्रियों ने मानव व्यवहार का विश्लेषण करते हुये सौन्दर्य मीमांसा की है। इनमें शिलर, लोत्से तथा विक्टर कजिन का नाम उल्लेखनीय है। शिलर ने मानव व्यवहार के तीन क्षेत्र माने हैं, जड़-जगत, नीति-जगत और क्रीड़ा-जगत। क्रीड़ा जगत में जड़ और नीति जगत का समन्वय है और यही सौन्दर्य का जगत है। यही आनन्द का क्षेत्र है। लोत्से ने भी मानव व्यवहार के तीन क्षेत्र माने हैं। सतलोक (Region of facts), नियम लोक (Region of Laws) और इष्टबुद्धिलोक (Region of standard of values)। लोत्से के अनुसार सौन्दर्य, सुख **(Pleasure)** का ही एक विकसित रूप है और उससे भिन्न नहीं है। भेद केवल यही है कि सुख इन्द्रियगोचर है और वह हमारी वैयक्तिक आत्मा को भी आनंदित करता है जबकि सौन्दर्य हमारी व्यापक (Universal) आत्मा को प्रसन्न करता है। **विक्टर कजिन ने सौन्दर्य के तीन भेद स्वीकार किये हैं- भौतिक नैतिक और मानसिक। उसकी दृष्टि में मानसिक सौन्दर्य ही प्रधान है, शेष दोनों इसी पर आधारित हैं। मानसिक सौन्दर्य ही शुद्ध आत्यन्तिक है यही ईश्वर है।**[१३५]

लोत्से के विचारों पर टिप्पणी करते हुये **डॉ० फतह सिंह** स्पष्ट रूप से कहते हैं कि लोत्से मानव व्यवहार को एक दूसरे ही दृष्टिकोण से देखता है, और वह भी उसके तीन क्षेत्र मानता है (१) सतलोक (२) नियम लोक तथा (३) इष्टबुद्धि लोक। वास्तव में यह तीनों एक ही हैं। केवल तार्किक विवेचन के लिये पृथक-पृथक मान लिये गये हैं। इनमें से सतलोक में ही ऐसी इष्ट बुद्धियाँ **(standards of values)** रहती हैं। जो सदाचार एवं सौन्दर्य की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट कही जा सकती हैं। नियम लोक गौण है और सतलोक का साधन मात्र है। सतलोक में ही ईश्वर ने इन तीनों का सम्मिलन और सामंजस्य स्थापित कर रखा है। इष्टबुद्धियों और साधनों एवं अनिवार्य नियमों के बीच जो एकता का प्रकाश या सौन्दर्य-सुषमा है वही सौन्दर्य है।[१३६]

प्राणी की सौन्दर्य चेतना का बहुत बड़ा अंश उसकी शरीर रचना और इन्द्रियों **(sense argons)** के प्रकार से निर्मित तथा नियन्त्रित होता है।''[१३७]

जीव वैज्ञानिक दृष्टिकोण से यह भी ध्यातव्य है कि मानवेतर प्राणी जगत में भी सौन्दर्य चेतना का क्रमशः विकास हो रहा है। सौन्दर्य चेतना और प्रेम के विषय में जीव विज्ञान यह मानता है कि सौन्दर्य और प्रेम सामाजिक संस्कार हैं अतः ये केवल बहुकोषी **(Multicelluler)** प्राणियों में पाये जाते हैं क्योंकि एक कोषी प्राणियों में सौन्दर्य और प्रेम की आधारभूत भावना, सामाजिकता ही नहीं रहती है। किन्तु अब एक कोषी प्राणियों में भी सामाजिकता की आकांक्षा के कारण बहुकोषी होने की प्रवृत्ति अर्थात सौन्दर्य प्रिय और प्रेमी होने की वृत्ति पायी जाती है। उदाहरणार्थ

हम एक जलीय घास-वाल बाक्स को देख सकते हैं। यह वालबाक्स मूलतः एक कोषी है किन्तु अब शनैः शनैः सामाजिक भावना के उदय के कारण यह लाखों की संख्या में बहुकोषी प्राणियों की तरह उपनिवेश बनाकर एक जगह रहता है जिसे वनस्पतिशास्त्री वाल बाक्स कालोनी कहते हैं। वह विकास मेटाबालिज्म के अन्तर्गत सामाजिक प्रवृत्ति के उदय को भी प्रकट करता है। जिसकी अगली परिणति सौन्दर्य चेतना और प्रेम-भावना के विकास में होगी। अर्थात भविष्य में मानवेतर प्राणियों के बीच सौन्दर्य चेतना का और भी विस्तार होगा जिसके वैज्ञानिक अध्ययन से सौन्दर्यशास्त्र को कुछ नूतन आलोक मिलेगा।[१३८]

हीगेल अपना मन्तव्य इस प्रकार देते हैं कि **आन्तर चिदभिव्यक्ति के साथ मेल हुये बिना कोई वस्तु सुन्दर नहीं कहला सकती। विशेष रूप से उपस्थित चिदभिव्यक्ति ही सौन्दर्य कहलाती है। चिदभिव्यक्ति के आंतरिक रूप को सत्य और तद्रूपापन्न बाह्य वस्तु को सुन्दर कहा जाता है।**[१३९]

इस प्रकार विचारकों ने सौन्दर्य को मन या आत्मा की वस्तु मानकर सौन्दर्य को परिभाषा की परिधि में बांधने का प्रयास किया है किंतु वहीं **एच. आसबोर्न** का यह मानना है कि **सौन्दर्य, दृष्टा के मन-मस्तिष्क अथवा आत्मा की वस्तु है। बाह्य जगत में उसका अस्तित्व नहीं है भले ही वह कितनी ही महत्वपूर्ण अथवा फैशन की वस्तु[१४०] क्यों न समझी जाती हो भ्रामक है।**[१४१]

आई०ए० रिचार्ड्स ने भी अपने पूर्ववर्ती सौन्दर्य चिंतकों क्रोचे, सान्त्याना, क्लाइव बेल आदि की अवधारणाओं के प्रति अपनी असहमति व्यक्त करते हुये उनका खंडन किया है साथ ही अपनी मौलिक धारणा भी प्रस्तुत की है। वे सौन्दर्य अथवा कला की सत्ता को जीवन से पृथक नहीं मानते। वे इस बात का दृढ़ता से समर्थन करते हैं कि सौन्दर्य तथा कला का जीवन से अत्यन्त घनिष्ठ संबंध है इसलिये सौन्दर्य या कला को जीवन से जोड़कर ही व्यक्त किया जा सकता है उससे कट कर नहीं। साथ ही वे सौन्दर्य को मूल्य से सम्बद्ध करने पर विशेष बल देते हैं। उनके अनुसार **सौन्दर्य वही है जो मूल्यवान है। सौन्दर्य इसलिये मूल्यवान है कि उससे विरोधी मनोवेगों में व्यवस्था और सन्तुलन होता है। मानव मन में निरन्तर आवेग उत्पन्न होते रहते हैं किंतु कुछ अन्य विरोधी और प्रतिकूल कोटि के मनोवेग भी रहते हैं। मनोवेगों की संतुलित और व्यवस्थित अवस्था को उन्होंने Synaesthetics की संज्ञा दी है** और इसी आधार पर सौन्दर्य की परिभाषा इस प्रकार की है-

"Not all impulses.......are naturally harmonious, for conflict is possible and common, A complete systematization must take the form of such an adjustment as will preserve free play to every impulse, with entire avoidence of frustration. In any equilibrium of this bind, however momentory we are experiencing beauty".[१४२]

समन्वयवादी विचारक

सौन्दर्य को वस्तुगत एवं आत्मगत मानकर अपनी अवधारणायें प्रस्तुत करने वाले दोनों ही वर्गों के सिद्धान्त निश्चित रूपेण अतिवादिता से पीड़ित वक्तव्य जान पड़ते हैं। उनके मतों में स्पष्टतः

अधूरापन दिखता है। वास्तव में ये अवधारणायें सौन्दर्य के केवल एक पक्ष को ही प्रदर्शित करती हैं क्योंकि केवल रूप अथवा वस्तु को सुन्दर नहीं माना जा सकता क्योंकि उसके सौन्दर्य को अनुभूत करने के लिये दृष्टा के मन में आकर्षण तथा आनन्दोपलब्धि की भावना का होना भी अनिवार्य है क्योंकि इनके अभाव में दृष्टा उस वस्तु या रूप को अन्य रूप अथवा वस्तु जैसा ही अनुभूत करेगा।

इसी प्रकार केवल मानसिक क्रियाओं के फल के रूप में या मात्र आत्मा के साक्षात्कार को भी सौन्दर्य की संज्ञा देना समीचीन नहीं क्योंकि सौन्दर्यानुभव के लिये वस्तु या रूप का होना आवश्यक है। रूप के प्राकट्य के लिये वाह्य जगत की उपलब्ध वस्तुओं का आश्रय प्रत्येक स्थिति में अनिवार्य है क्योंकि रूप की बाह्य अभिव्यक्ति के अभाव में सौन्दर्य की वास्तविक प्रतीति असंभव है। इस प्रकार दोनों ही मत एकांगी तथा अतिवादिता से आक्रान्त प्रतीत होते हैं। एकांगी दृष्टिकोणों से हटकर कतिपय विचारकों ने सौन्दर्य को रूप एवं मानस-क्रिया व्यापार दोनों से जोड़कर अपने मत व्यक्त किये हैं। **वस्तुनिष्ठ और आत्मनिष्ठ धारणाओं को समन्वित कर सौन्दर्य को परिभाषित करने वालों मे प्लेटो, बोसांके, टाल्सटाय आदि पाश्चात्य चिन्तक प्रमुख हैं।**

पौरस्त्य दृष्टिकोण

वस्तुवादी विचारक– रसवादी तथा ध्वनिवादी विचारकों को छोड़कर सभी आचार्य वस्तुवादी परम्परा में ही आते हैं किन्तु भारतीय विचारकों में ध्यातव्य तथ्य यह है कि न तो वस्तुवादी आचार्यों ने सौंदर्य के आंतर पक्ष की उपेक्षा की और न ही आत्मवादी विचारकों ने सौन्दर्य के वाह्य रूप की।

रामास्वामी, भामह के काव्यालंकार एवं दंडी के काव्यादर्श को भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की महान कृतियों के रूप में मान्यता देते हैं।[१४३]

अलंकार वादी आचार्य सौन्दर्य की सत्ता अलंकार में निहित मानते हैं। **''वामन ने अलंकारों के द्वारा काव्य को ग्राह्य बताते हुये सौन्दर्य एवं अलंकार का तादात्म्य स्थापित किया है।**[१४४] उनके अनुसार **सौन्दर्य ही अलंकार है।**[१४५] **ये अलंकार काव्य की वाह्य शोभा के उपकरण हैं।''**[१४६] इसलिये वामन ने गुणों को महत्व देते हुये कहा है कि **सौन्दर्य प्राप्ति के लिये गुणों का आदान एवं दोषों का परिष्कार आवश्यक है।**[१४७]

आचार्य शुक्ल के अनुसार- **जैसे वीर कर्म से पृथक वीरत्व कोई पदार्थ नहीं वैसे ही सुन्दर वस्तु से पृथक सौन्दर्य कोई पदार्थ नहीं।**[१४८]

वामन स्वीकार करते हैं कि गुण तथा अलंकारों के आदान तथा दोषों के बहिष्कार से ही सौन्दर्य का आविर्भाव होता है। गुण नित्य धर्म हैं तथा अलंकार अनित्य। अलंकार स्वयं सौन्दर्य की सृष्टि नहीं कर सकता। सौन्दर्य की सृष्टि एवं सर्जना के लिये गुण अनिवार्य रूप से अपेक्षित है। **''गुण और अलंकार के अन्तर्गत वामन ने काव्यगत सौन्दर्य के विभिन्न रूपों को अन्तर्भूत कर उन्हें एक प्रकार से सौन्दर्य के पर्याय के रूप में ही प्रयुक्त किया है।**[१४९] दीप्त रसत्व कान्ति से भी वामन का आशय सौन्दर्य की ओर संकेत करना ही है।

भामह और उद्भट को शुद्ध वस्तुवादी माना जा सकता है। वे मानते हैं कि अलंकार अथवा वक्रोक्ति ही काव्य का सर्वस्व हैं।

कुन्तक ने भामह और उद्भट की धारणाओं का समर्थन किया है। भामह ने वक्रोक्ति को अलंकार की आधारभूमि माना है किन्तु कुंतक वक्रोक्ति को काव्य के सर्वस्व की मान्यता देते हैं। कुन्तक के अनुसार **वक्रोक्ति का अर्थ विचित्र उक्ति होता है।** इस वक्रता में तीन गुणों की उपस्थिति अनिवार्यतः होती है।

(क) लोक एवं शास्त्र प्रचलित रूढ़-शब्द-अर्थ से भिन्नता।

(ख) कवि प्रतिभा का चमत्कार

(ग) सहृदय में समानान्तर अनुभूति की अभिव्यक्ति क्षमता।

''इन गुणों के आधार पर कहा जा सकता है कि वक्रोक्ति उस विशेष शैली को कहा जा सकता है जो लोक शास्त्र प्रचलित अभियार्थ से भिन्न, प्रतिभा सम्पन्नता के कारण सहृदय में सम अनुभूति की अभिव्यक्ति कर सके। क्रोचे जहाँ अपनी ही धारणाओं के जाल में उलझ गए हैं वहाँ वक्रोक्तिकार ने अपना सिद्धान्त बड़े ही सुलझे ढंग से प्रस्तुत किया है।[५०]

डॉ० नगेन्द्र ने उनके सिद्धान्त की प्रशंसा करते हुये कहा है- **''भारतीय काव्य-शास्त्र के इतिहास में ध्वनि के अतिरिक्त इतना व्यवस्थित विधान किसी अन्य काव्य-सिद्धान्त का नहीं है और काव्य-कला का इतना व्यापक और गहन विवेचन तो ध्वनि सिद्धान्त के अन्तर्गत भी नहीं हुआ। वास्तव में काव्य के वस्तुगत सौन्दर्य का ऐसा सूक्ष्म विश्लेषण केवल हमारे काव्य-शास्त्र में ही नहीं, पाश्चात्य काव्यशास्त्र में भी सर्वथा दुर्लभ है।**[५१]

डॉ० रामविलास शर्मा भी सौन्दर्य की **वस्तुगत सत्ता के समर्थन में अपना विचार देते हैं-''सौन्दग्र की वस्तुगत सत्ता है। यह सत्ता प्रकृति में है। मानव जीवन और मनुष्य की चेतना में है। सौन्दर्य इन्द्रियबोध तक सीमित नहीं है उसकी सत्ता मनुष्य के भाव जगत और उसके विचारों में भी है....... सौन्दर्य की वस्तुगत सत्ता होती है इसलिये शुद्ध सौन्दर्य नाम की कोई चीज नहीं है।**[५२]

डॉ० लालता प्रसाद सक्सेना का अभिमत है- **यदि सौन्दर्य व्यक्ति वस्तु दृश्य में न हो तो क्या दृष्टा का मन-मस्तिष्क उसकी सृष्टि कर सकता है? कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाले व्यक्ति की यदि एक या दोनों आँखें फोड़ दी जायें तो क्या उसका सौन्दर्य पूर्ववत अक्षुण्ण रहेगा? सर्वांग सुन्दर नारी के कटि के नीचे घुटनों तक जाने वाले लम्बे, कोमल, चिकने, दीप्तमान तथा घुंघराले केश यदि उस्तरे से मूँड़ दिये जायें तो क्या उसकी सुन्दरता पर कोई आघात नहीं पहुँचेगा? सुन्दर पतली, कोमल, नुकीली तथा नवनीतवत श्वेत उंगलियों वाली षोडशी के दोनों हाथों की यदि दो-दो अथवा सभी उंगलियाँ काट दी जायें तो क्या दृष्टा का मन-मस्तिष्क उनमें सौन्दर्य का साक्षात्कार कर सकेगा? सुन्दर आकर्षक तोते जैसी नासिका वाली सुन्दरी अपनी नासिका से विरहित होकर**

भी क्या सुन्दरी कहला सकेगी? कर्णविहीन अथवा एक कान वाला व्यक्ति क्या सुन्दर कहला सकेगा? वक्षस्थल विहीना युवती क्या दृष्टा के आकर्षण का विषय हो सकेगी? मुक्ता अथवा कुन्द पुष्पवत् श्वेत एवं दीप्तिमान दंत पंक्ति वाली कामिनी क्या दन्त विरहिता होकर पोपली एवं खूसट न प्रतीत होगी? श्वेतवर्णी या त्वचा वाली सुन्दरी चेचक के भद्दे दागों से युक्त होकर या आग से झुलसकर क्या सुन्दर प्रतीत होगी? कल-कल निनाद करने वाली श्वेत शुभ्र आकर्षक तथा शीतलता एवं शान्तिप्रदायिनी सरिता के स्थान पर गंदगी से आपूर्ण तथा कीड़ों से भरी नाली क्या मानव आकर्षण अथवा आनन्द का विषय होकर सुन्दर कहला सकेगी?.......विश्वमंगलकारी आदर्शों तथा मंगलमय धर्मकार्यों को छोड़कर कुत्सित घृणित वृत्ति व्यापारों के सौन्दर्य की प्रशंसा कौन करेगा? देश सेवा, राष्ट्र रक्षा अथवा विश्वकल्याण के लिये मर मिटने वाले व्यक्ति की अपेक्षा क्या स्वार्थी, नीच, दुरात्मा, जालसाज, प्रवंचक, हत्यारा व्यक्ति अधिक स्पृहणीय प्रतीत होगा? काले कुंचित अथवा भूरे-घुंघराले, चिकने केशों की अपेक्षा क्या मोटे भद्दे सुअर जैसे केश मानव-स्पृहा के विषय होंगे? चपटी नाक, छोटे कान, मोटी, छोटी, कठोर एवं भद्दी उंगलियाँ, कठोर एवं वीभत्स त्वचा, मुँह के बाहर निकले हुये बड़े-बड़े दाँत, पृथुलाकार भद्दी नारी अथवा सींकिया जवान क्या सौन्दर्य का विषय होगा? यदि ऐसा नहीं है तो सौन्दर्य का अस्तित्व व्यक्ति, वस्तु, दृश्य अथवा मंगलकारी व्यापारों के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं माना जा सकता।'[१५३]

अपनी धारणा को और स्पष्ट करते हुये वे कहते हैं – "यह कथन कि सौन्दर्य मन के भीतर की वस्तु है, बाहर की नहीं, निराधार है। सौन्दर्य वस्तुतः वस्तु की ही चीज है। वस्तु से पृथक उसका कोई अस्तित्व नहीं। यह कहना कि दृष्टा के अभाव में सौन्दर्य का कोई महत्व नहीं अथवा सौन्दर्य के अभिप्रशंसक के अभाव में सौन्दर्य का क्या महत्व हो सकता है, कोई अर्थ नहीं रखता क्योंकि दृष्टा के अभाव में भी वस्तु व्यक्ति अथवा दृश्य का अस्तित्व रहता है इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता। नेत्र बन्द कर लेने से सामने खड़े व्यक्ति के अस्तित्व को झुठलाया नहीं जा सकता। सूर्य के प्रकाश से दूर रहने वाला पक्षी उससे दूर भले ही रहे, पर उसके दूर रहने से सूर्य के अस्तित्व का निषेध नहीं किया जा सकता।'[१५४]

डॉ० दुर्गाप्रसाद श्रीवास्तव ने भी लिखा है-"वास्तव में जब तक दृश्य वस्तु में सौन्दर्य न हो तब तक दृष्टा अपने मन में निराधार या निराकार सौन्दर्य की सृष्टि नहीं कर सकता। हँसते हुये तारों, मुस्कराते हुये चाँद, लजाती हुई उषा और मोती उछालते हुये झरने के सौन्दर्य से किसका मन मुकर सकता है? मन की किसी असाधारण दशा में पावस की धारा चाहे अग्नि लगे या चमकता हुआ चाँद आग का अंगार लगे पर सामान्य स्थिति में इनके सौन्दर्य से कोई इंकार नहीं कर सकता। वस्तु से अलग वस्तु का गुण नहीं होता। सामान्यतया हम नीम को मीठा और गन्ने को कड़ुआ नहीं कह सकते, उसी प्रकार सुन्दर को असुन्दर और असुन्दर को सुन्दर भी नहीं कह सकते।'[१५५]

कालिदास की मान्यता भी कहीं-कहीं वस्तुवादी सौन्दर्य शास्त्रियों से मेल खाती है। वे कहते हैं कि **"सौन्दर्य (सुन्दर वस्तु) सर्वथा मनोज्ञ (रमणीय और सुन्दर) होता है।[१५६] उसे किसी अभिविन्यसन अथवा प्रसाधन की आवश्यकता नहीं होती। इसलिये इन्हें रुक्ष वल्कल में सिमटी कोमलांगी अच्छी लगती है और पिचपिच सेंवार में लिपटी कमलिनी भी आकर्षक लगती है।[१५७]**

इयमधिक मनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी।
किमिवहि मधुराणां मंडनं नाकृतीनाम्।।
– (अभिज्ञान शाकुंतलम)

–यथा प्रसिद्धैर्मधुरं शिरोरुहैः जटाभिरप्येवम भूत्तदाननं।
न षटपदश्रेणिभिरेव पंकजं, सशैवला संगमपि प्रकशते।।
(कुमार सम्भवम्)

आचार्य क्षेमेन्द्र को भी वस्तुवादी विचारक माना जा सकता है। वे वस्तु के उचित विन्यास में ही सौन्दर्य की सत्ता स्वीकारते हैं

औचित्यं रससिद्धस्य स्थिरं काव्य जीवितम्
उचित स्थान विन्यासादलंकृतिरलंकृतः।
औचित्यादच्युतानित्यं भवन्त्येव गुणा गुणाः।। क्षेमेन्द्र, औचित्य विचार चर्चा

रीति, वक्रोक्ति, औचित्य, अलंकार आदि सम्प्रदाय के समर्थकों ने सौन्दर्य को वस्तुनिष्ठ मानते हुये उसकी सत्ता स्वीकार की है। इस प्रकार सौन्दर्य की वस्तुगत सत्ता स्वीकारते हुये भारतीय सौन्दर्यशास्त्रियों ने उसे परिभाषित और विश्लेषित किया है।

आत्मवादी विचारक-

भारतीय सौन्दर्य शास्त्र के विकास का मूल सत्यं शिवं और सुन्दरम की उदात्त भावना रही है। भारतीय विचारकों ने ब्रह्म को परम सुन्दर मानकर सृष्टि की कल्पना की है। ब्रह्म का अंश चूंकि प्रत्येक जड़-चेतन पदार्थ में है, अतः यदि ब्रह्म सुन्दर है तो सम्पूर्ण सृष्टि के जड़-चेतन को सुन्दर होना ही चाहिये।

भारतीय विचारकों ने प्रत्येक वस्तु का सम्बन्ध उस परमसत्ता के साथ जोड़कर उसका विश्लेषण किया है। यही बात सौन्दर्य पर भी लागू होती है। **वे ब्रह्म को सत्य और जगत को मिथ्या**[१५८] स्वीकारते हैं। सौन्दर्य के प्रति भारतीय विचारकों का दृष्टिकोण अधिकतर आध्यात्मिक ही रहा है। **शंकराचार्य** ने निरूपादिक व्रत की ही अखण्ड सत्ता स्वीकार की है। **उन्होंने लास्यादि सौन्दर्य को नौ प्रकार की अनुभूतियों की स्थापना के साथ ही सौन्दर्य को पूर्णतः आध्यात्मिक माना है।**[१५९] परन्तु इसी के साथ यथार्थ जगत की उपेक्षा नहीं की है। पार्वती के रूप सौन्दर्य चित्रण में उनकी सौन्दर्य विषयक धारणा पुष्ट होती है। इसी दृष्टि से "एक अर्वाचीन ऋषि बलीभूत स्वामी परमानन्द जी महाराज के विचार भारतीय सौन्दर्य दृष्टि को पूर्ण स्पष्टता के साथ प्रस्तुत करते हैं- **"स्वतंत्रता**

और सौन्दर्य विवेकिनी शक्ति का सौन्दर्य है। वह सौन्दर्य वाह्य पदार्थों में नहीं प्रत्युत हमारी आत्मा में विद्यमान है।........हमारी आत्मा सौन्दर्य विवेकिनी शक्ति के रूप में पदार्थों को सुन्दर बनाती है।........ सौन्दर्य बुद्धि उस द्वैत का नाश कर देती है जो ज्ञान और कर्म की अवस्था में विद्यमान रहती है..........तर्क से हम परमात्मा का चिन्तन कर सकते हैं और सौन्दर्य हमें साक्षात ब्रह्म का दर्शन कराता है।[१६०] भारतीय विचारकों की आध्यात्मिक दृष्टि की ओर इंगित करते हुये **श्री रामेश्वर दयाल खंडेलवाल** आपना मत यों प्रस्तुत करते हैं- **वस्तुतः भारतीय विचारधारा में कोरा बाहरी सौन्दर्य अपने आप में क्षुद्र है। वह ब्रह्म भावना से युक्त होकर ही रमणीय व आकर्षक होता है।**[१६१]

प्रमुखतः रसवादियों ने सौन्दर्य को आत्मनिष्ठ मानकर उसे परमसत्ता से जोड़कर विश्लेषण किया है। काव्यशास्त्र के प्रायः सभी आचार्यों ने रस की महत्ता निर्विवाद रूप से स्वीकार की है। वक्रोक्ति और अलंकार वाद के समर्थक आचार्य भोज ने भी रसात्मक उक्ति के महत्व को स्वीकारा है। मम्मट, विश्वनाथ और पंडित जगन्नाथ ने आनन्द को ही सर्वोत्कृष्ट स्वीकारते हुये **'वाक्यं रसात्मकं काव्यं'** की प्रतिष्ठा की तथा रस को काव्य का सर्वस्व मानते हुये अपना मत प्रकट किया है कि **"जिस प्रकार कोई रत्न कीटानुवभे के होने पर भी रत्न ही रहा करता है उसी प्रकार कोई काव्य रसभावाभिव्यंजक शब्दार्थ युगल, श्रुति दुष्टादि दोषों के होने पर भी काव्य ही रहा करता है।"**[१६२] **पंडित जगन्नाथ** ने **"जिस अर्थ के ज्ञान से लोकोत्तर आह्लाद मिले, वही रमणीय अथवा सुन्दर है"**[१६३] कहकर उसके आन्तरिक स्वरूप की महत्ता प्रतिपादित की है। रसवादी बिना रस के सौन्दर्य अथवा काव्य को स्वीकार ही नहीं करते। आचार्य **भरतमुनि** ने रस की विस्तृत विवेचना नाट्य संदर्भ में की है। उनके अनुसार **न तो रस के बिना कोई काव्य होता है और न उसके अभाव में किसी अर्थ की प्रतीति होती है।"**[१६४] वे अपनी धारणा यों व्यक्त करते हैं कि **कुछ भाव व्यक्ति के मन में स्थायी रूप से अचेतन अवस्था में रहते हैं। काव्य में समाहित भाव जब मानस के अचेतन अवस्था में रहने वाले भाव से तादात्म्य स्थापित करता है तभी रस अथवा आनन्द की सर्जना होती है। यही आनन्द ब्रह्मानन्द सहोदर माना जाता है जो कि विभावों द्वारा हृदय के स्थायी भाव से संपृक्त होकर अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों से परिपक्वता प्राप्त कर रसात्मक स्थिति में पहुँचता है।**[१६५]

कवीन्द्र रवीन्द्र भी सौन्दर्य को स्वानुभूतिमूलक स्वीकारते हैं।[१६६] उनका कथन उनकी विचारधारा को और पुष्ट करता है कि **"सौन्दर्य विश्व की प्रत्येक वस्तु में व्याप्त है इसलिये प्रत्येक वस्तु हमारे आनन्द का स्रोत बन सकती है।**[१६७] वे स्वीकारते हैं कि -**"किसी भी चीज को इसका माध्यम बनाया जा सकता है। भद्दी चीज भी इस दृष्टि से निरर्थक नहीं है।"**[१६८] अपनी धारणा को वे उपनिषद में कहे गये कथन से प्रामाणिक सिद्ध करते हैं कि- **उपनिषदें कहती हैं कि सभी वस्तुयें आनन्द से ही बनती और पोषित होती हैं।**[१६९]

रसवादी आचार्यों के अतिरिक्त कुछ आधुनिक विद्वानों ने सौन्दर्य चर्चा में अपने-अपने विचार दिये हैं जो सौन्दर्य का सम्बन्ध ईश्वर से मानते हैं - **"सौन्दर्य वाह्य जगत में अनन्त सौन्दर्य निधि आत्मा का दिव्य संकेत है। उस परम सौन्दर्य का ही नाम परमानन्द या ब्रह्मानंद है और उसी परम सौन्दर्य का अंश जिन-जिन पदार्थों में जितनी मात्रा में तथा जितनी सूक्ष्मता से अनुभूति का विषय होता है वह वस्तु उतनी ही सुन्दर होती है। इससे स्पष्ट है कि आत्मा, परमात्मा तथा सौन्दर्य केवल दृष्टिभेद है, तात्विक अंतर नहीं। ब्रह्म केवल माया के सूक्ष्मातिसूक्ष्म आवरण के कारण लोकात्मा से भिन्न आभासित होता है अन्यथा भिन्न होने पर भी अभिन्न है।"**[१७०] और स्पष्ट रूप में यदि देखें तो- **"कहने का तात्पर्य यह है कि जिसे हम दर्शनों में आनन्दमय कहते हैं, ब्रह्म का जो सतस्वरूप तात्विक दृष्टि से सत् और दार्शनिक दृष्टि से चित और परमार्थिक दृष्टि से आनन्द है वही चिदानन्द परमतत्व सुन्दर है।"**[१७१] शकुंतला शर्मा का कथन है- **"हम असत से सत की ओर, मृत्यु से अमृत की ओर, अंधकार से आलोक की ओर जाना चाहते हैं। हमें आनन्द चाहिये, यही दार्शनिक का सत्य है, कवि का सौन्दर्य है, ज्ञानी की आध्यात्मिकता है और भावुक की कविता। उसी महान सत्ता में खो जाने की कामना आनंद है, अमृत है, चिर सुन्दर है।"**[१७२] एक अन्य स्थल पर वे विचार देती हैं- **यह आकर्षण केवल उसी सुन्दर का आकर्षण है जो सृष्टि के कण-कण में झलक रहा है। हम उसे ही सुन्दर कह उठते हैं। अमुक वस्तु सुन्दर है, अमुक वस्तु अच्छी लगती है, इसके मूल में वही अदृश्य शक्ति निहित है।**[१७३] सौन्दर्य शास्त्री हरिवंश सिंह शास्त्री स्थूल या सूक्ष्म जगत में आत्मा की अभिव्यक्ति को ही सौन्दर्य मानते हैं[१७४] तथा अपने दृष्टिकोण के पुष्टीकरण में कहते हैं- **जब कभी हमारी बुद्धि निष्काम होगी तभी हमें सौन्दर्य-बोध होगा क्योंकि उस समय हमारी दृष्टि वस्तुओं के नाम रूप पर, बाहरी बनावट पर नहीं पड़ती प्रत्युत उस नामरूप के आधार पर उस परब्रह्म पर पड़ती है जिसमें ये सब नामरूप कल्पित हैं एवं जो हमारा अपना स्वरूप है।**[१७५]

इस वर्ग के विचारकों ने यह दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से प्रकट किया है कि सौन्दर्य वस्तु में नहीं अपितु दृष्टा के मन में निहित होता है। **"मन जिसे सुन्दर समझ ले वही सुन्दर है और जिसे बुरा समझे वही असुन्दर लगने लगता है।**[१७६] अर्थात सौन्दर्य मानसिक होता है। **बिहारी,**[१७७] **तुलसी,**[१७८] **जायसी**[१७९] प्रभृति कवियों ने इसे अंकित भी किया है। डॉ० लालता प्रसाद सक्सेना इस सवाल को यों उठाते हैं कि - **" सौन्दर्य यदि केवल वस्तु की विशेषता है, उसके गुणधर्मों की देन है तो एक ही वस्तु, व्यक्ति अथवा दृश्य के सौन्दर्य के विषय में यह मत वैभिन्य क्यों है"**[१८०] और साथ ही अपना विचार देते हैं जो मूलतः मानव के मन-मस्तिष्क से सम्बंध रखता है-**"विचार करने से विदित होता है कि इस रुचि वैभिन्य के अनेक कारण हैं जिनके अभाव में सौन्दर्यगत मत वैभिन्य का अस्तित्व नहीं हो सकता। संस्कार, साहचर्य, प्रेम-सम्बन्ध, कर्तव्य-भावना, शारीरिक आवश्यकताएं तथा परिस्थितियाँ ही इस मत-वैभिन्य की जननी हैं।**[१८१] इस प्रकार लालता प्रसाद सक्सेना भी एक

तरह से सौन्दर्य को मानसिक वृत्तियों का प्रतिफलन स्वीकार स्वीकार करते हैं।

यद्यपि इस वर्ग के विचारकों ने सौन्दर्य को ब्रह्म की अभिव्यक्ति के रूप में मान्यता दी है किन्तु वे उसकी वस्तुगत सत्ता को नकारते नहीं है, क्योंकि उनका स्पष्ट रूप से मानना है कि उस अखिल विश्व नियामक सत्ता के सौन्दर्य की अनुपम आभा से ही सम्पूर्ण विश्व प्रकाशित हो रहा है। सृष्टि के प्रत्येक कण-कण में ही उसका सौन्दर्य लक्षित होता है जिस कवि दृष्टा, ऋषि अनुभूत करते और गुणानुवाद करते हैं। वास्तव में **भारतीय सौन्दर्य शास्त्रियों की धारणाओं में आत्मगत और वस्तुनिष्ठता का अपूर्व समन्वय मिलता है जो उनकी सोच की व्यापकता को प्रदर्शित करता है।**

समन्वयवादी विचारक– भारतीय चिन्तकों की दृष्टि सौन्दर्य के विषय में मूलतः समन्वयवादी रही है। यहाँ वस्तु और दृष्टि दोनों की महत्ता समान रूप से स्वीकारी गई है। **"यहाँ किसी वस्तु को सुन्दर कहना सांस्कृतिक, कलात्मक व धार्मिक सभी दृष्टियों से किसी वस्तु को सुन्दर ठहराना है। केवल साहित्यिक दृष्टि से या धार्मिक दृष्टि से या केवल सांस्कृतिक दृष्टि से कोई वस्तु यहाँ खण्डशः सुन्दर नहीं है यदि कोई वस्तु सुन्दर है तो एक साथ इन सभी दृष्टियों से।"**[१८२]

संस्कृत आचार्यों ने भी आलम्बन और विभाव के समन्वय में ही सौन्दर्य स्वीकार किया है। **आचार्य द्विवेदी** भी सामंजस्य में ही सौन्दर्य के दर्शन करते हुये कहते हैं- **"सुन्दरता सामंजस्य में ही होती है और सामंजस्य का अर्थ होता है किसी चीज का बहुत अधिक और किसी चीज का बहुत कम न होना। इसमें संयम की बड़ी जरूरत है। इसलिये सौन्दर्य, प्रेम में संयम होता है उच्छृंखलता नहीं।**[१८३] डॉ० हरद्वारी लाल शर्मा इसी समर्थन में अपने विचार यों देते हैं- **"सौन्दर्य के सम्पूर्ण अनुभव में सुन्दर वस्तु का पार्थिव रूप और इसका आनन्दमय आध्यात्मिक रूप इतने संश्लिष्ट रहते हैं कि इनके वियुक्त करने से ये दोनों ही विलीन हो जाते हैं। कोई वस्तु स्वतः सुन्दर नहीं होती जब तक आनन्द का अनुभव नहीं है और आनन्द का स्वतः वस्तु बिना अनुभव सौन्दर्य का अनुभव नहीं होता है। सौन्दर्यानुभूति में पार्थिव रूप और आध्यात्म रूप का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि एक यदि चेतन आत्मा है तो दूसरा उसका रूपवान व्यक्त शरीर है। सुन्दर वस्तु मूर्तिमति अनुभूति है और अनुभूति स्वयं वस्तु के सौन्दर्य से स्वरूप पाती है।"**[१८४] आगे और स्पष्ट करते हुये वे कहते हैं कि **वस्तु भाव को शरीर प्रदान करती है और भाव वस्तु को सौन्दर्य प्रदान करता है। भाव के अभाव में वस्तु सुन्दर नहीं होती और वस्तु के अभाव से सौन्दर्य निष्प्राण अशरीर रहता है। भाव में शरीर धारण करने की प्रवृत्ति है। सौन्दर्य शरीरधारी भाव है।**[१८५]

शकुंतला शर्मा भी वाह्य एवं आन्तर के समन्वित रूप का समर्थन करती हुयी समन्वयवाद की धारण को पुष्ट करती है- **"सौन्दर्य के उन्मुक्त पंख जहाँ तितली की अनुरागिनी आत्मा का नहीं वरन केवल उसके अनुरंजित वाह्य कलेवर की रंगसाजी का ही प्रदर्शन करते हैं वहाँ वह हमारे चर्म चक्षुओं को आकृष्ट कर रह जाते हैं किन्तु सौन्दर्य जब अपने मधुप के से स्वर्ण पंख फैलाकर कसक**

के काँटों से विंध-विंध कर, अनुभूति की मादकता से पग कर, विश्व के पल्लव-पल्लव में छिपकर, आत्माभिव्यक्ति पूर्ण मधुमय जीवन गुंजार करता है तब वह हमारे नेत्रों तक ही नहीं, कानों तक ही नहीं, मर्मस्थल तक पहुँच जाता है।[१८६] डॉ० रामेश्वर लाल खंडेलवाल सौन्दर्य की सत्ता सामंजस्य में ही स्वीकारते हैं-"हृदय के रस या आत्मा के प्रकाश से अछूता सौन्दर्य पूर्ण चाकाचिवय युक्त होकर भी निर्जीव व जड़ है और वस्तु के आधार से स्वतन्त्र और मनोजगत में ही सूक्ष्म, अव्यक्त तथा अचिन्त्य रूप से शयन करने वाली वायवी सौन्दर्य भावना भी निष्फल। वास्तव में सौन्दर्य की सत्ता दोनों के समुचित सामंजस्य में है।[१८७]

डॉ० दशरथ ओझा भी समन्वय के सिद्धान्त पर बल देते हुये कहते हैं कि- "सौन्दर्य को हम केवल आँखों से नहीं देख सकते, उसके लिये मानसिक दृष्टि की भी आवश्यकता है। मन की अनेक तरंगें हैं। केवल बुद्धि और विचार ही से काम नहीं चल सकता, उनके साथ हार्दिक भावों को भी जोड़ना चाहिये। धर्मबुद्धि का भी बल लगाना चाहिये ऐसा करने से आध्यात्मिक दृष्टि खुल जाती है और कलाकार दिव्य दृष्टा हो जाता है। यहीं सौन्दर्य के साथ मंगल का मेल होता है। मंगलमय वस्तु सदा हमारा भला करती है अथवा कहना चाहिये जो वस्तु सदा हमारा भला करे वही मंगलमय है। वास्तव में मंगलमय वस्तु का रूप ही यह है कि वह हमारी आवश्यकता भी पूरी करे और देखने में भी सुन्दर हो। फूल जब अपनी वर्णगन्ध की प्रगल्भता को फल की मधुरता में परिणित करता है, तब उस परिणति में ही सौन्दर्य और मंगल का मेल होता है, मंगल की भाँति सत्य का भी सौन्दर्य से मेल होना चाहिये। जब सत्य और सुन्दर एक हो जाते हैं तब परम सौन्दर्य का दर्शन होता है।"[१८८]

डॉ० छोटेलाल दीक्षित भी समन्वय में ही सौन्दर्य को स्वीकार करते हैं- "सौन्दर्य को न पूर्ण वस्तुनिष्ठ कह सकते हैं और न पूर्ण व्यक्तिनिष्ठ या आत्मनिष्ठ ही। सौन्दर्य में दोनों पक्ष मिले जुले रहते हैं। सौन्दर्य विधान में जब वस्तु की सत्ता प्रधान होती है और भाव की गौण तो वह वस्तुनिष्ठ सौन्दर्य कहा जाता है, इसके विपरीत जब भाव की सत्ता की प्रधानता होती है और वस्तु की गौण तो वह आत्मनिष्ठ सौन्दर्य कहा जाता है अभिव्यंजना का सौन्दर्य प्रकारान्तर से अनभिव्यक्त भाव का ही सौन्दर्य है क्योंकि अनभिव्यक्त भाव ही अभिव्यंजना में मूर्त रूप धारण करता है।[१८९] डॉ० बी० एल० आत्रेय सौन्दर्य को विषय और विषयी के सम्बन्ध में मानते हैं। वे प्रकृति में भी वैसा ही सामंजस्य पाते हैं।[१९०] गुलाबराय का मत भी इसी दृष्टिकोण का पोषक कहा जा सकता है.........विषयीगतता सौन्दर्य और विषयगतता का नितान्त विरोध नहीं क्योंकि बहुत से लोगों का विषयीगत सौन्दर्य और सत्य विषयगत बन जाता है। गुलाब की लालिमा चाहे मानसिक भ्रम या आभास हो किन्तु वह सबका भ्रम है।[१९१] डॉ० लालता प्रसाद सक्सेना अन्तः और बाह्य सौन्दर्य के समन्वित रूप में ही सौन्दर्य को प्रतिष्ठित करते हैं

"आंतरिक एवं बाह्य सौन्दर्य परस्पर पूरक हैं - यदि आंतरिक सौन्दर्य आत्मा या दृष्टा है

तो वाह्य सौन्दर्य शरीर। जिस प्रकार आत्मा अथवा हृदय के अभाव में शरीर का अस्तित्व नहीं हो सकता उसी प्रकार आंतरिक सौन्दर्य के अभाव में वाह्य सौन्दर्य निष्प्राण शव सदृश है।[१६२] **सुरेन्द्रनाथ दास गुप्त** भी इसी भाव का समर्थन करते हुये कहते हैं- **अन्तः वाह्य की युगपत क्रिया के द्वारा ही सौन्दर्य की सृष्टि होती है इस बात में हमें तनिक भी संशय नहीं है।**[१६३]

सौन्दर्य भाव वाचक संज्ञा है। उसका अनुभव ही किया जा सकता है। किन्तु यह भी सत्य है कि अनुभवगम्य वस्तु के कुछ न कुछ माध्यम भी अपेक्षित हैं। यही कारण है कि पाश्चात्य और भारतीय विद्वानों ने इस सन्दर्भ में कतिपय सिद्धान्त अथवा दृष्टिकोण स्वीकार किये हैं जिनमें प्रमुख हैं-

१. आत्मवादी सिद्धान्त
२. वस्तुवादी सिद्धान्त
३. समन्वयवादी सिद्धान्त

आत्मवादी दृष्टिकोण के अन्तर्गत समूची सृष्टि में व्याप्त सौन्दर्य उस परम पिता परमेश्वर की प्रतिच्छाया मात्र है जो सर्वशक्तिमान, सर्वगुण सम्पन्न एवं सुन्दरतम है। उसकी कान्ति से ही सृष्टि की समूची जड़ और चेतन सत्ता सौन्दर्य से प्रोदभासित हो उठती है क्योंकि ईश्वर ही अखण्ड और परम प्रकाशवान है। अतएव चाहे रसानुभूति अथवा सौन्दर्यानुभूति का प्रश्न हो चाहे अभिव्यक्ति का प्रश्न, सहज, ऋजु और नैसर्गिक सौन्दर्य स्वयं अपनी आभा से अभिमण्डित रहता है। प्रकारान्तर से सौन्दर्य स्वयमेव आभरण है उसे अन्य अलंकारों की अपेक्षा प्रतीत नहीं होती। **वस्तुतः सौन्दर्य अनन्त और अक्षय है। उसकी अनन्त-अनन्त धारायें भिन्न-भिन्न रूपों में अभिव्यक्त होकर इस धरती को अभिभूत करती रहती हैं। सौन्दर्य के मूल में आनन्द का अधिष्ठान है। इसी सच्चे आनंद से अकलुष एवं अनिंद्य सौन्दर्य प्रादुर्भूत होता है जो मानवीय वासना से सर्वथा मुक्त होता है।**

वस्तुवादी यह स्वीकार करते हैं कि सौन्दर्य की संस्थिति विषय (वस्तु) में होती है, विषयी में नहीं। फलतः हमें वही वस्तु आकृष्ट कर सकेगी जिसमें स्वयं सुन्दरता की पूर्णता दृष्टिगोचर हो, इसके परे सौन्दर्य की प्रतीति असंभव है। **निस्सन्देह सौन्दर्य एक प्रकार का बोध है जो हमें सुन्दर वस्तु अथवा कृति को देखकर होता है। यदि वस्तु नहीं है तो सौन्दर्य भी नहीं है।** वाह्य रूपाकृति में सौन्दर्य प्रदर्शन करने वाले विचारकों ने सौन्दर्य को व्यक्ति, प्रकृति अथवा वस्तु के रूप, रंग, आकार, व्यवस्थिति, क्रम, एकान्विति, स्पष्टता, शुद्धता, उदात्तता, सम्मात्रा, सजीवता, अवयव-अवयवी सम्बन्ध, निश्चित विधान, सामंजस्य अनुपात आदि के गुण-धर्म में माना है।

इसके परे कतिपय विद्वान काम के प्रेरक भाव को ही सौन्दर्य मानते हैं क्योंकि सुन्दर वस्तु की प्रतीति इन्द्रियों के द्वारा ही संभाव्य होती है। मन, सुखानुभूति का अनुभव करता है, और आत्मा तक पहुँचते-पहुँचते यह 'महाभाव' दिव्य-सौन्दर्य के रूप में परिवर्तित हो उठता है। **डी.एच. लारेंस सुन्दरता को जीवन-ज्वाला का स्फुल्लिंग मानते हैं। सैक्स और सौन्दर्य दोनों एक ही चीज हैं-ज्वाला और अग्नि की तरह। सैक्स मूल और सौन्दर्य फूल है। अन्य मनोविज्ञानी भी इसी**

तथ्य को स्वीकार करते हैं।

उपर्युक्त सभी दृष्टिकोण सर्वथा एकांगी प्रतीत होते हैं। हाँ, इतना अवश्य स्वीकार्य होना चाहिये कि आत्मनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ सौन्दर्य का पृथक-पृथक कोई विशेष महत्व नहीं किन्तु यदि दोनों का समन्वय कर दिया जाये तो वह समस्या कुछ कुछ सुलझ भी सकती है और इसका एक सर्वमान्य सिद्धान्त प्रतिपादित किया जा सकता है। वह है एक मात्र समन्वयवादी दृष्टिकोण क्योंकि आत्मवादी सौन्दर्य की अवस्थिति अनुभूति में स्वीकार करते हैं और वस्तुवादी सौन्दर्य को मात्र वाह्य उपकरणों में ही मानते हैं। इसीलिये न तो सौन्दर्य अनुभूति में और न ही वस्तु में विद्यमान है वरन उसकी अवस्थिति दोनों की समन्विति में ही संभव है।

इस प्रकार **सौन्दर्य वाह्य और अन्तर में समाविष्ट है। वाह्य उपकरण हमारे अन्तःकरण में प्रसुप्त पूर्व संस्कार भावों को उद्दीप्त करके अपार आनन्द का वाचक बन जाता है। परिणाम स्वरूप विषय और विषयी का संगम सौन्दर्य का स्रोत बन जाता है। निकष रूप में कहा जा सकता है कि सौन्दर्य में नित्य नूतनता गतिशीलता, आकर्षण-क्षमता, अतृप्ति, प्रगाढ़ प्रीति-भावना एवं सम्पूर्णता परमावश्यक है। इन सबके अभाव में सौन्दर्य की परिकल्पना असंभव प्रतीत होती है।**

(ख) सौन्दर्य और औदात्य

सौन्दर्य की उक्त परिभाषाओं से सौन्दर्य का स्वरूप स्पष्ट हुआ है किन्तु इसे और बोधगम्य बनाने के लिये इसका उदात्त से भेद करना अपेक्षित प्रतीत होता है। किसी वस्तु के ज्ञान या बोध की एक प्रक्रिया यह भी है कि उसे अन्य समान वस्तुओं से पृथक किया जाये। उदात्त वस्तुतः सौन्दर्य का भेद या प्रकार है। कुछ विद्वान सुन्दर वस्तु के विराटत्व को उदात्त संज्ञा से अभिहित करते हैं। सुन्दर वस्तु में कोमलता, मसृणता इत्यादि गुणों के अतिरिक्त विराटता या महानता का होना सहज ही है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि जैसे लघु ललित कोमल एवं मसृण वस्तुएँ दर्शक को अपनी ओर आकृष्ट किया करती हैं अथवा वे हमारी सौन्दर्यानुभूति का आलम्बन बन जाती हैं, उसी प्रकार प्रमाता विशाल, महान या असीम वस्तुओं से भी अप्रभावित नहीं रह पाता। ये भी उसके अंदर विशेष भावबोध जाग्रत किया करती हैं। परिणति दोनों की एक होती है या हो सकती है किन्तु दोनों के प्रारंभिक प्रभावों में ईषत अन्तर परिलक्षित होता है। यही कारण है कि आचार्यों ने उदात्त की चर्चा सौन्दर्य के सन्दर्भ में करते हुये भी उसके अस्तित्व को स्वाधीन सा बताया है।

लोंजाइनस ने औदात्य को काव्य का महनीय तत्व कहा है। उसकी दृष्टि में यह काव्य का मूल स्रोत है। उदात्त को आधार बनाकर काव्य और कला की समीक्षा की जा सकती है। सौन्दर्य और औदात्य में सबसे बड़ा भेद यही है कि सुन्दर वस्तुओं की ओर मानव मन सहज ही आकृष्ट हो जाता है, जबकि उदात्त वस्तु के प्रभाव को प्रमाता प्रारम्भ में अस्वीकार करता है या उससे बचना चाहता

है। सौन्दर्य और औदात्य दोनों की परिणति आनंद या आत्मोल्लास में हुआ करती है, किन्तु दोनों के प्रारंभिक प्रभावों में किंचित भेद परिलक्षित होता है।

सौन्दर्यानुभूति में सुन्दर वस्तु प्रमाता की अन्तस्सत्ता पर विजय प्राप्त कर लेती है अर्थात वह दृष्टा को बिना किसी अवरोध के अपनी ओर खींच लेती है। दृष्टा की भावनाएं स्वीकारात्मक हो जाती हैं। मानव-मन वस्तु से मिलने के लिये आकुल हो उठता है। यह आकुलता प्रेम के उद्दाम स्रोत के रूप में फूट पड़ती है। उदात्त के सन्दर्भ में यह स्वीकृति इतनी सहज एवं तात्कालिक नहीं होती। दृश्य और दृष्टा के बीच कुछ अवरोध प्रतीत होता है। उदात्त वस्तु प्रमाता को प्रभावित तो करती है किन्तु उसे ग्रहण करने में वह स्वयं को असमर्थ पाता है। वह कभी-कभी इसके दुर्निवार प्रभाव से बचने का प्रयास करता हुआ दिखाई पड़ता है। प्रमाता की यह स्थिति उसकी अक्षमता की द्योतिका बन जाती है। इस स्थिति में विस्मय या आश्चर्य की चेतना विद्यमान रहती है। यह औदात्य की चरम परिणति नहीं कही जा सकती यद्यपि यह दशा भी प्रिय प्रतीत होती है। प्रिय प्रतीत होने वाले विस्मय या आश्चर्य के बाद एक दशा और आती है जिसमें दृश्य और दृष्टा के बीच का अवरोध तिरोहित हो जाता है। दृष्टा की आत्मा का विस्तार होने लगता है और वह स्वयं को आध्यात्मिक रूप से उन्नत अनुभव करने लगता है। प्रारंभ में प्रतीत होने वाला लघुता का भाव हवा हो जाता है। वह उसका नैकट्य प्राप्त कर उसका भोक्ता भी बन जाता है- **"हम अपनी सीमा में स्फोट कर उदात्त वस्तु तक जाते हैं तदनंतर निकटता स्थापित कर उदात्त वस्तु की महत्ता के भागीदार होते हैं।"**[१६४] तात्पर्य यह है कि आरंभ में मानवीय चेतना के प्रति सुन्दर वस्तु स्वीकारात्मक एवं उदात्त वस्तु अस्वीकारात्मक प्रतीत होती है। उदात्त से अप्रभावित रहना असंभव है। अस्वीकार या अवरोध के बंधन बाद में टूट जाते हैं और प्रमाता की चेतना असीम उल्लास में मग्न हो जाती है। इस प्रकार सुन्दर और उदात्त की अनुभूतियों में ईषत अन्तर ही दिखाई पड़ता है। लौंजाइनस ने कहा है कि **महान या उदात्त वस्तुएँ दृष्टा को ऐसे लोक में खींच ले जाती हैं जहाँ वह आनन्द ही आनन्द अनुभव करता है। वह स्व तथा पर के क्षुद्र बन्धनों से मुक्त होकर विशुद्धभावभूमि में पहुँच जाता है।** इसी को उसने कहा है कि **प्रमाता की चेतना पार्थिव लोक से ऊपर उठकर असीम आनन्द में डूब जाती है।**

उदात्त वस्तु से दृष्टा की चेतना इतनी अभिभूत हो जाती है कि उसे अन्य वस्तु का बोध ही नहीं रहता। भारतीय आचार्यों की शब्दावली में इसे **'वेद्यान्तर विगलित अवस्था'** कहा जा सकता है। तात्पर्य यह है कि उदात्त वस्तु दृष्टा की चेतना पर छा जाती है वह विस्मय पूर्ण आनंद या उल्लासमय विस्मय में डूबता-उतराता हुआ अलौकिक आनन्द के क्षेत्र में पहुँच जाता है। उसका उदात्त वस्तु के साथ तादात्म्य स्थापित हो जाता है। उदात्त के अनुभव से आत्मा स्वयं को उन्नत या महान अनुभव करती है अर्थात उदात्त वस्तुओं के प्रभाव से आत्मा का उन्नयन एवं विस्तार हुआ करता है। लौंजाइनस उदात्त वस्तुओं को सदा सबके लिये आनंद प्रद मानता है। उदात्त वस्तु में महानता अवश्य होती है। उसका एक लक्षण यह भी है कि प्रमाता में उसके दुर्निवार प्रभाव से

अलौकिक आनंद जाग्रत हो जाता है। विस्मय की चर्चा होने का अर्थ यह नही हैं कि उदात्त वस्तु प्रमाता को आश्चर्य या भय में डालकर रह जाती है। इसकी परिणति जब भी होगी, आनंद में ही होगी। **जब हम किसी महानतम व्यक्तित्व या विराटतम पदार्थ के संपर्क में आते हैं, तब प्रारंभ में आश्चर्य एवं भय की मिश्रित अनुभूति हमारे अंदर जाग उठती है किन्तु महानता या विराटता का धीरे-धीरे विभावन हो जाता है और वह हमारे हृदय से चिपक कर रह जाती है। तादात्म्य की यही दशा अथवा तल्लीनता की स्थिति प्रमाता की आनंदानुभूति कही जा सकती है।**

डॉ० कुमार विमल ने ठीक ही कहा है- **"अत: उदात्तभावन में पहले घात, तदुपरान्त आहलादन है।"**[१६५] कुछ विद्वान उदात्त को सौन्दर्य का विस्तार कहते हैं। उदात्त वस्तु में विराटता या पूर्णता की ऐसी अभिव्यक्ति हुआ करती है कि उसके चर्वण, ग्रहण या आस्वादन में प्रमाता की इन्द्रियाँ थोड़ी देर के लिये असमर्थ हो जाती हैं। उसकी धारणा शक्ति विखण्डित सी हो जाती है किन्तु वह इसके प्रभाव को रोक नहीं पाता। उसकी विखंडित शक्ति धीरे-धीरे एकतानता को प्राप्त कर लेती है। यह विराट वस्तु के प्रभाव से ही हुआ करता है। इसका अर्थ है कि औदात्य का निवास विराट, महान, विशाल, भीमकाय एवं भयंकर वस्तुओं में हुआ करता है जबकि सौन्दर्य की स्थिति लघु एवं कोमल इत्यादि पदार्थों में परिलक्षित होती है। **बेन जान्सन** ने लिखा है कि-**"छोटी-छोटी वस्तुओं में हम सौन्दर्य के दर्शन करते हैं और लघु भावों में पूर्णत्व की प्रतीति होती है।**[१६६]

उदात्त सौन्दर्य का वह प्रकार है जो दृष्टा को पहले पराभूत करता है और तदनंतर आनन्द में डुबो देता है। इसीलिये प्रत्येक सुन्दर वस्तु उदात्त नहीं कही जा सकती। आकाश का अनंत विस्तार या असीम सागर का गर्जन दृष्टा को अपनी भंयकरता से आक्रान्त कर लेता है। वह विस्मय में डूबने उतराने लगता है। तत्पश्चात पदार्थ या वस्तु की विशालता या महानता से अभिभूत होकर उसकी चेतना स्फीत हो जाती है। उसकी आत्मा ऊँचे उठकर महानता का स्वयं अनुभव करने लगती है। विराटता या महानता स्थूल न होकर सूक्ष्म भी हो सकती है। तात्पर्य यह है कि इसका सम्बन्ध कोरे आकार से नहीं है। **ब्रैडले** ने लिखा है कि- **"एक लघुकाय गौरैया में आत्मिक शक्ति के कारण अधिक औदात्य हो सकता है।"** तात्पर्य यह कि आकाश या समुद्र की उदात्तता का कारण उसका स्थूल विस्तार मात्र नहीं हो सकता। वस्तु की विराटता या महानता का अर्थ यह है कि उसमें प्रमाता को अभिभूत करने की शक्ति हो। इस प्रकार हम देखते हैं कि यह आवश्यक नहीं कि छोटी वस्तु सुन्दर और बड़ी वस्तु उदात्त ही हो। औदात्य के लिये असाधारण शक्ति एवं वेग, अलौकिक ऐश्वर्य एवं अनंत विस्तार आदि गुण आवश्यक हैं किन्तु इन सबमें प्रमुख है वस्तु की आंतरिक महानता, जो दृष्टा को विस्मय में डालती है, उसकी चेतना को अभिभूत करती है और अंत में असीम आनंद की भावभूमि में प्रतिष्ठत करती है। उदात्त की महानता के पारस स्पर्श से दृष्टा की आत्मा का उत्कर्ष होता है इस प्रकार उदात्त वस्तु में शक्ति के विविध रूप और स्तर दिखाई पड़ सकते हैं- शारीरिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक आदि। आध्यात्मिक शक्ति से प्रेरित कार्य अपनी असाधारणता के कारण श्रेष्ठ

अनुभूत होने लगता है और यह उदात्त भावना का स्रोत बन जाता है। **औदात्य किसी एक गुण में नहीं गुणों के समुच्चय में हुआ करता है। एकाकी गुण दृष्टा को प्रभावित कर सकता है किन्तु अभिभूत नहीं। उदात्त वस्तु हमें अभिभूत किये बिना नहीं रह सकती। उसकी सबसे बड़ी पहचान यही है।**

सौन्दर्य की भाँति औदात्य, वस्तु के रूप या आकार तक सीमित न होकर कर्म, शील एवं भाव तक विस्तीर्ण रहता है। किसी चरित नायक के कर्म उदात्त हो सकते हैं। कर्मों के प्रेरक भाव हुआ करते हैं। उदात्त कर्मों के पीछे उदात्त भाव वैसे ही झाँकते रहते हैं जैसे कैलाश श्रृंगों में शिव-पार्वती का व्यक्तित्व प्रतिविम्बित रहता है। उदात्त वृत्तियों से प्रेरित कर्म व्यक्ति के उदात्त शील या चरित्र के प्रतिष्ठापक कहे जा सकते हैं। जब हम किसी व्यक्ति के शील या चरित्र में असाधारण या मानवीय क्षमता से परे गुण देखते हैं, तब हमारे अन्दर विस्मय पूर्ण उल्लास की तरंगें आन्दोलित होने लगती हैं। **शुक्ल जी** का **'आश्चर्य पूर्ण प्रसादन'**[१६७] कुछ-कुछ ऐसा ही है। उदात्त का सामान्य या शाब्दिक अर्थ उत्कृष्ट अथवा ऊँचा होता है। जहाँ भी मानवीय स्तर से ऊपर की विभूतियाँ दिखाई पड़ जाती हैं, वहाँ दृष्टा दाँतों तले उंगली दबाने लगता है। उसका यह विस्मय ही विभावित होकर आनंद में परिणित हो जाता है। किसी व्यक्ति में अपने से अधिक गुण दिखाई देने पर श्रद्धावृत्ति जाग्रत होती है जैसे तुलसी के राम या महात्मा गांधी के प्रति लोगों में श्रद्धा का भाव विस्मय या आश्चर्य ग्रहण कर लेता है। उदाहरणार्थ हनुमान का समुद्रोल्लंघन या नल-नील द्वारा समुद्र सेतु का निर्माण विस्मयकारी कार्य कहे जा सकते हैं श्रद्धाजनक नहीं। जब भगवान कृष्ण, अर्जुन को या तुलसी के राम, माता कौशल्या को अपने विराट रूप के दर्शन कराते हैं तब अर्जुन और कौशल्या दोनों ही पात्र विस्मय में मग्न दिखाई पड़ते हैं। अर्जुन और कौशल्या दोनों ही रोमांचित हो जाते हैं। उनकी वाणी अवरुद्ध होने लगती है एवं शरीर कांपने लगता है। इन अनुभावों के द्वारा भी उदात्त तत्व की अभिव्यक्ति हुआ करती है। इससे विदित होता है कि **उदात्त वस्तु या व्यक्ति में अद्भुतता होनी अनिवार्य है। बिना वैचित्र्य के उदात्त तत्व अकल्पनीय हो उठता है। किन्तु यह उल्लेख अनावश्यक न होगा कि यह वैचित्र्य सनक या उन्मत्तता का पर्याय नहीं बन सकता।** वैचित्र्य किसी वाह्य एवं आन्तर व्यक्तित्व में से किसी में हो सकता है। यह भी विशेष रूप से ध्यातव्य है कि यह वैचित्र्य अमंगलकारी नहीं होना चाहिये। **आचार्य शुक्ल** का **"आश्चर्य पूर्ण अवसादन"**[१६८] इसकी परिधि में नहीं आ सकता क्योंकि उदात्त तत्व के प्रभाव की परिणति प्रमाता में अवसाद रूप में नहीं, आनंद में ही होनी चाहिये।

औदात्य को सदैव भय पर आधृत मानना भूल है। भय, उदात्त का विभेदक गुण है किन्तु उदात्त वस्तुएँ ग्राहक को जिस रूप में अभिभूत करती हैं वह सदैव भय की ही अवस्था हुआ करती है। उदात्त की परिणति आनंद या उल्लास में होती है। कोरा भय, आनंद या उल्लास का आधार नहीं हो सकता। भय की अनुभूति उदात्त की सीमा में आते ही इस प्रकार परिवर्तित हो जाती है कि हम

अपनी कल्पना में उदात्त वस्तु से एकाकार हो उठते हैं। यह दशा प्रमाता की आत्मा या चेतना के विस्तारण का कारण बन जाती है। औदात्य में आवेग होना आवश्यक है किन्तु दोनों को एक समझना भूल है। **वर्डसवर्थ** ने तो काव्य मात्र को **'आवेग प्रसूत'** कहा है। आवेग को उदात्त कहने का तात्पर्य यह होगा कि प्रत्येक काव्य या कला उदात्त की अभिव्यंजिका बन जाएगी। आवेग मन की ऊर्जा है। लौंजाइनस मन की ऊर्जा को औदात्य का आवश्यक गुण मानता है। इस प्रकार आवेग औदात्य का प्रेरक होता है किन्तु स्वयं उदात्त तत्व नहीं। आवेग की भी दो श्रेणियां हुआ करती हैं। एक उत्साह आदि जिससे आत्मा का उन्नयन होता है और दूसरे भय, शोक, प्रेम, भक्ति एवं वात्सल्य इत्यादि भाव जो **लौंजाइनस** के अनुसार **'मानवात्मा को हीनतर स्थिति में ले जाने वाले आवेग हैं।**[१९९] शोक, भय और प्रेम इत्यादि से ग्रस्त आश्रय में आत्मा की ऊर्जा का अभाव होता है। इसी कारण उसकी आत्मा हीनता से ग्रस्त हो जाती है। इन भावों से आत्मा का अपकर्ष होता है जब कि उदात्त वस्तु आत्मा के उत्कर्ष का कारण बनती है। **लौंजाइनस इसीलिये आत्मा के उत्कर्ष में सहायक होने वाले आवेगों को ही उदात्त की परिधि में सम्मिलित करता है।**

वह महान धारणाओं की क्षमता तथा उद्दाम और प्रेरणा प्रसूत आवेग को उदात्त तत्व का स्रोत मानता है। उसी सर्जक की कृति में उदात्त तत्व की अभिव्यक्ति हो सकती है जिसका व्यक्तित्व उदात्त या महान रहा हो। इस प्रकार **लौंजाइनस रचना प्रक्रिया में रचनाकार के व्यक्तित्व के योगदान को स्वीकार करता है।**[२००] **महान शब्द उन्हीं के मुँह से निसृत होते हैं जिनके विचार गहन और गंभीर हों।**[२०१] **"सच्चे वाग्मी को निश्चय ही क्षुद्र और हीनता भावों से मुक्त होना चाहिये क्योंकि यह सब संभव नहीं है कि जीवन भर क्षुद्र उद्देश्यों और विचारों में ग्रस्त व्यक्ति कोई स्तुत्य एवं अमर रचना कर सके।"**[२०२]

लोंजाइनस के इस कथन को स्पष्ट करने के लिये गोस्वामी तुलसीदास के व्यक्तित्व को ही उदाहरण के रूप में ग्रहण किया जा सकता है। उदात्त भाव, उदात्त विचार एवं उदात्त कर्म उसी साहित्यकार के साहित्य में अभिव्यक्त हो सकते हैं, जिसका निजी व्यक्तित्व स्वयं महान रहा हो। वासना के पंक में पड़े हुये व्यक्ति से रामचरित मानस की सर्जना की अपेक्षा नहीं की जा सकती। उसके लिये तुलसी जैसा महान व्यक्तित्व अपेक्षित है। उदात्त तत्व की निर्झरिणी महान व्यक्ति के हिमगिरि से ही निःसृत हो सकती है। उदात्त रचना के लिये असाधारण प्रतिभा की आवश्यकता होती है। असामान्य प्रतिभा से सम्पन्न साहित्यकार ही महान भावों एवं विचारों को वाणी प्रदान कर सकता है। उदात्त तत्व मूलतः इन्हीं में रहा करता है। लौंजाइनस ने उदात्त तत्व के जो पाँच स्रोत बताए हैं उनमें उक्त दो स्रोत कृति के आन्तरिक पक्ष से सम्बन्धित हैं। उदात्त धारणायें, उद्दाम आवेग एवं उत्कृष्ट विचार रचना के अनुभूति पक्ष के संघटक कहे जा सकते हैं। लौंजाइनस ने इसके अतिरिक्त उदात्त कृति के अभिव्यक्ति या कला पक्ष की ओर भी संकेत किया है। उदात्त तत्व की अभिव्यक्ति के लिये भाषा-शैली का उदात्त होना आवश्यक है। अलंकारों की समुचित योजना, उत्कृष्ट भाषा एवं

उपर्युक्त रचनाविधान से उदात्त तत्व की अभिव्यक्ति होती है। इस प्रकार **उदात्त तत्व रचना के दोनों पक्षों में समाया रहता है। उसे पुष्प में गंध या तिलों में तेल कहा जा सकता है।** दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि उदात्तता अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों पक्षों में हुआ करती है। उदात्त या महान शब्द उन्हीं रचयिताओं के कण्ठ से फूट सकते हैं जिन के विचार गंभीर हों, जिनकी धारणाएँ महान हों, जिनके भाव उदात्त हों। जब उदात्त भावों विचारों एवं धारणाओं की अभिव्यक्ति उदात्त भाषा-शैली के द्वारा होती है, तब पाठक या श्रोता उससे अप्रभावित नहीं रह सकता। उसकी समग्र चेतना उदात्त कृति के दोनों पक्षों से अभिभूत हो जाती है। उसका व्यक्तित्व पार्थिव भूमि से ऊपर उठकर किसी अन्य लोक में पहुँच जाता है। यही दशा उदात्त चित्रकला, मूर्तिकला, वास्तुकला तथा संगीत एवं नृत्य के माध्यम से भी उपलब्ध की जा सकती है। **शिव का ताण्डव, मिस्त्र के पिरामिड, लाओकून की मूर्ति इत्यादि उदात्त की अनुभूति जाग्रत करते हैं।** इसी प्रकार **प्रलय का स्थूल दृश्य**[२०३] अथवा कलागत रूप औदात्य के भावबोध को जगाने में समर्थ होता है।

समुचित अलंकार योजना से औदात्य की अभिव्यक्ति सहज प्रतीत होने लगती है। देश, काल, पात्र एवं परिस्थिति के अनुसार किये गये अलंकार विधान से उदात्त तत्व अभिव्यक्त होता है। समुचित अलंकार विधान उदात्त तत्व का आधार प्रदान करता है। उदात्त की अभिव्यक्ति में प्रत्येक अलंकार सहायक नहीं हो सकता। लोंजाइनस ने अतिशय मूलक अलंकारों को उदात्त का स्रोत बताया है। उसके अनुसार **विस्तारण, शपथोक्ति, प्रश्नालंकार, विपर्यय, पुनरावृत्ति, छिन्नवाक्य सार, पर्यायोक्ति, रूपक तथा अतिशयोक्ति इत्यादि अलंकारों में उदात्तता विद्यमान रहती है।** इनमें से कुछ ही अलंकार भारतीय काव्य, विशेषकर हिन्दी में व्यवहृत हुये हैं। पर्यायोक्ति, रूपक तथा अतिशयोक्ति का प्रयोग तुलसी साहित्य में अधिक मिल सकता है अन्य अलंकारों की छाया मिल जाए तो भी बहुत है।

विस्तारण के प्रयोग से किसी विषय के सब अंगों और उसकी इकाइयों का समुच्चय उपस्थित हो जाता है। इस समुच्चय से कथ्य में शक्ति समाविष्ट हो जाती है। शपथोक्ति अलंकार में आश्रय शपथ के माध्यम से आवेग को व्यक्त करता है। इस अलंकार के प्रयोग से भावनाओं में ओजस्विता की वृद्धि होती है अथवा यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि ओजस्वी भावों के सन्दर्भ में इस अलंकार का व्यवहार समीचीन होता है। प्रश्नालंकार से कथन में मार्मिकता एवं प्रभविष्णुता का संचार होता है। प्रश्नों की त्वरित परंपरा से भाषा उत्तेजित प्रतीत होने लगती है। इसी प्रकार अन्य अलंकारों का प्रयोग भाषा में उदात्त तत्व की अभिव्यक्ति में सहायक होता है। लिंग, वचन एवं पुरुष इत्यादि का सहसा परिवर्तन भी अभिव्यक्ति को विस्मयकारिणी बना देता है। यह कार्य विपर्यय अलंकार की सहायता से किया जाता है। पुनरावृत्ति में आवेग संकुलता रहती है। छिन्न वाक्य में आवेग के कारण वाक्यों का क्रम अस्त-व्यस्त हो जाता है। वक्ता तत्काल अन्य वाक्य का आश्रय लेकर क्रम को आगे बढ़ाता है। इस प्रकार की आकस्मिकता से भाषा का रूप कुछ उदात्त हो जाता

है। प्रत्यक्षीकरण अलंकार में विषय के साक्षात करने की क्षमता होती है। इससे वाक्य जीवन्त प्रतीत होने लगता है। तात्पर्य यह कि लौंजाइनस द्वारा इंगित अलंकारों के प्रयोग से भाषा आवेगमयी हो जाती है। आवेग, उदात्त का प्रेरक या आधार कहा ही जा चुका है। शक्तिशाली वेग से उच्छलित आवेग अपने प्रवाह में अनेकानेक रूपकों की श्रंखला स्थापित कर लेता है। आवेग को दीप्त करने में रूपक का महत्वपूर्ण योगदान रहा करता है। इसी प्रकार अतिशयोक्ति के व्यवहार से भाषा ऊर्जस्विनी हो जाती है। इन सबके साथ शर्त यह है कि प्रत्येक अलंकार का प्रयोग उचित हो अर्थात **''औचित्य पर सर्वाधिक बल दिया जाना चाहिए।**[२०४] अलंकारों का प्रयोग सायास न होकर अनायास या सहज रूप में होना चाहिये। सायास प्रयोग से भाषा की शक्ति बिखर जाती है। अनायास व्यवहार से ही आवेग स्फुरित होता है। कृति को उदात्त बनाने के लिये अलंकार योजना सहज साधन स्वरूपा एवं मर्यादित होनी चाहिये।

उत्कृष्ट भाषा प्रयोग के लिये शब्द तथा वाक्य के निश्चित क्रम विधान पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिये। इसका संबंध श्रोता की भावनाओं से हुआ करता है। भाषा के व्यवहार के सम्बन्ध में भी लेखक को औचित्य निर्वाह पर बल देना चाहिये। कोरी शब्दावली प्रभावी नहीं होती अपितु विषयानुकूल गरिमामयी शब्दावली का प्रभाव दुर्निवार होता है। छोटी बात के लिए बड़े शब्द का प्रयोग अनुपयुक्त होता है। कभी-कभी सामान्य संदर्भ, साधारण विषय या सीधी-साधी परिस्थिति की अभिव्यक्ति जितने प्रभावी रूप में सीधे-सादे कथन से हो सकती है, उतनी भव्य शब्दों के प्रयोग से नहीं अर्थात् गरिमापूर्ण शब्दावली का व्यवहार महान विषयों के लिये ही होना चाहिये, अन्यथा अभिव्यक्ति उदात्तता से वंचित हो जाएगी। उपयुक्त पदावली के व्यवहार से रचना में जीवन्तता आ जाती है। **''रचना में सुन्दर मूर्तियों की भाँति भव्यता, सौन्दर्य, मार्दव, गरिमा, ओज, शक्ति तथा अन्य श्रेष्ठ गुणों का आविर्भाव और मृतप्राय वस्तुएँ जीवित हो उठती है।**[२०५]

रचना के विभिन्न तत्वों में सामंजस्य होना अनिवार्य है। इसके अभाव में उदात्त की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। पाठक या श्रोता को अभिभूत करने के लिए भाषा में ऊर्जस्विता के साथ रचना संघटन भी आवश्यक है। साहित्यकार का कर्तव्य कृति के किसी एक तत्व से नहीं, अपितु रचना-विधान के संघटन से प्रस्फुटित होता है। औदात्य रचना के सभी तत्वों के समायोजन या समन्वय से स्फुटित होता है। लौंजाइनस, रचना विधान से यही अर्थ ग्रहण करता हुआ प्रतीत होता है। कृति में निहित गरिमामय तत्वों में मेल होना चाहिए। एक तत्व दूसरे से कटा हुआ प्रतीत न हो। उनकी मैत्री ही उदात्त तत्व की अभिव्यक्ति में सहायक होती है- **''ये सामंजस्य की श्रंखला में बँधकर अपनी वर्तुलता के कारण ही कर्णमधुर हो जाते हैं।**[२०६] तात्पर्य यह है कि पाठक या श्रोता किसी रचना के एक-आध तत्व से प्रभावित नहीं होता अपितु समस्त तत्व मिलकर उसे प्रभावित करते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि वह रचना की समग्रता से प्रभावित होता है, किसी एक इकाई से नहीं। विविध घटकों की सामंजस्यपूर्ण समग्रता ही उदात्त तत्व का स्रोत बन सकती है।

लौंजाइनस भव्यता के संचार के लिये भाषा की चित्रोपमता पर भी बल देता है। कवि-कल्पना को विम्ब विधायिका शक्ति कहा जाता है। विम्बों के माध्यम से भाषा में गरिमा तथा शक्ति का आविर्भाव हो उठता है। उचित विम्ब विधान से भावक के आवेग उच्छलित होने लगते और वह कवि द्वारा खड़े किये गये विम्बों या चित्रों से अभिभूत हो जाता है। **"तात्पर्य यह है कि कवि ऐसे सशक्त भव्य एवं गरिमापूर्ण विम्ब प्रस्तुत करता है कि पाठक उनसे अभिभूत हुए बिना नहीं रह पाता। विम्बों के उचित प्रयोग से भाषा मार्मिक, प्रभविष्णु एवं उदात्त हो जाती है।"**[२०७]

इस प्रकार उदात्त भाषा शैली के प्रयोग से आत्मा का उन्नयन तथा उत्तोलन होता है। असाधारण अभिव्यक्ति उदात्त की सर्जना करने में सहायक होती है। **लौंजाइनस कौशलपूर्ण वाग्मिता में उदात्त की संभावना को मानते हैं।**[२०८] भाषा शैली का प्रयोग प्रतिभा सम्पन्न कवि ही कर सकते हैं अर्थात जैसे उदात्त विचारों एवं भावों को धारण करने की शक्ति हर एक कवि में नहीं होती वैसे ही उदात्त भाषा-शैली का प्रयोग भी प्रत्येक कवि नहीं कर पाता। इस सबके लिये असाधारण प्रतिभा आवश्यक है। उदात्त की अभिव्यक्ति के लिये कवि को भाव एवं भाषा के प्रसंगानुकूल व्यवहार पर ध्यान के केन्द्रित करना पड़ता है। उदात्त भावों की अभिव्यक्ति के समय ही गरिमापूर्ण पदावली, भव्य अलंकार योजना एवं उदात्त विम्बों की सर्जना आकर्षक प्रतीत होती है। निष्कर्ष यह है कि भाषा शैली का प्रयोग विषय, भाव, अनुभूति, विचार, प्रसंग, देश, काल, पात्र एवं परिस्थिति के अनुसार होना चाहिये। प्रत्येक शब्द और भाव को उदात्त नहीं कहा जा सकता। सुन्दर और उदात्त में भेद करना ही पड़ेगा। कृष्ण का चीर हरण करने वाला या वंशीवादक रूप सुन्दर कहा जायेगा जबकि कालियनाग के फणों पर नृत्य करने वाले कृष्ण का रूप भव्य या उदात्त की सीमा में आएगा। गुलाब का फूल सुन्दर और विशाल वटवृक्ष उदात्त कहा जाना चाहिये।

वही काव्य या कलाकृति उदात्त कही जा सकती है जिसमें पर्याप्त विस्तार या विभावन के स्तंभन की शक्ति हो। उदात्त तत्व अतीन्द्रिय हुआ करता है। यह इतना महान या भव्य होता है कि इन्द्रियाँ उसे सहसा ग्रहण नहीं कर पातीं जबकि वे सुन्दर या ललित के साथ सहज ही तालमेल बिठा लेती हैं। आश्रय की इन्द्रियों और आलंबन के बीच रागात्मक निर्वाह सौन्दर्य के क्षेत्र में हुआ करता है जबकि उदात्त की अनुभूति में इसमें कुछ व्यवधान उपस्थित हो जाता है। उदात्त विशाल होकर भी सूक्ष्म में समाहित होने की शक्ति रखता है। सुन्दर के लिये सर्वदा आकृति विधान आवश्यक है जबकि उदात्त की अभिव्यक्ति आकृति हीनता और विकृति की स्थिति में भी हो सकती है। उदात्त सुन्दर की अपेक्षा अधिक आत्मनिष्ठ होता है।

सारांश यह है कि उदात्त तत्व वस्तु विशेष में असीम की अपूर्ण अभिव्यक्ति है। यह असीम निस्सीम का बोधक होता है। यह प्रत्यक्षीकरण के बाद मानव हृदय पर अपनी असीमता की छाप छोड़ता है और साथ ही उसे अपनी ससीमता का बोध कराता है। ससीमता का यह बोध प्राथमिक अवस्था में होता है। अनुभूति जैसे-जैसे गहराती जाती है या सान्द्र होती जाती है वैसे-वैसे मानव

हृदय स्वयं को पहले की अपेक्षा अधिक महान अनुभव करता है। वह किंचित ऊँचे धरातल पर आसीन दिखाई पड़ने लगता है। **जहाँ उत्कृष्ट संवेग की सशक्त अनुभूति हो, वहाँ उदात्त की उपस्थिति ही समझनी चाहिये। यह उदात्त उन्मेषपूर्ण संवेग की चूड़ान्त घनीभूत अवस्था है।**[२०९]

साहित्य में सत्यं शिवं और सुन्दरम् का रूप प्रतिष्ठाापित किया गया है। वास्तव में यह तीनों तत्व साहित्य को उत्कृष्टता की ओर अग्रसर करते हैं। जो तत्व सुन्दर को उदात्तता की ओर ले जाता है उसमें उत्कृष्टता का बोध होने लगता है और इस प्रकार कोई हेय, असुन्दर और कुरूप वस्तु भी साहित्यकार की हृदय की विशालता और लोकातिशयता के कारण, सुन्दरतम के रूप में चित्रित हो उठती है। सुन्दर में जब पवित्रता का सम्मिलन हो जाता है तो उसी को उदात्त संज्ञा से अभिहित किया जाता है। **डॉ० कुमार विमल** के अनुसार - **"उदात्त (Sublime) वह सौन्दर्य है जो आश्रय को पहले पराभूत और तदनन्तर आकर्षित करता है जैसे गरजते हुये सागर को देखकर तटस्थ व्यक्ति पहले भयंकरता से आक्रान्त होकर या विस्मय भाव से हक्का-बक्का हो जाता है, किन्तु तत्पश्चात उसकी विशालता से अभिभूत होकर वह चिति स्फीत हो जाता है। अतः उदात्त भावन में पहले घात तदुपरान्त आहलादन है। इस पूर्णावस्था के कारण ही कुछ विचारक उदात्त और सुन्दर को एकोटिक नहीं मानते हैं। कभी-कभी कुरूप भी अपनी विशालता और लोकातिशयता के कारण उदात्त बन जाता है (शिलर इसी मत के समर्थक थे)। सुन्दर और उदात्त में दूसरा अंतर यह है कि सुन्दर जहाँ रुचिबोध से सम्बन्धित है, वहाँ उदात्त बुद्धि संवेग (Emotion of Intellegence) से। तीसरी बात यह है कि सुन्दर के लिये सर्वदा आकृति विधान आवश्यक है जबकि उदात्त के लिये आकृति हीनता और विकृति समरूप श्रेयस्कर हैं। चौथा अन्तर यह है कि उदात्त सुन्दर की अपेक्षा अधिक आत्मनिष्ठ है। फलतः उसमें आश्रय पक्ष की दृष्टि से मानस चाप (Mental Pressure) अधिक हैं। कभी-कभी उदात्त वस्तु विशेष में पूर्णता का ऐसा भीमकाय अथवा विराट निदर्शन प्रस्तुत करता है कि उसके आस्वादन चर्वण या ग्रहण में आश्रय की इन्द्रियाँ असमर्थ सिद्ध होती हैं और यदा-कदा वह प्रकृति की शक्ति सत्ता का ऐसा विस्फोटक विभ्राट उपस्थित करता है कि आश्रय की धारणा शक्ति विखंडित हो जाती है इसलिये कुछ लोग उदात्त को सौन्दर्य का विस्तार एक्सटेंशन आव ब्यूटी कहते हैं।**[२१०]

अतः जब कोई कलाकार उस असीम एवं निस्सीम सत्ता का अनुभव करके वर्णन करना चाहता है तो वह अस्पष्ट होते हुये भी अनुभूति की तीव्रता के कारण स्वतः प्रस्फुटित हो उठती है। इस तीव्र उत्प्रेरणा को उदात्त तत्व के अन्तर्गत परिगणित किया जाता है। पूर्ण परात्पर ब्रह्म की अभिव्यक्ति चूँकि हो ही नहीं सकती इसलिये पूर्ण की अपूर्ण अभिव्यक्ति ही कला का संस्पर्श पाकर उदात्त बन जाती है। **उदात्त तत्व में स्पष्टतया दो तत्व दृष्टिगोचर होते हैं, प्रथम मानव हृदय पर असीम शक्ति का प्रभाव और द्वितीय मनुष्य की ससीमता का बोध। अनुभूति के क्षणों में जब संवेग तीव्र से तीव्रतर और तीव्रतम हो उठते हैं तो इस सशक्त अनुभूति को उदात्त की संज्ञा दी जाती है।**

(ग) सौन्दर्य के विविध रूप

१. पार्थिव सौन्दर्य

पार्थिव का शाब्दिक अर्थ पृथ्वी सम्बन्धी है अर्थात भूतल पर दृश्यमान सुन्दरता को पार्थिव सौन्दर्य की संज्ञा प्रदान की जाती है। यह क्षण-क्षण परिवर्तित प्रतीत होता है- **"पल-पल परिवर्तित प्रकृति वेष"।** अखण्ड-अक्षय सौन्दर्य का स्रोत अव्यक्त अगोचर सत्ता ही है। अव्यक्त, अखण्ड, निराकार सत्ता ही पार्थिव सौन्दर्य के विविध रूपों में परिलक्षित होती है। लौकिक सौन्दर्य दिव्य अलौकिक सौन्दर्य का प्रतीक है। इसके माध्यम से दृष्टा को अक्षय सौन्दर्य का आभास प्राप्त होता है। पार्थिव सौन्दर्य परम सत्ता का रूप होने के कारण शाश्वत भी कहा जा सकता है। रूप बनते-मिटते रहते हैं किन्तु उनका सर्वथा क्षय नहीं होता। जगत परम सत्ता या ब्रह्म का आविर्भाव तथा प्रलय उसका तिरोभाव है। अभिव्यक्ति-अनभिव्यक्ति का चक्र कभी रुकता नहीं है। इसी अर्थ में जागतिक सौन्दर्य को भी शाश्वत कहा जा सकता है। परिवर्तनशील होने के कारण इसे क्षणभंगुर कहना भी उचित है। दोनों में मूलतः कोई विरोध नहीं है। उन्नतचेता लोगों को दोनों ही स्थितियों सृष्टि और प्रलय में सौन्दर्य की अनुभूति हुआ करती है।

संसार क्षणभंगुर है। इसकी सभी वस्तुएँ अस्थायी और नाशवान हैं, मृण्मय हैं, असार हैं। मृत्पिंड कभी अमर नहीं हो सकता। यही कारण है कि पार्थिव सौन्दर्य सदैव ससीम होता है असीम नहीं। पार्थिव सौंन्दर्य वृन्त पर खिले हुये पुष्प की भाँति म्रियमाण हो जाता है। जिस प्रकार सरोवर में उठती हुई लोल लहरें क्षण मात्र में अपने अस्तित्व का सर्वनाश कर लेती हैं। ठीक उसी प्रकार पार्थिव सौन्दर्य भी क्षणे-क्षणे क्षीण होता रहता है।

पार्थिव सौन्दर्य वस्तुतः मानवीय सौन्दर्य का ही पर्याय है। फिर भी जैसे 'जल' और 'पानी' शब्द में एक सूक्ष्म पार्थक्य भाव विद्यमान है। जल में वैशिष्ट्य और पानी में सामान्य भाव की समाविष्टि है। उसी प्रकार पार्थिव सौन्दर्य के अन्तर्गत पृथ्वी से सम्बन्धित चाहे वे मानवीय हों चाहे प्राकृतिक, सभी उपकरण पार्थिव की संज्ञा से अभिहित किए जाते हैं। **क्षीणता का भाव पार्थिव सौन्दर्य का मूल है। इसमें सर्वत्र अवसान का भय विद्यमान रहता है। मुकुलित कलिका का प्रसून बनकर प्रस्फुटित होना उसका स्वाभाविक क्रमिक विकास है। पुनश्च धरा खण्ड को सुवासित करते हुये झड़ जाना उसका धर्म भी है। क्षय होना पार्थिव सौन्दर्य की अनिवार्य नियति है।**

इस प्रकार वसुन्धरा में समूची वस्तुएँ पार्थिवता के कारण क्षण भंगुर हैं। समूची सृष्टि और अनेकानेक ब्रह्माण्डों का भी तिरोभाव होता है। जो आज है वह कल नहीं। पार्थिव सौन्दर्य अविनश्वर न होकर क्षण प्रभा की भाँति क्षणिक और नश्वर है। अथ और इति, आदि और अन्त, उत्थान और पतन, उदय और अस्त, रात्रि और प्रभात इसी प्रकार के द्वन्द्व हैं, युग्म हैं, जिनका एक छोर ही दूसरा

छोर बनकर उसके नाश का कारण बनता है। गगन-विचुम्बित ऊँचे-ऊँचे सौध काल-कवलित होकर टीले मात्र बनकर अपने स्वर्णिम अतीत पर अश्रु विगलित करते हैं। तात्पर्य यह कि प्रादुर्भाव के साथ ही तिरोभाव का युग्म छिपा है। सच है एक के बिना दूसरे युग्म का कोई अस्तित्व भी नहीं है। बाल्यावस्था, युवावस्था में परिवर्तित होकर प्रौढ़ावस्था की ओर अग्रसर होती है और अन्त में जीव, मृत्यु का आलिंगन कर पुनः जन्म लेने का उपक्रम करता है।

इस प्रकार जो सौन्दर्य चिरन्तन, शाश्वत और स्थायी न हो उसी को अचिरन्तन, अशाश्वत एवं अस्थायी कहा जायेगा। यही सौन्दर्य वस्तुतः पार्थिव सौन्दर्य की संज्ञा से अभिहित किया जाता है।

विश्लेषण की सुविधा के लिये पार्थिव सौन्दर्य को परिवर्तनशील तथा दिव्य सुषमा को अपरिवर्तनशील कहना उचित होगा। पार्थिव सौन्दर्य मूलतः दो रूपों में परिलक्षित होता है-

(अ) मानवीय सौन्दर्य

(ब) प्रकृति सौन्दर्य

(अ) मानवीय सौन्दर्य

सौन्दर्य वैसे तो अखण्ड वस्तु है किन्तु उसकी अनुभूति माप और परिमाण के ज्ञान हेतु आवश्यक है कि उसे प्रथमतः भौतिक रूप में देखा-परखा जाये। सौन्दर्य की वास्तविक सत्ता अगोचर है किन्तु सामान्य प्राणी उसका अनुभव प्रत्यक्षतः नहीं कर पाता। वहाँ तक पहुँचने का साधन पार्थिव सौन्दर्य ही है। सूफियों का मार्ग लौकिक सोपान के द्वारा पारलौकिक सत्ता की उपलब्धि मानवीय हृदय के लिए सहज मार्ग कहा जा सकता है। मानव परमात्मा की सर्वोत्तम रचना कहा गया है। **बाइबिल** कहता है कि ईश्वर ने मनुष्य को अपने रूप में चित्रित किया है। मानवीय सौन्दर्य आकर्षण का सबलतम केन्द्र प्रतीत होता है। **'महाभारत'** में भी मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ प्राणी की संज्ञा प्रदान की गई है।

मानवीय-सौन्दर्य में मानव विशेष के व्यक्तित्व का आकलन किया जाता है। बाह्य और आभ्यान्तरिक गुणों का समुच्चय इसी के अन्तर्गत परिगणित किया जाता है। पुरुष सौन्दर्य, नारी सौन्दर्य एवं बाल सौन्दर्य इसी के अन्यान्य उपभेद हैं।

दीप्त मुख-मण्डल, सबल और सुदढ़ वृषभ-स्कन्ध, प्रशस्त वक्ष, आकर्षक वर्ण, सुन्दर नासिका, नेत्र और अधर एवं मनोहारी केश राशि आदि का बाह्य व्यक्तित्व को उभारने में विशिष्ट योगदान है। इन्हें देखकर ही कोई रमणी प्रथमतः पुरुष के मानवीय सौन्दर्य पर मुग्ध होती है। इसी प्रकार पुरुष भी नारी की कृष्ण-कुन्तल केशराशि, शशि-मुख, आकर्षक भ्रू-भंगिमा, अमिय, हलाहल एवं मदभरे कजरारे नैन, मधुर बयन, कुन्द कली एवं मोतियों की भाँति अवदात दन्तपंक्ति, कमल-पाँखुरी की भाँति सरस और मधुर अधर, लता के समान कोमल भुजद्वय, सुडौल और उभरे उरोज, सिंह सी क्षीण कटि, कदली के समान युगल उरु, सुचिक्कण देह, महावर-रंजित युगचरण एवं चन्द्र छटा-सी नख ज्योति इत्यादि देखकर अपना मन हारता है। कौन ऐसा पुरुष होगा जो ऐसी युवती की कामना न करे? यह

मानवीय सौन्दर्य के अन्तर्गत नारी-सौन्दर्य की अभिव्यंजना है। विश्व के समूचे साहित्य में पुरुष सौन्दर्य की अपेक्षा नारी-सौन्दर्य का सर्वाधिक सरस और मधुर वर्णन उपलब्ध है क्योंकि एक मात्र नारी ही विधाता की अनिंद्य सुन्दरता की अनूठी एवं अभूतपूर्व कृति है। इसके अलौकिक रूप को देखकर ही पुरुष के मन में वासना का उद्दाम-सिन्धु लहरा उठता है जो सृष्टि के विकास का मूल बनता है।

जहाँ तक बाल-सौन्दर्य का प्रश्न है वह निःसन्देह अकलुष, निष्पाप, अकाम और निश्छल होता है। मार्दवता और भोलापन उसका वैशिष्ट्य है।

इस प्रकार सामान्य मानवीय सौन्दर्य के माध्यम से ही व्यक्ति असामान्य और दिव्य सौन्दर्य की ओर उन्मुख होता है। यद्यपि यह शतप्रतिशत सत्य है कि यह भी पार्थिव सौन्दर्य की स्थूलता से युक्त होता है फिर भी यह मानवीय सौन्दर्य चिन्मय सौन्दर्य की प्राप्ति का साधन सिद्ध होता है यह मानव सौन्दर्य ही जीवन को चेतना की ओर उन्मुख करता है।

इस प्रकार चाहे वह शिशु सौन्दर्य हो, चाहे बाल-सौन्दर्य, चाहे युवा सौन्दर्य, चाहे वृद्धावस्था का सौन्दर्य और चाहे नारी सौन्दर्य हो- यह सब मानव-सौन्दर्य के ही अंग हैं। इसी को माँसल सौन्दर्य अथवा पार्थिव सौन्दर्य की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है। आकर्षण सौन्दर्य का प्राण है यही वह तत्व है जिसके कारण शलभ, दीपिका की दिव्य ज्योति का वरण कर, मरण स्वीकार करता है और उसे इसी जलन में आनन्द की उपलब्धि होती है। हरिण का संगीत के प्रति और सर्प का बीन के प्रति आकृष्ट होकर सर्वस्व निछावर करने के उदाहरण लोक में प्रसिद्ध हैं।

अध्ययन की सुविधा के लिये मानवीय सौन्दर्य को तीन रूपों में विभक्त किया जा सकता है-

(१) पुरुष सौन्दर्य

(२) नारी सौन्दर्य

(३) बाल सौन्दर्य

ध्यातव्य है कि मानवीय सौन्दर्य का मूल्यांकन वाह्य रूपाकृति और आन्तरिक गुणों के आधार पर किया जाता है।

१. पुरुष सौन्दर्य

महर्षि वेद व्यास महाभारत में स्पष्ट रूप से कहते हैं कि **मनुष्य से श्रेष्ठ कोई नहीं है।**[२११] यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि निसर्ग सिद्ध प्रकृति का निश्छल और निष्कलुष सौन्दर्य भी मानव सौन्दर्य के आगे तुच्छ है। प्रकृति स्वयं उसके अपूर्व और अनुपम सौन्दर्य के सम्मुख नतमस्तक हो जाती है-

> **"हार गईं तुम प्रकृति।**
>
> **रच निरुपम**
>
> **मानव कृति**
>
> **निखिल रूप, रेखा, स्वर**

हुये निछावर

मानव के तन, मन पर"[२१२]

मानव की रचना प्रकृति का सर्वाधिक अनुपम वरदान है। इसीलिये कवि उसे सुन्दरतम स्वीकारने में हिचकिचाता नहीं है-

"सुन्दर हैं विहग, सुमन सुन्दर, मानव! तुम सबसे सुन्दरतम।
निर्मित सबकी मधु सुषमा से, तुम निखिल सृष्टि में चिर निरुपम।।
यौवन ज्वाला से वेष्टित तन, मृदु त्वच सौन्दर्य प्ररोह अंग।
न्यौछावर जिन पर निखिल प्रकृति, छाया प्रकाश के रूप रंग।।"[२१३]

समूची सृष्टि पुरुष और नारी दोनों पर ही आधृत है। नारी के गुणों को अस्तित्व प्रदान करने वाली शक्ति का नाम पुरुष है। वैदिक काल से ही पुरुष सौन्दर्य के आदर्शों का सम्यक चित्रण हुआ है।

यद्यपि पुरुष सौन्दर्य को चित्रित करने का प्रयास हिन्दी साहित्य के चारों कालों में किया गया है। परंतु यह सत्य है कि नारी सौन्दर्य की अपेक्षा पुरुष सौन्दर्य का अंकन साहित्य में कम ही मिलता है। इसका कारण यह है कि अधिकांश कवि पुरुष ही हुए और इसीलिये उनका चित्त नारी सौन्दर्य के विविध रूपों को अंकित करने में पर्याप्त रमा। इसके बावजूद पुरुष सौन्दर्य का वर्णन यथेष्ट हुआ है। विभिन्न कालखंडों में पुरुष सौन्दर्य के अंकन को मूल्यांकित करती हुई वीणा माथुर लिखती हैं-

"आदिकाल या वीरगाथा काल में पुरुष की रण दुर्मद, वीर दर्पपूर्ण आकृति सौन्दर्य का प्रतीक थी। भक्तिकाल में भगवान, नरहरि, दुष्ट संहारक, कल्याणकारी शक्ति के रूप में पुरुष की प्रतिष्ठा हुई। श्रंगारकाल व रीतिकाल में वह चन्दन-चर्चित आभूषणालंकृत वासना का क्षुद्र उपकरण मात्र बनकर रह गया। आधुनिक काल के साहित्य में प्रतिष्ठित पुरुष समस्त पुरुषोचित विशेषताओं के साथ अपनी कमियों को भी समाहित किये हुये एक मनुष्य है। राष्ट्र की रक्षा के लिये वह रण-योद्धा के रूप में रण भूमि में वीरगति प्राप्त करने में अपना सौभाग्य समझता है वही पुरुष प्रणय-प्रसंग में अत्यन्त निरीह और कोमल हो जाता है। निरन्तर जीवन-संघर्ष से जूझने के कारण वह निराशा एवं नियति का दासत्व भी स्वीकार कर लेता है। अत्यन्त उदार और निःस्पृह होते हुये भी वह प्रणय पर एकाधिकार चाहता है। यह प्रणयांश यदि स्वयं उसकी संतान में वितरित हो, यह भी उसे सहन नहीं होता। ईर्ष्याग्नि से उसका रोम-रोम जल उठता है। उसे प्रणय पर मात्र अपना ही स्वत्व चाहिये। इस प्रकार आधुनिक साहित्य में पुरुष का सौन्दर्य उसके अवगुणों के मध्य और भी अधिक दीप्त हो उठता है।[२१४]

हिन्दी साहित्य में पुरुष-सौन्दर्य के प्रचलित सभी रूपों का अंकन न्यूनाधिक मात्र में उपलब्ध है जिसमें कहीं उसका सौन्दर्य अनुकरण और प्रशंसा के योग्य है तो कहीं अवमानना तिरस्कार और घृणा के योग्य। कहीं वह लोकमंगल की अवधारणा को सर्वोच्च प्राथमिकता देते हुये राष्ट्र और समाज की

उन्नति हेतु संकल्पित दिखाई देता है तो कहीं राष्ट्र और समाज को खोखला कर देने वाले घृणित क्रिया व्यापारों में संलग्न प्रतीत होता है।

सामान्यतः रचनाकारों की दृष्टि पुरुष के आन्तरिक गुणों के प्रकाशन पर ही केन्द्रित रही है। इसका प्रमुख कारण यह है कि पुरुष का सौन्दर्य उसकी आन्तरिक चेतना की समुन्नतता तथा धन उपार्जन करने की क्षमता के आधार पर ही आकलित किया जाता है। पुरुष का आंगिक सौष्ठव यद्यपि नारी के लिये आकर्षण और स्पृहा का विषय होता है लेकिन जिस प्रकार नारी दूसरी नारी के रूप को सहन नहीं करती उसी भावभूमि के आधार पर ही शायद पुरुष रचनाकारों ने पुरुष सौन्दर्य में उसके आंगिक सौष्ठव पर विशेष ध्यान नहीं दिया। उनकी दृष्टि ने उसके आन्तरिक गुणों को उभारने पर अधिक बल दिया। आंगिक सौष्ठव के न्यूनाधिक उदाहरण लगभग सभी रचनाकारों की कृतियों में उपलब्ध होते हैं। यथा प्रस्तुत हैं दो उदाहरण-

(क) **"हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर, बैठ शिला की शीतल छाँह।**
एक पुरुष भीगे नयनों से, देख रहा था प्रबल प्रवाह।।
अवयव की दृढ़ माँसपेशियाँ, ऊर्जस्वित था वीर्य अपार।
स्फीत शिरायें स्वस्थ रक्त का, होता था जिनमें संचार।।[२१५]

(ख) **"ढका था स्निग्ध केश-घन बीच, विहँसता था शशि-वदन ललाम।**
सभा मण्डप-सागर को लाँघ-निकट आया सत्वर अभिराम।।
सबल सुस्कंध, बलिष्ठ शरीर, वक्ष विस्तृत था उन्नत भाल।
भरा जिसके उर में उत्साह, रोक सकता था जिसे न काल।।[२१६]

प्रथम उदाहरण में **प्रसाद** ने मनु के पुरुषोचित सौन्दर्य की प्रतिष्ठा की है तथा द्वितीय उदाहरण में **युगकवि स्वरूप** जी ने शतमन्यु के आंगिक सौष्ठव का चित्रण किया है।

पुरुष के अन्तः सौन्दर्य को कवियों ने प्रमुखता से काव्य का विषय बनाया है। धीरता, शूरवीरता, सहृदयता, शील और चरित्रोत्कर्षता का समन्वय, स्त्रियों के प्रति रक्षाभाव, कर्मशीलता, उदारता आदि जैसे गुणों के समावेश से निश्चित रूपेण पुरुष का सौन्दर्य अपनी पूर्णता को प्राप्त करता है।

कामसूत्रकार वात्स्यायन स्पष्ट रूप से कहते हैं कि **"नारियाँ पुरुष के जिन गुणों पर रीझती हैं वे ये हैं- अभिजात कुल, वैदुष्य, संकेतों की अभिज्ञता, कवित्व, आख्यान कुशलता, वाग्मिता, प्रगल्भता, विविध शिल्पज्ञता, विनम्रता, विनयशीलता, उच्चाशयता, उत्साह सम्पन्नता, दृढ़निष्ठता, मित्र वत्सलता, असूया, त्याग, पर्यवेक्षक, मादक वस्तुओं से विदूरता, प्रचण्ड वेगमयता, दयालुता, स्त्रियों के सदाचार का समर्थक और उपपालक नारियों के वशीभूत न होना, स्वतंत्रवृत्ति, कोमलता, ईर्ष्याहीनता और निर्भयता।**[२१७]

निकष रूप में कहा जा सकता है कि **समूचे हिन्दी साहित्य में** जितना भी पुरुष सौन्दर्य का

चित्रण मिलता है वह वात्स्यायन द्वारा निर्देशित गुणों पर ही न्यूनाधिक रूप में आधृत है। यह भी निश्चित है कि साहित्य में पुरुष के गुणों तथा उसके आन्तरिक वैशिष्ट्य का उद्घाटन-प्रकाशन ही अधिक मात्रा में अभिव्यक्त हुआ है। पुरुष की वाह्य रूपाकृति तथा उसके आंगिक सौष्ठव का अंकन रचनाकारों ने उसकी बलिष्ठता तथा उसके पौरुष को व्यक्त करने की दृष्टि से किया है।

दिव्य अथवा अवतारी पुरुषों के सौन्दर्यांकन में अवश्य आभ्यान्तरिक गुणों के साथ वाह्य रूपाकृति तथा आंगिक सौष्ठव का चित्रण समुचित रूप से साहित्य में दृष्टिगत होता है। तुलसी और सूर की कृतियाँ पुरुष सौन्दर्य को सम्पूर्णता से अभिव्यक्त करती हैं। दिव्य चरित्रों के अंकन में शक्ति और सौन्दर्य का समुन्नत रूप उनके व्यक्तित्व को उदात्तता प्रदान करने में योग देकर अभिव्यक्ति की सार्थकता दर्शाता है।

(२) नारी-सौन्दर्य

नारी सृष्टि का मूल है, चराचर जगत की धुरी है, जिस पर निखिल विश्व टिका रहता है। नारी के बिना पुरुष के अस्तित्व का कोई अर्थ नहीं क्योंकि नारी के माध्यम से ही पुरुष अपने पुरुषत्व को सार्थक करता है और अपने स्वरूप के अस्तित्व का आभास पाता है। यही कारण है कि भारतीय वांग्मय नारी की महिमा और सौन्दर्य वर्णन से ओतप्रोत है। एक ओर जहाँ अंग-प्रत्यंग की मनोहरता, सुकुमारता औरं रूप-लावण्य का अनूठा और ललित वर्णन कवियों ने किया है वहाँ दूसरी ओर नारी के आंतरिक गुणों को भी कवियों ने बड़े ही मनोयोग से विशदता के साथ उभारा है। किसी भी युग में देखें तो नारी के सुरम्य और मंजुल रूप की प्रतिष्ठा काव्य की अनिवार्यता रही है।

वस्तुतः नारी पुरुष की सहचरी है, प्रेरणा है, शक्ति है। सम्पूर्ण सृष्टि की नियामक सत्ता का केन्द्र नारी ही है क्योंकि नारी और पुरुष के समागम से ही सृष्टि-क्रम नियंत्रित होता है। **डॉ० देवेश ठाकुर** के मतानुसार- **"वह सृष्टि का साधन है और प्रकृति का मूर्त रूप होकर पुरुष के लिये सौन्दर्य, प्रेम, अनन्यता और आनन्द का कारण बनती है। इसीलिये वह मान्या है, पूज्या है, आराध्या है। इसीलिये वह श्री है, शक्ति है, चिति है।"**[२१८] यही कारण है कि भारतीय संस्कृति में नारी को आधार मानकर कला की देवी की प्रतिष्ठा की गई है।

कला और सौन्दर्य के समन्वित रूप को नारी संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है क्योंकि यदि कला सौन्दर्य की उत्कृष्टतम अभिव्यक्ति है तो कला को विश्व की सुन्दरतम वस्तु नारी का आश्रय लेना ही पड़ेगा। दूसरे शब्दों में यदि कहें तो सौन्दर्य, नारी और कला एक दूसरे के पूरक हैं।

प्रेमचन्द जी का कथन है- **"संसार में जो कुछ सुन्दर है उसी की प्रतिमा को मैं स्त्री कहता हूँ।"**[२१९] **मैकाले** कहते हैं कि **"संसार की सर्वाधिक सुन्दर वस्तु एक नारी है।"**[२२०] पंत नारी हृदय में स्वर्ग की प्रतिष्ठा स्वीकारते हुये कहते हैं-

> **"यदि स्वर्ग कहीं है पृथ्वी पर**
> **तो वह नारी उर के भीतर।।"**[२२१]

किन्तु यह भी सच है कि नारी का अप्रितम और अनिंद्य रूप-सौन्दर्य विनाशकारी युद्धों का कारण भी बना है। इतिहास में इस बात के पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हैं कि सीता, द्रोपदी, संयोगिता, पदमिनी आदि नारियों के कारण दुर्धर्ष संघर्ष हुए हैं। सम्पूर्ण विश्व में ऐसे उदाहरण सहज सुलभ हैं यथा हैलेन के सौन्दर्य की कामना से रोम और ट्राय नगर भस्म हो गए थे। अतः यह स्पष्ट है कि नारी के रूपराशि की सहजता और कमनीयता जहाँ प्रेरणा और स्फूर्तिप्रदायिनी है वहीं उसका प्रभाव अत्यन्त मारक भी है।

सम्पूर्ण विश्व इतिहास में प्राचीन काल से लेकर अर्वाचीन काल तक नारी कवि की प्रेरणा की वस्तु रही है। यह बात अलग है कि उसके रूप वर्णन में तत्कालीन परिवेश के कारण भिन्नता आती रही है।

वैदिक युग में नारी, मंगला उषा सुन्दरी के रूप में वर्णित हुई है। संस्कृत युग में कालिदास की तूलिका के संस्पर्श ने उसे मोहक और विलास के उपकरण के रूप में जहाँ निखारा है वहाँ उसके हृदय में कोमल भावों की उद्भावना भी की है।

वीरगाथा काल की नारी में सौन्दर्य का चरमोत्कर्ष वीरभगिनी, वीर पत्नी और वीर प्रसविनी रूपों में स्पष्ट रूप से झलकता है। उसे कायरता छू भी नहीं गई है। वह अपने पति और भाई को सदैव अपनी मान-मर्यादा हेतु युद्ध का संदेश देने में तत्पर रहती है। रीतिकाल में नारी का रूप पुनः परिवर्तित हआ। स्फूर्ति और प्रेरणा प्रदायिका नारी केवल भोग्या और विलास की वस्तु मात्र बनकर रह गई। संयोग और वियोग के झूले में झूलते रहना ही जैसे उसकी नियति हो गई।

द्विवेदी युग में नारी पूर्णतः अनुशासन में बँध गई। सम्पूर्ण वैभव और विलास आदर्शों की आड़ में छिप सा गया। नारी ने सामाजिक और पारिवारिक दायित्वों के निर्वाह में ही पूर्णता समझी-

ऐसी हूँगी निरत जब मैं पूत की कार्यावली में
मेरे जी में प्रणय जिससे पूर्णतः होवे।"[२२२]

छायावाद काल में नारी की पूर्ण प्रतिष्ठा हुई। इस काल की नारी में वासनाजनित पंकिल मुसकान नहीं है वरन सलज समर्पित श्रद्धायुत विनम्र चेष्टायें पावनता से परिपूरित हैं। नारी में प्रकृति का सलोना, उल्लसित, निष्कलंक यौवन साकार हो उठा है-

"जो जगत की स्वामिनी, भामस्विनी तुम धन्य
तुम प्रकृति के मुकुर का प्रतिबिम्ब रूप अनन्य।।"[२२३]

वीणा माथुर के अनुसार- **"वास्तव में छायावादी कवियों ने ही उसे पवित्र सूक्ष्म सौन्दर्य से अलंकृत करके उसके हृदय के सौन्दर्य का भी उदघाटन किया है। जहाँ एक ओर उसकी वाह्य रूप रेखा की मोहिनी में उनके नेत्र उलझे रहते हैं वहीं उसकी स्नेहमयी, ममतामयी मृदुल वृत्ति की शुभ्र छवियों पर अपने हृदय को न्योछावर करते हुए उन्हें तृप्ति नहीं होती। इस काल के सम्पूर्ण साहित्य पर नारी की कोमल रमणीयता छाई हुई है।"[२२४]** प्रस्तुत है नारी सौन्दर्य का एक मोहक

चित्र-

नित्य यौवन छवि से ही दीप्त, विश्व की करुण कामना मूर्ति।
स्पर्श के आकर्षण से पूर्ण, प्रकट करती ज्यों जड़ में स्फूर्ति।।
उषा की पहली लेखा कान्त, माधुरी से भीगी भर मोद।
मदभरी जैसे उठे सलज्ज, भोर की तारक द्युति की गोद।।
कुसुम कानन अंचल में मंद, पवन प्रेरित सौरभ साकार।
रचित परमाणु पराग शरीर, खड़ा हो ले मधु का आधार।।
और पड़ती हो उस पर शुभ्र, नवल मधु राका मन की साध।
हँसी का मद विह्वल प्रतिबिम्ब, मधुरिमा खेला सदृश अबाध।।[२२५]

वस्तुतः नारी भारतीय संस्कृति की अस्मिता और गरिमा की प्रतीक है। आस्था और विश्वास की साक्षात प्रतिमूर्ति जिसमें करुणा और प्रेम का प्रकाश ज्योतित होता रहता है। धैर्य का अथाह सागर जिसमें दुख और झंझावातों की प्रचण्ड लहरें किल्लोल करती रहती हैं। दूसरे शब्दों में नारी केवल नारी है जिसकी समता किसी अन्य से नहीं की जा सकती। इसीलिये प्रसाद उसे श्रद्धा स्वरूपा मानते हैं-

नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पदतल में।
पीयूष स्रोत सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में।।[२२६]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार-**"नारी के बाह्य निरूपण के अन्तर्गत अंग-प्रत्यंग, वेशभूषा, आभूषण, अनुलेपन तथा अनुभावों का वर्णन मिलता है। अंगों के वर्णन में स्निग्धता, गठन, सुघरता, सुडौलता, मृदुलता और सुकुमारता, पुष्टता तथा आयु, वर्ण, कद स्वास्थ्य आदि का वर्णन होता रहा है।"**[२२७]

बिना आन्तरिक सौन्दर्य के कोई सौन्दर्य पूर्ण नहीं होता। वास्तव में गुणविहीना नारी का केवल आकर्षक और मोहक वाह्य रूप ठीक उसी भाँति होता है जैसे किसी स्वर्ण घट में विष भर दिया जाये। इसीलिये कवियों ने नारी सौन्दर्य के अंकन में वाह्य और आन्तरिक गुणों के समन्वय से अपनी अभिव्यक्ति की सार्थकता प्रदर्शित की है। मनु से प्रणय-निवेदन के समय श्रद्धा नारी के आन्तरिक गुणों की चर्चा करती है-

"दया, माया, ममता लो आज, मधुरिमा लो, अगाध विश्वास।
हमारा हृदय रत्न निधि स्वच्छ तुम्हारे लिए खुला है पास।।
बनो संसृति के मूल रहस्य, तुम्हीं से फैलेगी वह बेल।
विश्व-भर सौरभ से भर जाय, सुमन के खेलो सुन्दर खेल।।[२२८]

अपने महान आभ्यन्तरिक गुणों के कारण ही नारी, पुरुष की अधिष्ठात्री होती है। सदा से ही उसकी महत्ता और यश गायन रचनाकार करते रहे हैं। उसके इसी प्रशंस्य स्वरूप को संकेतित

करते हुये **आचार्य वराहमिहिर** कहते हैं-**"सम्पूर्ण धरती जीत लेने पर भी उसमें केवल अपनी राजधानी सार है तथा उस राजधानी में अपना घर, अपने घर में अपने रहने का स्थान, अपने रहने के स्थान में अपनी शय्या और शय्या पर भूषण भूषित स्त्री राज्य सुख का सार है। संसार में कहीं पर भी विधाता ने स्त्रियों के अतिरिक्त ऐसा कोई रत्न नहीं बनाया जिसके सुनने, स्पर्श करने, देखने या स्मरण करने से आनन्द हो। स्त्री के लिए ही धर्म और अर्थ की उपसेवना की जाती है। स्त्री के द्वारा ही कामसुख और संतति सुख मिलता है तथा स्त्री गृह में लक्ष्मी है, अतः मान और विभव के द्वारा स्त्री का आदर करना चाहिये।"**[२२६]

(३) बाल सौन्दर्य

बाल सौन्दर्य के अन्तर्गत बालक और बालिका दोनों के रूप सौन्दर्य का मूल्यांकन किया जाता है। यद्यपि नारी और पुरुष-सौन्दर्य के वर्णन और मूल्यांकन में बालक और बालिका के रूप सौन्दर्य का समाहार स्वतः ही हो जाता है। प्रश्न यह उठता है कि इसे अलग से या स्वतंत्र रूप से आकलित करने की आवश्यकता क्यों पड़ती है?

आवश्यकता के संदर्भ में विचार करने पर प्रतीत होता है कि शुद्ध सात्विक और सहज सौन्दर्यानुभूति की प्रतीति केवल बालछवि में ही संभव है। इसके अतिरिक्त यह भी ध्यातव्य है कि बाल सान्दर्य यौवनोचित आकर्षण से रहित और निष्काम होता है जबकि यौवन का सौन्दर्य सकाम होता है। अपनी सन्तान के प्रति माता-पिता, बन्धु-बान्धवों और आस-पड़ोस की परिधि में रहने वाले व्यक्तियों का आकर्षण, संतान के प्रति माता की विभिन्न पूर्व कल्पित कल्पनायें, अभिलाषायें और शुभभावनायें, सामीप्य और संयोगेच्छा आदि लौकिक और ऐन्द्रिक होने पर भी निष्काम ही मानी जायेंगी। यद्यपि सौन्दर्यशास्त्री और विचारक रूप के निष्काम सौन्दर्य भावना की चर्चा करते और उस पर बल देते हैं लेकिन यह भी सार्वभौमिक सत्य है लौकिक प्रेम निष्काम हो ही नहीं सकता।

बाल सौन्दर्य का स्वतंत्र रूप से चित्रण वात्सल्य रस के पूर्णास्वादन की दृष्टि से भी किया जाता है। हिन्दी साहित्य में लगभग सभी रचनाकारों ने न्यूनाधिक परिमाण में बाल सौन्दर्य का स्वतंत्र रूप से अंकन किया है। तुलसी, सूर आदि कवियों ने राम, कृष्ण और राधा के रूप सौन्दर्य वर्णन में उनकी बालछवियों और वृत्तियों का मोहक वर्णन किया है। अवतारी पुरुष होने के बावजूद उनमें बालकोचित सहजता लक्षित होती है। कवियों ने बाल सौन्दर्यांकन में रूप, गठन, बाल सुलभ चेष्टायें, वेशभूषा, आभूषण, अलंकरण, आलेपन,-मण्डन आदि का अत्यन्त सहजता से निरूपण किया है। इस प्रकार निकष रूप में यह कहा जा सकता है कि **बाल सौन्दर्य के अन्तर्गत जहाँ अंग-प्रत्यंग, आभूषण तथा वेशभूषा का चित्रण होता है वहाँ उनके क्रिया-कलापों और चेष्टाओं का वर्णन भी उसी तन्मयता से किया जाता है। यथा प्रस्तुत हैं दो उदाहरण जिनमें वाह्य और आन्तरिक बाल सौन्दर्य को अत्यन्त कुशलता से उकेरा गया है।**

(१) "सोभित कर नवनीत लिए।

घुटरुनि चलत रेनु तन मंडित मुख दधि लेप किए।।
चारु कपोल लोल लोचन गोरोचन तिलक दिए।
लट लटकनि मनु मत्त मधुरगन मारक मधुहिं पिए।।
कठुला कंठ ब्रज के हरि नख राजत रुचिर हिए।
धन्य सूर एकौ पल इहिं सुख का सत कल्प जिए।।[२३०]

(२) "मैया निपट बुरो बलदाऊ।
कहत है बन बड़ो तमासो सब लरका जुरि आऊ।।
मोसौं कहत मोल कौ लीहो आप कहावत साऊ।
'परमानन्द' बलराम चबाइ तैसेई मिले सखाऊ।।"[२३१]

(ब) प्रकृति सौन्दर्य

प्राची के क्षितिज से उदित होती हुई बाल रवि की स्वर्णिम रश्मियाँ, इठलाती हुई सरिताएँ, मुस्कराते हुये धान के सुनहरे खेत, इतस्ततः सरोवरीय तट पर बिखरे शैवाल, कल-कल की ध्वनि करते हुये पार्वत्य प्रदेशीय प्रपातं, मेघाच्छादित पावस कालीन मनोरम आकाश, यदा-कदा दृष्टिगोचर होता हुआ सप्तरंगी इन्द्रधनुष, पुष्करों में विहँसते पद्म-प्रसून, मनचले भ्रमरों की अठखेलियाँ, रंग-बिरंगे पंख विकीर्ण कर नृत्य करते हुए मयूर, तुहिन कणों से सुशोभित हरित दूर्वादल, हिमाच्छादित शैल-शिखर और अपने भोले-भाले भोर-शिशु का कर थामे मुग्धा उषा भला किसका मन न मोह लेगी? यह भी सौन्दर्य का एक रूप है इसे लोक निसर्ग-सौन्दर्य के नाम से पुकारता है। इसी को प्रकृति सौन्दर्य कहते हैं। निश्चेष्ट सौन्दर्य हमें उतना प्रभावित नहीं करता जितना कि गत्यात्मक सौन्दर्य। यह प्रकृति में प्रचुर परिमाण में विद्यमान रहता है।

सौन्दर्य के प्रति आकृष्ट होना मानव का स्वाभाविक गुण है। ऐसे निसर्ग-सौन्दर्य-सिन्धु में अपने को निमग्न कर देने के निमित्त प्रत्येक प्राणी का लालायित होना अत्यन्त स्वाभाविक है।

मानव जन्म से ही प्रकृति के सान्निध्य में रहता है, प्रकृति की विस्तृत गोद में पलता है और प्रकृति के आंचल में ही थककर चिर निद्रा में लीन हो जाता है। **बाबू गुलाबराय** के अनुसार- **"इस विश्व में प्रकृति सौन्दर्य का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है। अपनी आदिम अवस्था से ही मानव इसके प्रभूत सौन्दर्य से अभिभूत होता आया है। वह सबसे अधिक प्रकृति के ही सम्पर्क में रहा है। प्रकृति द्वारा प्रदत्त अन्न, फूल एवं जलादि द्वारा ही उसके अंग-प्रत्यंग पुष्ट हुये हैं। प्रकृति के निरन्तर साहचर्य ने ही उसे माँ व सहचरी के समान ममता, वात्सल्य एवं सहानुभूति आदि गुणों से अभिषिक्त किया है। प्रकृति हमारी धात्र है। उसके जल-वायु से हमारा शरीर पुष्ट हुआ है। उससे हम भाग नहीं सकते हैं। मौन रहते हुए भी वह हमें सहचर-सुख देती है।"**[२३२]

सम्यक रूप से मननोपरान्त यह निष्कर्ष सर्वमान्य रूप से स्वीकार किया गया है कि प्रकृति जीवन के पूर्ण विकास हेतु परमावश्यक है। बिना प्रकृति के सान्निध्य के जीवन के अस्तित्व का कोई

अर्थ नहीं है। **कवीन्द्र रवीन्द्र** के शब्दों में- **"जब मनुष्य स्वयं को प्रकृति के प्राणप्रद और वरद स्पर्श से दूर कर लेता है और जीवन व आरोग्य के लिये अपने आविष्कारों का अवलम्ब लेता है तो वह उन्मादी हो जाता है। स्वयं को खंड-खंड कर लेता है और अपने ही जीवन रस का शोषण करता है। प्रकृति के विशाल आंचल का अवलम्ब छोड़कर उसकी दीनता नग्न और निर्लज्ज बन जाती है। प्रकृति के आवरण में वह सादगी का रूप धारण किए रहती है।"**[२३३]

प्रकृति हृदय की भावनाओं की अभिव्यक्ति में सहायक होती है। **प्राचीन काल में प्रकृति सौन्दर्य का निरूपण महाकाव्य का एक अनिवार्य तत्त्व था। ऋतु वर्णन परम्परा और बारह मासा इत्यादि इसी को संकेतित करते हैं। आधुनिक युग में यह दृष्टि कुछ परिवर्तित हुई है किन्तु अधिकांश प्रबंधों का प्रारम्भ प्रायः प्रकृति वर्णन से ही हुआ है।**[२३४]

कवि प्रकृति को अपना सहचर समझकर व्यवहार करता है और अपनी कल्पना को अभिव्यक्ति के माध्यम से साकार करता है। प्रकृति का वाह्य और आन्तरिक रूप कभी हृदय में प्रेरणा और सन्देश भरता है तो कभी उसका भयानक और रौद्र रूप हृदय को विस्मय-विमुग्ध करता है तो कभी विकराल काल के रूप में लक्षित होता है। कवियों ने प्रकृति के कोमल शान्त रूप के साथ-साथ उसके **रौद्र रूप**[२३५] का भी वर्णन मनोयोग से किया है। स्वतंत्र रूप से प्रकृति सौन्दर्य के वर्णन को आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण कहा जाता है और जब भावों को उद्दीप्त करने की दृष्टि से निसर्ग सौन्दर्य को चित्रित करते हैं तो इसे उद्दीपन चित्रण कहते हैं। जब प्रकृति चित्रण प्रकृति सौन्दर्य को उभारने के बजाय पृष्ठभूमि के रूप में किया जाता है तो इस प्रकार के वर्णन को उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत स्वीकारा जा सकता है। इस प्रकार के वर्णन में कवियों के अंतर्मन में मूलतः प्रकृति की स्वतन्त्र सत्ता की कल्पना नहीं रहती है।

किन्तु, वर्तमान युग में कवि केवल कल्पना के आधार पर सौन्दर्य अंकन को प्रमुखता नहीं देता वरन् स्वयं वर्ण्य वस्तु को देखकर और भोगकर उसकी अभिव्यक्ति करता है। हृदय विश्व की ही भाँति अनेक वृत्तियों का समन्वित रूप है और इन वृत्तियों का अंकन स्वभावतः विविधता लिए होना चाहिये। हृदय की विविध वृत्तियों का साहचर्य जब जगत के विविध विषयक तथ्यों के साथ होता है तभी सौन्दर्य की सर्जना होती है।

प्रकृति का संसार विशालता और व्यापकता को अपने में निहित किए हैं। प्रातः जागरण का संदेश देती हुई भोर, रात्रि के आंचल से उपजा बाल रवि, विविध वर्णी विहगावली का मधुरातिमधुर कलरव, खिलते हुये सुमनोहर परागयुक्त पुष्प, गुनगुनाते हुये भ्रमर, विशालकाय गिरिश्रृंग, कल-कल, छल-छल कर अपने यौवन पर इतराती सरितायें, लहराते हुये जल प्रपात, निरभ्र नीलवर्णी विस्तृत वितान, विहँसती संध्या सुन्दरी और मुग्धा नायिका-सी आकर्षित करती यामिनी सदैव ही सहृदय के मानस को रिझाते और आकृष्ट करते रहे हैं। अतः प्रकृति को काव्य-प्रयोजन के मूल रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

कवि की सौन्दर्यान्वेषी दृष्टि ने प्रकृति के सूक्ष्मातिसूक्ष्म व्यापार को अपनी अभिव्यक्ति का विषय बनाकर अपनी सौन्दर्य प्रियता को साकार करने का प्रयास निरन्तर किया है-

''जब तुहिन भार से चलता था मारुत कुमार
तब कुसुम कुमारी देख-देख, उस पर हो जाती थी निसार
लोनी लतिका पर झूल-झूल बिखराते कुसुम पराग प्यार
- - - - - - - - - - - - - - - - - - -
हँस-हँस कर कलियाँ झाँक रही थीं खोल पंखुरियों के किवार।''[२३६]
नीलव पल्लव की छवि से थी ललित मंजरी काया।
सोती थी तृण शय्या पर कोमल रसाल की छाया।।''[२३७]

किसी वस्तु या व्यापार का सजीव और प्रभावपूर्ण वर्णन तब तक नहीं किया जा सकता जब तक कवि उससे एकरूपता स्थापित नहीं कर लेता। तादात्म्य होने के कारण ही अंकन में इतनी सजीवता आ जाती है कि साक्षात चित्र नेत्रों के समक्ष उपस्थित प्रतीत होता है। आधुनिक कवियों ने प्रकृति वर्णन को अपनी कृतियों में सर्वोच्च प्रमुखता दी है। यथा दृष्टव्य हैं दो चित्र जिसमें संध्या के मनोरम और गतिशील सौन्दर्य को अत्यंत कुशलता से उकेरा गया है-

(क) नीरव संध्या में प्रशान्त
डूबा है सारा ग्राम प्रान्त
पत्रों के अनन्त अधरों पर सो गया निखिल बन का मर्मर
ज्यों वीणा के तारों में स्वर
खग कूजन भी हो रहा लीन
निर्जन गोपथ अब धूलि हीन
धूसर भुजंग सा जिह्व क्षीण
झींगुर के स्वर का प्रखर तीर केवल प्रशान्ति को रहा चीर
संध्या प्रशस्ति को कर गंभीर।''[२३८]

(ख) संध्या अरुण जलज केसर ले अब तक मन थी बहलाती।
मुरझाकर कब गिरा तामरस, उसको खोज कहाँ पाती।।
क्षितिज भाल का कुंकुम, मिटता मलिन कालिमा कर से।
कोकिल की काकली वृथा ही, अब कलियों पर मंडराती।।''[२३६]

(ग) संध्या घन माला की सुन्दर ओढ़े रंग-बिरंगी छींट।
गगन-चुम्बिनी शैल श्रेणियाँ पहने हुये तुषार किरीट।।[२४०]

भ्रमरों का गुंजन, सुग्गों का फल खाना, फूल पत्रादि सभी कवि के मानस में एक नया आह्लाद भर देते हैं और वह सहज भाव से कह उठता है-

फूलों पर मधुपों का गुंजन, फुल चुग्गी का मंजुल रुनझुन।

सुग्गों का फल खाना चुपचुप, यह सब वन में लखना सुन-सुन
कैसा मन जो उठता न डोल
रे पंछी मन में बोल-बोल।"[२४१]

प्रकृति व्यापार में मानवीयता का आरोप प्रकृति सौन्दर्य को अपूर्वायाम प्रदान करता है-

अंगारे पश्चिमी गगन के, झवां-झवां कर लाल हुए
निर्झर खो सोने का पानी, पुनः रजत की धार हुए
रश्मि जाल के खेल-खेल कर आँखमिचौनी तरु छाया
सोने चली गई दिनपति संग, विलग नहीं रहना भाया
केवल एक काक का जोड़ा, अभी बहुत घबराया सा
उड़ता हुआ चला जाता है धुंधले में कां कां करता
- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -
तारे नदी सेज पर सोए थपकी देने लगी लहर
रुंधा गला मोथा सेवार से सरिता का धीमा है स्वर
कटे करारों से लटकी है गांठधार कुश तृण की जड़।।[२४२]

चित्रात्मक शैली के प्रयोग से प्रकृति सौन्दर्यांकन में एक अद्भुत निखार उत्पन्न हो जाता है-

पावस ऋतु थी पर्वत प्रदेश, पल-पल परिवर्तित प्रकृति-वेष।
मेखलाकार पर्वत अपार, अपने सहस्त्र दृग सुमन फाड़।।
अवलोक रहा है बार-बार, नीचे जल में निज महाकार।
जिसके चरणों में पड़ा ताल, दर्पण सा फैला है विशाल।।
गिरि का गौरव गाकर झरझर, मद से नस-नस उत्तेजित कर।
मोती की लड़ियों में सुन्दर, झरते हैं झाग भरे निर्झर।।[२४३]

ऋतु-वर्णन, प्रकृति-सौन्दर्य-निरूपण का प्रमुख तत्व है। सौन्दर्याभिलाषी कवियों ने ऋतु वर्णन में अपने-अपने अभिव्यक्ति कौशल से प्रकृति के चिर नवीन सौन्दर्य को समेटने का प्रयास किया है। वसन्त की प्रतीक्षा किसे नहीं रहती? ऋतुराज वसन्त के आते ही सम्पूर्ण वातावरण मादक सा हो जाता है। अमराइयों में कोयल की मधुर कोकिल ध्वनि गूँजने लगती है। वसन्त के आगमन से समष्टि में एक स्फूर्ति युक्त चेतना जाग्रत हो जाती है। इसीलिये कवि सदैव वसन्त की प्रतीक्षा में पलक-पांवड़े बिछाये रहता है। यथा-

मूक हो मतवाली ममता, खिले फूलों से विश्व अनन्त।
चेतना बने अधीर मलिन्द, आह, वह आवे विमल वसन्त।।[२४४]

वसन्त में मन्द मदिर समीरण क्लान्त मन को शान्ति प्रदान करता है और साथ ही संकेत करता है कि दुख के दिन अब छंट चले हैं इसलिये उन्मुक्त होकर सुखोपभोग करो। वसन्त की

श्री-सुषमा से सारा विश्व उल्लासित हो उठता है और कवि प्रफुल्लित होकर गा उठता है-

क्या तुम्हें देखकर आते यों, मतवाली कोयल बोली थी?
जब लीला से तुम सीख रहे कोरक कोने में लुक रहना।
तब शिथिल सुरभि से धरणी में बिछलन न हुई थी सच कहना।।
जब लिखते थे तुम सरस हँसी अपनी फूलों के अंचल में।
अपना कल कंठ मिलाते थे झरनों के कोमल कल-कल में।।[२४५]

ऐसा नहीं कि कवियों ने केवल प्रकृति के कोमल रूप का ही चित्रांकन किया है। एक ओर जहाँ वसन्त के मलयानिल मदिर झकोरों का चित्र है वहीं दूसरी ओर ग्रीष्म और पतझर के विद्रूप सौन्दर्य को उसी मनोयोग से उकेरा गया है-

''निर्झर कानन में तरुवर जो खड़े प्रेम से रहते हैं।
डाल हिलाकर हाथों से वे जीव पकड़ना चाहते हैं।।
देखो वृक्ष शल्मली का यह महा भयावह कैसा है।
आतपभीत विहंगम कुल का क्रन्दन इस पर कैसा है।।
लू के झोंके लगने से जब डाल सहित यह हिलता है।

\- -

हरे भरे पत्ते वृक्षों के तापित हो मुरझाते हैं।
देखा देखी सूख सूख कर पृथ्वी पर गिर जाते हैं।।
धूल उड़ाता प्रबल प्रभंजन उनको साथ उड़ाता है।
अपने खड़-खड़ शब्दों को भी उनके साथ बढ़ाता है।।[२४६]

विश्व में प्रत्येक वस्तु की अपनी सत्ता अलग होती है। चेतन और अचेतन सभी मौन या मुखर होकर अपना संदेश प्रेषित करते रहते हैं। कवि में इन दोनों प्रकार के संदेशों को ग्रहण करने की अपूर्व शक्ति होती है और इसीलिये वह संदेश को ग्रहण कर अपनी अभिव्यक्ति के माध्यम से उसे समष्टि के निमित्त प्रसारित करता है। यही कारण है कि कहीं-कहीं सत्ता के संकेत कवियों को रहस्यवादी बना देते हैं। **'पेशोला की प्रतिध्वनि'** कविता कवि के संवेदनशील मानस की रहस्यवादी प्रवृत्ति का बोध कराती है-

अरुण करुण बिम्ब
निधूम भस्म-रहित ज्वलन्त पिण्ड
विकल विवर्तनों से
विरल प्रवर्तनों से
श्रमित नमित सा-
पश्चिम के व्योम में हैं निरवलम्ब सा।

पेशोला की उर्मियाँ हैं शान्त

घनी छाया में-

तट तरु हैं चित्रित तरल चित्रसारी में।

झोपड़े खड़े हैं बने शिल्प के विषाद के

दग्ध अवसाद से

कालिमा बिखरती है संध्या के कलंक सी

दुंदुभी, मृदंग, तूर्य, शान्त मौन स्तब्ध हैं।"[२४७]

प्रकृति की संवेदनशीलता से अनुप्राणित होकर कवि मानव जीवन के व्यापारों में उसे चित्रित करने का प्रयास करता है कारण यह है कि प्रकृति में उसे चेतन विश्व के सारे व्यापार संपन्न होते दिखाई पड़ते हैं। उसे अनुभूति होने लगती है कि प्रकृति की सत्ता अलग नहीं है। वह उसकी सहचरी है, प्रेरणा है, कभी वह प्रिया सी सलज्ज मुसकान बिखेरती है तो कभी नववधू सी लाजवन्ती बन स्वयं में ही सिमटने का प्रयास करती है। कहीं वियोगिनी सी विह्वल दिखाई देती है और कहीं क्रूर कुटिला सी अपने वीभत्स और रौद्र रूप का निदर्शन करती प्रतीत होती है। इसी कारण कवि प्रकृति के साथ अपनी अनुभूति को एकरूप कर अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने लगता है।

प्रातःकाल जैसे गृह वधू जल भरने के लिए जाती है वैसे ही विभावरी बीतने पर उषा नागरी पनघट की ओर प्रस्थान करती है **'अम्बर पनघट में डुबो रही तारा घट ऊषा नागरी'**। कवि प्रातःकाल जब प्राची की लाजयुत मुसकान देखता है तो सारा भेद समझ जाता है और वह कह उठता है-

कहता दिगन्त से मलय पवन, प्राची की लाज भरी चितवन

है रात घूम आयी मधुवन, यह आलस की अंगड़ाई है।

इसी तरह जल प्लावन के पश्चात कवि को वसुन्धरा मानिनी वधू सी प्रतीत होती है-

सिंधु सेज पर धरा वधू, अब तनिक संकुचित बैठी थी।

प्रलय निशा की हलचल स्मृति में, मान किये सी ऐंठी थी।।[२४८]

जिसके आगमन मात्र की कल्पना से सरिता का अबोध और निश्चल हृदय कम्पन करने लगता है। उस वसन्त रजनी को महादेवी निम्नवत आमंत्रित करती हैं-

धीरे-धीरे उतर क्षितिज से, आ वसन्त रजनी।

तारकमय नव वेणी बन्धन

शीश फूल कर शशि का नूतन

रश्मि वलय सित नव अवगुंठन

मुक्ताहल अभिराम बिछा दे चितवन से अपनी।।[२४९]

कवि के सम्मुख रजनी की नवोढ़ा प्रिया सी मूर्ति उभर आती है। वह अलंकरणों से शोभित

मंथर-मंथर राजहंसिनी की गति से पैर रखती हुई लाजयुत चितवन से नीचे की ओर दृष्टि निक्षेप करती प्रतीत होती है। सुरभि बिखेरती वसन्त-रजनी का चित्रांकन वास्तव में प्रकृति सौन्दर्य में सन्निहित अपूर्वाभा और अनुपमेय रम्यता को संकेतित करता है।

कवि को वासन्ती बाला के आगमन से ऐसा अनुभूत होता है मानो जीर्ण-शीर्ण शिशिर अपना सारा साजोसामान समेटती हुई मधुमास की साम्राज्ञी को निमंत्रित कर रही है।

मैं शिशिर वीणा चली अब जाग ओ मधुमास वाली
है विकल उल्लास वसुधा के हृदय से फूटने को
प्रान्त अंचल ग्रन्थि से नव रश्मि चंचल छूटने को
भृंग मधु पीने खड़े उद्यत अभी कर रिक्त प्याली।''[२५०]

नारी हृदय की भाँति प्रकृति में करुणा की सरिता प्रवाहित होती रहती है। प्रकृति का हृदय समष्टि में व्याप्त दुखों को देखकर करुणा से आप्लावित हो उठता है और उसके नेत्रों में अनायास अश्रु मुक्ता छलक आते हैं-

''लहरों में यह क्रीड़ा चंचल सागर का उद्वेलित अंचल।
है पोंछ रहा आँखें छलछल किसने यह चोट लगाई है।।''[२५१]

तथा-

नील नयन से ढलकाती हो
ताराओं की पांति घनी रे।''[२५२]

प्रसाद वरुणा के रूप में प्रकृति के करुणामयी रूप को निम्नवत रेखांकित करते हैं-

खिलती अंखुरी पंकज बन की,
खुल रही आँख ऋषि के तन की,
दुख की निर्ममता निरख कुसम-रस के मिस जो भर आई थी।
कल-कलना दिन बहती रहती,
प्राणी दुख की गाथा कहती,
वरुणा द्रव होकर शान्ति वारि शीतलता सी भर लाई थी।।[२५३]

प्रकृति अत्यंत स्नेहमयी है। प्रेयसी की निष्ठुरता से जब कवि-हृदय वेदना और पीड़ा से व्याकुल हो उठता है तो प्रकृति उसे अपनी स्नेहमयी छाया में समेट लेती है और अपने स्निग्ध, सरस, और पुनीत स्पर्श से उसके आकुल हृदय की वेदना का शमन कर उसे शान्ति प्रदान करती है। दृष्टव्य है प्रकृति के स्नेहमयी स्वरूप का एक चित्र-

केवल स्मितमय चाँदनी रात,
तारा किरणों से पुलक गात,
मधुपों मुकुलों के चले घात,

आता है चुपके मलय बात,
सपनों के बादल का दुलार,
तब दे जाता है बूँद चार।[२५४]

प्रकृति के स्नेह से रेत भी उर्वर हो जाती है। प्रकृति के इस स्नेहमयी रूप को देखकर कवि को अपना स्वप्न और अपनी कल्पना साकार होती दृष्टिगत होती है कि अब वह दिन दूर नहीं जब मानव प्रकृति से प्रेरणा पाकर समष्टि में व्याप्त दुखों और पीड़ाओं से स्वयं को मुक्त अनुभव करेगा-

दुखी हृदय में प्रिय-प्रतीति की विमल विभा सी
तारा ज्योति मिली है तम में, कुछ प्रकाश है
बालू भी इस स्नेहपूर्ण जल के प्रभाव से
उर्वर हैं हो रहे करारे नहीं काटते
हृदय-कुमुद कब सौरभ से यों विकसित होकर
पूर्ण करेगा अपने परिमल से दिगन्त को
शांति-चित्त को अपनी शीतल लहरों से कब
शांत करेगा हर लेगा कब दुःख पिपासा।।"[२५५]

प्रकृति समष्टि के प्रत्येक प्राणी के प्रति अपनी संवेदनशीलता के कारण उदार भाव रखती है। वह विशाल एवं उदार हृदया है। वह अपनी शीतल और स्निग्ध जलधारा से प्राणियों की तृषा बुझाती है, रसीले फलों से प्राणियों की क्षुधा मिटाती है और सबसे अनूठी बात यह कि प्रकृति इसके बदले कुछ भी अपेक्षा नहीं रखती। वह निरपेक्ष भाव से मानव को कुछ न कुछ देती ही रहती है। सिन्धु की गहराई उसके हृदय की विशालता की परिचायक है तभी सरिताएँ अपना सर्वस्व अर्पित करने में ही अपना सुख समझती हैं-

"यह सही तुम सिन्धु अगाध हो
हृदय में बहु रत्न भरे पड़े
प्रबल भाव विशाल तरंग से
प्रकट हो उठते दिन रात ही
जलधि मैं न कभी चाहती
कि तुम भी मुझ पर अनुरक्त हो
पर मुझे निज वक्ष उदार में
जगह दो उसमें सुख रहे।"[२५६]

निकष रूप में अवधेय है कि कवि सहृदयता और भावुकता के कारण प्रकृति में व्याप्त मानवीय संवेदनाओं की अनुभूति की व्यापकता को ग्रहण करता है। आदि से अन्त तक प्रकृति के साहचर्य में रहने के कारण कवि प्रकृति को विभिन्न रूपों में देखता है और उसे अभिव्यक्त करता है। वह

प्रकृति की गोद में आश्रय पाता है। कहीं प्रकृति उसे माँ के सदृश दुलराती प्रतीत होती है तो कहीं मुग्धा और विवेकशील प्रेयसी की भाँति उसे कर्तव्य पथ पर निरन्तर गतिशील रहने की प्रेरणा देती है। कहीं शिक्षिका की भाँति परोपकार और त्याग की भावना उसके अंदर प्रादुर्भूत करती हैं तो कहीं सेविका और दासी के रूप में सेवाभावना की उत्कृष्टता को स्पष्ट करती है कहीं आराध्या के रूप में और कहीं जीवनीशक्ति के रूप में स्फूर्ति का संचार करती है। कहने का आशय यह है कि प्रकृति के वाह्य रूप ने जहाँ कवि हृदय को आकर्षित किया है वहीं उसके आन्तरिक गुणों ने भी कवि हृदय को प्रभावित किया है।

प्रकृति का अनन्त प्रस्तार उस परमशक्ति के अक्षय सौन्दर्य स्रोत का आभास देता है। समूची सृष्टि में उसकी अपूर्वाभा प्रकृति के नाना रूपों-प्रतिरूपों में परिलक्षित होती है। सृष्टि के प्रारम्भ से ही रचनाकार अपने मूल विषय के सम्यक प्रतिपादन के निमित्त उसका आश्रय ग्रहण करते रहे हैं। इस अभिव्यक्ति हेतु कभी रचनाकारों ने उसके रूप का आलम्बनगत निरूपण किया है तो कभी प्रकृत भावों की सम्यक अभिव्यक्ति के लिये उसके उद्दीपन रूप का सम्बल लिया है। अपनी भावाभिव्यक्ति को सार्थकता प्रदान करने के लिये कभी वे उसके नाना उपकरणों-उपादानों को ग्रहीत करते हैं और कभी प्रतीक वत उनका आश्रय लेते हैं। कहीं उपदेशिका का रूप उन्हें प्रिय लगता है तो कहीं वे प्रकृति को दूती रूप में प्रस्तुत करते हैं। कहीं पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति का रूपांकन करते हैं तो कहीं आलंकारिक रूप की प्रतिष्ठा पर बल देते हैं। काव्य में प्रकृति वर्णन की प्रणालियों को निम्नवत रेखांकित किया जा सकता है।

१. आलम्बन रूप में

२. उद्दीपन रूप में

३. पृष्ठभूमि रूप में

४. उपमान रूप में

५. मानवीकरण रूप में

६. प्रतीक रूप में

७. उपदेशिका रूप में

८. अलंकार रूप में

९. रहस्यात्मक रूप में

इस सभी प्रणालियों का स्वतंत्र एवं विस्तृत विवेचन आगे प्रस्तुत किये जाने वाले अध्याय **'प्रकृति सौन्दर्य'** में करना अपेक्षित होगा।

२. दिव्य या अपार्थिव सौन्दर्य

अपार्थिव सौन्दर्य को ही दिव्य सौन्दर्य के नाम से अभिहित किया जाता है। यह दिव्य सौन्दर्य

अनन्त होता है, शाश्वत होता है। इसमें कहीं भी क्षय का भाव नहीं रहता। प्रकारांतर से कह सकते हैं कि **अपार्थिव सौन्दर्य इस लोक से परे की बात है। यह मृण्मय न होकर चिन्मय होता है। इसमें सत चित और आनंद तत्व का समावेश होता है और इसी कारण यह दिव्य सौन्दर्य कहलाता है।** यह सौन्दर्य प्रतिक्षण अभिवर्द्धित होता रहता है और अमृत तत्व का प्रदाता होता है। उदात्तता की सर्वाधिक सार्थक परिणति अपार्थिव सौन्दर्य में ही संभव है। दिव्य सौन्दर्य में एक साथ विस्मय-विमुग्ध करने, चेतना-हरण करने तथा अलौकिक आनन्द प्रदान करने की अपूर्व क्षमता निहित होती है।

जिस अभूतपूर्व सौन्दर्य को देखकर तन पुलकित, मन हर्षित और आत्मा उल्लसित हो आनन्दाम्बुधि में लीन हो जाती है उसे ही दिव्य सौन्दर्य की संज्ञा प्रदान की जाती है। दिव्य सौन्दर्य की परिधि में सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश लक्षित होता है। इसी कारण वहाँ तम और अज्ञान का प्रवेश नहीं होता। जो इस दिव्य सौन्दर्य की सम्पूर्णता की मात्र एक झलक पा लेता है, वह समस्त नियमों, सिद्धान्तों, विधि-निषेधों की चिन्ता न करता हुआ, वासना विरहित होकर विशुद्ध परमात्मा के अखण्ड प्रकाश में लीन हो जाता है। उसे सारे भव-बन्धनों से मुक्ति मिल जाती है। उस कोटि-कोटि कन्दर्प लावण्यहारी के दिव्य सौन्दर्य को देखकर फिर किसी अन्य को देखने का मन ही नहीं करता क्योंकि वह अपना प्राप्य पा चुकता है।

मानक हिन्दी कोश में दिव्य का अर्थ निम्नवत स्पष्ट किया गया है-

''वि० (स० दिव + यत) (भाव० दिव्यता) अर्थात स्वर्ग से सम्बन्ध रखने वाला। आकाश से सम्बन्ध रखने वाला प्रकाशमान तत्वज्ञ, आकाश में होने वाला एक प्रकार का दैवी उत्पात, प्राचीनकाल में होने वाली एक प्रकार की परीक्षा जिससे किसी का अपराध या निरपराध होना सिद्ध होता था, साहित्य में तीन प्रकार के नायकों में से एक वह नायक जो स्वर्गीय या अलौकिक हो जैसे इन्द्र, राम, कृष्ण आदि।[२५७]

हिन्दी साहित्य कोश[२५८] में दिव्य के सन्दर्भ में कहा गया है- **''दिव्य का अर्थ है शपथ लेना अथवा भोजपुरी में किरिया लेना। यह संस्कृत शब्द 'देव की क्रिया' का बिगड़ा रूप है जो सत की परीक्षा के लिए की जाती है।''** आगे उसमें यह भी उल्लेख है, **''प्रायः परदेशी पति के लौटने पर पत्नी के पतिव्रत धर्म का प्रमाण 'किरिया' लेकर ही दिया गया है।**

मराठी भाषा के अन्यतम विद्वान **पं० महादेव प्रसाद शास्त्री** द्वारा संपादित **'भारतीय संस्कृत कोश'** के अनुसार- **''दिव्य सत्यासत्य का निर्णय करने वाली एक प्राचीन पद्वति है। सत्य जिसके पक्ष में होगा, वह जल में नहीं डूबता, उसे अग्नि जला नहीं सकती और विष उस पर अपना प्रभाव नहीं डाल सकता, इस प्रकार की प्राचीन काल के लोगों की श्रद्धा थी। इस कारण सत्य-असत्य का निर्णय करने के लिए अग्नि, विष आदि का उपयोग करने की प्रथा संसार के अनेक देशों में रूढ़ हो गई थी। भारतवर्ष में यह विधान या दिव्य का उल्लेख वेदकाल से ही प्राप्त होता है। जब लिखित या मौखिक प्रमाण उपलब्ध नहीं होता था तभी दिव्य का उपयोग किया जाता था।''**[२५९]

संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर[२६०] के अनुसार दिव्य के पाँच अर्थ हैं-

१. स्वर्ग से सम्बन्ध रखने वाला / स्वर्गीय

२. आकाश से सम्बन्ध रखने वाला

३. दैवी / अलौकिक

४. प्रकाशमान / चमकीला

५. बहुत सुन्दर / बहुत स्वच्छ

दिव्य संदर्भित उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट ध्वनित होता है कि दिव्य का सम्बन्ध अलौकिकता, दैवीय शक्ति, सत्यासत्य-निर्णय-क्षमता, अमलता, स्वर्गिक तत्व, प्रकाशमानता, आंतरिक श्रद्धा और आस्था से होता है। इस प्रकार दिव्य सौन्दर्य के बारे में माना जा सकता है कि जिस सौन्दर्य में अलौकिकता निहित होती है, दैवीय शक्ति का बोध होता है, अगम्यता और अनंतता का भाव होता है, सत्यासत्य निर्णय की क्षमता होती है, प्रकाशमानता का अभिनिवेश होता है और स्वर्गिक आनंद का अपूर्वाभास होता है उसे ही दिव्य सौन्दर्य का अभिधान दिया जा सकता है। स्पष्ट है कि इस सौन्दर्य का सम्बन्ध केवल उस परमशक्ति से ही हो सकता है जो इस सम्पूर्ण चराचर सृष्टि की नियामक और नियन्त्रक है।

केवल पूर्ण परात्पर ब्रह्म ही सौन्दर्य का अक्षय आगार है। वह अपरिमित अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न है जिसके मात्र नाम लेने या स्मरण से ही प्राणी सांसारिक मोह-माया के व्यूहों को भेदकर आवागमन के चक्र से मुक्त हो परमपद का अधिकारी हो जाता है। ऐसी शक्ति के अनुपम सौन्दर्य का निरूपण कौन कर सकता है? निश्चित रूप से उसकी पूर्णाभिव्यक्ति असंभव है। गोचर वस्तु के सौन्दर्य को ही जब पूर्णता से अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता **(क्योंकि प्रत्येक अभिव्यक्ति में कहीं न कहीं अपूर्णता तथा अधूरेपन का भाव प्रत्यक्ष होता है)** फिर वह तो जन्म-मृत्यु से परे, इन्द्रियातीत, अगोचर, अदृश्य और अखण्डानन्द प्रदायक है। उसको केवल हृदय से अनुभूत किया जा सकता है इन्द्रियों से नहीं क्योंकि इन्द्रियाँ गोचर वस्तु के सौन्दर्य का दर्शन कर सकती हैं, सुन सकती हैं तथा उसे छू कर अस्तित्व का आभास पा सकती हैं। दिव्य सौन्दर्य की अनुभूति और अभिव्यक्ति के लिए निश्चित रूप से लौकिकता के आवरण को हटाना अनिवार्य है तभी निर्मल चित्त से उसका अनुभव किया जा सकता है। ध्यातव्य है ईश्वर अपने भक्त की आर्त पुकार सुनकर रुकता नहीं। भक्त जब निस्पृहभाव से भगवान की आराधना और उपासना में लीन रहता है तो भगवान भी स्वयं उसकी भक्ति के अनुराग-पाश में आबद्ध हो जाते हैं।

दिव्य सौन्दर्य की सृष्टि पूर्णतः श्रद्धा-विश्वास और आस्था पर आधृत होती है। अपनी आस्था के अवलम्ब से रचनाकार जब उस अक्षय सौन्दर्य की अभिव्यक्ति में चित्त को रमाता है तो सर्वत्र आनंद ही आनंद प्रस्तारित होता है। सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए आश्रय या आलम्बन का होना अत्यावश्यक है। इसलिये जहाँ निराकार उपासक और साधक तर्क और बौद्धिक शंकाओं के अगाध

सागर में डूबते-उतराते रहते हैं वहीं साकार उपासक उसकी रूपोपासना और गुणानुवादों के अंकन और वर्णन से अपूर्वानन्द की विलक्षण सृष्टि करते हैं।

सूर, तुलसी प्रभृति सगुण भक्त कवियों की कृतियों में दिव्य-सौन्दर्य का अद्भुत प्रस्तार दृष्टिगत होता है। अवतारों के निरूपण में भक्त कवियों ने अपनी श्रद्धा और आस्था के बल पर दिव्य सौन्दर्य का भव्यातिभव्य प्रासाद विनिर्मित किया है। निश्चित ही युग-युगान्तर तक लौकिक प्राणी उसे विस्मय और आश्चर्य से निहार-निहार कर विमोहित होते रहेंगे और अनिवर्चनीय आनंद की प्राप्ति करते रहेंगे।

दिव्य शक्तियों के क्रिया-कलापों तथा उनसे सम्बन्धित वस्तुओं में भी दिव्यता का भाव निहित होना अस्वाभाविक नहीं है। अतः अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से दिव्य सौन्दर्य को निम्न प्रकारों में वर्गीकृत करना समीचीन होगा।

१. पात्रों की दिव्यता

२. लीलाओं की दिव्यता

३. स्थानों की दिव्यता

४. वस्तुओं की दिव्यता

१. पात्रों की दिव्यता

इसके अन्तर्गत कथा में वर्णित अवतारी चरित्रों के कभी न क्षय होने वाले, अनुपमेय और अनिंद्य रूप सौन्दर्य के अध्ययन-आकलन को रखा जा सकता है। चरित्रों को पुरुष, नारी और बाल रूपों में विभाजित कर सकते हैं। सम्पुष्टि हेतु कतिपय उदाहरण दृष्टव्य हैं-

पुरुष सौन्दर्य

कृष्ण का रूप परम सौन्दर्य का अक्षय स्रोत है। उनके सौन्दर्य का बखान नहीं किया जा सकता। वह तो नयन से देखने और हृदय से अनुभूत कर ग्रहण करने की वस्तु है। उनका अप्रितम सौन्दर्य सौन्दर्य के सर्वाधिक मानक प्रतिमान कामदेव को भी अभिभूत कर ठगे से रह जाने पर विवश कर देता है। **कवि परमानन्द दास** कृष्ण के दिव्य सौन्दर्य की अभिव्यक्ति हेतु अपनी क्षमता की ससीमता स्पष्ट करते हुए कहते हैं-

"सुन्दरता गोपालहिं सोहै।
कहत न बने नैन मन आनंद, जा देखत रतिनायक मोहै।।
सुन्दर चरन कमल गति सुन्दर सुन्दर गुंजाफल अवतंस।
सुन्दर वनमाला उर मंडित, सुन्दर गिरा मनों कलहंस।।
सुन्दर बेनु मुकुट मनि सुन्दर सब अंग स्याम शरीर।
सुन्दर बदन अवलोकनि सुन्दर सुन्दर ते बलबीर।।

बेद पुरान निरूपत बहुविधि, ब्रह्म नराकृति रूप निवास।
बलि-बलि जाऊँ मनोहर मूरति, हृदय बसो परमानन्द दास।।[२६१]

सूरदास जी कृष्ण के दिव्य अधरों की लालिमा का वर्णन करते हुये कहते हैं

देखि सखी अधरनि की लाली।
मनि मरकत तै सुभग कलेवर, ऐसे हैं बनमाली।।
मनौ प्रात की घटा साँवरी, तापर अरुन प्रकास।
ज्यौं दामिनि बिच चमकि रहत है फहरत पीत सुबास।।
कीधौं तरुन तमाल बेलि चढ़ि जुग फल बिंब सुपाके।
नासा कीर आइ मनु बैठयौ, लेत बनत नहिं ताके।।
हँसत दसन इक सोभा उपजति, उपमा जदपि लजाई।
मनौ नीलमनि पुट-मुकता-गन बंदन भरि बगराई।।
किधौं बज्र-कन, लाल नगनि खँचि तापर बिद्रुम पाँति।
किधौं सुभग बंधूक कुसुम तर झलकत जलकन कान्ति।।
किधौं अरुन अम्बुज बिच बैठी, सुन्दरताई आई।
'सूर' अरुन अधरनि की सोभा, बरनत बरनि न जाई।।[२६२]

नारी सौन्दर्य

दिव्य नारी सौन्दर्य के अंतर्गत अवतारी नारी चरित्रों यथा सीता, राधा, पार्वती आदि के वर्णन को रखा जा सकता है। अलौकिक शक्ति और श्री प्रभा से सम्पन्न होने के कारण सभी देवियों का रूपांकन मातृवत किया जाता है। प्रकारान्तर से कह सकते हैं कि इस प्रकार के वर्णन में अंग-प्रत्यंगों या नखशिख-निरूपण उचित नहीं। कवि परमानन्द दास राधा के अनुपम सौन्दर्य का बखान करते हुए कहते हैं-

आवति आनंद कंद दुलारी।
विधु वदनी मृगनयनी राधा दामोदर की प्यारी।।
जाके रूप कहत नहिं आवैं गुन विचित्र सुकुमारी।
मानो कछू परयौ धन आखरि बिधना रच्यौ संवारी।।
प्रीति परसपर ग्रंथि न छूटै ब्रजनन रहे बिचारी।
परमानन्द दास बलिहारी मानो साँचे ढारी।।[२६३]

सूरदास राधा के सौन्दर्य की प्रतीति निम्नवत करते हैं-

आज राधिका रूप अन्हायो।
देखत बनै, नहिं आवै मुख-छबि, उपमा अंत न पायो।।

भुवन चतुर्दश की सुन्दरता, राधे मुखहि रचाई।
सूरदास नख सिख की सोभा, मो पै बरन न जाई।।[२६४]

बाल रूप

बाल कृष्ण की अनंत रूप-राशि पर माता यशोदा अत्यंत आनन्द विह्वल हो उठती हैं। कवि परमानन्द दास कहते हैं-

बदन निहारति हैं नंदरानी।
कोटि काम, सत कोटि चन्द्रमा, कोटिक रवि बारति जिय जानी।।
सिव विरंचि जाकी पार न पावत सेष सहस गावत रसनारी।
गोद खिलावति महरि जसोदा परमानन्द किए बलिहारी।।

वहीं सूरदास अभिव्यक्ति देते हैं-

हरि जू की बाल छबि कहौं बरनि।
सकल सुख की सींव, कोटि मनोज-सोभा हरनि।।
भुज भुजंग सरोज नैननि बदन बिधु जित्यौ लरनि।
रहे बिवरनि, सलिल, नभ, उपमा, अपर दुरि डरनि।।
मंजु पेचक मृदुल तन अनुहरत भूषन भरनि।
मनहुँ सुभग सिंगार-सिसु-तरु फरयौ अद्भुत फरनि।।
चलत पद प्रतिबिंब मनि आँगन घुटुरवनि करनि।
जलज संपुट सुभग-छवि भरि लेति उर जनु धरनि।।
पुन्य फल अनुभवति सुतहिं विलोकि कै नंद-घरनि।
सूर प्रभु की उर बसी किलकनि ललित लरखरनि।।[२६६]

२. लीलाओं की दिव्यता

इसके अन्तर्गत अवतारी चरित्रों की लीलाओं का गुणानुवाद रख सकते हैं। कृष्ण की गोवर्धन लीला का एक सुन्दर उदाहरण दृष्टव्य है-

महाबल कीनो हे ब्रजनाथ।
इत मुरली, उत गोपिन सों रति इत गोवर्धन हाथ।।
उत बालक पयपान करावत, इत सुरभी तृन खात।
उतहिं चरत बछरा अपने रस ग्वाल बजावत पात।।
कोप्यौ इंद्र महा प्रलय को भर लायो दिन सात।
परमानंद प्रभु राख लियो ब्रज मेटि इन्द्र की घात।।[२६७]

३. स्थानों की दिव्यता

इसके अंदर दिव्य पात्रों से सम्बन्धित स्थानों का माहात्म्य वर्णन रख सकते हैं। यथा सूरदास जी वृन्दावन की दिव्यता का निरूपण निम्नवत करते हैं-

नित्य धाम वृन्दावन स्याम। नित्य रूप राधा ब्रजधाम।।
नित्य रास जल नित्य बिहार। नित्य मान खण्डित अभिसार।।
नित्य कुंज सुख नित्य हिंडोर। नित्यहिं त्रिबिध समीर झकोर।।
सदा बसन्त रहत जहँ बास। सदा हर्ष जहँ नहीं उदास।।
कोकिल कीर सदा तहँ रोर। सदा रूप मन्मथ चित चोर।।
विविध सुमन बन फूले डार। उन्मत मधुकर भ्रमर अपार।।[२६८]

४. वस्तुओं की दिव्यता

इसके अन्तर्गत अवतारी चरित्रों से संबंधित वस्तुओं में दिव्यता के आभास का रेखांकन रख सकते हैं। यथा सूर को कृष्ण की मुरली भी कृष्ण के समान ही अलौकिक प्रतीत होती है-

मुरली गति विपरीत कराई
तिहूँ भुवन भरि नाद समान्यौ, राधा रमन बजाई।।
बछरा थन नाहीं मुख परसत, चरित नहीं तृन धेनु।
जमुना उल्टीधार चलीं बहि, पवन चकित सुन बेनु।।
विह्वल भए नहीं सुधि काहूँ, सुर गंध्रब नर-नारि।
सूरदास सब चकित जहाँ-तँह ब्रज जुवतिनि सुखकारि।।[२६९]

इनके अतिरिक्त दिव्य सौन्दर्य के सम्यक अनुभावन और अनुशीलन हेतु प्रसंगानुकूल अलौकिक कथा प्रसंगों, दुंदुभीवादन प्रसंगों, सुमन वर्षा प्रसंगों, शाप-वरदान प्रसंगों तथा आकाशवाणी प्रसंगों का आधार भी लिया जा सकता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि **क्षण-क्षण नवीनता को प्राप्त होता हुआ यह अनन्त और दिव्य सौन्दर्य कालजयी रचनाकारों की कृतियों में जब सजीव होकर थिरकने लगता है तब दर्शनों के मन-मयूर अपनी सारी लौकिक वृत्तियों के पंख पसार कर नृत्य करने में मग्न हो जाते हैं। राम, कृष्ण, सीता, राधा, शंकर, पार्वती ऐसे ही अवतार हैं जिनमें त्रिकालज्ञ कवियों की सर्वोच्च मेधा का उत्कर्ष दृष्टिगोचर होता है।** भोली भाली भक्तिमती शबरी के जूठे बेर तभी तो राम ने सराह-सराह कर खाये। कृष्ण ने छप्पन व्यंजन त्यागकर भाव-विभोर विदुर पत्नी द्वारा केलों के छिलकों का आस्वाद्य ग्रहण किया। भक्तों की भावना के वशीभूत होकर ही तो वह निर्गुण-निराकार ब्रह्म, सगुण-साकार बनकर, छछिया भर छाछ पाने की चाह में प्रेममयी गोपांगनाओं के इंगितों पर विवश हो नाच कर उठा। सृष्टि के हित के लिए भला कौन ऐसा प्राणी होगा जो शंकर के विषपान को विस्मृत कर देगा।

त्यागमयी सीता सी धीरता, चिर विरहिणी अनन्य मनसा राधा की मधुरा भक्ति, उदारशीला उमा का पातिव्रत्य कवियों की ऐसी सृष्टि हैं जिन्हें युग-युगान्तर तक स्मरण रखते हुये आदर्श और अनुकरणीय माना जायेगा।

नव नवोन्मेष शालिनी प्रतिभा के दर्शन यहीं तो सुलभ होते हैं। ये सभी अवतार-पुरुष और अवतारी नारियाँ कालजयी सर्जनाएँ हैं। ये अविनश्वर हैं, अक्षय हैं, अनन्त हैं। कविर्मनीषियों ने इन्हें ऐसा प्रेरणा पुंज बनाकर समाज के सम्मुख उपस्थित किया है जो सृष्टि के समूचे अंधकार को दूर करने में सहज रूप से सक्षम हैं। इन सबका मानवीय रूप ही कर्म-कौशल के माध्यम से अनन्त शील, अनन्त शक्ति और अनन्त रूप से समन्वित होकर दिव्यातिदिव्य सौन्दर्य-सिन्धु में निमग्न हो उठा है।

शरीर की साध के कारण समूचा रीतिकालीन काव्य-वांग्मय साहित्य के मंगलमय आदर्श से च्युत होकर पतनोन्मुखी सिद्ध हुआ। जबकि तुलसी सूर आदि के राम, कृष्ण, सीता और राधा की बाँकी एवं अनोखी झाँकियाँ आदर्श के मानदण्ड बनकर शाश्वत और अमर हैं।

साहित्य-सिन्धु-विमन्थन के उपरान्त इन कालजयी कवियों ने हमें दिव्य सौन्दर्य के ऐसे देदीप्यमान रत्न उपलब्ध कराये हैं जिनकी अलौकिक आभा से स्नात हो यह बद्ध आत्मा अखण्ड सुहागिनि बन अपने प्राप्य का प्रत्यक्षीकरण कर सकती है। इस दिव्य सौन्दर्य की अनुभूति के लिये नारी हृदयवत सहज पवित्रता, उदारता एवं आकुलता अपेक्षित है।

३. कलागत सौन्दर्य

(अ) कला का स्वरूप एवं वर्गीकरण

पाश्चात्य मनीषी कला को आर्ट का समानार्थी मानते हैं। प्लेटो ने कला को सत्य की अनुकृति स्वीकारा है किन्तु अनुकरण की प्रवृत्ति को वे अशोभन मानते हैं। **"लाजिकल सिलालिज्म" में प्लेटो लिखते हैं - "इमिटेशन इज बैड आल आर्ट इज इमिटेटिव देयरफोर आल आर्ट इज बैड।" इसे ही सौन्दर्यशास्त्री प्लेटोनिक अटैक आन आर्ट मानते हैं।**[२७०] प्लेटो अनुकरण करने की प्रवृत्ति की भर्त्सना इसलिये करते हैं क्योंकि उनके विचार से कलाकार सदैव अन्तः प्रेरणा से सर्जना न कर वाह्य अभिवृत्तियों के अनुकरण में रमने लगता है। **अरस्तू** प्लेटो के मत से सहमत नहीं होते हुए कला को प्रकृति की अनुगामिनी स्वीकारते हैं। उनके अनुसार- **'कला प्रकृति की अनुकृति है।"**[२७१]

जानसन कला को सत्य पर आधारित मानते हैं। **इमर्सन** की दृष्टि में **'कला वह शक्ति है जो प्राणी को अनन्त शक्ति से सम्बद्ध करती है।' गेटे** शक्ति का अनुसरण करने वाली शक्ति को कला स्वीकारते हैं। **ड्राइडन** का मत है कि जो आत्मानन्द का प्रसार करे वह कला है। **कालरिज** अनुसरण की प्रवृत्ति के साथ कलाकार की कल्पना के समन्वय को कला की मान्यता प्रदान करते हैं। **हावर्ड** का अभिमत है कि - **'कला का जन्म धार्मिक पूजा अर्चना में हुआ।**[२७२] **टाल्सटाय** कला

का मानदण्ड नैतिकता को मानते हैं। उनका विचार है- **'कला प्राणी को सत्य के पथ की ओर अग्रसर करती है।**[२७३]

दान्ते कला को प्रकृति की अनुकृति स्वीकारते हुये अपना मत इस प्रकार देते हैं-**''कला प्रकृति का उसी प्रकार अनुसरण करती है जिस प्रकार शिष्य अपने गुरु का। जब तक उसमें प्रकृति के इस अनुकरण की वृत्ति पाई जाती है तब तक वह ऐसी प्रतीत होती है मानो ईश्वरागत वस्तु है।**[२७४] **माइकेल एंजिलो** का कथन है कि -**'सच्ची कलाकृति दिव्य पूर्णता की प्रतिकृति होती है।** [२७५] **हर्बर्ट रीड ने भी कला विषयक प्रश्नों पर एक सौन्दर्यशास्त्री की दृष्टि से सूक्ष्मावलोकन किया है।**[२७६]

क्रोचे सहजानुभूति की अभिव्यंजना अथवा स्वयं प्रकाश ज्ञान को ही कला मानते हैं। संक्षेप में क्रोचे ने अभिव्यंजना को ही कला स्वीकारा है। **कान्ट** सौन्दर्य की अभिव्यक्ति को कला के रूप में स्वीकारते हैं। **रस्किन** कला में नैतिकता के प्रबल पक्षधर हैं तो गेटे की धारणा है कि कला में रूपाकृति के सहारे सत्य का प्रतिबिम्ब विद्यमान रहता है। **रिचार्डस भी कलागत मूल्यों की सर्वश्रेष्ठता को मानते हैं।**[२७७] वाल्टर पीटर कला **को ही कला का साध्य स्वीकारते हैं।**[२७८] **हिसलर कला, कला के लिये मत के समर्थक हैं।**[२७९]

इसमें कोई सन्देह नहीं कि चाहे कला सत्य की अनुकृति हो, चाहे प्रकृति की अनुकृति, चाहे शक्त्यानुकरण, चाहे आत्मानन्द प्रसारिणी, चाहे कलाकार द्वारा समन्वयकारिणी, चाहे धर्म की ओर प्रवृत्त करने वाली, चाहे नैतिकता की ओर उन्मुख करने वाली, चाहे सहजानुभूति की अभिव्यंजना, प्रत्येक रूप में वह दिव्यातिदिव्य और परम उदात्त है। कला दूसरे को ही अलंकृत करके अपना परम सौभाग्य मानती है। कला में अपने-पराये का भेद नहीं रहता। सच्ची कला में भेद का विगलन होकर अभेदता का स्वरूप उभरता है। कला का सौन्दर्यबोध आत्मा को अनुप्राणित कर देता है। कला मानव-जीवन की शाखा पर प्रस्फुटित वह पारिजात प्रसून है जिसका सहज एवं सरल सौन्दर्य जन-जन को अपनी ओर आकृष्ट करके स्वर्गिक-सुरभि की अनुभूति कराकर स्वयं को कृतकृत्य मानता है।

कला एक ऐसा संगम-स्थल है जहाँ सत्यं, शिवं और सुन्दरम् की धारायें मिलकर एकाकार हो जाती हैं। उसमें कहीं भी पार्थक्य दृष्टिगोचर नहीं होता। कल-कल करती हुई कला की कलित धारा जन-जीवन के कूल-कछारों को, कुंजों को अभिसिंचित करके मरु-भू तक को सरस बना देती है। कला के मस्तक पर सौन्दर्य का हरीक किरीट सुशोभित रहता है। उसकी अनुरागमयी दृष्टि में कल्याण की कामना जन्म लेती है तथा उसके नुपुरों से सत्य के स्वर मुखरित हो उठते हैं।

मोहन जोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई में प्राप्त कलाकृतियों के भग्न अवशेषों से प्रागैतिहासिक काल में भी कलाओं के अस्तित्व के स्पष्ट संकेत उपलब्ध होते हैं। वैदिक काल में भी विभिन्न कलाओं के अस्तित्व के प्रमाण मिले हैं। ऋग्वेद में आध्यात्म को सभी कलाओं का आधार स्वीकारा गया है। अतः यह स्पष्ट रूप से ध्वनित होता है कि कला का इतिहास कम से कम उतना पुरातन तो है ही

जितने कि वेद।

भरत के नाट्य शास्त्र में सर्वप्रथम कला शब्द का प्रयोग हुआ है और तदनंतर **वात्स्यायन** और **उशनश** ने अपने-अपने ग्रन्थों **कामसूत्र** तथा **शुक्रनीति** में इसका प्रतिपादन किया है।

यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि विश्व वांग्मय में कला का विकास कब से हुआ परन्तु यह निश्चित है कि चराचर जगत के सौन्दर्य के प्रति जब मानव की चेतना उन्मुख हुई होगी तब मानव की सौन्दर्य भावना का प्रकाशन कला के माध्यम से हुआ होगा। **हिन्दी साहित्य कोष** में कला और मानव के अविभाज्य संबंध को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है- **"कला और आत्मा का संबंध अविभाज्य है। मानव के द्वारा कला की प्रतिष्ठा हुई और कला के द्वारा मानव ने आत्म चैतन्य एवं आत्मगौरव प्राप्त किया। पाशविक विचारों की तीव्रता कम करने में साहित्य संगीत एवं कला का योगदान** अप्रितम रहा है। **कला के द्वारा** ही मानव जीवन में **माधुर्य और सौन्दर्यशीलता का जन्म हुआ** और कर्तव्य-कर्म सुन्दर एवं मधुर बना।[२८०] **शिव सूत्र विमर्शिनी में आचार्य क्षेमराज ने कला** को आत्मा का **प्रगटीकरण स्वीकारा** है।[२८१]

साधारणतः "कला शब्द का **अर्थ मानवीय क्रिया है विशेष लक्षण ध्यान दृष्टि से देखना', गणना अथवा संकलन करना, मनन और चिन्तन करना एवं स्पष्ट रूप से प्रकट करना है।**[२८२] इस प्रकार से "**कलाकृति के अर्थ में कला शब्द का प्रयोग 'कं लाति' इस व्युत्पत्ति के अनुसार आनन्ददायक-आनन्द** देने वाला अर्थ में **भी होता** है। **शब्द के इस अर्थ से कला विषयक यह सिद्धान्त स्पष्ट** होता है कि **कलाकृति इन्द्रिय सुख** का **साधन** है।"[२८३]

कला शब्द में इतना व्यापकत्व निहित है कि आज भी अनेक परिभाषाओं के बाद भी इसका कोई स्पष्ट अर्थ नहीं ध्वनित होता। शुक्रनीतिसार में विद्या और कला को निम्नवत स्पष्ट किया गया है-

"यद कस्याद वाचिंक सम्यक कर्म विद्यामिसंज्ञत्यम
शक्तोमूकोअपि यत्कर्तुकलाज्ञन्नं तु तत्स्मृतम।।"[२८४]

विद्या, अध्ययनकी वस्तु है जबकि मूक या गूंगा व्यक्ति भी कलावंत बन सकता है। कला में पटु होने के लिए वाणी आवश्यक नहीं। आगे कला के गुणों को और स्पष्ट करते हुये कहा गया है-

"आदान माशुकारित्वं प्रतिदानं चिर क्रिया।
कलासु द्वौ गुणौ ज्ञेयो द्वै कलेपरिकीर्तिते।।"[२८५]

भोजराज ने तत्व प्रकाश में स्पष्ट किया है- **"व्यंजययाति कर्त्तुशक्ति कलेति तेनेह कथित सा" तात्पर्य है कि परमसत्ता की कृतित्व शक्ति का जो अत्यल्प रूप मनुष्य को प्राप्त होता है, कला उसका प्रकाश है।"**[२८६]

उत्तर रामचरित में भवभूति **कहते हैं-'वन्दे महि चतां वाणीम मतामत्यनः कलाम' अर्थात मैं उस वाणी की** वंदना करता हूँ **जिसमें** आत्मा की कला अमृत रूप से **विद्यमान है।"**[२८७]

इस प्रकार आदिकाल से वर्तमान तक मनीषियों ने अपने मत-अभिमत व्यक्त किए हैं। आधुनिक मनीषी राधाकमल **मुखर्जी** के शब्दों में-

(क) "कला मनुष्य के भावों आशा-निराशा तथा त्रुटियों की अभिव्यक्ति का अति उत्तम (Per excellence) माध्यम है।"

(ख) "कला चाहे जिस भी रूप-चित्रकारी, वस्तु निर्माण या मूर्ति निर्माण में हो, सामाजिक मूल्यों के विशाल क्षेत्रों को अभिव्यक्त करती है जो संचार का दूसरा प्रकार नहीं कर सकता।[२८८]

विश्व कवि टैगोर की मान्यता है- **कला में कलाकार स्वयं को व्यक्त करता है।**[२८९] **कला के सन्दर्भ में आचार्य** रामचन्द्र शुक्ल का मत इस प्रकार है कि- **"कला का कार्य है अपने समय के सामाजिक जीवन** को अभिव्यक्त करना।"[२९०] **राष्ट्रपिता महात्मा गांधी कला को आत्मा का ईश्वरीय संगीत स्वीकारते** हैं।[२९१]

हजारी प्रसाद द्विवेदी कला को **"महामाया का चिन्मय विलास"** मानते हुये अपना तर्क इस प्रकार देते हैं- **"महामाया को शिव की लीलासखी होने के कारण ललिता कहा जाता है। इसी ललिता के लालित्य से ललित कलाओं की उत्पत्ति हुई है।**[२९२] **जैनेन्द्र** की मान्यता है कि -**"कला शब्द मनुष्य ने बनाया, इसलिये कि उसके द्वारा वह अपने भीतर अनुभूत किसी सत्य को प्रगट करना चाहता है।"**[२९३]

श्रीमती महादेवी वर्मा कला विषयक अपना मत निम्नवत प्रकट करती हैं- **"बहिर्जगत से अंतर्जगत तक फैले और ज्ञान तथा भावक्षेत्र में समान रूप से व्याप्त सत्य की सहज अभिव्यक्ति के लिए माध्यम खोजते-खोजते ही मनुष्य ने काव्य और कलाओं का आविष्कार कर लिया होगा। कला, सत्य को ज्ञान के सिकता विस्तार में नहीं खोजती, अनुभूति की सरिता के तट से एक विशेष बिन्दु ग्रहण करती है।"**[२९४]

महादेवी जी की कला विषयक धारणा बहुत ही महत्व रखती है क्योंकि वे अनुभूति की अभिव्यक्ति और सत्यं, शिवं, सुन्दरं के समन्वय, दोनों को कला के आवश्यक तत्व के रूप में स्वीकारती हैं। एक अन्य स्थान पर वे कहती हैं- **"कला का सत्य जीवन की परिधि में सौन्दर्य के माध्यम द्वारा व्यक्त अखण्ड सत्य है।"**[२९५]

भगीरथ मिश्र के मतानुसार- **"किसी भी वस्तु का सुन्दर आकर्षण या चमत्कार पूर्ण रूप कला है।"**[२९६] **डॉ० रामकुमार वर्मा** की धारणा है कि -**"कला की पहचान जीवन की ऐसी तरंग है जिसने मानवता** की **उज्जवल सतह पर सौन्दर्य का इतिहास अंकित कर दिया है।**[२९७] **शांतिप्रिय द्विवेदी** मानते हैं कि **"जीवन में जो कुछ सत्य है , शिव है, कला उसे ही सुन्दर बनाकर साहित्य द्वारा संसार के सन्मुख उपस्थित करती है। कला साहित्य का वाह्य रूप है जीवन उसका अन्तः स्वरूप।"**[२९८]

सदगुरु शरण अवस्थी के मतानुसार- **"मानवीय प्रयास की सृजन विधि की मीमांसा का नाम**

कला है।"[२९९] **डॉ० जगदीश गुप्त** अपनी कला विषयक मान्यता स्थापित करते हुये कहते हैं-**"कला मानवीय अनुभूति से अनुप्रेरित सजीव सौन्दर्यात्मक सृजन है।"**[३००] **डॉ० चिरंजीलाल** का मत है- **"कला मानव की चिरसंगिनी है। मानव के विकास से कला का विकास हुआ है।"**[३०१]

डॉ० रामेश्वर दयाल **खंडेलवाल** के अनुसार- **"कला अपने यथार्थ व व्यापक रूप में एक ऐसा मानवीय प्रयत्न है जो अपूर्ण व ससीम दृष्टि में प्रयत्नकर्ता कलाकार को अपनी आत्म की पूर्णता और असीमता का अनुभव कराकर उसे अलौकिक आनन्द प्रदान करती है। कला में मानव की वृत्तियों के परिष्कार द्वारा मानवता की उच्च भूमिका की प्राप्ति का प्रयास होता है। संसार मूलतः दुखदाहमय है। इस दुख और दाह का निरसन और निवारण कला की साधना के द्वारा सुगमता से होता है, अतः कला मानव मुक्ति के लिए मानव मन का एक अत्यन्त सूक्ष्म व सशक्त आविष्कार है। कला के द्वारा मानव मन की सूक्ष्म-गहन अक्षय अनादि सौन्दर्य तृषा की तृप्ति होती है।"**[३०२]

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि कला वह संवेदनशील भाव है जो जन मानस में प्रादुर्भूत होकर अपनी ही भावनाओं को अलंकृत करता है। कला के मार्दव संस्पर्श को पाकर क्या जड़ और क्या चेतन सभी जीवन्त होकर चेतना की आलोक-किरणों से स्नात हो उठते हैं। कला के क्षेत्र में अश्लील और अशिव तत्व प्रवेश ही नहीं पा सकते क्योंकि उसका प्रभाव ही ऐसा आह्लाद कारी और व्यापक होता है कि अश्लील श्लीलत्व में और अशिव शिवत्व में स्वतः ही परिवर्तित हो जाता है।

मेरी धारणा है कि **वास्तव में कला एक ऐसी मनोरम दीपशिखा है जो अपने आस-पास फैले हुए अन्धकार को** विनष्ट **करके** समग्र वातावरण **को** दिव्य विभा **से सुशोभित कर देती है। सच्वी कला ऊर्ध्वगामिनी** वृत्ति है। **वह पतन से उत्थान की ओर, असत्य से सत्य की ओर, मृत से अमृत की ओर ले जाने** का शुभ संकल्प प्रदान करती है। **इसकी वास्तविक अनुभूति करके ही जीव ब्रह्म में लय हो जाता** है। किसी प्रकार का **द्वैत भाव शेष ही नहीं रहता। अद्वैत के अथाह समुद्र में मीन की भाँति** लीन रहकर **वह अखण्डानन्द की सुखानुभूति करता है। वह आत्माराम बन जाता है। तृषित अंतरात्मा को शान्त करने की क्षमता एक मात्र कला में ही सन्निहित है।**

पाश्चात्य और भारतीय मनीषियों ने अनवरत रूप से अपनी प्रतिभा और कौशल के सहारे कलाओं के वर्गीकरण की समस्या का समाधान ढूँढ़ने का प्रयास किया है। परन्तु कलाओं के विभिन्न विभाजनों के उपरान्त भी किसी ऐसे नियम या सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं हो सका है जो सर्वमान्य हो।

भारतीय कला में सर्वत्र विविधता के दर्शन होते हैं इसीलिए भारतीय कला विवेचन में अधिक विश्लेषण और वर्गीकरण दृष्टिगत होते हैं।

भारतीय दर्शन के अनुसार चौंसठ की संख्या को पुनीत और लोक मंगलकारी माना गया है। वात्स्यायन रचित कामसूत्र के व्याख्याता **जयमंगल** इस दृष्टिकोण का आधार काम सूत्र को मानते हुए

स्पष्ट करते हैं कि -"चौंसठ कलायें कामसूत्र रूपी शरीर के अंगों के समान हैं। इनके बिना कामसूत्र में निर्धारित नियम क्रिया रूप में परिणित नहीं हो सकते। इन कलाओं के बिना वात्स्यायन के निर्देशों का पालन भी सम्भव नहीं। चतु:वष्टि रंगविद्याः कामसूत्र रूपावय विनोवयवभूताः तद्भावे कामसूत्रस्या प्रवृत्ते कामसूत्र"[३०३]

कामसूत्र में चौंसठ प्रकरण हैं तथा उसमें स्पष्ट की गई काम तथा रति की चौंसठ क्रियाओं का ही उल्लेख हैं। आचार्यों ने इसी आधार को लेकर कामसूत्र को चतु:वष्टि की संज्ञा से अभिहित किया है- "महर्षि पांचाल ने ऋग्वेद को चतु:वष्टि की संज्ञा इसलिए दी है क्योंकि उसमें आठ अष्टक हैं और प्रत्येक अष्टक में आठ अध्याय हैं जबकि उसके मण्डलों की संख्या दस है। इस प्रकार संख्या चौंसठ को धर्मपूत एवं पवित्र स्वीकार किया गया है अतः कामशास्त्र को ऋग्वेद जैसी धार्मिक प्रतिष्ठा एवं पावनता प्रदान की गई है।"[३०४] कामसूत्र में ललित कलाओं का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। **महाभारत** में कला शब्द का प्रयोग चौंसठ कलाओं की ओर ही इंगित करता है। भरत के **नाट्यशास्त्र** में भी कला शब्द का उल्लेख मिलता है।

कुछ चिन्तकों ने कला के तीन भेदों को मान्यता दी है (१) **दृश्यकला** (२) **श्रव्यकला** (३) **काल्पनिक कला**। जबकि कलाबोधानुसार कला को तीन भेदों में वर्गीकृत करना अधिक उपयुक्त है-

(१) क्लासिकल कलायें

(२) ओरियण्टल कलायें

(३) रोमान्टिक कलायें

कतिपय विचारक कला के दो भेदों को प्रधानता देते हैं- अनुभूति प्रधान तथा रूप प्रधान। जबकि कतिपय चिन्तक कला की विशिष्टता को आधार मानकर उसे दो वर्गों में बाँटते हैं- (१) ललित कला (२) यांत्रिक कला। डॉ० **मनोरमा शर्मा** के अनुसार- "चित्रमूर्ति, काव्य, संगीत आदि कलायें ललित कलाओं के अन्तर्गत आती हैं। सुनार, बढ़ई, कुम्हार आदि यांत्रिक कलायें हैं जो जीवन के लिए उपयोगी भी हैं। संवेदना के आधार पर कला विभाजन दृश्यकला और श्रव्य कला के रूप में किया जा सकता है। वस्तु, मूर्ति और चित्र दृश्य कलायें हैं क्योंकि इनका सौन्दर्य नेत्रों के माध यम से ही हम ग्रहण करते हैं जबकि संगीत और काव्य श्रव्य कला के अन्तर्गत आते हैं क्योंकि इनका सौन्दर्य कर्णेन्द्रियों के माध्यम से मन तक पहुँचता है।"[३०५]

इस प्रकार विभिन्न वर्गीकरण को आधार मानकर कला के दो भेद किये जा सकते हैं- (१) **ललित कला** (२) **उपयोगी कला**। ललित कला की भित्ति सौन्दर्य है तो उपयोगी कला की उपयोगिता। ललित कलाओं के अन्तर्गत पाँच उपभेद माने जा सकते हैं- (१) **संगीत कला** (२) **मूर्तिकला** (३) **चित्रकला** (४) **वास्तुकला** और (५) **काव्य कला**।

उपयोगी कला के सन्दर्भ में **सरोजनी मिश्रा** का विचार है- "मनुष्य जब अपने अनुभूत सौन्दर्य का पुनर्विधान अपने हित तथा उपयोग की दृष्टि से करता है, तभी उपयोगी कला का विकास होता

है।[३०६] ललित कला के बारे में उनकी धारणा है- **अनुभूत सौन्दर्य के जिस पुनर्विधान से हमारी आत्मा का विकास हो,** हमारे **मन का रंजन हो, हमारी चेतना सजीव हो, वही ललित कला के नाम से अभिहित किया** जा **सकता है।"**[३०७]

अतः कलागत विभाजन प्रायः सभी ने अपनी-अपनी सुविधानुसार किया है। किन्तु मूलतः ललित कला और उपयोगी कला का वर्गीकरण ही सर्वाधिक समीचीन परिलक्षित होता है। भारतीय मनीषियों के मतों-अभिमतों से भारतीय विचारकों के कलागत दृष्टिकोण की विशदता का आभास मिलता है किन्तु यहाँ यह भी विचारणीय है कि प्रायः सभी भारतीय विचारकों ने काव्य और कला को अलग-अलग स्वतंत्र इकाई के रूप में मान्यता दी है। **रामेश्वर प्रसाद खंडेलवाल** के अनुसार- **"भारत में कला** शब्द **के प्रयोग कामशास्त्र की चौंसठ कलाओं के संदर्भ में हुआ है अतः बहुत से विद्वान 'कला'** शब्द का **प्रयोग को** साहित्य **में प्रश्रय नहीं देते। साहित्य विद्या है और कला उससे निम्नतर** उपविद्या है, **अतः भारतीय विचारकों की दृष्टि में साहित्य या काव्य जैसी वस्तु के लिये 'कला' शब्द** हल्का है।"[३०८]

भरत, भामह, दण्डी, अभिनवगुप्त, भोजराज और शिव सूत्र विमर्शिनीकार आदि के विचारों के आधार पर **जयशंकर** प्रसाद यह सुनिश्चित करते हैं कि-"**कला** (शैवागम में स्वीकृत आत्मा के पंच कंचुकों में से एक कंचुक या आवरण) **आत्मा की संकुचित कर्तव्य शक्ति का रूप है** (ध्यान रहे कि काव्य में हम सीमित नहीं रहते, असीमित होकर परम आनन्द का अनुभव करके पूर्ण काम हो जाते हैं।) तथा **छन्द, समस्यापूर्ण, गीत, वाद्य, नृत्य, संगीत, वास्तु निर्माण, मूर्ति शिल्प आदि तक ही सीमित है और वह** (कला) **सिद्धान्त शास्त्रीय विषय व विज्ञान से ही अधिक सम्बन्ध रखती है।**[३०९] **अतः काव्य व कला** दोनों **परस्पर भिन्न वर्ग की वस्तुएँ हैं।"**[३१०]

वस्तुतः अन्य विषयों **की** तरह **कला भी काव्य का एक विषय ही है।**[३११] **आचार्य शुक्ल के अभिमतों से भी यह** मान्यता स्पष्ट होती है।"[३१२] **डॉ० नगेन्द्र भी कला को काव्य से अलग निम्न स्तर की 'उपविद्या'** स्वीकारते हैं।[३१३] आचार्य **विश्वनाथ भी 'कला'** का स्थान **निम्न** मानते हैं।[३१४] प्राचीन युग के चिन्तक **राजशेखर** ने विद्या और उपविद्या के क्षेत्र स्पष्टतः पृथक रखते हुए **काव्य को विद्या के अन्तर्गत** माना है उपविद्या में नहीं, कला **जिसके अन्तर्गत** है।"[३१५] **आचार्य शुक्ल** भी एक स्थान पर लिखते हैं- "**सौन्दर्यशास्त्र** में जिस **प्रकार चित्रकला, मूर्तिकला आदि शिल्पों पर विचार होने लगा है उसी** प्रकार काव्य का **भी, सबसे बेढंगी बात तो यह हुई।**[३१६] अपने विचार को और स्पष्ट करते हुये वे आगे कहते हैं कि- "**काव्य को कला मानने की भ्रांत धारणा के ही कारण हिन्दी समीक्षा में अभिव्यंजनावाद,** सौन्दर्यवाद और **रहस्यवाद आदि का विवेचन होने लगा है। यदि ऐसा न होता तो काव्य में** इनके **विवेचन की कोई आवश्यकता न पड़ती क्योंकि काव्य से इनका कोई सीधा संबंध ही नहीं** है।[३१७] एक स्थान पर **प्रसाद** अनुभूति और अभिव्यक्ति के अंतरालवर्ती संबंध को जोड़ने के लिये कला शब्द के प्रयोग को (विकल्प की दृष्टि से) स्वीकृति हेतु तैयार हो जाते हैं।

वे लिखते हैं- **"उस अनुभूति-अभिव्यक्ति के अंतरालवर्ती संबंध को जोड़ने के लिए हम चाहें तो कला का नाम ले सकते हैं.........इसी अभिव्यक्ति के वाह्य रूप को कला के नाम से काव्य में पकड़ रखने की साहित्य में प्रथा सी चल पड़ी है।"**[३१८]

क्रोचे की ओर दृष्टि निक्षेप करने से स्पष्ट होता है कि कला एक ऐसी अखण्डाभिव्यक्ति है जिसका विभाजन न किया जा सकता है और न ही हो सकता है। पाश्चात्य साहित्य में प्रायः कला का प्रयोग शारीरिक या मानसिक कौशल के निमित्त ही व्यवहृत हुआ हैं इसीलिये फाइन आर्टस के हिन्दी रूपान्तरण में ललित कला का प्रयोग सर्वस्वीकृत है। कला का कार्य प्रकृति से बिल्कुल पृथक है। कला का स्पष्ट अर्थ है निर्माण या रचना करना। इस प्रकार कला और प्राकृतिक सृष्टि दोनों को एक रूप में स्वीकृति देना निश्चित रूप से भ्रामक होगा। दोनों में मूल रूप से एक ही प्रमुख अंतर है कला पूर्ण रूप से मानवीय सर्जना है जबकि प्राकृतिक सृष्टि उस परम शक्ति द्वारा विनिर्मित और नियन्त्रित है। ललित कलायें सौन्दर्य शास्त्र से सम्बन्धित हैं। प्रकारान्तर से कह सकते हैं कि सौन्दर्य का उद्घाटन और रूपायन ललित कलाओं के माध्यम से ही साकार होता है। मानव ललित कलाओं के माध्य से उस परम शक्ति के आभास को रेखांकित कर अपूर्व आनन्द में निमग्न रहने के प्रयास में अनवरत संलग्न रहने का प्रयास करता है। ललित कलाओं के माध्यम से मानव अपनी कल्पित अमूर्त संभावनाओं को ही मूर्त स्वरूप प्रदान करता है।

सौन्दर्य और कला का पारस्परिक सम्बन्ध आत्मा और शरीरवत है। दोनों का अस्तित्व पृथक होने पर भी उनमें अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होता है। सौन्दर्य के बिना कला का कोई अस्तित्व नहीं और कला के बिना सौन्दर्य का क्योंकि सौन्दर्य ही कला की प्राणवत्ता है। **सुरेन्द्र बारलिंगे** का कथन है- **सौन्दर्य दृष्टि के बिना कला का निर्माण नहीं होता। यद्यपि सौन्दर्य का आदर्श नेत्रों के सामने रखने पर कला का निर्माण होता है।**[३१९] कला के अंगों में समुचित सन्निवेश से ही सौन्दर्य की सृष्टि संभव होती है। कलाकार के लिए सर्वत्र सौन्दर्य का प्रसन्न प्रस्तार उपलब्ध रहता है। इसीलिए कलाकार को सौन्दर्याभिव्यक्ति के लिये किसी वस्तु विशेष की अनिवार्यता नहीं होती।

सुरेन्द्र बारलिंगे कला और सौन्दर्य के सम्बन्ध में कहते हैं- **"शब्द और अर्थ, भाषा और विचारों का जो सम्बन्ध है, वही कला और सौन्दर्य का सम्बन्ध होना चाहिये। कला सौन्दर्य की भाषा है और विशिष्ट प्रतिमाएँ कला की भाषा हैं। इन प्रतिमाओं से प्रथम कला की ओर तत्पश्चात सौन्दर्य की अभिव्यक्ति और अनुभूति होती है।"**[३२०]

इस प्रकार सौन्दर्य के धरातल पर अवस्थित कला में जीवन को सार्थक रूप से आकलित करने की क्षमता उदभूत हो जाती है। एक मात्र सौन्दर्य के लक्ष्य को अपनी कल्पना से रंगकर कलाकार निर्माण प्रक्रिया में संलग्न होता है जिसकी परिणति स्वरूप सहृदय, सौन्दर्य की अपूर्व प्रतीति करता है।

पाश्चात्य कला में केवल सौन्दर्य भावना की तुष्टि का ही उद्देश्य लक्षित होता है जबकि भारतीय

कला में सौन्दर्य के रूपांकन के साथ एक समर्पण भाव भी समन्वित दृष्टिगत होता है जो अन्ततः मानसिक शान्ति प्रदान करता है। इसका अर्थ कदापि यह नहीं कि भारतीय कला में आकृति सौन्दर्य की न्यूनता या अभाव है वरन भारतीय कला में भाव और रूप का समन्वय मनोवैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर किया गया है। यत्र-तत्र आध्यात्मिकता का समुचित निवेश उसके स्वरूप को निखारने में योग देता है। भारतीय कला सत्य और नैतिक आदर्शों की संवाहिका है। चिन्तन और मन्थन के कारण उसमें लोकोन्मुखता का गुण समाहित हो जाता है अतः उसे पाश्चात्य कला की भाँति वाह्य सौन्दर्य की अभिव्यक्ति मात्र नहीं माना जा सकता। आंतरिक भावों की पावनता से समन्वित भारतीय कला, सौन्दर्य को उदात्त धरातल प्रदान करती है। इस प्रकार निकष रूप में कहा जा सकता है कि भारतीय कला बहुआयामी है।

ललित कलाओं का एक दूसरे से अन्तः संबंध होता है। **"काव्य में वास्तुकला की एकता, पूर्णता सन्तुलन, अनुपात आदि गुण वर्तमान रहते हैं। मूर्तिकला और चित्र के से उसमें चित्र रहते हैं, अन्तर केवल इतना है कि उसमें चित्र शब्दमय होते हैं। काव्य का संगीत से तो विशेष सम्बन्ध है ही। इस प्रकार काव्य में कलाओं के मूल तत्व आ जाते हैं।**[३२१] इस संदर्भ में पंत की निम्न पंक्ति ध्यातव्य है-

रूप रूप बन जाएँ भाव स्वर चित्र गीत झंकार मनोहर

आचार्य शुक्ल के अनुसार- **"इसलिये तो जहाँ पर कि साहित्य को कलाओं में उच्चतम स्थान दिया जाता है वहाँ पर यह भी कहा जा सकता है कि साहित्य, संगीत, चित्र तथा शिल्प आदि कलाओं के समाहार व्यतिरेक के सिवा और कुछ भी नहीं है अर्थात उसका वैयक्तिक स्वरूप अन्य कलाओं के मिलित अंशों को छोड़कर और कुछ भी नहीं है।**[३२२]

स्वर और शब्द के माध्यम से भावाभिव्यक्ति के औचित्यपूर्ण प्रकाशन को काव्य की संज्ञा दी जाती है इसलिये सौन्दर्य की सर्वोत्कृष्ट और सम्पूर्ण अभिव्यक्ति केवल काव्य में ही सम्भाव्य है क्योंकि काव्य में सभी ललित कलाओं का समुचित अभिनिवेश होता है। **"इस समन्वय की सर्वाधिक व्यापकता के कारण महाभारत पंचम वेद माना जाता है। वाल्मीकि, कालिदास, तुलसीदास की महिमा का भी यही रहस्य है। इनमें जीवन के भावतत्व और उनकी अभिव्यक्ति के रूप का ही समन्वय नहीं है। इसके साथ-साथ एक विशाल परिमाण में जगत के वस्तु-तत्वों और वस्तुरूपों का भी सन्निधान है। जीवन का भाव-तत्व काव्य को मर्मस्पर्शी बनाता है। अभिव्यक्ति उसे सुन्दर बनाती है।**[३२३]

आत्मिक संगीत की विशिष्टता के आधार पर काव्यकला को अन्य ललित कलाओं से श्रेष्ठ माना जाता है क्योंकि जहाँ अन्य ललित कलाओं में ऐन्द्रिक संवेदन तीव्रता से मुखर होते हैं वहीं काव्यकला में आत्मिक संवेदन पूरी संगीतात्मकता के साथ अत्यंत मार्मिकता से सम्प्रेषित होते हैं। यही कारण है कि काव्यकला में सहृदय का साधारणीकरण सहजता से होता है।

किसी भी कला के श्रेष्ठत्व की अनिवार्य शर्त है उसका मूर्त आधार पर कम से कम आश्रित होना। संगीत में अल्पाधिक मूर्त्ताधार रहता है। चित्र कला में अल्प अमूर्त्ताभास होता है। मूर्तिकला एक ही भंगिमा तक सीमित है और वास्तु कला की गिनती वैसे भी स्थूल कलाओं में होती है। अनुभूति और अभिव्यक्ति की दृष्टि से केवल काव्य कला में ही शाश्वत मधुरता का आभास होता है। काव्य में संगीत के स्वर, नृत्य की लय और चित्रकला के रूप का अनुपम सामंजस्य रहता है।

इसी कारण काव्य को ललित कलाओं में श्रेष्ठ माना गया है। **के०सी० पाण्डे** इसी प्रकार का अभिमत व्यक्त करते हुए कहते हैं- The objective aspect of poetic experience is continued, not by what is externally real. But by what is ideal by some thing that exists exclusively in the concious life itself, some thing that conceived and imaged by the mind. Poetry, there fore is regarded as the highest type of art in so for as the experience that is presents and aroussa is free from the senseous element."[३२४]

काव्य में सभी कलाओं के मूल तत्व निवेशित रहते हैं। काव्य-कला की मूल विशेषता यह है कि काव्य में गतिशीलता को व्यंजित किया जा सकता है। अन्य कलाएँ केवल सीमित तथ्यों को रूपांकित, रेखांकित और अभिव्यंजित करती है किन्तु काव्य में संगीत भी है, चित्र भी है, मूर्ति भी है और भाव भी, इसीलिए काव्य को सर्वोत्कृष्ट कला का अभिधान देना असंगत न होगा।

"मन्दिरों के मौन कलश में, मूर्तियों की मूक मुद्राओं में, चित्रों की निस्पन्द आकृतियों में एवं संज्ञा शून्य सी बना देने वाली संगीत की स्वर लहरियों में हमें पुनः निर्माण की वे नूतन प्रेरणाएँ नहीं मिलतीं जो काव्य कला में मिलती हैं। यों तो सभी कलाएँ पुनः सृष्टि ही हैं पर काव्य-कला एक मात्र ऐसी पुनः सृष्टि है जो पुनः निर्माण की प्रेरणा देती है।[३२५]

प्रत्येक कला का उद्देश्य रसानुभूति कराना ही है। इसी कारण प्रत्येक कला का अपना विशिष्ट महत्व है। मात्र मूर्ताश्रितता को कसौटी मानकर अन्य कलाओं को निकृष्ट मान नकारा नहीं जा सकता किन्तु संवेदनात्मक अनुभूति की सर्वाधिक समर्थ अभिव्यक्ति क्षमता और मर्मस्पर्शी संप्रेषणीयता के कारण अन्य ललित कलाओं से काव्य कला को उत्कृष्ट मानना कतई अव्यावहारिक नहीं है।

(ब) सौन्दर्यानुभूति की अभिव्यक्ति

पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित सौन्दर्यानुभूति विषयक मतों में सौन्दर्य की ही भाँति पारस्परिक मत वैभिन्य दृष्टिगत होता है।

यूनानी विचारकों ने सौन्दर्य के मूलाधार और उसकी यथार्थता को ही अपने चिन्तन की परिधि में रखकर अपने दृष्टिकोणों का प्रतिपादन किया है। सौन्दर्य शास्त्रियों में एक वर्ग रूपवादियों का है जो कलानुभूति को जीवन से असम्बद्ध मानकर अपनी विचारधारा प्रदर्शित करते हैं। दूसरे वर्ग में प्रकृतिवादी परम्परा के चिन्तक आते हैं। इस वर्ग के विचारकों ने कलानुभूति का जीवनानुभूति से अपरिहार्य सम्बन्ध मानकर अपनी विचारधारा का पोषण और पल्लवन किया है, इसके लिये उन्होंने

मनोविज्ञान के धरातल को भी स्वीकार किया है।

प्लेटो के अनुसार जगत प्रत्यय का प्रतिबिम्ब है और इसलिये उसे वास्तविक नहीं माना जा सकता और इसीलिये जगत में व्याप्त और व्यक्त सौन्दर्य को भी अवास्तविक ही माना जाना चाहिये। जबकि **अरस्तू** जगत में प्रत्यय और पदार्थ की एकात्मकता को स्वीकारने के साथ सौन्दर्य की यथार्थता को मान्यता देते हैं। **प्लाटिनस** ने सौन्दर्योन्मेष को आध्यात्मिक साक्षात्कार से सम्बन्धित स्वीकार किया है। इन विचारकों के उपर्युक्त दृष्टिकोणों के बाद ही वस्तु-सौन्दर्य और सौन्दर्यानुभूति पर अलग-अलग चिन्तन-मनन की व्यापक परम्परा प्रारम्भ हुई।

डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त के अनुसार- **"प्लेटो के विचार से कविता से प्राप्त होने वाला आनन्द भावोद्वेलन जन्य है अतः ये इसे भावात्मकता के स्तर पर इसे प्रतिष्ठित करते हैं। जबकि अरस्तू ने प्रत्येक कला से प्राप्त आनन्दानुभूति का सम्बन्ध अनुकरण की प्रवृत्ति से स्थापित करते हुये स्पष्ट किया है।......अरस्तू ने कलास्वादन के आनन्द को ज्ञानार्जन जन्य आनन्द मानते हुये उसे अप्रत्यक्ष में बौद्धिक स्तर का आनंद स्वीकार किया है किन्तु परवर्ती युग में लौंजाइनस एवं होरेस ने काव्यानन्द को आत्मिक स्तर की अनुभूति के रूप में ग्रहण किया है।"**[३२६]

सुप्रसिद्ध चिन्तक **डेकार्टे** का मत है कि- **"यह एक ऐसी अनुभूति है जिसमें बौद्धिक आनंद, कला और साहित्य के आस्वादन से उद्दीप्त भाव से समन्वित होता है। आनन्द का स्वरूप स्पष्ट करते हुये उन्होंने बताया कि यह एक प्रकार का मनोनुकूल भाव है अर्थात जब हमारी आत्मा अनुकूल वस्तु का आस्वादन करती है तो आनन्द का उद्रेक होता है। उन्होंने आनन्द के तीन भेद निश्चित किए- (१) ऐन्द्रिय आनंद (२) काल्पनिक आनंद (३) बौद्धिक आनंद।......जब कलाओं के माध्यम से बौद्धिक आनंद की अनुभूति होती है तो उसे सौन्दर्यात्मक आनंद या रसानुभूति कह सकते हैं।**[३२७] इस प्रकार डेकार्टे कलाजन्य आनन्द को ही बौद्धिक आनंद की स्वीकृति देते हैं जो व्यावहारिक रूप से नितान्त अयुक्तिसंगत है। परवर्ती विचारकों ने भी इसे भ्रांत धारणा मानकर इसका समाधान प्रस्तुत किया है।

"ह्यूम ने सौन्दर्यानुभूति के सिर्फ दो उचित मार्ग दृष्टि और श्रवण को ही सौन्दर्यानुभूति का साधन नहीं माना। उनके लिए मनोवेग, मनोभाव और संवेग अधिक महत्वपूर्ण थे।"[३२८] **एडमण्ड बर्क** वस्तुगत सौन्दर्य के साथ आस्वादक की सौन्दर्यानुभूति को भी समान रूप से महत्व देते हैं। वे वस्तुनिष्ठ सौन्दर्य के सात गुणों को अपनी स्वीकृति प्रदान करते हैं- **"(१) सापेक्षिक लघुता (२) बहुरंगिता (३) मृदुलता (४) अंगों की परस्पर अन्विति (५) प्रकृति की सुकुमारता (६) प्रभामय स्पष्टता और (७) चमकीले गहरे रंगों की वैपरीत्य योजना। सौन्दर्यानुभूति के संबंध में रुचि की चर्चा करते हुए उसे कल्पना और बुद्धि दोनों से सम्बन्धित माना है।"**[३२९] बर्क की उपर्युक्त धारणा से यह स्पष्ट ध्वनित होता है कि बुद्धि, कल्पना एवं इन्द्रियों तीनों माध्यमों से काव्यानन्द का बोध सम्भव है। प्रकारान्तर से कहा जा सकता है कि बर्क ने काव्यानुभूति के निमित्त बुद्धि, कल्पना और

इन्द्रियों के समन्वय को मान्यता प्रदान की है।

हरमन लात्ज भी रसानुभूति का सम्बन्ध ऐन्द्रिय बोध, बौद्धिक उत्कर्ष एवं सौन्दर्यानुभूति से जोड़ते हुए उसे शारीरिक मानसिक एवं आत्मिक स्तर की प्रसन्नतादायक अनुभूति के रूप में स्वीकृति प्रदान करते हैं। **"उन्होंने सौन्दर्यानुभूति या रसानुभूति के लिए एक नये भाव की कल्पना की जिसे सौन्दर्यात्मक भाव** (Aesthetic emotion) **कहा गया।"**[३३०]

कलिंगवुड की सौन्दर्यानुभूति विषय धारणा अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने प्रत्यक्षानुभूति और कलानुभूति की अलग-अलग तार्किक और सारगर्भित व्याख्या प्रस्तुत कर कलानुभूति और रसानुभूति की अभिन्नता की प्रतिस्थापना पर बल दिया। उनकी मान्यता है- **"कला द्वारा प्राप्त रसानुभूति में न केवल हमारे भावों का उद्वेलन या उद्दीपन होता है अपितु उनकी सम्यक अभिव्यक्ति भी होती है। इसलिए भावानुभूति एवं भावाभिव्यक्ति का जो आनन्द उच्च्व कोटि की कला से प्राप्त होता है वह दैनिक जीवन की प्रत्यक्ष अनुभूतियों से सम्भव नहीं।"**[३३१] कलिंग वुड की इस धारणा से स्पष्ट है कि लौकिक भाव ही काव्य में अनुभूत होकर सौन्दर्यात्मकता संप्रेषित करते हैं। निश्चित रूप से उनकी सौन्दर्यानुभूति विषयक धारणा अपना एक विशिष्ट महत्व रखती है।

कांट की धारणानुसार **"सौन्दर्यानुभूति या सौन्दर्य भावना की चार विशेषताएँ हैं- (१) आनन्दानुभूति (२) लौकिकता से निर्लिप्त तटस्थ अनुभूति (Contemplation) लौकिक सामाजिक अनुभूति शुद्ध सौन्दर्यानुभूति से भिन्न आनुषंगिक अनुभूति है (३) उद्देश्यहीन सार्थकता** (Purposiveness without purpose) **और (४) इन्द्रियों और मन की स्वच्छन्द क्रियाशीलता और सामंजस्य से उत्पन्न एकोन्मुखता, चैतन्यमयता और पूर्णता है।"**[३३२] कांट की सौन्दर्यानुभूति जहाँ वैयक्तिकता का भाव मुखर करती है वहीं दूसरी ओर उसकी सार्वभौमिकता को भी स्वीकृति प्रदान करती है। वास्तव में सच भी है पूर्वाग्रह और निजी स्वार्थ से मुक्त हो जाने पर कोई भी वस्तु सभी को आनन्दोपलब्धि कराने में समर्थ हो जाती है।

क्लाइव वेल सौन्दर्यानुभूति को पूर्णतः विशिष्ट, विलक्षणता से युक्त एवं नितान्त व्यक्तिगत स्वीकार करते हैं। उनके मतानुसार- **"किसी भी कलाकृति में प्रतिदर्शक तत्व अहितकर हो या न हो, अप्रासंगिक अवश्य होता है क्योंकि कलाकृति के आस्वादन के लिए जीवनगत विचारों और प्रसंगों का ज्ञान, लौकिक अनुभूतियों से परिचय, यहाँ तक कि किसी रूप में भी लौकिक जीवन का संसर्ग अनिवार्य नहीं है।"**[३३३] जीवनानुभवों के बहिष्कार के कारण उनके सौन्दर्यानुभूति विषयक सिद्धान्त में दुर्बलता स्पष्ट रूप से लक्षित होती है।

आई.ए. रिचार्डस की गणना प्रकृतिवादी विचारकों में की जाती है। वे कलानुभूति को जीवनानुभवों से संपृक्त कर अपने विचार प्रस्तुत करते हैं उनका विचार है कि काव्य जगत का सत्य किसी भी अर्थ में शेष सृष्टि से भिन्न नहीं होता। जगत से कोई भिन्न विशेषताएँ उसमें नहीं पाई जातीं। **हर्बर्ट रीड**[३३४] मुक्तावस्था को कलानुभूति के समकक्ष ही स्वीकृति देते हैं।

जान डयूई जीवनानुभवों से प्राप्त गुणों की तुलना में सौन्दर्यानुभूति को उच्चतर स्वीकृति देते हुये रिचार्डस के मत का समर्थन करते हैं। उनकी धारणा है- **"जीवन विविध अनुभवों का निरन्तर प्रवाह है। सामान्य अनुभवों और सौन्दर्यानुभूति में अभिन्नता इस अर्थ में है कि दोनों एक ही जीवन प्रवाह के अंग हैं। भेद इस अर्थ में है कि सौन्दर्यानुभव जीवनानुभव का एक अधिक चारु, सूक्ष्म और ललित रूप है।**[३३५] इस प्रकार डयूई कलानुभवों में सौन्दर्यानुभूति की सत्ता को स्वीकृति प्रदान करते हैं।

शापेन हावर सौन्दर्यानन्द को पूर्णतः निष्काम स्वीकारते हुये कहते हैं- **"सौन्दर्यानुभूति के क्षणों में व्यक्ति स्वयं को वस्तु में और वस्तु को अपने में देखता है, एक अर्थ में वह वस्तु से तादात्म्य स्थापित कर लेता है। वह अपना व्यक्तित्व खो देता है। तब इच्छा का जगत मिट जाता है, सिर्फ प्रत्ययों का जगत शेष रह जाता है।**[३३६] शापेन हावर की धारणा है कि सौन्दर्यमूलक आनन्द केवल प्रकाश से प्राप्त होता है क्योंकि वह इच्छायुक्त होता है। शापेनहावर की धारणा भारतीय चिन्तकों के सदृश प्रतीत होती है। **जार्ज सान्त्याना**[३३७] सौन्दर्य से प्राप्त आनन्द को विशिष्ट प्रकार के आनंद की मान्यता देते हैं क्योंकि उनके अनुसार कलाकार उसमें भौतिक सत्ता को भूल जाता है और उच्च धरातल को प्राप्त कर लेता है।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक **थियोडोर लिप्स** ने **'सह संवेदन सिद्धान्त'** के प्रतिपादन से सौन्दर्यशास्त्र में नई हलचलें उत्पन्न कीं। उनके विचार से प्रत्येक सौन्दर्य मूलक वस्तु जीवित सत्ता का ही प्रतिनिधित्व करती है इसीलिये प्रत्येक सौन्दर्यमूलक वस्तु संवेदन उत्पन्न करने में सहायक की भूमिका का निर्वाह करती है। उनकी धारणानुसार- **"संक्षेप में सौन्दर्यानुभूति का आनन्द, वस्तु में आरोपित अपनी ही क्रियाओं के फलस्वरूप उत्पन्न होता है। जब हम प्रसन्न होते हैं तो चाँद मुस्कराता है, जब उदास होते हैं तो बादल उदासी व्यक्त करने लगते हैं,...... मन की अचेतन और आंतरिक अनुकृति सौन्दर्यानुभूति के क्षण से सम्बन्धित होती है। जब वस्तु और आत्मा के बीच का अंतर मिट जाता है और एक दूसरे का तादात्म्य स्थापित हो जाता है तो वह सहसंवेदन का वास्तविक रूप होता है।"**[३३८] इस प्रकार लिप्स ने सौन्दर्यानुभूति को आत्मिक क्रिया की मान्यता देते हुए अपने विश्लेषण में मनोवैज्ञानिक सत्य के उद्घाटन को प्रमुखता दी है।

अर्नाल्ड रीड[३३९] सौन्दर्यानुभूति को सामान्य ऐन्द्रिय बोध से उच्च स्तर की मानते हैं। **सूजन लेंगर** सौन्दर्यानुभूति को प्रत्यभिज्ञान की शक्ति से निष्पन्न स्वीकार करते हुए स्पष्टतः विचार देते हैं कि- **"एक बार ज्यों हम चारों ओर से अपना ध्यान हटा कर कलाकृति की ओर उन्मुख होते हैं, हम कलाकृति से संलग्न उस कलात्मक गुण के सम्पर्क में आ जाते हैं जिसे सामान्यतः सौन्दर्यानुभूति कहा जाता है। यह अनुभूति कलाकृति की साक्षात अनुभूति नहीं बल्कि उसके अनुचिंतन से निष्पन्न 'वास्तविक संवेग' है क्योंकि सौन्दर्यानुभूति कलाकृति में अभिव्यंजित नहीं होती, बल्कि उसका सम्बन्ध तो ग्राहक से है।"**[३४०] लेंगर ने कलावादी और प्रकृतिवादी

विचारधाराओं की अतिवादिता को नकारते हुये मध्यम मार्ग के अनुसरण अर्थात समन्वय को प्रमुखता दी है।

डॉ० कृष्ण बल ने काव्यास्वाद विषयक पाश्चात्य धारणाओं[३४१] को संक्षेप में निम्नवत प्रकट किया है-

"(१) **वैषयिक** - ऐन्द्रिय आनन्द (प्लेटो)

(२) **बौद्धिक आनन्द** - (डेकार्टे आदि)

(३) **कल्पना का आनन्द** - (एडीसन, कालरिज आदि)

(४) **संवेगोददीप्त एवं भावोद्वेलन जन्य आहलाद** - (बोहला, ड्राइडन)

(५) **आध्यात्मिक आनन्द** - (सिडनी, बेन जानसन, काण्ट, हीगेल आदि)

(६) **कवि एवं प्रमाता के भावगत तादात्म्य से प्राप्त आनन्द** - (इस धारणा का संकेत होरेस के विवेचन में तथा स्पष्ट निरूपण क्रोचे और इलियट के विवेचन में प्राप्त होता है।)

(७) पश्चिम में काव्यास्वाद विषयक उक्त मूल धारणाओं के अतिरिक्त **तत्सम्बन्धी कुछ अन्य धारणायें** भी उपलब्ध होती हैं-

(क) रचना कौशल से उत्पन्न चित्त चमत्कार - (आस्कर वाइल्ड)

(ख) सुख-भ्रम का अवास्तविक आनन्द

(ग) वस्तुजगत के मूल बिम्बों तथा काव्य निबद्ध विम्बों की तुलना से प्राप्त आनंद (एडीसन, **बर्क**)

(घ) सहजानुभूति का विषयगत आनन्द (क्रोचे)

(च) अन्तर्विरोधी मनोवेगों के समंजन से प्राप्त परितोषमयी अनुभूति (रिचार्डस)

भारतीय विचारकों ने सौन्दर्यानुभूति को रसानुभूति मानते हुये अपने दृष्टिकोणों का सम्यक प्रतिपादन किया है। **डॉ० हरद्वारी लाल शर्मा** का कथन है -**"संक्षेप में ध्वनि के द्वारा सौन्दर्य को सम्पूर्ण पारिभाषिक अनुभूति** (Aesthetic experience perexellence) **बताया गया है। वस्तुतः यह आत्मा की वह स्थिति पैदा करती है, जिसे हम योग की मात्रा में 'मधुमती', ज्योतिष्मती, विशोका ऋतम्बरा' भूमिका कह सकते हैं। वह रसानुभूति की चरम और प्रकष्ट अवस्था है।"**[३४२]

कला या काव्य का एक मात्र उद्देश्य या प्रयोजन है- रसानुभूति या सौन्दर्यानुभूति के माध्यम से अपूर्व आनन्द प्रदान करना। भारतीय वांग्मय में सौन्दर्यानुभूति के पर्याय के रूप में, कलास्वाद, रसास्वाद, काव्यास्वाद, कलानुभूति, अलौकिक आनन्द, चर्वणा, विश्रान्ति आदि शब्दों के प्रयोग को स्वीकृति और मान्यता मिली है। **डॉ० कृष्ण बल** स्पष्ट रूप से काव्यास्वाद को ही सौन्दर्यानुभूति के पर्याय रूप में प्रतिष्ठापित करते हैं और प्रयोग भी करते हैं- **"सौन्दर्यानुभूति - पश्चिम के सौन्दर्यशास्त्रियों तथा उनसे प्रभावित पाश्चात्य और भारतीय समालोचकों ने काव्यास्वाद का स्वरूप विश्लेषण काव्यानुभावन से उदभूत प्रमाता की सौन्दर्यानुभूति के अन्तर्गत किया है।**[३४३] **डॉ० नगेन्द्र**

की धारणा है कि- **"साहित्य का रस जहाँ रस का अर्थ है (अ) काव्य सौन्दर्य (आ) काव्यास्वाद तथा काव्यानन्द भी।"**[३४४]

कला मानवानुभूत सौन्दर्य का चरम उत्कर्ष है। यद्यपि प्रत्येक प्राणी के अन्दर सौन्दर्यानुभावन की अदम्य लालसा उपस्थित रहती है किन्तु कलाकार की सौन्दर्यानुभूति और सामान्य व्यक्ति की सौन्दर्यानुभूति में पर्याप्त अन्तर दिखाई देता है। सम्भवतः रुचि का परिष्कार और दृष्टि विस्तार कलाकार को कलाकार बनाता है। इन गुणों के कारण कलाकार की अन्तर्दृष्टि सौन्दर्य के उस लोक में परिभ्रमण करती है जहाँ सामान्य व्यक्ति पहुँच नहीं पाता। कलाकार जब उस परम सत्ता के सौन्दर्य के प्रभालोक के प्रसन्न प्रस्तार को अनुभूत करता है तो अपनी पूरी सामर्थ्य से उस सौन्दर्यानुभूति का रचना या काव्य के माध्यम से उदात्त पुनर्विधान करने में रत हो जाता है। सौन्दर्य-बोध से सम्पन्न कवि स्वयं एक सौन्दर्यमयी सृष्टि का सिरजनहार बन जाता है। सर्जना के समय रचनाकार लौकिकता में अलौकिक रंगों के विधान में लीन हो जाता है। यह सब कवि के रुचि, परिष्कार दृष्टि की व्यापकता और चिन्तन की गंभीरता पर निर्भर करता है। 'कवयः किं न पश्यन्ति' की उक्ति भी कवि की दृष्टि की व्यापकता को संकेतित करती है।

वृहदारण्यक उपनिषद के अनुसार- **"साह एतावान आस यथा स्त्रोमुपांसो संपरिध्वकत्यों।" अर्थात न जब अन्त होता है और न बाह्य, जब प्रेमी, प्रेम और प्रेम व्यापक विस्मृत होकर परमानन्द में एकाकार हो जाते हैं। उस समय की अनुभूति स्थान, समय-हीन समग्र, सर्वज्ञातव्य और सर्वशक्तिमत्ता की होती है। इस स्थिति को आगम ने निष्कल शिवस्थिति माना है।**[३४५]

भारतीय वांग्मय में सौन्दर्यशास्त्र के विचारकों की एक सशक्त परम्परा उपलब्ध है। फ्रांसीसी प्राच्य विद्या विशारद लुई रेनु का इस संदर्भ में मत उल्लेखनीय है। उनके अनुसार- **"भारत की प्रतिभा से ज्ञान की जितनी शाखायें उत्पन्न हुई हैं उनमें सौन्दर्यशास्त्र जितने गहरे रूप में भारतीय है, उतना उतना और कोई नहीं। भारतीय सौन्दर्यशास्त्र को इस ठेठ भारतीयता की सबसे अधिक प्रबल प्रमाण रस सिद्धान्त है।**[३४६]

यद्यपि भारतीय काव्यशास्त्र से पहले भी दर्शन शास्त्र, सांख्य शास्त्र कामसूत्र आदि में रस किसी न किसी रूप में प्रयुक्त और व्यवहृत हुआ है किन्तु रस की सुव्यवस्थित परिकल्पना **आचार्य भरत** की देन मानी जाती है। भरत ने **'नहि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते'** सूत्र का प्रतिपादन कर नाट्य अथवा काव्य के प्रवर्तन को ही रसोद्रेक की स्वीकृति दी। आचार्य भरत से पंडितराज जगन्नाथ और हिन्दी साहित्य में यह रसात्मवादी परम्परा डॉ० नगेन्द्र तक अबाध गति से चलती रही है और यह निश्चित है कि यह सिद्धान्त आगे भी अपनी सत्ता बनाए रखने में सफल होगा।

आचार्य भरत रसानुभूति को ही आनन्दानुभूति की स्वीकृति देते हैं। उनके द्वारा प्रतिपादित सूत्र **'विभावानुभावव्यभिचारि संयोगाद्रस निष्पत्ति'** को अनेक परवर्ती आचार्यो ने अपने-अपने दृष्टिकोण से व्याख्यायित और विवेचित किया है। भरत की दृष्टि में **"रस प्रेक्षक सहृदय (प्रमाता) की अनुभूति**

का नाम नहीं है, वह वस्तुतः इस अनुभूति का आधार विषय है, वह स्वयं काव्यास्वाद नहीं है, प्रत्युत प्रमाता को काव्यास्वाद अनुभूति करने में समर्थ काव्य (नाट्य) पदार्थ है। दूसरे शब्दों में काव्यास्वाद (रसानुभूति) विषयगत है, विषयीगत नहीं।"

भरत सूत्र के प्रथम व्याख्याकार के रूप में भटटलोल्लट का नाम सर्वस्वीकृत है उनके अनुसार **"रसानुभूति स्थायी भावों का ही परिवर्द्धित रूप है जो विभावादि से पुष्ट होकर स्थायी भाव के उपचित होने पर प्रगट होती है।"** लोल्लट के मत में लौकिकानुभूति और रसानुभूति का अंतर स्पष्टतः समझ में नहीं आता इसी कारण उनके मत को भ्रामक माना गया। **श्री के०सी०पाण्डेय** लोल्लट की धारणा की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए स्पष्ट करते हैं कि **'उपचित स्थायीभाव ही रसानुभूति का जनक है। सौन्दर्यानुभूति की क्रिया बड़ी जटिल होती है। सौन्दर्यानुभूति का आश्रय अनुकार्य होता है। सहृदयों को जो आनन्द प्राप्त होता है वह रागात्मक इसलिये होता है कि अभिनेता चमत्कारपूर्ण भावपूर्ण कुशल अभिनय करता है।**[३४७]

शंकुक ने लोल्लट के मत का खंडन करते हुये रसानुभूति को प्रत्यक्ष अनुभूति से अलग एक विलक्षण अनुभूति माना है। वे रस निष्पत्ति में अभिनय कौशल को सर्वोपरि स्थान देने के पक्षधर हैं। अभिनय तत्व की रसानुभूति में प्रतिष्ठा उनका विशिष्ट योगदान कहा जा सकता है। भटट नायक ऐसे काव्यानन्द को सौन्दर्यानुभूति स्वीकार करते हैं जिसमें सत्व गुण की प्रधानता होती है। **"भटटनायक ने डेकार्टे की भाँति रसानुभूति को एक बौद्धिक आनन्द के रूप में मान्यता दी है। साथ ही इसमें उन्होंने रज और तम का मिश्रण भी स्वीकार किया है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से 'रज जहाँ रागात्मकता या भावात्मकता का द्योतक है वहाँ तम अज्ञान भ्रांति अथवा मिथ्या प्रतीति का द्योतक है। इस तम को हम माया या कल्पना का भी पर्याय मान सकते हैं। इस प्रकार स्पष्टतः भटट नायक के अनुसार रसानुभूति एक ऐसे आनन्द की अनुभूति है जिसमें बौद्धिक आनन्द की प्रमुखता होते हुए भी भावात्मक एवं कल्पनात्मक आनन्द का मिश्रण रहता है।"**[३४८]

अभिनवगुप्त भरत सूत्र के चतुर्थ व्याख्याकार के रूप में मान्य हैं। आपके ग्रन्थ अभिनव भारती में रस-प्रतीति की प्रक्रिया का अत्यंत सारगर्भित विवेचन उपलब्ध है। **रामचंद्र पुरी** के अनुसार- **"साधारणीकरण के कारण नायक की चित्तवृत्ति सामाजिक की चित्तवृत्ति को अपने भीतर समेट लेती है और इस एकात्मकता और तादात्म्य के कारण ही सामाजिक-गत स्थायी रस दशा को प्राप्त होते हैं। इस क्रमबद्धता को ध्यान में रखकर हम अभिनव के मत को इस प्रकार स्पष्ट कर सकते हैं- "साधारणीकरण-तादात्म्य-भावोद्‌बोध-रसास्वाद।**[३४९] अभिनव गुप्त की स्पष्ट मान्यता है कि रसानुभूति एक ऐसी आनन्दानुभूति है जिसमें चमत्कारपूर्ण विश्रान्ति के साथ देशकाल के बन्धनों की मुक्ति का आस्वाद मिश्रित होता है। **डॉ० कृष्ण बल** का विचार है कि **"रस के स्वरूप विश्लेषण में आचार्य अभिनवगुप्त का अभूतपूर्व योगदान सर्वप्रथम तो इस प्रस्थापना में है कि रसानुभूति काव्यास्वाद का विषय न होकर स्वयं काव्यास्वाद और दूसरे रस अनुकार्यगत अथवा** नटगत न

होकर कविगत एवं प्रमातृगत है।[३५०] **के०सी० पाण्डेय**[३५१] अभिनवगुप्त की इस अनुभूति को प्रेमानुभूति के सदृश स्वीकारते हैं।

'वाक्यं रसात्मकं काव्यं' के सूत्रकार **आचार्य विश्वनाथ**[३५२] रसास्वाद और काव्यास्वाद में भिन्नता न मानते हुये उसे अखण्ड और स्वप्रकाशित स्वीकार करते हैं। **पंडितराज जगन्नाथ** ने रस सिद्धान्त की पुनर्व्यवस्था देते हुये इस तथ्य को स्वीकार किया कि **"प्रतिभाशाली महाकवियों की वाणी काव्य के व्यंगार्थ के माध्यम से अपूर्व आस्वाद (काव्यास्वाद) कराने में समर्थ होती है।"**[३५३]

संस्कृत काव्य शास्त्र की परम्परा का अनुसरण हिन्दी साहित्य में भी परिलक्षित होता है। आधुनिक विचारकों में **श्यामसुन्दर दास,** आचार्य विश्वनाथ के मत के समर्थक माने जा सकते हैं। वे रसानुभूति को अलौकिक आनन्द की मान्यता देते हैं और उनकी विवेचना और व्याख्या के लिए मधुमती व्याख्या का आधार ग्रहण करते हैं। **आचार्य रामचन्द्र शुक्ल** का नाम आधुनिक समीक्षकों में सर्वोपरि है। उनके अनुसार- **"भावयोग की सबसे उच्चदशा पर पहुँचे हुए मनुष्य का जगत के साथ पूर्ण तादात्म्य हो जाता है, उसकी सत्ता भावसत्ता नहीं रह जाती, उसका हृदय-विश्व, हृदय हो जाता है। उसकी अश्रुधारा में जगत की अश्रुधारा का, उसके हास-विलास में आनन्द नृत्य का, उसके गर्जन-तर्जन में जगत के गर्जन-तर्जन का आभास मिलता है।"**[३५४]

शुक्ल जी की धारणा है कि आत्म विस्मृति की मनःस्थिति ही वस्तुतः रसानुभूति है। वे कहते हैं कि **"लोक हृदय के लीन होने की दशा का नाम रस-दशा है।**[३५५] शुक्ल जी के अनुसार रसानुभूति की कई कोटियाँ हो सकती हैं यथा १. पूर्णरस की अनुभूति २. हीन कोटि की रसानुभूति और ३. मध्यम कोटि की रसानुभूति। उनका स्पष्ट कथन है कि **"शील विशेष के परिज्ञान से उत्पन्न भाव की अनुभूति और आश्रय के साथ तादात्म्य दशा की अनुभूति (जिसे आचार्यों ने रस कहा है) दो भिन्न कोटि की रसानुभूतियाँ हैं। प्रथम में श्रोता या पाठक अपनी पृथक सत्ता अलग संभाले रहता है, द्वितीय में अपनी पृथक सत्ता का कुछ क्षणों के लिए विसर्जन कर आश्रय की भावात्मक सत्ता में मिल जाता है।"**[३५६] शुक्ल जी रसानुभूति और प्रत्यानुभूति के पारस्परिक संबंध के पक्षधर हैं।

प्रसाद जी ने भी रसानुभूति विषयक विचार अभिव्यक्त किए हैं। वे रसानुभूति में लोकमंगल की अन्तर्भूतता की स्वीकृति देते हुए स्पष्ट रूप से कहते हैं- **"काव्यानन्द लोकमंगल की भावना से पुष्ट ब्रह्मानन्द है।"**[३५७] प्रसाद कवि, कविता और भावक की तदाकार परिणति को रसानुभूति की स्वीकृति प्रदान करते हैं।

डॉ० नगेन्द्र का नाम आधुनिक समीक्षकों में आदर के साथ लिया जाता है। वे रसानुभूति और अन्याय अनुभूतियों की भिन्नता स्वीकारते हुए स्पष्ट करते हैं- **"भावशक्ति थोड़ी बहुत सभी में होती है अन्यथा जीवन की स्थिति सम्भव नहीं। परन्तु साधारणीकरण की विशेष शक्ति उसी व्यक्ति में होगी जिसकी भावशक्ति विशेष रूप से समृद्ध हो जिसकी अनुभूतियाँ सजग हों।......ऐसा**

व्यक्ति ही कवि है।"[३५८] उपर्युक्त धारणा से स्पष्ट ध्वनित होता है कि उनके रसानुभूति विवेचन में पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्र और मनोविज्ञान का आभास भी झलक मारता है। **डॉ० निर्मला जैन** का मत है कि- **"डॉ० नगेन्द्र ने रसानुभूति को उससे ऊपर उठाकर एक बार पुनः अभिनवगुप्त के साक्ष्य पर आनन्द की भूमिका पर स्थापित किया।........परन्तु भारतीय परम्परा के अनुकूल उन्होंने आनन्द को अन्य सभी मूल्यों का आधार मानते हुए उसे मंगल और कल्याण से अभिन्न नहीं, बल्कि रस का भी पर्याय घोषित किया।"**[३५९]

डॉ० नगेन्द्र रसानुभूति को रस प्रेक्षक सहृदय की ऐन्द्रिय मानसिक और भावित अनुभूति मानते हुये उसे निम्नवत परिभाषा की परिधि में बांधते हैं कि- **"सौन्दर्यानुभूति, कलानुभूति राग द्वेष से विनिर्मुक्त चित्र द्वारा निर्वैयक्तिक भाव का आस्वादन है।"**[३६०] जबकि **डॉ० जगदीश गुप्त** की मान्यता है कि- **"मेरे विचार से यह तन्मयता, सत्वोद्रेक और विभावन एवं भावन दोनों व्यापारों को मिलाकर रसानुभूति की विशिष्टता निर्धारित हो जाती है। उससे भिन्न अनुभूति को आज रस कहना उचित नहीं।"**[३६१]

उपर्युक्त मताभिमतों के सम्यक अनुशीलन से स्पष्ट है कि पाश्चात्य सौन्दर्याशास्त्रियों ने यह स्पष्ट करने की चेष्टा की है कि कवि की दृष्टि में वाह्य सृष्टि की संवेदनाएँ किस प्रकार पिघलती, बदलती हैं और परिवर्तन की परिणति समरस रूप में निसृत होती हैं जबकि पौर्वात्य मनीषियों के अनुसार रसानुभूति वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा पाठक स्वयं के निमित्त कवि की अनुभूति को सृष्टि का पुनर्विधान प्रदान कर उसका उपभोग करता है।

उपर्युक्त अनुशीलन से यह भी स्पष्ट होता है कि आश्रय और कामभाव या कामना सौन्दर्यानुभूति के प्रमुख आधार होते हैं। आश्रय का मानसिक वैशिष्ट्य ही वस्तुरूप की सौन्दर्यानुभूति के निर्धारण में सहयोग देता है। आश्रय में परिष्कृत सौन्दर्याभिरुचि और संवेदनशील आत्मा की अन्तर्भूतता अनिवार्य है। आश्रय के व्यक्तित्व, चारित्रिक उत्कर्ष, स्वभाव, मानसिक स्थितियों, भावानुभूति की क्षमता, कल्पना की समाहार शक्ति, शारीरिक और मानसिक विकास के क्रम के साथ सौन्दर्यानुभूति का प्रगाढ़ और अभिन्न सम्बन्ध होता है। यही कारण है कि सौन्दर्य के संस्कार बाल्यावस्था से वृद्धावस्था तक परिवर्तित और परिष्कृत होते रहते हैं।

काम या कामना को सौन्दर्यानुभूति के दूसरे आधार तत्व की संज्ञा दे सकते हैं क्योंकि काम का स्फुरण ही आलम्बन और आश्रय के पारस्परिक संबंध स्थापन में प्रेरक होता है। यह सम्बन्ध इन्द्रिय परक (बहिर्मुखी) और भावात्मक (आन्तरिक) दोनों प्रकार से स्थापित हो सकता है। आलम्बन के साथ संवेगात्मक संबंधों की निरन्तरता के कारण भावना का प्रेम में परिवर्तन हो जाता है जो अपूर्व आनन्द की उपलब्धि प्रदान करता है।

सौन्दर्यानुभूति के सम्यक अनुभावन हेतु उसे छह अवस्थाओं में वर्गीकृत किया जा सकता है।

१. रूपाकर्षण

२. आकृष्ट होने के पश्चात कौतूहल और अभिलाषा का उद्भूत होना

३. सौन्दर्य के संज्ञान की विशिष्ट स्थिति पर पहुँच विस्मय विमुग्धता

४. अतृप्ति की आकुलता

५. इन्द्रिय निष्ठ अनुभूति का भावयुक्त और मानसिक अनुभूति में परिवर्तित होना

६. परम या अपूर्व आनन्द की प्राप्ति

अभिव्यंजना के सौन्दर्य का विस्तृत वर्णन कुन्तक ने किया है। वे काव्य की परिभाषा में शब्द और अर्थ के सौन्दर्य के समन्वय की अनिवार्यता को स्वीकृति प्रदान करते हैं-

शब्दार्थों सहितौ वक्र कवि व्यापारशालिनि।
बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लाद कारिणि।।

अर्थात काव्य-मर्मज्ञों को आनन्द देने वाली सुन्दर, कवि व्यापार युक्त रचना में व्यवस्थित शब्द और अर्थ मिलकर काव्य कहलाते हैं। कुन्तक अन्यत्र स्थल पर कहते हैं- **"साहित्यं तुल्य कक्षत्वेनान्यूनतिरिक्तत्वम्" अर्थात "साहित्य का अर्थ यह है कि शब्द अर्थ का समान महत्व हो, किसी एक का भी महत्व न न्यून हो और न अतिरिक्त। क्योंकि समर्थ शब्द के अभाव में अर्थ स्वरूपतः स्फुरित होने पर भी निर्जीव सा ही रहता है। शब्द भी काव्योपयोगी अर्थ के अभाव में अन्य अर्थ का वाचक होकर वाक्य का भारभूत सा प्रतीत लगता है।"**[३६२]

शब्दो विवक्षितार्थैक वाचकोऽन्येषु सत्स्वपि।
अर्थः सहृदयाह्लादकारि स्व स्पन्द सुन्दरः।।

अर्थात अन्य (पर्यायवाची) शब्द के रहते हुये भी विवक्षित अर्थ का बोधक केवल एक (शब्द ही वस्तुतः) शब्द है, इसी प्रकार सहृदयों को आनन्दित करने वाला अपने स्पन्द स्वभाव से सुन्दर (पदार्थ) ही अर्थ है।

"स्पष्ट है कि काव्य में शब्द अपने समस्त सौन्दर्य और अर्थ अपनी समस्त रमणीयता के साथ परस्पर मिश्रित रहते हैं। काव्य में अभिव्यक्ति का विशेष महत्व है। किसी विशेष अनुभव की सम्यक अभिव्यक्ति के लिए एक ही शब्द अथवा शब्दावली का प्रयोग सम्भव होता है। कुन्तक की वक्रोक्ति काव्य सौन्दर्य का ही पर्याय है। कवि अपनी प्रतिभा से काव्य में चमत्कार उत्पन्न करने के हेतु जिन साधनों, प्रसाधनों का उपयोग करता है, वे सभी वक्रोक्ति हैं। अतः कुन्तक की वक्रोक्ति वर्ण-विन्यास से लेकर प्रबन्ध-कल्पना तक और उपसर्ग प्रत्यय आदि पदावयवों से लेकर महाकाव्य तक विस्तृत हैं।"[३६३] कुन्तक ने वक्रता को ६ भेदों में बाँटा है-

१. **वर्ण-विन्यास-वक्रता** २. **पद-पूर्वार्ध-वक्रता** ३. **पद-परार्द्धवक्रता**

४. **वाक्य-वक्रता** ५. **प्रकरण-वक्रता** ६. **प्रबन्ध-वक्रता**

इसमें वर्ण-विन्यास का आशय शब्द-सौन्दर्य से है। पदपूर्वार्द्ध वक्रता का अर्थ है सर्वनाम, समास, पर्याय, विशेष, क्रिया वैचित्र्य लिंग आदि का सौन्दर्य। पदपरार्द्धवक्रता के अन्तर्गत

काल-प्रयोग, कारक, पुरुष प्रत्यय, उपसर्ग, निपात आदि के प्रयोग का सौन्दर्य आता है। वाक्य-वक्रता के अन्तर्गत अर्थ की चारुता और प्रकरण की वक्रता में कथा की नूतन कल्पना, मौलिक उद्भावना, विशिष्ट प्रकरण की अतिरंजना की दृष्टि का विवेचन होता है। प्रबन्ध वक्रता के अन्तर्गत चरित्र रस कथा आदि के सौन्दर्य को अभिव्यक्त कियां जाता है।

कवि अपनी रचना में भाषा, शैली, अनुभूति और अभिव्यक्ति का औचित्यपूर्ण समन्वय, बिम्ब विधान, कल्पना, अलंकार योजना, छन्द विधान, प्रतीक योजना, शब्द शक्ति, गुण, रीति, वृत्ति, ध्वनि, वक्रोक्ति और औचित्य आदि का प्रयोग सौन्दर्य निवेशन की दृष्टि से करता है। अतः किसी भी कवि या रचनाकार की रचना में सौन्दर्यानुभावन को उपर्युक्त गुणधर्मों के आधार पर विवेचित और आकलित किया जा सकता है। तुलसी की सौन्दर्याभिव्यक्ति को उपर्युक्त गुणधर्मों के आधार पर परखने का प्रयास आगे अध्यायों में प्रस्तुत किया जायेगा।

❑❑❑

संदर्भ संकेत

१. **वाचस्पत्य कोश** स०वि० २०१८ पृष्ठ ५३३८

२. **उणादि सूत्र** ३ : १३३

३. The Practical Sanskrit English Dictionary (Apte) edition 1959, Page 1693

४. **हलायुध कोश,** प्रथम संस्करण, शकाब्द १८७६ पृष्ठ ७१४

५. **आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य**-डॉ० रामेश्वर लाल खंडेलवाल प्रथम संस्करण पृष्ठ १४१

६. वही पृष्ठ १८१

७. **सच्चा सौन्दर्य समाधिस्थ साधकों के निकट ही प्रत्यक्षगोचर होता है, लोलुप मानियों के निकट नहीं।**- रवीन्द्रनाथ साहित्य पृष्ठ २७

८. **समालोचक** फरवरी १९५८ के विशेषांक से उद्धृत

९. Beauty is such an order and construction of Parts, as either by the primary construction of our natrue, by custom or by caprice, is fitted to give a pleasure and satisfaction to the soul. This is the distinguishing character of beauty, and forms all the difference betwixt it and deformity, whose natural tendeney is to produce uneasiness

-Treatise of Human nature (green & grose) vol II Page 95

१०. Thus the absolute being which is at one and the same time absolute unity and infinite variety, God is necessarily the final cause, the ultimate basis, the realized ideal of all beauty-principles of Criticism by W. Basil worsfold. Page 125.

११. What is beautiful to feeling is ultimately an expression of harmony though capable of including apparent contradiction. (समालोचक, फरवरी १९५८ से उदधृत)

१२. The beautiful is that good which is pleasent, because it is good.

-History of Aesthetics by B.Bosanquet P.63.

१३. Beauty is the shining of the idea Through matter.

-Tolstoy's `what is art' page 100.

१४. Beauty is the infinite represented in the form of finite. Beauty is a supreme expression of the absolute or divine reality as uttering it self through men. -Tolstoy's what is art'

१५. Beauty results from adaptation to our faculties and a perfect state of health, physical, moral and intellectual - webster's Dictionary

१६. That is beautiful which pleases, which pleases all, which pleases wihtout interest and without a concept and pleases neccssarily. - History of Aestheties Page 45.

१७. I can drew no distinction.....between moral and aesthetic values, beauty being a good is a moral good and the practice and enjoyment of art, like all practice and all enjoyment
- Irving Singer, Santyana's Aestheties Page VIII

१८. **समालोचक** फरवरी १६५८ के विशेषांक में **डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना** के **'सौन्दर्य और रस'** शीर्षक लेख से उद्धृत

१६. **साहित्य और सौन्दर्य** डॉ० फतह सिंह पृष्ठ ७२

२०. **सौन्दर्य शास्त्र की पाश्चात्य परंपरा** - राजेन्द्र प्रताप सिंह पृष्ठ ५४

२१. **समालोचक** फरवरी १६५८, संपादक - डॉ० रामविलास शर्मा

२२. Believing beauty to be an expression of the divine life of the world, which he contrasts with dead matter in a way too much akin to plotinus and is there fore unable to find an explanation for ugliness or evil. - समालोचक फरवरी १६५८ से उद्धृत

२३. Beauty is truth, truth beauty
that is all.
ye know on earth, and ye need to know.
ode on a grecian Urn.
- Keat's from M.Arnold's essay's in criticism II series Page 83.

२४. A thing of beauty is a joy forever.
Its Loveliness increases; it will never. pass into nothingness.

२५. The principle of goodness has reduced itself to the Law of beauty. For measure and proportion always pass into beauty and excellence.
- Plato, Quoted from A history of Aestheties 1934 (Bearnard Bosanquet) Page 33

२६. Beauty is something supervening on the symmetry and that the symmetrical is beautiful for some other reason.

[careit : Philosophies of Beauty Page 191]

२७. In the subjeetive aspects we call beauty that which supplies us with a perticuler kind of pleasure. In the objective aspect, we call beauty some thing absolutely perfect.

- earrit, Philosophies of beauty Page 191

२८. सौन्दर्यशास्त्र की पाश्चात्य परंपरा – पृष्ठ ६६

२६. आधुनिक काव्य में सौन्दर्य भावना – पृष्ठ ७

३०. Beauty stands out more and more as something permanent possessed of undeniable value. - B. Croce, Aesthetics Page 309

३१. Beauty is the infinite represented in the form of finite. - Schelling

३२. पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परम्परा – डॉ० नगेन्द्र पृष्ठ १२८

३३. समीक्षालोक (श्री भगीरथ दीक्षित) पृष्ठ ३२

३४. The beautiful is not a physical fact, beauty does not belong to the human aesthetic activity and this is a mental or spritual fact. - wildon carr, Philosophy of croce Page 164

३५. We may define beauty as successful expression or better as expression and nothing more, because expression when is not successfal, is not expression. - B. croce, Aesthetice Page 79

३६. सौन्दर्य तत्व पृष्ठ १८८

३७. By beautiful we generally understand whatever, when seen, heard or understood delight, Please by causing with in us agreeable sensation and love. God is the most beautiful of all things.

- Carrit, Philosophies of Beauty P.60

३८. The bending trunk, warning to and form in the wind above the waterfall is beautiful because it is happy though it is perfectly useless to us - carrit, Philosophies of beauty Page 175

३६. The appearence of perfactions or perfaction, obvious to last in the wide sense is beauty. - Carrit, Philosophies of beauty Page 64.

४०. सौन्दर्य शास्त्र की पाश्चात्य परम्परा पृष्ठ ६३

४१. हिन्दी काव्य में श्रृंगार परम्परा और बिहारी – डा० गणपतिचंद्र गुप्त

४२. The function of art, of all art is the echo in its own terms the universal

conflict. Anything is beautiful is that results from of medium that exhibits (Beauty, 1930)

४३. **मंझन का सौन्दर्य दर्शन,** डा० लालता प्रसाद सक्सेना पृष्ठ २२

४४. **भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका** - डा० फतह सिंह पृष्ठ १४

४५. वही

४६. **भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका** - डॉ० फतह सिंह पृष्ठ १५

४७. **भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका** - डॉ० फतह सिंह पृष्ठ १५

४८. **सौन्दर्य शास्त्र के तत्व** - डॉ० कुमार विमल पृष्ठ ६३

४९. वही पृष्ठ ६१

५०. लेसिंग्स लैकून ट्रांस्लेटिड बाई ई०सी० बीस्ले। लेसिंग ने इस विख्यात पुस्तक लैकून की रचना १७६० से १७६५ के बीच में की थी, जिस समय वह ब्रेस्लाउ में रहता था। उसने इस पुस्तक को बर्लिन में पूरा किया और १७६६ ई० में प्रकाशित किया। यह प्रकाशन उसने रायल लाइब्रेरियन के पद पर नियुक्ति पाने की आशा से किया था, जो व्यर्थ सिद्ध हुई। कारण उस समय लैकून को एक महत्वपूर्ण कृति के रूप में स्वीकार नहीं किया गया। (**सौन्दर्य शास्त्र के तत्व** - डॉ० कुमार विमल पृष्ठ ६२ से उद्धृत)

५१. **सौन्दर्य शास्त्र के तत्व** - डॉ० कुमार विमल पृष्ठ ६३

५२. बेलिन्सकी की कलागत मान्यताओं के संक्षिप्त परिचय के लिये दृष्टव्य **आलोचना त्रैमासिक अंक ६ अक्टूबर १९६३** में बेलिन्सकी की मान्यताओं का विकास शीर्षक निबन्ध पृष्ठ १९२-१९८

५३. **सौन्दर्यमलंकार** : वामन; **काव्यालंकार**

५४. **क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदैव रूपं रमणीयतायाः।** माघ, **शिशुपाल वधम** ४/१७

५५. **अंग-प्रत्यंगकानां यः, संनिवेशो यथोचितम।**
संश्लिष्ट संधिबन्धः स्यात सौन्दर्यमितीर्यते।।
-श्री रूपगोस्वामी, **उज्जवल नीलमणि** (उद्दीपन प्रकरण) (बम्बई काव्यमाला, ९५) पृष्ठ २७४

५६. **अहो सर्वास्ववस्थासु रमणीयत्वम आकृति विशेषाणाम्।** -कालिदास, **अभिज्ञान शाकुन्तलम** १/१८

५७. **किमिव हि मधुराणामाकृति विशेषाणाम्।** -कालिदास, **अभिज्ञान शाकुन्तलम**

५८. **यदुच्चंते पार्वति पापवृत्तये न रूपमित्य व्यभिचारी तद्भव प्रियेषु, सौभाग्यफला हि चारुता।**
-कालिदास, **कुमार संभव** ५/३६

५९. **न रम्यनाहार्यमपेक्षते गुणम्।** -भारवि, **किरातार्जुनीयम,** चतुर्थ सर्ग पृष्ठ ८८

६०. **रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्। रमणीयता च लोकोत्तराह्लाद्जनक ज्ञान गोचरता।**

लोकोत्तरत्वं चाह्लाद गतश्चमत्कारत्व पर पर्यायोनुभव साक्षिको जाति विष।

–रसगंगाधरं, प्रथमोभाग, काशी हिन्दु विश्वविद्यालय साहित्य अनुसंधान समित्या प्रकाशित पृष्ठ १३, १४

६१. **'ए सखि पेखलि एक अपरूप'** और **'सहजहि आनन सुन्दर रे'**

६२. **लिखन बैठि जाकी छवी, गहि गहि गरब गुरूर**
भए न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर।। –बिहारी सतसई

६३. **वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप, हृदय में बनता प्रणय अपार।**
लोचनों में लावण्य अनूप लोक सेवा में शिव अविकार।। –पंत, **पल्लव** पृष्ठ ८७

६४. **उज्ज्वल वरदान चेतना का सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं।**

–प्रसाद, **कामायनी** (लज्जा सर्ग) पृष्ठ ६८

६५. **मन को द्रवीभूत कर जो, सरसा दे स्नेह सुधा की धार।**
देख-देख दृग आनंदित हो, उपज उठे नैसर्गिक प्यार।।
मंगलमय विधान में जिसके , हो उठता गतिमय संसार।
है सौन्दर्य सत्य का वाचक, मानव जीवन का श्रृंगार।।

–डॉ० रामस्वरूप खरे, **अपर्णा महाकाव्य चतुर्थ सर्ग** (अप्रकाशित)

६६. हजारी प्रसाद द्विवेदी, **कल्पलता** पृष्ठ १४४-१४५

६७. वही पृष्ठ १३६

६८. हंसकुमार तिवारी **कला** से

६९. रामचन्द्र शुक्ल **चिन्तामणि** भाग १ पृष्ठ १६४-१६५

७०. **पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धान्त** पृष्ठ २१३

७१. हरिवंश सिंह, **सौन्दर्य विज्ञान** पृष्ठ ५६-५७

७२. **साहित्य का उद्देश्य** - पृष्ठ ८

७३. डॉ० दासगुप्त, **सौन्दर्य तत्व** पृष्ठ २५३

७४. डॉ० लालता प्रसाद सक्सेना, **मंझन का सौन्दर्य दर्शन** पृष्ठ २३

७५. डॉ० सम्पूर्णानन्द, **चिद्विलास**, पृष्ठ २०६

७६. भगवतीचरण वर्मा, **साहित्य की मान्यताएं** पृष्ठ ४५

७७. समालोचक फरवरी ५८ में **सौन्दर्य की वस्तुगत सत्ता** और सामाजिक विकास लेख से

७८. वही

७९. **समालोचक** सौन्दर्यशास्त्र विशेषांक पृष्ठ १७६

८०. हरद्वारी लाल शर्मा, **सौन्दर्यशास्त्र** पृष्ठ १०

८१. वही पृष्ठ ८०

८२. डॉ० दशरथ ओझा, **हिन्दी नाटक उद्भव और विकास,** भूमिका पृष्ठ ३०-३१ (राजपाल एंड संस, दिल्ली १९६१)

८३. श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी का **वैष्णव कवियों की सौन्दर्य भावना** लेख (**समालोचक,** सौन्दर्यशास्त्र अंक फरवरी १९५८)

८४. श्री बाबू गुलाबराय का **सौन्दर्यानुभूति** लेख, **समालोचक,** फरवरी १९५८

८५. **रवीन्द्रनाथ साहित्य** पृष्ठ ३५

८६. This is the ultimate object of our existance that we must ever know that beauty is truth, truth beauty. - Tagore, Sadhana, Page 14

८७. रवीन्द्रनाथ **साधना** पृष्ठ १२५

८८. It is a state of complete repose and is very much akinteestary or savikalpa samadhi of Indian yoga.

(डॉ० खंडेलवाल, **आधुनिक कविता में प्रेम और सौन्दर्य** पृष्ठ १४५)

८९. इलाचन्द्र जोशी, **साहित्य संतरण** पृष्ठ १९

९०. कु० शकुंतला शर्मा, **आधुनिक काव्य में सौन्दर्य भावना** पृष्ठ २८

९१. जैनेन्द्र कुमार का सत्य, शिव, सुन्दर नामक निबन्ध (**निबन्ध निचय**) सं० श्री नन्द दुलारे बाजपेयी पृष्ठ १९६.

९२. नंद दुलारे बाजपेयी, **हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी** पृष्ठ १६४

९३. डॉ० सुरेश त्यागी, **छायावादी काव्य में सौन्दर्य दर्शन** पृष्ठ २६

९४. डॉ० छोटेलाल दीक्षित, **तुलसीदास का सौन्दर्य बोध** पृष्ठ ३

९५. डॉ० लालता प्रसाद सक्सेना, **मंझन का सौन्दर्यदर्शन** पृष्ठ २३

९६. डॉ० रामकुमार वर्मा, **साहित्य शास्त्र,** भारतीय विद्या भवन इलाहाबाद १९५६ पृष्ठ १८

९७. डॉ० फतह सिंह, **भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका** पृष्ठ १२७

९८. सम्पादक डॉ० नगेन्द्र, **अरस्तू का काव्यशास्त्र** पृष्ठ २३

९९. श्री हरिवंश सिंह शास्त्री, **सौन्दर्य विज्ञान** पृष्ठ २१

१००. सुरेश त्यागी, **छायावादी काव्य में सौन्दर्य दर्शन** पृष्ठ २१ से उद्धृत

१०१. श्री हरिवंश सिंह शास्त्री, **सौन्दर्य विज्ञान** पृष्ठ २२

१०२. डॉ० फतह सिंह, **साहित्य और सौन्दर्य दर्शन** पृष्ठ १०७

१०३. सुरेश त्यागी, **छायावादी काव्य में सौन्दर्य दर्शन** पृष्ठ २१

१०४. डॉ० फतह सिंह, **भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका** पृष्ठ १०

१०५. डॉ० आनन्द प्रकाश दीक्षित, **सौन्दर्य तत्व की भूमिका** पृष्ठ ६

१०६. सुरेश त्यागी, **छायावादी काव्य में सौन्दर्य दर्शन** पृष्ठ २२

१०७. डॉ० फतह सिंह, **भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका** पृष्ठ ११

१०८. रामेश्वर लाल खंडेलवाल, **आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य** पृष्ठ १५१

१०९. वीणा माथुर, **प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन** पृष्ठ १२ से उद्धृत

११०. According to baum Garten ``Aesthetics was a seience of sensitive cognition only - croce, Aestheties Page 212

१११. All that comes to the. Mind is a chose of sansations, all form or order in entirely due to the minds nature. The chatoic sensation are unified into phenomena by the imagination guide by the conceptions of the understanding" (Imanual Kant)

- earrit, philosophies of beauty Page 109

११२. The great arts can have but three principal directions of purpose, first that of enforcing the religion of men, secondly that of perfecting their ethical state, thirdly that of doing them material service.

-Ruskin, Lectures on art Page 43-44

११३. But I say that the art is the greatest which conveys to the mind of spectator. by and means what so ever the greatest number of the greatest ideas.........He is the greatest artist who has embodied in the sum of his works the greatest number of the greatest ideas. - Ruskin, Modern Painters vol 1, Page 11

११४. Aesthetic Activity

११५. Logical Activity

११६. Practical Activity

११७. Economic Activity

११८. Monuments of art which are the stimultants of aesthetic reproduction are called beautiful things or the physically beautiful. This combination of words constitute a verbal peradox because the beautiful is not a physical fact. It does not belong to things but to the activity of man, to spritual energy. -Aestheties Page 159

११९. Human knowledge has two forms, it is either initiative knowledge or logical knowledge; knowlege obtained through the imagination or knowledge obtained through the intellect, knowledge of the individual or knowledge of the universal, of individual things or the relations between them; It is infact productive either of images or of concepts.

-B. croce, Aesthetics Page 1

१२०. The doctrine of your intuition makes the value of art to consist of its power of intution, in such a manner, that just in so far as pure and conerete, intuitions are achived will art and beauty be achived.

-Aestheties, Page 388

१२१. He alone who divides the unity of the spirit into soul and body can have faith in a pure act of the soul and there fore in an intuition, which should exist as an intuition and yet be without its body the expression. the esepression is the actuality of intution as action of the will and in the same way as will not be exercised into action is not will, so intuition unexpressed is not an intuition.

१२२. B. croce, Aestheties Page 11

१२३. डॉ० सुरेश त्यागी, **छायावादी काव्य में सौन्दर्य दर्शन** पृष्ठ २४

१२४. उपरिवत

१२५. डॉ० दासगुप्त **सौन्दर्य तत्व** पृष्ठ १५८

१२६. डॉ० सुरेश त्यागी, **छायावादी काव्य में सौन्दर्य दर्शन** पृष्ठ २४

१२७. कु० वीणा माथुर, **प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन** पृष्ठ १३

१२८. The beautiful is the spritual making itself known sensuously - Hegal
कु० शकुंतला शर्मा, **आधुनिक काव्य में सौन्दर्य भावना** पृष्ठ ८ से उदधृत

१२९. Beauty is neither light nor darkness, it is twilight, the medium between truth and untruth - Goeth
कु० शकुंतला शर्मा, **आधुनिक काव्य में सौन्दर्य भावना** पृष्ठ ८ से उदधृत

१३०. वीणा माथुर, **प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन** पृष्ठ १२

१३१. डॉ० फतह सिंह, **भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका** पृष्ठ १५

१३२. वीणा माथुर, **प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन** पृष्ठ १२

१३३. रीड के दृष्टिकोण से ज्ञान शक्ति (Cognition) तथा इच्छा शक्ति (Affection) जो हमारे मन में हैं वे वस्तुतः ईश्वरीय शक्तियाँ है और तत्वतः एवं मूलतः सुन्दर हैं। जो वस्तुएँ सुन्दर कही जाती हैं उनमें इन्हीं ईश्वरीय शक्तियों की अभिव्यक्ति है। जिस वस्तु में यह अभिव्यक्ति जितनी अधिक होती है वह उतनी ही अधिक सुन्दर होती हैं।
डॉ० फतह सिंह, **भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका** पृष्ठ १५

१३४. डॉ० सुरेश त्यागी, **छायावादी काव्य में सौन्दर्य दर्शन** पृष्ठ २५

१३५. उपरिवत पृष्ठ २५ से उदधृत

१३६. डॉ० फतह सिंह, **भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका** पृष्ठ १४

१३७. An Introduction to biology- हैटफील्ड, आक्सफोर्ड, १६४८ पृष्ठ १५

१३८. चार्ल्स डार्विन ने भी मानवेतर प्राणियों की मानसिक शक्ति के विवेचन क्रम में यह स्वीकार किया है कि मानवेतर प्राणियों में भी सौन्दर्यचेतना रहती है किन्तु डार्विन ने मानवेतर प्राणियों की सौन्दर्य चेतना के सम्बन्ध में जितनी बातें कही हैं वे मुख्यतः यौन संवेदना पर निर्भर हैं। अतः हम इतना ही मान सकते हैं कि मानवेतर प्राणियों में भी इन्द्रिय ग्राह्य रूप अथवा ध्वनि के अभिशंसन की क्षमता रहती है। किन्तु मनुष्य ने सांस्कृतिकता और सामाजिकता से उद्भूत उन्नयन के द्वारा सौन्दर्य चेतना को जो अतीन्द्रिय और उन्मेषपूर्ण धरातल दिया है, उसका मानवेतर प्राणियों में नितांत अभाव है। इस तरह डार्विन ने सौन्दर्य चेतना को यौन-संवेदना तक सीमित करते हुये ही मानवेतर प्राणि जगत संबंधी अपनी मान्यता प्रस्तुत की है। अनेक पर्यवेक्षणों के आधार पर इन्होंने यह निष्कर्ष निकाला है कि एक असंस्कृत मनुष्य की सौन्दर्य-चेतना जिस धरातल की होगी वैसी ही सौन्दर्य चेतना प्रायः सभी मानवेतर प्राणियों में एक जैव संस्कार के रूप में विद्यमान रहती है।

-द डिसेन्स ऑव मैन ले० चार्ल्स डार्विन, वेटस एण्ड को लंदन १६३६ पृष्ठ १०२-१०३ कुमार विमल- **सौन्दर्य शास्त्र के तत्व** पृष्ठ १११ से उद्धृत

१३६. डॉ० दासगुप्त, **सौन्दर्य तत्व** पृष्ठ २५६-२५७

१४०. The subjective theory of beauty is very widely professed today by thinking men and practising artists and critics, though usually acompanied by tendeney to claim preference for their own aesthetics judgment. It is the popular and faishionable view of the moment. Most recent writing in aesthetics and criticism which have reached a wide public have been obsessed by the importance of emotional responce to work of art - a haritage of Romantic Age - and are there fore naturally subjective in tendeney. And the breack down of an established if nerrow line of artistic development by the sudden revelation of the artistic heritage from peoples and ages widely seperated from us has tended to a chaotic diversity of taste and appreciation to which a subjective theory of beauty seems to seems to some people the proper intellectual counterpart and to others a cry of despair.

The matter is important because if we accept a subjective theory we are bound to reeognize that there is no science or philosophy of aesthetics other than history of taste and the psychology of emotions.

-N. osborn, theory of beauty, London 52 Page 74

१४१. डॉ० लालता प्रसाद सक्सेना, **मंझन का सौन्दर्य दर्शन** पृष्ठ ३०

१४२. वीणा माथुर, **प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन** पृष्ठ १७

१४३. Bhamha's Kavyalankar and Dendis Kavyadarsha are among the greatest of the indian work on Aestheties. -Ramaswami, Indian Aesthetics Page 65

१४४. वीणा माथुर, **प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन** पृष्ठ १७

१४५. **काव्यं ग्राहमलंकारात** ।।१।। **सौन्दर्यमलंकारः** ।।२।। -डॉ० नगेन्द्र, काव्यालंकार सूत्रावत्तिः

१४६. **काव्य शोभान्धर्मानलंकारा** प्रवक्षते।

१४७. वीणा माथुर, **प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन** पृष्ठ १७

१४८. रामचन्द्र शुक्ल **चिन्तामणि** प्रथम भाग पृष्ठ १६४

१४९. डॉ० नगेन्द्र

१५०. वीणा माथुर, **प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन** पृष्ठ १८

१५१. डॉ० नगेन्द्र **भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका** भाग-२ पृष्ठ ४६४

१५२. डॉ० रामविलास शर्मा, **आस्था और सौन्दर्य** पृष्ठ ३३

१५३. डॉ० लालता प्रसाद सक्सेना, **मंझन का सौन्दर्य दर्शन** पृष्ठ २४-२५

१५४. उपरिवत पृष्ठ १८

१५५. डॉ० दुर्गा प्रसाद श्रीवास्तव, **प्रसाद की सौन्दर्य चेतना** (अप्रकाशित) पृष्ठ १४

१५६. हिन्दी के कुछ रीतिकालीन कवियों की भी यह मान्यता रही है कि सुन्दर रमणीयता न भोग से कम होती है और न निकटता से बल्कि सुन्दर वस्तु का सौन्दर्य निकटता और भोग से और बढ़ जाता है। मतिराम के शब्दों में -

> **कुंदन को रंग फीको लगै, झलकै अति अंगनि चारु गोराई।**
> **आंखिन में अरसानि, चितौन में मंजुविलासनि की सरसाई।।**
> **को बिनु मोल बिकात नहीं, मतिराम लहै मुसकान मिठाई।**
> **ज्यों-ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैननि, त्यों-त्यों खरी निकरै सी निकाई।।**

घनानन्द कहते हैं-

> **रावरे रूप की रीति अनूप, नयो-नयो लागत ज्यों ज्यों निहारिये।**
> **त्यों इन आँखिन बान अनोखी अघानि कहूँ नहिं आन तिहारिये।।**

१५७. कुमार विमल, **सौन्दर्यशास्त्र के तत्व** पृष्ठ ११३ से उदधृत

१५८. **ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या** - शंकराचार्य

१५९. **सौन्दर्य लहरी,** पार्वती के सौन्दर्य चित्रण के प्रसंग में

१६०. श्री परमानन्दामृत पृष्ठ २५-२६

१६१. वीणामाथुर, **प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन** पृष्ठ १९ से उद्धृत

१६२. **कीटानुविद्ध रत्नादि साधरण्येन काव्यता**

दुष्टेवपि मता यत्र रसाद्यनुगमः स्फुटः।। -डॉ. सत्यव्रत सिंह, साहित्य दर्पण पृष्ठ ८

१६३. रमणीयार्थः प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्। रमणीयता च लोकोत्तराह्लाद जनक ज्ञान गोचरता।।
लोकोत्तरत्वं चाह्लादगतश्चमत्कारत्व पर पर्यायोनुभव साक्षिको जाति विष।।
-रस गंगाधर, प्रथमोभाग, काशी हिन्दु विश्वविद्यालय साहित्य अनुसंधान समित्या प्रकाशितः पृष्ठ १३, १४

१६४. न हि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते।

१६५. विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगाद्रसनिष्पत्तिः।

१६६. रवीन्द्र दर्शन पृष्ठ १२१

१६७. रवीन्द्र दर्शन पृष्ठ १२३

१६८. रवीन्द्र दर्शन पृष्ठ १२

१६९. रवीन्द्र दर्शन (साधना) पृष्ठ १२३

१७०. कु० शकुंतला शर्मा, आधुनिक काव्य में सौन्दर्य भावना पृष्ठ २

१७१. अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यशपंचमम्।
आद्यत्रयं ब्रह्मरूप जगद्रूपं ततो द्वयम।।

१७२. आधुनिक काव्य में सौन्दर्य भावना पृष्ठ ३

१७३. वही, पृष्ठ ५

१७४. सौन्दर्य विज्ञान पृष्ठ ५६-५७

१७५. डॉ० कुमार विमल, सौन्दर्य शास्त्र के तत्व पृष्ठ ११४

१७६. आचार्य शुक्ल, चिन्तामणि भाग १ पृष्ठ १६५

१७७. मन की रुचि जेती जिते, तित तेती रुचि होय।
-बिहारी सं० आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र तृ०सं० पृष्ठ २१५ दोहा ६५५

१७८. जेहि करमन रम जाहि सन, तेहि तेही सन काम।

१७९. भलेहि तोर अछरी रंग राता। मोहि न भाव दूसर सौं बाता।।

१८०. डॉ० लालता प्रसाद सक्सेना, मंझन का सौन्दर्य दर्शन पृष्ठ २८

१८१. उपरिवत वही पृष्ठ २८

१८२. डॉ० रामेश्वर लाल खंडेलवाल, आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य पृष्ठ १५८

१८३. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कल्पलता पृष्ठ १४४-१४५

१८४. डॉ० हरद्वारीलाल शर्मा, सौन्दर्य शास्त्र पृष्ठ ८०

१८५. उपरिवत पृष्ठ ८१

१८६. आधुनिक काव्य में सौन्दर्य भावना पृष्ठ २८

१८७. डॉ० रामेश्वर लाल खंडेलवाल, आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य पृष्ठ १६१

१८८. डॉ० दशरथ ओझा, **हिन्दी नाटक उद्‌भव और विकास** भूमिका पृष्ठ १६१

१८६. डॉ० छोटेलाल दीक्षित, **तुलसीदास का सौन्दर्य बोध** पृष्ठ १५

१६०. Beauty is a unique quality in nature

१६१. **समालोचक,** फरवरी ५८ के विशेषांक में **सौन्दर्यानुभूति नामक लेख** से

१६२. डॉ० लालता प्रसाद सक्सेना, **मंझन का सौन्दर्य दर्शन** पृष्ठ ५४

१६३. डॉ० सुरेन्द्रनाथ दास गुप्त, **सौन्दर्य तत्व** (अनुवाद डॉ० दीक्षित सं० २०१७ वि०) पृष्ठ २५३

१६४. Oxford lectures on Poetry - Bradley, 51-52

१६५. डॉ० कुमार विमल **सौन्दर्यशास्त्र के तत्व** पृष्ठ ११७

१६६. In small Proportions, we just beauty see
In short measures life may perfect be -Ben Jonson

१६७. आचार्य शुक्ल, **साधारणीकरण और व्यक्ति वैचित्र्यवाद** (**चिन्तामणि** भाग १)

१६८. वही

१६६. भारतीय काव्य एवं काव्यशास्त्र को देखने से ज्ञात होता है कि भक्ति, श्रृंगार, वात्सल्य एवं शोक इत्यादि की अनुभूतियों से आत्मा का संकोच नहीं, विस्तार ही होता है। वियोग में हृदय का प्रसार सभी ने स्वीकार किया है। दूसरे कोई भी भाव हो, वह रस दशा में पहुँचने पर आत्मा का उन्नायक बन जाता है। इसी आधार पर कविता को हृदय की मुक्तावस्था कहा गया। इसलिये इसको ब्रह्मानंद सहोदर कहते हैं। यह अवश्य है कि जब हम प्रत्येक भाव की रस रूप परिणति को आत्मोत्कर्ष का कारण मान लेंगे, तब उदात्त तत्व का कोई लक्षण प्रस्तुत नहीं कर सकेंगे। इसीलिए हमें लौंजाइनस के मत को स्वीकार करना चाहिये। गहराई में जाने पर प्रतीत होता भी है कि जैसे श्रद्धा का क्षेत्र विस्तृत और प्रेम का संकुचित होता है वैसे ही कोमल भावों की अनुभूति के समय हम रस या आनंद में मग्न अवश्य हो जाते हैं किन्तु आत्मा के विस्तार का अनुभव नहीं कर पाते। रस दशा में (यह दशा) रति की हो या शोक की, पाठक या श्रोता स्व तथा पर के बंधनों से मुक्त अवश्य हो जाता है। इस मुक्ति को भी आत्मोत्कर्ष कहा जा सकता है किन्तु कोमल और कठोर भावों की अनुभूति की बीच की स्थिति में किंचित भेद परिलक्षित होता है। यह भेद ही उदात्त एवं सुन्दर काव्यावर्तक तत्व कहा जा सकता है। प्रेम में हमारी सारी वृत्तियाँ प्रिय में केन्द्रित हो जाती हैं। इसी प्रकार विराट वस्तु या व्यक्ति के साथ तादात्म्य स्थापित होने पर दृष्टा की आत्मा विराटत्व का अनुभव करती है। तात्पर्य यह है कि हम प्रत्येक भाव की अनुभूति को औदात्य की परिधि में सम्मिलित नहीं कर सकते। कुछ न कुछ भेद करके चलना होगा अन्यथा इस शब्द का व्यवहार ही निरर्थक हो जायेगा।

२००. **टी०एस० इलियट** ने रचना को व्यक्तित्व से पलायन कहा है। वे रचना में सर्जक के

व्यक्तित्व का योगदान स्वीकार नहीं करते। जबकि **लौंजाइनस** एवं **अरस्तू** जैसे आचार्यों ने रचना-प्रक्रिया में सर्जक के व्यक्तित्व को महत्वपूर्ण माना है। भारतीय काव्यशास्त्र में इस तथ्य पर **कुन्तक** ने बल दिया है।

२०१. डॉ० नगेन्द्र, **काव्य में उदात्त तत्व** पृष्ठ ५५ से

२०२. उपरिवत पृष्ठ ५५

२०३. **कामायनी,** प्रलय दृश्य/**राम की शक्तिपूजा,** समुद्र का दृश्य

२०४. **आचार्य क्षेमेन्द्र** ने औचित्य को काव्य का जीवित तत्व कहा है अर्थात काव्यत्व रस, अलंकार, भाषा, गुण, वृत्ति, रीति, नाम इत्यादि के उचित प्रयोग में रहा करता है।

"औचित्यं रससिद्धस्य काव्यस्य जीवितं"

२०५. डॉ० नगेन्द्र, **काव्य में उदात्त तत्व** पृष्ठ ६१

२०६. उपरिवत पृष्ठ १०७

२०७. आचार्य शुक्ल **चिन्तामणि** (साधारणीकरण निबन्ध)

२०८. डॉ० कुमार विमल- **सौन्दर्य शास्त्र के तत्व** पृष्ठ ११६ से

२०६. उपरिवत पृष्ठ ११८

२१०. उपरिवत पृष्ठ ११७

२११. **न हि मानुषात श्रेष्ठतरं हि किंचित** - वेदव्यास **(महाभारत)**

२१२. पंत, **युगपथ** पृष्ठ ५०

२१३. उपरिवत पृष्ठ ५०

२१४. वीणा माथुर, **प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन** पृष्ठ ६६-७०

२१५. जयशंकर प्रसाद, **कामायनी** पृष्ठ १

२१६. युगकवि डॉ० रामस्वरूप खरे, **शतमन्यु (खण्डकाव्य)** पृष्ठ १६

२१७. वात्स्यायन, **कामसूत्र,** ७/१/२२

२१८. डॉ० देवेश ठाकुर, **प्रसाद के नारी चरित्र,** पृष्ठ २६

२१६. प्रेमचन्द, **गोदान**

२२०. **डिक्शनरी ऑफ कुटेशन्स** पृष्ठ १०३६

२२१. पंत, **ग्राम्या (स्त्री कविता)** पृष्ठ ८२

२२२. हरिऔध, **प्रियप्रवास** पृष्ठ २५८

२२३. नवीन, **नारी (विशाल भारत, १६३०)** पृष्ठ ५०५

२२४. वीणा माथुर, **प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन** पृष्ठ ४४

२२५. प्रसाद **कामायनी (श्रद्धा सर्ग)** पृष्ठ ५५-५६

२२६. प्रसाद **कामायनी (लज्जा सर्ग)** पृष्ठ १०६

२२७. हजारी प्रसाद द्विवेदी, **हिन्दी साहित्य की भूमिका** परिशिष्ट में स्त्री रूप

२२८. प्रसाद **कामायनी** पृष्ठ १८

२२९. **वृहत्संहिता,** ७४/१-२

२३०. सूरदास **(सूरसागर)**

२३१. परमानन्द **(परमानन्द सागर, पद ४००)**

२३२. गुलाबराय, **प्रसाद की कला** पृष्ठ २७६

२३३. रवीन्द्र नाथ ठाकुर, **साधना** पृष्ठ १४

२३४(क) दिवस का अवसान समीप था, गगन भी था कुछ लोहित हो चला।

तरु शिखा पर थी राजती कमलिनी कुल वल्लभ की प्रभा।।

विपिन बीच विहंगम वृन्द का, कल निनाद समुत्थित था हुआ।

ध्वनिमयी विविधा विहंगावली, उड़ रही व्योम मंडल मध्य थी।। -हरिऔध (**प्रियप्रवास** पृष्ठ १)

(ख) **चारु चन्द्र की चंचल किरणें खेल रही हैं जल-थल में।**

स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है अवनि और अम्बर तल में।।

पुलक प्रगट करती है धरती हरित तृणों की नोकों से।

मानो झीम रहे हैं तरु भी मन्द पवन के झोंकों से।। -

(**मैथिली शरण गुप्त**, पंचवटी पृष्ठ १)

(ग) **इसी समय पौ फटी पूर्व में पलटा प्रकृति पटी की रंग।**

किरण कंटकों से श्यामाम्बर फटा दिवा के दमके अंग।।

कुछ-कुछ अरुण सुनहली कुछ-कुछ प्राची की अब भूषा थी।

पंचवटी की कुटी खोलकर खड़ी स्वयं क्या ऊषा थी।। -

(मैथिलीशरण गुप्त, पंचवटी पृष्ठ १३)

(घ) **झूम-झूम मृदु गरज गरज घनघोर।**

राग अमर अम्बर में भर निज रोर।। -निराला

(य) **अलका की किस विकल विरहिणी की पलकों का ले अवलम्ब।**

सुखी सो रहे थे इतने दिन कैसे हे नीरद निकुरम्ब।।

बरस पड़े क्यों आज अचानक, सरसिज कानन कर संकोच।।

अरे जलद में भी यह ज्वाला झुके हुए क्यों किसका सोच।।

किस निष्ठुर ठंडे हृदतल में, जगे रहे तुम बर्फ समान,

पिघल रहे किस की गर्मी से हे करुणा के जीवन प्रान।

चपला की व्याकुलता लेकर चातक का ले करुण विलाप।

तारा आँसू पोंछ गगन के रोते हों किस दुख से आप -प्रसाद कामायनी से

२३५. उधर गरजती सिंधु लहरियाँ, कुटिल काल के जालों सी।

चली आ रही फेन उगलती, फन फैलाए व्यालों सी।।

करका क्रन्दन करती गिरती, और कुचलना था सबका।

पंचभूत का यह तांडवमय, नृत्य हो रहा था कब का।। -प्रसाद कामायनी पृष्ठ २२

२३६. श्यामनारायण पाण्डेय **हल्दीघाटी** पृष्ठ ६२

२३७. उपरिवत पृष्ठ १०६

२३८. पन्त, **गुंजन** पृष्ठ ७६

२३९. प्रसाद **कामायनी** पृष्ठ १७५

२४०. उपरिवत पृष्ठ ३८

२४१. मनोरंजन प्रसाद सिंह, **उमंग** पृष्ठ ३८

२४२. गुरुभक्त सिंह **नूरजहाँ** पृष्ठ ६६

२४३. पन्त, **पल्लव**

२४४. प्रसाद, **झरना** पृष्ठ १२

२४५. प्रसाद **कामायनी** पृष्ठ ६३

२४६. प्रसाद, **कानन कुसुम** पृष्ठ २५

२४७. प्रसाद, **लहर** पृष्ठ ६२

२४८. प्रसाद, **कामायनी** पृष्ठ २५

२४९. महादेवी, **नीरजा** पृष्ठ ३

२५०. दिनकर, **रेणुका** पृष्ठ ४६

२५१. प्रसाद, **लहर** पृष्ठ २०

२५२. उपरिवत पृष्ठ १४

२५३. वही पृष्ठ ३२

२५४. प्रसाद, **लहर** पृष्ठ ३७

२५५. प्रसाद, **कानन कुसुम** पृष्ठ ५७

२५६. उपरिवत पृष्ठ ७४

२५७. सं० रामचन्द्र वर्मा, **मानक हिन्दी कोश** (तृतीय खंड)

२५८. संपादक-डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, डॉ० बृजेश्वर वर्मा, डॉ० धर्मवीर भारती, श्रीराम चतुर्वेदी (संयोजक -डॉ० रघुवंश), **हिन्दी साहित्य कोश** पृष्ठ ३३६

२५९. डॉ० बद्रीनारायण श्रोत्रिय, **सूर एवं तुलसी की सौन्दर्यभावना** पृष्ठ १६२ से उदधृत

२६०. **संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर** पृष्ठ ४८०

२६१. परमानन्द दास, **परमानन्द सागर** पद ४४६

२६२. सूरदास, **सूरसागर**

२६३. परमानन्ददास, **परमानन्द सागर** पद ३७८

२६४. सूरदास, **सूरसागर**

२६५. परमानन्ददास, **परमानन्द सागर** पद ३०

२६६. सूरदास **सूरसागर**

२६७. परमानन्ददास, **परमानन्द सागर** पद २८८

२६८. सूरदास **सूरसागर**

२६९. सूरदास **सूरसागर**

२७०. डॉ० कुमार विमल, **कला विवेचन** पृष्ठ ४६-४७

२७१. डॉ० नगेन्द्र एवं महेन्द्र चतुर्वेदी पृष्ठ ७

२७२. Art is the always an expression of some aspect of life; But this expression is inevitably at the some time interpretation -Edward Howerd griggs

कला के दार्शनिक तत्व, डॉ० चिरंजीलाल झा से उदधृत

२७३. Art is the expression of reasonable and consciousness life evoping in us both the deepest conseiousness of existance and the highest feeling and loftiest thoughts-Tolstoy

डॉ. चिरंजी लाल झा, **कला के दार्शनिक तत्व** पृष्ठ १ से उदृधत

२७४. डॉ० सरोजिनी मिश्रा, **साहित्य शास्त्र के सिद्धान्त** पृष्ठ ३६

२७५. The True work of art is but a shadow of devine perfection माइकेलएंजिलो

डॉ० सरोजिनी मिश्रा, **साहित्यशास्त्र के सिद्धान्त** पृष्ठ ६ उदधृत

२७६. The permanent element in mankind that corresponda to the element of form in art is man's sesthetic sensibility. It is the sensibility that is static, what is variable is the interpretation which man gives to the form of art. Which are said to be impressive

- Herbert Read, the meaning of art Page 20

२७७. The art are our store - hourse of recorded values. -Richards

भारतीय काव्य सिद्धान्त, आचार्य काका कालेलकर एवं डॉ० नगेन्द्र पृष्ठ ६ से उद्धृत

२७८. To treat life in the sprit of art is to make life a thing in which means and end are identified -वाल्टर पीटर

-डॉ० शान्तिस्वरूप गुप्त, **पाश्चात्य काव्य शास्त्र के सिद्धान्त** पृष्ठ २३१

२७९. Art is selfishly occupied which her own perfection only -having no desire to teach - cooking and finding the beautiful in all conditions and at all times

-डॉ० शान्तिस्वरूप गुप्त, **पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त** पृष्ठ २३०

२८०. संपादक डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, **हिन्दी साहित्य कोष** प्रथम संस्करण पृष्ठ २२१

२८१. **कलयति स्व-स्वरूपावेशेन तत्तदवस्तु परिच्छिनत्ति इति कला व्यापारः।** इस पर टिप्पणी है –**'कलयति स्वरूपं आवेशयति वस्तूनि या तत्र तत्र प्रभातरि कलनमेव कला'** अर्थात नव-नव स्वरूप प्रथोल्लेखशालिनी संवित वस्तुओं में या प्रमाता में स्व को आत्मा को परिमित रूप में प्रगट करती है। इसी क्रम का नाम कला है।

–जयशंकर प्रसाद **काव्यकला तथा अन्य निबन्ध** पृष्ठ ४२

२८२. डॉ० कान्ति चन्द्र पाण्डेय, **स्वतंत्र कला शास्त्र** पृष्ठ ५

२८३. उपरिवत पृष्ठ ६

२८४. रामचन्द्र वालिवें, **प्राचीन भारतीय कला** पृष्ठ ३६

२८५. उपरिवत पृष्ठ ३६

२८६. डॉ० सीताराम दीन, **साहित्यालोचन, सिद्धान्त और अध्ययन** पृष्ठ १

२८७. डॉ० मनोरमा शर्मा, **महादेवी के काव्य में लालित्य विधान** पृष्ठ ६३

२८८. श्री राम मेहरोत्रा, **साहित्य का समाजशास्त्र, मान्यता और स्थापना** पृष्ठ १३३

२८९. By constant human association sentiments gather around our things of use and invite the help of art to reveal themselves."

Ravindra Nath, on Art and Aestheties, Page 19

२९०. रामचन्द्र शुक्ल, **कला और आधुनिक प्रवृत्तियाँ** पृष्ठ २७

२९१. सरोजनी मिश्रा, **साहित्यशास्त्र के सिद्धान्त** पृष्ठ ३

२९२. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, **प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद** पृष्ठ ९

२९३. जैनेन्द्र कुमार, **साहित्य का श्रेय और प्रेय** पृष्ठ ४१

२९४. महादेवी वर्मा, **दीपशिखा (चिन्तन के क्षण)** पृष्ठ ९

२९५. महादेवी वर्मा, **दीपशिखा** पृष्ठ ६

२९६. डॉ० भगीरथ **मिश्र-कला, साहित्य और समीक्षा** पृष्ठ २

२९७. डॉ० रामकुमार वर्मा, **साहित्य चिन्तन** पृष्ठ १८

२९८. शांतिप्रिय द्विवेदी, **संचारिणी** पृष्ठ ८९-९०

२९९. सदगुरुशरण अवस्थी, **साहित्य तरंग** पृष्ठ १

३००. डॉ० जगदीश गुप्त, **भारतीय कला के पद चिन्ह** पृष्ठ १२६

३०१. डॉ० चिरंजीलाल झा, **कला के दार्शनिक तत्व** पृष्ठ १

३०२. डॉ० रामेश्वर प्रसाद खंडेलवाल, **जयशंकर प्रसाद वस्तु और कला** पृष्ठ २५८

३०३. डॉ० कान्ति चंद्र पाण्डेय **स्वतंत्र कलाशास्त्र** पृष्ठ २३

३०४. उपरिवत पृष्ठ २५

३०५. डॉ० मनोरमा शर्मा, **महादेवी काव्य में लालित्य विधान** पृष्ठ ६९

३०६. सरोजनी मिश्रा **साहित्य शास्त्र के सिद्धान्त** पृष्ठ १६

३०७. उपरिवत पृष्ठ १६

३०८. डॉ० रामेश्वर प्रसाद खंडेलवाल, **जयशंकर प्रसाद वस्तु और कला** पृष्ठ ३५७

३०९. जयशंकर प्रसाद, **काव्य कला तथा अन्य निबन्ध** पृष्ठ २३-२४

३१०. जयशंकर प्रसाद, **काव्य कला तथा अन्य निबन्ध** पृष्ठ २३-२४

३११. उपरिवत पृष्ठ २५

३१२. आचार्य शुक्ल, **चिन्तामणि (काव्य में रहस्यवाद)** पृष्ठ १६

३१३. डॉ० नगेन्द्र, **अरस्तू का काव्य भूमिका** पृष्ठ ३०

३१४. विश्वनाथ मिश्र, **वांग्मय विमर्श** पृष्ठ ३५-३६

३१५. **काव्य मीमांसा** द्वितीय अध्याय

३१६. आचार्य शुक्ल, **चिन्तामणि** भाग २ पृष्ठ १७८

३१७. मनोरमा शर्मा, **महादेवी के काव्य में लालित्य विधान** पृष्ठ ७० से उद्धृत

३१८. जयशंकर प्रसाद, **काव्य कला तथा अन्य निबन्ध,** पृष्ठ २५

३१९. सुरेन्द्र बारलिंगे, **सौन्दर्य तत्व और काव्य सिद्धान्त** पृष्ठ १०९

३२०. सुरेन्द्र बारलिंगे, **सौन्दर्य तत्व और काव्य सिद्धान्त** पृष्ठ ११०

३२१. डॉ. शांति स्वरूप गुप्त, डॉ० रामसागर त्रिपाठी **वृहत साहित्यिक निबंध** पृष्ठ ३३५-३३६

३२२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल **चिन्तामणि भाग १** पृष्ठ १७९

३२३. डॉ० रामानन्द तिवारी भारतीनन्दन, **सत्यं शिवं सुन्दरं** पृष्ठ १५४

३२४. K.C. Pande, Indian Aesthetics Page 616

३२५. डॉ० सीता राम दीन, **साहित्यालोचन सिद्धान्त और अध्ययन** पृष्ठ १२

३२६. डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त **रस सिद्धान्त का पुनर्विवेचन** पृष्ठ १६४

३२७. उपरिवत पृष्ठ १६५

३२८. राजेन्द्र प्रताप सिंह, **सौन्दर्यशास्त्र की पाश्चात्य परम्परा** पृष्ठ ८०

३२९. डॉ० जगदीश शर्मा, **काव्य सिद्धान्त और सौन्दर्यशास्त्र** पृष्ठ ४१-४२

३३०. डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त **रस सिद्धान्त का पुनर्विवेचन** पृष्ठ १६५

३३१. उपरिवत पृष्ठ १६५

३३२. एस.टी. नरसिंह चारी, **सूर की सौन्दर्य चेतना** पृष्ठ २२५

३३३. राजेन्द्र प्रताप सिंह **सौन्दर्यशास्त्र की पाश्चात्य परम्परा** पृष्ठ ११५

३३४. The work of art is in some sense a liberation of the personality normally our feelings are inhabited and repressed. We contemplate a work of art, and immediately there is a release and not only a release-sympathy is a release of feelings - but also a hightening, a tentening a

sublimation. Here is the essential difference between art and rentimentality, sentimentality is a release, but also a bracing. Art is the economy of feelings, it is emotion cultivating good form." - Hervert Read, Hesnins of art Page 31

३३५. डॉ० निर्मला जैन, **रस सिद्धान्त और सौन्दर्यशास्त्र** पृष्ठ ८६

३३६. राजेन्द्र प्रतांप सिंह **सौन्दर्यशास्त्र की पाश्चात्य परम्परा** पृष्ठ १४३

३३७. In other pleasure, it is said, we greatify our senses and passons, in the contemplation of beauty we are raised above ourselves. The passions are sileneed and we are happy in the recognition of a good that we do not seek to possess. The painter does not look at a spring of water with the eye of a thirsty man, nor at a beautiful women with these of a satyr. The difference lies, it is urged, in the impersonality of the enjoyment. But this distinction is one of intensity and delicacy, not of nature, and if seems satisfactory only to the least aesthetic minds" - Georg Santayana, Sense of Beauty P.37

३३८. राजेन्द्र प्रताप सिंह **सौन्दर्यशास्त्र की पाश्चात्य परम्परा** पृष्ठ १४७-१४८

३३९. (a) When we ordianarily talk of an `Aesthetic experience' or of an `Aesthetic' person. We are certainly reffering to much more than sensory or perceptual qualities. Page 32

(b) The roal of aesthetic experience is a kind of self contained world of its own, what is reveals is enough - Page 38

(c) Aesthetic experience is perception, but some thing more. Page 41

- Louis Arnold Reid, A study in Aestheties

३४०. डॉ० निर्मला जैन, **रस सिद्धान्त और सौन्दर्यशास्त्र** पृष्ठ ६४-६५

३४१. डॉ० कृष्णबल, **काव्यास्वाद का विवेचन** पृष्ठ १२७

३४२. डॉ० हरद्वारी लाल शर्मा, **काव्य और कला** पृष्ठ १६५

३४३. डॉ० कृष्णबल, **काव्यास्वाद का विवेचन** पृष्ठ ४३

३४४. डॉ० नगेन्द्र, **रस सिद्धान्त** पृष्ठ ३

३४५. डॉ० प्रताप सिंह चौहान, **समीक्षा के नए आयाम** पृष्ठ २७४

३४६. Of all the branches of learning which stern from the genious of India few are as profoundly Indian as Aesthetics.

३४७. Thus aesthetic object, according to Bhatta lollatte, is the unity of sthaybhava in the multiplicity of vibhava etc. when it is supported, strengthened, intensified or brought to predominance by these vary constituents of multiplicity. (1) Aesthetic experience is due to the

द्वितीय अध्याय

सौन्दर्याभिव्यक्ति की परम्परा

(क) वैदिक वांग्मय

(ख) औपनिषदिक साहित्य

(ग) पौराणिक साहित्य

(घ) हिन्दी साहित्य

द्वितीय अध्याय

सौन्दर्याभिव्यक्ति की परम्परा

(क) वैदिक वांग्मय

(ख) औपनिषदिक साहित्य

(ग) पौराणिक साहित्य

(घ) हिन्दी साहित्य

(क) वैदिक वांग्मय

"वेद में सौन्दर्य तत्व को स्वस्ति की संज्ञा दी गयी है। अतः वेद में मानव जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य स्वस्तिमान होना है। स्वस्ति शब्द 'सु' और 'अस्ति' के योग से बना है। 'सु' का अर्थ है सुन्दर और 'अस्ति' सत्ता का द्योतक है, स्वस्ति का अर्थ है 'सत्य सुन्दर' या 'सुन्दर सत्य'।"[1]

"वैदिक संहिताओं में साम का महत्व नितान्त गौरवमय माना जाता है। वृहद्देवता का कहना है जो पुरुष साम को जानता है वही वेद के रहस्य को जानता है-"सामानि यो वेत्ति स वेद तत्वम"। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं सामवेद को अपना ही स्वरूप बतलाया है-"वेदानां सामवेदोस्मि"..........छान्दोग्य के कथनानुसार उद्‌गीथ संपूर्ण सामवेद का सार बतलाया गया हैं। यह सुप्रसिद्ध है कि उद्‌गीय ओंकार का ही दूसरा नाम है अतः ओंकार को सब वेदों में भगवद्‌रूप होने का तात्पर्य सामवेद के महत्व प्रतिपादन में ही है।"[2]

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि सामवेद में प्रमुखतः ईश्वर के महत्व और विविध मन्त्रों द्वारा अखिल जगत नियन्ता के प्रति निवेदित स्तुतियों का उल्लेख है जिसे अपार्थिव सौन्दर्य की कोटि में परिगणित किया जाता है क्योंकि उदात्तता या दिव्यता सौन्दर्य का ही एक उपांग माना जाता है।

"अथर्ववेद ऐहिक फल देने वाला भी है। इस जीवन को सुखमय तथा दुःख विरहित बनाने के लिये जिन साधनों की आवश्यकता होती है। उनकी सिद्धि के लिये नाना अनुष्ठानों का विधान इस वेद में किया गया है। यज्ञ के पूर्ण निष्पादन के निमित्त जिन चार ऋत्विजों की आवश्यकता होती है उनमें से अन्यतम ऋत्विज ब्रह्मा का साक्षात सम्बन्ध इसी वेद से है।"[3]

भारतीय संस्कृति के अनन्य चिंतक **बल्देव उपाध्याय** अथर्ववेद के सम्बन्ध में अपनी अवधारणा व्यक्त करते हुये कहते हैं-**"अथर्ववेद प्राकृतजन के विश्वासों का, आचार-विचारों का, रहन-सहन का, अलौकिक शक्ति में दृढ़ विश्वास का, भूत-प्रेत आदि अदृश्य जीवों में पूर्ण आस्था का एक विराट विश्वसनीय कोश है जिसकी सहायता से हम उस प्राचीन युग की एक भव्य झाँकी देख सकते हैं।"[4]** इस प्रकार पार्थिव, अपार्थिव सौन्दर्य के साथ ही सौन्दर्य के अन्य उपांगों के चित्र भी प्रकारान्तर से इसमें उपलब्ध हैं।

"आध्वर्यव कर्म के लिये उपादेय यजुर्वेद में यजुषों का संग्रह है। 'यजुष' शब्द की व्याख्यायें आपाततः भिन्न भले ही प्रतीत हों, परन्तु उनमें एक ही लक्षण की ओर संकेत है....... तात्पर्य यही है कि ऋक् तथा साम से भिन्न गद्यात्मक मन्त्रों का ही अभिधान 'यजुः' है।"[5] यजुर्वेद में मुख्य रूपेण वैदिक कर्मकाण्ड का प्रतिपादन है।[6] स्पष्ट है कि यजुर्वेद में कर्म सौन्दर्य की प्रधानता मिलती है।

ऋग्वेद में सौन्दर्य की विविध रूपों में अभिव्यंजना बड़े ही प्रभावोत्पादक ढंग से हुई है। सम्पूर्ण ऋग्वेद सौन्दर्य से अभिमंडित है। अलंकार, रस और छंदों के माध्यम से सौन्दर्य की अद्भुत सृष्टि कहीं साम, कहीं उदगीथ और कहीं कर्म के रूप में चारों वेदों में परिलक्षित होती है।

सौन्दर्य की सर्वप्रथम अभिव्यक्ति ऋग्वेद के उषा सूत्रों में दृष्टिगत होती है-

उषो भद्रेभिरा गहि दिवाश्चिद्रोचनादधि।
वहन्त्वरुणप्सव उप त्वा सोमिनोगृहम।।[७]
उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत
अक्रन्नुषासो वपुनानि पूर्वथा रुशन्तं भानु मरूषीर शिश्रयुः।।
अधिपेशांसि वपने नृतूरिवापोर्णुते वक्ष उस्त्रेव वर्जहम
ज्योर्तिविस्मै भुवनाय कृण्वती गावो न व्रजं व्युषा आवर्तमः।।''[८]

अर्थात हे उषा! दमकते हुये नभ-मंडल से प्रकाशयुत मार्ग द्वारा आओ, सोमवान के गृह में अरुणवर्णी मयूखें तुम्हें लायें। लालवर्णी वैश्वानर किरणें (उषायें) उदित हुईं एवं रथ में नियोजित होने योग्य प्रदीप्त रश्मियों को रथ में जोतती हैं। प्राची दिशा यथा प्रकाश से प्रोद्भासित करती है ठीक उसी प्रकार व्यष्टि को ज्ञान-आलोक से प्रभासित करती है। तत्पश्चात प्रदीप्त उषाओं ने दिनकर को अवलम्ब प्रदान किया। उषा सुन्दर एवं लावण्ययुक्त कुशल नर्तकी की भाँति अपने रूप का निदर्शन करती है। दुग्ध दोहने के समय जिस प्रकार गाएं अपना अधस्तन भाग प्रदर्शित करती हैं उसी भाँति उषा भी अपने वक्ष-प्राकट्य से मोहित करती है। यथा गौशाला को लौटते समय गायें शीघ्रता करती हैं उसी भाँति उषा सुन्दरी सम्पूर्ण समष्टि को अपनी दिव्य ज्योति की आभा से अभिमंडित करती हुई आलोक बिखेरती हैं।

मन के शिव-संकल्प होने में भी सौन्दर्याकांक्षा की हृदयावर्जक अभिव्यंजना दिखायी पड़ती है-

''सुषा रथिरश्वानिव यन्मनुष्यान
नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्यप्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं
तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु।।''[९]

अथर्ववेद में पौष्टिकानि विभागान्तर्गत वृष्टि सूक्त में वृष्टि का मनोरम एवं उत्कृष्ट रूप में वर्णन हुआ है।[१०] स्त्रीकर्माणि सम्बन्धित सूत्रों में पुत्र की उत्पत्ति और सद्यः जात बालक हेतु सुन्दर प्रार्थना का उल्लेख है। **कौशिक सूत्रान्तर्गत स्त्री से प्रेम संपादन हेतु दाम्पत्य प्रेम के रमणीय क्रिया-किलापों का सुन्दर वर्णन मिलता है।** पाँचवें काण्ड के दशम सूक्त में वात्सल्य की सरस एवं मार्मिक अभिव्यंजना भाव-सौन्दर्य की द्योतिका है-

दुन्दुभेर्वाचं प्रयतां वदन्तीमाशृण्वती नाथिता घोष बुद्धा।
नारी पुत्रं धावतु हस्त गृह्यामित्री भीता समरेवधानाम्।।[११]

दुन्दुभिसूक्त (५/२१) के अन्तर्गत शत्रुपक्ष को त्रस्त और मोहित करने के लिए दुन्दुभि से की गई प्रार्थना में भाव सौष्ठव और मालोपमा के समन्वय ने सौन्दर्य की अनुपम अभिव्यंजना की है-

यथा श्येनात पतत्रिणः संविजन्ते अहर्दिवि सिंहस्य स्तनथोर्यथा
एवा त्वं दुन्दुभेऽमित्रानभि क्रन्द प्रत्रासयाथो चित्तानि मोहय।[१२]

अर्थात जिस प्रकार बाज से अन्य पक्षी भयभीत हो उठते है तथा सिंह के गर्जन मात्र से समस्त वन्य प्राणी भयाकुल हो जाते हैं उसी भाँति हे दुन्दुभि! तुम इस प्रकार अपनी भयंकर गड़गड़ाहट करो जिससे वे भयभीत हो उठें। उन पर इस प्रकार मोहिनी डालो जिससे युद्ध में उनकी शक्ति क्षीण हो जाये जिससे वे सहजता से परास्त हो जायें।

भूमि सूक्तान्तर्गत ६३ मन्त्रों में मातृस्वरूपा भूमि की जननी तथा पोषिका के रूप में महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। इन सूक्तों में भूमि की कल्पना सजीव रूप में की गई है-**माताभूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः**[१३] (अर्थात भूमि मेरी माता है और मैं मातृभूमि का पुत्र हूँ) एक और मन्त्र दृष्टव्य है-(अश्विनों ने जिसे नापा, विष्णु ने जिसे तीन कदम में मापा, देवराज इन्द्र ने जिसे अपनी मन्तव्य पूर्ति हेतु शत्रुरहित किया, वह वधुन्धरा मुझे उसी प्रकार दुग्ध प्रदान करें जिस तरह माता अपने शिशु को अनुराग से पुचकारती दुलारती दुग्धपान कराती है)-**सानो भूमिर्विसृजतां माता पुत्राय मे पयः**। प्रस्तुत मन्त्र में ममत्व स्पष्ट दृष्टिगत होता है।

ऋग्वेद में रस और अलंकारों के माध्यम से सौन्दर्यभावना अभिव्यक्त हुई है। इन्द्र के शौर्य और वीरता को प्रकट करने वाला यह सूक्त कितना प्रभावोत्पादक हैं-

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत स जनास इन्द्रः।।[१४]

(इन्द्र की सहायता के बिना मनुष्य विजयी नहीं हो सकता। योद्धा अपनी रक्षार्थ उसका आवाहन करते हैं। वह सम्पूर्ण विश्व में श्रेष्ठ है। वह च्युत न होने योग्य व्यक्तियों को भी च्युत करने में पूर्णतः समर्थ है क्योंकि वह शूरता और वीरता का प्रतीक है)

विप्रलम्भ श्रृंगार के माध्यम से उर्वशी के विरह में व्यथित पुरूरवा के कथन से मानवीय सौन्दर्य की अभिव्यक्ति दृष्टव्य है-

इषुर्न श्रिय इषुधेरसना गोषा शतसा न रंहिः।
अवीरे क्रतौ वि दविद्युतन्नोरा न मायुं चितयन्त धुनयः।।[१५]

ऋग्वेद में उपमा अलंकार का प्रयोग बहुत अधिक हुआ है जो सौन्दर्य भाव की अनूठी व्यंजना प्रस्तुत करता है। उपमा के अतिरिक्त रूपक, अतिशयोक्ति, व्यतिरेक और समासोक्ति अलंकारों के माध्यम से सौन्दर्य सृष्टि की गई है।

उपमा ऋग्वेदीय कवि का सर्वप्रिय अलंकार है जिसके प्रयोग से पगे-पगे चारुता दृष्टिगत होती है देखिये एक उदाहरण- उषा कभी भ्राताविहीन बहिन की भाँति अपने दायभाग को प्राप्त करने के

लिए पिता (सूर्य) के सम्मुख आती है तो कभी आकर्षक वस्त्राभूषणों को धारण कर पति को प्रेमपाश में निबद्ध करने के लिए चंचला रमणी की भाँति अपने पति (सूर्य) के सम्मुख अपने मन्जुल कान्तियुक्त रूप को विभिन्न दृष्टिकोणों से प्रस्तुत कर रिझाती है।

अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम्।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव निरिणीते अप्सः।।[१६]

इन्द्रस्तुति में वर्णन किया गया है कि त्वष्टा द्वारा विनिर्मित वज्र से इन्द्र ने जब पर्वत में छिपे हुये वृत्रासुर का वध किया तब उसी भाँति पानी बड़े वेग और तीव्रता से समुद्र की ओर चला जिस तरह संध्या समय चारागाहों से गायें उतावली से रंभाती हुई लौटती हैं।

अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष।
वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रभव जग्मुरापः।।[१७]

उपर्युक्त **वाश्रा धेनवः** की उपमा से सांयकाल अपने बछड़ों के लिए उतावली से रंभाती और दौड़ती गायों का चित्र बरबस आँखों के सामने उपस्थित हो जाता है। बहुत दिनों तक ठहरे हुए जल की प्रवहमानता के लिए इससे अधिक उत्तम और उत्कृष्ट उपमा की समर्थ शक्ति ऋग्वेदीय कवि के लिए ही संभव थी।

मानवीय भावों की मार्मिक अनुभूतियों की सुन्दर अभिव्यक्ति का उदाहरण भी दृष्टव्य है-महर्षि वशिष्ठ अपने आराध्य वरुण के प्रति उद्गार प्रकट करते हुये कहते हैं-कि मैं स्वयं से ही यह पूछता हूँ कि कब मेरी वरुण के साथ मैत्री होगी? कब वरुण प्रसन्न हो मेरे द्वारा अर्पित की गई समिधा को ग्रहण करेंगे? कब मैं उनकी दया का पात्र बन पाऊँगा? उक्त भाव की कितनी सुन्दर अभिव्यंजना निम्न सूक्त से ध्वनित होती है-

उत स्वया तन्वा सं वदे तत् कदान्वन्तर्वरुणे भुवानि।
कि मे हव्यमहृणामो जुबेत कदा मृलीकं सुमना अभिख्यम।।[१८]

नम्रता तथा दीनता के सौन्दर्य का निदर्शन कराती निम्नांकित पंक्तियाँ भी अवलोकनीय हैं-

अव द्रुग्धानि पित्र्या सृजा नोऽ व या वयं चकृमा तनूभिः
अव राजन् पशुतृपं न वायुं सृजा वत्सं न दाम्नो वसिष्ठम्।।[१९]

सूर्योदय का एक वर्णन कितना मनोरम बन पड़ा है-

दविध्वतो रश्मयः सूर्यस्य चमवावाधुस्तमो अप्स्वन्तः।[२०]

रूपकों के प्रयोग से भी ऋग्वेदीय मन्त्रों में सौन्दर्य-सर्जना की गई है यथा- **दिवो रुक्म उरुचक्षा उदेति**[२१] (सूर्य आकाश का सुनहला मणि है) **मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा**[२२]-(सूर्य आकाश में स्थापित रंगीन पत्थर है।)

अतिशयोक्ति के माध्यम से सौन्दर्य की सृष्टि उस मंत्र में स्पष्ट परिलक्षित होती है जिसमें

राजशेखर के अनुसार काव्य की अथवा यज्ञ की सायण के अनुसार अथवा शब्द की पातंजलि के अनुसार सुन्दर स्तुति की गई है-

चत्वारि श्रंगा त्रयोऽस्य पादा द्वे शीषे सप्त सप्तासो अस्य
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां आ विवेश।।[२३]

व्यतिरेक के माध्यम से द्वैतभाव की अभिव्यक्ति में सौन्दर्य-भाव की अद्भुत व्यंजना हुई है-

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्य नश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।।[२४]

सुन्दर पंखयुक्त सदा साथ रहने वाले तथा समान रूप से ख्याति प्राप्त दो भिन्न पक्षी एक ही वृक्ष का आश्रय लिये हैं। जिनमें से एक बिना कुछ खाये है तथा दूसरा स्वादिष्ट फल को खा रहा है। पक्षी द्वय में उपमान के द्वारा जीवात्मा तथा परमात्मा रूप में उपमेय के द्वारा अतिशयोक्ति दर्शित की गई है। दोनों पक्षियों में विभिन्नता के कारण व्यतिरेक का स्पष्ट किंतु गूढ़ संकेत भी है।

ऋतु वर्णन के भी सुन्दर और मनोहारी चित्र ऋग्वेद में मिलते हैं। वर्षा का एक रमणीय चित्र दृष्टव्य है-कि जब एक मेंढक की आवाज से प्रेरित हो दूसरा मेंढक भी टर्र-टर्र की ध्वनि करता है तो यह ध्वनि ऐसे प्रतीत होती है कि जैसे वेदध्वनि करने वाले शिष्य गुरु के वचनों को सुनकर पाठ ध्वनि करते हैं।

यदेषामन्यो अन्यस्य वाचं शाक्त स्येव वदति शिक्षमाणः।
सर्वं तदेषां समृद्धेव पर्व यत सुवाचो वद थनाध्यप्सु।।[२६]

उषा से सम्बन्धित सूक्तों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि उनके माध्यम से सौन्दर्य की अपूर्व व्यंजना अभिव्यंजित की गई है। प्रातः समय अरुणाभा से व्याप्त स्वर्णमय वितान पर दृष्टि निक्षेप से किस सहृदय के मानस में रमणीय भावना का अभ्युदय नहीं होता, शायद ही कोई ऐसा बिरला पाषाण हृदय हो। वैदिक ऋषि उसे मधुर और मोहक भाव से निहारता है और उसकी दिव्य आभा पर अपना मन हार बैठता है। उषा मानवी के रूप में कवि मानस के निकट आती है और जब कवि उसकी घनिष्ठता की अनुभूति करता है तो परिणाम स्वरूप कवि स्वानुभूति को अभिव्यक्ति का स्वर दे देता है। फलस्वरूप वह कभी उषा के कुमारी रूप का वर्णन करता है। कभी प्रेयसी के रूप में देखता है। कभी माता के रूप में उसकी छवि का अंकन करता है-तो कभी गृहिणी के रूप में। उषा कवि के लिए वाह्य सौन्दर्य का आकर्षण भर नहीं रह जाती इसीलिए कवि की वृत्ति वाह्य और आंतरिक दोनों प्रकार के निरूपण में रमती है।

कवि मानवी के रूप में उषा के मनोहर रूप पर रीझकर कह उठता है-हे उषा! तुम रूपवती किशोरी की भाँति नानाभूषणों से युक्त हो सूर्य के सम्मुख जाती हो तथा उसके समक्ष नवयौवना की तरह अपने वक्ष-प्रदेश को आवरण हीन करती हो।

कन्येव तन्वा शाशदाना एषि देवि देवमिय क्षमाणम्।

संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती।।[२७]

यहाँ कवि की अनुभूति ने उषा के कुमारी रूप को अभिव्यक्त किया है। सूर्य के सम्मुख प्रणयकामना को साकार रूप देने हेतु युवती उषा के कलाप की कल्पना कितनी अनूठी बन पड़ी है।

अन्य उदाहरण में कवि का कथन है कि जिस प्रकार योद्धा अपने आयुधों का मार्जन कर उसकी धार तीव्र करता है उसी भाँति उषा अपने आलोक की आभा से संसार को ज्ञान युक्त करती है-

पशून्न चित्रा सुभगा प्रथाना सिन्धुर्न क्षोद उर्विया व्यश्वैत।।[२८]

उषा का प्रतिदिन प्रातःकाले उदित होना ही उसकी अमरता का परिचायक है-

उषः प्रतीची भुवनानि विश्वो र्ध्वा तिष्ठस्य मृतस्य केतुः।[३०]

उषा का प्रतिदिन एक रूपाकार से प्राकट्य चक्रावर्तन के सदृश है-

समानामर्थं चरणीयमाना चक्रमिव नव्यस्याववृत्तस्व।।[३१]

उपर्युक्त उद्धरणों में उषा की रूप छवि की तीव्रता के प्रकटीकरण हेतु ही उपमा की नियोजना अति कलात्मक रूप में की गई है।

उषा विषयक सूक्तों के विवेचन से यह तथ्य भी उभर कर सामने आता है कि वैदिक ऋषि का प्रकृति के प्रति भी मधुर अनुराग रहा है। सामान्यतः प्रकृति चित्रण दो रूपों में किया जाता है अनावृत और अलंकृत। अनावृत चित्रण में प्रकृति का वर्णन आलम्बन रूप में किया जाता है जहाँ प्रकृति की निसर्ग सिद्ध सुषमा पर कवि रीझ-रीझ उठता है और अपनी भावानुभूति को अभिव्यक्ति देता है। अलंकृत वर्णन के अंतर्गत प्रकृति और उसके नानाविध कलापों का वर्णन मानवीकरण रूप में किया जाता है। प्रकृति चेतन और सजीव प्राणी की भाँति नाना प्रकार के व्यापार करती है। कभी मोहक सुंदरी की भाँति रसिकों के हृदय में आनन्द की सृष्टि करती है तो कभी उग्र रूप भयंकर पशु के समान मन में क्षोभ तथा भय की सर्जना करती है।

उषा विषयक मन्त्रों में कवि की इन्हीं द्विविध रूपों की अभिव्यक्ति परिलक्षित होती है। प्राची-क्षितिज पर स्वर्णिम आभा विकीर्ण करने वाली उषा के रूप-लालित्य पर कवि रीझ जाता है और कह उठता है-

उषो देव्यमर्त्या विभाहि चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती

आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्यवर्णां पृथुपाजसोये।[३२]

अलंकृत वर्णन के अंतर्गत उषा के रूप सौन्दर्य और उसके क्रिया कलापों पर मानवीकरण का आरोप कवि के कौशल का परिचायक है। कवि उषा की रूपशोभा का वर्णन करते समय आकर्षक देहयष्टि और नाना प्रकार के नयनाभिराम वस्त्राभूषण धारण करने वाली रूपवती युवती के सदृश उसका चित्रण करता है-

जायेव पत्य उशती सुवासा
उषा हस्रेव निरिणीते अप्सः।।[३३]

पति के समक्ष कोई भी पत्नी निज मन की विषय-भावना और हृदय के उछाह को गोपन नहीं रख सकती क्योंकि प्रत्येक नारी के हृदय में यह चाह होती है कि उसका पति सदैव उसी का होकर रहे और इसीलिए प्रत्येक स्त्री स्वयं को नाना प्रकार से सजाती है, संवारती है ताकि उसका पति रीझकर उसकी प्रणय कामना को पूर्ण करे। **"सूर्य का अनुकरण करती उषा कवि को साध्वी आचरण से युक्त प्रतीत होती है।"**[३४]

एक अन्य स्थान पर कवि संशय से भर कह उठता है कि कहीं दिनकर की सुवर्ण मयूखों की प्रखरता से उषा का कमनीय कान्त शरीर झुलस न जाए और वह विचलित हो उठे जिस तरह शूरवीर राजा अपने शौर्य और पराक्रम से शत्रु पक्ष को विचलित कर देता है-

नेतत्वा स्तनं यथा रिपुं तपाति
सूरो अर्चिषा सु जाते अश्व सूनृते।।[३५]

कवि को उषा रंगमंच पर नर्तन करने वाली नर्तकी समान प्रतीत होती है जो प्राची के क्षितिज के रंगमंच पर कलात्मक नृत्य कर रही है। यह कल्पना कवि की सौन्दर्य और कलाप्रियता की द्योतक है-

अधि पेशांसि वपते नृतूरिवा
पोर्णुते वक्ष उस्त्रेव बर्जहम।।[३६]

अतः स्पष्ट है कि सौन्दर्यानुभूति की अभिव्यक्ति वैदिक वांग्मय में भरपूर हुई है। वेदों में ऐहिक एवं आमुष्मिक कामनाओं की पूर्ति तथा आनन्दोपलब्धि के निमित्त मधुर-मनोहर भावाभिव्यंजना सहज रूप में हुई है। **बल्देव उपाध्याय** के शब्दों में- **"वेद के सूक्तों में नाना देवताओं से यज्ञ में पधारने के लिये भौतिक सौख्य सम्पादन के निमित्त तथा आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि उन्मिषित करने के हेतु नाना प्रकार के छन्दों में स्तुति की गई है। उनके रूपों का भव्य वर्णन कवि की कला का विलास है तो उनके भीतर सुकुमार प्रार्थना के अवसर पर कोमल भावों हार्दिक भावनाओं की रुचिर अभिव्यंजना है। उषा विषयक मंत्रों में सौन्दर्य-भावना का आधिक्य है तो इन्द्र विषयक मंत्रों में तेजस्विता का प्राचुर्य है। अग्नि के रूपवर्णन में यदि स्वाभावोक्ति का आश्रय है, तो वरुण की स्तुति के अवसर पर कोमल भावों की मधुर अभिव्यक्ति है। इस प्रकार वेद के मंत्रों में काव्य गुणों की काव्य-जगत की कोई आकस्मिक घटना नहीं है। तन्मयता तथा अनन्यता का यह विशद परिचायक चिन्ह है भावों की सरल सहज अभिव्यक्ति। निःसन्देह वेदों में इसका विशाल साम्राज्य है।"**[३७]

(ख) औपनिषदिक साहित्य

वेद के अन्तिम भाग होने से तथा सारभूत सिद्धान्तों के प्रतिपादक होने के कारण उपनिषद् ही 'वेदान्त' के नाम से विख्यात है। भारतीय तत्वज्ञान तथा धर्म सिद्धान्तों के मूल स्रोत होने का गौरव इन्हीं उपनिषदों को प्राप्त है। **उपनिषद वस्तुतः वह आध्यात्मिक मानसरोवर है जिससे ज्ञान की भिन्न-भिन्न सरितायें निकलकर इस पुण्यभूमि में मानवमात्र के ऐहिक कल्याण तथा आमुष्मिक मंगल के लिये प्रवाहित होती हैं। वैदिक धर्म की मूल तत्व-प्रतिपादिका प्रस्थानत्रयी में मुख्य उपनिषद ही हैं। अन्य प्रस्थान गीता तथा ब्रह्मसूत्र उसी के ऊपर आश्रित हैं। भारतवर्ष में उदय होने वाले समस्त दर्शनों के भी मौलिक तथ्यों की आधारशिला यही है। उपनिषद का इसीलिये भारतीय संस्कृति से अविच्छेद्य सम्बन्ध है। इनके अध्ययन से संस्कृति के आध्यात्मिक रूप का सच्चा परिचय हमें उपलब्ध होता है।''[३८]**

उपनिषद् शब्द उप नि उपसर्गक सद्‌धातु से निष्पन्न होता है। सद् धातु के अर्थ हैं विशरण = नाश होना, गतिः = पाना या जानना, अवसादन = शिथिल होना (सद्लृविशरण - गत्यव सादनेषु) उपनिषद मुख्यतया ब्रह्मविद्या का द्योतक है क्योंकि इस विद्या के अनुशीलन से मुमुक्षुजनों की संसार-बीजभूता अविद्या नष्ट हो जाती है (विशरण), वह ब्रह्म की प्राप्ति करा देती है (गति) तथा मनुष्य के गर्भवास आदिक दुख सर्वथा शिथिल हो जाते हैं।[३९]

उपनिषदों को ब्रह्मविद्या का अक्षय कोष एवं समस्त भारतीय दर्शनों का स्रोत कहा जा सकता है। इनका मूल प्रतिपाद्य जीवात्मा-परमात्मा के स्वरूप को स्पष्ट करना है। ज्ञान प्रधान होने पर भी इनमें भक्ति एवं कर्म विषयक चर्चा का अभाव नहीं है। औपनिषदिक कालीन ऋषि की सौन्दर्यानुभूति इन्हीं विषयों के विवेचन में अभिव्यक्त दिखाई पड़ती है।

मुक्तिकोपनिषद के अनुसार १०८ उपनिषद हैं। जिनमें से दस उपनिषद ऋग्वेद से सोलह साम से, इकतीस अथर्ववेद से शुक्ल यजुः से उन्नीस तथा बारह कृष्ण यजुः से सम्बन्धित हैं। शांकर भाष्य के आधार पर दस उपनिषद प्रामाणिक और प्राचीनतम स्वीकारे गये हैं-

ईश केन कठ प्रश्न मुण्ड माण्डूक्य तित्तिरिः
ऐतरेयं च छान्दोग्य वृहदारण्यकं दशः।।[४०]

क्रम विभाजन सम्बन्धी **बल्देव उपाध्याय** का अभिमत समीचीन प्रतीत होता है-**''इस प्रकार मोटे तौर से इन उपनिषदों को तीन श्रेणी में विभक्त कर सकते हैं। प्रथम श्रेणी में हम छान्दोग्य, वृहदारण्यक, ईश, तैत्तिरीय, ऐतरेय, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य को रख सकते हैं। जो तत्तत वेदों के आरण्यकों के अंश होने से निःसन्दिग्ध रूप से प्राचीन हैं। श्वेताश्वतर कौषीतकि तथा मैत्रायणीय तृतीय श्रेणी में रखे जा सकते हैं और दोनों के बीच में कठ उपनिषद को रख सकते हैं।[४१]**

चूँकि समस्त वैदिक तथा अवैदिक दर्शनों का स्रोत उपनिषदों में दिखायी पड़ता है अतः मेरी

दृष्टि में प्रमुख उपनिषदों के सार तत्व का अवलोकन औपनिषदिक सौन्दर्य को समझने के लिये अप्रासंगिक न होगा।

१. ईशोपनिषद्

इसका नामकरण **ईशावास्यमिदं सर्वम्** के आधार पर किया गया है। वस्तुतः यह माध्यन्दिन शाखीय यजुर्वेद संहिता का चालीसवां अध्याय है। इस उपनिषद् में मात्र १८ पद्यों के माध्यम से कर्म की आराधना का मर्म समझाया गया है। इस उपनिषद् में निष्काम भाव से कर्म के प्रति अनुराग रखने की बलवती भावना का निदर्शन है। इसमें अद्वैत-भावना का संदेश मुखरित हुआ है। ब्रह्म के स्वरूप के वर्णन के साथ-साथ विद्या-अविद्या तथा संभूति-असंभूति का विश्लेषण बड़े ही प्रभावोत्पादक दंग से किया गया है।

२. केनोपनिषद

'केनेषितं पतति' के आधार पर इसका नाम **केन उपनिषद** पड़ा है। शाखा के आधार पर इसे **तवलकार उपनिषद** भी कहते हैं। इस उपनिषद में चार खण्ड हैं। **प्रथम खंड** में साकार ब्रह्म तथा निराकार ब्रह्म में अन्तर का निदर्शन है। **द्वितीय खंड** में ब्रह्म के रहस्यमय स्वरूप का वर्णन है। अन्तिम **दोनों खण्डों** में उमा हेमवती के माध्यम से ब्रह्म के सर्वशक्तिमान तथा देवताओं के अल्पशक्तिमान होने का सुन्दर विश्लेषण किया गया है।

३. कठ उपनिषद

यह उपनिषद कृष्ण यजुर्वेद की कठ शाखा का अनुसरण करता है। अद्वैत तत्व चिन्तन से परिपूर्ण इस उपनिषद में दो अध्याय और प्रत्येक अध्यायान्तर्गत तीन वल्लियाँ हैं। इसमें नचिकेता को यम, उपदेश के माध्यम से अद्वैत तत्व का बोध कराते हैं। इस उपनिषद का मूल स्वर है- **'नेह नानास्ति किंचन'**।

४. प्रश्नोपनिषद्

आध्यात्म विषयक प्रश्नोत्तर से सम्बद्ध होने के कारण ही इसका नाम प्रश्नोपनिषद पड़ा। छह ऋषि महर्षि पिप्पलाद के सम्मुख जाकर प्रजा की उत्पत्ति, प्रजाओं को धारण और प्रकाशित करने वाले देवता, प्राणों के उत्पत्ति शरीर में आगमन विषयक, स्वप्न दर्शन और जागरण विषयक, ओंकार की उपासना और विजय विषयक तथा षोडशकला सम्पन्न विराट पुरुष के विवेचन विषयक प्रश्न पूछते हैं। इन प्रश्नों के उत्तरों के माध्यम से आध्यात्म विषयक समस्याओं का निराकरण वैचारिक ढंग से किया है। **तत्व रूप में अक्षर ब्रह्म की जगत की प्रतिष्ठा स्वीकारा गया है।**

५. मुण्डक उपनिषद्

मुण्डन सम्पन्न व्यक्तियों के निमित्त होने के कारण इस अथर्ववेदीय उपनिषद का नाम मुण्डक पड़ा। इस उपनिषद में कर्मकांड की हीनता और संकुचितता के चिन्तन के साथ ब्रह्मज्ञान के श्रेष्ठत्व

पर प्रकाश डाला गया है। द्वैतवाद का प्रधान मंत्र **'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया'** इस के अन्तर्गत है। वेदान्त शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग इसी उपनिषद में हुआ है। इसमें सांख्य तथा वेदान्त के तथ्यों का विवेचन अल्प रूप में किया गया है।

६. माण्डूक्य उपनिषद्

यह उपनिषद आकार से लघु होने पर भी विशाल सिद्धान्तों को समेटे है। इसमें मात्र १२ खण्ड या वाक्य हैं जिनके माध्यम से चतुष्पाद आत्मा के स्वरूप की व्यंजना की गई है। ऊँकार की विस्तृत व्याख्या इस उपनिषद में वर्णित है। चैतन्य की अवस्थाओं के तदनुरूप आत्मा का वर्गीकरण किया गया है जिसमें प्रपंचोपशम रूपी शिव को चैतन्य आत्मा के शुद्ध रूप की मान्यता दी गई है।

७. तैत्तिरीय उपनिषद्

यह उपनिषद तैत्तिरीय आरण्यक का अंश है। इस उपनिषद में शिष्य-गुरु सम्बन्धी शिष्टाचार तथा उपासना के प्रकारों पर प्रकाश डाला गया है। शीक्षावल्ली में प्रधानतः शिक्षार्थी के लिए सम्यक गुणों और शिक्षा सम्बन्धी व्यावहारिकता का निदर्शन है। भृगुवल्ली के अंतर्गत ब्रह्मप्राप्ति के साधनों का उल्लेख भृगु और वरुण के संवाद के माध्यम से किया गया है। ब्रह्मानंद वल्ली के अंतर्गत ब्रह्मविद्या विषयक ज्ञान का विवेचन किया गया है।

८. ऐतरेय उपनिषद

ऐतरेय आरण्यक के द्वितीय आरण्यकान्तर्गत चतुर्थ पंचम और षष्ठ अध्यायों को ही ऐतरेय उपनिषद कहा जाता है। इस उपनिषद में तीन अध्याय हैं। प्रथम अध्याय के दो खंडो में सृष्टितत्व का चिन्तन है, शेष दोनों अध्याय एक खण्ड के हैं- शरीर का व्यापक विश्लेषण इस उपनिषद का मूल है। इसमें यह भी स्पष्ट किया गया है कि गुरु के माध्यम से ही परमस्वरूप की प्रगति के रहस्य को समझा जा सकता है। अंतिम अध्याय में प्रज्ञान सम्बन्धी तत्व विवेचन है जो इसे आदर्शवाद का सम्यक निरूपक सिद्ध करता है।

६. छान्दोग्य उपनिषद

यह सामवेदीय उपनिषद विवेचन और तत्वचिंतन की दृष्टि से अत्यंत प्रौढ़ है। यह उपनिषद आठ अध्यायों में विभाजित है। इनमें से अंतिम तीन अध्याय आध्यात्मिक चिन्तन की दृष्टि से विशिष्ट महत्व रखते हैं। प्रारम्भिक अध्यायों में विविध विद्याओं ओंकार तथा साम के जटिल स्वरूप का विश्लेषण मिलता है। द्वितीय अध्याय में शौव उद्गीथ के माध्यम से स्वार्थी व्यक्तियों पर उपहास किया गया है। तृतीय अध्याय में गायत्री का वर्णन, कृष्ण की शिक्षा (३/१७) तथा अण्ड से सूर्य की उत्पत्ति (३/१६) का विशद निरूपण है। तृतीय अध्याय का मूल मन्त्र **सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** (ब्रह्म ही सब कुछ है) अद्वैतवाद की प्रतिष्ठा का शंखनाद करता है। चतुर्थ अध्याय में सत्यकाम जाबाल तथा उनकी माता का आख्यान (४/४/६), उपकोशल को ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति (४-१०-१७) का वर्णन है। पंचम

अध्याय में छह दार्शनिकों के सिद्धान्तों के सामंजस्य का निरूपण है (५/११-२४)। षष्टम अध्याय में आरुणि के ऐक्य प्रतिपादक सिद्धान्तों की विस्तृत विवेचना है। सप्तम अध्याय में सनत्कुमार तथा नारद का आख्यान है जिसमें नारद आत्मविद्या की प्राप्ति हेतु सनत्कुमार के समक्ष आते हैं। अन्तिम अध्याय में देवराज इन्द्र और विरोचन का आख्यान और आत्म-प्राप्ति के मार्गों की विशद व्याख्या है।

१०. वृहदारण्यक उपनिषद

इस उपनिषद में छः अध्याय है। **प्रथम अध्यायान्तर्गत** मृत्यु, प्राण की श्रेष्ठता तथा सृष्टि विषयक विश्लेषण किया गया है। **द्वितीय अध्याय** में काशीनरेश अजातशत्रु तथा अहंकारी गार्ग्य के रोचक संवाद उल्लेख्य हैं। **तृतीय अध्याय** में याज्ञवल्क्य द्वारा ब्रह्मवादियों की पराजय का तथा **चतुर्थ** में विदेह राज जनक के द्वारा याज्ञवल्क्य से आत्मज्ञान प्राप्ति का विशद निरूपण है। **पंचम अध्याय** में नीति परलोक और सृष्टि विषयक तथ्यों का उद्घाटन किया गया है। **अंतिम अध्याय** में जैबलि तथा श्वेत केतु आरुणेय के तर्कयुक्त प्रश्नोत्तर हैं जिसमें जैबलि ने पंचाग्नि विद्या के तथ्यों का निरूपण किया है। सम्पूर्ण उपनिषद में याज्ञवल्क्य के दार्शनिक विचारों का विस्तृत और सम्यक विवेचन है। याज्ञवल्क्य का निम्न उपदेश आध्यात्मिक शिक्षा की महत्ता को प्रकट करता है-

आत्मा वा अरे दृष्टव्यः श्रोतव्योमन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेयिः।[४४]

इस प्रकार प्रमुख उपनिषदों के संक्षिप्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि सम्पूर्ण औपनिषदिक साहित्य में विचार सौन्दर्य कूट-कूट कर भरा है। श्रेष्ठ विचारों का प्राधान्य होने के कारण सौन्दर्य का आदर्श रूप उपनिषदों में प्राप्त होता है जिसे उदात्त सौन्दर्य की कोटि में परिगणित किया जाना असंगत प्रतीत नहीं होगा। प्रसंगानुकूल अपार्थिव स्रान्दर्य के अन्तर्गत भी स्वीकारना मेरी दृष्टि में अनुचित नहीं है। आइये, इसी विचार-सौन्दर्य का मनन करते हैं-

उपनिषदों में दार्शनिक सौन्दर्य पगे पगे दृष्टव्य है। ब्रह्म के स्वरूप का विविध रूपेण विश्लेषण और चिन्तन इसी दार्शनिक सौन्दर्य का अंग है। **तैत्तिरीय उपनिषद** में ब्रह्म को परिभाषित करते हुए कहा गया है- जिससे सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति होती है, जिसके द्वारा वे पोषित होते हैं और अन्त में जिसमें वे अपने अस्तित्व को विलीन कर देते हैं वही ब्रह्म है-

यतोवा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति,
य प्रन्यन्त्यभिसंविशान्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्मेति।[४२]

छान्दोग्य उपनिषद में ब्रह्म को तज्ज, तल्ल और तदन् माना गया है। सम्पूर्ण समष्टि की उत्पत्ति का कारक होने के कारण ब्रह्म तज्ज है। सम्पूर्ण जगत के उसमें लय होने कारण ब्रह्म तल्ल है और सभी प्राणियों के उसी से प्रानन करने के कारण ही वह तदन् है-

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत।[४४]

सृष्टि का कारक होने के साथ ही ब्रह्म उसका निमित्त उपादान कारण भी है।

असद्वा इदमग्र आसीत्। ततो वै सद जायत।

तदात्मानं स्वयमकुरुत। तस्मात्तत्सुकृतमुच्यत इति।'[४५]

श्वेताश्वतर उपनिषद में ब्रह्म को संसार के बन्ध स्थिति और मोक्ष का कारण स्वीकारा गया है-

संसार मोक्ष स्थिति बन्ध हेतुः।[४६]

ब्रह्म के विरोधी गुणों के बारे में स्पष्ट किया गया है कि **वह अत्यन्त निकट और दूरातिदूर है।[४७]** इसी भाँति **ब्रह्म सूक्ष्मातिसूक्ष्म तथा महानतम है।[४८] ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप है।[४९] वह निरंजन, निरवद्य और निष्कल है।[५०] ब्रह्म, अव्यक्त अमृत, अरूप,[५१] सर्वज्ञ, सर्वविद[५२] और ज्ञान, बल आदि शक्तियों से युक्त है। ब्रह्म के समान और कोई नहीं है तब उससे अधिक महत्व वाला असंभव है।[५३]**

ब्रह्म की प्राप्ति शास्त्राध्ययन या प्रवचन से असंभाव्य है। ब्रह्म स्वयं जिसे अपने स्वरूप का बोध कराता है, वही उसे जान पाता है-

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो, न मेधया न बहुना श्रुतेन
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम।।[५४]

ब्रह्म वस्तुतः सर्वकर्मा, सर्वगन्ध, सर्वरूप और सर्वस्वरूप है-

आकाशात्मा सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः सर्वमिदम्।[५५]

परमेश्वर ही सर्वव्यापी और सर्वज्ञ हैं। वे ही काल और कर्म को चलाने वाले एकमात्र सम्पूर्ण, निखिल विश्व के नियन्ता और नियामक हैं-

एकोदेवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।।[५६]

जीव से श्रेष्ठ मायाशक्ति है। मायाशक्ति के स्वामी त्रिभुवननियन्ता स्वयं परमेश्वर हैं। अतः वे सबसे महान हैं और वे ही सबकी परम नियति और गति हैं-

महतः परमव्यक्तमव्यक्तात पुरुषः परः।
पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः।।[५७]

परमेश्वर जीव की हृदय रूपी गुफा में निवास करते है।[५८] दसों दिशाओं में उसकी व्याप्ति है तथा सभी ओर उसके मुख हैं।[५९] परमेश्वर शक्ति प्रदाता है सब उसी से शक्ति प्राप्त करते हैं।[६०] बिना उसकी इच्छा के किसी तिनके मात्र को न अग्नि जला सकती है और न ही वायु उसे उड़ा सकती है।[६१]

आत्मा न तो जन्म लेती है और न मरती है। वह अजन्मा तथा शाश्वत है। शरीर के विनष्ट होने पर भी आत्मा का विनाश नहीं होता है।[६२] कठोपनिषद में रथ के रूपक से उत्कृष्ट सौन्दर्य की व्यंजना अभिव्यंजित हुई है। **रथ के रूपक में शरीर को रथ और आत्मा को रथी माना गया है जिसमें इन्द्रियाँ रूपी घोड़े, मन रूपी लगाम तथा बुद्धि रूपी सारथी है।[६३] जो प्राणी बुद्धि रूप सारथी से युक्त मन रूपी लगाम से इन्द्रियों को वश में कर लेता है वही परमात्मा के निकट**

पहुंचकर परमगति को प्राप्त कर सकता है।[६४]

उपनिषदान्तर्गत अद्वैतवाद, द्वैतवाद और त्रैतवाद विषयक सूत्रों में दार्शनिक और वैचारिक सौन्दर्य की अद्‌भुत व्यंजना मिलती है-

अद्वैतवाद-

निम्न मंत्रों में जीव और ब्रह्म की एकता पर प्रकाश डाला गया है-

तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि।[६५]

सर्व खल्विदं ब्रह्म।[६६]

नेह नानास्ति किंचन।[६७]

द्वैतवाद-

निम्न मंत्रों में द्वैतभाव की उद्‌भावना हुई है इनमें जीव और ब्रह्म की अलग-अलग सत्ता का प्राकटय है।

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः।
तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशम।।[६८]

मायातुं प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।
तस्यावयव भूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत।।[६९]

एतद्धयेवाक्षरं ब्रह्म एतद्धेयवाक्षरं परम्।
एतद्धयेवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत।।[७०]

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्व जाते।
तयोरन्यः पिप्पलंस्वाद्वच्य नशनन्नन्यो अभिचाकशीति।।[७१]

त्रैतवाद-

निम्न मंत्रों में त्रैतवाद की धारणा का सुन्दर निरूपण किया गया है-

भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत्।[७२]
संयुक्त मेतद् क्षरमक्षरं च व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः
अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावाज्ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः।।[७३]

ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशनी शावजा ह्येका भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता।
अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्ता त्रयंयदा विन्दते ब्रह्ममेतत।।[७४]

उपनिषदों में सृष्टि की उत्पत्ति विषयक तत्व चिन्तन विवेकपूर्ण ढंग से हुआ है। मुंडकोपनिषद के अनुसार ईश्वर से पदार्थ उसी भाँति उत्पन्न होते हैं जिस प्रकार अग्नि से चिंगारियाँ निकलती हैं, मकड़ी के अन्दर से बुने जाल के रेशे निकलते हैं अथवा जैसे मनुष्य के शरीर से रोम और केश उत्पन्न होते हैं-

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्मते च, यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति
यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि तथा क्षरात्सम्भवतीह विश्वम्।।[७५]

तैत्तिरीय उपनिषद में सृष्टि क्रम के बारे में वर्णित है कि ईश्वर से आकाश, आकश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से औषधियों, औषधियों से अन्न और अन्न से पुरुष का प्रादुर्भाव हुआ है-

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः ओषधीभ्योऽन्नम्। अन्नात्पुरुषः। स वा एष पुरुषोऽन्नर समयः।[७६]

मोक्ष की प्राप्ति जीव के लिये आनन्द का कारण है। मोक्ष प्राप्ति का विवेचन उपनिषदों में व्याप्त सौन्दर्य बोध की ओर संकेत करता है। **छान्दोग्य उपनिषद** में उल्लेख मिलता है कि मुक्त जीव परम आत्मा को प्राप्त कर दिव्यचक्षुओं से सहज मन के द्वारा विषय वासनाओं को त्याज्य भाव से देखता हुआ आनन्द प्राप्त करता है। इस प्रकार जीव को दिव्यता की प्राप्ति होती है और तदनन्तर दिव्य जीव परमसत्ता की आराधना से मोक्षावस्था में सम्पूर्ण अभिलषित आनन्द की प्राप्ति में सक्षम होते हैं-

स वा एषा एतेन दैवेन चक्षुषा मन सैतान कामान् पश्यन रमते।
य एते ब्रह्म लोके तं वा एतं देवा आत्मानमुपासेत तस्मात्तेषां सर्वं।।
च लोका आत्ताः सर्व च कामाः सर्वांश्च लोकानाप्नोति
सर्वाश्च कामान् यः तमात्मानमनुविद्य विजानीतीति।[७७]

जीवन्मुक्ति विषयक तथ्य का स्पष्टीकरण यों किया गया है कि ब्रह्म के स्वरूप को जानने वाला व्यक्ति शरीर रहने पर भी शारीरिक मोह से मुक्त हो जाता है। ज्ञानी सांसारिक विध्नों से विरक्त होकर आत्मप्रज्ञ हो जाता है। **ब्रह्म का स्वरूप समझ लेने के उपरान्त जीव स्वयं ब्रह्मस्वरूप हो जाता है।**[७८] **जीव या ज्ञानी इसी भाव में आनन्द को अनुभूत करता है उसे मोक्ष प्राप्ति हेतु इधर-उधर भटकना नहीं पड़ता है।**[७९] **इसी अवस्था की जीवन्मुक्ति कहते हैं।**[८०]

उपनिषदों में मुक्ति का हेतु ज्ञान को स्वीकारा गया है।[८१] **ज्ञान प्राप्त होने पर दिव्य चक्षु खुल जाते हैं और हृदय में व्याप्त समस्त भ्रान्तियों का निराकरण स्वयमेव हो जाता है।**[८२] **भ्रम का कारण है द्वैतभाव समाप्ति के अनन्तर यद्यपि इन्द्रियाँ विषयों को अनुभूत करती हैं परन्तु जीवात्मा इनसे विरक्त हो जाती है।**[८३] **परमात्मा के स्वरूप का बोध होने पर जीव अमरत्व की ओर अग्रसर होता है।**[८४]

ब्रह्म के मर्म को जान लेने वाला मोक्ष पाकर अपने निश्चित गन्तव्य अर्थात ब्रह्मलोक का अधिकारी होता है।[८५] **उसकी जीवात्मा स्वतः परमात्मा में विलीन हो जाती है।**[८६] **ब्रह्म के स्वरूप को जानने वाले के हृदय की सारी भ्रांतियाँ स्वयमेव समाप्त हो जाती हैं और वह स्वयं ब्रह्मरूप हो जाता है।**[८७] **अतः स्पष्ट है कि उपासक जब अपने मानस में अवस्थित परमसत्ता के स्वरूप को समझकर मर्म को जान लेता है तो वह ब्रह्म के सदृश अमरत्व को प्राप्त कर लेता है।**[८८]

उपनिषदों में मूलतः जीवात्मा और परमात्मा के सम्बन्ध में ही चिन्तन और मनन किया गया है। यत्र तत्र **भक्ति**[८९] और **उपासना**[९०] विषयक चिन्तन उपनिषदों के भक्ति सौन्दर्य की ओर इंगित करता है। **केनोपनिषद** में स्पष्ट कहा गया है कि **परमब्रह्म की प्राप्ति का प्रयास सभी प्राणियों के लिए आवश्यक है क्योंकि वही सबकी आराधना का मूल है।**[९१] **वह परम आत्मा सबके हृदय में ही अवस्थित रहती है जिसका गुणानुवाद सभी करते हैं।**[९२] **हृदय में अवस्थित परमसत्ता का बोध उसी की अहेतुकी कृपा से संभव है।**[९३] **परमात्मा की शरण में जाने वाले उपासक को उसके किए गये कर्मों के फल कभी रोक नहीं पाते।**[९४] इस प्रकार ब्रह्म स्वयं ही जीवात्मा के अपराधों को क्षमाकर अपने स्वरूप का बोध करा उसे निर्वाण प्रदान करता है। इस प्रकार उपनिषदों में सर्वत्र आध्यात्मिक सौन्दर्य परिलक्षित होता है।

(ग) पौराणिक साहित्य

भारतीय संस्कृति के प्राप्त उल्लेखों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पुराण, वेद के समान ही प्राचीन हैं। **वेद,**[९५] **ब्राह्मण,**[९६] **आरण्यक**[९७] और **उपनिषद**[९८] के विश्लेषणानुसार पुराण वेदों के समकक्ष ही ठहरते हैं। **स्मृतिकार याज्ञवल्क्य** के अनुसार–'**पुराण,न्याय-मीमांसा, धर्मशास्त्र, चार वेद और वेदांग इन चौदह विद्याओं में से पुराण विद्या का प्रथम स्थान है।**[९९] ब्रह्मांड पुराण के मतानुसार–"**वेद का पूर्ण अध्ययन करने पर भी पुराण ज्ञान से शून्य व्यक्ति को तत्वज्ञ नहीं माना जा सकता है क्योंकि वेद का वास्तविक स्वरूप पुराणों में ही वर्णित है।**[१००] उपर्युक्त मतों से पुराणों की वैदिक-समकक्षता तथा महत्ता स्वयंसिद्ध प्रतीत होती है।

पुराणों में अवतारवाद की अवधारणा को मान्यता प्रदान की गई है और इसीलिए अवतारवाद से संदर्भित विभिन्न आख्यानों को पुराणों में निबद्ध किया गया है। अवतारवाद की प्रतिष्ठापना के कारण पार्थिव एवं अपार्थिव सौन्दर्य की गंभीर विस्तृत एवं रमणीय अभिव्यक्ति पुराणों में मुखरित हुई है।

पुराणों का महत्व इसलिये और अधिक हो जाता है क्योंकि जिन संदर्भों को वेदादि में संकेत रूप में प्रयोग में लाया गया है उनका विस्तृत वर्णन और विवेचन पुराणों का मूल आधार रहा है। पुराणों में आख्यानों का बहुत प्रयोग किया गया है, चाहे वे सृष्टि-उत्पत्ति से सम्बन्धित हों चाहे आध्यात्म विषयक या चाहे प्रकृतितत्व विषयक। स्पष्ट है कि यदि पुराणों में वैदिक संदर्भों और आख्यानों का इतना विस्तृत और व्यापक चिन्तन न होता तो वैदिक संदर्भ अग्राह्य ही रहते। इसीलिए पुराणों को वैदिक भाष्य भी कहा जाता है।

'भागवत' को पुराणों का सुमेरु कहा जा सकता है। पौराणिक प्रवृत्तियों का सर्वाधिक प्रतिफलन इसी में हुआ है। अतएव पौराणिक सौन्दर्य के वैशिष्ट्य को उजागर करने के लिए इसका सर्वाधिक आश्रय ग्रहण करना अनुचित न होगा। श्री मद्भागवत पुराण में पार्थिव, अपार्थिव एवं प्राकृतिक

सौन्दर्य की पूर्णरूपेण अभिव्यक्ति पौराणिक सौन्दर्य को अभिव्यंजित करती है।

श्री मदभागवत के तेरहवें अध्याय में सभी अठ्ठारहों पुराणों के नाम तथा उनकी प्रामाणिक श्लोक संख्या का उल्लेख मिलता है। श्रीमदभागवत के अनुसार-ब्रह्मपुराण में दस हजार श्लोक, पद्मपुराण में पचपन हजार, विष्णु पुराण में तेईस हजार और शिवपुराण की श्लोक संख्या चौबीस हजार है। श्री मदभागवत में अठारह हजार, नारद पुराण में पच्चीस हजार, मार्कण्डेय पुराण में नौ हजार तथा अग्निपुराण में पंद्रह हजार चार सौ श्लोक हैं। भविष्य पुराण में चौदह हजार पांच सौ, ब्रह्मवैवर्त पुराण में अठारह हजार और लिंग पुराणान्तर्गत ग्यारह हजार श्लोक हैं। वराह पुराण में चौबीस हजार, स्कन्दपुराण में इक्यासी हजार एक सौ तथा वामन पुराण में दस हजार श्लोक हैं। कूर्म पुराण में सत्रह हजार और मत्स्य पुराणान्तर्गत चौदह हजार श्लोक हैं। गरुड़ पुराण में उन्नीस हजार तथा ब्रह्मांड पुराण में बारह हजार श्लोक हैं इस प्रकार सब पुराणों की कुल श्लोक संख्या चार लाख है जिनमें श्रीमदभागवत अठारह हजार श्लोकों का है-

"ब्राह्मं दश सहस्राणि पादमं पंचोनषष्टि च।
श्री वैष्णवं त्रयोविशंच्वतुर्विंशति शैवकम्।।
दशाष्टौ श्री भागवतं नारदं प चविंशतिः।
मार्कण्डं नव वाह्नं च दशप च चतुः शतम।।
चतुर्दश भविष्यं स्यात्तथा प चशतानि च।
दशाष्टौ ब्रह्मवैवर्त्त लिंङ्ग मेकादशैव तु।।
चतुर्विंशति वाराह मेकाशीति सहस्त्रकम।
स्कान्दं शतं तथा चैकं वामनं दश कीर्तितम।।
कौर्मं सप्तदशाख्यातं मात्स्यं तत्तु चतुर्दश।
एकोनविंशत सौपर्ण ब्रह्माडं द्वादशैव तु।।
एवं पुराण संदोहश्चतुर्लक्ष उदाहृतः।
तत्राष्टादशसाहस्त्रं श्री भागवतमिष्यते।।[१०१]

श्री मदभागवत पुराण सभी अठारह पुराणों में सर्वश्रेष्ठ है। स्वयं मदभागवत में सूत जी शौनक जी को समझाते हुये कहते हैं कि-संतसभा में दूसरे पुराणों की शोभा केवल तभी तक होती है जब तक सर्वश्रेष्ठ श्रीमदभागवत पुराण के दर्शन नहीं होते। यह श्री मदभागवत समस्त उपनिषदों का सार है जो इसके रसामृत का पान कर लेता है उसका मानस अन्य किसी पुराण में नही रमता। जिस प्रकार नदियों में गंगा, देवताओं में विष्णु और वैष्णवों में श्री शंकर का स्थान सर्वोपरि है उसी भाँति पुराणों में श्री मदभागवत का स्थान है।

शौनकादि ऋषियो! जिस प्रकार सम्पूर्ण क्षेत्रों में काशी सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है उसी भाँति पुराणों में श्री मदभागवत का स्थान सबसे ऊँचा है। यह श्री मदभागवत पुराण सर्वथा निर्दोष है। इस पुराण

में जीवन्मुक्त परमहंसों के सर्वश्रेष्ठ, अद्वितीय एवं माया के लेश से रहित ज्ञान का गायन है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता है कि इसका नैष्कर्म्य अर्थात् कर्मों की आत्यन्तिक निवृत्ति भी ज्ञानवैराग्य एवं भक्ति से युक्त है जो इसका श्रवण, पठन और मनन करता है उसे परमेश्वर की भक्ति प्राप्त होती है और वह मुक्त हो जाता है-

"राजन्ते ताव दन्यानि पुराणानि सतां गणे।
यावन्न दृश्यते साक्षाच्छ्री मद भागवतं परम।।
सर्ववेदान्त सारं हि श्री भागवतमिष्यते।
तद्रसामृत तृप्तस्य नान्यत्र स्याद रतिःक्वचित्।।
निम्न गानां यथा गंगा देवानाम च्युतो यथा।
वैष्णवानां यथा शम्भुः पुराणाना मिदं तथा।
क्षेत्राणां चैव सर्वेषां यथा काशी ह्यनुत्तमा।
तथा पुराणाव्रातानां श्री मद भागवतं द्विजाः।।
श्री मदभागवतं पुराण ममलं यद् वैष्णवानां प्रियं,
यस्मिन पारमहंस्य मेकममलं ज्ञानं परं गीयते।
तत्र ज्ञान विराग भक्ति सहितं नैष्कर्म्य भाविष्कृतं,
तच्छृण्वन् विपठन् विचारण परो भक्तया विमुच्येन्नरः।।[१०२]

इस प्रकार अठारह पुराणों में कुल चार लाख श्लोक हैं। इनका मनन, चिन्तन और विश्लेषण न तो प्रसंगानुकूल है और न ही इससे अभीष्ट मन्तव्य सिद्ध होता है। हमारा अभिप्राय पुराणों में सौन्दर्य की अभिव्यंजना के समग्र अनुशीलन से नहीं है वरन हमें तो सौन्दर्याभिव्यक्ति की परम्परा के अन्तर्गत इतना ही अभीष्ट है कि पुराणों में सौन्दर्य की व्यंजना नानाविध रूपों में हुई है। चूँकि श्री मदभागवत सभी पुराणों में सर्वश्रेष्ठ है अतः हम इसी पर अपना ध्यान केन्द्रित कर सौन्दर्य-सर्जना विषयक मनन करेंगे। चूँकि श्री मदभागवत में सभी पुराणों का निचोड़, उपनिषदों का सारतत्व, वैदिक सन्दर्भों के आख्यान हैं अतः हमारा अभीष्ट श्री मदभागवत के विश्लेषण से स्पष्ट हो जायेगा।

श्री मदभागवत माहात्म्य के चौथे अध्याय के प्रारंभ में उल्लेख है कि अपने भक्तों के हृदय में अलौकिक भक्ति का आविर्भाव देखकर स्वयं भगवान अपना लोक छोड़कर पधारे। उनके गले में वनमाला शोभित थी। श्री अंग सजल जलधर की भाँति श्यामवर्ण था, उस पर मनोरम पीताम्बर शोभित हो रहा था। कटि प्रदेश करधनी की लड़ियों से युक्त था। सिर पर मुकुट तथा कर्ण -कुण्डलों की शोभा देखते ही बनती थी। वे त्रिभंगी मुद्रा धारण किये चित्त को मोहित कर रहे थे। वक्षस्थल पर कौस्तुभमणि अपनी छटा विकीर्ण कर रही थी। सर्वांग हरिचन्दन से युक्त था। उस रूप की शोभा का वर्णन किया नहीं जा सकता मानों सैकड़ों अनंगों की रूपछवि को अपने में समाहित किये थे। वे परमानन्दचिन्मूर्ति मधुरातिमधुर मुरलीधर ऐसी अनुपम छवि से भक्तों के निर्मल चित्त में आविर्भूत हुए।

अथ वैष्णव चित्तेषु दृष्टाव भक्तिम लौकिकीम्।
निजलोकं परित्यज्य भगवान भक्त वत्सलः।।
वनमाली घनश्यामः पीतवासा मनोहरः।
कांची कलापरु चिरोल्ल सन्मुकुट कुण्डलः।।
त्रिभंग ललितश्रचारु कौस्तुभेन विराजितः।
कोटि मन्मथ लावण्यो हरि चन्दन चर्चितः।।
परमानन्द चिन्मूर्तिर्मधुरो मुरली धरः।
आविवेश स्व भक्तानां हृदयान्य मलानि च।।[१०३]

श्री मद्भागवत के प्रथम स्कन्ध में श्रीकृष्ण के द्वारकापुरी में प्रवेश के समय द्वारकापुरी की भव्यता का अंकन मिलता है- द्वारिका पुरी समस्त ऋतुओं के सम्पूर्ण वैभव से सम्पन्न, पवित्र वृक्षों एवं लताओं के कुंजों से युक्त थी। स्थान-स्थान पर फलों से परिपूरित उद्यान, पुष्पवाटिकाएँ एवं क्रीड़ावन थे। मध्यस्थानों पर निर्मल वारियुक्त सरोवर नगर की शोभा में अभिवृद्धि कर रहे थे। नगर के फाटकों, महल के दरवाजों और सड़कों पर श्रीभगवान के स्वागतार्थ बंदनवारें लगायी गयी थीं। चतुर्दिक रंग-बिरंगे चित्रों से युक्त पताकाएँ फहरा रहीं थी। राजमार्ग, अन्यान्य सड़कें, बाजार और चौराहों पर सुगन्धित जल सींचा गया था। भगवान के स्वागतार्थ फल-फूल, अक्षत-अंकुर सर्वत्र बिखरे हुए थे। घरों के प्रत्येक द्वार पर दही, अक्षत, फल, ईख, जल से भरे हुए कलश, उपहार की वस्तुएँ और धूप-दीप आदि सजाए गए थे-

''सर्वर्तु सर्व विभव पुण्य वृक्ष लता श्रमैः।
उद्यानों पवनारा मैर्वृत्त पद्माकार श्रियम।।
गोपुर द्वार मार्गेषु कृतकौतुक तोरणाम।
चित्रध्वज पताका ग्रैरन्तः प्रतिहतातपाम।।
सम्मार्जित महामार्ग रथ्यापणकचत्वराम।
सिक्तां गन्धजलै रुप्तां फल पुष्पाक्षतांकुरैः।।
द्वारि-द्वारि गृहाणां च दध्यक्षतकफलेक्षुभिः।
अलंकृतां पूर्ण कुम्भैर्बलिभिर्धूपदीपकैः।।[१०४]

राजमार्ग से जाते समय की शोभा कम अवलोकनीय नहीं है-

जिस समय भगवान राजमार्ग से जा रहे थे उस समय द्वारका की कुलकामिनियाँ भगवान के दर्शन को ही परमानन्द मानकर अपनी-अपनी अटारियों पर चढ़ जाती हैं। भगवान का वक्षस्थल मूर्तिमान सौन्दर्य लक्ष्मी का निवास स्थल है। उनका मुखारविन्द नेत्रों के द्वारा पान करने योग्य सौन्दर्य सुधा से भरा हुआ पात्र है। उनकी भुजाएँ लोकपालों को भी शक्ति देने वाली हैं। उनके चरणकमल भक्त परमहंसों के आश्रय हैं। उनके अंग-अंग शोभा के सम्पूर्ण धाम हैं। भगवान की इस छवि को

द्वारकावासी निरन्तर निहारते हैं फिर भी उनके नेत्र क्षण-भर को भी तृप्त नहीं होते। द्वारिका के राजपथ पर भगवान श्री कृष्ण के ऊपर श्वेत वर्ण का छत्र तना हुआ था। श्वेत चंवर डुलाए जा रहे थे। चारों ओर से सुमनोहर सुमन-वृष्टि हो रही थी। पीताम्बर और वनमाला धारण किए वे ऐसे शोभित हो रहे थे मानो श्याम मेघ एक साथ ही सूर्य-चन्द्रमा, इन्द्र-धनुष और विद्युत से शोभायमान हो-

राजमार्गं कते कृष्णे द्वारकायाः कुलस्त्रियः।
हर्म्याण्या रुरु हुर्विप्र तदीक्षण महोत्सवाः।।
नित्यं निरीक्षमाणानां यदपि द्वारकौकसाम्।
नैव तृप्यन्ति हि दृशः श्रियोधामाङ्गमच्युतम।।
श्रियो निवासो यस्योरः पानपात्रं मुखं दृशाम।
बाहवो लोकपालानां सारगाणां पदाम्बुजम।।
सितात पत्रव्यजनैरु पस्कृतः प्रसून वर्षैरभिवर्षितः पथि।
पिशंग वासा वनमालया बभौ घनो यथार्कोडुप चाप वैद्युतैः।।[१०५]

प्रथम स्कन्ध के उन्नीसवें अध्याय में शुकदेव की शोभा का वर्णन इस प्रकार मिलता है-

तत्राभवद् भगवान व्यासपुत्रो यदृच्छया गामटमानोऽनपेक्षः।
अलक्ष्यलिंगो निजलाभतुष्टो वृतश्च बालैरवधूतवेषः।।
त द्वयष्ट वर्षं सुकुमार पाद करोरुबाहंस कपोलगात्रम।
चार्वायताक्षोन्न सतुल्यकर्णसुभ्वाननं कम्बुसुजात कण्ठन।।
निगूढ़ जत्रुं पृथुतुंग वक्ष समावर्तनाभिं बलिवल्गूदरं च।
दिगम्बरं वक्त्रविकीर्ण केशं प्रलम्ब बाहुं स्वयरोत्तमाभम्।
श्यामं सदा पीच्य वयोऽगंलक्ष्म्या स्त्रीणां मनोज्ञं रुचिरस्मितेन।
प्रत्युस्थितास्ते मुनयः स्वासनेभ्यस्तल्लक्षणज्ञा अपि गूढ़ वर्चसम।।[१०६]

द्वितीय स्कन्ध के नवें अध्याय में स्वयं प्रजापति ब्रह्मा (भगवान) उनकी रूप छवि का वर्णन करते हैं-

श्यामावदाताः शतपत्रलोचनाः विशंगवस्त्रा सुरुचः सुपेशसः।
सर्वेचतुर्बाहंव उन्मिषन्मणि प्रवेश निष्काभरणाः सुवर्चसः।
प्रवाल वैदूर्य मृणालवर्चसः परिस्फुरत्कुण्डलमौलिमालिनः।।
भ्राजिष्णुभिर्यः परितो विराजते लसद्विमानावलिभिर्महात्मनाम्।
विद्योतमानः प्रमदोत्तमाद्युभिः सविद्युदभ्रावलिभिर्यथा नभः
श्रीर्यत्र रूपिण्युरुगायपादयोः करोति मानं बहुधा विभूतिभिः।
प्रेरवंश्रिता या कुसुमाकरानुगौर्विगीयमाना प्रियकर्म गायती।।[१०७]

ब्रह्मा जी जब अपनी उत्पत्ति के पश्चात उत्पत्ति के मूल को समझने के लिये परमेश्वर की उपासना करते हैं। तदनन्तर उन्हें दिव्य बोध होता है और वे स्वयं अपने मानस में परमशक्तिमान नारायण भगवान स्वरूप का बोध करते हैं-

मृणाल गौरायत शेष भोगपर्यंक एकं पुरुषं शयानम
फणात पत्रायुत मूर्धरत्नद्युभिर्हत ध्वान्त युगान्ततोये।
प्रेक्षां क्षिपन्तं हरितोपलाद्रे सन्ध्याभ्रनी वेरुरुरुक्ममूर्धः।
रत्नोद धारौषधि सौमनस्य वनस्रजो वेणु भुजांघ्रिपांघ्रे।।
आयामतो विस्तरतः स्वमानदेहेन लोकत्रय संग्रहेण।
विचित्र दिव्या भरणां शुकानां कृतश्रियापाश्रित वेषदेहम।।

\- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

मुखेन लोकार्तिहरस्मितेन परिस्फुरत्कुंडलमण्डितेन।
शोणायितेनाधर बिम्बभासा प्रत्यर्हयन्तं सुनसेन सुभ्रा।।
कदम्ब किंजल्कपिशंगवाशसा स्वलंकृतं मेखलया नितम्बे।
हारेण चानन्त धनेन वत्स श्री वत्स वक्षःस्थलबल्लभेन।।
परार्ध्य केयूरमणिप्रवेक पर्यस्त दोर्दण्ड सहस्त्र शाखम।
अव्यक्त मूलं भुवनाङ्घ्रिपेन्द्रमहीन्द्र भोगैरधिवीतवल्शम।।[१०८]

दक्ष के यज्ञ विध्वंस के पश्चात सभी देवता ब्रह्मा जी की सलाह से भगवान शंकर को मनाने के लिए कैलाश पर्वत पर जाते हैं उस कैलास पर्वत की शोभा देखते ही बनती है-

जन्मौषधितपामन्त्रयोग सिद्धैर्न रेत रैः।
जुष्टं किन्नरगन्धर्वैरप्सरोभिर्वृतं सदा।।
नानामणिमयैः श्रृंगैर्नानाधातुविचित्रतै।
नाना द्रुमलता गुल्मैर्नाना भृगगणावृतैः।।
नानामलप्रस्र वर्णैर्नाना कन्दर सानुभिः।
रमणं विहरन्तीनां रमणैः सिद्धयोषिताम।।
केयूरकेकाभिरुतं मदान्धालि विमूर्च्छितम।
प्लाविते रक्त कंठानां कूजितैश्च पतत्रिणाम।।
आह्वन्त मिवोद्धस्तैद्विजान काम दुघै द्रुमैः।
व्रजन्त मिव मातंगैर्गृणन्तमिव निर्झरैः।।
मन्दारैः पारिजातैश्च सरलैश्चोपशोभितम।
तमालैः शालतालैश्च कोविदारासनार्जुनैः।
चूतैः कदम्बैर्नीपैश्च नागपुन्नाग चम्पकैः।

पाटलाशोक बकुलैः कुन्दैः कुरब कैरपि।।
स्वर्णार्णशतपत्रैश्च वररेणुक जातिभिः।
कुब्ज कैर्मल्लिकाभिश्च माधवी मिश्चमण्डितम।।
पनसोदुम्बराश्वत्थ प्लक्षन्यग्रोधहिंगुभिः।
भूर्जै रोषधिभिः पूगै राजपूगैश्च जम्बुभिः।।
- - - - - - - - - - - - - - - - - - -
पर्यस्तं नन्दया सत्याः स्नानपुण्यतरोदया।
विलोक्य भूतेश गिरि विविधा विस्मयं ययुः।[१०६]

राजा पृथु के अश्वमेघ यज्ञ करते समय श्री भगवान स्वयं प्रकट होकर पृथु को समझाते हैं। तदनन्तर वे अपनी प्रजा को उपदेश देते हैं। उस समय राजा पृथु के सौन्दर्य का भव्य चित्रण चतुर्थ स्कन्ध के इक्कीसवें अध्याय में हुआ है-

प्रांशुः पीनायत भुजो गौरः कंजारुणेक्षणः।
सुनासः सुमुखः सौम्यः पीनांस सुद्विज स्मितः।।
व्यूढ वक्षा वृहच्छ्रोणिर्वलिवल्गुदलोदरः।
आवर्तनाभिरोजस्वी कांचनोरुरुदग्रपात।।
सूक्ष्म वक्राक्षित स्निग्ध मूर्धजः कम्बुकन्धरः।
महाधने दुकूलाग्ये परिधायोपवीय च।।[११०]

चतुर्थ स्कन्ध के अन्तर्गत पुरन्जन आख्यान में पार्थिव सौन्दर्य, वस्तुगत सौन्दर्य, तथा नारी और प्रकृति सौन्दर्य के मनोहर चित्र उपलब्ध होते है- वस्तुगत सौन्दर्य का चित्र दृष्टव्य है-

स एकदा हिमवतो दक्षिणेष्वथ सानुषु। ददर्श नवभिर्द्वार्भिः पुरं लक्षित लक्षणाम।
प्रकारोपवनाट्टाल परिखैरक्षतोरणैः। स्वर्णरोप्यायसैः श्रंगैः संकुलां सर्वतो गृहैः।।
नीलस्फटिक वैदर्यूमुक्ता मरकतारुणैः। क्लृप्त हर्म्यस्थलीं दीप्तांश्रिया भोगवती मिव।।
सभाचत्वररथ्याभिराक्रीड़ा यतनापणैः। चैत्य ध्वजपताकाभिर्युक्तां विद्रुम वेदिभिः।।
पुर्यास्तु बाह्योपवने दिव्यद्रुमलता कुले। नदद्विहंगालिकुल कोलाहल जलाशये।।
हिमनिर्झर रविप्रुष्मत्कुसुमा करवायुना। चलत्प्रवाल विटपनलिनीतट सम्पद।।
वानारण्यमृगव्रा तैरनाबाधे मुनिव्रतैः। आहूतं मन्यते पान्थोयत्र कोकिल कूजते।।[१११]

नारी सौन्दर्य का चित्र भी अवलोकनीय है-

सुनासां सुदतीं बालां सुकपोलां वराननाम्। समविन्यस्त कर्णाभ्यां बिभ्रतीं कुण्डलश्रियम।।
पिशंगनीवीं सुश्रोणीं श्यामां कनकमेखलाम्। पदभ्यांक्कणदभ्यां चलन्तीं नू पुरैर्देवतामिव।
स्तनौव्यंजित कैशोरौ समवृत्तौ निरन्तरौ। वस्त्रान्तेन निगूहन्ती व्रीडया गजगामिनीय।।[११२]

पृथ्वी के नीचे स्थित भूमि विवरों का वर्णन कम रोचक नहीं है-

येषु महाराज मयेन मायाविना विनिर्मिताः पुरो नानामणिप्रवर प्रवेक विरचित विचित्र भवन प्राकारगोपुर सभाचैत्य च त्वरायतनादिभिर्नागासुर मिथुनपारावत शुकसारिका कीर्ण कृत्रिमभूमिभिर्विवरेश्वर गृहोत्तमैः समलंकृताश्च कासति। उद्यानानि चातितरां मनइन्द्रियानन्दिभिः कुसुमफलस्तवक सुभग किसलयावनत रुचिर विटपकिटपिनां लतांगा लिंगितानां श्रीभिः समिथुन विविध विहंगमजलाशयानाम मल जल पूर्णानां झषकुलोल्लंघन क्षुभितनीरनीरज कुमुद कुवलय कह्लारनीलोत्पल लोहित शतपत्रादिवनेषु कृतनिकेत नानामेक विहाराकुल मधुर विविध स्वनादिभिरिन्द्रियोत्सवैरमरलोक श्रियम तिशयितानि। यत्र ह बाव न भयमहोरात्रादिभिः कालविभागैरुपलक्ष्यते। यत्रहिं महाहि प्रवर शिरोमणयः रूप सर्वं तमः प्रबाधन्ते।[११३]

अष्टम स्कन्ध में समुद्रमन्थनोपरान्त अमृत बांटने के लिए जब देवासुरों में द्वन्द्व होने लगता है उस समय भगवान स्वयं मोहिनी स्त्री के रूप में राक्षसों को लुभाकर देवताओं को अमृत दिलाते हैं। मोहिनी रूप के वर्णन में सौन्दर्य की अदभुत योजना मिलती है-

प्रेक्षणी योत्पल श्यामं सर्वावयव सुन्दरम
समानकर्णाभरणं सुकपोलोन्नसाननम।।
नवयौवन निर्वृत्तस्तनभार कृशोदरभ।
मुखामोदानुरक्तालिझंकारो द्विग्नलोचनम।।
विभ्रत स्वकेश भारेण मालामुत्फुल्लमल्लिकाम।
सुग्रीव कण्ठा भरणं सुभुजांगदभूषितम।।
विरजाम्बर संवीत नितम्ब द्वीपशोभया।
काञ्चया प्रविल सद्वल्गु चलच्चरण नूपुरम।।[११४]

सौन्दर्य की सबसे अधिक नियोजना और अभिव्यक्ति श्री मदभागवत के दशम स्कन्ध में मिलती है। श्रीकृष्ण के जन्म के समय अद्‌भुत बाल सौन्दर्य का वर्णन मिलता है-

तमदभुवं बालकमम्बुजेक्षणं चतुर्भुज शंखगदार्युदायुधम्।
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभ्मिकौस्तुभं पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम।।
महार्ह वैदूर्यू किरीट कुण्डलत्विषा परिष्वक्त सहस्त्र कुन्तलम्।
उद्याम का च्यंगद कंकणा दिभिर्विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत।।[११५]

कृष्ण के बालसुलभ चापल्य और क्रीड़ाओं के माध्यम से बालसौन्दर्य का सुमनोहर अंकन दशम स्कन्ध में मिलता है। कभी कृष्ण मक्खन चुराते हैं तो कहीं ऊखल से बांधे जाते हैं। वत्सासुर, पूतना और बकासुर का वधकर उनका उद्धार करते हैं कभी अघासुर का संघार करते हैं। बालरूप में अद्‌भुत लीलाओं के कलाप सौन्दर्य की श्रीवृद्धि करते हैं। वैसे भी श्रीकृष्ण का बालरूप अत्यंत मोहक और मनोहारी है। स्वयं ब्रह्मा उनके रूप पर मोहित हो मुग्ध भाव से उन्हें प्रणाम करते हैं-

नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय, गुंजावतंस परिपिच्छल सन्मुखाय।[११६]

प्रकृति सौन्दर्य की छटा अनिवर्चनीय आनंद प्रदायिनी मालूम पड़ती है

स च वृन्दावन गुणैर्वसन्त इव लक्षति

- -

सरित्सरः प्रस्न वणोर्मिवायुना कह्वारककंजोत्पल रेणु हारिणा
न विद्यते यत्र वनौकसां दवो निदाध वह्नयर्कभवोऽतिशाद्वले।।
अगाधतोयह्र विनीतटोर्मिभिर्द्रवत्पुरीष्याः पुलिनैः समन्ततः
न यत्र चण्डांशुकरा विषोल्वणा भुवो रं शा द्वलितं गृह्णते।।
वन कुसुमितं श्री मन्नदूच्चित्रमृगद्विजम। गावन्मयूर भ्रमरं कूजत्कोकिल सारसम
क्रीडिष्य माणस्तत्र कृष्णो भगवान बलसंयुतः। वेणुं विरणयन गोपैर्गोधनैः संवृतोऽविशत।।[117]

बीसवें अध्याय में वर्षा और शरद ऋतु की मनोहारी छटा का वर्णन कवि की सौन्दर्य-नियोजना की वैविध्यता का निदर्शन करता है। वेणु-गीत के अन्तर्गत गोपबालाएँ अपने मन के उद्गारों को अभिव्यक्त करती हैं। परस्पर वार्तालाप और मानस की स्वानुभूति के माध्यम से श्रीकृष्ण के प्रति अपने अनुराग का प्रदर्शन सौन्दर्य दृष्टि से अनुपमेय है। प्रस्तुत है एक चित्र-

नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीतमा वर्तलक्षित मनोभव भग्नवेगाः।
आलिंगन स्थगित भूर्मिभुजैरारेर्गृह्णन्ति पाद युगलं कमलोपहाराः।।
दृष्टावऽऽ तपे ब्रजपशून सहरामगोपैः संचारयन्तमनु वेणु मुदीरयन्तम्।
प्रेम प्रवृद्ध उदितः कुसुमावलीभिः सख्युर्व्यधात्र स्वव पुषाम्बुद आत पत्रम।।[118]

दशम स्कन्ध के उन्तीसवें अध्याय में रासलीला के माध्यम से सौन्दर्य सर्जना की सर्वोत्कृष्ट अभिव्यक्ति हुई है। प्रस्तुत चित्र इसी उत्कृष्टतम अभिव्यक्ति को प्रतिपादित करता है-

तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखं प्राच्या विलिम्पन्नरुणेन शन्तमैः।
स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन प्रियः प्रियाया इव दीर्घ दर्शनः।।
दृष्टाव कुमुद्वन्तमखण्ड मण्डलं रमाननाभं नवकुंकुमारुणम्।।
वनं च तत्कोमल गोभिरंजितं जगौ कलं वामदृशां मनोहरम्।
निशम्य गीतं तदनंग वर्धनं व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीत मानसाः।
आजग्मुरन्योन्यम लक्षितोद्यमाः स यत्र कान्तो जवलोल कुण्डलाः।।[119]

गोपियाँ कृष्ण के रूप सौन्दर्य पर अपना मन हार चुकी हैं। वे अपनी अभिलषित आकांक्षा की अभिव्यक्ति करते हुए कहती हैं-

तनः प्रसीद वृजिनार्दन तेडंघ्रिमूलं प्राप्ता विसृज्य वसतीस्त्वदुपासनाशाः।
त्वत्सुन्दर स्मित निरीक्षण तीव्र कामतप्तात्मनां पुरुषभूषण देहि दास्यम।।
वीक्ष्यालका वृत्त मुखं तव कुण्डल श्री गण्डस्थलाधरसुधं हसितावलोकम।
दत्ताभयं च भुजदण्ड युग विलोक्य वक्षः श्रियैकरमणं च भवाम दास्यः।।

कास्त्रयंग ते कलप दायत मूर्च्छितेन सम्मोहिताऽऽर्यचरितान्न चलेत्त्रिलोक्याम् ।।
त्रैलोक्य सौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं यद गोद्विजद्रुम मृगाः पुलकान्यविभ्रन ।।[१२०]

चाहे गोपियों की विरह व्यथा का प्रसंग हो चाहे महारास का, सर्वत्र सौन्दर्य ही सौन्दर्य दृष्टिगोचर होता है, देखिये महारास का एक चित्र-

वलयानां नूपुराणां किंकिणीनां चयोषिताम।
सप्रियाणाम भूच्छब्दस्तुमुलो रास मण्डले।।
तत्राति शुशभे ताभिर्भगवान देवकी सुतः।
मध्ये मणीनां हैमानां महामरकतो यथा।

पादन्यासैर्भुज विद्युतिभिः सस्मि तैर्भ्रू विलासैर्भज्यन्मध्यैश्चल कुचपटैः कुण्डलैर्गण्ड लोलैः।
स्विद्यन्मुख्यः कबररशना ग्रन्थयः कृष्णवध्वोगायन्त्यस्तं तडित इव तामेघचक्रे विरेजुः।।[१२१]

गोपियों के साथ क्रीड़ा का वर्णन सौन्दर्य के उदात्त स्वरूप को व्यंजित करता है-

कर्णोत्पलालक विटंक कपोल धर्मवक्त्रश्रियो वलय नूपुर घोषवाद्यैः
गोप्यः समं भगवता ननृतुः स्वकेशस्त्र स्तस्रजो भ्रमरगायकरास गोष्ठ याम।।
एवं परिष्वंग कराभिमर्शस्निग्धे क्षणो ददाम विलास हासैः।
रेमे रमेशो ब्रजसुन्दरी भिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्ब विभ्रमः।।
तदंग संगप्रमुदाकुलेन्द्रियाः केशान दुकूलं कुचपटिटकां वा।
नाञ्जः प्रतिव्योदुमलं व्रजस्त्रियो विस्त्रस्त मालाभरणाः कुरूद्वह।।
- -
ताभिर्युतः श्रममपोहितुमंगसंग घृष्टस्रज स कुचंकुंकुमरंजितायाः।
गन्धर्व पालिभिरनुद्रुत आविशद् वाः श्रान्तो गजीभिरिभराडिवभिन्नसेतुः।।
सोऽम्भस्यलं युवतिभिः परिषिच्यमानः प्रेम्णेक्षितः प्रहसतीभिरित स्ततोऽङग।
वैमानिकैः कुसुम वर्षिभिरीड्यमानो रेमे स्वयं स्वरतिरत्र गजेन्द्रलीलः।।
ततश्च कृष्णोपवने जलस्थल प्रसूनगन्धानिल जुष्ट दिक्तटे।
चचार भृंगप्रमदागणावृतो यथा भदच्युद् द्विरदः करेणुभिः।।
एवं शशांकाशुविराजिता निशाः स सत्यकामोऽनुरता बलागणः।
सिशेव आत्मन्यवरुद्धसौरतः सर्वाः शरत्काव्यकथा रसाश्रयाः।।[१२२]

रुक्मिणी के सौन्दर्य में नारी रूप की गरिमा और मनोहारी आभा के दर्शन होते हैं। गिरिजा देवी के मंदिर से बाहर निकलते समय रुक्मिणी की रूपछवि का निम्न चित्र प्रस्तुत है-

तां देवमायामिव वीरमोहिनी सुमध्यमां कुण्डलमंडिताननाम्।
श्यामां नितम्बार्पित रत्न मेखलां व्यंजत्स्तनीं कुन्तलशंकितेक्षणाम।।
शुचिस्मितां बिम्ब फलाधर द्युति शोणायमान द्विज कुन्दकुड्मलाम।

पदा चलन्ती कलहंसगामिनीं शिंजत्कलानूपुर धाम शोभिना।
विलोक्य वीरा भुमुहः समागता यशस्विनस्तत्कृत हृच्छयार्दिताः।।
यां त्रीक्ष्य ते नृपतयस्त दुदारहासव्रीडावलोकहृत चेतस उज्झितास्त्राः।
पेतुः क्षितौ गजरथाश्वगता विमूढ़ा यात्राच्छलेन हरयेऽर्पयतीं स्वशोभाम।।
सैवं शनैश्चलयती चल पद्मकोशौ प्राप्तिं तदा भगवतः प्रसमीक्षमाणा।
उत्सार्य वामकर जैरत्नकानपांगैः प्राप्तान् ह्रियै क्षत नृपान ददृशेऽच्युतं सा।[१२३]

कृष्ण कुमार प्रद्युम्न की छवि का चित्र प्रस्तुत है-

अन्तः पुरवरं राजन् ललनाशतसंकुलम। विवेशपलया गगनाद् विद्युतेव बलाहकः।
तं दृष्टाव जलदश्यामं पीत कौशेय वास सम्। प्रलम्ब बाहुं ताम्राक्षं सुस्मितं रुचिराननम्।।
स्वलंकृतमुखाम्भोजंनीलवक्रालकालिभिः।कृष्णंमत्वास्त्रियोह्रीतानिलिल्युस्तत्रतत्रह।।[१२४]

दशम स्कन्ध के उत्तरार्द्ध में साठवें अध्याय में रुक्मिणी के महल की सुन्दरता श्रीमदभागवत में व्याप्त वस्तुगत सौन्दर्य की अभिव्यक्ति की उत्कृष्टता का संकेत देती है-

"तस्मिन्नन्तर्गृहे भ्राजन्मुक्तादाम विलाम्बिना। विराजिते वितानेन दीपैर्मणिमयैरपि।।
मल्लिका दामभिः पुष्पैर्द्विरेफकुलनादितैः। जालरन्ध्र प्रविष्टैश्च मोभिश्चन्द्र मसोऽमलैः।।
पारिजात वनामोदवायुनोद्यान शालिना। धूपैर गुरजै राजन् जालरन्ध्र विनिर्गतैः।।
पयः फेन निभे शुभ्रे पर्यंके कशिपूत्तमे। उपतस्थे सुखासीनं जगतामीश्वरं पतिम।।[१२५]

रुक्मिणी की शोभा का वर्णन आगे यों किया गया है-

सोपाच्युतं क्कणयती मणिनूपुराभ्यां रेजेगुलीय वलयव्यजना ग्रहस्ता।
वस्त्रान्त गूढ़ कुच कुंकुम शोणहारभासा नितम्बधृतया च परार्ध्यकाञ्चया।।[१२६]

अनिरुद्ध उषा प्रसंग में उषा द्वारा अनिरुद्ध के सौन्दर्य का वर्णन पुरुष सौन्दर्य की सरस अभिव्यंजना करता है-

दृष्टः कश्चिन्नरः स्वप्ने श्यामः कमल लोचनः। पीतवासा वृहद्बाहुर्योषितां हृदयंगमः।।
तमहं मृगये कान्तं पाययित्वाधरं मधु। क्कापि यातः स्पृहयतीं क्षिप्त्वामां वृजिनार्णं वे।[१२७]

उनहत्तरवें अध्यायान्तर्गत देवर्षि नारद भगवान कृष्ण की दिनचर्या की देखने की उत्सुकता से प्रेरित हो द्वारकापुरी पहुँचते हैं और द्वारका पुरी की अदभुत शोभा देखकर उसके सौन्दर्य की सराहना करते हैं-

इत्युत्सको द्वारवतीं देवर्षिर्द्रष्टुमागमत। पुष्पितोपवनाराम द्विजालिकुल नादिताम।।
उत्फुल्लेन्दीवराम्भोज कह्लारकुमुदोत्पलैः। छुरितेषु सरस्सूच्चैः कूजितां हंससारसैः।।
प्रासादलक्षैर्नवभिर्जुष्टां स्फाटिकाराजतैः। महामरकत प्रख्यैः स्वर्णरत्नपरिच्छदैः।।
विभक्त रथ्यापथचत्वरापणैः शालासभाभी रुचिरां सुरालयैः।
संसक्ति भार्गांगण वीथि देहली। पतत्पताका ध्वजवारि तातपाम।।

तस्यामन्तःपुरं श्री मदर्चितं सर्वधिष्ण्यपैः। हरेः स्वकौशलं यत्र त्वष्ट्रा कात्स्न्येन दर्शितम।।
तत्र षोडशभिः पद्मसहस्त्रैः समलंकृतम। विवेशैकतमं शौरेः पत्नीनां भवनं म ह त ् । ।
विष्टब्धं विद्रुमस्तम्भैर्वैदर्यूफलकोत्तमैः। इन्द्रनील मयैः कुडयैर्जगत्या चाहतत्विषा।।
वितानैर्निर्मितैः स्त्वष्ट्रा मुक्तादाम विलम्बिभिः। दान्तैरासन पर्यंकैर्मण्युत्तमपरिष्कृतैः।।[१२७]

दशम स्कन्ध के ६० वें अध्याय में कृष्ण के लीला-विहार के वर्णन में भी द्वारकापुरी की छटा का अद्वितीय वर्णन किया गया है।

उपर्युक्त विवेचन और सूक्ष्म अनुशीलन से स्पष्ट है कि श्री मदभागवत पुराण में सौन्दर्य की नानाविध रूपों में उत्कृष्ट अभिव्यक्ति हुई है। सर्वत्र सौन्दर्य के सर्वांगों का वर्णन हुआ है। सौन्दर्य की अनुभूतियों की उत्कृष्टतम व्यंजना श्रीमदभागवत पुराण में हुई है। हमारा अभीष्ट अभिप्राय इससे सिद्ध हो जाता है कि पुराणों में सौन्दर्याभिव्यक्ति की परम्परा का निर्वाह सरस और सम्यक रूपेण हुआ है।

(घ) हिन्दी साहित्य

आदिकालीन

आदिकाल के सुप्रसिद्ध कवि **'चन्द वरदाई विरचित'** पृथ्वीराज रासो को भी विद्वानों ने **एक विकसन सील महाकाव्य**[१२८] कहा है। इस महाकाव्य में पृथ्वीराज और उनकी रानियों के रूप सौन्दर्य और शौर्य का निरूपण है।

चन्दवरदाई की कुशलता श्रंगारिक चित्रण में पूर्णतः स्पष्ट परिलक्षित होती है। यही कारण है कि उनके काव्य में सौन्दर्य अंकन अनूठा बन पड़ा है। वयः संधि के चित्रण में कवि की वृत्ति विशिष्टता से रमी है। इंछिनी की वयः सन्धि का अंकन करते हुए कवि कहता है कि इंछिनी की अवस्था इस समय मुग्धा और मध्या के बीच की है जिसमें संधिकाल में उत्पन्न होने वाली अनुभूतियों का पूर्ण आभास हो रहा है। यौवन और कैशोर्य अवस्थाओं के संगमन से इस समय इंछिनी के हृदय में कामदेव पूर्ण रूपेण व्याप्त है और उसकी अवस्था ऐसी प्रतीत होती है जिस तरह व्यक्तियों से युक्त किसी सदन में चोर की अवस्था होती है-

"बाले तन्वय मुग्ध मध्यत इमं रस्वनाय बै संधयः।
मुग्धे मध्यम स्यांम बांमति इमं मध्यान्ह छाया पगं।
- -
अति सुरंग वय स्याम। संधि वय संधि जुरिय बर।

नयन मयन आरुहिन। धर्‍यो आरुहन थान दिन।

- -

स्यांम सु वांम अनंगमय। घटी न घटिट किशोर

बालप्पन बैवेस तन। मनों भरें धन चोर।"१२९

कवि की वृत्ति सद्यस्नाता इंछिनी के सौन्दर्य वर्णन में और अधिक रमती है-सखियों ने स्नानोपरांत उसके शरीर में नाना प्रकार की सुगन्धियों और चंदनादि के लेप से उसे और मोहक बना दिया। जिस प्रकार हिमालय के संस्पर्श से गंगा निखर जाती है उसी भाँति पृथ्वीराज के प्रति उत्पन्न अनुराग ने उसे और अधिक कान्तियुक्त कर दिया है। उसके शरीर की लावण्यता ने चंपा, कुंदन और केसर की श्री सुषमा को फीका कर दिया है। पीतवर्णी प्रिय वस्त्रों को धारण करने से शोभा सहित अन्य उपमाएँ परास्त हो गई हैं। अंग-प्रत्यंग में प्रेमाधिक्य के कारण आनन्द मानो उफन रहा है। लावण्ययुक्त वह सुन्दरी उल्लसित खिली संध्या के समान प्रतीत हो रही है। उसकी रूप शोभा पर उसकी सहेलियाँ, नागकन्यायें, किन्नरियाँ एवं यक्ष सुन्दरियाँ मोहित हैं। ऐसा आभास होता है मानो ब्रह्मा ने सम्पूर्ण शोभाओं को चन्द्रमा की अमृत युक्त कान्ति में सानकर सार तत्व से इंछिनी को निर्मित किया है। ऐसी रूप-सौन्दर्य युक्त कमनीय कान्त कलेवरी तन्वंगी युवती को प्राप्त करने के लिए यदि पृथ्वीराज जैसे महाप्रतापी नरेश को भी भगवान विश्वनाथ की आराधना करनी पड़ी तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है-

"करि मंजन अंगोछि तन। धूप बासि बहु अंग।
मनों देह जनु नेह फुलि। हेम मोज जन गंग।
तन चंपक कुंदन मनों। कै केसर रंग जुक्ति।
पीय बास छवि छीन लिय। और छीन सब जुक्ति।
अंग-अंग आनन्द उमगि। उफनत बेंनन माँझ।
सषी शोभा सब बसि भई। मनो कि फूली साँझ।
निरषत नागिनि बसि भई। किन्नर जष्ष कितेक।
सब सोभा ससि साँनिकै। साँची इंछिनी एक।
प्राग माघ अस्नान किय। गज गंजे धन घाई।
विश्वनाथ सेए सदा। पृथीराज तो पाई।"१३०

परम्परागत उपमानों के माध्यम से भी रासोकार ने सौन्दर्य की उत्कृष्ट व्यंजना की है-

कुन्दन ओपित अंग। मंगजनु चंद किरनि सर।
बैनी सुभग भुजंग। फूल मनि सीस थिर।
पट्टिय धुप्पित मेंन। तिमिर कज्जल छवि छीनिय।

भुअ जुग गोस धनुष्ष। वदन राका रुचि भीनिय।
सुक नास नैंत फूले कमल। कंबु कंठ कोकिल कलक।
दुल्लह सुचित फंदन मनहु। कंद मंडि रष्षिय अलक।[१३१]

पृथ्वीराज रासो में रूप वर्णन की प्रणालियों के निर्वाह से 'चन्द' ने सौन्दर्य के नानाविध रूपों का उद्‌घाटन किया है-

कलिंद सीम केसयं। अनंत अंग लोभयं।
उठंत कुंभ कुच्चयं। उपंम कवि सुच्चयं।
मनो जरंत बाल की। धरी सु आनि लाल की।
सुमंत रोम राजयं। प्रपील पंति छाजयं।
मनोज कूप नाभिका। चलंत लोभ आलिका।
सुरंग सोअ पिंडुरी। बरादि काम षिडुंरी।
नितंब तुंग सोभए। अनंग अंग लोभए।
मनों कि रथ्य रंभ के। सुरंभ चक्क संभ के।
नषादि आदि अच्छनं। मनो कि इन्द्र द्रप्पनं।
ढरंत रत्त एडियं। उपम्म कब्बि टेरियं।
मनौ कि रत्त रत्तजा। चिकंत पत्र अंबुजा।[१३२]

विद्यापति आदिकाल के दूसरे महत्वपूर्ण कवि हैं। विद्यापति के काव्य में सर्वत्र सौन्दर्य की भावना व्यंजित हुई है। किसी भी तरह के प्रसंग में उन्होंने सौन्दर्य वर्णन का अवसर नहीं छोड़ा है। यही कारण है कि उनके काव्य में सर्वत्र सौन्दर्य की उत्कृष्ट व्यंजना अभिव्यंजित हुई है। प्रस्तुत हैं कुछ उदाहरण-

(क) खने खन दसन-छटा छुट हास[१३३]

(ख) अति थिर नयन अथिर कछु भेल।

***

जागर मनसिज मुदित नयान।

***

उरज-उदय-थल लालिम देल।

***

किछु-किछु उतपति अंकुर मेल।[१३४]

***

(ग) पहिल बदरि कुच पुनि नवरंग।
दिन-दिन बाढ़ए पिड़ए अनंग।

से पुनि भए गेल बीज कपोर।
अब कुच बाढ़ल सिरीफल जोर।[१३५]

***

(घ) कटिक गौरव पाओल नितम्ब।
एकक खीन अओक अवलम्ब।[१३६]

***

(अ) कि कहब माधव वयसक संधि।
हेरइत मनसिज मन रहु बंधि।[१३७]

रमणीय उपमानों के प्रयोग से कवि ने सौन्दर्य-उद्घाटन करने में अप्रतिम कुशलता का परिचय दिया है-

पीन पयोधर दुबरिगता।
मेरु उपजल कनक लता।
ए कान्हु ए कान्हु तोरि दोहाई।
अति अपूरब देखलि साई।
मुख मनोहर अधर रँगे।
फूललि मधुरी कमल सँगे।
लोचन जुगल भृंग आकारे।
मधुक मातल उड़ए न पारे।
भउहँ क कथा पूछह जनू।
मदन जोड़ल काजर धनू।
मन विद्यापति दूति बचने।
एत सुनि कान्हु कएल गमने।[१३८]

नेत्रों तथा मुख की सहज मनोरम छवि का अंकन विद्यापति यों करते हैं

सहजहि आनन सुंदर रे, भौंह सुरे खलि आँखि।
पंकज मधु-पिबि मधुकर रे, उड़ए पसारल पाँखि।[१३९]

स्थिर सौन्दर्य का चित्र दृष्टव्य है-

सुरति समापि सुतल वर नागर, पानि पयोधर आपी।
कनक संभु जनि पूजि पुजारी, धरए सरोरुह झाँपी।[१४०]

अन्त में गतिशील सौन्दर्य के मधुर और रमणीय अंकन का अवलोकन करें--

ससन-परस खस अम्बर रे देखल धनि देह
नव जलधर-तर संचर रे जनु बिजरी देह।[१४१]

भक्तिकालीन

जायसी भक्ति कालीन प्रेममार्गी शाखा के कवि हैं। जायसी ने अपने काव्य में सौन्दर्य को पूर्ण प्रतिष्ठा प्रदान की है यही कारण है कि पद्मावती में सौन्दर्य उद्घाटन की एक कुशल योजना परिलक्षित होती है। प्रस्तुत है मानसरोदक खंड के अन्तर्गत सौन्दर्य वर्णन का एक चित्र-

धरीं तीर सब छीपक सारी। सरवर मँह पैठीं सब बारी।
पाएँ नीर जानु सब बेलीं। हुलसी करहिं काम के केलीं।
नवल बसंत सँवारहिं करीं। होइ परगट चहहिं रस भरीं।
करिल केस बिसहर बिस भरे। लहरैं लेहि कँवल मुख धरे।
उठे कोंप जनु दाखिँ दाखा। भइ ओनंत पेम कै साखा।
सरवर नहिं समाइ संसारा। चाँद नहाइ पैठ लिए तारा।
धनि सो नीर ससि तरईं ऊईं। अब कत दिस्टि कँवल औ कूई।[१४२]

पद्मावती के उद्वेलित यौवन का एक चित्र देखें।

जोबन भर भादों जस गंगा। लहरैं देइ समाइ न अंगा।[१४३]

महाकवि सूर ने कृष्ण के बालरूप का वर्णन बहुत ही मोहक और प्रभावोत्पादक ढंग से किया है। सूरसागर के दशम स्कन्ध में कवि ने कृष्ण राधा और गोप बालाओं के निष्कलुष रूप सौन्दर्य की माधुरी का अंकन किया है। मनमोहन का बाल रूप कवि को अत्यधिक प्रिय लगता है

ललन हों या छवि ऊपर वारी।
लट लटकनि मोहन मसि-बिदुंका-तिलक बाल सुखकारी।
मनौ कमलदल सावक पेखत, उड़त मधुप छवि न्यारी।
लोचन ललित, कपोलनि काजर, छबि उपजति अधिकारी।
सुख में सुख औरे रुचि बाढ़ति, हँसत देत किलकारी।
अलप-दसन, कलबल करि बोलनि बुधिनहिं परत बिचारी।
विकसति ज्योति-अधर-बिच मानौ, बिधु मैं बिज्जु उजारी।[१४४]

माता यशोदा के मुख पर बालक कृष्ण अपना हाथ फेर रहे हैं, मानो भुजंग अमृत के प्रलोभन से बार-बार चन्द्रमा को चाट रहा है-

गोद लिए जसुदा नंद-नंदहिं।
पीत झगुलिया की छबि छाजति बिज्जु लता सोहति मनु कंदहिं।
- -
आरि करत कर चपल चलावत, नंदि-नारि-आनन छुव मंदहि।
मनौ भुजंग अमीरस लालच, फिरि-फिरि चाटत सुभग सुचंदिहि।[१४५]

सौन्दर्य के मारक प्रभाव की योजना भी सूरसागर में परिलक्षित होती है-

ठाढ़े तरु तमाल तर सुंदर नँद-नंदन बनमाली।

सूर निरखि ब्रजनारि चकित भईं लगी मदन की भाली।[१४६]

मंडन युक्त सौन्दर्य वर्णन का निम्न चित्र भी अवलोकनीय है-

उन्नत विशद हृदय राजत है तापर मुक्ता हार।

मनहुँ नील गिरिवर तैं सुरसरि अध आवत द्वै-धार।[१४७]

राधा के सौन्दर्य का अंकन करने में कवि ने और अधिक कुशलता से काम लिया है और सौन्दर्य के सूक्ष्मातिसूक्ष्म चित्र को अभिव्यक्ति के कौशल से निखारा है। प्रतीक माध्यम से सौन्दर्य व्यंजना का चित्र दृष्टव्य है- **'देखो ढीठ देत नहिं माता, राख्यौ गेंद चुराई।**[१४८]

राधा के गले से हार उतारते समय राधा की वामभुजा पर कृष्ण हाथों की शोभा के सौन्दर्य का चित्र अवलोकनीय बन पड़ा है-

भुजा बाम पर कर छबि लागत, उपमा अंत न पार।

मानहुँ कमल दल नाल मध्य तैं, उयो अदभुत आकार।।[१४९]

कृष्ण की क्रीड़ाओं से राधा का रूप और निखर आया है। कृष्ण के प्रति प्रेम की पुलक से सौन्दर्य में अदभुत रमणीयता व्याप्त हो गई है। निम्न चित्र इसी अनुभूति की सरस अभिव्यक्ति करता है-

हाथ धेनु-धन, बदन तिया-तन छीर छीटिं छल छोरे।

आनन रही ललित पय छींटैं, छाजति छबि तृन तोरे।

मनौ निकसे निकलंक कला-निधि, दुग्ध-सिन्धु मधि बोरे।

दै घूंघट पट ओट नील, हँसि कुँवरि मुदित मुख मोरे।

मनहुँ सरद ससि कौं मिलि दामिनि, घेरि लियौ घन घोरे।[१५०]

सौन्दर्य के मोहक प्रभाव से युक्त राधा का चित्र दृष्टव्य बन पड़ा है। इसमें केश की उपमा अंधकार से तथा उरोजों की उपमा कंचन-गिरि से दी गई है। कंचन-गिरि की उपमा से उरोजों की सुंदरता, कठोरता, उत्तुंगता तथा वर्णप्रियता का बोध होता है। केशों की अंधकार से उपमा केशों के काले रंग की सूचक है। इस प्रकार कवि ने उपमाओं के माध्यम से अपनी सौन्दर्य विषयक उत्कृष्टता का प्रमाण दिया है-

कुचन बिच कच परमसोभा, निरखि हँसत गोपाल।

सूर कंचनगिरि बिचनि मनु रह्यौ है अंधकाल।।[१५१]

केशव कालक्रम की दृष्टि से भक्तिकालीन कवियों में आते हैं परन्तु अभिव्यक्ति की दृष्टि से उन्हें रीतिकालीन कवियों में परिगणित किया जाता है। कवि प्रिया, रामचन्द्रिका और रसिक प्रिया में केशव के सौन्दर्य बोध का स्पष्ट निदर्शन मिलता है। प्रस्तुत है रामचन्द्रिका का एक मनोहर चित्र-

अमल कपोलै आरसी बाहुइ चंपकुमार।
अवलोकनै विलोकियो, मृग मद घनसार।।
गति को भार महाउरै, अंग अंस के भारु।
केशव नख-सिख शौभिजै सोभाई सिंगारु।।[१५२]

सरस रूप सौन्दर्य की उद्भावना का चित्र अवलोकनीय है-

सीता नयन चकोर सखि, रविवंशी रघुनाथ।
रामचन्द्र सिय कमल मुख, भलो बन्यो हे साथ।।"[१५३]

मादक प्रभाव को अभिव्यंजित करने वाला चित्र प्रस्तुत है-

काम कुँवर अभिषेक निमित्त। कलश रचे जनु यौवन मित्त।
काम-केलि-कंदुक कमनीय। मनो छिपाए रति निज हीय।।[१५४]

बिम्बों के माध्यम से सौन्दर्य की आभा द्विगुणित हो उठी है-

रोमराजि सिंगार की, ललित लता सी राज।
ताहि फले कुचरूप फल लै जग ज्योति समाज।।[१५५]

'लै जग ज्योति समाज' में उरोजों की सुषमा की सरस अभिव्यक्ति हुई है। इसी प्रकार मंदोदरी के कंचुकी रहित उरोजों की उपमा श्रीफल और स्वर्ण-कुम्भों से देकर कवि ने जहाँ अपने कौशल का परिचय दिया है वहीं वशीकरण के चूर्ण सम्पूर्ण पूरे कहकर उनकी आकर्षण शीलता और विलास-वर्धकता का परिचय दिया है।[१५६] अगले चित्र में पुनः काम संजीवनी लता के दो पुष्प गुच्छों तथा स्वर्ण कन्दुक से उपमा देकर केशव ने अपनी सौन्दर्य विषयक उत्कृष्टता का उद्घाटन किया है-

किधौं इष्ट देवैं सदा इष्ट हीके।
किधौं गुच्छ द्वै काम संजीवनी के।
किधौं चित्त चौगान के मूल सोहैं।
हिये हेम के हाल गोला बिमोहैं।[१५७]

उपर्युक्त उदाहरण इस प्रकार केशव की उत्कृष्ट सौन्दर्याभिव्यक्ति के परिचायक हैं।

रीतिकालीन

बिहारी ने अपने ग्रन्थ बिहारी सतसई में सौन्दर्य की नवीन और मौलिक उद्भावनाओं से मान्यताओं को स्थापित किया है। बिहारी सतसई में सर्वत्र सौन्दर्य के दर्शन होते हैं। केशों की सुकुमारता, कालिमा और स्निग्धता को प्रदर्शित करने वाला चित्र अवलोकनीय है-

सहज सुचिक्कन, स्यामरुचि, सुचि, सुगन्ध, सुकुमार।
गनतु न मन पथु अपथु लखि, बिथुरे सुथरे बार।।[१५८]

भाल पर लगी बिन्दी से नायिका का सौन्दर्य और अधिक निखर जाता है-

कहत सबै बैंदी दियैं आँक दस गुनौ होतु।
तिय लिलार बैंदी दियैं अगिनितु बढ़तु उदोतु।।[१५९]

मदिरायत नेत्रों का भावपूर्ण चित्र देखें-

रस-सिंगार-मंजनु किए,कंजनु मंजनु दैन।
अंजनु रंजनु हूँ बिना, खंजनु गंजनु नैन।।[१६०]

स्थिर सौन्दर्य की योजना का अंकन इस प्रकार हुआ है-

अहे दहेंड़ी जिनि धरै, जिनि तूँ लेहि उतारि।
नीकैं है छीकैं छुवै, ऐसैई रहि, नारि।।[१६१]

गतिशील सौन्दर्य की उद्भावना करने वाला चित्र प्रस्तुत है-

चमचमात चंचल नयन, बिच घूँघट-पट झीनि।
मानहु सुर सरिता विमल, जल उछरत जुग मीन।।[१६२]

स्नानोपरांत नायिका के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति करता निम्न चित्र कितना सरस प्रतीत होता है-

विहँसति, सकुचति सी, दिएँ कुच-आँचर-बिच माँह।
भीजैं पट तट कौं चली, न्हाइ सरोवर माँह।।[१६३]

मोहक चेष्टाओं का वर्णन निम्न दोहे से स्पष्ट होता है-

लहलहाति तन तरुनई, लचि लगलौं लफि जाई।
लगैं लाँक लोइन भरी, लोइनु देति लगाई।।[१६४]

युगल रूप वर्णन के माध्यम से सौन्दर्य-नियोजना और प्रभावोत्पादक हो गई है-

मिलि परछाँही जोन्ह सौं, रहे दुहुन के गात।
हरि राधा इक संग हीं चले गली महिं जात।।[१६५]

मतिराम ने स्वस्थ उपमान और विशेषणों के द्वारा सौन्दर्य की नियोजना प्रस्तुत की है। ललित लंक के क्रमशः क्षीण होने का वर्णन दृष्टव्य है-

दुहुँ दिसि सघन नितंब कुच, खैंचत हैं निधि सार।
छीजै क्यों न मयंक मुख ललित लंक सुकुमार।।[१६६]

निम्न चित्र में भाव परक सौन्दर्य की सार्थक अभिव्यक्ति अवलोकनीय है-

कुन्दन कौ रंग फीको लगै, झलकै अति अंगन चारु गुराई,
आँखिन मैं अलसानि, चितौन में मंजु विलासन की सवसाई।
को बिन मोल बिकात नहीं, मतिराम लहे मुसकानि-मिठाई,
ज्यों-ज्यों निहारिए नेरे है नैननि त्यों-त्यों खरी निकरै-सी निकाई।।[१६७]

रसलीन के दोहों में यौवन की झलक, वयः संधि, यौवनोद्भव तथा वस्त्रावृत शरीर की कान्ति का सुन्दर वर्णन दृष्टिगत होता है-

(क) यों बाला-जोबन-झलक झलकति उरमें आइ।
ज्यों प्रगटत मन को बचन बिब पुतरिन दरसाइ।।

(ख) तिय सैसव-जोबन मिले, भेद न जान्यौ जात।
प्रात समय निसि-द्यौस के दोउ भाव दरसात।।

(ग) ज्यों वय-तिथि बाढ़ति कला, जौबन ससि अधिकात।
त्यों सिसुता-निसि-तिमिर घट छवि कर ठेलति जात।।

(घ) पिय चितवत तिय मुरि गई कुल-हित पट मुख लाइ।
अमी चकोरन के पियत घन लीनो ससि छाई।।

(ट) स्वेत-बसन-जुत जोन्ह मैं यौं तिय-दुति दरसाइ।
मनौ चली छीरधि-सुता, छीर सिंधु में जाइ।।[१६८]

रीतिकालीन प्रतिनिधि कवि होने के कारण प्रेम और सौन्दर्य की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति की योजना देव के काव्य में परिलक्षित होती है। नारी और पुरुष, दोनों के सौन्दर्य के प्रति देव की वृत्ति रमी है। कृष्ण के सौन्दर्य का निदर्शन कराने वाला निम्न चित्र कितना मोहक बन पड़ा है-

पायन नूपुर मंजु बजे, कटि किंकिनि में धुनि की मधुराई।
साँवरे अँग लसै पट पीत, हिये हुलसै बनमाल सुहाई।
माथे किरीट, बड़े दृग, चंचल मंद हँसी मुख-चंद जुनाई,
जै जग-मंदिर-दीपक सुन्दर श्री ब्रज-दूलह देव-सहाई।।"[१६९]

सौन्दर्य को साकार चित्रित करने वाला चित्र दृष्टव्य है-

गंग-तरंगनि बीच बरंगिनि ठाढ़ी करैं जपु रूप उदोती,
देव दिवाकर की किरनैं निकसैं बिकसै मुख-पंकज जोती,
नीर भरी निचुरैं अलकैं छुटिकै छलकैं मनो मांग ते मोती
बिज्जुलि-से झलकैं लपटे कन कज्जल-से अँग उज्जवल धोती।।[१७०]

पदमाकर ने भी रूप सौन्दर्य की नियोजना रीतिकालीन प्रवृत्ति के अनुसार ही की है। यही कारण है कि उनके काव्य में सर्वत्र रमणीयता के दर्शन होते हैं। एक चित्र प्रस्तुत है-

माँग सँवारि सिहारि सुबारिनि बेनी गुही जु छवानि लौं छावैं।
त्यों पदमाकर या विधि औरहूँ साजे सिंगार जु स्याम कों भावै।
रीझे सखी लखि राधिका को रँग जा अँग जो गहनो पहिरावै।
होत यों भूषनभूषित गात ज्यों डाँक मैं ज्योति जवाहर पावै।[१७१]

रीतिकालीन अन्य कवियों में आलम और घनानंद ने अपने काव्य में सौन्दर्य की सरस

अभिव्यक्ति की है। प्रस्तुत हैं उनके सौन्दर्य बोध का दर्शन कराने वाले चित्र-

(क) अंग नई ज्योति लै बरंगना बिचित्र एक
आँगन में अंग ना अनंग की सी ठाढ़ी है।
उजरई की उज्यारी गोरे तन सेत सारी
मोतिन की जोत सौं जुन्हैया मानो बाढ़ी है।।
'आलम' सु आली बनमाली देखि चली दुति,
सुगढ़ कनक की सी रूप-गुन गाढ़ी है।
देह की बनक वाके चीर में चमक छाई
छीर निधि मथि किधौं चाँद चोरि काढ़ी है।।[१७२]

(ख) स्याम धरा लिपटी थिर बीज कि सोहै अमावस-अंक उजियारी।
धूम के पुंज में ज्वाल की माल सी पै दृग-सीतलता-सुखकारी।।
कै छकि छायौ सिंगार निहारि सुजान-तिया-तन-दीपति प्यारी।
कैसी फबी घन आनंद चोपनि सों पहिरी चुन साँवरि सारी।।[१७३]

अतः रीतिकालीन कवियों के वर्णन के आधार पर यह तथ्य स्पष्ट आभासित होता है कि रीतिकाल में सौन्दर्य की चरम अभिव्यक्ति हुई है। नख-शिख वर्णन, श्रृंगारिक चेष्टाओं, अलंकारों तथा उपमा-विधान, वर्ण-योजना तथा भावपरक-मुद्रा-चित्रणों के द्वारा सौन्दर्य बोध की सरस नियोजना रीतिकालीन में परिलक्षित होती है।

भारतेन्दु युग

भारतेन्दु की रचनाओं में उनका भक्त, प्रेमी और भावुक व्यक्तित्व उभरा है। भक्ति भाव में उनकी अभिव्यक्ति भगवान और स्वदेश तक सीमित रही है। प्रेमी और भावुक रूप में कवि ने मनोहर भावों की सृष्टि करके सौन्दर्य बोध की नानाविध रूपों में अभिव्यंजना की है। राधा की रूप-सुषमा का वर्णन कवि निम्नांकित रूप में करता है-

आई गुरु लोग संग न्यौते ब्रज गाँव नई,
दुलही सुहाई शोभा अंगन सनी रही
पूछे मनमोहन बतायो सखियन यह
साई राधा प्यारी वृषभानु की जनी रही।।
हरीचंद पास जाय, प्यारो ललचायो दीठ,
लाज की धँसी सो मानो हीर की अनी रही।
देखो अनदेखो देख्यो आधो मुख हाय तऊ
आधो मुख देखिबे की हौंस ही बनी रही।।[१७४]

सोकर उठने के पश्चात् राधा के अलसाए रूप के वर्णन में कवि ने मौलिक उद्भावना के माध यम से सौन्दर्य की अभिव्यंजना प्रस्तुत की है-

आजु उठि भोर वृषभानु की नंदिनी
फूल की महल तें निकसि ठाढ़ी भई।
खसित सुभ सीस तें कलित कुसुमावली
मधुप की मंडली मत्तरस ह्वै गई।।
कछुक अलसात सरसात सकुचात अति
फूल की वास चहुँ ओर मोदित छई।
दास हरिचंद छबि देखि गिरिधरलाल
पीत पट लकुट सुधि भूलि आनँद-भई।।[१७५]

कृष्ण के बाल रूप वर्णन में बिम्ब योजना के माध्यम से कवि ने सौन्दर्य की सरस सर्जना की है-

अति सुकुमार चन्द्र से मुख पै तनक ठिठौना दीनो री
मानहुँ श्याम कमल पै इक अलि बैठो है रँग-भीनो री
- -
छुद्र घंटिका कठि में सोहत, सोभा परम रसाला री
मनहुँ भवन सुन्दरता को लखि बाँधी बंदन-माला री
पीत झँगा अति तन पै राजत उपमा यह बनि आई री
मनु घन में दामिनि लपटानी छबि कछु बरनि न जाई री।[१७६]

कृष्ण और राधा के युगल रूप वर्णन में कवि की कुशलता का परिचय मिलता है-

देखो आजु आली ब्रजराज के कुँअर जू कों।
राधा लिये संग ठाढ़े अति सुषमा छये।
प्रीति रीति पूरे धरे दोऊ हाथ कुच पर
एकदम देखत चकोर नैन ह्वै गये।
हरिचंद आँगुरीन मानिक अँगूठी द्वै-द्वै
तैसे नख सेत मिलि सोभा बेलि से बये।
मानों आजु प्रात उदयाचल सिखर पर
बीस रबि दससिस संग ही उदै भये।[१७७]

भारतेन्दु युग में अन्य कवियों में प्रेमधन ने सौन्दर्यनुभूति की अभिव्यंजना सम्यक रूप से की है। सहज सौन्दर्य की सरसता से युक्त एक चित्र प्रस्तुत है-

अंजन रंजन बिन नयन, मील कंज सम स्याम।
बिना राग बिन बीरीन के मधुरे अधर ललाम।।
स्वच्छ सेत सारी सहित, साँचहु रही सुहाय।
मुख मयंक मनु झलमलै, गंग तरंगन जाय।।
भक्ति भरी इत उत रही करि प्रबन्ध जेवनार।
मानहुँ मूरति कुलवधू रचि पठई करतार।।[१७८]

द्विवेदी युगीन

द्विवेदी युग के कवियों में **श्रीधर पाठक, अयोध्या प्रसाद उपाध्याय** 'हरिऔध', **रामनरेश त्रिपाठी** तथा **मैथिली शरण गुप्त** प्रमुख हैं। इनकी रचनाओं में सौन्दर्य विषयक अभिव्यंजना सरस और मधुर रूपों में वर्णित हुई है। नारी की आंगिक सुषमा की अभिव्यक्ति करता निम्न चित्र **श्रीधर पाठक** के सौन्दर्यबोध को स्पष्ट करता है-

कौहर केतीक इन्द्र वधू के वरण जीते,
मेंहदी के बंदन की झलकी सहल की।
सहज ही रंगदार जावक सुरंग भार
होत न सँभार डगैं भरती कहल की
श्रीधर अरुण छबि छटा छहराय रही
क्षिति में बिछाई मानो पाँखुरी कमल की
ज्यों-ज्यों प्यारी मंद-मंद पायन धरति आवै,
पौंध सी परति आवै त्यों त्यों मखमल की।[१७९]

हरिऔध की रचनाओं में रीतिकालीन श्रृंगार विलास तथा द्विवेदी युगीन आदर्श बौद्धिकता का समावेश है। **'मर्मस्पर्श'** का निम्न उदाहरण कवि की रीतिकालीन अभिव्यंजना प्रणाली का द्योतक है-

छवि अवलोके मैलो लगत छपाकर है,
लोल-लोल लोचन बिलोके ललचाति है।
मधुमयी मंजु मुसुकान चित चोरति है,
मोहिनी पै मोहि-मोहि मोहित दिखाति है।
हरिऔध कमनीय काम सम तन हेरि
कामिनी की सारी मनोकामना हेराति है।
रिस भरी रस भरे सैनत ते तरसाति
सीरे-सीरे बैनन ते सीरी परिजाति है।[१८०]

पारिजात में अभिव्यक्त स्वर्गांगना का रूप-सौन्दर्य शालीनता और सहजता का बोधक है-

शोभा-संकलिता नितान्त ललिता कान्ता कलालृंकता।
लीला-लोल सदैव यौवनवती सद्वेश वस्त्रावृता।
नाना गौरव-गर्विता गुणमयी उल्लासिता संस्कृता।
होती है दिव-दिव्यता-विलासिता स्वर्गांगना सुन्दरी।।[१८१]

पुरुष सौन्दर्य की सरस अभिव्यक्ति निम्न अंकन से स्पष्ट होती है

विकच-नील-अरविन्द विनिन्दक थी मुख-इन्दु-निकाई।
युगल भौंहों ने जिस पर उपमा अलि-अवलि की पाई।
अनुरंजित अनुराग-लाग में डूबे सहज फबीले।
रतनारे, न्यारे, कजरारे थे युग नयन रसीले।
ललित अधर पर विलस रही थी हँसी सरस अभिरामा।
अंग-अंग थी सुछवि छलकती, देख ललकती बामा।
तिरछी आँखों से विलोक कर यह मूरत मन-हारी।
चकित हुई मृग-शावकलोचनि, विकच बनी उर क्यारी।।[१८२]

राधा के सौन्दर्य-वर्णन में **हरिऔध** ने मुख की मनोहरता के साथ अंगों की नैसर्गिक क्षीणता, वचन माधुर्यता, नेत्र-चांचल्य, रसिकता और देहयष्टि की सुन्दरता का समावेश कर अपनी सौन्दर्य-प्रियता की अभिव्यंजना का स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत किया है-

रूपोद्यान-प्रफुल्ल प्राय-कलिका राकेन्दु बिम्बानना,
तन्वंगी कल-हासिनी सुरसिका क्रीड़ा कला पुत्तली,
शोभा-वारिधि की अमूल्य-मणि सी लावण्य-लीलामयी,
श्री राधा मृदुभाषिणी मृगदृगी माधुर्य की मूर्ति थी।[१८३]

रामनरेश त्रिपाठी की रचनाएँ अधिकतर देश प्रेम से ओत-प्रोत हैं परन्तु श्रृंगार और यौवन के मदिर चित्रों का अंकन भी उन्होंने उसी तन्मयता के साथ किया है। नायिकाओं की सहज रूप-गरिमा का अवलोकन उनकी सौन्दर्यप्रियता का प्रमाण देता है-

(क) सुन प्रणयी के इन्दु वदन में मृदुल कौमुदी हास।
विकसित हुआ झुकाया उसने शशि को शशि के पास।।
चन्द्र कुंडली सा वलयित कर रमणी-कण्ठ ललाम।
चिबुक प्रस्फुटोन्मुख गुलाब धर, चूम भाल अभिराम।।[१८४]

(ख) कहते थे तुम कोमलता नीरज की, ज्योति रतन की,
मोहकता शशि की गुलाब की सुरभि शांति सज्जन की,
रति का रूप रंग कंचन का लेकर स्वाद सुधा का,
विरचा है विधि ने मुख तेरा सुख लेकर वसुधा का।।[१८५]

(ग) बार-बार चुम्बन करता हूँ उससे जो लालिमा उमड़कर

निखर कपोलों पर आती है क्या है वैसी उषा मनोहर??[१८६]

श्याम की शोभा नामक रचना में कृष्ण को रूप शोभा की वर्णन पारम्परिक ढंग से किया है-

श्याम के है अंग में तरंगित अनंग द्युति
नित नित नूतन अकथनीय बात है।
नील मणि कहना तो चित्त की कठोरता है
भूलें रजनी तो कहें कि जलजात है।
दृग से अधर तक दृष्टि पहुँच न पाती
दृग में उधर आती नई करामात है।
जैसे-जैसे ध्यान से हैं देखते समीप जाके
बार-बार देखी अनदेखी होत ज्ञात है।

मैथिलीशरण गुप्त ने सौन्दर्य के चित्रों में शालीनता का समावेश कर नारी के प्रति उदात्त भावना का परिचय दिया है। सौन्दर्य वर्णन की इन्द्रधनुषी योजना पंचवटी, द्वापर, साकेत, सिद्धराज प्रभृति ग्रन्थों में परिलक्षित होती है। प्रस्तुत है पुरुष-सौन्दर्य का एक आदर्श चित्र-

युवक उदार वीर उच्च उदयाद्रि के
शिखर-समान, चित्रभानु सा किरीट था।
सहज प्रसन्न मुख, लोचन विशाल थे,
भाल पर भौंहे दृढ़ निश्चय की रेखा-सी।
लाल लाल होठों पर सूक्ष्म मसि लेखा थी।
किन्तु पड़ती थी दृष्टि जाके वहाँ उलटी,
हेतु हो रहा था आप डीठ का डिठौना ही।
पीन वृषस्कंध, क्षीण सिंह-कटि, साहसी,
दीर्घ हस्ति हस्त, मानों पशुता के गुण्य की
देव साधना का वह पुण्य नरक्षेत्र था।[१८७]

सीता का अनुपम सौन्दर्य देखकर लक्ष्मण को भी लज्जा आने लगती है-

अहा अम्बरस्था ऊषा भी इतनी शुचि सस्फूर्ति न थी,
अवनी की ऊषा सजीव थी अम्बर की सी मूर्ति न थी।
वह मुख देख पाण्डु-सा पड़कर गया चन्द्र पश्चिम की ओर,
लक्ष्मण के मुँह पर भी लज्जा लेने लगी अपूर्व हिलोर।[१८८]

द्वापर में कृष्ण के बालरूप सौन्दर्य का चित्रोपम अंकन दृष्टव्य है-

सखा साथ में, वेणु हाथ में, ग्रीवा में बनमाला।

केकि किरीट, पीत-पट-भूषित, रज रूषित लटवाला।।[१८६]

साकेत के माध्यम से कवि ने उर्मिला को सार्थकता प्रदान की है। उर्मिला के सौन्दर्य से अनुप्राणित निम्न चित्र कितना सुकुमार है-

अरुण पट पहने हुये आहलाद में
कौन यह बाला खड़ी प्रासाद में?
प्रकट-मूर्तिमती उषा ही तो नहीं?
कान्ति की किरणें उजेला कर रहीं।
यह सजीव सुवर्ण की प्रतिमा नई
आप विधि के हाथ से ढाली गई।
कनक लतिका भी कमल-सी कोमला,
धन्य है उस कल्प शिल्पी की कला।।[१९०]

छायावाद

छायावादी युग में वाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा आन्तरिक सौन्दर्य को प्रधानता मिली है। रीति कालीन वाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा मानसिक और अशरीरी सौन्दर्य की प्रतिष्ठा छायावाद में हुई। सौन्दर्य की अभिव्यक्ति का उदात्त निर्वाह छायावादी कवियों में स्पष्ट परिलक्षित होता है। प्रसादः मूलतः शृंगार और विलास के कवि हैं। इसका प्रमाण निम्न उद्धरणों से स्पष्ट मिलता है-

(अ) **बैठी है वसन पहिन मलिन इक बाला**
पुरइन पत्रों के बीच कमल की माला
उस मलिन वसन में अंग प्रभा दमकीली
ज्यों धूसर नभ में चन्द्रकला चमकीली।[१९१]

(ब) **थी किस अनंग के धनु की वह शिथिल शिंजिनी दुहरी**
अलबेली बाहुलता या तनु छवि-सर की नव लहरी?
चंचला स्नान कर आवे चंद्रिका पर्व में जैसी
उस पावन तन की शोभा आलोक मधुर थी ऐसी।[१९२]

(स) **नील परिधान बीच सुकुमार खुल रहा मृदुल अधखुला अंग**
खिला हो ज्यों बिजली का फूल मेघ-बन बीच गुलाबी अंग।

(द) **कुसुम-कानन अंचल में मंद पवन प्रेरित सौरभ साकार।**
रचित परमाणु पराग शरीर खड़ा हो ले मधु का आधार।
और पड़ती हो उस पर शुभ्र नवल मधु-राका मन की साध,
हँसी का मद विह्वल प्रतिबिम्ब मधुरिमा खेला सदृश अवाध।[१९४]

(य) बिखरी अलकें ज्यों तर्क-जाल

वह विश्व मुकुट-सा उज्जवलतम् शशिखंड सदृश था स्पष्ट भाल,
दो पद्म पलाश चषक से दृग देते अनुराग विराग ढाल।
गुंजरित मधुप से मुकुल सदृश वह आनन जिसमें भरा गान,
वक्षस्थल पर एकत्र धरे संस्कृति के सब विज्ञान गान।
था एक हाथ में कर्म-कलश वसुधा जीवनरस सार लिए
दूसरा विचारो के नभ को था मधुर अभय अवलम्ब दिए।
त्रिबली थी त्रिगुण तरंगमयी, आलोक वसन लिपटा अराल,
चरणों में थी गति भरी ताल।[१६५]

निराला के काव्य में प्रेमिका तथा दुहिता के माध्यम से पर्याप्त सौन्दर्य-सृष्टि हुई है। पुरुष की अपेक्षा नारी सौन्दर्य की अभिव्यक्ति निराला को प्रिय रही है।

नख-सिख लिखे दिखे।
तन रतनार दिखे।
नवल सरोज उरोज नालकर
वीणा के वादित वाहित स्वर
दशन पंक्ति कुन्दावकलित हर
हसित विमोह सिखे।[१६६]

नायिका के खुले केशों का सरस एवं मधुर अंकन उनकी सौन्दर्य प्रियता का बोध कराता है-

खुले केश अशेष शोभा भर रहे
पृष्ठ-ग्रीवा-बाहु-उर पर तर रहे
बादलों में घिर अपर दिनकर रहे
ज्योति की तन्वी-तड्ति द्युति ने क्षमा माँगी।[१६७]

पंत को सौन्दर्य से ही काव्य-रचना की प्रेरणा मिली है। पंत की पल्लव, गुंजन और लोकायतन कृतियाँ सौन्दर्य-अभिव्यक्ति की दृष्टि से विशिष्ट महत्व रखती हैं। नारी के प्रति सौन्दर्य प्रियता की बोधक निम्न पंक्तियाँ अवलोकनीय हैं-

घने लहरे रेशम के बाल धरा है सिर पर मैंने देवि,
तुम्हारा यह स्वर्गिक श्रृंगार स्वर्ण का सुरभित भार।
मलिंदों से उलझी गुंजार मृणालों से मृदु तार,
मेघ से संध्या का संसार वारि से उर्मि उभार।
मिले हैं इन्हें विविध उपहार तरुण तम से विस्तार।[१६८]

भावी पत्नी के प्रति रचना में सौन्दर्य के आदर्श रूपायित तत्वों के माध्यम से सौन्दर्य वृष्टि हुई है-

खोल सौरभ का मृदु कच जाल
सूंघता होगा अनिल समोद
सीखते होंगे उड़ खग बाल
तुम्हीं से कलरव केलि विनोद
चूम लघु पद चंचलता प्राण
फूटते होंगे नव जल स्रोत
मुकुल बनती होगी मुसकान।[१९९]

सिरी के रूपांकन में कवि ने विशेष सावधानी से काम लिया है-

घनीभूत आनंद पुष्प के स्तवक उरोजों में था मुकुलित।
अंगों की लावण्य लता में प्रेम स्वतः रोमांच पल्लवित।।
गढ़ी शील ने दृग प्रिय देही, शोभा में भर सौम्य संतुलन।
स्वप्नपाश फूलों की बाँहे, मन में भरती पुलकालिंगन।।
स्निग्ध चाँदनी-सा स्वभाव नित, छिटका करता तन से उज्जवल।
नव छन्दों के स्रोत फूटते छू उसके गति चंचल पद-तल।।[२००]

पंत ने प्रकृति में नारी का आरोप कर सौन्दर्य की मृदुल अवतारणा की है-

ऊषा नखशिख लज्जा में लिपटी अब गिरि पर आती,
संध्या ढलते मृदु तन की श्यामल वेणी लहराती।
देखा कवि ने शोभा का भावाकुल गौर-सरोवर
मुग्धा वय के मधु भारत स्पर्शों से कंपित थर-थर।।[२०१]

महादेवी की रचनाओं में सौन्दर्य का वाह्य वर्णन कम मिलता है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं जो सौन्दर्य अभिव्यक्ति दृष्टि से अनुपम कहे जा सकते हैं-

(अ) जिन नयनों की विपुल नीलिमा
में मिलता नभ का आभास।[२०२]
(ब) अधखुले दृगों के कंज कोष।[२०३]
(स) सजाने वे पद सुकुमार
तरंगों से द्रुत पद सुकुमार।[२०४]
(द) प्रिय के 'पद पद्मों' का मधु जाल।[२०५]
(य) मैंने सुलझाये तिमिर केश ।[२०६]

निशीथ में रमणीय चित्रों की बहुलता मिलती है। केश की मुद्रा का यह चित्र रामकुमार वर्मा की सौन्दर्य विषयक कुशलता का द्योतक है-

केश जाल भी बिखरे थे पा करुण अंग की लोच।
भाल जानु पर था क्या आह, रही थीं सोच।
साड़ी सिर की सरक गयी थी, थी कंधों पर व्यस्त।
वायु हटा पट को चलता था मन्द मन्द मृदु मस्त।।[२०७]

गतिशील सौन्दर्य को सरस अभिव्यक्ति करने वाला निम्न चित्र कवि के सौन्दर्य बोध का निदर्शन करता है-

वायु सरल सेवक-सा बनकर चलता था अनुकूल।
फिर भी कर जाता था वह निष्प्राण जरा सी भूल।
कमला के वस्त्रों में छिपकर बहता इस-उस ओर।
चंचल मन-सा उड़ जाता था उसका अंचल छोर।।[२०८]

एकलव्य के चित्रण में भीलयुवक का साकार चित्र प्रस्तुत हो जाता है-

पारावत-पंख शीश में विचित्र हैं कसे,
लम्बा जटाजूट श्याम मस्तक की शोभा है।
जैसे श्याम मेघ में खचित इन्द्र चाप है,
खंड-खंड होके कहीं ऊपर है नीचे है।।
है प्रशस्त भाल, घने केश उठे भौंहों में,
बीच में मिले हैं जैसे कर्षित धनुष है।
नासा रेख उन्नत कपोल सौम्य कर्ण में,
विलुलित है कुण्डल सुरम्य स्फटिक के।।[२०९]

बच्चन की रचनाओं में सौन्दर्य का सम्यक चित्रण उपलब्ध होता है। प्रस्तुत है चित्र

तुम्हारे नील झील से नैन नीर निर्झर से लहरे केश
तुम्हारे तन का रेखाकार वही कमनीय कलामय हाथ।
कि जिसने रुचिर तुम्हारा देश रचा गिरि-ताल माल के साथ
करों में लतरों का लचकाव कर तलों में फूलों का वास।।[२१०]

नरेन्द्र शर्मा नारी सौन्दर्य को आकर्षक मानते हैं-

नारी का मार्दव-उभार, सुकुमार सुरेख कलेवर
पुतली का ठहराव मुग्ध, चितवन का चालन तेवर
यह सब आकर्षक है, क्षण-क्षण नित नव-वर्षक है।[२११]

अंचल के काव्य में सर्वत्र सौन्दर्य-प्रियता दृष्टिगत होती है। अप्रस्तुतों के माध्यम से सौन्दर्य का अंकन प्रस्तुत है-

रूप की काया तुम्हारी स्वास्थ्य का परिधान सुन्दर,

है तुम्हारी झलकियों में आनिनी का मान सुन्दर,
तुम दिया की जोत-सी तुम हो झलकते झूमरों सी
अप्सरा के गीत-सी तुम तो किरण के नूपुरों सी
लहलहाते खेत सी उजले किलकते बादलों सी
तुम उदय की वायु में विह्वल विभा से द्रुमदलों सी
व्योम की मोती लड़ी चैती सितारों की कहानी
तुम पिपासा की प्रणति में और भी लगती सुहानी।[२१२]

प्रगतिवादी

प्रगतिवादी कवियों में **निराला, पंत, दिनकर, नागार्जुन, रामविलास शर्मा, त्रिलोचन, मुक्तिबोध, नरेश मेहता** आदि प्रमुख हैं। यद्यपि पंत और निराला की रचनाओं में सौंदर्य-अभिव्यक्ति की चर्चा हम पहले कर चुके हैं किन्तु प्रगतिवाद के अन्तर्गत चर्चा में एक-एक चित्र का अवलोकन अनुचित न होगा। श्रमिक सौन्दर्य का एक चित्र देखें-

दैन्य कष्ट कुण्ठित,-सुन्दर है उसका आनन
गंदे गात वसन हों, पावन श्रम का जीवन
भूख प्यास से पीड़ित उसकी भद्दी आकृति
स्पष्ट कथा कहती-कैसी इस युग की संस्कृति
वह पशु से जघन्य मानस-मानव की है कृति।[२१३]

निराला की स्फटिक रचनाओं में सद्यस्नाता का संयमित रूप वर्णन प्रस्तुत है-

आँख पड़ी युवती पर
आई थी जो नहाकर
गीली धोती सटी हुई भरी देह में सुधर
उठे पुष्ट स्तन, दुष्ट मन को मरोड़कर
आयत दृगों का मुख खुला छोड़कर।
बदन कहीं से नहीं काँपता।
कुछ भी संकोच नहीं ढाँपता।
वर्तुल उठे उरोजों पर अड़ी थी निगाह
चोंच जैसे जयंत की, नहीं जैसे कोई चाह
देखाने को मुझे और
कैसे भरे दिव्य स्तन, हैं ये कितने कठोर
मेरा मन काँप उठा, याद आई जानकी[२१४]

दिनकर के काव्य में प्रगतिवादी भावना का आधिक्य दृष्टिगोचर होता है। नारी रूप सौन्दर्य की अभिव्यक्ति करने वाला चित्र कितना मधुर बन पड़ा है-

माथे में सैंदुर पर छोटी दो बिन्दी चमचम सी
पपनी पर आँसू की बूँदे मोती-सी शबनम-सी
लदी हुई कलियों से मादक टहनी एक नरम सी
यौवन की विनसी-सी भोली गुमसुम खड़ी शरम सी
पीला चीर, कोर में जिसकी चकमक गोटा-जाली
चली पिया के गाँव उमर के सोलह फूलों वाली।[२१५]

'उर्वशी' में नारी सौन्दर्य की अभिव्यक्ति में निष्कलुषता और सहजता के दर्शन होते हैं-

प्रकटी जब उर्वशी चाँदनी में द्रुम की छाया से,
लगा सर्प के मुख से जैसे मणि बाहर निकली हो,
या कि स्वयं चाँदनी स्वर्ण-प्रतिमा में आन ढली हो,
उतरी हो धर देह स्वप्न की विभा प्रमद-उपवन की।
उदित हुई हो या कि समन्वित नारी त्रिभुवन की।
कुसुम कलेवर में प्रदीप्त आभा ज्वालामय मन की।
चमक रही थी नग्न कांति वसनों से छनकर तन की।
हिम कण-सिक्त-कुसुम-सम उज्जवल अंग-अंग झलमल था,
मानो अभी-अभी जल से निकला उत्फुल्ल कमल था।
किसी सान्द्र वन के समान नयनों की ज्योति हरी सी,
बड़ी बड़ी पलकों के नीचे निद्रा भरी-भरी थी।
अंग-अंग में लहर लास्य की राग जगाने वाली,
नर के सुप्त शान्त शोणित में आग लगाने वाली।[२१६]

पुरूरवा की छवि के वर्णन से पुरुष सौन्दर्याभिव्यक्ति का प्रकाशन होता है-

यह शिला सा वक्ष, ये चट्टान-सी मेरी भुजाएँ,
मेरे प्राण का सागर अगम उत्ताल उच्छल है।[२१७]

प्रगतिवादी अन्य कवियों में यथार्थ सौन्दर्य की अभिव्यक्ति को प्रमुखता मिली है। **केदार नाथ** शहर के लड़कों का चित्रण यों करते हैं-

शहर के छोकड़े
मैले, फटे, बदबूदार वस्त्र पहने
बिना तेल कंघी के
रूखे उलझाए बाल

नंगे पैर

नंगे सिर

कीचड़ लपेटे तन

गलियों में घूमते हैं।[२१८]

नागार्जुन ने विकृतियों को समर्थ अभिव्यक्ति दी है-

(क) थकी-पकी तनी-घनी भौंहें

नीली नसों वाले ढलके पपोटे

सयत्न विस्फारित कोए

कोरों में जमा हुआ कीचड़

- - - - - - - - - - - -

- - - - - - - - - - - -

बेतरतीब बादलों का जंगल

झुर्रियों भरा कुंचित ललाट

खिचड़ी दाढ़ी का उजड़ा घोंसला।[२१९]

रामविलास शर्मा युवकों का चित्रण निम्न रूप में करते है-

कंकाल

हड्डियों के रक्तहीन माँसहीन कंकाल

मांसल बलिष्ठ नहीं भुजाएँ, रक्ताभा नहीं है कपोलों पर

परतंत्र देश के युवक हैं

- - - - - - - - - - - -

- - - - - - - - - - - -

युग के ये नरकंकाल

हड्डियों के ताप से अशान्त हैं

गालों की सूखी हड्डियों में

धँसी हुई आँखों की पुतलियों में

बसी है भावना विद्रोह की।[२२०]

प्रयोगवाद और नई कविता

प्रयोगवाद के प्रवर्तक अज्ञेय हैं। अन्य प्रमुख कवियों को 'तारसप्तक' में संकलित किया गया है। **अज्ञेय** के काव्य में सौन्दर्य की अभिव्यक्ति का प्रकाशन मौलिक और नूतन उपमानों के माध्यम से हुआ है। देखिये नायिका के सौन्दर्य को व्यंजित करता निम्न चित्र-

हरी घास बिछली घास
दोलती कलगी छरहरी बाजरे की।
अगर मैं तुमको
लजाती साँझ के नभ की अकेली तारिका
अब नहीं कहता
या शरद के भोर की नीहार–नहायी कुईं
टटकी कली चम्पे की
वगैरह तो
नहीं कारण कि मेरा हृदय उथला या कि सूना है
या कि मेरा प्यारा मैला है
बल्कि केवल यही
ये उपमान मैले हो गए हैं
देवता इन प्रतीकों के कर गये हैं कूच।[२२१]

बावरा अहेरी की नख शिख रचना में छायावादी स्पर्श झलकता है-

तुम्हारी देह
मुझको कनक चम्पे की कली है
दूर ही से
स्मरण में भी गन्ध देती है।
(रूप स्पर्शातीत वह जिसकी लुनाई
कुहासे–सी चेतना को मोह ले।)
तुम्हारे नैन
पहले भोर की दो ओस बूँदें हैं
अछूती, ज्योतिमय
भीतर द्रवित
(मानो विधाता के हृदय में
जग गई हो माप करुणा की अपरिमित।)[२२२]

प्रभाकर माचवे 'कापालिक' रचना में सौन्दर्य की अभिव्यक्ति निम्न प्रकार से करते हैं-

कापालिक हँसता है
पगले तू क्यों उसमें फँसता है? रे दुनियादारी।
यह महीन मलमल की सारी
उसके नीचे नरम गुलाबी चोली से ये कसे हुए

पीनोन्नत स्तन

यह कुंकुम-अक्षत से चर्चित माथा, यह तन

किसी सुहागिन की अर्थी पर

बड़ी-बड़ी चीलों के मानो तीक्ष्ण चक्षु ये बसे हुए पर

जीवन यों-सस्ता है[२२३]

नेमिचन्द यों प्रेयसी की कांति का अंकन करते हैं-

यदि मदिरा-सी तरल जुन्हाई

-किसी रूपसी सुरबाला के तन की आभा-सी यह छायी

भर जाती है मेरे मन में तेरी छवि का सुधि-सम्मोहन।[२२४]

गिरिजाकुमार माथुर यों सौन्दर्य की अभिव्यक्ति करते हैं-

इस रंगीन साँझ में तुमने

पहने रेशम वस्त्र सजीले,

केसर की तुम कुसुम कली सी

आईं सिमटी सी लिपटी सी

भरी गोल गोरी कलाइयों में पहनी थी

नयन-डोर सी वे महीन रेशमी चूड़ियाँ

गौरवर्ण की पृष्ठभूमि पर

चमक रही जो,

राग-रँगीली किरनों जैसी

इस फूली चंपई साँझ में।

चन्दन बाँह उठाते ही में

खिसक चलीं वे तरल गूँज से

श्वेत कमल की धुली पंखुरी पर

ज्यों ओस बिन्दु की माला।[२२५]

स्वयंवरा नायिका के सौन्दर्य से मंडित निम्न चित्र भारतभूषण अग्रवाल की सरस सौन्दर्याभिव्यक्ति का परिचायक है-

तुम स्वयंवरा बनकर, दिशा-दिशा में फैलाकर

अपनी अलकों का मोहजाल ! अम्बुज-प्रवाल-

से राते अधरों पर कोरा विस्मय विकास,

मदमाते नयनों में धुँधला गोधूलि-लास।[२२६]

अन्य कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं जो दूसरे तारसप्तक कवियों की सौन्दर्याभिव्यक्ति अभिव्यंजित करते हैं-

(क) अभी शोख बचपन के पंखों में दुबका है रूप
जैसे बादल के परतों में ढँकी सलोनी धूप
धुआँ-धुआँ सी उड़ती नजरें
ज्यों थिर आए मेघदूत वाले बादल कचनार।[२२७]

(ख) तुम्हारा साँवरा लहराता हुआ जिस्म
तुम्हारी किंचित मुड़ी हुई शंख ग्रीवा
तुम्हारी उठी हुई चंदन बाहें
तुम्हारी अपने में डूबी हुई
अधखुली दृष्टि
धीरे-धीरे हिलते हुए
तुम्हारे जादू भरे होंठ।[२२८]

(ग) सुन्दरियों के गोल बदन लिपटे गुलाल से
ज्यों सूरज पर संध्या बादल।[२२९]

(घ) भीज गए बारीक वसन सब
जिनसे निकले गोरे तन की आभा महकी।[२३०]

(अ) साँवली पलकें नशीली नींद में जैसे झुकें
चाँदनी से भरी भारी बदलियाँ हैं,
खाब में गीत पेंग लेते हैं
प्रेम की गुइयाँ झुलाती है उन्हें
उस तरह का गीत, वैसी नींद वैसी शाम सा है
वह सलोना जिस्म।[२३१]

(ब) चाहता मन
तुम यहाँ बैठी रहो
उड़ता रहे चिड़ियों सरीखा वह तुम्हारा श्वेत आंचल।[२३२]

तीसरे तार सप्तक के अन्तर्गत **मदनवात्स्यायन** की रचनाओं में ही सौन्दर्य की समर्थ अभिव्यक्ति दृष्टिगत होती है। प्रस्तुत हैं मदन वात्स्यायन के कुछ चित्र-

(अ) आकाशगंगा में न बहते दीप होते हैं
न ऊषा की पहली किरण से कोई रंग
प्रिये दोनों ओर तेरे-काले बालों के
बीच में तेरी माँग है।[२३३]

(ब) नारद के पाँव ठमक गये हैं, सकलंक चांद सी आँखे गोल हैं

चुनियाये जाकर ओठ गुलाब की हँसती हुई कौंड़ी बन गये हैं-

स्वस्ति फू-फू कहकर चाय माँग रही है।[२३४]

(स) धत बोली लज्जित प्रियंवदा हाथ झटक भगी
कर में उठाये साड़ी-चून मचकती रे हरिणी सी
फिरी एक झडवा के पास कुछेक क्षण खड़ी हो रही
रंज से अधिक काली भौंह रे, आँखें हँसी से उजली
बंकिम ओठों की लाल-दुलार भरी रंज भरी
पतले घूँघट में ज्यों रूप निखरता है सौ गुना ही।[२३५]

सप्तकेतर कवियों की सौन्दर्याभिव्यक्ति का परिचय निम्न उद्धरणों से स्पष्ट मिलता है-

(अ) मन भावन का रूप उजागर
धन्वान्तरि के कर से छलकी
अलभ सुधा की रसमयि गागर।
मन्द-मन्द नूपुर का कलरव
बिन्दु-बिन्दु छवि का मधु आसव।[२३६]

(ब) तिरछी कमान-जैसी काली-काली भौंहें
नैना रसीले अलसौंहें या हँसौंहे,
पाउडर प्रसाधन से शुचितर कपोल रे,
विद्रुम से लोभनीय अधरा अमोल रे,
वक्रता-विलासमयी हासमयी रूपसी
भूतल की उर्वशी।[२३७]-(देवराज)

(स) धार के ऊपर की सिहरन से
भाँपता भीतर मछलियों की चाल-ढ़ाल
रानें गठीली, गीली
पहली किरन के स्पर्श से
चमक उठी पन्नी सी, टीन-सी।[२३] -(जगदीशगुप्त)

(द) धुयें से भरी आँखें स्वाती सी पलकों में कृपालुः हंस के पंख पर ओस साफ-साफ। पसीने की बूँदों में लिपटा में लिपटा सुहाग टीकाः उषा, मंजूषा जैसे अरुण हिम गल जाय। लाल डोरियों में खिंची पुतलियाँः बेबस, मजबूर जैसे सीता की आँखें अशोक वन में माँग की सिन्दूरी लकीर : प्रवाल द्वीप जैसे पिघल जाय।[२३९] -लक्ष्मीकांत वर्मा

(क) मेघों का मृदु-मन्थर गति से तैरना
गजगामिनी प्रिया का मादक गमन है

मुझको प्रतिक्षण घेरे है आकाश जो

यह तो, यही तो मेरी प्रिया है।[२४०] – अजित कुमार

(ख) देख रूप छवि जिस यौवन की

डोल गये नारद से मुनि भी

कैसे दूर रहूँ उससे मैं? आखिर मुझमें दुर्बल मन है।[२४१]

(ख) तुम आईं शशि पर बादल सा मुख पर घूँघट डाले।

डब डब आँखों में, यौवन के सुन्दर स्वप्न संभाले।

अभिलाषा, सौन्दर्य शील से जीवन थाल सजाए,

तब तुम आईं थी तब रानी मेरे नयन लजाए।[२४२]

(ग) सद्यस्नात तुम

जब आती हो

मुख कुंतलों से ढका रहता है

बहुत बुरे लगते हैं वे क्षण जब

राहू से चाँद ग्रसा रहता है।

पर जब तुम

केश झटक देती हो अनायास

तारों-सी बूँदे

बिखर जाती है आसपास

मुक्त हो जाता है चाँद

तब बहुत भला लगता है।[२४३]

इस प्रकार वैदिक काल से लेकर वर्तमान काल तक सौन्दर्य ने अनेक यात्रायें की किन्तु उसके मूल स्वरूप में किसी भाँति परिवर्तन नहीं हुआ क्योंकि वह एक अलौकिक तत्व है और जो उसे जिस भाव-दृष्टि से देखता है, उसी प्रकार प्रतीत होने लगता है। रस जिस प्रकार जिह्वा से गृहीत होकर हृदय में आनन्द उत्पन्न करता है, सौन्दर्य भी उसी प्रकार आँखों के माध्यम से आनन्द का विषय बनता है। यही कारण है कि वैदिक कालीन, स्वस्ति ही उषस की दिव्य आभा बनी, औपनिषदिक साहित्य में, **तत्सत्यं स आत्मा तत्वमसि, सर्वखल्विदं ब्रह्म** एवं **नेह नानास्ति किंचन** के रूप में प्रस्फुटन हुआ और वही सौन्दर्य पौराणिक काल में श्रीमद्भागवतपुराण (के विशेषतः दशम स्कन्ध) में साक्षात मूर्तमन्त हो उठा कृष्ण के कोटि-कोटि कन्दर्पहारी किशोर रूप में।

श्रीमद्भागवत पुराण के पवित्र एवं उदात्त शिखरों से निःसृत सौन्दर्य की अनिंद्य रसवती धारा हिन्दी के आदिकाल, मध्यकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल को अभिसिंचित करती हुई अब भी अमन्दवती रसिकों को आह्लादित करती है। इसमें स्नात अनेक कवि स्वनामधन्य हो गये।

सौन्दर्य का मानवीकृत रूप प्रायः सबको भाता है। कहीं इसकी मांसलता ने लोगों को प्रभावित किया तो कहीं यह शौर्य एवं शक्ति के साथ समन्वित हो अलौकिक बन गया। राम और कृष्ण के रूप में अवतरित सौन्दर्य जन-जन के मन को भाकर, संसार-बन्धन से मोक्ष का कारण बना।

निःसन्देह सत्य एक मात्र परम और दिव्य तत्व है। वही मनुष्य में 'प्रज्ञा' के रूप में प्रतिष्ठित होता है, वही प्रणय में विरह की दीप्ति और ऊष्मा से संवलित होता है, वही लोचनों में उत्कृष्ट लावण्य बनकर सबको आकर्षित करता है तो वही लोक-सेवा में मंगलमय वरदान बनकर हम सबको व्यष्टि से समष्टि की ओर ले जाकर उदात्त तत्व का दर्शन कराता है।

सत चित आनन्द का समन्वित स्वरूप ही सौन्दर्य है। इसकी अभिव्यक्ति पाकर ही कृतियाँ 'साहित्यिक कोटि' का 'अभिधान' प्राप्त करती हैं। तुलसी-साहित्य में पदे-पदे इसकी अनुभूति और सफल अभिव्यक्ति के दर्शन सुलभ हैं। उसके कालजयी होने का एकमात्र यही कारण है।

❑❑❑

संदर्भ

१. डा० फतह सिंह, **सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका** पूर्वपीठिका से

२. बल्देव उपाध्याय **वैदिक साहित्य** पृष्ठ १६२

३. वही, पृष्ठ २११

४. वही, पृष्ठ २३२-२३३

५. वही, पृष्ठ १८०

६. वही, पृष्ठ १८२

७. **ऋग्वेद अष्टक** १ सूत्र ४६

८. **ऋग्वेद** अष्टक १ सूत्र ६२

९. **यजुर्वेद** ३४/६

१०. **अथर्व** ४/१५

११. **अथर्व** ५/२०/५

१२. **अथर्व** ५/२१/६

१३. **अथर्व** १२/१/१२

१४. **ऋग्वेद** २/१२/६

१५. वही १०/६५/३

१६. **ऋग्वेद** १/१२४/७

१७. **ऋग्वेद** १/३२/२

१८. **ऋग्वेद** ७/८६/२

१९. **ऋग्वेद** ७/८६/५

२०. **ऋग्वेद** ४/१३/४

२१. वही ७/६३/४

२२. वही ५/४७/३

२३. वही ४/५८/३

२४. वही १/१६४/२०

२५. वही ५/८३

२६. वही ७/१०३

२७. वही १/१२३/१०

२८. वही ६/६४/३

२६. वही १/६२/१२

३०. वही ३/६/३

३१. वही ३/६/३

३२. ऋग्वेद ३/६१/२

३३. ऋग्वेद १/१२४/७

३४. ऋग्वेद ७/७६/३

३५. ऋग्वेद ५/८०/६

३६. ऋग्वेद १/६२/४

३७. बल्देव उपाध्याय वैदिक साहित्य पृष्ठ ३३५

३८. बल्देव उपाध्याय वैदिक साहित्य पृष्ठ ३१८

३६. दृष्टव्य कठ तथा तैत्तिरीय उपनिषदों पर शांकर भाष्य का उपोदधात

४०. मुक्तिकोपनिषद

४१. बल्देव उपाध्याय वैदिक साहित्य पृष्ठ ३२३

४२. वृहदारण्यक उपनिषद ४/५/६

४३. तैत्तिरीय उपनिषद ३/१/१

४४. छान्दोग्य उपनिषद ३/१४/१

४५. तैत्तिरीय उपनिषद २/७/१

४६. श्वेताश्वतर उपनिषद ६/१६

४७. बृहच्च तद दिव्यम चिन्त्य रूपं सूक्ष्माच्च तत् सूक्ष्मतरं विभाति।
दूरात सुदूरे तदि हान्ति के च पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम्।। मुण्डकोपनिषद ३/१/७

४८. अणोरणी यान्महतो महीयानात्मास्य जतोर्निहितो गुहायाम्।
तमक्रतुः पश्यति वीत शोको धातु प्रसादान्महिमानमात्मनः।। कठोपनिषद १/२/२०

४६. सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। --तैत्तिरीय उप २/१/२
विज्ञानमानन्दं ब्रह्म। --बृहदारण्यकउप ३/६/२८
रसो वै सः। तैत्तिरीय उपनिषद २/७/२
विज्ञानं ब्रह्म-तैत्तिरीय उप. ३/५/१

५०. निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरंजनम। श्वेताश्वतर उप. ६/१६

५१. अव्यक्तात्तु परः पुरुषो व्यापकोऽलिंग एव च
यं ज्ञात्वां मुच्यते जन्तुर मृतत्वं च गच्छति।। कठोपनिषद २/३/८

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम। -वही (२/३/६)

५२. यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः वही २/३/६
तस्मादेतद् ब्रह्म नाम रूपमन्नं च जायते।। मुण्डकोपनिषद १/१/६

५३. न तस्य कार्य करणं च विद्यते
न तत्सम श्चाम्यधिकश्च दृश्यते
परास्य शक्ति र्विविधैव श्रूयते
स्वाभाविकी ज्ञानबल क्रिया च।। श्वेताश्वतरोपानिषद ६/८

५४. कठोपनिषद १/२/२३/

५५. छान्दोग्य उपनिषद ३/१४/२

५६. श्वेताश्वतर उप ६/११

५७. कठोपनिषद १/३/११

५८. स य एषोऽन्तर्हृदय आकाशः। तस्मिन्नयं पुरुषो मनोमयः अमृतो हिरण्यमयः।
तैत्तिरीय उपनिषद १/६/१
यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्। सो ऽश्नुते सर्वान कामान सह ब्रह्मणा विपाश्चतेति
तैतिरीय उप० २/१/२
सं वा एष महानज आत्मा योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु य एषोऽन्तर्हृदय आकाशस्तस्मि छेते
सर्वस्य वशी सर्वस्ये शानः सर्वस्याधिपतिः। वृहदारण्यक उप. ४/४/२२
ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे। कठोपनिषद १/३/१
आविः संनिहितं गुहाचरं नाम महत्पदम्। (मुण्डक उप २/२/१)

५९. एषः ह देवः प्रदिषोऽनुसर्वाः पूर्वो ह जातः स ड गर्भे अन्तः।
स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ्ङ जनांस्तिष्ठति सर्वतोमुखः। -श्वेताश्वतर उप. २/१६

६०. अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन पूर्वमर्षत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपोमातरिश्वादधाति। ईशावास्य उप. ४

६१. केन उपनिषद तृतीय व चतुर्थ खंड

६२. न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।। कठोनिषद १/२/१८

६३. आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेवतु।
बुद्धि तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेवच। कठोपनिषद १/३/३

६४. विज्ञानं सारथिर्यस्तुः मनः प्रग्रहवान नरः।
सोऽध्वनः परमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्।। कठोपनिषद १/३/९

६५. छान्दोग्य उप० ६/८/७

६६. वही ३/१४/१

६७. **वृहदारण्यक** ४/४/१६

६८. **श्वेताश्वतर** उप. ३/२०

६९. वही ४/१०

७०. **कठोपनिषद** १/२/१६

७१. **मुंडकोपनिषद** ३/१/१

७२. **श्वेताश्वतर** उप. १/१२

७३. वही १/८

७४. वही १/६

७५. **मुंडकोपनिषद** १/१/७

७६. **तैत्तिरीय उपनिषद** २/१

७७. **छान्दोग्य उपनिषद** ८/१२/५-६

७८. **ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति।** मुंडक उपनिषद ३/२/९

७९. **योऽकामो निष्काम आप्तकाम आत्मकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति।** वृहदारण्यक उपनिषद ४/४/६

८०. **पुरुष एवेदं विश्वं कर्म तपो ब्रह्म परामृतम एतयो वेदनिहितं गुहायां सोऽविद्या ग्रन्थि विकरतीह सोम्य।** मुण्डक उपनिषद २/१/१०

८१. **तमेव विदित्वातिमृत्युमेति, नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।** श्वेताश्वतर ६/१५
एतद्यो वेद निहितं गुहायां सोऽ विद्या ग्रन्थिं विकिरतीह सोम्य। मुंडक २/१/१०
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तन्मृत्युमुखात् प्रमुच्यते। कठ १/३/१५

८२. **भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।**
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।। मुंडक २/२/८

८३. **यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं जिघ्रति तदितर इतरं पश्यति तदितर इतरं श्रृणोति तदितर इतरं भिवदति तदितर इतरं मनुते तदितर इतरं विजानाति यत्र वा अस्य सर्वमात्मै वाभूत्तत्केन कं जिघ्रेत्तत्केन कं पश्येत्तत्केन कं श्रुणुयात्तत्केन कमभिवदेत्तत्केन कं मन्वीत तत्केन क्रं विजानीयात्। येनेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीया द्विज्ञातार मरे केन बिजानीयादिति।** वृहदारण्यक उपनिषद २/४/१४

८४. **सर्वाजीवे सर्वसंस्थे वृहन्ते अस्मिन हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे।**
पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वेति।। श्वेताश्वतर उप. १/६

८५. **वेदान्त विज्ञान सुनिश्चितार्थः सन्यासयोगाद् यतयः शुद्ध सत्वाः।**
ते ब्रह्म लोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे।। मुंडक उपनिषद ३/२/६

८६. यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय।
तथा विद्वान नामरूपाद विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम।। मुंडक ३/२/८

८७. स यो ह वैतत्परमं ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति नास्याब्रह्मवित्कुले भवति। तरति शोकं पाप्मानं गुहा ग्रन्थिभ्योविमुक्तोऽमृतो भवति। मुंडक उपनिषद ३/२/६

८८. ज्ञात्वात्मस्थममृतं विश्वधाम। श्वेताश्वतर ६/६

८६. यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ
तस्येते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।। श्वेताश्वतर ६/२३

६०. सर्व खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत -छांदोग्य उप० ३/१४/१

६१. तद्वन मित्युपासितव्यम्। केन उप० ४/६

६२. ऊर्ध्व प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति। मध्ये वामन मासीनं विश्वे देवा उपासते।।
कठोपनिषद २/२/३

६३. अणोरणीयान महतो महीयातात्मा गुहायां निहतोऽस्य जन्तोः।
तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीनम ।। श्वेताश्वतर ३/२०

६४. सवित्रा प्रसवेन जुषेत ब्रह्म पूर्व्यम।
तत्र योनिं कृणवसे न हि ते पूर्वमक्षिपत्। श्वेताश्वतर २/७

६५. अथर्ववेद ११/७/२४

६६. शतपथब्राह्मण १३/४/३/१३

६७. वृहदारण्यक २/४/१०

६८. छान्दोग्य उपनिषद ७/१/१

६६. याज्ञवल्क्य स्मृति

१००. ब्रह्माण्ड पुराण १/५६/५८

१०१. श्री मदभागवत द्वादश स्कन्ध त्रयोदश अध्याय
श्लोक सं. ३,४,५,६,७,८,६ (१२/१३/३-६)

१०२. श्रीमदभागवत गीता पुराण १२/१३/१४-१८

१०३. श्रीमदभागवत महात्म्य चौथा अध्याय १-४

१०४. श्रीमदभागवत पुराण १/११/१२-१५

१०५. श्रीमदभागवत पुराण १/११/२४-२७

१०६. श्रीमदभागवत पुराण १/१६/२५/२८

१०७. श्रीमदभागवत पुराण २/६/११-१३

१०८. श्रीमदभागवत पुराण ३/८/२३-२८

१०६. श्रीमदभागवत पुराण ४/७/६-२२

११०. **श्रीमदभागवत पुराण** ४/२१/१५-१७

१११. **श्रीमदभागवत पुराण** ४/२५/१३-१६

११२. **श्रीमदभागवत** ४/२५/२२-२४

११३. **श्रीमदभागवत** ५/२४/६-१२

११४. **श्रीमदभागवत** ८/८/४२-४५

११५. **श्रीमदभागवत** १०/३/६-१०

११६. **श्रीमदभागवत** १०/१४/१

११७. **श्रीमदभागवत** १०/१८/३-८

११८. **श्रीमदभागवत** १०/२१/१५-१६

११९. **श्रीमदभागवत** १०/२९/२-४

१२०. **श्रीमदभागवत** १०/२९/३८-४०

१२१. **श्रीमदभागवत** १०/३३/६-८

१२२. **श्रीमदभागवत** १०/३३/१६-१८, २३-२६

१२३. **श्रीमदभागवत** १०/५३/५१-५४

१२४. **श्रीमदभागवत** १०/५५/२६-२८

१२५. **श्रीमदभागवत** १०/६०/३-६

१२६. **श्रीमदभागवत** १०/६०/८

१२७. **श्रीमदभागवत** १०/६६/३-१०

१२८. **हिन्दी साहित्य कोश** पृष्ठ ५८०

१२९. सं डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी **संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो** पृष्ठ ४९-५०

१३०. सं डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी पृष्ठ ५६

१३१. सं डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी **संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो** पृष्ठ ५९

१३२. वही पृष्ठ ८२

१३३. **विद्यापति के सुभाषित** पृष्ठ ६५

१३४. **विद्यापति के सुभाषित** पृष्ठ ६०

१३५. वही पृष्ठ ६२-६४

१३६. वही पृष्ठ ६१

१३७. **विद्यापति पदावली** पृष्ठ १२

१३८. वही पृष्ठ १७

१३९. **विद्यापति के सुभाषित** पृष्ठ १८

१४०. वही पृष्ठ १२८

१४१. वही पृष्ठ ८०

१४२. सं. वासुदेव शरण अग्रवाल : पद्मावती ६२/१-७

१४३. वही १७०/७

१४४. सूरसागर १०/६१

१४५. वही १०/१०७

१४६. वही १०/१२२६

१४७. वही १०/१२०४

१४८. वही १०/६७२

१४६. **सूरसागर** १०/६८७

१५०. वही १०/७३२

१५१. वही १०/१०८३

१५२. **रामचन्द्रिका** ६/४३-४४

१५३. वही ६/४३

१५४. वही ३१/२६

१५५. वही ३१/३०

१५६. **रामचन्द्रिका** १६/३१

१५७. वही १६/३२

१५८. **बिहारी रत्नाकर** ६५

१५६. **बिहारी रत्नाकर** ३२७

१६०. **बिहारी रत्नाकर** ४६

१६१. **बिहारी रत्नाकर** ६६६

१६२. **बिहारी रत्नाकर** ५७६

१६३. **बिहारी रत्नाकर** ६६३

१६४. **बिहारी रत्नाकर** ५३२

१६५. **बिहारी रत्नाकर** ६७४

१६६. सं. डॉ. श्यामसुन्दरदास : **सतसई सप्तक** : मतिराम सतसई दोहा ४६१

१६७. सं. कृष्ण बिहारी मिश्र **मतिराम ग्रन्थावली** रसराज छन्द ६

१६८. सं. डा नगेन्द्र **रीति-श्रंगार** पृष्ठ १४६-५०

१६६. सं. मिश्रबंध : **देव्सुधा छन्द** : २

१७०. वही छन्द १२१

१७१. सं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : **पदमाकर ग्रन्थावली** : **जगद्विनोद** : छन्द ४१८

१७२. सं. डा नगेन्द्र **रीति-श्रंगार** पृष्ठ ८२

१७३. सं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र घनानंद ग्रन्थावली पृष्ठ ७८

१७४. **भारतेन्दु ग्रन्थावली** दूसरा भाग **प्रेम माधुरी** छन्द ६६

१७५. **भारतेन्दु ग्रंथावली** दूसरा भाग **प्रेममालिका** छंद १८

१७६. **भारतेन्दु ग्रंथावली** दूसरा भाग **रागसंग्रह** छंद १७

१७७. **भारतेन्दु ग्रंथावली** दूसरा भाग पृष्ठ ८६८

१७८. **प्रेमधन सर्वस्व** पृष्ठ १५४

१७६. श्रीधर पाठक **नख-शिख संग्रह** पृष्ठ ७

१८०. हरिऔध **मर्मस्पर्श** पृष्ठ १६०-६१

१८१. हरिऔध **पारिजात** पृष्ठ २६७

१८२. हरिऔर **पथ प्रमोद** पृष्ठ १०१-१०२

१८३. हरिऔध **प्रियप्रवास** ४/४

१८४. त्रिपाठी **मिलन** १/५-६

१८५. रामनरेश त्रिपाठी - **पथिक** १/२७

१८६. रामनरेश त्रिपाठी - **स्वप्न** १/८

१८७. मैथिलीशरणगुप्त **सिद्धराज** प्रथम सर्ग पृ.२५

१८८. मैथिलीशरणगुप्त **पंचवटी** छन्द ६५

१८६. मैथिलीशरणगुप्त **द्वापर** पृ० १२४

१६०. मैथिलीशरणगुप्त **साकेत** प्रथम सर्ग पृष्ठ २६-२७

१६१. प्रसाद **कानन कुसुम** पृष्ठ ३६

१६२. प्रसाद **आँसू** पृष्ठ २४

१६३. प्रसाद **कामायनी** श्रद्धासर्ग पृष्ठ ४६

१६४. प्रसाद **कामयनी** श्रद्धासर्ग पृष्ठ ५०

१६५. प्रसाद **कामायनी** इड़ा सर्ग पृष्ठ १६८

१६६. निराला **गीतगुंज** पृ० ४२

१६७. **गीतिका** पृष्ठ ४

१६८. पन्त **पल्लव** पृष्ठ ६६

१६६. पंत **गुंजन** ४२

२००. पंत **लोकायतन** पृष्ठ ६४

२०१. वही पृष्ठ १६४

२०२. महादेवी **यामा** (नीहार) पृष्ठ १५

२०३. वही (रश्मि) पृष्ठ ६६

२०४. वही पृष्ठ १२६

२०५. वही (नीरजा) पृ० १५५

२०६. यामा (सान्ध्यगीत) पृ० २०६

२०७. रामकुमार वर्मा **निशीथ** १५६

२०८. रामकुमार वर्मा (**गजरे तारों वाले**) पृष्ठ १२३

२०६. रामकुमार वर्मा **एकलव्य** द्वितीय सर्ग पृष्ठ २६-३०

२१०. बच्चन **प्रणय पत्रिका** पृष्ठ ६०

२११. नरेन्द्र शर्मा **कदलीवन** पृष्ठ ६२

२१२. रामेश्वर शुक्ल अंचल **'प्रत्यूष की भटकी किरण यायावरी** पृष्ठ ४६

२१३. पन्त **युगवाणी** पृष्ठ ३४

२१४. निराला **नये पत्ते** पृष्ठ ५६-६०

२१५. दिनकर - **रसवंती** पृष्ठ १५-१६

२१६. दिनकर **उर्वशी** पृष्ठ ३०

२१७. दिनकर **उर्वशी** पृष्ठ ५३

२१८. केदारनाथ **युग की गंगा** पृष्ठ ३६

२१६. नागार्जुन **सतरंगे पंखों वाली** पृष्ठ २६

२२०. रामविलास शर्मा **रूप-तरंग** पृष्ठ १७

२२१. अज्ञेय पूर्वा (**हरी घास क्षण भर**) पृष्ठ २४४-४५

२२२. अज्ञेय **बावरा अहेरी** पृष्ठ ३५

२२३. **तारसप्तक** पृष्ठ २१६

२२४. वही पृष्ठ १७

२२५. गिरजा कुमार **माथुर नाश और निर्माण** पृष्ठ ५७

२२६. सं. सेमचन्द्र सुमन : **नारी तेरे रूप अनेक** पृष्ठ १७५

२२७. धर्मवीर भारती **ठंडा लोहा तथा अन्य कविताएँ** पृष्ठ २६

२२८. धर्मवीर भारती **कनुप्रिया** पृष्ठ ७६

२२६. शकुन्त माथुर (**दूसरा सप्तक**) पृष्ठ ४२

२३०. वही पृष्ठ ४२

२३१. शमशेर बहादुर सिंह **कुछ कविताएँ** पृष्ठ १८४

२३२. **दूसरा सप्तक (नरेश मेहता)** पृष्ठ १२३

२३३. **तीसरा सप्तक मदन वात्स्यायन** पृष्ठ १३६

२३४. वही पृष्ठ १४२

२३५. वही पृष्ठ १४८

२३६. उमाकांत मालवीय **मेंहदी और महावर** पृष्ठ ५५

२३७. **सं. नारी तेरे रूप अनेक** पृष्ठ १५०

२३८. सं. अजित कुमार : **कविताएँ** १९६३ पृष्ठ ४३

२३९. **नयी कविता** (४) पृष्ठ ११३

२४०. अजित कुमार **अकेले कंठ की पुकार** पृष्ठ १६

२४१. नीरज **लहर पुकारे** पृष्ठ १६

२४२. नेपाली **नीलिमा** पृष्ठ ४३

२४३. दुष्यंत कुमार-**सूर्य का स्वागत** पृष्ठ ४६

❑❑❑

तृतीय अध्याय

तुलसी काव्य में सौन्दर्याभिव्यक्ति

(क) तुलसी के कृतित्व का संक्षिप्त परिचय

(ख) तुलसी की काव्यशास्त्रीय एवं सौन्दर्यशास्त्रीय धारणाएं

(ग) तुलसी की रचना-प्रक्रिया

(घ) तुलसी साहित्य में सौन्दर्य के विविध रूप

(पार्थिय, अपार्थिव, नागर, ग्राम्य, सामन्ती एवम् जनवादी)

कृतित्व

गोस्वामी तुलसीदास महान प्रतिभा सम्पन्न भक्त कवि थे उन्होंने तत्काल प्रचलित लोक भाषा में अपनी आराध्य के चरित्र की महिमा का वंर्णन किया है। लोकप्रियता के कारण अनेक अन्य कृतियों पर तुलसी रचित होने का आरोप लगाया जाता है किन्तु प्रामाणिक साक्ष्यों और विद्वानों के अभिमत के अनुसार केवल तेरह कृतियों को तुलसी द्वारा रचित माना गया है-

१. रामचरितमानस

२. विनयपत्रिका

३. गीतावली

४. कवितावली

५. कृष्णगीतावली

६. पार्वतीमंगल

७. जानकी मंगल

८. रामलला नहछू

६. दोहावली

१०. रामाज्ञा प्रश्न

११. वैराग्य-संदीपनी

१२. बरवै रामायण

१३. हनुमान बाहुक

डॉ० उदयभानु सिंह 'तुलसी सतसई' को **अर्द्ध प्रामाणिक रचना**[1] स्वीकारते हैं। इसमें दोहावली के लगभग सवा सौ दोहे मिलते हैं जो प्रामाणिक हैं, शेष दोहे संदिग्ध प्रतीत होते हैं क्योंकि उनमें बौद्धिक विलास की बहुलता है जो तुलसी की प्रवृत्ति के अनुकूल नहीं है। अनेक में सीता-भक्ति की भावना मिलती है जो तुलसी की भाववृत्ति से साम्य नहीं बिठा पाती अतः कृतित्व के अंतर्गत तुलसी की उपर्युक्त बारह कृतियों का संक्षिप्त विवेचन ही समीचीन प्रतीत होता है।

१. रामचरित मानस

तुलसी दास ने रामचरित मानस के रचना काल के विषय में स्पष्ट रूप से संकेत दिया है-

संवत सोरह सै इकतीसा। करउँ कथा हरि पद धरि सीसा।।

नौमी भौमवार मधुमासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा।।

जेहि दिन राम जनम श्रुति गावहिं। तीरथ सकल तहाँ चलि आवहिं।।

** ** ** **

विमल कथा कर कीन्ह अरंभा। सुनत नसाहिं काम मद दंभा।।[२]

उपर्युक्त संकेतानुसार मानस का शुभारम्भ चैत्र शुक्ला नवमी मंगलवार सं० १६३१ में हुआ। इस रचनाकाल के सम्बन्ध में विद्वानों में कतिपय भिन्नमत भी मिलते हैं। **डॉ० माताप्रसाद गुप्त के अनुसार- "भारतीय मान्यता है कि सूर्योदय के जो तिथि होती है वही मानी जाती है गणना से ज्ञात होता है कि सं० १६३१ चैत्र शुक्ला नवमी सूर्योदय के समय बुधवार को थी"।**[३] **महात्मा अंजनी नन्दशरण** का मत है- **"नवमी उस दिन भी थी और दूसरे दिन भी। पर दूसरे दिन उनके इष्ट हनुमान जी का दिन न मिलता, नवमी तो जरूर मिलती और अपने तीनों इष्टों का जन्म दिन मंगलवार होने से वह दिन उन्हें अति प्रिय अवश्य होना ही चाहिए, उसे वे क्यों हाथ से जाने देते। अतएव ग्रन्थ रचना के लिए मंगलवार के मध्यान्ह काल में नवमी पाकर ग्रन्थ रचा।"**[४] किन्तु "विमल कथा कर कीन्ह अरंभा" अर्द्धाली से स्पष्ट ध्वनित होता है कि कवि ने निर्देशित तिथि को ही मानस की रचना आरंभ की। एक और तथ्य यह कि कवि को अपने आराध्य के जन्मदिवस विषयक तिथि अवश्य याद होगी और इसीलिए यह निर्विवाद रूप से यह अभिमत माना जा सकता है कि रामचरित मानस का शुभारम्भ चैत्रशुक्ला नवमी मंगलवार सं० १६३१ को ही हुआ।

रामचरित मानस विश्व के उत्कृष्टतम महाकाव्यों में परिगणित किया जाता है। कतिपय समीक्षक महाकाव्य के शासत्रीय लक्षणों में किंचित न्यूनाधिक लक्षणों के आधार पर मानस के महाकाव्यत्व पर प्रश्नचिन्ह लगाते हैं किन्तु यह सर्वविदित तथ्य है कि कवि सीमा की परिधि से परे होता है। नूतन कल्पनाओं और मौलिक उद्भावनाओं से निरन्तर साहित्य को उत्कर्ष की ओर ले जाने का प्रयास करता है। साहित्य दर्पणकार ने महाकाव्यों के लक्षण तत्कालीन प्रचलित महाकाव्यों के आधार पर निर्धारित किए हैं अतः स्पष्ट है कि महाकाव्य के प्राचीन लक्षणों के आधार पर आधुनिक महाकाव्य का मूल्यांकन करना उपयुक्त नहीं है। यही तर्क रामचरितमानस पर भी लागू होता है-

डॉ० श्रीकृष्णलाल का अभिमत है- **काव्य रूप की दृष्टि से इसे पुराण काव्य कहना अधिक उपयुक्त है।**[५] **श्रीधर सिंह** ने मानसान्तर्गत चरितकाव्यों तथा पुराणों की विशेषताएं देखकर अपनी मान्यता यों व्यक्त की है- **"मानस चरित्रकाव्यों की शैली में लिखा गया एक पुराणकाव्य है... ....चरित्रकाव्य तथा पुराणकाव्य कहने से मानस के प्राणपक्ष और शरीरपक्ष, भावपक्ष और रूपपक्ष की जितनी स्पष्ट झलक प्राप्त हो सकती है, उतनी मात्र महाकाव्य कहने से नहीं"।**[६]

मेरी दृष्टि में रामचरित मानस को पौराणिक महाकाव्य मानना ही अधिक उपयुक्त हैं क्योंकि सामान्यतः चरित्रकाव्यों के नायक मानव होते हैं किन्तु मानस में निराकार अखिल भुवन नियन्ता, अद्वैत अविनाशी पर ब्रह्म के अवतार रूप राम की प्रतिष्ठा नायक के रूप में की गई है। चरितकाव्य **में नायक के जन्म से लेकर मृत्यु तक के सम्पूर्ण जीवन का अंकन किया जाता है किन्तु मानस में राम जन्म से लेकर केवल राज्याभिषेक तक का ही वर्णन किया गया है,** और सीता निर्वासन, लव-कुश जन्म, अश्वमेघ यज्ञ एवं राम और सीता के महाप्रयाण इत्यादि महत्वपूर्ण प्रसंगों को छोड़ दिया गया है।

सम्पूर्ण मानस में भक्ति रस का परिपाक मिलता है। मानस को केवल सात काण्डों या सोपानों में वर्गीकृत किया गया है जबकि चरितकाव्यों को अनेक सन्धियों में विभक्त किया जाता है। मानस की शैली चरित काव्यों से उत्कृष्ट कोटि की है, अतः यह निश्चित रूप से अनिवार्य हो जाता है कि मानस को चरितकाव्यों में परिगणित नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त पुराणों में ज्ञान के विविध रूपों तथा दार्शनिक सिद्धान्तों का विशद और विस्तृत विवेचन होता है। मानस में ज्ञान तथा दर्शन विषयक अंगों और सिद्धान्तों का समन्वित निरूपण मिलता है अतः इसे मात्र पुराण भी नहीं कहा जा सकता। **वस्तुतः मानस में चरितकाव्यों पुराणों एवं महाकाव्यों की प्रमुख विशिष्टताओं का समन्वित रूप परिलक्षित होता है इसलिए हम उसे पौराणिक महाकाव्य की संज्ञा से अभिहित कर सकते हैं।**

डॉ० शम्भूसिंह ने भारतीय एवं पाश्चात्य महाकाव्यों के अनुशीलन से महाकाव्य के निम्न आठ लक्षणों को प्रमुख महत्ता दी हैं- **वस्तु विन्यास अथवा सुसंगठित जीवन्त कथानक २. तीव्र प्रभावान्विति और गम्भीर रस व्यंजना ३. महत्वकार्य और जीवन का सम्पूर्ण विशद चित्र ४. महत् उद्देश्य, महत्प्रेरणा और महती काव्य प्रतिभा ५. गुरूत्व गांभीर्य और महत्व ६. गरिमामय उदात्त शैली ७. महाननायक ८. भाषा अलंकार विधान।** इन्हीं लक्षणों के आधार पर अब हम मानस का संक्षिप्त अनुशीलन करेंगे जिससे मानस के महाकाव्यत्व और काव्यगत वैशिष्ट्य दोनों का सम्यक विवेचन हो सके।

१. वस्तु विन्यास अथवा सुसंगठित जीवन्त कथानक

मानस का कथानक नानापुराण निगमागम सम्मत है। कवि ने इसका संकेत प्रस्तावना में ही दे दिया है। मानस की कथा का आधार वाल्मीकि रामायण, हनुमन्नाटक, आध्यात्म रामायण, प्रतिमा नाटक, रघुवंश, प्रसन्न राघव नाटक, उत्तररामचरित, महावीर चरित, अनर्धरामायण बाल रामाण और श्रीमद्भागवत पुराण आदि ग्रन्थों से ग्रहण किया गया है। तुलसी ने उपर्युक्त ग्रन्थों के मनन से सारतत्व को ग्रहण कर समन्वित रूप में प्रस्तुत कर मानस की प्राण प्रतिष्ठा की है। आवश्यक निर्माण सामग्री से नवीन और नूतन प्रासाद निर्माण उतना कठिन नहीं है जितना पुराने जीर्ण शीर्ण भवन को मौलिक और नवीन स्वरूप प्रदान करना। तुलसी की भक्तिमयी तूलिका के सरस संस्पर्श से रामकथा सामान्य और विशिष्ट दोनों वर्गों के मानस की प्रिय कथा बन गई है।

तुलसी में कवि मात्र की अपेक्षा भक्ति भाव अधिक मुखर है इसीलिए वे शास्त्रीय लक्षणों की अनिवार्यता के मोह में नहीं पड़े। सम्पूर्ण मानस में आराध्य राम के प्रति उनकी भक्ति भावना सर्वत्र अभिव्यंजित होती है। सात सोपानों की योजना के माध्यम से कवि ने मानस की सरस कथा को प्रस्तुत किया है। मानस में पताका और प्रकरी कथाएं भी निबद्ध हैं जो आधिकारक कथा (रामकथा) के विस्तार में सहायक हैं। **डा. शम्भुनाथ सिंह** ने मानस में पंच संधियों का निर्धारण किया है उनके अभिमतानुसार- **"धरा की अकुलाहट से देवों के जन्म लेने तक मुख संधि, कैकेयी के वर याचना से राम के चित्रकूट पहुँचने तक प्रतिमुख संधि, पंचवटी निवास से सीता हरण तक गर्भसन्धि,**

हनुमान-मिलन से लक्ष्मण की मूर्च्छा भंग होने तक विमर्शसन्धि तथा रावण वध से राम राज्य वर्णन तक निर्वहण संधि है।"[७] डॉ०उदयभानु सिंह इसे मान्यता न देकर अपना मत यों देते हैं- **"रामचरितमानस का वस्तु विन्यास पंच-संधिमय नाटक के ढाँचे पर नहीं किया गया है। उसके संविधानक में अनेक नाटकों की अर्थ-प्रकृतियाँ कार्यावस्थाएं और संधियां समाई हुईं हैं। कारण यह कि वह इतिहास-पुराण की शैली पर रचा गया महाकाव्य है।**[८] अभिप्राय यह है कि तुलसी का वस्तु विन्यास भक्तिभाव से मंडित है अतः शास्त्रीय लक्षणों का न्यूनाधिक होना स्वाभाविक है।

महाकाव्य के कथानक की कुशलता और सफलता गति और सन्तुलित अंकन पर आधारित होती है। मानस के कथानक में कार्यसिद्धि के कारण सम्बन्ध निर्वाह और गति का सहज रूप में सम्यक निर्वाह हुआ है। यद्यपि मानस की रचना नियोजित ढंग से नहीं की गई किन्तु कवि के सहज चातुर्य और कौशल ने कथा को इस तरह से गति प्रदान की है कि कहीं भी क्रमभंग का आरोप लगाया नहीं जा सकता।

जहाँ भी कवि का भक्त रूप मुखर होता है वहाँ कवि आध्यात्म और दार्शनिकता की ओर झुक जाता है और उपदेशवृत्ति को अपना लेता है। वाल्मीकि द्वारा राम के निवास स्थान के निर्देश के बहाने भक्त के गुणों और लक्षणों का प्रकाशन, लक्ष्मण की गुहराज से आध्यात्म विषयक चर्चा, नवधाभक्ति विषयक अवतरण, शिवाष्टक पाठ, राम द्वारा संत-असंत-लक्षण विषयक निरूपण आदि अनेक ऐसे अंश सामान्य रूप से मानस की गति में अवरोध उत्पन्न करने का आभास देते हैं किंतु कवि ने मानस की रचना समष्टि हित की है अतः भक्त जनों को इनमें विशिष्टानन्द की उपलब्धि होती है।

तुलसी ने मार्मिक स्थलों की अभिव्यंजना में पूर्ण कौशल का परिचय दिया है। **आचार्य शुक्ल के अभिमतानुसार प्रबन्धकार कवि की भावुकता का सबसे अधिक पता यह देखने से चलता है कि वह किसी आख्यान के अधिक मर्मस्पर्शी स्थलों को पहचान सका है या नहीं।**[९] तुलसी ने रामकथा के अन्तर्गत प्रत्येक मार्मिक स्थल का अंकन बहुत ही कौशल के साथ किया है। राम-विवाह, वनवास-गमन भरत की आत्मवेदना, चित्रकूट संगोष्ठी, सीता अन्वेषण तथा युद्ध का विशद चित्रण इत्यादि अनेक प्रसंग ऐसे हैं जिसमें कवि ने अपने कविरूप को पूर्णतः मुखर किया है और मार्मिक अभिव्यंजना की है। इनके अतिरिक्त कुछ प्रसंगों यथा चित्रकूट से भरत का और लंका से राम के प्रत्यावर्तन में कवि ने कथानुकूल गति में कुछ तीव्रता प्रदर्शित की है। कुछ ऐसे आख्यानों का जिनका मूल रामकथा से अभिन्न संबंध नहीं है उनको भी तुलसी ने संकेत रूप में संस्पर्श किया है। इस प्रकार मार्मिक स्थलों की संवेदनशील अभिव्यंजना तुलसी के प्रबन्ध और काव्य मर्मज्ञता की परिचायक है।

२. महान नायक तथा अन्य पात्र और चरित्र चित्रण

तुलसी ने मानस में नाना चरित्रों की योजना की है। मानस में पशु-पक्षी, मानव सुर और नागादि पात्रों की नियोजना मिलती है जो किसी न किसी रूप में नायक राम से सम्बन्ध रखते हैं आचार्य शुक्ल ने पात्रों को दो वर्गों में विभक्त किया है- **"आदर्श और सामान्य। आदर्श चित्रण**

के भीतर सात्विक और तामस दोनों आते हैं। राजस को हम सामान्य चित्रण के भीतर ले सकते हैं। इस दृष्टि से सीता, राम, भरत, हनुमान और रावण आदर्श चित्रण के भीतर आयेंगे तथा दशरथ, लक्ष्मण, विभीषण सुग्रीव, कैकेयी सामान्य चित्रण के भीतर।[१०]

तुलसी ने नायक के रूप में दो व्यक्तियों को समन्वित कर प्रस्तुत किया है। राम का प्रथम व्यक्तित्व ब्रह्म का है तथा दूसरा व्यक्तित्व दाशरथि नंदन का। ब्रह्म स्वयं मानव रूप में नाना प्रकार की लीलाएँ कर रहा है किन्तु कहीं लोग उसके दिव्य रूप को विस्मृत न कर उठें इस आशय को ध्यान में रख तुलसी ने अनेक स्थलों पर नायक के परमतत्व होने का आभास कराया है। मानव और परब्रह्म दोनों रूपों की समन्वित प्रतिष्ठा राम रूप में कर तुलसी ने दिव्यातिदिव्य नायक की कोटि में पहुँचा दिया है। **ब्रह्म रूप में राम सर्वज्ञ, अविनाशी नित्य, शाश्वत और सच्चिदानन्द रूप हैं। तुलसी के राम विराट् पुरुष हैं जिनके रोम-रोम में करोड़ों ब्रह्माण्ड निहित हैं, विधि हरि और शम्भु को नचाने वाले राम स्वयं ही शिव, ब्रह्मा और विष्णु के स्वरूप हैं। उन्ही अखिल भुवन नियन्ता ने विप्र धेनु सुर और सन्तों के कल्याण के लिए रामरूप धारण किया है।**[११]

ब्रह्म रूप में ही नारद, शबरी आदि को राम भक्ति का उपदेश देते हैं तथा वानर भालुओं को इसीलिये अपनी भक्ति का आदेश उन्हें अयोध्या से विदा करते समय देते हैं। सगुण भगवान के रूप में राम दीनबन्धु पतितपावन, भक्तवत्सल और मंगलमूर्ति हैं। तुलसी ने इसी रूप में राम की महिमा का बखान किया है।

तुलसी ने राम को धीरोदात्त नायक के रूप में चित्रित किया है। वे सौन्दर्य शील चरित्र और शक्ति की साक्षात प्रतिमूर्ति हैं। तुलसी ने उनके अनिवर्चनीय रूप का बखान किया है-

रूप सकहिं नहिं कहि श्रुति शेषा। सो जानै सपनेहु जेहि देखा।।

इसके अनन्तर भी तुलसी ने सर्वत्र राम के सौन्दर्य का अंकन किया है।

नील सरोरुह नीलमनि, नील नीर धर-स्याम।
लाजहिं तनु सोभा निरखि, कोटि-कोटि सतकाम।।[१२]

विनम्रता राम के प्रत्येक आचरण से झलकती है। हनुमान के प्रति वे यों कृतज्ञता ज्ञापन करते हैं-

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर मुनि नरतनुधारी।
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा।।[१३]

विमाता कैकेयी की आकांक्षा पूर्ति के लिए वे पिता का आदेश स्वीकार कर वन-गमन को उद्यत हो जाते हैं। आदर्श का इससे सुन्दर रूप और कहाँ दृष्टिगत हो सकता है? गुरु की सेवा में वे अपना परमधर्म समझते हैं। विश्वामित्र के आदेश से ही जनकपुर भ्रमण हेतु निकलते हैं। शयन से पहले गुरु के चरण दबाना, उनके पश्चात सोना और उनके पहले जागकर वे शिष्य का अनुकरणीय आदर्श स्थापित करते हैं। आदर्श पति के रूप में वे पत्नी का अपमान करने वाले जयन्त को एकाक्षी बना देते हैं तथा उसके हरणकर्त्ता रावण को वध करके उसके अपराध का दण्ड देते हैं। सम्पूर्ण मानस

में राम के नाना विधि आदर्श रूपों की अभिव्यंजना हुई है।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र की कुछ मानवोचित दुर्बलताएँ दिखाकर तुलसी ने उनके मानव रूप को सार्थकता प्रदान की है। जनक-वाटिका में वैदेही के प्रति आसक्ति का उपजना, शूर्पणखा को नाक-कान विहीन करने का आदेश देना अनौचित्य परक लगता है किन्तु यही दुर्बलताएँ राम को परम ब्रह्म के व्यक्तित्व से भिन्न कर मानव रूप में रूपायित करती हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण राम का व्यक्तित्व आदर्श और अनुकरणीय प्रतिमानों की प्रतिष्ठा करता है।

मानस में **रावण** प्रतिनायक के रूप में उभरा है। वह महान वीर है। उसने देव, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर नाग इत्यादि सब को जीत लिया है लेकिन साथ ही क्रूर, कामी और अहंकारी है। क्रूरता और धर्म-विरोधी होने के कारण ही यज्ञ-नागादि पर अंकुश लगा देता है। अहंकारी होने के कारण पवनपुत्र हनुमान द्वारा लंका दहन और अंगद के पाद रोपण के पश्चात भी अपने अहंकार को नहीं त्यागता। दुराग्रही होने के कारण ही वह सभी स्वजनों के समझाने पर भी अपना हठ नहीं त्यागता और अन्त तक संधि के लिए तैयार नहीं होता है इसी कारण यह विनाश को प्राप्त होता है। तुलसी ने नायक राम के अनुरूप ही रावण जैसे प्रतिनायक की प्रतिष्ठा कर अपने कौशल्य का प्रमाण दिया है।

अन्य पुरुष पात्रों में **भरत** का चरित्र सबसे अधिक निखरा है। वे भ्रातप्रेम के भव्य आदर्श की स्थापना करते हैं। उन्हें राम चरणानुराग के सिवा और कुछ भी अभीष्ट नहीं है

अरथ न धरम न काम रुचि, गति न चहउँ निरबान।
जनम-जनम रति राम-पद, यह बरदानु न आन।।[९४]

इसीलिए स्वयं को राम के राज्य-परित्याग और वनवास-गमन का कारण जान अपनी माँ के प्रति कठोर वचनों का प्रयोग कर बैठते हैं। राज्य-ग्रहण के आग्रह से उपजी स्वयं की वेदना को भरत यों अभिव्यक्त करते हैं

ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस, तेहि पुनि बीछी मार।
तेहि पिआइअ बारुनी, कहहु काह उपचार।।[९५]

वे राम से लौटने का बहुत आग्रह करते हैं और अन्त में हार कर उनकी चरण पादुकायें लेकर उस आशय से लौट आते हैं कि जब तक आपकी अवधि पूरी नहीं हो जाती, ये चरण-पादुकाएँ सिंहासन पर शोभित रहेंगी और मैं सेवक और आपके प्रतिनिधि की भाँति प्रजा के हितों का ध्यान रखूंगा। भरत के रूप में तुलसी ने आदर्श भाई का परम आदर्श स्थापित किया है जिसकी समता मिलना असंभव है। तुलसी, भारद्वाज ऋषि के माध्यम से भरत के चरित्र को अभिव्यक्ति देते हुए कहते हैं-

तुम्ह तौ भरत मोर मत एहू। धरें देह जनु राम सनेहू।।[९६]

लक्ष्मण के भ्रातृ-प्रेम में सेवक और दास्य भावना का अनुपम मिश्रण है। वे छाया के सदृश राम का अनुसरण भर करते हैं। लक्ष्मण स्वभाव से अत्यन्त क्रोधी हैं। विदेहराज की वीर विहीन मही की

घोषणा सुनकर वे रोष से फड़क उठते हैं। परशुराम द्वारा कटुवचन सुनाए जाने पर वे तुरन्त क्रोधित हो प्रत्युत्तर देते हैं इसी भाँति भरत के सेना सहित आने के समाचार से भैया राम के प्रति तनिक भी अनिष्ट की आशंका की कल्पना कर भरत के समूल नाश की प्रतिज्ञा उनके उग्र स्वभाव को स्पष्ट करती है। वे विनय के मार्ग को पसंद नहीं करते इसीलिए राम को समुद्र और सुग्रीव के प्रति कठोर व्यवहार करने का आग्रह करते हैं। **हनुमान** अतुलित बल के धाम, साहसी, वीर बुद्धिमान और कर्तव्यनिष्ठ सेवक हैं। राम के अनन्य भक्त होने पर भी उनकी आस्था वानरराज सुग्रीव के प्रति यथावत रहती है। **दशरथ** का चरित्र एक सामान्य राजा की भाँति ही है जो स्त्री के मोह जाल में फंसकर राम को वनगमन हेतु भेजना स्वीकार कर लेते हैं। **विभीषण** भी राम के परम भक्त हैं यद्यपि कतिपय मनीषी उसे राज्यद्रोही, कुलकलंकी और भ्रातृद्रोही की संज्ञा देते हैं किन्तु प्रकारान्तर से यह कहना ही उचित है कि उसने प्रजा-हित में अपमानित होने के उपरान्त ही राम की शरण ली। **बालि** का संक्षिप्त चरित्र उसकी विशिष्टता का द्योतक है। वह इतना वीर है कि स्वयं राम भी उसे छिपकर ही मार पाते हैं। **सुग्रीव** के रूप में सच्चे मित्र का चित्रण है यद्यपि वह प्रारंभ में राज्य और स्त्री के मद में चूर हो अपने कर्तव्य को विस्मृत कर देता है। इस प्रकार पुरुष चित्रण में तुलसी को पर्याप्त सफलता मिली है।

नारी पात्रों में प्रमुख **सीता** को तुलसी ने मानस की नायिका के रूप में प्रस्तुत किया है। नायक के अनुसार उनके चरित्र में भी दो व्यक्तित्वों का समन्वित रूप दृष्टिगत होता है। प्रथम ब्रह्म की माया का व्यक्तित्व और द्वितीय नायक राम की अर्द्धांगिनी का व्यक्तित्व। तुलसी ने सीता के नारी स्वरूप को प्रमुख तीनों रूपों (कुमारी, नववधू और गृहिणी) में चित्रित किया है। कवि ने तीनों रूपों में उनके निष्कलुष और अनिंद्य सौन्दर्य की छवियों को अभिव्यक्त किया है। सीता के रूप में तुलसी ने आदर्श नारी की अभिव्यंजना को व्यंजित कर सम्पूर्ण नारी जाति के लिए एक आदर्श की स्थापना की है। सीता के संबंध में **डॉ० शम्भुनाथ** अपना मत व्यक्त करते हुये कहते हैं- **"कुँआरी : कुलवधू पत्नी, गृहिणी, राजमहिषी, वियोगिनी, संयोगिनी सभी रूप में उन्हें मर्यादा का पालन करती हुई दिखाकर तुलसी ने नारी सम्बन्धी अपनी उच्चतम भावना को सीता के रूप में मूर्त कर दिया है।**[१७]

कैकेयी के चरित्र में प्रारम्भ में गरिमापूर्ण आदर्श नारी का रूप परिलक्षित होता है। वह राम के प्रति सहज भाव से पुत्र स्नेह रखती है और राम के अभिषेक के समाचार से प्रसन्न होती है किंतु बाद में मंथरा की बातों में फंसकर वह अपना कर्तव्य भूल जाती है और निज पुत्र की आसक्ति के कारण वह नारी के सबसे बड़े अभिशाप वैधव्य को सहर्ष स्वीकारने के लिए तत्पर हो जाती है। मंथरा का चरित्र स्वाभावानुकूल बन पड़ा है। **मंदोदरी** रावण की भार्या होकर भी उसके परम शत्रु राम के प्रति अनुराग भाव रखती है। एक ओर रावण को सचेत कर अपने आदर्श पत्नी के रूप की गरिमा को प्रकट करती है वहीं रावण के प्रति दुर्वचनों के प्रयोग और उसकी मृत्यु के उपरान्त **राम बिमुख भई अनुचित नाहीं** कहकर अपनी गरिमा को क्षीण कर लेती है। **कौशल्या** और **सुमित्रा** के

रूप में आदर्श माता और आदर्श पत्नी का रूप परिलक्षित होता है। अन्य नारी पात्रों का अंकन किंचित रूप में कुशलता से हुआ है।

इस प्रकार तुलसी ने मानस में पात्रों का चरित्र चित्रण कुशलता और सफलता के साथ किया है। चरित्र-चित्रण विषयक **डॉ० राजपति दीक्षित** का अभिमत समीचीन है- **तुलसी के महाकाव्य में जैसी आदर्श और उन्नायक चरित-कल्पना है वैसी न मिल्टन के 'पैराडाइज लास्ट' में है न स्पेंसर की क्वीन 'फेयरी क्वीन' में और न दांते की डिवाइना कमेडिया में।**[१८]

तीव्र प्रभावान्विति और गम्भीर रस व्यंजना

काव्य मर्मज्ञों के अनुसार '**महाकाव्य का अंगी रस श्रृंगार, वीर और शान्त में से कोई एक होना चाहिए तथा अन्य रस अंग रूप में होना चाहिए।**"[१९] इसलिए विद्वानों ने मानस का अंगीरस इनमें से किसी को सिद्ध करने का प्रयास किया है। कतिपय विद्वानों ने मानस का प्रमुख रस श्रृंगार को माना है और इस प्रकार तर्क देते हैं- १. मानस में श्रृंगार के दोनों पक्षों संयोग और वियोग का सम्यक निर्वाह हुआ है। २. मानस भक्तिपरक रचना है। "**भक्तिमार्ग में चाहे वह वात्सल्य, सख्य, माधुर्य या दास्य किसी भाव की उपासना का मार्ग हो, ब्रह्म के प्रति आकर्षण या रति का होना अनिवार्य है। अतः 'मानस' में जो प्रधान रस है, वह अलौकिक श्रृंगार रस ही है और इसी को गौड़ीय वैष्णव आलंकारिकों ने भक्ति रस कहा है।**[२०] किन्तु ये तर्क उचित नहीं प्रतीत होते क्योंकि मानस में श्रृंगार के उभयपक्षों का निर्वाह सम्यक रूप में हुआ है। संयोग का वर्णन अल्प मात्रा में हुआ है क्योंकि तुलसी ने अपने आराध्य का भक्ति भाव से वर्णन किया है और इसीलिए राम और सीता के वर्णन में तुलसी ने मर्यादित ढंग से अंकन किया है। मानस में अभिव्यंजित निष्काम भक्ति को भी अलौकिक श्रृंगार में परिगणित नहीं किया जा सकता। श्रृंगार का स्थायी भाव रति है इसलिये मानस में श्रृंगार रस को प्रमुख रस स्वीकार नहीं किया जा सकता।

इसी प्रकार कुछ विद्वान वीर रस तथा कुछ शान्त रस को प्रमुख मानते हैं लेकिन यह सर्वमान्य तथ्य है कि मानस में राम के प्रति अनन्य भक्ति की व्यंजना हुई है। अतः मानस में तुलसी ने केवल भक्ति रस को विशिष्ट महत्व प्रदान किया है और उसे स्थापित किया है। अंगी रस के रूप में भक्ति रस का ही प्रतिपादन तुलसी ने किया है इसके अलावा सभी नौ रसों का अद्भुत निर्वाह तुलसी ने किया है। इसका विस्तृत विवेचन अगले अध्यायों में अपेक्षित है।

महत्कार्य और जीवन का समग्र चित्र

मानस का महान कार्य राम-राज्य स्थापित करना है। इसी महान कार्य सम्पादन हेतु राम उत्तर से दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान करते हैं। प्रारम्भ में सुबाहु-ताड़का और मारीच का वध करना इसी महान कार्य की कड़ी है। वन-गमन के बहाने खर, दूषण, त्रिशिरा, कबंध आदि को मारकर जनस्थान को आतंक रहित करते हैं। सुग्रीव से मैत्री कर वानर भालुओं को संगठित करते हैं और उसके

अनन्तर सीता को हरण करने वाले आततायी रावण को मारकर त्रिभुवन को दानवी दुष्टता से मुक्त करते हैं और रामराज्य की अभिनव परिकल्पना को साकार करते हैं। मानस की रचना का आधार इसी रामराज्य की अनुपम कल्पना पर आधारित है।

तुलसी ने राम के जन्म से लेकर राज्यारोहण तक के जीवन का समग्र चित्र अंकित किया है। रामकथा का आधार लेकर जीवन की विषमताओं और प्रत्येक अवस्था का सम्पूर्ण चित्र तुलसी के काव्य में व्यंजित हुआ है। प्रत्येक सहृदय को अपनी शंकाओं का समाधान राम-चरित मानस में सुलभ है। तुलसी ने मानव के वैयक्तिक, परिवारिक, सामाजिक और राजनैतिक सम्बन्धों के आदर्श स्वरूप की अवधारणा को साकार रूप प्रदान किया है। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि तुलसी ने जीवन और जगत का कोई पहलू नहीं छोड़ा है। इस सम्बन्ध में **आचार्य शुक्ल** अपना अभिमत व्यक्त करते हुए कहते हैं- **''यहाँ यह कहा जा सकता है कि गोस्वामी जी मनुष्य की बहुत अधिक परिस्थितियों का जो सन्निवेश कर सके, वह रामचरित की विशेषता के कारण। इतने अधिक प्रकार की मानव दशाओं का सन्निवेश आप से आप हो गया। ठीक है पर उन सब दशाओं का यथातथ्य चित्रण बिना हृदय की विशालता, भाव प्रसार की शक्ति, मर्मस्पर्शी स्वरूपों की उद्भावना और शब्दशक्ति की सिद्धि के नहीं हो सकता।**[२१]

तुलसी ने पुत्र-जन्म, ग्रन्थि-बन्धन, राज्याभिषेक, सामूहिक त्यौहार, रीति-रिवाजों आदि सामाजिक क्रिया-कलापों, धार्मिक क्रिया-कलाप के अन्तर्गत नाना प्रकार के यज्ञादि और विभिन्न देवताओं की उपासना के चित्रण, सेना-प्रस्थान, सेतु बन्धन, अंगद का दूत विषयक चित्रण, युद्धादि राजनैतिक कलापों के अंकन तथा वस्तु वर्णन के अंतर्गत अयोध्या, जनकपुर, लंका, प्रयाग, चित्रकूट, रामेश्वर इत्यादि नगरों एवं राजभवन, रनिवास, शयनकक्ष, बाजार इत्यादि के विशद और व्यापक चित्रण के माध्यम से जीवन के बाह्य पक्ष का कुशलता से जहाँ उद्घाटन किया है वहीं मानवोचित क्रिया कलापों एवं समयोचित व्यवहारों का कुशलता से अंकन कर जीवन के आन्तरिक पक्ष का प्रकाशन कर जीवन के समग्र चित्र खींचने का अभिनव और सार्थक प्रयास किया है।

प्रकृति के विस्तृत वर्णन के अन्तर्गत तुलसी ने सूर्योदय, चन्द्रोदय प्रभात, सन्ध्या, निशा, और मध्यान्ह, कालों, ऋतु वर्णन के अन्तर्गत वर्षा, शरद और वसन्तादि का वर्णन, वन, उद्यान, सरोवर, उदधि तथा नदी आदि का विशद चित्रण मानसान्तर्गत किया है। प्रकृति का विविध रूपों में सम्यक अंकन तुलसी की अन्यतम विशेषता है। निष्कर्ष रूप में तुलसी ने जीवन और जगत के नाना रूपों का सम्यक उद्घाटन कर अभिव्यक्ति की सार्थक व्यंजना प्रस्तुत की है।

महान उद्देश्य, महान प्रेरणा और महती काव्य प्रतिभा

तुलसी ने मानस के महान उद्देश्य का संकेत **'स्वान्तः सुखाय'** और **स्वान्तस्तम शान्तये** कहकर दे दिया है। तुलसी निज भक्ति के माध्यम से सम्पूर्ण समष्टि को सियाराम से व्याप्त देखना चाहते हैं। इसकी प्रेरणा भी उन्हें स्वयं परम सत्ता अर्थात आराध्य राम से ही प्राप्त हुई है। इसकी

घोषणा वे स्वयं करते हैं-

जस कछु बल विवेक बुध मेरे। तस कहि हौं हिय हरि के प्रेरे।।[२२]

वे राम और शिव में भिन्नता नहीं मानते इसीलिये वे शिव को प्रेरक स्वीकारते हैं-

संभु प्रसाद सुमित हिय हुलसी। रामचरित मानस कवि तुलसी।।[२३]

तुलसी ने अपने कवि होने को नहीं स्वीकारा है और मानस को नाना पुराण निगमागम सम्मत बताया है लेकिन यह भी ध्यातव्य है कि नाना पुराणागमों और विविध ग्रन्थों के सार तत्व को ग्रहण कर समन्वित रूप में कुशल अभिव्यक्ति बिना प्रतिभा के असंभव है।

गुरुत्व, गांभीर्य और महत्व

मानस में आध्यात्मिक और जीवन के नाना रूपों के आदर्श की स्थापना हुई है। कवि ने मानस में प्रत्येक पक्ष के उत्कर्ष को प्राप्त कर उदात्त स्वरूप की नियोजना कर काव्य को गुरुता और विशिष्टता प्रदान की है। मानस में कवि ने मानस की सूक्ष्मातिसूक्ष्म और गूढ़तम अनुभूतियों को अभिव्यक्ति प्रदान की है जिससे तुलसी के मानस में गांभीर्य का आदर्श और उत्कृष्टतम स्वरूप परिलक्षित होता है। मानस में नाना चरित्रों के आदर्श रूपों की भव्य प्रतिष्ठा हुई है। भक्ति रस से मंडित होने के कारण ही गरिमापूर्ण चरित्रांकन हुआ है जिससे मानस का महत्व अति विशिष्टता के साथ परिलक्षित होता है।

मानस की जीवनी शक्ति और प्राणवत्ता का प्रमाण लोकमानस में उसके प्रसार से स्वतः स्पष्ट हो जाता है। आज भी मानस का पाठ प्रत्येक घर में बड़ी श्रद्धा के साथ किया जाता है। अलंकार योजना, भाषा शैली विधान व छन्द विधान मानस में उत्कृष्ट कोटि का है। चूँकि अगले अध्यायों में अनुभूति पक्षान्तर्गत इसका विस्तृत विवेचन अपेक्षित है अतः यहाँ केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि प्रत्येक दृष्टि से मानस में सरस और उत्कृष्ट अभिव्यक्ति परिलक्षित होती है। इस प्रकार की सौन्दर्य समन्वित अभिव्यक्ति और व्यंजना तुलसी के अलावा किसी अन्य रचनाकार की कृति में उपलब्ध नहीं होती है।

२. विनय पत्रिका

विनय पत्रिका के रचनाकाल के संबंध में विद्वानों ने अपने मताभिमत व्यक्त किए हैं। **डॉ० माताप्रसाद गुप्त** इसे राम-गीतावली मानते हुए कहते हैं- **फलतः यदि इससे हम यह परिणाम निकालें कि उक्त कथन कवि ने कम से कम साठ वर्ष की अवस्था से पूर्व न किया होगा, और सम्पादन 'रामगीतावली' का उसके बाद ही किसी समय, अनुमानतः ६९-७० वर्ष की अवस्था में अर्थात सं० १६५८ के लगभग किया होगा, तो कदाचित हम वास्तविकता से दूर न होंगे। राम गीतावली को 'विनयपत्रिका रूप कब मिला, यह कहना कठिन है।**[२४]

रामनरेश त्रिपाठी अपने विचार यों प्रकट करते हैं- **"इसकी रचना कवि की एक बैठक की**

नहीं जान पड़ती। सम्भव है सं० १६४० में इसके कुछ पद बने हों और फिर सबको मिलाकर सं० १६६६ के बाद पत्रिका पूर्ण कर दी गई हो। इसमें काशी की महामारी का संकेत नहीं है। इससे निश्चय ही यह संवत १६६६ के पहले बन चुकी थी..........मेरी राय में ''विनय पत्रिका को तुलसीदास के हाथ से सं० १६६८ के आस-पास वर्तमान रूप प्राप्त हुआ है।[२५]

डॉ० गुप्त का मत रामगीतावली विषयक है। विनयपत्रिका के बारे में उनका अभिमत स्पष्ट नहीं है। त्रिपाठी जी का मत भी समीचीन नहीं जान पड़ता क्योंकि वह आवश्यक नहीं है कि किसी रचना में यदि उस समय कोई दैवी प्रकोप रहा हो तो उसका उल्लेख हो ही। विनय पत्रिका तो विनय और दीनता का काव्य है इसलिए तुलसी ने उसमें आत्मवेदना के माध्यम से युग की दीनता और भक्ति के उत्कृष्टतम स्वरूप को स्थापित करने का प्रयास किय है। रचनाकाल विषयक डॉ० उदयभानु सिंह का अभिमत ही हमें उपयुक्त प्रतीत होता है- **'विनय-पत्रिका' का शिल्प-नैपुण्य इस बात का निश्चित प्रमाण है कि वह ''रामचरितमानस'' के पूर्व की कृति नहीं है। अतः उसकी पूर्व सीमा सं० १६३१ है। उसकी उत्तर सीमा सं० १६८० (कवि की मृत्यु) से कुछ समय पहले तक मानी जा सकती है। अतएव 'विनयपत्रिका के सम्पादन का कार्य अधिक से अधिक सं० १६७६ तक पूर्ण हो गया होगा।''**[२६]

काव्य रूप

''क्रान्ति दर्शी कवि कभी लक्षणग्रन्थों की बँधी-बँधाई सीमाओं में आबद्ध नहीं रहता। अतएव उसके काव्यों को उनकी कसौटी पर कसना समीचीन नहीं होता। वह स्वयं नवीन काव्य-रूपों का प्रणेता होता है। विनय पत्रिका भी नवीन काव्य रूप है, जिसे 'आत्माभिव्यंजक पत्र काव्य' कहना अधिक उपयुक्त है।''[२७]

विनय पत्रिका में प्रत्येक पद एक स्वतंत्र भाव की अभिव्यंजना करता है। मूल रूप से तुलसी ने विनयपत्रिका में आत्मवेदना की व्यंजना की है जिसमें स्वयं को दीन-हीन बताकर आराध्य राम को पतितपावन और शरणागत वत्सल स्वरूप मानकर भक्ति रूपी आश्रय प्रदान करने का वर्णन है। उनके आराध्य बड़े उदार और समष्टि की पीड़ाओं से मुक्ति दिलाने में सक्षम हैं इसीलिए विभिन्न प्रकार की नीतियों और युक्तियों के माध्यम से येन केन प्रकारेण अपनी शरण में लेने हेतु आग्रह किया गया है। तुलसी कभी स्वयं को अपनाने की प्रार्थना करते हैं तो कभी आराध्य के नाम का पुतला निकालने की धमकी भी दे डालते हैं, कभी अपने पापों की स्वीकारोक्ति कर उद्धार करने की प्रार्थना करते हैं तो कभी उनके नाम की नैया डुबोने की बात कहकर अपनी उददंडता प्रदर्शित करते हैं।

तुलसी ने सांसारिक मोह जालों में फंसे मन को रामभक्ति की ओर उन्मुख करने की सफल चेष्टा की है। दार्शनिक मान्यताओं यथा संसार की नश्वरता, माया-मोह और असत्यानुरक्ति की व्यंजना भी की है।

अभिप्राय यह है कि दास्य भावान्तर्गत प्रत्येक अवस्था का निदर्शन तुलसी ने विनयपत्रिका में

मनोयोग से किया है। आत्मवेदना के माध्यम से समस्त प्राणियों को कल्याणकारी मार्ग की ओर उन्मुख कराने का प्रयास ही कवि का अभीष्ट रहा है। इसी कारण विनयपत्रिका के १३९वें पद में कलियुगीन समाज की शोचनीय और दारुण स्थिति का सजीव चित्रात्मक अंकन किया गया है। मानव नाना प्रकार के भ्रम और मोह में ग्रसित रहता है इसलिए बिना राम की कृपा के उसकी मुक्ति संभव नहीं है। विनय पत्रिका में सर्वत्र यही भाव ध्वनित होता है।

यद्यपि विनयपत्रिका में सर्वत्र भक्ति रस की ही व्यंजना हुई है फिर भी कतिपय मनीषी इसे शान्ति रस का काव्य स्वीकारते हैं। **चन्द्र बली पाण्डेय** के अनुसार **''यह वास्तव में शान्त रस का ही ग्रन्थ है। उसमें सभी रस जहाँ-तहाँ दिखाई दे जाते हैं, किन्तु जो भाव आदि से अन्त तक बना रहता है, वह निर्वेद ही है, विनय में निर्वेद का राज्य है।**[२८] **रामदत्त भारद्वाज** का विचार है- **''विनयपत्रिका शान्त रस से परिपूर्ण है। इसका स्थायी भाव निर्वेद है जिसकी अनुभूति संसार की अनित्यता और मिथ्यात्व से होती है।**[२९] **दान बहादुर पाठक** भी इसी प्रकार का अभिमत देते हैं **''विनय पत्रिका में एक ही रस प्रधान है और वह है शान्त रस, जिसका स्थायी भाव निर्वेद है। सम्पूर्ण ग्रन्थ में निर्वेद की ही प्रमुखता है, अन्य जो भाव, यथा-प्रेम शोक, क्रोध, उत्साह और भय आदि जहाँ-तहाँ प्रयुक्त हुये हैं, वे सभी निर्वेद से प्रच्छन्न हैं और शान्तरस के संचारी बनकर आए हैं।**[३०]

भक्ति रस से पूर्ण मानने वालों में प्रमुख स्थान आचार्य शुक्ल का है। वे लिखते हैं- **भक्ति रस का पूर्ण परिपाक जैसा विनयपत्रिका में देखा जाता है, वैसा अन्यत्र नहीं। भक्ति में प्रेम के अतिरिक्त आलम्बन में महत्व और दैन्य का अनुभव परम आवश्यक अंश है। तुलसी के हृदय से इन दोनों अनुभावों के ऐसे निर्मल स्त्रोत निकले हैं, जिनके अवगाहन करने से मन की मैल कटती है और अत्यन्त पवित्र प्रफुल्लता आती है।**[३१] **वियोगी हरि** के अनुसार- **''विनय पत्रिका भक्ति कांड का परमोत्कृष्ट ग्रंथ है अनुराग महोदधि का एक दिव्य रत्न है। भक्तों के सरस हृदय का तो वह ग्रन्थ जीवन सर्वस्व है।...........समग्र ग्रन्थ ही भक्ति रस परिप्लुत है।**[३२]

चाहे अद्वैतवाद की अवधारणा की सम्पुष्टि हो चाहे ब्रह्म से साक्षात्कार विषयक वर्णन, सर्वत्र भक्ति भाव के कारण सर्वत्र केवल भक्ति रस की ही व्यंजना दृष्टिगत होती है। यथा अद्वैतवादी चिन्तन से पूरित एक चित्र दृष्टव्य है जिसमें मूल रूप से भक्ति भावना के कारण भक्ति रस का ही निदर्शन हुआ है।

जौ निज मन परिहरै विकारा।

तौ कत द्वैत-जनित संसृति-दुख संसय सोक अपारा।।
सत्रु मित्र मध्यस्थ तीनि ये मन कीन्हे बरिआई।
त्यागन गहन उपेच्छनीय, अहि, हाटक तृन की नाईं।।
विटप मध्य पुतरिका, सूत मँह कंचुकि बिनहिं बनाये।

मन मँह तथा लीन नाना तनु प्रकटत अवसर पाये।।
रघुपति-भक्ति-वारि छालित चित, बिनु प्रयास ही सूझै।
तुलसिदास कह चिद्-विलास जग बूझत-बूझत बूझै।।[33]

तुलसी राम के औदार्य को भली भाँति पहचानते हैं इसीलिए कहते हैं-

ऐसो को उदार जग माँही?
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर, राम सरिस कोउ नाहीं।।
जो गति जोरा-बिराग जतन करि नहिं पावत मुनि ज्ञानी।
सो गति देत गीध सबरी कँह प्रभु न बहुत जिय जानी।।
जो सम्पति दस सीस अरपि करि रावन सिव पहँ लीन्हीं।
सो सम्पदा विभीषण कहँ अति सकुच सहित हरि दीन्हीं।।
तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो।
तौ मनु राम, काम सब पूरन करहिं कृपा निधि तेरो।।[34]

इस प्रकार विनय पत्रिका का अंगी रस भक्ति रस ही है, दूसरा स्थान ही शान्त रस का है। इसके अलावा अन्य रसों का सर्वथा अभाव दृष्टिगत होता है। विनय पत्रिका की भाषा प्रवहमान और परिष्कृत ब्रजभाषा है। दार्शनिक तत्व चिन्तन के अलावा भाषा में सर्वत्र प्रसाद गुण की योजना व्यंजित होती है। विनय पत्रिका में नाना अलंकारों की छटा सहज रूप में देखने को मिलती है। गीतिशैली में विरचित आत्म-निवेदन की दीनता और सहज गांभीर्य को समेटे विनयपत्रिका एक उत्कृष्ट प्रगीत काव्य की अवधारणा स्पष्ट करती है। वस्तुतः मानस और विनय पत्रिका दोनों के समन्वित स्वरूप में तुलसी का संपूर्ण व्यक्तित्व देखा जा सकता है। मानस में तुलसी की दृष्टि लोकोन्मुखी रही है तथा विनयपत्रिका में तुलसी की अन्तर्प्रवृत्ति उभरी है किन्तु दोनों के तत्व चिन्तन में लोकमंगल की भावना ही ध्वनित हुई है। अतः यह स्पष्ट रूप से स्वीकारा जा सकता है कि विनय पत्रिका और मानस तुलसी की अति विशिष्ट और उत्कृष्टतम कृतियाँ हैं जिनसे तुलसी के अनुपम रचना विधान, मनोहारी कल्पना विधान और भक्ति रस में पगी तूलिका के कौशल का प्रमाण मिलता है।

३. कवितावली

कवितावली के रचना काल का निर्धारण इसलिए संभव नहीं है क्योंकि कवितावली में विभिन्न समयों में रचे हुए पदों को संग्रहीत कर लिया गया है। ये छन्द अलग-अलग भावभूमि को लेकर रामकथा के आधार पर ही रचे गये हैं। कवितावली में प्रारंभ से मृत्यु पूर्व तक के छन्दों का समावेश परिलक्षित होता है।

काव्यरूप

यद्यपि मानस की भाँति कवितावली को भी काण्डों में वर्गीकृत किया गया है। किन्तु उसमें मानस

के सहज प्रवाह की अपेक्षा असंतुलन दृष्टिगोचर होता है यथा अरण्यकाण्ड और किष्किंधा कांड के अंतर्गत केवल एक-एक छन्द को ही स्थान दिया गया है। उसमें भी सुन्दरकांड की ही एक घटना को किष्किंधाकांड में स्थान दे दिया गया है। प्रकारान्तर से किष्किंधाकांड का अस्तित्व ही नहीं उभरा है। उत्तरकाण्ड में नाना विषयों का चिन्तन किया गया है जो मानस के उत्तरकांड से कहीं मेल नही खाता। अन्य काण्डों में भी मानस सा सहज प्रवाह दृष्टिगत नहीं होता। प्रत्येक छन्द अपने पृथक अस्तित्व का बोध कराता है। राम के जीवन का समग्र चित्र कवितावली में दृष्टिगत नहीं होता वरन उनके जीवन की प्रमुख घटनाओं को कवि ने बिल्कुल ही छोड़ दिया है। निष्कर्ष रूप में केवल यह माना जा सकता है कि कवि ने राम के जीवन के कुछ चित्रों की अभिव्यक्ति स्वतन्त्र रूप से कर उन्हें काण्डों में निबद्ध कर दिया है।

कवितावली में किसी के भी चरित्र का सर्वांग अंकन नहीं मिलता है। नायक राम का चरित्र भी पूर्ण रूपेण नहीं उभरा है। लंकाकाण्ड और उत्तरकाण्ड में हनुमान के चरित्र में उदात्तता का समावेश अवश्य उपलब्ध होता है। कवितावली में किसी रस की प्रधानता नहीं है। सभी रसों का समावेश कवि ने यथोचित समयानुकूल और प्रसंगानुकूल किया है। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कवितावली को मुक्तक काव्य माना जा सकता है। **डॉ० उदयभानु सिंह ने मुक्तक काव्य के मान्य लक्षणों के आधार पर कवितावली का अनुशीलन प्रस्तुत किया है।**[३५] उनके अभिमतानुसार मुक्तक काव्य के निम्न छह प्रकार हैं-

१. **एक पद्यमय** - कवितावली में इस प्रकार के अधिकांश छन्द उपलब्ध होते हैं।

२. **युग्मक** - दो छन्दों के युग्मक भी कवितावली में उपलब्ध होते हैं। दृष्टव्य बालकाण्ड के छन्द १५-१६ **(वर-वधू का वर्णन)** अयोध्याकाण्ड के छन्द ३-४ **(सुमित्रा कौशल्या संवाद)** तथा छन्द २१-२२ **(ग्राम वधुओं का सीता से राम के परिचय विषयक प्रश्न और सीता का प्रत्युत्तर सहित भंगिमाओं का निरूपण)**

३. **विशेषक** - तीन छन्दों का समूह। दृष्टव्य **सुन्दरकाण्ड छन्द २० से २२ हनुमान द्वारा अग्नि विषयक मंत्रीरावण संवाद**

४. **कलापक** - चार छन्दों के समूह की योजना भी कवितावली में परिलक्षित होती है दृष्टव्य **बालकाण्ड छन्द १८ से २१ में परशुराम लक्ष्मण और विश्वामित्र संवाद।**

५. **कुलक** - पाँच या पाँच से अधिक छन्दों के समूह की योजना का निदर्शन कवितावली में उपलब्ध होता है - दृष्टव्य **लंकाकाण्ड के छन्द १० से १४ तक अंगद का कथन** तथा छन्द **१७ से २६ में मंदोदरी का रावण को सत्परामर्श**

६. **पर्यायबन्ध** -एक ही विषय के वर्णन में अनेक छन्दों की योजना भी कवितावली में स्पष्ट होती है- यथा **बालक्रीड़ा, लंकादहन, कलियुग और चित्रकूट आदि विषयक छन्द**

इस प्रकार हम कवितावली को मुक्तक काव्य के रूप में स्वीकार कर सकते हैं।

कवितावली को वस्तुतः राम के जीवन के खण्ड चित्रों की चित्रशाला माना जा सकता है जिसमें कवि ने अपनी सरस कल्पना के माध्यम से समाज, जीवन और जगत के मधुरिम चित्र संजोये हैं। **बालकाण्ड के अन्तर्गत** कवि ने बाल सुलभ कौतुक, आखेट-क्रीड़ा, वर-वधू रूप में राम-सीता के भव्य चित्र, परशुराम लक्ष्मण संवाद, विश्वामित्र द्वारा राम का परिचय और परशुराम के प्रस्थान विषय चित्रों को संजोया है। **अयोध्याकाण्ड के अन्तर्गत** रामवन गमन, केवट प्रसंग और वन जाते समय ग्रामवधुओं द्वारा सीता से प्रश्नोत्तर के सरस भावचित्रों की योजना की गई है। **अरण्यकांड** में एक ही छन्द है जिसमें मारीचि के वध का आभास मात्र मिलता है। **किष्किंधाकांड के अन्तर्गत** पवनपुत्र के लंका पहुँचने का वर्णन एक ही छन्द में किया गया है जो वस्तुतः सुन्दर कांड की ही घटना है। **सुन्दरकांड के अंतर्गत** कवि ने अशोक वाटिका का वर्णन किया है। तदनन्तर लंका दहन का व्यापक चित्र खींचा है और हनुमान के साथ वानर दल का श्री राम प्रभु के पास लौटने का मनोहर वर्णन है। **लंकाकाण्ड के अन्तर्गत** त्रिजटा-सीता-संवाद, सेतुबंध, अंगद का दूत भाव, मन्दोदरी का रावण को उचित परामर्श और युद्ध विषयक छन्द उपलब्ध होते हैं। अंतिम छन्द में राम के सिंहासनारूढ़ होने का अंकन है। इस प्रकार राम कथा का समापन कवि कर देता है। **उत्तर कांड** का रामकथा से विशिष्ट सम्बन्ध नहीं है। उत्तरकांड में राम की पतित पावनता, शरणागत वत्सलता का उल्लेख है। अनेक छन्दों में कवि का दार्शनिक चिन्तन भी उभरा है। पुनः आठ छप्पयों में राम के जीवन का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। कवि ने तीन छन्दों में भ्रमरगीत प्रसंग को भी स्थान दिया है जिसमें कृष्ण के प्रति प्रेम और कुबरी के प्रति व्यंग्य भाव देखा जा सकता है। उत्तरकांड में ही गंगा, काशी और चित्रकूट के साथ तीर्थराज प्रयाग का भव्य वर्णन है। पार्वती और अन्नपूर्णा की वंदना विषयक छंदों की योजना भी परिलक्षित होती है। इस प्रकार उत्तर कांड में विविधता के दर्शन होते हैं।

कवितावली में ब्रज और अवधी भाषा का प्रयोग हुआ है। मुहावरों और लोकोक्तियों के माध्यम से कवि ने अपूर्व अभिव्यंजना की सृष्टि की है। प्रसाद, ओज और माधुर्य तीनों गुणों का सम्यक निर्वाह और समावेश कवितावली में हुआ है। सर्वत्र अलंकारों की छटा परिलक्षित होती है। कवितावली में तत्कालीन सभी शैलियों के प्रयोग ने कवितावली को उत्कृष्ट बनाने में सहयोग दिया है। इस प्रकार कवितावली में कवि की प्रतिभा और कुशलता स्पष्ट परिलक्षित होती है।

४. गीतावली

गीतावली में व्यंजित सौष्ठव के आधार पर यह निष्कर्ष सहज रूप में निकाला जा सकता है कि गीतावली में तुलसी का कवि रूप उभरा है। विभिन्न विद्वानों ने इसके रचना काल के सम्बन्ध में मताभिमत व्यक्त किये हैं किन्तु **रचनाकाल विषयक डॉ० माताप्रसाद गुप्त का निर्धारण** उपयुक्त **लगता है वे इसका निर्धारण काल सं० १६६६ के बाद मानते हैं।**

वस्तुतः रामभक्ति का लोक मानस में प्रचार ही तुलसी का एकमात्र अभीष्ट रहा है। इसीलिए

तुलसी ने विभिन्न शैलियों में रामकथा का निरूपण किया है। तत्कालीन कृष्ण काव्य की लोकप्रियता को ध्यान में रखकर ही तुलसी ने शायद उसी शैली में गीतावली का प्रणयन किया है। संभवतः व्रजयात्रा के पश्चात ही गीतावली की रचना हुई।

काव्य रूप

गीतावली में राम के बाल जीवन का निरूपण तुलसी की अन्य कृतियों की अपेक्षा अधिक हुआ है अतः गीतावली पर सूर का प्रभाव नकारा नहीं जा सकता। गीतावली की योजना सात काण्डों में ही विभाजित है। बालकाण्ड के प्रारम्भ में बाल जीवन विषयक ४६ पद हैं जिनमें राम की बाल क्रीड़ाओं का मनोहारी वर्णन है। इसके बाद विश्वामित्र का आगमन, अहिल्या की मुक्ति, सीता स्वयंवर तथा राम के विवाह का विशद चित्रण है।

अयोध्याकांड के अंतर्गत वन गमन का मार्मिक अंकन किया गया है। चित्रकूट की निसर्ग सुषमा तथा राम-सीता के विहार वर्णन में कवि की अत्यधि वृत्ति रमी है। तदनन्तर कौशल्या की पीड़ा, दशरथ-मरण, भरत की आत्मवेदना, भरत का चित्रकूट प्रस्थान तथा भरत-राम विलाप की मार्मिक भावाभिव्यक्ति की गई है।

अरण्यकांड के अन्तर्गत मारीच-वध, सीता-हरण, जटायु-मरण, राम की विरह वेदना तथा शबरी मिलाप आदि घटनाओं के मनहर चित्र अंकित किए गये हैं।

किष्किंधा कांड के अंतर्गत केवल दो पदों की रचना तुलसी ने की है जिनमें सुग्रीव से सन्धि और सीता की खोज हेतु आदेश का अंकन किया गया है।

सुन्दरकांड में हनुमान के अशोक वाटिका में पहुँचकर मुद्रिका डालने का वर्णन है। इसके अतिरिक्त मुद्रिका-सीता संवाद, हनुमान-रावण भेंट, सीता के संदेश तथा विभीषण के राम की शरण में आने के चित्रों को संजोया गया है।

लंका काण्ड में रावण को मन्दोदरी द्वारा सत्परामर्श दिये जाने, अंगद के दौत्य रूप, लक्ष्मण शक्ति, हनुमान द्वारा संजीवनी लाने राम-विजय तथा राज्यारूढ़ विषयक प्रसंगों का निदर्शन किया गया है।

उत्तरकांड में राम के सौन्दर्य, हिंडोला वर्णन, वसन्त विहार, सीता-निष्कासन तथा लवकुश-जन्म के चित्रों की योजना मिलती है। अंतिम पद में राम कथा का पुनरावलोकन किया गया है। पुनरावलोकन में परशुराम-मद-भंजन, जयंत-प्रसंग, शूर्पणखा-प्रसंग, कबन्ध-वध, खरदूषण वध, बालि वध इत्यादि प्रसंगों का उल्लेख किया गया है किन्तु गीतावली में इन प्रसंगों का वर्णन स्वतन्त्र रूप से दृष्टिगत नहीं होता।

अतः यह स्पष्ट है कि गीतावली में रामकथा की योजना-श्रंखला छिन्न-भिन्न परिलक्षित होती है। मानस से भिन्न कई प्रसंगों का अंकन भी गीतावली में किया गया है। कोमल और मधुरिम अभिव्यक्ति की व्यंजना के कारण गीतावली को श्रेष्ठ गीतकाव्य माना जा सकता है। गीतावली में

यद्यपि कतिपय दोषों यथा राम-सीता की विलास-क्रीड़ा का प्रसंग, मुद्रिका से वार्तालाप का प्रसंग, चौगान-क्रीड़ा आदि का समावेश हो गया है जिसके कारण कुछ अस्वाभाविकता प्रतीत होती है किन्तु शिल्प वैविध्य और मनोरम कल्पना-विधान के माध्यम से सौन्दर्य की अनूठी अभिव्यंजना गीतावली में व्यंजित हुई है। कतिपय दोषों के अतिरिक्त सम्पूर्ण गीतावली तुलसी की विशिष्टतम कृतियों में ही परिगणित की जा सकती है।

गीतावली में तुलसी का सौन्दर्य बोध पर्याप्त उभर कर आया है। किसी भी प्रसंग का कोई अवसर कवि ने नहीं छोड़ा है जहाँ उसने सौन्दर्य भाव की व्यंजना न की हो। गीतावली में तुलसी ने कोमल भावों की सरस सर्जना कर अपनी सौन्दर्याभिव्यक्ति का सबल प्रमाण प्रस्तुत किया है।

गीतावली में वात्सल्य रस की प्रधानता है। ध्वन्यात्मक पदावली द्वारा व्यंजित वात्सल्य का निम्न चित्र मोहक और शिल्पगत कौशल का परिचायक है-

छोटी-छोटी गोड़ियाँ, अंगुरियाँ छबीली छोटी,
नख-जोति मोती मानों कमल-दलनि पर।
ललित आँगन खेलें, ठुमुक-ठुमुक चलें,
झुंझुंन-झुंझुंन पाँई पेंजनी मृदु-मुखर।।

वात्सल्य के अतिरिक्त श्रंगार रस की भरपूर व्यंजना गीतावली में हुई है क्योंकि सौन्दर्य बोध की सरस अभिव्यक्ति श्रंगार के माध्यम से अनूठे उत्कर्ष का संस्पर्श करती है। श्रंगार के अंतर्गत संयोग और वियोग के मधुर चित्र तुलसी ने अंकित किए हैं। अन्य रसों की अभिव्यक्ति भी गीतावली में तुलसी ने मनोयोग से की है। गीतावली में निसर्ग-सुषमा का अंकन भी उत्कृष्टता का परिचय देता है।

भाषा गीतिकाव्य के पूर्णतः अनुकूल प्रवाहमयी और माधुर्ययुक्त है। आलंकारिक सौन्दर्य और शैली, विधान की सरस नियोजना गीतावली में परिलक्षित होती है। गीतावली में कवि ने विषय, भाव और समयोचित विभिन्न रागों का समावेश किया है जिससे संगीतात्मकता का प्रभाव गीतावली के लालित्य को द्विगुणित कर देता है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि गीतावली 'तुलसी' की अनुपम अभिव्यक्ति है जिसमें उनका कवि रूप पूर्ण रूपेण निखरा है।

५. कृष्णगीतावली

कृष्ण गीतावली में कृष्ण से सम्बन्धित पदों का संग्रह किया गया है। इसके रचनाकाल का अनुमान ही केवल लगाया जा सकता है क्योंकि स्वयं कवि ने इसके बारे में कोई सूत्र नहीं दिया है। **बाबावेणीमाधवदास** के अनुसार इसकी रचना सं० १६२८ में की गई। **रामनरेश त्रिपाठी** इसका रचनाकाल सं० १६४३ और १६५० के मध्य स्वीकार करते हैं। **डॉ० माताप्रसाद गुप्त** उत्कृष्ट काव्य-सौष्ठव और उच्च शिल्प-विधान के आधार पर इसका प्रणयन काल सं० १६५८ के आस पास

मानते हैं जबकि **डॉ० उदयभानु सिंह** अपने तर्कों के आधार पर इसे सं० १६४३ और सं० १६६० के मध्य काल की रचना स्वीकारते हैं।

मेरे अभिमतानुसार तुलसी ने कृष्णगीतावली की रचना विशेष प्रभाव के कारण की है। व्रज-यात्रा के पश्चात कवि के सहृदय और भावुक मानस पर कृष्ण लीला का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। लोकमानस में व्याप्त और सूर सागर में व्यंजित कृष्ण की मधुर लीलाओं ने निश्चित ही तुलसी के अन्तर्मन में प्रेरणा उत्पन्न की होगी और उसी के फलस्वरूप ही कृष्णगीतावली का प्रणयन कवि ने किया होगा। अतः गीतावली की रचना और व्रजयात्रा के पश्चात ही कृष्णगीतावली का प्रणयन काल माना जा सकता है।

काव्य रूप

कृष्ण गीतावली के अन्तर्गत कुल ६१ पदों की रचना हुई है जिसमें कवि की वृत्ति कृष्ण की लीलाओं के चित्रण में रमी है। बाल क्रीड़ाओं से लेकर गोपी-उद्धव संवाद विषयक नाना प्रसंगों का अंकन स्वाभाविक रूप से किया गया है। इसमें बाल-क्रीड़ाओं के अन्तर्गत माखन-चोरी, ऊखल बंधन तथा गोपियों के उपालम्भों, बहलाने-फुसलाने की मनोरम अभिव्यक्ति हुई है। तदनन्तर कृष्ण गीतावली में इन्द्र-कोप, गोवर्धन-धारण, मथुरा-प्रस्थान, गोपियों के विरह, वंशी, उद्धव द्वारा गोपियों को ज्ञानोपदेश तथा विनय-विषयक प्रसंगों की उत्कृष्ट अभिव्यंजना परिलक्षित होती है।

कृष्ण गीतावली में प्रमुख रूप से वात्सल्य और श्रृंगार रसों का पूर्ण परिपाक मिलता है। वात्सल्य की उद्‌भावना में वे सूर से उन्नीस नहीं लगते हैं। प्रस्तुत है एक मनोहर चित्र जिसमें माँ यशोदा कृष्ण को माखन चोरी न करने हेतु प्रलोभन दे रही हैं-

छाँड़ो मेरे ललन, ललित लरकाई।
ऐहैं सुत, देखुवार कालि तेरे बबै, ब्याह की बात चलाई।
डरिहैं सासु-ससुर चोरी सुनि हँसिहैं नई दुलहिया सुहाई।।[३६]

बालक श्याम माता के दिये लालच में फंस जाते हैं और चोरी न करने की बात मान लेते हैं किन्तु अगले दिवस जब दुलहिन नहीं आई तो बड़े ही विकल होकर कहते हैं- **"भइ बड़ि बार, कालि तौ न आई।"** बालक के निश्छल हृदय का सरस और मार्मिक अभिव्यक्ति कवि के कल्पना विधान की उत्कृष्टता का संकेत देती है।

श्रंगार के दोनों पक्षों की मधुर व्यंजना कवि ने कृष्णगीतावली में की है किन्तु तुलसी ने श्रंगाररस की अभिव्यक्ति में मर्यादित दृष्टिकोण ही अपनाया है। ब्रजभाषा में रचित इस रचना में प्रसाद और माधुर्य गुण सर्वत्र परिलक्षित होते हैं। अर्थ की सम्यक अभिव्यक्ति के लिए कवि ने कहावतों और मुहावरों का भी प्रयोग किया है। अलंकारों के योग से कवि ने सौन्दर्य की अभिनव और सरस सृष्टि की है। मुख मण्डल के सौन्दर्य को रूपक, अनुप्रास और उत्प्रेक्षा की समन्वित योजना से व्यंजित करने वाला एक ललित चित्र प्रस्तुत है-

अरुन बनज लोचन कपोल सुन स्त्रुति मंडित-कुंडल अति सुन्दर।
मनहुँ सिंधु निज सुनहि मनावन पठए जुगल बसीठ बारिचर।।[37]

अलंकारों के प्रयोग से कवि ने गोपियों की विरह-वेदना को सार्थक अभिव्यक्ति प्रदान की है। कृष्ण गीतावली में कवि ने भाव और प्रसंगानुरूप विभिन्न रागों की योजना भी प्रस्तुत की है जो कृष्णगीतावली की उत्कृष्टता प्रदान करने में सहायक सिद्ध हुई है। रीतिकाव्य की सभी विशेषताएँ कृष्णगीतावली में स्पष्ट दृष्टिगत होती हैं। कृष्णगीतावली की कई पंक्तियों और पदों में सूरसागर से साम्यता झलकती है जो इस तथ्य का आभास देती हैं कि कृष्ण गीतावली का प्रणयन कवि ने सूरसागर से प्रभावित होकर ही किया है।

६. पार्वती मंगल

इस कृति के प्रणयन काल का उल्लेख तुलसी ने स्वयं निम्न पंक्तियों में किया है-

जय संवत फागुन सुदि पाँचै गुरु दिनु।
अस्विनि बिरचेउँ मंगल सनि छिनु-छिनु।।[38]

अर्थात फाल्गुन शुक्ला पंचमी गुरुवार के अश्विन नक्षत्र जय संवत १६४३ वि० में पार्वतीमंगल का प्रणयन हुआ। लगभग सभी विद्वान इसी रचनाकाल को ही उपयुक्त मानते हैं।

इस लघु खण्ड काव्य में शिव और पार्वती के परिणय का मधुर चित्रांकन है। लघु कलेवर होने के कारण इस खण्डकाव्य को सर्गों में वर्गीकृत नहीं किया गया। पार्वती के उदात्त चरित्र का आदर्श पार्वती मंगल में स्थापित किया गया है।

पार्वती को विवाह योग्य जानकर हिमवान अपने घर पधारे नारद से उपयुक्त वर हेतु परामर्श मांगते हैं। नारद उन्हें सलाह देते हैं कि कैलाशपति भगवान शिव ही पार्वती के लिये उपयुक्त वर हैं। नारद पार्वती को भी तपस्या करने की प्रेरणा देते हैं। पार्वती मनोयोग से घोर तपस्या करती हैं। इधर देवताओं के निर्देशानुसार कामदेव शिव की समाधि तोड़ने के लिये अपने नानायुधों पंचशरादि का प्रयोग करता है। उसके दुःस्साहस को देखकर शिवजी उसे भस्म कर देते हैं। उसकी पत्नी रति के विलाप से द्रवीभूत हो शंकर उसे पति-प्राप्ति का वरदान देकर अन्यत्र चले जाते हैं। पार्वती के अंतर में शिव के प्रति अनुराग हो चुका है और इसीलिये वे सूखे पत्तों को भी त्याग देती हैं इसीलिए उनका नाम अपर्णा भी है। पार्वती की तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मचारी के रूप में पार्वती की परीक्षा लेने पहुँचते हैं और अनेक प्रकार से उनके अभीष्ट शंकर की बुराई करते हैं। पार्वती अपने प्रिय की बुराई सुनते ही क्रोधित हो जाती है और ब्रह्मचारी रूप रखे स्वयं शिव को चले जाने के लिए कहती हैं। अपने प्रति पार्वती का इतना प्रबल अनुराग देखकर शिव प्रकट हो जाते हैं और उनकी आकांक्षा को पूर्ण करने के लिये सप्तर्षियों को हिमवान के यहाँ भेजते हैं। ऋषिगण हिमवान के यहाँ से लग्न पत्रिका लेकर भगवान शंकर को पूरी जानकारी देते हैं। तदनन्तर शिव जी अपने भूतगणादि सेवकों

के साथ बारात लेकर पहुँचते हैं जिसे देखकर पार्वती की जननी मैना अत्यन्त दुखित होती हैं। किन्तु हिमाचल के समझाने और कहने पर पार्वती और शिव का विवाह संपन्न होता है। विवाहोपरांत शंकर, पार्वती सहित अपने धाम कैलास लौट जाते हैं। पार्वतीमंगल में उपर्युक्त कथानक की सुन्दर और मर्मस्पर्शी व्यंजना परिलक्षित होती है। इसमें कवि ने विवाह विषयक लोकाचारों की विस्तृत और विशद अभिव्यंजना की है। संभवतः तुलसी ने इस कृति की रचना कुमार सम्भव के आधार पर की है।

पार्वती मंगल को मंगल काव्य या परिणय काव्य स्वीकार किया जा सकता है अतः इसका प्रमुख रस श्रंगार होना अनिवार्य है। विप्रलम्भ के माध्यम से पार्वती के पूर्वानुराग की अभिव्यक्ति प्रस्तुत है-

नीद न भूख पियास सरिस निसि बासरु।
नयन नीरु मुख नाम पुलक तनु हियँ हरु।।
कंद मूल फल असन, कबहुँ जल पवनहि।
सूखे बेल के पात खात दिन गवनहि।।[३९]

ब्रह्मचारी का रूप धारण किये शिव जी जब पार्वती के सम्मुख शंकरजी की निन्दा करते हैं तो वे क्रोधित हो उठती हैं। रौद्र रस के माध्यम से कवि ने उनके कुपित होने का अंकन किया है-

करन कटुक बचन बिसिष सम हिय हए।
अरुन नयन चढ़ि भृकुटि अधर फरकत भए।।
बोली फिर लखि सखिहि काँपु तन थर-थर।
आलि विदा करु बटुहि बेगि बड़ बरबर।।[४०]

इस लघु कलेवरी कृति में तुलसी ने सौन्दर्य के अनेक रम्य और मनोहर चित्र अंकित किए हैं। वैवाहिक लोकाचारों की सुन्दर व्यंजना का निदर्शन इस कृति में उपलब्ध होता है। प्रस्तुत है एक चित्र-

पूजे कुल गुर देव कलसु सिल सुभघरीं।
लावा होम बिधान बहुरि भाँवरि परी।।
बंदन बंदि ग्रंथि बिधि करि ध्रुव देखेउ।
भा विवाह सब कहहिं जनम कल पेखेउ।।[४१]

बारात के अंकन में तुलसी ने हास्य और वीभत्स की नियोजना के माध्यम से अनूठी अभिव्यक्ति की है। अवधी भाषा का प्रयोग इस कृति में तुलसी ने किया है इसमें सहज रूप से कई अलंकारो की अभिव्यक्ति मिलती है। शिव के सौन्दर्य के चित्र में रूपक और उत्प्रेक्षा की स्वाभाविक योजना परिलक्षित होती है।

संभु सरद राकेस नखत गन सुरगन।
जनु चकोर चहुँ ओर बिराजहि पुरजन।।[४२]

इस प्रकार १४८ अरुण और १६ हरिगीतिका छन्दों में सिमटी यह लघु कलेवरी कृति तुलसी

की सौन्दर्याभिव्यक्ति का अन्यतम सोपान मानी जा सकती है।

७. जानकी मंगल

तुलसी ने जानकी मंगल में अन्य कृतियों के समान प्रणयन काल को स्पष्ट उल्लेख न कर केवल संकेत मात्र दिया है-

सुभ दिन रच्यो स्वयम्बर मंगल दायक।
सुनत श्रवन हिय बसहिं सीय रघुनायक।।[४३]

श्री रामनरेश त्रिपाठी शुभ दिन का अर्थ रविवार स्वीकार कर अपना मत देते हैं- ''**पार्वतीमंगल के तीसरे** दिन अर्थात फाल्गुन **शुक्ला अष्टमी रविवार सं. १६४३ को हुई जो तुलसी जैसे प्रतिभाशाली** कवि के लिए कठिन भी नहीं।[४४] **डॉ० रामदत्त भारद्वाज त्रिपाठी** के मत का समर्थन करते हैं। अनेक अन्य विद्वान पार्वती मंगल से साम्य होने के कारण इसका प्रणयन काल पार्वती मंगल के उपरान्त सं० १६४३ ही स्वीकार करते हैं। मेरी दृष्टि में पार्वती मंगल और जानकी मंगल के रचना विधान और शिल्प विधान की समानता के कारण इसका प्रणयन काल लगभग सं० १६४३ ही मानना उपयुक्त है।

जानकी मंगल में कवि ने आद्या शक्ति वैदेही और मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम के मंगल परिणयोत्सव का मधुर चित्रण किया है। इसमें जनकपुर में स्वयंवर की तैयारी से लेकर विश्वामित्र के अयोध्या जाकर यज्ञादि धार्मिक क्रिया कलापों की निर्विध्नता के निमित्त राम-लक्ष्मण को लाने, धनुष यज्ञ के बहाने जनकपुर दिखाने, रंगभूमि में धनुष भंग करने, वैदेही द्वारा उन्हें वरमाला पहनाने, शतानन्द के लग्न पत्रिका व तिलकाचार हेतु अयोध्या जाने, विवाह-संस्कार तथा विवाहोपरान्त मार्ग में परशुराम से भेंट तथा अन्त में अयोध्या पहुँचने और वहाँ नाना प्रकार के उत्सवादि मनाने आदि रोचक और मधुर प्रसंगों का सजीव और भाव परक वर्णन नियोजित है। कवि ने जानकी मंगल के कथानक को मानस के चित्रण की अपेक्षा संक्षिप्त कर वर्णन किया है। इस कृति में तुलसी ने पुष्पवाटिका प्रसंग और लक्ष्मण क्रोध के प्रसंगों को छोड़ दिया है। परशुराम से भेंट भी अयोध्या जाते समय दिखाई है। इसके अतिरिक्त वैवाहिक लोकाचारों का सूक्ष्मातिसूक्ष्म वर्णन इस कृति में विस्तार के साथ किया गया है जो तुलसी की अभिव्यंजना कौशल की सार्थकता का सुललित परिचय देने में समर्थ है।

जानकी मंगल में प्रेम भाव की उदात्त अभिव्यंजना परिलक्षित होती है, देखिये एक चित्र-

राम दीख जब सीय सीय रघुनायक।
दोउ तन तकि तकि मयन सुधारत सायक।।[४५]

चूँकि कवि ने अपने आराध्य के परिणय-प्रसंग का चित्रण किया है अतः उन्होंने मर्यादित चित्र

ही खींचे हैं। आराध्य और उनकी पत्नी के सौन्दर्य का वर्णन कवि ने किया तो है पर उसमें कहीं भी विलास युक्त चित्रण न कर कवि ने अनुकूल, मर्यादित और शालीन अभिव्यक्ति को प्रमुखता दी है। सीता के अनिंद्य और अप्रतिम सौन्दर्य की अभिव्यक्ति मात्र एक छन्द में करना तुलसी की ही सामर्थ्य थी।

रूप रासि जेहि ओर सुभाय निहारइ।
नील-कमल-सर-श्रेनि मयन जनु डारइ।।[४६]

राम और लक्ष्मण के युगल रूप का मनोहर चित्रण इस कृति में हुआ है

विलकु ललित सर भ्रुकुटी काम कमानै।
श्रवन विभूषन रुचिर देखि मन मानै।।
नासा चिबुक कपोल अधर रद सुंदर।
बदन सरद बिधु निंदक सहज मनोहर।।[४७]

एक छन्द में राम और सीता दोनों के सौन्दर्य को कवि ने यों चित्रित किया है-

राम सीय बय समौ सुभाय सुहावन।
नृप जीवन छबि पुरइ चहत जनु आवन।।[४८]

इस प्रकार सर्वत्र तुलसी ने सौन्दर्य की अभिव्यक्ति कर जानकी मंगल को अनुपमेय विशिष्टता प्रदान की है। जानकी मंगल में कवि ने उत्प्रेक्षा के माध्यम से रम्यता की सरस योजना प्रस्तुत की है। ललित उत्प्रेक्षा के माध्यम से राम को वरमाला पहनाने का दृश्य कितना मनोहारी और सजीव है-

लसत ललित कर कमल माल पहिरावत।
काम फंद जनु चन्दहि बनज फँसावत।।[४९]

दृष्टान्त और काकुवक्रोक्ति की समन्वित योजना अभिव्यक्ति में जीवनी शक्ति फूंक देती है-

सो छवि जाइ न बरनि देखि मन मानै।
सुधा पान कर मूक कि स्वाद बखानै।।[५०]

जानकी मंगल में नानालंकारों का स्वाभाविक प्रयोग तुलसी के शिल्प वैविध्य को उद्घाटित करता है। जानकी मंगल में अवधी भाषा का प्रयोग हुआ है। संक्षिप्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि जानकी मंगल में कवि ने सौन्दर्य के मर्यादित चित्र खींचे हैं। भाषा, शैली अलंकारादि के समन्वित और सम्यक विधान ने इसे अप्रतिम बनाने में योग दिया है। वास्तव में जानकी मंगल कवि की सरस तूलिका की चारुता का निदर्शन करने वाली उदात्त प्रस्तुति है।

८. दोहावली

दोहावली में तुलसी विरचित समय-समय पर लिखे दोहों का संकलन किया गया है। दोहावली में कुल ५७३ दोहे संग्रहीत हैं जिनमें दो दोहे वैराग्य संदीपनी के पचासी दोहे मानस के तथा पैंतीस

दोहे रामाज्ञा प्रश्न के हैं। शेष ४५१ दोहे स्वतन्त्र रूप से रचे गए हैं। दोहावली के कुछ दोहों में तुलसी ने अपनी जरावस्था का चित्रण भी किया है। अतः इसका प्रणयन काल वैराग्य संदीपनी के प्रणयन काल सं० १६२६-२७ से लेकर सदगति पूर्व सं० १६८० तक मानना ही समीचीन है।

काव्य रूप

दोहावली को मुक्तक काव्य में परिगणित किया जाता है। इसमें कवि का दार्शनिक तत्व चिन्तन पूर्ण रूपेण उभरा है। तुलसी ने इसके अन्तर्गत भक्ति, ज्ञान वैराग्य, प्रेम, नीति और सदाचार विषयक दोहों का समावेश कर अपनी मानसानुभूतियों की अभिव्यक्ति की है। दोहावली में चातक प्रेम विषयक पैंतीस दोहों का वर्णन मिलता है। विषयों की विविधता का कुशल निदर्शन दोहावली में परिलक्षित होता है। तुलसी ने राम-महिमा, राम-प्रेम की महत्ता, रामविमुखता का कुफल, कल्याण प्राप्ति का उपाय, भक्ति का स्वरूप, शरणागति की महिमा, रामभक्त के लक्षण, शिव और राम के ऐक्य भाव, राम की बाललीला, राम की दयालुता, राम कथा का माहात्म्य, राम की भक्त-वत्सलता, राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुध्न कौशिल्या, सुमित्रा-सीतादि की महिमा, कैकेयी की कुटलता, काशी-महात्म्य, जीव की दशाओं का वर्णन, सगुण-निर्गुण की प्रामाणिकता, सन्तोष, माया, काम-क्रोध और लोभादि मोहों का वर्णन, अग्नि, समुद्र, स्त्री और काल की साम्यता, सज्जन-दुर्जन की भिन्नता, विवेक की आवश्यकता, कपट के लक्षण, क्षमा की महिमा, परमार्थ प्राप्ति के उपाय, विश्वास की गरिमा, हानिकारक तिथियों, शुभदर्शित वस्तुओं, वेद-महिमा, मूर्ख के लक्षण, कलियुग प्रभाव तथा भक्ति के श्रेष्ठत्व आदि आध्यात्मिक और सांसारिक विषयों कां वर्णन विशदता से किया है। इसके अतिरिक्त ज्योतिष के कतिपय नियमों का विवेचन भी दोहावली में मिलता है। राजनीति और लोकाचार विषयक दोहों के माध्यम से जीवन के कटु सत्यों का प्रकाशन तुलसी की लेखनी के वैविध्य को परिलक्षित करता है। कलियुग वर्णन के माध्यम से यथार्थ का आकलन कर तुलसी ने अपने श्रेष्ठतम को सिद्ध किया है। दोहावली में जीवन के प्रत्येक अंग और सत्य का उद्घाटन हुआ है जो तुलसी की लोकमंगल भावना का परिचायक है। दोहावली में यथार्थ और जीवन के प्रत्येक पक्ष को प्रकाशित करने वाले दोहों के चिन्तन और मनन से मानव भ्रमजाल से मुक्त होकर अपने जीवन को आदर्श और अनुकरणीय बना सकता है।

मुक्तक काव्य की सफलता भावों की कुशल अभिव्यक्ति में निहित होती है। दोहे जैसे लघु छन्द में उत्कृष्ट अभिव्यंजना की अभिव्यक्ति सरल नहीं है। इस दृष्टि से दोहावली को उत्कृष्ट रचनाओं में मान्यता दी जा संकती है क्योंकि तुलसी ने प्रत्येक दोहे में कल्पना और भावों की समाहार शक्ति के समन्वित रूप की अभिव्यक्ति की है। दोहावली ने भक्ति और शान्त रस की प्रमुखता दृष्टिगोचर होती है। तुलसी ने दोहे जैसे लघु छन्द में भी सूक्तियों की सरस नियोजना की है, भक्ति की अनन्यता विषयक एक दोहा अवलोकनीय है-

उष्णकाल अरु देहखिन भग पंथी तन ऊख।
चातक बतियाँ का रुचीं अन जल सींचे रूख।।[५१]

मृत्यु की अनवरतता तथा जीवन की क्षण भंगुरता विषयक दोहे में शान्त रस की सरस व्यंजना प्रस्तुत है-

तुलसी देखत अनुभवत, सुनत न समुझत नीच।
चपरि चपेटे देत नित केस गहें कर मीच।।[५२]

उत्तम, मध्यम और नीच व्यक्ति की प्रीति और बैर का निदर्शन करने वाला निम्न दोहा कितना सरस है?

उत्तम मध्यम नीच गति, पाहन सिकता पानि।
प्रीति परिच्छा तिहुन की बैर बितिक्रम जानि।।[५३]

रूपक नियोजना के माध्यम से कवि ने विविध भावों को परिलक्षित किया है-

बीज-राम गुनगन नयन-जल अंकुर-पुलकालि।
सुकृती-सुतन-सुखेत बर, बिलसत तुलसी सालि।।[५४]

सदपुरुषों की महिमा का उल्लेख निम्न दोहे में मिलता है-

कै निदरहुँ कै आदरहुँ, सिंप्पहिं स्वान सिआर।
हरष विषाद न केसरिहि कुंजर गंजनिहार।।[५५]

अलंकारों का सहज प्रयोग दोहावली की अन्यतम विशिष्टता का द्योतन करता है। उपमा के माध्यम से प्रजा पालन विषयक राज्यादर्श का सफल अंकन किया गया है-

बरषत हरषत लोग सब करषत लखै न कोइ।
तुलसी प्रजा सुभाग ते भूप भानु सो होइ।।[५६]

नीति विषयक दोहों में अलंकारों की सरस योजना का प्रत्यक्षीकरण किया जा सकता है। **संक्षेप में कहा जा सकता है कि दोहावली ब्रजभाषा की एक सफल प्रस्तुति है जिसमें भावाभिव्यक्ति की विविधता, अलंकारों की सरस योजना तथा दार्शनिक तत्व चिन्तन बड़ी ही कुशलता और स्वाभाविकता के साथ हुआ है जो कवि की अभिव्यक्ति के कौशल वैविध्य का परिचायक है।**

९. बरवै रामायण

कवि ने बरवै रामायण के रचना काल का न तो संकेत दिया है और न ही स्पष्ट उल्लेख किया है। बाबा वेणी माधव दास के अभिमत का अनेक विद्वानों ने समर्थन किया है। उन्होंने बरवैरामायण का प्रणयन काल सं० १६६९ माना है। **इसे संग्रह काव्य की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है इसमें कवि के आरम्भिक जीवन से लेकर वृद्धावस्था तक लिखे गये बरवै संग्रहीत हैं।**

काव्य रूप

तुलसी ने इसे भी यद्यपि काण्डों में वर्गीकृत किया है किन्तु वर्णन में अतारतम्यता और असंतुलन के कारण इसे न तो पूर्ण प्रबन्ध काव्य स्वीकारा जा सकता है और न मुक्तक काव्य। पूर्ण रूप से इसे किसी

काव्य रूप में परिभाषित भी नहीं किया जा सकता। बरवै रामायण में श्रृंगार रस का मधुर परिपाक दृष्टिगोचर होता है। सीता के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति में श्रंगार का मधुर निदर्शन मिलता है निम्न पंक्तियों में संयोग श्रृंगार की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति की मधुर व्यंजना परिलक्षित होती है-

उठी सखी हँसि मिस करि कहि मृदु बैन।

सिय रघुबर के भए उनीदे नैन।।[५७]

बरवै रामायण में संयोग श्रंगार की अपेक्षा वियोग श्रंगार की अभिव्यक्ति अधिक हुई है। इसमें कवि ने राम और सीता दोनों की विरह-वेदना का सम्यक और विशद चित्रण किया है। राम के विरह में व्याकुल सीता को चन्द्र ज्योत्स्ना भी दाहक प्रतीत होती है-

डहकनि है उजिअरिआ निसि नहिं धाम।

जगत जरत अस लागु मोहि बिनु राम।।[५८]

बरवै रामायण में भक्ति रस की भी सरस व्यंजना दृष्टिगोचर होती है-

नाम भरोस नाम बल नाम सनेहु।

जनम जनम रघुनन्दन तुलसिहि देहु।।

अन्य रसों का वर्णन इस कृति में अनुपलब्ध है। बरवै छन्द के अनुकूल अवधी भाषा का प्रयोग बरवै रामायण में हुआ है। बरवै रामायण में अलंकारों की सर्वत्र मनोहारी योजना मिलती है। सीता के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति में कवि ने अलंकारों की विविधता को स्पष्ट किया है यथा-

प्रतीप - **राख करहु रघुनन्दन जनि मन माँह।**

देखहु आपनि मूरति सिय की छाँह।।[५९]

तदगुण - **सिय तुव अंग रंग मिलि अधिक उदोत।**

हार बेल पहरावौं चम्पक होत।।[६०]

तुल्योगिता - **कनक सलाक कला ससि दीप सिखाउ।**

तारा सिय कँह लछिमन मोहि बताउ।।[६१]

बरवै रामायण में कवि की रीतिकालीन वृत्ति का परिचय मिलता है इसलिए विरह के अत्युक्ति परक चित्र इसमें उपलब्ध होते हैं-

अब जीवन कै है कपि आस न कोइ।

कनगुरिया कै मुँदरी कंकन होइ।।

इस संक्षिप्त अनुशीलन से निष्कर्ष निकलता है कि **तुलसी का कला विधान इस कृति में पूर्ण रूप से उभरा है। सर्वत्र रसाभिव्यक्ति और नानालंकारों की मधुरिम सृष्टि इसमें परिलक्षित होती है जो तुलसी के उत्कृष्ट कला शिल्पी होने का प्रमाण देती है।**

१०. रामाज्ञा प्रश्न

'रामाज्ञा प्रश्न' के प्रणयन काल का अनुमान निम्न दोहे के आधार पर लगाया गया है।

सगुन सत्य ससि नयन गुन अवधि अधिक नय बान।
होइ सुकल सुभ जासु जस प्रीति प्रतीत प्रमान।।

डॉ० माता प्रसाद अपना विचार देते हैं कि **'चन्द्रमा, नेत्र, गुण, नीति और वर्ण के आधिक्य की अवधि (समय) में यह सगुण (माला), जिसका सुयश यह है कि प्रीति, प्रतीति के अनुसार ही सुफल होती है, सत्य है। कविजन प्रयुक्त सांकेतिक शब्दावली में चन्द्रमा (१), नेत्र (२), गुण (६), नीति (४) और बाण (५) के लिये प्रयुक्त होते हैं, और नीति (४) और बाण (५) में अंतर १ का है, और कवि प्रथा के अनुसार इस प्रकार दी हुई तिथियाँ उल्टे क्रम से पढ़ी जाती हैं इसलिए उपर्युक्त दोहे से हमें कृति के लिए १६२१ की तिथि प्राप्त होती है, यह आसानी से जाना जा सकता है।''**[६२] **डॉ० श्यामसुंदर दास** एक हस्त लिखित प्रति के आधार पर सं० १६५५ इसका प्रणयन काल मानते हैं। **डॉ० रामदत्त भारद्वाज** भी माता प्रसाद गुप्त के मत से सहमति व्यक्त कर रचना काल सं०१६२१ ही मानते हैं। रामाज्ञा प्रश्न की भाषा और काव्य सौष्ठव के अनुशीलन से इसे कवि की प्रारम्भिक रचना ही माना जा सकता है। इसमें वैराग्य संदीपनी की अपेक्षा अधिक कुशलता के दर्शन होते हैं अतः डॉ० उदयभानु सिंह के मतानुसार इसका प्रणयन काल सं० १६२७-२८ मानना अधिक उपयुक्त है।

काव्य रूप

किंवदन्ती के अनुसार कवि ने रामाज्ञा प्रश्न की रचना अपने मित्र गंगाराम ज्योतिषी के हेतु की थी जिसमें शुभाशुभ शकुनों के ज्ञात करने के लिए विधियाँ दी गई हैं। रामाज्ञा प्रश्न में दोहा शैली में लिखे गये ३४३ छन्द हैं। पूरे कथा के लिये सात सर्गों की योजना की गई है। प्रथम तीन सर्गों में बालकाण्ड से लेकर किष्किंधा कांड तक की कथा निबद्ध है। चतुर्थ सर्ग से छठे सर्ग तक प्रकारान्तर से कथा फिर प्रारम्भ होती है जिसमें सीता के अग्निप्रवेश तक की कथा की योजना दृष्टिगत होती है। सातवें सर्ग में रामवन गमन के प्रसंग के साथ ही रामभक्ति विषयक चर्चा को अभिव्यक्ति मिली है। इस प्रकार जहाँ इस कृति में राम कथा का पुनरावलोकन है वहीं घटनाओं में असंतुलन भी स्पष्ट होता है।

इसलिए इसे स्फुट काव्य की संज्ञा दी जा सकती है। रामाज्ञा प्रश्न में मानस की कथा से भिन्नताएँ स्पष्ट परिलक्षित होती हैं जो निम्नांकित हैं-

१. विदेह राज़ शतानन्द के द्वारा दशरथ के पास बारात लाने का निमंत्रण प्रेषित करते हैं।

२. परशुराम और राम की भेंट बारात लौटते समय होती है।

३. गंगा पार के समय राम और केवट में कोई वार्तालाप नहीं होता।

४. चित्रकूट निवास के समय राम के पास मिथिलेश्वर जनक नहीं आते।

५. पुष्पवाटिका प्रसंग

६. अंगद का दौत्य कर्म

७. वैदेही की त्रिजटा से प्राणांत हेतु अग्नि-याचना

८. सेतुबंध के समय शिवलिंग की स्थापना आदि

ये प्रमुख घटनाएँ विषय निर्वाह की असमानता को स्पष्ट करती हैं। कुछ मानसेतर यथा सीता परित्याग, विप्र के मृत शिशु को जीवनदान, लवकुश-जन्मादि प्रसंगों का प्रभाव इस कृति में वाल्मीकीय प्रभाव को द्योतित करता है। ब्रजावधी भाषा में विरचित इस सामान्य रचना में आलंकारिक योजना का अभाव है। इसमें कहीं-कहीं अलंकारों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति भर लक्षित है। रूपक का एक रम्य चित्र देखें-

> गुनं विश्वास विचित्र मनि-सगुन मनोहर हारु।
> तुलसी रघुबर भगत उर, विलसत विमल विचारु।।

इस प्रकार इसे तुलसी की प्रारम्भिक कृति ही स्वीकारना समीचीन होगा।

११. रामलला नहछू

इस कृति के रचनाकाल के सम्बन्ध में काफी भिन्नताएँ मिलती हैं। डॉ० माता प्रसाद गुप्त १६६५ की हस्तालिखित प्रति के आधार पर अपनी मान्यता देते हैं- "कवि के जीवन काल की ही प्रति प्राप्त होने से यह मानना पड़ेगा कि यह हमारे ही कवि की कृति है। फिर भी यदि उसी की रचना है तो निस्संदेह उसकी प्रारंभिक कृति है, मध्यकालीन रचनाओं में तो सम्मिलित की ही नहीं जा सकती, और अंतिम रचनाओं में इसे स्थान देना कल्पनातीत होगा। यह तो कवि की बाल चेष्टा सी लगती है और निश्चय ही इसकी रचना मानस से अनुमानतः बीस वर्ष पूर्व अथवा रामाज्ञा प्रश्न से अनुमानतः दस वर्ष पूर्व हुई होगी।[६४]

डॉ० श्यामसुंदर दास इसकी रचना जानकी मंगल और पार्वती मंगल के समय की मानते हुए तर्क देते हैं- "गोसाईं जी ने इसे वास्तव में विवाह के समय के गंदे नहछुओं के स्थान पर गाने के लिए बनाया है। उनका मतलब रामविवाह से ही है। कथा-प्रसंग के पूर्वापर संबंध की रक्षा का ध्यान इसीलिए उसमें नहीं किया गया है।[६५]

सदगुरुशरण अवस्थी इसे कवि की सर्वप्रथम और सं० १६१६ की रचना मानते हैं।[६६] पं. रामनरेश त्रिपाठी इसका रचना काल सं० १६१५ के लगभग मानते हैं।[६७] डॉ० रामकुमार वर्मा कहते हैं- नहछू में न तो कवि का आयास ही है, न प्रयास ही। ऐसी स्थिति में या तो नहछू कवि के काव्य जीवन के प्रभात की रचना होनी चाहिए (मानस से बहुत पहले की) या ऐसी रचना जिसे कवि ने चलते फिरते बना दिया हो, जिसे लोग अश्लील गीतों के स्थान पर गा सकें।[६८] रामदत्त भारद्वाज के मतानुसार- मेरी विनीत सम्मति में 'नहछू' दोनों उक्त मंगलों के पीछे की रचना है

जबकि स्वयं, अथवा किसी की प्रार्थना पर गोस्वामी जी ने अवधी-भोजपुरी में भी अत्यन्त साधारण स्त्री-पुरुष समाज को घृणित गानों से रोकने के लिए एवं उनके मनोविनोद के लिए इसे लिखा होगा, जैसा कि डॉ० श्यामसुन्दर दास और डॉ० रामकुमार वर्मा भी समझते हैं। उसकी रचना सं० १६६५ के लगभग होनी चाहिए।[६९]

उपर्युक्त मताभिमत से स्पष्ट हो जाता है कि नहछू के रचना काल के सम्बन्ध में काफी भिन्नताएँ हैं। **मेरी दृष्टि में रचनाकाल के विवाद से उलझना समीचीन नहीं है। शिल्प और सौष्ठव की दृष्टि से इसे तुलसी की प्रारम्भिक कृतियों में ही परिगणित किया जाना चाहिए।**

काव्यरूप

रामलला नहछू में राम के नखच्छेद संस्कार का चित्रण है। नहछू के सम्बन्ध में भी विद्वानों में भिन्नताएँ मिलती हैं। कुछ विद्वान इसे यज्ञोपवीत के समय अयोध्या में सम्पन्न बताते हैं क्योंकि विवाह के समय राम अयोध्या में नहीं वरन मिथिला में थे। अन्य विद्वान इसे विवाह समय का स्वीकारते हैं क्योंकि वर्णित लोकाचार और संस्कारों के चित्रण से यह निश्चित हो जाता है कि यह नहछू वर्णन विवाह के समय का ही है। नहछू के अन्तर्गत दूलह, वर, मायन आदि शब्दों का स्पष्ट प्रयोग, नेग लेने वाली नारियों का चित्रण, परस्पर गाली, हास-परिहास का वर्णन तथा दशरथ की रसिकता की व्यंजना मुक्त भाव से अभिव्यंजित हुई है। विद्वानों ने नहछू विषयक कुछ आपत्तियाँ भी उठाई हैं यथा विवाह के समय राम की अयोध्या में उपस्थिति संभव नहीं है। अनैतिहासिक रूप से कौशिल्या की जिठानी का उल्लेख किया गया है-

कौसल्या की जेठि दीन्ह अनुसासन हो।
नहछू जाइ करावहु बैठि सिंहासन हो।।[७०]

नाइन के उपस्थित रहने के बावजूद नाइन को दोबारा बुलाने का औचित्य तर्क संगत नहीं लगता-

नैन बिसाल नउनियाँ भौं चमकावई हो।
देइ गारी रानिव सहि प्रमुदित गावइ हो।।[७१]

इसमें नाइन के उपस्थित कहने का संकेत है परन्तु १० वें सोहर में पुनः उसके बुलाये जाने का उल्लेख किया गया है-

नाउनि अति गुन खानि तौ बेगि बोलाइ हो।
करि सिंगार अति लोन तौ बिहँसत आइ हो।।
कनक चुनिन सों लसित हरनी लिये कर हो।
आनँद हिय न समाइ देखि रामहि बर हो।।[७२]

इन आपत्तियों का समाधान विद्वानों ने जेठी का अर्थ गुरुपत्नी अरुन्धती को मान कर किया है। प्रथम आपत्ति के कारण ही यज्ञोपवीत के समय का प्रश्न उठ खड़ा होता है किन्तु यदि विवेक

पूर्ण ढंग से मनन किया जाए तो इन आपत्तियों और समाधानों की आवश्यकता ही नहीं है क्योंकि आपत्तियाँ तो मानस के विषय में भी खोजी जा सकती है।

वस्तुतः तुलसी ने अश्लील गीतों पर रोक लगाने के उद्देश्य से पारम्परिक लोकगीत शैली में नहछू की रचना की है। वर्तमान में भी विवाह आदि अवसरों पर अश्लील गीतों का प्रचलन मिलता है जिनमें राम या शंकर के विवाह का ही वर्णन होता है। उनमें मात्र देवरानी-जिठानी ही नहीं वरन सौत के बारे में भी चित्रण पाया जाता है। नहीं तो कौन सी स्त्री ऐसी हो सकती है जिसे अपने पति के अन्य विवाह पर प्रसन्नता हो जबकि बधाया गाते हुए स्त्रियों को यह गाते हुए-

''आखिर बधायौ सहिब घर आयौ,
सौतिलि ने लीयौ भरि गोद।''

सहज रूप में सुना जा सकता है।

विवाहादि संस्कारों के समय अत्यन्त अश्लील गीतों और गालियों को गाने की परम्परा और मान्यता समाज में है अतः इसी अश्लीलत्व की विसंगति को दूर करने के लिए ही तुलसी ने शिष्ट रूप में नहछू के माध्यम से लोकगीतों की सृष्टि की है जो परिहास और सरसता से परिपूर्ण है। मूल बात यह है कि यह रचना सामान्य वर्ग के लिए रची गई है। राम दशरथादि के नामों का उपयोग कवि ने उसे विशिष्टता प्रदान करने के हेतु से किया है होगा यह निश्चित है। यह कृति विवाहोवसर पर गाने के लिए ही सृजित की गई है।

नहछू में अवधी भाषा का प्रयोग किया गया है। दशरथ की रसिकता और नाना जातीय नारियों की चेष्टाओं के कारण श्रंगार की सरस अभिव्यक्ति की व्यंजना हुई है। नहछू में वर्णित शृंगार को कतिपय विद्वान अश्लील की संज्ञा देकर असंगत ठहराते हैं किन्तु वास्तव में उनमें रसिकता की व्यंजना परिलक्षित होती है। विभिन्न जातीय नारियों के नखशिख तथा चेष्टाओं का एक सरस चित्र प्रस्तुत है-

कटि कै छीन बरिनियाँ छाता पानिहि हो।
चंद्र बदनि मृगलोचनि सब रस खानिहि हो।।[७३]

दशरथ की रसिकता के माध्यम से परकीया रति की व्यंजना दृष्टव्य है-

अहिरिनि हाथ पहेंड़ि सगुन लै आवइ हो।
उन रत जोबन देखि नृपति मन भावइ हो।।[७४]

माताप्रसाद गुप्त का कथन समीचीन प्रतीत होता है- **''असल में कवि स्वतः इन विविध दशरथादि रूपों में उपस्थित होकर इस यौवन और वासनापूर्ण 'कामिनी' समाज के संपर्क का कल्पित आनंद प्राप्त करने की चेष्टा कर रहा है।**[७५]

उपयुक्त मन्तव्य से यह स्पष्ट है कि नहछू के प्रणयन में कवि की मानसिक स्थिति क्या रही होगी? उपर्युक्त दिये गये उद्धरणों में हमें तो कोई अश्लीलता दृष्टिगत नहीं होती है। श्लीलता और अश्लीलता मानसिक स्थिति पर निर्भर करती है। काव्य विधान की दृष्टि से सोहर छन्द में रचित

रामलला नहछू को सामान्य स्तर की रचना अवश्य स्वीकारा जा सकता है क्योंकि इसमें जो रसिकता की भावना व्यंजित हुई है। वह तुलसी की अन्य रचनाओं में नहीं मिलती। इसे मात्र विवाह या पुत्र जन्मादि पर लोकभाषा अवधी में गीत गायन की दृष्टि से ही लिखा गया मानना ही अभीष्ट है।

१२. वैराग्य संदीपनी

इस कृति में भी कवि ने रचनाकाल विषयक न तो कोई उल्लेख किया है और न कोई स्पष्ट या अस्पष्ट संकेत दिया है। विद्वानों ने भाषा सौष्ठव और शैली विधान के अनुशीलनोपरान्त अनुमानित प्रणयन काल स्वीकारे हैं।

डॉ० श्यामसुन्दर दास इसका रचनाकाल सं० १६४० से पूर्व का मानते हैं।[७९] रामनरेश त्रिपाठी इसे तुलसी के वैराग्य उदयकाल अर्थात १६२० की रचना स्वीकारते हैं।[७७] डॉ० विनय कुमार जैन इसका प्रणयन काल १६२६ सिद्ध करते हैं[७८] तथा डॉ० उदयभानु सिंह इसका रचनाकाल सं. १६२६-२७ के लगभग स्वीकारते हैं।[७९] डॉ० माताप्रसाद गुप्त अपनी मान्यता यों देते हैं- "विषय निर्वाह और शैली की दृष्टि से वैराग्य संदीपनी और नहछू में विशेष अंतर नहीं है, इसलिए यदि हम इसे नहछू से तीन वर्ष बाद और 'रामाज्ञाप्रश्न' से सात वर्ष पूर्व की रचना मामें तो कदाचित असंगत न होगा। इस प्रकार, हम वैराग्य संदीपनी की रचना तिथि अनुमान से सं. १६१४ के लगभग मान सकते हैं।[८०] डॉ० रामकुमार वर्मा अपना अभिमत प्रकट करते हुए कहते हैं कि इतना मानने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती है कि 'वैराग्य संदीपनी' तुलसी दास की प्रारंभिक रचना होनी चाहिए क्योंकि काव्य की दृष्टि से वह विशेष प्रौढ़ नहीं है।[८१]

मेरा भी अभिमत कुछ ऐसा ही है कि काव्य सौष्ठव की दृष्टि से देखने पर नहछू और वैराग्य संदीपनी के शैली और छन्द विधान में बहुत साम्य परिलक्षित होता है अतः यह कहा जा सकता है कि नहछू की भाँति वैराग्य संदीपनी भी कवि के प्रारंभिक काल की कृति है। दूसरी बात यह कि नहछू में कामिनी विषयक प्रसंगों की अभिव्यक्ति अधिक श्रंगारिक ढंग से हुई है। कामिनी के प्रति कवि का झुकाव नहछू में स्पष्ट दृष्टिगत होता है किन्तु वैराग्य संदीपनी में कामिनी विषयक दृष्टिकोण में परिवर्तन परिलक्षित होता है। वही कामिनी उसे लकड़ी और पत्थर जैसी हृदय हीन दृष्टिगोचर होती है जैसा कि वैराग्य संदीपनी के निम्न दोहे से स्पष्ट होता है-

कंचन काँचहि सम गनै कामिनि काठ पखान।
तुलसी ऐसे संत जन पृथ्वी ब्रह्म समान।।
कंचन को मृतिका करि मानत। कामिनि काष्ठ सिलो पहिचानत।
तुलसी भूलि गयी रस एहा। ते जन प्रगट राम की देहा।।[८२]

उपर्युक्त उद्धरण से वृत्ति का अंतर स्पष्ट है जिससे यह सहज निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वैराग्य संदीपनी को कवि की प्रारंभिक रचनाओं में परिगणित किया जा सकता है और इसकी रचना कवि ने निश्चित रूप में नहछू के बाद की।

काव्य रूप

लघुकाय वैराग्य संदीपनी में कवि ने मात्र बासठ छन्दों को निबद्ध किया है। इसे चार भागों में कवि ने स्वयं विभाजित कर प्रथम भाग में वन्दना, द्वितीय में सन्त स्वभाव का चित्रण तृतीय में संत महिमा का उल्लेख और अंतिम चतुर्थ भाग में शांति-महिमा और संत लक्षण विवेचन की योजना निरूपित की है। किसी प्रकार के कथानक की नियोजना न होने से इसे मुक्तक काव्य माना जा सकता है।

कृति के नाम से कृति का उद्देश्य स्पष्ट संकेतित होता है। वैराग्य संदीपनी का उद्देश्य है वैराग्य भाव की अभिव्यक्ति और उसके माध्यम से शांति लाभ के मार्ग का निर्देश। वैराग्य की भावना की प्रमुखता के कारण इसका अंगी रस शान्त है। शान्त रस की व्यंजना के माध्यम से कवि ने साकार और निराकार के ऐक्य भाव की ओर संकेत किया है-

अज अद्वैत अनाम, अलख रूप गुन-रहित जो।
मायापति सोइ राम दास हेतु नर तन धर्‌यो।।[८३]

संत-महिमा, संत-लक्षण, संत-स्वभाव तथा शान्ति महिमा के कारण इस कृति में अनुकूल रसाभिव्यंजना परिलक्षित नहीं होती है फलतः यह मात्र नीति काव्य होकर रह गई है। ब्रजावधी भाषा में विरचित इस कृति में सम्यक अलंकार योजना भी उपलब्ध नहीं होती है। यत्र तत्र स्वाभाविक रूप से कुछ अलंकारों की सृष्टि स्वतः हो गई है यथा रूपक के माध्यम से अभिव्यक्ति की व्यंजना का एक चित्र प्रस्तुत है-

तुलसी यह तनु खेत है, मन-वच-कर्म-किसान।
पाप पुण्य द्वै बीज हैं बवै सो लुनै निदान।।[८४]

इस प्रकार उक्त विवेचन से इसे सामान्य कोटि की प्रारम्भिक कृति कहा जा सकता है।

१३. हनुमान बाहुक

अधिकतर प्राप्त प्रतियों में कवितावली के परिशिष्ट के अन्तर्गत हनुमान बाहुक उपलब्ध हुआ है। बाहुक के रचनाकाल के विषय में कवि ने स्वयं कोई उल्लेख नहीं किया है। फिर भी कतिपय विद्वानों ने इस सम्बन्ध में अपने मताभिमत प्रकट किये हैं- **रामनरेश त्रिपाठी** इसे कवितावली का परिशिष्टांश मानते हुये कहते हैं **इस संग्रह के छंदों की रचना सं० १६१० से कम से कम १६७१ तक हुई और यदि क्षेमकरी वाला छन्द सर्वथा तुलसीदास के अंतिम दिन का माना जाये तो इसका निर्माण काल सं० १६८० तक पहुँच जाता है।**[८५] **डॉ० रामकुमार वर्मा** बाहुक विषयक अपना मत मूल गोसाईं चरित के आधार पर देते हैं- **"यदि बाहुक में वर्णित बाहु पीड़ा से कवि की मृत्यु मानें तो यह उसकी अंतिम रचना है और इसका रचना काल १६८० है, और यदि उपर्युक्त घटना सही न भी हो तो यह रचना सं. १६६९ के लगभग की तो माननी ही चाहिए।"**[८६] इस प्रकार बाहुक का रचना काल विवादित ही मान कर हम इसके संक्षिप्त अनुशीलन का प्रयास करते हैं।

काव्य रूप

मान्यता है कि तुलसी के बाहुओं में वातव्याधि की भयंकर पीड़ा उत्पन्न हो गई थी। फोड़े और फुंसियों के कारण वेदना प्रबलतर होती जा रही थी। अनेक उपायों के पश्चात कवि ने अपनी पीड़ा निवृत्ति और वेदना के निवारण हेतु निराश होकर संकट मोचन हनुमान की वन्दना प्रारम्भ की और उनका गुणानुवाद ४४ छन्दों के माध्यम से किया। यही ४४ छन्द हनुमान बाहुक के नाम से प्रसिद्ध हैं। हनुमान जी की वंदना में तुलसी ने प्रमुख रूप से वीर रस की अभिव्यंजना की है-

पंचमुख-छमुख-भृगमुख्य भट-असुर-सुर, सर्व-सरि-सम समरत्थ सूरो।
बाँकुरो बीर बिरुदैत बिरुदावली बेद बंदी बदत पैज पूरो।।
जासु गुनगाथ रघुनाथ कह जासु बल बिपुल-जल-भरित जग-जलधि झूरो।
दुवन-दल-दमन को कौन तुलसीस है पवन को पूत रज पूत रूरो।।[८७]

तुलसी ने विभिन्न प्रकार से पवन पुत्र की स्तुति की है। प्रार्थना का विनययुत स्वरूप कवि की सहृदयता और भावुकता की विशालता का प्रकाशन करता है-

करुना निधान, बलबुद्धि के निधान मोद महिमा निधान, गुन-ज्ञान के निधान हौ।
बामदेव-रूप, भूप राम के सनेही, नाम लेत-देत अर्थ-धर्म काम निरबान हौ।
आपने प्रभाव सीतानाथ के सुभाव सील, लोक-बेद-बिधि के बिदुष हनुमान हौ।
मन की, बचन की, करम की तिहूँ प्रकार, तुलसी तिहारो तुम साहेब सुजान हौ।।[८८]

विभिन्न अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग बाहुक के सौन्दर्य की अभिवृद्धि ही करता है। उपमा का एक चित्र प्रस्तुत है-

सिंधुतरे, बड़े बीर दले खल, जारे हैं लंक से बंक मवासे।
तै रन-केहरि के हरि के बिदले अरि-कुंजर छैल छवा से।
तोसों समत्थ सुसाहेब सेइ सहै तुलसी दुख दोष दवा से।
बानर-बाज बढ़े खल-खेचर, लीजत क्यों न लपेटि लवा से।।[८९]

इस प्रकार कवि ने ब्रजामिश्रित अवधी में इस आत्म परक रचना की सर्जना की है। विनय और दीनता का काव्य होने के नाते न तुलसी की दृष्टि शिल्पगत सौष्ठव की ओर रही और न ही उन्होंने इसके लिए विशेष प्रयास किया। कवि होने के नाते स्वाभाविक रूप से नाना प्रकार के छंदों का प्रयोग इसमें मिलता है। इसी भाँति रसों तथा नानालंकारों का समावेश भी इस लघु कलेवरी कृति में परिलक्षित होता है। तुलसी का बाहु-पीड़ा से निवारण हेतु लिखा गया यह काव्य आत्मकाव्य के रूप में स्वीकारा जा सकता है। भक्त गण इसमें भी अपने तोष की सामग्री और भक्ति गत विनयादि भावों का दर्शन कर लेते हैं।

ख. काव्यशास्त्रीय एवं सौन्दर्य शास्त्रीय धारणाएँ

कोई सहृदय और संवेदनशील भावुक व्यक्ति ही कवि संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है क्योंकि भावाम्बुधि में गोते लगाए बिना आज तक कोई भी काव्यमुक्ताओं को प्राप्त न कर सका। **'कवि करोति काव्यानि रस जानाति पण्डिता'** उक्ति के अनुसार कवि काव्य का सृजन करता है किन्तु उसका सच्चा बोध सहृदय पाठक को ही हुआ करता है। ठीक उसी प्रकार जैसे किसी सुंदर वाटिका में खिले हुए विभिन्न सुन्दर पादपों से जो भिन्न-भिन्न वर्णों के पुष्पों से युक्त हैं, सुरभि तभी मिल सकती है, जब शीतल मन्द समीर का संचरण हो। काव्य हृदय का विषय है इसीलिए भावुक का प्रभावित होना स्वाभाविक है और यदि अतिशयोक्ति के रूप में कहा जाये तो काव्य ऐसा भी विषय है जो पाषाण हृदय को भी द्रवीभूत कर देता है।

तुलसी की काव्यशास्त्रीय धारणाओं को समझने के लिए सर्वप्रथम हमें यह जानना आवश्यक है कि गोस्वामी तुलसीदास किस कोटि के कवि थे। सुप्रसिद्ध काव्यशास्त्री **राजशेखर** ने 'काव्य-मीमांसा' में प्रतिभा व्युत्पत्तिमान कवियों के-**काव्यकवि, शास्त्रकवि** और **उभय कवि**-तीन प्रकार बताये हैं। जब हम तुलसी की रचनाओं के ऊपर विहंगम दृष्टिपात करते हैं तब उनकी रचनाओं में हमें कवि-कल्पना, भक्ति दर्शन, उक्तिवैचित्र्य और सिद्धान्त-प्रतिपादन का समन्वित स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार वे उभयकवि सिद्ध होते हैं। काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों के निदर्शन में उन्होंने यत्र-तत्र सर्वत्र एक आदर्श मानक को स्वीकार किया है। **मानस के एक रूपक में उन्होंने समन्वयवादी दृष्टि से काव्य के प्रतिपाद्य विषय और कविता की परम्परा आदि का सांकेतिक उल्लेख किया है। जिसमें रस, ध्वनि, वक्रोक्ति, गुण ध्वनि, अर्थ, वैचित्र्य, भाव, भाषा एवं वृत्ति आदि का सांकेतिक उल्लेख किया गया है।**[६०]

अपनी काव्यशास्त्रीय मान्यता का निरूपण कवि ने ग्रन्थ के **प्रारंभिक मंगलाचरण**[६१] में प्रस्तुत किया है। उन्होंने समूचे काव्य में पाँच तत्वों की रमणीय योजना की है। वे हैं-**वर्ण** अर्थात् भावानुकूल भाषा **अर्थ** अर्थात् वाच्य, लक्ष्य, व्यंग्य आदि, **रस** अर्थात नवरस एवं भक्ति, **छन्द** अर्थात भाव एवं परिस्थिति के अनुकूल शैली विधान और **मंगल** अर्थात कवि और रसज्ञ पाठक का पारस्परिक संबंध। इस प्रकार तुलसी के अनुसार काव्य की परिभाषा यह हुई-काव्य, शब्द और अर्थ से संयुक्त रसमयी छन्द में आबद्ध सत्यं, शिवमं, सुन्दरं से युक्त रचना है। **"छन्द का समावेश तुलसी ने युग-धर्म के अनुसार किया है। वे भाषा-कवि थे और उनके युग में हिन्दी कविता-पद्य में ही लिखी जाती थी। लक्ष्यरचना के आधार पर ही लक्षण का निरूपण किया जाता है। मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में छन्द कविता का आवश्यक तत्व माना जाता था।"**[६२]

युग-युगों से चली आ रही रामकथा का निरूपण करके जहाँ कवि ने अपने को कृतकृत्य किया वहाँ साथ ही साथ काव्य-कालिन्दी में समूचे जन समूह को भी निमज्जित किया। **उन्होंने अपने मानस को 'निबन्ध' कहा है तथा प्रत्येक सोपान को 'प्रबन्ध'।**[६३] मानस का प्रणेता होने के नाते तुलसी ने

स्वयं को **कवि**[९४] माना है। उनकी दृष्टि में कवि क्रान्तिदृष्टा एवं मन्त्रदृष्टा होता है। काव्यशास्त्रीय धारणाओं के अंतर्गत विद्वानों ने **काव्य पुरुष**[९५] की कल्पना की है। इसी को अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ काव्य-मीमांसा में राजेशखर ने प्रमुख महत्व दिया है। उनके द्वारा प्रस्तुत कथा के अनुसार काव्य पुरुष सरस्वती का पुत्र है। जन्म लेते ही उसने छन्दोमयी भाषा में अपनी माँ की प्रार्थना की जिससे प्रसन्न होकर सरस्वती ने कहा-**''छन्दोबद्ध वाणी के तुम प्रथम आविष्कारक हो अतः तुम प्रशंसनीय हो। शब्द और अर्थ तुम्हारे शरीर हैं, संस्कृत भाषा मुख है, प्राकृत भाषाएँ तुम्हारी भुजाएँ हैं। अपभ्रंश भाषा जंघा है, पैशाची चरण और मिश्र भाषाएँ वक्षस्थल हैं। तुम सम, प्रसन्न मधुर, उदार और ओजस्वी हो। तुम्हारी वाणी उत्कृष्ट है। रस तुम्हारी आत्मा है, छन्द तुम्हारे रोम है। प्रश्नोत्तर, पहेली, समस्या आदि तुम्हारे वाग्विनोद हैं। अनुप्रास, उपमा आदि तुम्हें अलंकृत करते हैं। संप्रति डॉ० रामदत्त भारद्वाज ने भी काव्य के आविर्भाव की चर्चा करते हुए वाणी मेघ उपशीर्षक के अन्तर्गत इसी प्रकार की एक कथा गढ़ी है।**[९६]

उपर्युक्त धारणाएँ तुलसी के काव्य पर पूर्ण रूपेण चरितार्थ होती हैं। तुलसी न केवल भारतीय परिवेश के कवि थे अपितु उन्हें समूचे विश्व प्रत्येक देश और काल का कवि कहा जा सकता है क्योंकि उनका काव्य विश्व का काव्य है, जहाँ मंगल का काव्य है। यही कारण है कि तुलसी के काव्य में एक ओर रमणीयता की मर्यादित धारा प्रवाहित होती है तो दूसरी ओर उदात्तता के क्षितिजों का संस्पर्श भी करती है। **उनका काव्य त्रैलोक्यपावनी भागीरथी के समान मंगल कारी है।**[९७] इतना ही नहीं तुलसी के काव्य को मंगल काव्य प्रमाणित करने के लिये एक पृथक शोध की आवश्यकता होगी। यथा-

मंगल करनि कालिमल हरनि, तुलसी कथा रघुनाथ की

तथा- सम्मुख भेक सिवार समाना। यहाँ न विषय कथा रस आना।।

उपर्युक्त उदाहरणों द्वारा तुलसी यही सिद्ध किया है कि जो कविता पाठक के चित्त को केवल विषय रस से प्रभावित करती है वह उच्चतम भूमि पर प्रतिष्ठित नहीं हो सकती और न ही श्लाध य। तुलसी ने सहज अभिव्यक्ति को श्रेष्ठ कविता स्वीकार नहीं किया। उनकी दृष्टि से सभी का मंगल करने वाली, उदात्त विचारों से अनुप्राणित, रसाभिव्यक्ति से संयुक्त एवं रमणीय वाणी से युक्त कविता ही श्रेष्ठ काव्य का पर्याय है।

प्रत्येक कवि ने अपने-अपने भावानुरूप काव्य को पुरुष अथवा नारी रूप में देखने का प्रयास किया है। पुरुष की अपेक्षा नारी को सौन्दर्य के चित्रण में प्रमुखता दी गई है, यही कारण है कि विश्व का काव्य नारी-भावनाओं से ओत-प्रोत है। **तुलसी ने भी सरस्वती को वाणी की अधिष्ठात्री देवी माना है और नारी को कविता का उपमान स्वीकार किया है।**[९८]

आचार्य विश्वनाथ ने काव्य को शब्दरूप में प्रतिष्ठित किया है जबकि भामह, कुंतक मम्मट आदि की भाँति तुलसी ने उसे शब्दार्थमय स्वीकार किया है यद्यपि उन्होंने **'काव्य-पुरुष'** अथवा **'कविता-कामिनी'** के शरीर अथवा आत्मा का स्पष्ट निर्देश कहीं नहीं किया है तथापि **अनेक उक्तियों**

में दोनों का (शब्द और अर्थ) साथ-साथ उल्लेख करके इस मान्यता की अभिव्यंजना की है।[९९] सुप्रसिद्ध वैयाकरणों ने जिनमें आचार्य पतंजलि प्रमुख हैं, शब्द और अर्थ में नित्य संबंध स्वीकार किया है। अद्वैतवादी व्याकरण दर्शन में अर्थ भाव को शब्द का विवर्त्त माना गया है। जगत को रामरूप और राम को विश्वरूप मानने वाले तुलसी ने जगत के दृश्यमान अनुभूत रूप को मिथ्या माना है। **'विनयपत्रिका'** में राम को वाच्य वाचक रूप कहकर उन्होंने सत्य तथ्य व्यक्त किया है। **महाकवि कालिदास ने वाणी और अर्थ की संपृक्तता स्वीकार की है जबकि तुलसी ने भेदाभेद माना है।**[१००]

यद्यपि भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य की आत्मा के सम्बन्ध में अनेक मताभिमत हैं। कोई ध्वनि को काव्य की आत्मा स्वीकार करता है तो कोई वक्रोक्ति को। कोई औचित्य को तो कोई औदात्य को किंतु इन सबका स्वर **'रस ही काव्य की आत्मा है'** में विलीन हो जाता है। तुलसी समन्वयवादी होते हुए मुख्यतया रसवादी कवि हैं। उनके सौन्दर्य का क्षितिज विस्तृत एवं विशाल है। यही कारण है कि उनके काव्य में कहीं भी अश्लीलता के दर्शन नहीं होते। कविता-कामिनी के अनिंद्य सौन्दर्य की प्रतिष्ठा उन्होंने अवश्य की है किंतु वे निर्दोष सौन्दर्य को ही प्रधानता देते हैं। यही अकलुष सौन्दर्य क्रमानुसार उदात्तता को प्राप्त होता हुआ दिव्यता की परिधि में विलीन हो जाता है। प्रकारान्तर से तुलसी ने भी रस को काव्य का प्रमुख अंग स्वीकार किया है। उनकी दृष्टि में भी काव्यानन्द, ब्रह्मानन्द के समकक्ष है। भारतीय काव्य शास्त्र में शान्त, श्रृंगार, वीर, करुण, अदभुत, हास्य, रौद्र, भयानक एवं वीभत्स इन नौ रसों की ही परिकल्पना की गई है जबकि तुलसी ने अपने काव्य में भक्ति रस और वात्सल्य रस का भी निरूपण किया है। यद्यपि उन्हें वात्सल्य रस में उतनी सफलता नहीं मिली जितनी कि सूर को। **तुलसी ने भक्ति रस को विशेष रस के रूप में मान्यता प्रदान की है।**[१०१]

अब प्रश्न उठता है कि कवि काव्य का सृजन क्यों करता है, तथा काव्य प्रयोजन क्या होते हैं। प्राचीन काव्यशास्त्रियों के मतानुसार प्रयोजन से तात्पर्य उन उपलब्धियों से है जो किसी कार्य द्वारा प्राप्त होती हैं। सृष्टि में प्रत्येक कार्य का कारण होता है, हेतु होता है, प्रयोजन होता है, फिर भला काव्य इससे परे कैसे रह सकता है? काव्य प्रणयन में भी कवि के कुछ उद्देश्य होते हैं। उन्हें ही काव्य-प्रयोजन की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। **'नाट्य शास्त्र' प्रणेता आचार्य भरत मुनि ने काव्य को दुख, शोक तथा थकान से पीड़ित मानव को शांति देने वाला, लोकोपदेशक, धर्म, यश एवं आयुष्य प्रदान करने वाला तथा मानवों की बुद्धि को तीव्र करने वाला माना है।**[१०२] परिवर्ती आचार्यों ने इसी आधार पर काव्य-प्रयोजनों का निरूपण किया है। **आचार्य भामह ने पुरुषार्थ चतुष्टय, कीर्ति एवं आनंद को काव्य का प्रयोजन स्वीकार किया है।**[१०३] आचार्य वामन ने काव्य प्रयोजनों का उद्देश्यों केवल आनंद और कीर्ति ही स्वीकार किया है-यथा

काव्य सदृष्टा दृष्टार्थ प्रीति कीर्ति हेतु त्वात।

इसी प्रकार कुंतक ने भी काव्य प्रयोजनों का उल्लेख किया है किंतु सर्वाधिक चर्चित **आचार्य मम्मट के छह काव्य प्रयोजन ही आज सर्वाधिक प्रचलित हैं। वे हैं** यशः प्राप्ति, अर्थ प्राप्ति, व्यवहार

परिज्ञान, अनिष्ट निवारण, अलौकिक आनंदानुभूति एवं कान्तासम्मित उपदेश।[१०४] इन सभी प्रयोजनों को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम है यश आदि कवि निष्ठ प्रयोजन तथा दूसरा है व्यवहार ज्ञान, सद्यः परनिवृत्ति आदि भावक निष्ठ प्रयोजन। **तुलसी ने इन दोनों ही प्रकार के प्रयोजनों का उपस्थापन किया है और दोनों के ही केन्द्रबिन्दु से स्वान्तः सुख काव्य का 'मूल प्रयोजन' माना है।**[१०५]

तुलसी ने अर्थ काम और यश की ऐष्णाओं को मोह मूलक तथा नश्वर समझकर अपना साध्य नहीं माना। **"यश कामना उदात्त मानव की सबसे बड़ी कमजोरी है।"**[१०६] जीवन दृष्टि के परिवर्तन के साथ आज काव्य के प्रयोजनों में भी परिवर्तन आना स्वाभाविक है। उदात्त काव्य के दो प्रमुख प्रयोजन माने जा सकते हैं- प्रथम लोकोत्तरानन्द की प्राप्ति और दूसरा चेतना का परिष्कार एवं जीवन मूल्यों की स्थापना। काव्य मानव को 'निज' और 'पर' की चेतना से मुक्त शुद्ध रागात्मक धरातल पर प्रतिष्ठित कर देता है। इसका परिणाम यह होता है कि कुछ समय के लिये मनुष्य संघर्षमय जीवन से मुक्ति पाकर आनंद लोक का विचरण कर उठता है। यह आनंदोपलब्धि ही काव्य का प्रमुख प्रयोजन है। इसके अतिरिक्त काव्य चेतना का परिष्कार लोग मंगल का विधायक होता है। वह जीवन में नैतिकता का समावेश करता है। नीतिवक्ता किसी बात को प्रत्यक्ष कहता है जबकि कवि कल्पना के आधार पर निर्मित कथा से पाठक को रस सिक्त करके उसके अन्तःकरण में अव्यक्त रूप से उसके उपदेश का समावेश कर देता है। उक्त दोनों प्रयोजन सहृदय की दृष्टि से रखे गये हैं। काव्य प्रणयन के उपरान्त कवि भी सहृदय की कोटि में आ जाता है अतएव उसे भी आनंदोपलब्धि होना स्वाभाविक है।

कवि की दृष्टि से उदात्त काव्य का प्रयोजन कीर्ति ही माना जा सकता है। कीर्ति ही एक ऐसा तत्व है। जिसकी अभिलाषा जीवन्मुक्त आत्माओं के छोड़कर प्रत्येक सामाजिक प्राणी को होती है। कवि भी इसका अपवाद नहीं है। यद्यपि तुलसी में कीर्ति अति प्रच्छन्न रूप में परिलक्षित होती है **'जो प्रबंध नहिं बुध आदरहीं। अतः अक्षय कीर्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से कविगण रस-सिद्ध काव्य की रचना में प्रवृत्त होते हैं।**[१०७] तुलसी के काव्य का मूल प्रयोजन राम के गुणों का गायन और प्रकाशन है। **'कबि न होउँ नहिं चतुर कहाऊँ'** उनका यह प्रयोजन आत्मानन्द प्रद ही कहा जायेगा।' **स्वान्तः सुखाय रघुनाथ गाथा'** तुलसी का यह स्वान्तः सुख असीम माना जा सकता है। इससे कवि ही नहीं, पाठक को भी 'आनन्द' की प्राप्ति होती है। यह आनन्द 'स्व' तथा पर के संकीर्ण बन्धनों से मुक्त कहा जा सकता है। तुलसी का **'स्वान्तः सुख'** पर कल्याण का भी साधक है-

कीरति भनिति भूति भल सोई। सुरसरि सम सबकर हित होई।।

भक्त दार्शनिक और सहृदय कवि होने के कारण तुलसी ने जहाँ अन्य काव्य प्रयोजनों का आश्रय लिया वहाँ एक और प्रयोजन भी मानस के अन्त में निरूपित किया है। उसे अज्ञान विभंजन कहा जा सकता है-

मत्वा तद्रघुनाथनाम निरतं स्वान्तस्तमः शान्तये।
अम्बा बद्ध मिदं चकार तुलसी दासस्था मानसम।।[१०८]

काव्य हेतु का संबंध कवि की सामर्थ्य से है जबकि प्रयोजन का संबंध कृति से प्राप्त होने वाले लाभों से है। संस्कृत काव्य-शास्त्र में काव्य हेतुओं का निरूपण करने वाले आचार्यों में भामह, दण्डी वामन, मम्मट, रुद्रट और कुंतक के नाम उल्लेख्य हैं। काव्यशास्त्र के प्रथम आचार्य भामह ने प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास यह तीन हेतु माने हैं। कालान्तर में इन आचार्यों के दो प्रमुख वर्ग बन गये। इस प्रकार प्रथम वर्ग में वे आचार्य आते हैं जो मात्र प्रतिभा को ही हेतु मानते हैं शेष अभ्यास और व्युत्पत्ति को प्रतिभा का ही संस्कारक स्वीकार करते हैं। इन्हें प्रतिभावादी आचार्य कहा जा सकता है। इस वर्ग में राजशेखर, वाग्भटट, हेमचन्द्र तथा जगन्नाथ प्रमुख हैं। द्वितीय वर्ग में वे आचार्य आते हैं जो प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास तीनों को सम्मिलित कारण मानते हैं। इन्हें समन्वयवादी आचार्य कहा जा सकता है। रुद्रट और मम्मट इसी वर्ग के प्रमुख आचार्य हैं। इस प्रकार निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास तीनों की समष्टि ही काव्य-रचना का हेतु है। तुलसी ने इन तीनों काव्य हेतुओं को अपने काव्य में प्रमुखता प्रदान की है। नवनवोन्मेष शालिनी प्रज्ञा को ही प्रतिभा कहा जाता है। प्रतिभा ईश्वर प्रदत्त होती है। भक्त कवि होने के नाते तुलसी ने अपनी कविता को राम की कृपा और शम्भु का प्रसाद माना है-

सारद दारुनारि नभ स्वामी। राम सूत्र धर अन्तर जानी।
जेहि पर कृपा करहिं जनु जानी। कवि उर अजिर नचावहि बानी।।[१०९]

तुलसी आगे स्पष्ट करते हैं कि रामकृपा से ही कवि मानस में सरस्वती निवास करती हैं। राम और शिव भिन्न न होकर एक ही हैं-

संभु प्रसाद सुमति हिय हुलसी। रामचरित मानस कवि तुलसी।।[११०]

इस प्रकार तुलसी ने प्रतिभा को प्रमुख हेतु स्वीकारा है। निपुणता का अर्थ है बहुज्ञता अर्थात् विविध विधाओं, कलाओं, लोक-जीवन, काव्य-शास्त्र इत्यादि का सम्यक और पूर्ण रूपेण ज्ञान। तुलसी इस हेतु को मान्यता देते हुये यों समर्थन करते हैं-

कवि न होउँ नहिं चतुर प्रबीनू। सकल कला सब बिद्या हीनू।।
आखर अरथ अलंकृति नाना। छन्द प्रबन्ध अनेक बिधाना।।
भाव-भेद रस-भेद अपारा। कवित दोष गुन विविध प्रकारा।।[१११]

अभ्यास के लिये तुलसी ने श्रम शब्द प्रयुक्त किया है। बिना अभ्यास या श्रम के काव्य में सौन्दर्याभिव्यक्ति असंभव है-

जो प्रबन्ध बुध नहिं आदरहीं। सो श्रम बादि बाल कवि करहीं।[११२]

लक्षण संस्कृत का पारिभाषिक शब्द है जिसका अर्थ है जो अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असंभव दोषों से मुक्त हो। भौतिक जगत की दृश्यमान वस्तु की भी पूर्ण एवं निर्दोष परिभाषा देना कठिन है फिर काव्य सदृश मानसिक धरातल की निर्दोष परिभाषा करना तो और भी नितान्त दुष्कर कार्य है।

विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में एक स्थल पर वाणी के स्वरूप को संकेतित किया गया है। दृष्टा! (कवि कहता है) मैं अपने कवित्त को बादलों में से फूटकर आने वाली पावस धारा मानता हूँ। श्री मद्भगवदगीता में भी काव्य के स्वरूप पर इस प्रकार प्रकाश डाला गया है-

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रिय हितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वांग्मय तव उच्यते।।

नाट्यशास्त्र प्रणेता **आचार्य भरत** ने सत्काव्य के सात लक्षण माने हैं। वे हैं-**१. मृदुललित पद योजना २. शूढ़ शब्दार्थ हीनता ३. सर्वसुगमता ४. युक्तियुक्तता ५. नित्य की योजना योग्य ६. नानाविध रस योजनाओं से पूर्ण ७. संधियुक्तता**। आचार्य भाामह ने शब्द और अर्थ के सहभाव को स्वीकार किया है-**शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्**। भामह, दण्डी, वामन, कुंतक और मम्मट ने इन्हीं उपर्युक्त भावों को मुखर स्वर प्रदान किया है। मम्मट के उपरान्त **जयदेव** की भी यही ध्वनि है **"वह वाणी जिसमें दोषों का अभाव हो, लक्षणों से सम्पन्न हो, रीति और गुणों से युक्त हो, अलंकार और रसों से विभूषित ही काव्य है।" आचार्य विश्वनाथ ने रसात्मक वाक्य को ही काव्य माना है।**

यद्यपि तुलसी ने कोई पृथक से लक्षणग्रन्थ नहीं लिखा है तथापि उनके काव्य में संस्कृत एवं उसके परवर्ती आचार्यो द्वारा निरूपित प्रायः सभी काव्य लक्षण उपलब्ध हो जाते हैं। चाहे छन्द का विधान हो चाहे अलंकार विधान, चाहे रस योजना, चाहे भावानुकूल भाषा, चाहे गुण, रीति आदि सभी दृष्टियों से तुलसी का काव्य परम्परा से ग्रहीत लक्षणों से समन्वित लक्षित होता है।

श्लोक- **यस्यांके च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके**
बाले बाल विधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट्।
सोऽयं भूति विभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा
शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्री शंकरः पातु माम।।[११३]

दोहा- **लखन जानकी सहित प्रभु राजत रुचिर निकेत।**
सोह मदनु मुनि वेष जनु रति रितुराज समेत।।[११४]

चौपाई- **हियँ सुमिरी सारदा सुहाई। मानस तें मुख पंकज आई।।**
बिमल विवेक धरम नय साली। भरत भारती मंजु मराली।।[११५]

छन्द- **लियो हृदय लाइ कृपा निधान सुजान राय रमापती।**
बैठारि परम समीप बूझी कुसल सो कर बीनती।।
अब कुसल पद पंकज बिलोकि बिरंचि संकर सेब्य जे।
सुख धाम पूरनकाम राम नमामि राम नमामि ते।।[११६]

कबित्त- **आगें सोहै साँवरौ कुँवरु गोरो पाछें-पाछें,**
आछे मुनिबेष धरें, लाजत अनंग हैं।
बान बिसिषानन, बसन बनही के कटि
कसे हैं बनाइ, नीके राजत निषंग हैं।।

साथ निसिनाथमुखी पाथनाथनंदिनी-सी,
तुलसी बिलोकें चितु लाइ लेत संग हैं।
आनँद उमंग मन, जौबन-उमंग तन,[११७]
रूप की उमंग उमगत अंग-अंग हैं।।

सवैया- साँवरे-गोरे सलोने सुभायँ मनोहरताँ जिति मैनु लियो है।
बान-कमान, निषंग कसें, सिर सोहैं जटा, मुनिबेषु कियो है।।
संग लिएँ बिधुबैनी बधू, रति को जेहि रंचक रूप दियो है।
पायन तौ पनहीं न, पयादेंहि क्यों चलिहैं, सकुचात हियो है।।[११८]

बरवै- स्याम गौर दोउ मूरति लछिमन राम।
इन तें भइ सित कीरति अति अभिराम।।[११९]

तुलसी के सौन्दर्य विधान में जहाँ पार्थिव सौन्दर्य-आकर्षण और रूपासक्ति की बात है वहाँ साथ ही साथ चिन्मय, सहज और आत्मसमर्पण की भावना भी विद्यमान है। यही कारण है कि तुलसी साहित्य में सर्वत्र दिव्य दीप्ति, भव्य, चिरन्तन, शाश्वत, अखंड एवं सनातन सौन्दर्य के दर्शन होते हैं। तुलसी का सौन्दर्य कामाश्रित नहीं वरन् त्यागमूलक है। वह वासना के गर्त में ढकेलने वाला न होकर मर्यादित, लोकसम्मत एवं ऊर्ध्वगामी है। उसमें शरीर की भूख न होकर आत्मा का अनंत प्रकाश है, जो अनंत-अनंत काल तक मुखरित होता रहेगा। इस सत्यालोक में मंगलम और सुन्दरम् की कोटि-कोटि किरणें उद्भासित होती रहती हैं जिनका संस्पर्श पाकर संसारी जीव जीवनमुक्त होकर परम धाम प्राप्त कर लेता है जहाँ पहुँच कर के पुनः उसे कभी इस लोक में नहीं आना पड़ता है।

नैसर्गिक सौन्दर्य ही सौन्दर्य है

कृत्रिमता में जो सौन्दर्य होता है वह क्षणभंगुर और अस्थायी होता है। उसमें स्थायित्व हो ही नहीं सकता। इसीलिये तुलसी ने सौन्दर्य सम्बन्धी धारणाओं में इसे प्रमुख स्थान दिया है। वे सहजता के कवि हैं। सरलता से उन्हें स्वाभाविक प्रेम है-

सरल कबित कीरति बिमल, सोइ आदरहिं सुजान।
सहज बयर बिसराइ रिपु जो सुनि करहिं बखान।।[१२०]

वाह्य और आभ्यांतर अंधकार को विनष्ट करके उसमें परम पुनीत प्रकाश की अवतारणा के लिए तुलसी की धारणा है।

राम नाम मनि दीप धरु, जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहिसि उजियार।।[१२१]

कलिकाल में कल्याण करने वाली एवं मनोवांछित फल प्रदान करने वाली एकमात्र रामकथा ही तो है जिसे तुलसी ने कल्पतरु की संज्ञा से अभिहित किया है-

नामु राम को कलपतरु कलि कल्यान निवासु।

जो सुमिरत भयो भाँग तें तुलसी तुलसीदासु।।[१२२]

वास्तव में राम कथा ही सौन्दर्य का मूल उत्स है, जो इसे गायेगा, सुनेगा अथवा पढ़ेगा उसमें सौन्दर्य और मंगल विधायिनी भावना का उद्रेक स्वयमेव हो उठेगा क्योंकि यह कथा-

रामकथा मंदाकिनी, चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह बन, सिय रघुबीर बिहारु।।[१२३]

रामचरित मानस में अवगाहन किए बिना किसी भी जीव को चिरन्तन सुख शान्ति उपलब्ध नहीं हो सकती। इस मानस का निर्माण मंगलकारी साक्षात भगवान शिव ने किया। इसका रूपक, चारघाट जलकमल, भ्रमर, सेवार आदि का मर्म कोई कृपापात्र आर्त ही समझ सकता है-

रचि महेस निज मानस राखा। पाई सुसमउ सिवा सन भाषा।
तातें रामचरित मानस बर। धरेउ नाम हियँ हेरि हरषि हर।।
कहउँ कथा सोइ सुखद सुहाई। सादर सुनहु सुजन मन लाई।।
जस मानस जेहि विधि भयउ, जग प्रचार जेहि हेतु।
अस सोइ कहउँ प्रसंग सब, सुमिरि उमा वृषकेतु।।
संभु प्रसाद सुमति हियँ हुलसी। रामचरित मानस कवि तुलसी।।
करइ मनोहर मति अनुहारी। सुजन सुचित सुनि लेहु सुधारी।।
सुमति भूमि थल हृदय अगाधू। बेद पुरान उदधि घन साधू।।
बरसहिं राम सुजस बर बारी। मधुर मनोहर मंगलकारी।।
लीला सगुन जो कहहिं बखानी। सोइ स्वच्छता करइ मल हानी।।
प्रेम भगति जो बरनि न जाई। सोइ मधुरता सुसीतल ताई।।
सो जल सुकृत सालि हित होई। राम भगत जन जीवन सोई।।
मेधा महि गत सो जल पावन। सकिलि श्रवन मग चलेउ सुहावन।।
भरेउ सुमानस सुथल थिराना। सुखद सीत रुचि चारु चिराना।।
सुठि सुंदर संवाद बर, बिरचे बुद्धि बिचारि।
तेइ एहि पावन सुभग सर, घाट मनोहर चारि।।
सप्त प्रबंध सुभग सोपाना। ग्यान नयन निरखत मन माना।।
रघुपति महिमा अगुन अबाधा। बरनब सोइ बर बारि अगाधा।।
राय सीय जस सलिल सुधासम। उपमा बीचि बिलास मनोरम।।
पुरइनि सघन चारु चौपाई। जुगुति मंजु मनि सीप सुहाई।।
छंद सोरठा सुंदर दोहा। सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा।।
अरथ अनूप सुभाव सुभासा। सोइ पराग मकरंद सुबासा।।
सुकृत पुंज मंजुल अलिमाला। ग्यान बिराग बिचार मराला।।

धुनि अवरेब कबित सुन जाती। मीन मनोहर ते बहुभाँती।।
अरथ धरम कामादिक चारी। कहब ग्यान बिग्यान बिचारी।।
नवरस जप तप जोग बिरागा। ते सब जलचर चारु तड़ागा।।
सुकृती साधु नाम गुन गाना। ते बिचित्र जल बिहग समाना।।
संतसभा चहुँ दिसि अँवराई। श्रद्धा रितु बसंत सम गाई।।
भगति निरूपन बिबिधि बिधाना। छमा दया दम लता बिताना।।
सम जम नियम फूल फल ग्याना। हरि पद रति रस बेद बखाना।।
औरउ कथा अनेक प्रसंगा।। तेइ सुक पिक बहु बरन बिहंगा।।

पुलक वाटिका बाग बन, सुख सुबिहंग बिहारु।
माली सुमन सनेह जल, सींचत लोचन चारु।।

जे गावहिं यह चरित सँभारे। तेइ एहि ताल चतुर रखवारे।।
सदा सुनहिं सादर नर नारी। तेइ सुर बर मानस अधिकारी।।
संबुक भेक सेवार समाना। इहाँ न विषय कथा रस नाना।।
तेहि कारन आवत हियँ हारे। कामी काक बिलाक बिचारे।।
आवत एहिं सर अति कठिनाई। राम कृपा बिनु आइ न जाई।।
कठिन कुसंग कुपंथ कराला। तिन्ह के वचन बाघ हरि ब्याला।।
गृह कारज नाना जंजाला। ते अति दुर्गम सैल बिसाला।।
बन बहु बिषम मोह मद नाना। नदी कुतर्क भयंकर नाना।।

जे श्रद्धा संबल रहित, नहि संतन्ह कर साथ।
तिन्ह कहुँ मानस अगम अति, जिन्हहि न प्रिय रघुनाथ।।

जौं करि कष्ट जाइ पुनि कोई। जातहि नीद जुड़ाई होई।।
जड़ता जाड़ बिषम उर लागा। गएहुँ न मज्जन पाव अभागा।।
करि न जाइ सर मज्जन पाना। फिरि आवइ समेत अभिमाना।।
जौं बहोरि कोउ पूछन आवा। सर निंदा करि ताहि बुझावा।।
सकल बिघ्न ब्यापहिं नहिं तेही। राम सुकृपाँ बिलोकहिं जेही।।
सोइ सादर सर मज्जनु करई। महा घोर त्रयताप न जरई।।
ते नर यह सर तजहिं न काऊ। जिन्ह के राम चरन भल भाऊ।।
जो नहाइ चह एहिं सर भाई। सो सत्संग करउ मन लाई।।
अस मानस मानस चह चाही। भइ कबि बुद्धि बिमल अवगाही।।
भयउ हृदयँ आनंद उछाहू। उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू।।
चली सुभग कविता सरिता सो। राम बिमल जस जल भरिता सो।।

सरजू नाम सुमंगल मूला। लोक बेद मत मंजुल कूला।।
नदी पुनीत सुमानस नंदिनि। कलिमल तृन तरु मूल निकंदिनि।।

श्रोता त्रिबिध समाज पुर ग्राम नगर दुहुँ कूल।
संत सभा अनुपम अवध, सकल सुमंगल मूल।।

राम भगति सुरसरितहि जाई। मिली सुकीरति सरजु सुहाई।
सानुज राम समर जसु पावन। मिलेउ महानद सोन सुहावन।।
जुग बिच भगति देवधुनि धारा। सोहति सहित सुबिरति बिचारा।।
त्रिबिध ताप नासक तिमुहानी। राम सरूप सिंधु समुहानी।।
मानस मूल मिली सुरसरिही। सुनत सुजन मन पावन करिही।।
बिच बिच कथा बिचित्र बिभागा। जनु सरि तीर तीर बन बागा।।
उमा महेस बिबाहु बराती। ते जलचर अगनित बहु भाँती।।
रघुबर जनम अनंद बधाई। भँवर तरंग मनोहरताई।।

बाल चरित चहु बंधु के बनज बिपुल बहुरंग।।
नृपरानी परिजन सुकृत, मधुकर बारि बिहंग।।

सीय स्वयंवर कथा सुहाई। सरित सुहावनि सो छवि छाई।।
नदी नाव पटु प्रस्न अनेका। केवल कुसल उतर सबिबेका।।
सुनि अनुकथन परस्पर होई। पथिक समाज सोह सरि सोई।।
धीर धार भृगुनाथ रिसानी। घाट सुबद्ध राम बर बानी।।
सानुज राम बिबाह उछाहू। सो सुभ उमर सुखद सब काहू।।
कहत सुनत हरषहिं पुलकाहीं। ते सुकृतीं मन मुदित नहाहीं।।
राम तिलक हित मंगल साजा। परब जोग जनु जुरे समाजा।।
काई कुमति केकई केरी। परी जासु फल बिपति घनेरी।।

समन अमित उतपात सब भरत चरित जप जाग
कलि अध खल अवगुन कथन ते जल मल बग काग।।

कीरति सरित छहूँ रितु रूरी। समथ सुहावनि पावनि भूरी।।
हिम हिम सैल सुता सिव ब्याहू। सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहू।।
बरनब राम बिबाह समाजू। सो मुद मंगलमय तुिराजू।।
ग्रीषम दुसह राम बन गवनू। पंथकथा खर आतप पवनू।।
बरषा घोर निसाचर रारी। सुर कुल सालि सुमंगलकारी।।
रामराज सुख विनय बड़ाई। बिषद सुखद सोइ सरद सुहाई।।
सती सिरोमनि सिय गुनगाथा। सोइ गुन अमल अनूपम पाथा।।

भरत सुभाउ सुसीतल ताई। सदा एकरस बरनि न जाई।।

अवलोकनि बोलनि मिलनि, प्रीति परसपर हास।

भायप बलि चहु बंधु की जल माधुरी सुबास।।

आरति विनय दीनता मोरी। लघुता ललित सुबारि न थोरी।।

अद्भुत सलिल सुनन गुनकारी। आस पिआस मनोमल हारी।।

राम सुप्रेमहि पोषत पानी। हरत सकल कलि कलुष गलानी।।

भव श्रम सोषक तोषक तोषा। समन दुरित दुख दारिद दोषा।।

काम कोह मद मोह नसावन। बिमल बिबेक बिराग बढ़ावन।।

सादर मज्जन पान किए तें। मिटहिं पाप परिताप हिए तें।।

जिन्ह एहिं बारि न मानस धोए। ते कायर कलिकाल बिगोए।।

तृषित निरखि रबि कर भव भारी। फिरहहिं मृग जिमि जीव दुखारी।।

मति अनुहारि सुबारि गुन, गन गनि मन अन्हवाइ।

सुमिरि भवानी संकरहि, कह कवि कथा सुहाइ।।[१२४]

तथा-

रामकथा ससि किरन समाना। संत चकोर करहिं जेहि पाना।।[१२५]

शक्ति में स्वतः सौन्दर्य निहित रहता है

संसार में जितनी भव्य-दिव्य और शक्ति संपन्न वस्तुएँ हैं उनमें किसी न किसी रूप में सौन्दर्य का अधिवास रहता है। ऐसी सामर्थ्य संपन्न विभूति में दोष नहीं देखे जाते। अशुद्ध जलधारायें जैसे गंगा में मिलकर पवित्र बन जाती हैं ठीक उसी प्रकार शक्ति में भी सौन्दर्य की किरणें उद्भासित हो उठती हैं। तुलसी सौन्दर्य के साथ शक्ति का सामंजस्य करते हैं। उन्हें कहीं-कहीं अपार पवित्रता एवं सामर्थ्य से संपन्न पदार्थ सहज ही सुन्दर प्रतीत होते हैं-

जौं अहि सेख सयन हरि करहीं। बुध कछु तिन्हकर दोषु न धरहीं।

भानु किसानु सर्व रस खाहीं। तिन्ह कैहं मन्द कहत कोउ नाहीं।।

सुभ अरु असुभ सलित सब बहई। सुरसरि कोउ अपुनीत न कहई।

समरथ कहुँ नहिं दोषु गोसाईं। रवि पावक सुरसरि की नाई।।[१२६]

मन जिसमें रम जाये वही सुन्दर है

प्रेम और सौन्दर्य अन्योन्याश्रित होते हैं। सौन्दर्य से प्रेम और प्रेम सौन्दर्य से उत्पन्न होता है। मन स्वाभाविक रूप से जिसमें रम जाता है वह व्यक्ति असुन्दर होने पर भी सुन्दर प्रतीत होने लगता है।

महादेव अवगुन भवन विष्णु सकल गुनधाम।

जेहि कर मनु रम जाहि सन तेहि तेही सन काम।।[१२७]

काम छल रूप है, उसका बहि रंग सुन्दर होता है। काम अनंग होते हुए भी सभी जड़-चेतन

को प्रभावित करता है किंतु जिस पर राम की कृपा हो वह इस कामावेग के वशीभूत नहीं होता। वासना में लिप्त प्राणी पर प्रभु कृपा नहीं करते वरन् जिसके मन में सच्चे त्याग की भावना होती है प्रभु उसी पर अपनी अहेतुकी कृपा करके क्षणमात्र में ही उसका उद्धार कर देते हैं-यथा

जे सजीव जग अचर चर नारि पुरुष अस नाम
ते निज निज मरजाद तजि भए सकल बस काम।।
सब के हृदय मदन अभिलाषा। लता निहारि नवहिं तरु साखा।।
नदी उमगि अंबुधि कहु धाई। संगम करहि तलाव तलाई।।
जहँ असि दसा जड़न्ह कै बरनी। को कहिं सकइ सचेतन करनी।।
पसु पच्छी नभ जल थल चारी। भए कामबस समय बिसारी।।
मदन अंध व्याकुल सब लोका। निसि दिनु नहिं अवलोकहिं कोका।
देव दनुज नर किंनर ब्याला। प्रेत पिसाच भूत बेताला।।
इन्ह कै दसा न कहेऊँ बखानी। सदा काम के चेरे जानी।।
सिद्ध बिरक्त महामुनि जोगी। तेपि कामबस भए वियोगी।।
भए कामबस जोगीस तापस पावँरन्ह की को कहै।
देखहिं चराचर नारिमय जे ब्रह्ममय देखत रहै।।
अबला बिलोकहिं पुरुषमय जगु पुरुष सब अबलामयं।
दुइ दंड भरि ब्रह्मांड भीतर कामकृत कौतुक अयं।।
धरी न काहूँ धीर, सबके मन मनसिज हरे।
जे राखे रघुबीर ते उबरे तेहि काल महुँ।।[१२८]

विरोधाभास में ही सौन्दर्य विद्यमान होता है-

वैचित्र्य में सौन्दर्यानुभूति सर्वाधिक होती है। तुलसी ने मुक्ति और मुक्ति के संयोग में ही सौन्दर्य माना है। "मानव प्रकृति के जितने अधिक रूपों के साथ गोस्वामी जी के हृदय का रागात्मक सामंजस्य हम देखते हैं उतना अधिक हिन्दी भाषा के और किसी कवि के हृदय का नहीं। यदि कहीं सौन्दर्य है तो प्रफुल्लता शक्ति है तो प्रणति, शील है तो हर्षपुलक, गुण है तो आदर पाप है, तो घृणा, अत्याचार है तो क्रोध, अलौकिकता है तो विस्मय, पाखंड है तो कुढ़न शोक है तो करुणा, आनंदोत्सव है तो उल्लास, उपकार है तो कृतज्ञता, महत्व है तो दीनता तुलसीदास जी के हृदय में विम्ब प्रतिविम्ब भाव से विद्यमान है।"[१२९]

राम अनंत सौन्दर्य निधान हैं-

तुलसी के आराध्य राम हैं। उनके सम्मुख जो भी जीव पहुँचता है वह अपने अज्ञान जन्य शरीर का परित्याग कर सहज स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। वह जीवात्मा, परमात्मा में ऐसे विलय हो जाती है जैसे सरिता की धाराएँ अनन्त सिंधु में लय हो जाती है।

"राम सच्चिदानंद दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा।।
सहज प्रकास रूप भगवाना। नहि तहँ पुनि बिग्यान बिहाना।।
हरष विषाद ग्यान अग्याना। जीव-धर्म अहमिति अभिमाना।।
रामब्रह्म व्यापक जग जाना। परमानंद परेस पुराना।।
पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रकट परा बर नाथ।
रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ कहि सिवँ नायउं माथ।।[130]

तथा-

विषय करन सुर जीव समेता सकल एक तें एक सचेता।
सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई।।
जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ग्यान गुन धामू।
जासु सत्यता ते जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया।।[131]

वैसे तो प्रत्येक कवि अपने काव्य में अनुभूति एवं अभिव्यक्ति के माध्यम से सौन्दर्य की अभिव्यंजना करता है। तुलसी इस क्षेत्र में अप्रितम हैं उन्होनें सौन्दर्य के क्षेत्र में भी एक मान दण्ड प्रस्थापित किया। निःसन्देह वे शब्द-ब्रह्म के साक्षात्कर्ता थे। वे यह जानते थे कि कब, किस अवसर पर कौन सा शब्द प्रयुक्त किया जाए? उनकी ध्वनि योजना, शब्द-योजना, पद योजना, वाक्य योजना एवं अर्थ योजना भाषा विज्ञान पर आधृत थी। इसके अतिरिक्त उनके काव्य में शैली की सुन्दर छटा भाषा का सुकुमार्य, रसानुभूति, उक्ति सौन्दर्य, अलंकार सौन्दर्य, लोक-सौन्दर्य एवं वर्णन सौन्दर्य अनूठा बन पड़ा है। विम्ब विधान में तो वे अनुपमेय ठहरते हैं।

ध्वनि सौन्दर्य-

इसमें कवि भावाभिव्यक्ति के लिए ऐसी ध्वनियों का चयन करता है कि पाठक के हृदय में रसोद्रेक हो और उसकी आँखों के सामने उस भावदृश्य का चित्र उतर सके। इसके लिए हमें मानस के पुष्प-वाटिका प्रकरण का उल्लेख करना तर्कसंगत प्रतीत होता है।

कंकन-किंकिनि नूपुर धुनि-सुनि। कहत लखन सन रामु हृदयँ गुनि।।
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्वा बिजय कहँ कीन्ही।।

इसी प्रकार राम-रावण युद्ध के अवसर पर तुलसी ने रौद्र रस की सुन्दर व्यंजना की है

भए क्रुद्ध जुद्ध विरुद्ध रघुपति त्रोन सायक कसमसे।
कोदंड धुनि अति चंड सुनि मनुजाद सब मारुत ग्रसे।।
मंदोदरी उर कंप कंपति कमठ भू भूधर त्रसे।
चिक्करहि दिग्गज दसन गहि महि देखि कौतुक सुर हँसे।।[133]

रस एवं भावयोजना के परिवर्तित होने पर तुलसी का अनुरणनात्मक बोध स्वतः परिवर्तित हो जाता है। बाल सौन्दर्य का एक चित्र देखिए-

छोटी-छोटी गोड़ियाँ अँगुरियाँ छबीलीं छोटी

नख-जोति मोती मानो कमल-दलनि पर।
ललित आँगन खेलैं, ठुमुक-ठुमुक चलैं,
झुंझुन-झुंझुन पाँय पैंजनी मृदु-मुखर।।[१३४]

विभिन्न ध्वनि संयोजनों से शब्द का निर्माण होता है। कवि अपनी भावानुभूति के लिए पात्र एवं अवसरानुकूल शब्दों का चयन करता है। उसका यह शब्द-चयन इतना सटीक और समीचीन होता है कि यदि उसके स्थान पर कोई पर्यायवाची शब्द रख दिया जाए तो वह वांछित अर्थ देने में सफल नहीं हो पाता क्योंकि प्रत्येक शब्द की अपनी-अपनी सामर्थ्य होती है।

यथा- **भए विलोचन चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल।**[१३५]

[अर्थात् ऐसा कहकर श्री राम जी ने फिरकर उस ओर देखा। श्री सीता जी के मुखरूपी चन्द्रमा को निहारने के लिए उनके नेत्र चकोर बन गए। सुन्दर नेत्र स्थिर हो गये मानो निमि (जनक के पूर्वज) ने (जिनका सबकी पलकों में निवास माना गया है। लड़की-दामाद के मिलन प्रसंग को देखना उचित नहीं इससे) सकुचाकर पलकें छोड़ दी, (पलकों में रहना छोड़ दिया, जिससे पलकों का गिरना रुक गया।)]

मानस में तुलसी ने पुष्पवाटिका प्रसंग में सुन्दर उद्यान के लिए आराम शब्द का प्रयोग किया है। जिसमें एक क्रम है गति है, लय एवं तारतम्य है। अर्थ की व्यंजना तो है ही। मूल दोहा इस प्रकार है।

बागु तड़ागु बिलोकि प्रभु, हरषे बंधु समेत।
परम रम्य आरामु यहु जो रामहि सुख देत।।[१३६]

आराम शब्द के स्थान पर पर्यायवाची 'उद्यान' रखने पर क्या पाठक को वही भाव और अर्थ बोध होगा यथा- **परम रम्य उद्यान यह जो रामहिं सुख देत।।**

इसी प्रकार बालकाण्ड में गुरु वन्दना के अवसर पर 'नर रूप हरि' रखने पर वह व्यंजना नहीं हो सकती जो कवि को अभिप्रेत है।

पद-सौन्दर्य

विभक्ति रहित ध्वनि को शब्द कहते हैं और विभक्तियुक्त ध्वनि को पद कहते हैं। यह भाषा विज्ञान का दृष्टिकोण है। कोई भी शब्द तब तक वाक्य में प्रयुक्त नहीं हो सकता जब तक उसे पद न बना लिया जाए। कभी-कभी विभक्ति लुप्त रहती है तो कभी व्यक्त। तुलसी साहित्य में पद सौन्दर्य का अनूठा संयोजन उपलब्ध है।

जो संपति सिव रावनहि दीन्ह दिए दसमाथ।
सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन रघुनाथ।।

तथा- **सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगल मूल अमंगल दमनू।**[१३७]

वाक्य सौन्दर्य-

शब्द-समूह, वाक्य की निर्मिति करता है। कभी-कभी कवि छन्द में पूरा वाक्य का वाक्य रख देता है। क्रिया हीन होने पर भी उसकी पूर्णाभिव्यक्ति होती है यथा-

१. सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभ जीवन मरन, जस अपजस विधि हाथ।।
२. राम बाम दिसि जानकी, लखन दाहिनी ओर।
ध्यान सकल कल्यानमय, सुरतरु तुलसी तोर।।[१३८]

अर्थ तत्व को भाषा का प्राण माना जाता है। मनोगत भावों की अर्थप्रतीति सहृदय पाठक को करा देना ही कवि का एकमात्र उद्देश्य रहता है। इस अर्थबोध के अनेक साधन हो सकते हैं यथा- **आप्त वाक्य, व्याकरण, कोश, पद-सानिध्य** इत्यादि। तुलसी ने अपने समूचे काव्य-साहित्य में जैसी गंभीर अर्थ व्यंजना प्रस्तुत की है, हिन्दी के अन्य किसी कवि से नहीं बन पड़ी है। वन-गमन के प्रसंग में ग्रामीण वधूटियों का सीता से राम और लक्ष्मण का संबंध पूछना कैसा मनोहारी बन पड़ा है? यह प्रसंग उनकी अर्थ अभिव्यंजना का उत्कृष्ट उदाहरण है यथा-

प्रश्न- **कोटि मनोज लजावनिहारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारें।**
उत्तर- **सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नाम लखनु लघु देवर मोरे।।**
बहुरि बदन बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी।।
खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहिं सिय सयननि।।

समूचा केवट प्रसंग ही तुलसी की अर्थ व्यंजना का उत्कृष्ट उदाहरण है। मानस की एक-एक अर्द्धाली पर मानस मर्मज्ञ महीनों अर्थ व्यंजना करते हुए लोक का आदर प्राप्त करते हैं। विद्वानों द्वारा की गई मानस की अनेकानेक टीकाएँ उनकी उत्कृष्ट अर्थ अभिव्यंजना की परिचायक हैं। इस संदर्भ में **'मानस-पीयूष'** उल्लेखनीय है।

सौन्दर्याभिव्यक्ति के लिये कवि ने अनेक शैलियों को अपनाया है। उपयुक्त अवसर के लिए भावानुकूल भाषा का प्रयोग करते हुए तुलसी ने विभिन्न रसों की व्यंजना भिन्न-भिन्न शैलियों में प्रस्तुत की है।

तुलसी ने अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम प्रमुख रूप से संस्कृत, व्रज और अवधी को बनाया है। मानस में प्रत्येक काण्ड के प्रारम्भ में मंगलाचरण संस्कृत श्लोकों में ही निबद्ध है। विनय पत्रिका व्रज भाषा का अनुपम ग्रन्थ है। मानस में शुद्ध एवं साहित्यिक अवधी का प्रयोग प्रशंस्य है।

वीर, श्रंगार और करुण रस के साथ-साथ तुलसी ने शेष छहों शास्त्रीय रसों की अभिव्यंजना काव्य साहित्य में प्रस्तुत की है। इसके अतिरिक्त उन्होंने भक्ति रस एवं वात्सल्य रस की अवतारणा भी की है। रसाभिव्यक्ति में उन्हें पूर्ण सफलता मिली है।

काव्य में सूक्तियों के माध्यम से भी सौन्दर्य अभिव्यंजित किया जाता है। उक्ति कथन में तुलसी को अभूतपूर्व सफलता मिली है। यथा-

(क) **विनय न मानत जलधि जड़ गए तीन दिन बीति।**
बोले राम सकोप तब भय बिनु होंहि न प्रीति।।
(ख) **का बरखा जब कृषी सुखाने। समय चूकि पुनि का पछिताने।।**

(ग) **बांझ कि जान प्रसव कै पीरा।**

(घ) **जिमि स्वतंत्र भए बिगरहिं नारी।**

(अ) **परहित सरिस धरम नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।**

(ब) **धरम सनेह उभय मति घेरी। भई गति सांप छछूंदर केरी।।**

काव्य कामिनी के कान्त कलेवर को अलंकृत करने के लिए कवि जिन साधनों का प्रयोग करता है उन्हें अलंकार कहा जाता है। उक्ति कथन में वैचित्र्य, आनुप्रासिकता, द्वित्व एवं कोमल कान्त पदावली के संयोजन से काव्य में सौंदर्य का उत्स फूट पड़ता है। तुलसी के काव्य-साहित्य में प्रचुर परिमाण में शास्त्रीय अलंकार विधान विद्यमान है। किन्तु ध्यातव्य है कि यह 'रीति का परिपालन करने के लिए ही गृहीत नहीं किया गया वरन् यह सहज रूप में ही प्रयोग के कारण आते चले गए हैं। विरोधाभास का एक उदाहरण दृष्टव्य है-

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु करम करई विधि नाना।
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी।।
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहइ घ्रान बिनु बास अशेषा।[१३६]

जिस प्रकार दुग्ध से दधि, तक्र, नवनीत और घृत का प्रादुर्भाव होता है ठीक उसी प्रकार लोक साहित्य आधुनिक युग में प्रचलित विभिन्न साहित्यिक विधाओं का जनक होता है। तुलसी का साहित्य लोक से हटकर नहीं है। उनकी लघुकलेवरी कृतियाँ पूर्णरूपेण लोक सौन्दर्य से अभिमंडित हैं। विनय पत्रिका में भी लोकतत्व विद्यमान है। मानस में अनेक ऐसे स्थल हैं जिनमें लोक तत्व की सन्निहिति के कारण वह प्रकरण सौन्दर्य की अनुपमाभा से उदभासित हो उठा है। राम जन्म के अवसर पर बधावा, जात कर्म, नामकरण, चूड़ाकरण, विद्यार्जन, गणपति पूजन, वेदी निर्माण, परछन, कन्या, श्रंगार, विवाह संस्कार, श्वसुरालय जाती हुई कन्या को माता-पिता की सीख इत्यादि विभिन्न प्रकरणों में लोक सौन्दर्य मुखरित हुआ है। फलतः तुलसी के काव्य में यत्र-तत्र-सर्वत्र सौन्दर्य की शत-शत-धाराएं प्रस्फुटित हो उठी हैं।

तुलसी सबसे बड़े समन्वयवादी कवि हैं। उन्होंने भक्ति के नवधा रूपों की विवेचना करके तत्कालीन विभिन्न मतों के सार तत्व को ग्रहण किया है। इसी प्रकार शैव, शाक्त और वैष्णव धर्म का समन्वय उनके काव्य में दृष्टिगोचर होता है। ब्रह्म का निरूपण करते समय सत, चित और आनंद के समन्वित स्वरूप सच्चिदानन्द घन को उन्होंने अपना आराध्य स्वीकार किया है। जिस प्रकार विभिन्न स्वरों के संयोजन के कारण वाद्य में एकाग्रता (Hormony) होती है इसी के कारण वह वाद्य हार्मोनियम कहा जाता है। उसी प्रकार तुलसी के साहित्य में भी सत्यं शिवं और सुन्दरम् के स्वर उभरे हैं। उनमें एक लय, एक तान और एक अलौकिक संगीत विद्यमान है। इसी कारण तुलसी-साहित्य में पदे-पदे सौन्दर्य परिलक्षित होता है। अनेकता में एकता, भेद में अभेदता तुलसी के प्रमुख उद्देश्य रहे हैं। उनके मानस में विभिन्नताओं की अनेक सरिताओं के समूह ने मिलकर एक ऐसा स्वरूप धारण किया है जो इस लोक में अभिवंदनीय है। साधारणत्व में असाधारणत्व की भावना को व्यक्त करना उनकी उत्कृष्ट कोटि की प्रतिभा का प्रदर्शन है। निःसन्देह समन्वय में एक अलौकिक सौन्दर्य विद्यमान रहता है।

(ग) तुलसी की रचना-प्रक्रिया

संसार में वे प्राणी धन्य हैं जिन्हें ईश्वर काव्य रचना की क्षमता प्रदान करता है। वास्तव में सर्जना से सुख की सरस संसृष्टि होती है। यही कारण है कि विधाता भी अपनी सृष्टि को देखकर स्वयं मुग्ध हो उठा था। प्रत्येक प्राणी को अपनी रचना से मोह होता है और सभी को अपनी रचना प्रिय लगती है। तुलसी भी इसके अपवाद नहीं थे-

'निज कवित्त केहि लाग न नीका। सरस होय अथवा अति फीका।।

उपुर्यक्त चौपाई इसी तथ्य की ओर इंगित करती है।

कवि अपनी सृष्टि का विधाता है। उसका सहृदय होना परमावश्यक है क्योंकि जो जितना सहृदय भावुक और संवदेनशील होता है, उसकी रचना में उतनी ही सरसता, स्वाभाविकता, तीव्रता एवं प्रभावोत्पादकता आ जाती है। वह विभिन्न परिस्थितियों को हृदयंगम करता हुआ उन्हें आत्मसात करता है तथा भिन्न-भिन्न पात्रों के माध्यम से काव्य को अनुगुंजित करता हुआ वाणी-विधान करता है। इसी वाणी-विधान को 'कविता' कहा जाता है। आचार्य शुक्ल का यह कथन यहाँ उल्लेख्य है-

"जब तक कोई अपनी पृथक सत्ता की भावना को ऊपर किए इस क्षेत्र के नाना रूपों और व्यापारों को अपने योग क्षेम, हानि-लाभ, सुख-दुख आदि से सम्बद्ध करके देखता रहता है, तब तक उसका हृदय एक प्रकार से बद्ध रहता है। इन रूपों और व्यापारों के सामने जब कभी वह अपनी पृथक सत्ता की धारणा से छूटकर- अपने आपको बिल्कुल भूलकर-विशुद्ध अनुभूति मात्र रह जाता है, तब वह मुक्त हृदय हो जाता है। जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द-विधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं।"[१४०]

एक अन्यत्र स्थल पर आचार्य शुक्ल कहते हैं कि- **"कविता ही हृदय को प्रकृत दशा में लाती है और जगत के बीच क्रमशः उसका अधिकाधिक प्रसार करती हुई उसे मनुष्यत्व की उच्च्व भूमि पर ले जाती है। भावयोग की सबसे उच्च्व कक्षा पर पहुँचे हुए मनुष्य का जगत के साथ पूर्ण तादात्म्य हो जाता है, उसकी अलग भावसत्ता नहीं रह जाती, उसका हृदय विश्व-हृदय हो जाता है। उसकी अश्रुधारा में जगत की अश्रुधारा का, उसके हास-विलास में जगत के आनन्द नृत्य का, उसके गर्जन-तर्जन में जगत के गर्जन-तर्जन का आभास मिलता है।"**[१४१]

किसी भी कवि की रचना प्रक्रिया जानने के पूर्व हमें उसके जीवन की परिस्थितियों एवं कृतित्व का जानना अभीष्ट होता है। सभी जानते हैं कि तुलसी का जन्म सं० १५५४ की श्रावण शुक्ल सप्तमी के दिन अभुक्त मूल नक्षत्र में बांदा जिलान्तर्गत राजापुर नामक एक गाँव में सरयूपारीय ब्राह्मण आत्माराम दुबे के यहाँ हुआ था। किम्वदंती है कि तुलसी जन्म के समय रोये नहीं वरन उनके मुख से राम का नाम निकला था और उनके मुख में बत्तीस दाँत विद्यमान थे। माता हुलसी अमंगल दायक

बातों को देखकर चिन्तित हो गई और दासी के द्वारा उसके ससुराल भेज दिया और दूसरे दिन स्वयं इस असार संसार से चल बसीं। दासी ने तुलसी का लालन-पालन किया किंतु पाँच वर्ष पश्चात उसका भी देहान्त हो गया और इस प्रकार बालक तुलसी अनाथ होकर द्वार-द्वार भटकने लगे।

कवि के ऊपर ईश्वरीय कृपा हुई। तत्कालीन सुप्रसिद्ध विद्वान नरहरिस्वामी ने इन्हें राम मन्त्र की दीक्षा दी। तुलसी का कण्ठ अच्छा था। इनके गुरु ने इन्हें राम चरित्र सुनाया। पुनश्च गुरुकृपा से तुलसी ने वेद-वेदांग का अध्ययन किया और विद्या की नगरी काशी से तुलसी अपनी जन्मभूमि वापस लौटे। उनका सम्पूर्ण परिवार समाप्त हो चुका था। तुलसी ने विधि पूर्वक उनके श्राद्धादि संस्कार किए और जन्मभूमि में ही रहकर लोगों को रामकथा सुनाने लगे। सं. १५८३ ज्येष्ठ शुक्ला १३ गुरुवार को भारद्वाजगोत्रीय सुन्दरी कन्या रत्नावली से विवाह सम्पन्न हुआ। सुखपूर्वक दाम्पत्य जीवन व्यतीत करने के उपरान्त पत्नी के ससुराल जाने पर कामातुर हो तुलसी का वहीं पहुँचना और पत्नी द्वारा धिक्कारा जाना **''मेरे इस हाड़ माँस के शरीर में जितनी तुम्हारी आसक्ति है उससे आधी भी यदि भगवान में होती तो तुम्हारा बेड़ा पार हो गया होता।''**

अनुरक्ति से विरक्ति की ओर तुलसी का प्रस्थान। प्रयाग में आकर गृहस्थ वेश का परित्याग करके साधुवेश ग्रहण। तीर्थाटन करते हुए काशी प्रवास। रामकथा कहते समय प्रेत दर्शन, हनुमान मिलन, उनकी प्रेरणा पाकर तुलसी का चित्रकूट-गमन और साक्षात् राम के दर्शन। कुछ समय पश्चात् अयोध्या आगमन। स्वप्न में भगवान शंकर और देवी पार्वती का दर्शन तथा काव्य रचना का आदेश। सं. १६३१ में रामचरित मानस का प्रणयन।

उपरिलिखित घटना क्रम को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि जीवन के अभावों से उत्प्रेरित होकर व्यक्ति काव्य रचना की ओर प्रवृत्त होता है। कवि प्रतिभा का जन्म ईश्वरीय विधान के अन्तर्गत होता है। इस प्रकार कवियों का जन्म होता है, वे बनाए नहीं जाते। मनोविश्लेषणवादियों के अनुसार जिनमें फ्रायड प्रमुख हैं, **काव्य के प्रणयन में काम भावना मूल रूप से कवि के अन्तःकरण में विद्यमान रहती है। विश्व के समूचे काव्य साहित्य में श्रृंगार की सर्वाधिक सर्जना इसी का परिणाम है।**

तुलसी के समूचे काव्य साहित्य में जहाँ-जहाँ श्रृंगाररस अथवा नारी भावना की अभिव्यक्ति हुई उसके मूल में रत्ना का रूप सौन्दर्य तथा उसके प्रति वासनात्मक प्रेम ही विद्यमान रहा किन्तु कवि ने अपनी प्रतिभा के कारण उसका उदात्तीकरण कर लिया। प्रारम्भ में जो कवि मन विषयोन्मुख था, ईश्वरोन्मुख हो गया। चिरन्तर व्यथा और पीड़ा काव्य की जननी है। भावुकता की कादम्बिनी अनुभूत भावों की ऊष्मा पाकर मानस पर उमड़ने-घुमड़ने लगती है। सहानुभूति के शैलश्रृंगों से टकराकर वह विभिन्न भावों की काव्य-वृष्टि कर उठती है। कवि संसार का सबसे बड़ा भावुक प्राणी है-**''कवि की पूर्ण भावुकता इसमें है कि वह प्रत्येक मानव स्थिति में अपने को डालकर उसके अनुरूप भाव का अनुभव करे। इस शक्ति की परीक्षा का रामचरित से बढ़कर विस्तृत क्षेत्र और कहाँ मिल सकता**

है? जीवन स्थिति के इतने भेद और कहाँ दिखाई पड़ते हैं? इस क्षेत्र में जो कवि सर्वत्र पूरा उतरता दिखाई पड़ता है उसकी भावुकता को और कोई नहीं पहुँच सकता। जो केवल दांपत्य रति ही में अपनी भावुकता प्रकट कर सकें या वीरोत्साह ही का अच्छा चित्रण कर सकें, वे पूर्ण भावुक नहीं कहे जा सकते। पूर्ण भावुक वे ही हैं जो जीवन की प्रत्येक स्थिति के मर्मस्पर्शी अंश का साक्षात्कार कर सकें और उसे श्रोता या पाठक के सम्मुख अपनी शब्द शक्ति द्वारा प्रत्यक्ष कर सकें। हिंदी के कवियों में इस प्रकार की सर्वांगपूर्ण भावुकता हमारे गोस्वामी जी में ही है जिसके प्रभाव से राम चरितमानस उत्तरीय भारत की सारी जनता के गले का हार हो रहा है।"[१४२]

जब हम तुलसी की कृतियों के कालक्रम पर विचार करते हैं तो उनकी प्रारम्भिक रचनाऐं हमें संवत १६१० से लेकर १६२६ तक के कालखण्ड की ओर ले चलती हैं। इन कृतियों की रचना करते समय कवि की आयु लगभग २० वर्ष से लेकर ४० वर्ष तक अनुमन्य है। तत्कालीन काव्य परम्पराओं का निर्वाह करते हुए तुलसी ने रामलला नहछू, वैराग्य संदीपनी, रामाज्ञा प्रश्न एवं जानकी मंगल आदि रचनाओं का सृजन किया। इन कृतियों के अनुशीलन से ऐसा विदित होता है कि कवि के मानस में काव्य के अंकुर ने प्रादुर्भूत होकर शिशु-पादप का रूप ले लिया था, यह कवि का प्रारम्भिक काल था। तुलसी के ही मतानुसार-**कवि को अपनी हर प्रकार की रचना चाहे वह प्रारम्भिक हो, चाहे उसकी तरुणाई में लिखी गई हो चाहे वह उसकी प्रौढ़ एवं परिष्कृत रचना क्यों न हो, भली लगती है।** इन रचनाओं को समीक्षक दृष्टि से देखने पर ऐसा विदित होता है कि तुलसी के काव्य क्षितिज को कोई विशाल आधार प्राप्त नहीं हो सका था। उस युग में मंगल काव्यों का प्राधान्य था। तुलसी ने भी लोक परम्परा का अनुसरण किया। हाँ, इतना अवश्य है कि इन प्रारम्भिक रचनाओं ने किसी ऐसे प्रबंध महाकाव्य की पृष्ठभूमि अवश्य कर डाली, कालान्तर में जिसकी नींव पर रामचरित मानस जैसे विश्व विश्रुत महाकाव्य की सर्जना सम्भव हुई। अंतः साक्ष्य के अनुसार संवत १६३१ में मानस की सर्जना की गई। इसमें कवि ने उस युग में प्रचलित प्रायः सभी काव्य शैलियों का निर्वाह करते हुए संस्कृत, बुन्देली एवं अवधी को विशेष महत्व दिया। महात्मा कबीर की भाँति गुरु कृपा को तुलसी ने भी सर्वोच्च स्थान दिया। यही कारण है कि मानस की रचना प्रक्रिया में संस्कृत श्लोक के अनन्तर तत्कालीन प्रचलित चौपाई छन्द में कवि गुरुमहिमा गा उठा। पूर्वकाल में गुरुमुख से सुनी हुई रामकथा कवि के मानस की मंदाकिनी बनकर सहज रूप में प्रवाहित हो उठी। तुलसी की रचना प्रक्रिया में इस गुरु कृपा को विशिष्ट महत्व प्राप्त है। अभिप्राय यह कि तुलसी में वह शक्ति आ गई कि जब वे धयानस्थ होकर मसिपात्र, लेखनी और भोज पत्र लेकर बैठते तो स्वयमेव रामकथा काव्य की वाणी में मुखरित होने लगती। दूसरी ओर इसे भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि विद्वानों की नगरी काशी में कवि ने अपने अध्यवसाय के बल पर आगम, निगम, पुराण और अनेक शास्त्रों का अध्ययन किया अर्थात् पूर्ववर्ती काव्य कृतियों ने इनके काव्य पंथ को और अधिक प्रशस्त कर दिया। यत्र-तत्र तुलसी की कृतियों में अनेक ग्रन्थों की पंक्तियाँ अनुवादवत प्रतीत होती हैं। जिस प्रकार सुरासुरों ने

मिलकर सिन्धु विमन्थन किया और विमन्थन के उपरान्त उन्हें चतुर्दश रत्नों की प्राप्ति हुई उसी प्रकार तुलसी ने अपने मानस का मन्थन किया और चतुर्दश काव्य कृति रूपी रत्न प्राप्त किए।

तुलसी की यशकीर्ति की पताका लहराने वाला रामचरित मानस एक मात्र प्रबंध महाकाव्य है। इसकी रचना संयोजना में कवि को लगभग बारह वर्ष लगे होंगे। पुराकाल से लेकर अद्यावधिक रचनाकार के चित्र यह घोषित करते हैं कि किसी पुण्य सलिला के तट पर अवस्थित होकर तुलसी रचना किया करते थे। प्रकृति के पवित्र परिवेश में जिन उदात्त भावों का वे अनुभव करते थे, उनकी प्रतिभा-कल्पना उसको सरस और साकार बनाकर काव्य में परिणत कर देती थी। यह कवि का युवावस्था के पश्चात जीवन का प्रौढ़ काल था। विभिन्न अनुभवों की परिपक्वता के कारण रचना में प्रौढ़ता आना स्वाभाविक था। रामभक्त हनुमान के शुभाशीष ने भी कवि की रचना प्रक्रिया को भली-भाँति अग्रसर किया। इसके पश्चात् लिखी गई कृतियों, पार्वती मंगल, गीतावली, विनय पत्रिका, कृष्ण गीतावली, बरवै, दोहावली एवं कवितावली आदि हैं जिनमें कवि के जीवन के उत्तरार्द्ध का सत्य अंकित हुआ है। मानस और उसके पश्चात की सभी काव्यकृतियाँ भाषा और भाव की दृष्टि से अत्यंत परिमार्जित पुष्ट और शालीन हैं। इस प्रकार तुलसी की रचना प्रक्रिया की रेखा स्वाभाविक और सहज रही है। प्रायः सभी कवियों के सम्बन्ध में ऐसा ही घटित हुआ है।

कवि का भोगा हुआ यथार्थ उसकी रचना प्रक्रिया में बहुत कुछ योग देता है। इसकी अभिव्यक्ति के लिए कवि को भाषा का आश्रय लेना पड़ता है। किंतु जो कवि प्रतिभाशाली होते हैं भाषा उनकी वशवर्तिनी होकर उसकी इच्छानुसार भावों का अनुगमन करती है। फिर रामकथा का प्रभाव ही ऐसा होता है कि वह जिस भाषा में गाई जाए वह कृतकृत्य हो उठती है। लोक ने क्लिष्ट काव्य को सदैव अस्वीकार किया है। सरल, सुबोध, प्रसाद-गुण संपन्न काव्य की प्रशंसा ही काव्य मर्मज्ञ करते आए हैं क्योंकि कोई भी काव्य जो प्रसाद गुण युक्त नहीं, वह जनसाधारण के उपयुक्त नहीं होता।

सच भी है कठिन भाषा अर्थव्यंजना में व्यवधान उत्पन्न करती है और ऐसी स्थिति में कवि को गन्तव्य तक पहुँचने में अत्यधिक कठिनाई का अनुभव करना पड़ता है। भावों की अभिव्यक्ति का माध यम कोई भी भाषा बने, वह यदि लोक के निकट है, तभी वह ग्राह्य और उपादेय हो सकती है अन्यथा नहीं। लोक कल्याण की भावना को लेकर ही तुलसी इस क्षेत्र में आगे बढ़े।

तत्कालीन युग में काव्य की भाषा के रूप में ब्रजभाषा प्रतिष्ठित थी। तुलसी ने उसे स्वीकार करते हुए अवधी को ही अपने काव्य का माध्यम बनाया। तुलसी का शब्द-भण्डार भावानुकूल एवं वस्तु के प्रकटीकरण के लिये अत्यंत समीचीन है। उन्होंने संस्कृत की तत्सम शब्दावली के साथ ही साथ देशज, विदेशज, तद्भव और अर्द्ध तद्भव शब्दों का खुलकर प्रयोग किया है। अनेक संज्ञाओं को क्रिया के रूप में और क्रियाओं को संज्ञा रूप में प्रयुक्त करके उन्होंने अपनी व्याकरण की विद्वत्ता प्रकट की। तुलसी ने लोकोक्तियों, मुहावरों और कहावतों को सहज रूप में प्रयोग करके भाषा को प्रभावी और आकर्षक बनाने में सफलता प्राप्त की।

इसी प्रकार इनकी रचनाओं में अभिधा, लक्षणा, व्यंजना तीनों शक्तियाँ, प्रसाद, माधुर्य और ओज तीनों गुण एवं परुषा, उपनागरिका और कोमला तीनों वृत्तियाँ सहज रूप में विद्यमान हैं। मनीषी उनके अलंकार निरूपण पर मुग्ध हैं। तुलसी के भाषिक-कौशल के संदर्भ में निरंजन लाल शर्मा का निम्न अभिमत समीचीन है कि-"**भाषा पर तुलसी का असाधारण अधिकार है। अपने प्रतिपाद्य विषय की समर्थ व्यंजना के लिए उन्होंने प्रसंगों, पात्रों एवं भावों के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है। रति, करुणा आदि कोमल भावों की व्यंजना में प्रायः समास-रहित मधुर पदावली का व्यवहार किया गया है। रौद्र, वीभत्स, भयानक आदि रसों के प्रसंग में तदनुरूप समासों और परुष पदावली का व्यवहार हुआ है। अपने कथ्य को अधिक से अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने के लिए उन्होंने चुभते हुए शब्दों का आवश्यकतानुसार चयन किया है। 'नतरु बांझ भलि बादि बियानी' में निन्दापरक शब्दों की योजना भी मार्मिक है। उनकी संवादयोजना में स्वाभाविक, सजीव, प्रसाद-गुणपूर्ण, भावप्रवण, विदग्धतापूर्ण, युक्तियुक्त नाटकोचित भाषा का प्रयोग मिलता है। मंथरा-कैकेयी-संवाद आदि के अवसरों पर सामान्य प्रचलित भाषा का व्यवहार है। 'विनयपत्रिका' के स्तोत्रों 'रामचरित मानस' के दार्शनिक प्रकरणों आदि में संस्कृत निष्ठ और अर्थगौरवशाली शब्दावली का प्रयोग मिलता है। इस प्रकार तुलसीदास ने अपनी विभिन्न कृतियों में परिस्थितियों के अनुरूप सशक्त भाषा का अधिकार पूर्वक प्रयोग किया है। वस्तुतः वे भाषा के सम्राट हैं।**"[१४३]

तुलसी के काव्य की समूची मूल वस्तु की धारा अत्यंत प्राचीन एवं परम्परा से ग्रहीत है फिर भी तुलसी ने उसमें नवीन प्राणों का संचार किया। अपनी करयित्री और भावयित्री प्रतिभा के बल पर उसे एक ऐसा अभिनव स्वरूप प्रदान किया जो सबकी चिरपरिचित होते हुए भी प्रशंसनीय बन गई। पात्र, कवि के मनोगत भावों को साकार रूप देते हैं। तुलसी ने भी अनेक नए स्थल, नयी परिस्थितियाँ, नवीन परिवेश, काव्य के नये क्षितिज उद्घाटित करते हुए जनमानस को उद्वेलित किया। मानस और विनयपत्रिका वस्तु की सुन्दर संयोजना के श्रेष्ठ ग्रन्थ माने जाते हैं। इनमें कहीं पौराणिक संवादों की छटा है तो कहीं विषय को प्रतिपादित करने वाली विशाल भूमिकाएँ और कहीं सरस सूक्तियों के द्वारा सामाजिक की क्षमता का उन्नयन। जीवन की अनेक विषम परिस्थितियाँ, उनका संगठन कवि की अनूठी कल्पना का प्रमाण हैं। सम्पूर्ण मानस में ऐसी छवियों के उत्स सर्वत्र प्रवहमान हो रहे हैं। अनेक स्थलों पर उनकी कारयित्री एवं भावयित्री प्रतिभा के उच्च्व निदर्शन उपलब्ध होते हैं। उनका कलापक्ष जितना उत्कृष्ट है उससे कहीं अधिक भावपक्ष भी अत्यंत संपुष्ट और प्रभावी बन पड़ा है। यही कारण है कि तुलसी की स्वान्तः सुखाय रचनाएँ सर्वजन सुखाय बनकर समूचे लोक का कण्ठहार बन गई हैं। अलंकार और छन्द योजना भाषा की कुशल अभिव्यक्ति के लिए सशक्त उपकरण माने जाते हैं इसमें तुलसी कहीं भी नहीं चूके। तुलसी ने उपयुक्त भावाभिव्यक्ति के लिए समुचित और समीचीन छन्द को स्वीकार किया है।

तुलसी का कृत्रिम अभिव्यंजना में किंचित भी विश्वास नहीं था। वे सदैव प्रकृत, सहज और

(स) रथ सारथिन्ह बिचित्र बनाए। ध्वज पताक मनि भूषन लाए।।
चँवर चारु किंकिनि धुनि करहीं। भानु जान सोभा अपहरहीं।।
सांवकरन अगनित हय होते। ते तिन्ह रथन्ह सारथिन्ह जोते।।
सुंदर सकल अलंकृत सोहे। जिन्हहि बिलोकत मुनि मन मोहे।।
जे जल चलहिं थलहि की नाईं। टाप न बूड़ बेगि अधिकाईं।।[२५७]

(द) कोटिन काँवरि चले कहारा। बिबिध बस्तु को बरनै पारा।।[२५८]

(य) महा भीर भूपति के द्वारें। रज होइ जाइ पषान पबारें।।[२५९]

(र) तब सुमंत्र दुइ स्यंदन साजी। जोते रबि हय निंदक बाजी।।
दोउ रथ रुचिर भूप पहिं आने। नहिं सारद पहिं जाहिं बखाने।।[२६०]

राजा जनक का ऐश्वर्य भी कम नहीं है। अगवानी करने का चित्र स्वतः ही सामन्ती वैभव की झांकी प्रस्तुत करता है। तुलसी अभिव्यक्ति देते हैं-

१. कनक कलस भरि कोपर थारा। भाजन ललित अनेक प्रकारा।।
भरे सुधा सम सब पकवाने। नाना भांति न जाहिं बखाने।।
फल अनेक बर बस्तु सुहाईं। हरषि भेंट हित भूप पठाईं।।
भूषन बसन महामनि नाना। खग मृग हय गय बहुबिधि जाना।।
मंगल सगुन सुगंध सुहाए। बहुत भांति महिपाल पठाए।।
दधि चिउरा उपहार अपारा। भरि भरि कांवरि चले कहारा।।[२६१]

२. बसन बिचित्र पांवड़े परहीं। देखि धनदु धन मदु परिहरहीं।।[२६२]

दहेज के वर्णन को तुलसी ने यों अभिव्यक्त किया है-

भरि भरि बसहँ अपाल कहारा। पठईं जनक अनेक सुसारा।।
तुरग लाख रथ सहस पचीसा। सकल सँवारे नख अरु सीसा।।
मत्त सहस दस सिंधुर साजे। जिन्हहिं देखि दिसि कुंजर लाजे।।
कनक बसन मनि भरि भरि जाना। महिषीं धेनु बस्तु बिधि नाना।।
दाइज अमित न सकिअ कहि, दीन्ह बिदेहँ बहोरि।।
जो अवलोकत लोकपति, लोक संपदा थोरि।।[२६३]

आराध्य की प्रत्येक वस्तु में भक्त को भव्यता का आभास होता है। इसी कारण कवियों ने आराध्य के भव्यातिभव्य चित्र खींचने के प्रयास किये हैं। अपनी पूरी कल्पना शक्ति और रचनात्मक ऊर्जा के सम्मिलित उत्कर्ष के माध्यम से तुलसी ने राम से सम्बन्धित वस्तुओं में सौन्दर्य का अपूर्वानुभावन कराने का यत्न किया है। निश्चित रूप से आराध्य और उससे संबंधित पारिवेशिक वस्तुओं की भव्यता भक्त को अभिभूत कर उदात्तता की परिधि में प्रवेश कराने में सहायक होती है। तुलसी ने राम के औदात्य को निखारने की दृष्टि से ऐसे भव्य चित्र संजोए हैं जो प्रकारांतर से सामंती सौन्दर्य का आभास पूरी तीव्रता से देते हैं। राम के शयन कक्ष की शोभा युगीन सामंती वैभव को

प्रत्यक्ष करती है-

भूप बचन सुनि सहज सुहाए। जरित कनक मनि पलंग डसाए।।
सुभग सुरभि पय फेन समाना। कोमल कलित सुपेतीं नाना।।
उपबरहन बर बरनि न जाहीं। स्रग सुगंध मनिमंदिर माहीं।।
रतनदीप सुठि चारु चँदोवा। कहत न बनइ जान जेहिं जोवा।।[२६४]

सौन्दर्य विधान की दृष्टि से गीतावली का स्थान तुलसी साहित्य में सर्वोपरि है। यद्यपि कलेवर की दृष्टि से इसका स्थान मानसोपरांत ही है किन्तु ललित भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से इसका महत्व मानस से अधिक स्वीकारा जा सकता है। एक बात और ध्यातव्य है कि इसकी कथा में भी अंतर है। लालित्य की दृष्टि से अन्य विषयों की उपेक्षा इसमें दृष्टिगत होती है। इसमें तुलसी ने रूप माधुर्य और करुण रसानुभावन को प्रमुखता दी है। पूरी गीतावली में सौन्दर्य का अथाह सिन्धु उमड़ता लक्षित होता है। बालकाण्ड में राम के बाल रूप का, काण्डान्त में जनकपुर की नारियों द्वारा उनकी किशोर मूर्ति का तथा उत्तर कांड में उनके राजवेष का ललित चित्रांकन उपलब्ध है जिसमें राम का सौन्दर्य अपने पूर्णोत्कर्ष की छटा प्रस्तारित करता है। सामंती सौन्दर्य के चित्र भी यथानुसार खचित हैं। प्रस्तुत उदाहरण तुलसी के आराध्य राम के वैभव के साथ ही सामंती सौन्दर्य का ललिताभास देने में सक्षम है। तुलसी राम के हिंडोले का वर्णन करते हुए कहते हैं कि रघुनाथ जी के मनोहर हिंडोले के चारों ओर स्फटिक मणि की मनोहर दीवारें हैं, दरवाजे मणियों से विनिर्मित हैं। उसमें लगी काँच की गचें मन हरण करने वाली हैं। उस हिंडोले में अनेक प्रकार की मूर्तियाँ तथा चित्र उकेरे गए हैं जिनकी प्रतिछाया मणि और काँच में प्रतिबिम्बित होती है। उस हिंडोले में सीधे और बड़े-बड़े खम्भे कामदेव के विजय स्तम्भ के सदृश हैं। उसमें जो चंदन की पाटी तथा लाल रंग का बेलन है वह विचित्र प्रकार से उकेरी गई आकृतियों में गुंफित है। उस अरुणवर्णी बेलन में स्वर्ण जटित डंडी कुछ ऐसी शोभा प्रस्तारित करती है मानो कामदेव के मस्तक पर कुंकुम के तिलक की रेखा हो और पटुली ऐसी प्रतीत होती है मानो रति के वक्षस्थल पर पदिक तथा सोने की कोमल माला पड़ी हो-

फटिक-भीति सुचारु चहुँ दिसि, मंजु मनिमय पौरि।
गज काँच लखि मन नाच सिखि जनु पाँच सर-सुफँसौरि।।
तोरन-बितान-पताक चामर-धुज सुमन-फल धौरि।
प्रतिछाँह-छबि कबि-साखि दै प्रति सों कहै गुरु हौं रि।।
मदन जय के खंभ से रचे खंभ सरल बिसाल।
पाटीर-पाटि बिचित्र भँवरा बलित, बेलन लाल।।
डाँड़ो कनक कुंकुम-तिलक-रेख-सी मनसिज-भाल।
पटुली पदिक रति-हृदय जनु कलधौत कोमल माल।।[२६५]

'रामलला नहछू' में तुलसी सामंती वैभव की झलक देते हुए कहते हैं कि हरे-हरे बाँसों से मण्डप विनिर्मित है, उसमें मणियाँ पिरोयी गई हैं। चारों ओर मोतियों की झालरें झूल रही हैं-

आले हि बाँस के माँडव मनिगन पूरन हो।
मोतिन्ह झालरि लागि चहूँ दिसि झूलन हो।।[२६६]

आगे वर्णन करते हुए तुलसी कहते हैं- गजमुक्ता, हीरा और मणियों से चौक पूरा गया। तदुपरान्त सुन्दर अर्घ्य देकर श्री राम को उस चौक पर बिठाया गया। उसके चारों ओर सोने के खंभे हैं और खम्भों के मध्य में सिंहासन है। मण्डप में मणियों के दीप प्रज्ज्वलित हैं। ऐसे सिंहासन पर श्री रामचन्द्र जी को बिठाया गया-

गग मुकुता हीरा मनि चौक पुराइय हो
देइ सुअरघ राम कहँ लेइ बैठाइय हो।
कनक खंभ चहुँ ओर मध्य सिंहासन हो
मानिकदीप बराय बैठि तेहि आसन हो।।[२६७]

नाखून काटने के बदले में न्योछावर का वर्णन स्वतः सामंती सौन्दर्य का परिचायक है। नाऊ को इतना दान मिलता है कि वह गाड़ी भर कर ले जाता है। तुलसी कहते हैं कि हजारों सूप रत्नादि पदार्थों से भर जाते हैं, राजा हाथी देते हैं और रानियाँ हार प्रदान करती हैं यथा-

अ. **राजन दीन्हे हाथी रानिन्ह हार हो।**
भरि गे रतन पदारथ सूप हजार हो।।[२६८]

ब. **भरि गाड़ी निवछावर नाउ ले आवइ हो।**
परिजन करहिं निहाल असीसत आवइ हो।।[२६९]

राम को दूल्हे के वेश में देखकर माता अत्यन्त प्रमुदित हो कर करोड़ों प्रकार से दान देते हैं तुलसी कहते हैं कि इतनी वस्तुओं का दान दिया गया मानो मेघ वर्षा कर रहा हो-

दूलह कै महतारि देखि मन हरषइ हो।
कोटिन्ह दीन्हेउ दान मेघ जनु बरखइ हो।।[२७०]

परिणय आख्यान होने के कारण जानकी मंगल में तुलसी ने सामंती सौन्दर्य की युगानुरूप व्यंजना प्रस्तुत की है। तुलसी जनवासे के समय का वर्णन करते हुए कहते हैं कि बारात के मध्य राम विवाहोचित आभूषणों से सज्जित ऐसे प्रतीत होते हैं मानो कामदेव के बाग में कल्पवृक्ष फूला हो। उस समय महाराज जनक अनेक प्रकार से विविध उपहार प्रेषित करते हैं। उन उपहारों को देखकर देवता भी ईर्ष्या करते प्रतीत होते हैं। यहाँ तुलसी ने सामंती वैभव का संकेत भर दिया है-

पठई भेंट बिदेह बहुत बहु भाँतिन्ह।
देखत देव सिहाहिं अनंद बरातिन्ह।।[२७१]

दहेज का अवर्णनीय वर्णन भी सामंती सौन्दर्य की उद्‌भावना व्यक्त करता है। तुलसी वर्णन करते हैं कि दासी-दास, घोड़े-हाथी, सोना-वस्त्र और मणियों सहित अनेक प्रकार का दहेज राजा जनक ने दिया जिसका वर्णन करना संभव नहीं-

दाइज भयउ बिबिध बिधि जाइ न सो गनि।

दासी दास बाजि गज हेम बसन मनि।।[२७२]

इसके उपरान्त बारात वापस अयोध्या लौट आती है। अयोध्या में नगर की विशिष्ट सज्जा सामंती सौन्दर्य का सुन्दर उदाहरण कही जा सकती है। अयोध्या में घाट, बाट, पुर, द्वार और बाजार अत्यन्त सुसज्जित हैं। गलियों में सुगन्धित द्रव्यों का छिड़काव किया गया है। घर-घर में वन्दनवार, पताका और चँदोवे विराजमान हैं-

घाट बाट पुर द्वार बजार बनावहिं।
बीथीं सींचि सुगंध सुमंगल गावहिं।।
चौकें पूरैं चारु कलस ध्वज साजहिं।
बिबिध प्रकार गहागह बाजन बाजहिं।।
बंदनवार बितान पताका घर-घर।
रोपे सफल सपल्लव मंगल तरुबर।।[२७३]

इस अवसर पर तुलसी ने ब्राह्मणों को वस्त्र, सोना, मणि और गायों के दान का भी उल्लेख किया है जो स्वतः सामन्ती सौन्दर्य का अनुभावन कराता है।

भवन आनि सनमानि सकल मंगल किए।
बसन कनक मनि धेनु दान बिप्रन्ह दिए।।[२७४]

पार्वती मंगल भी परिणय काव्य है। इसमें भी तुलसी ने दहेज वर्णन के माध्यम से सामंती वैभव को संकेतित करने का प्रयास किया है। तुलसी कहते हैं कि पर्वतराज हिमवान ने वस्त्र, मणियाँ, गौ, धन, हाथी, घोड़े, दास-दासियाँ जो कुछ भी गिरिराज को प्रिय थे वे सभी प्रेमपूर्वक दहेज में दिए-

दाइज बसन मनि धेनु धन हय गय सुसेवक सेवकी।
दीन्हीं मुदित गिरिराज जे गिरिजहि पिआरी पेव की।।[२७५]

कवितावली में तुलसी ने लंकादहन के माध्यम से सामन्ती वैभव का आभास कराया है। तुलसी कहते हैं कि करोड़ों सोने के मुकुट, पलंग, पिटारे और सिंहासन अग्नि में जलकर स्वाहा हो गए। हाथी हाथीखाने में और घोड़े घुड़साल में ही झुलस गए। बाजार तथा राह में ढेर का ढेर सोना घी के समान पिघल कर बह रहा है-

१. पान-पकवान बिधि नाना के सँधानो, सीधो
बिबिध बिधान धान बरत बखारहीं।
कनक किरीट कोटि पलंग, पेटारे, पीठ
काढ़त कहार सब जरे भरे भारहीं।।
प्रबल अनल बाढ़ें जहाँ काढ़े तहाँ डाढ़े
झपट-लपट भरे भवन-भँडारहीं।
तुलसी अगारु न पगारु न बजारु बच्यो
हाथी हथसार जरे घोरे घोरसारहीं।।[२७६]

२. हाट बाट हाटकु पिघिलि चलो घी-सो सनो
कनक कराही लंक तलफति तायसों।[२७७]

इस संक्षिप्त अनुशीलन से यह स्पष्ट है कि तुलसी साहित्य में उपलब्ध सामंती सौन्दर्य की सरस उद्भावना युगीन वैभव का अनुभावन और आकलन कराने में सक्षम है।

जनवादी सौन्दर्य

तुलसी मध्य युगीन कवि थे। इस युग में भक्ति का प्राधान्य था। इस युग के सभी कवियों एवं साहित्यकारों की मूल चेतना धार्मिक थी। इस प्रकार धर्म के माध्यम से जो मानववाद अथवा जनवाद उत्पन्न हुआ, उसमें मानव अथवा जन-हित सर्वोपरि था। सृष्टि में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। धार्मिक जनवाद में प्राणीमात्र की मंगल कामना प्रमुख रूप से विद्यमान है। इसीलिये पुराकालीन कवि कह उठा-

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्।।"

तुलसी के समूचे साहित्य में उक्त ऋषि वाणी फलित एवं चरितार्थ होती हुई दृष्टि गोचर होती है। सम्पुष्टि में मानस की अर्धाली प्रस्तुत है- **"कीरति भनति भूति भलि सोई। सुरसरिसम सब कर हित होई।"** अतएव वे रामकथा के माध्यम से भक्ति और लोककल्याण की बात ही प्रायः प्रकारान्तर से रखते हुये सर्वत्र राम के अलौकिक रूप को लौकिक धरातल पर लाने का प्रयास करते हैं। राम राजा औंर अत्यधिक वैभव सम्पन्न होते हुये भी सम्पूर्ण मानव जाति के रक्षक बनकर जन-जन के समक्ष उपस्थित होते हैं। उनके मन में उच्च वर्ण और निम्न वर्ण में किसी प्रकार का विभेद नहीं है। वे राक्षसी वृत्ति के विनाशक और मानवीय मूल्यों के प्रतिष्ठापक हैं। उन्होंने, ऋक्ष, वानर, कोल, किरात, भिल्ल वनवासी आदिवासी जन जातियों का संगठन करके उनमें नवीन युग चेतना का शंख फूँककर उन्हें स्वावलम्बी ही नहीं बनाया वरन् उनमें अत्याचारी और अनाचारी शक्तियों से संग्राम करना भी सिखलाया जिससे वे सब उनकी पराधीनता के प्रलयंकारी पाश से मुक्त होकर स्वतंत्रता की सच्ची वातास का अनुभव कर सकें। तुलसी ने शासक और शोषित के बीच अन्तर स्पष्ट किया क्योंकि कोई भी शासक हो, वह अन्ततः सामन्ती अधिनायकत्व का ही प्रतीक बनकर जन-जन का शोषण करना अपना पुनीत कर्तव्य समझता है। इसलिए शासक और शोषित के बीच की इस सर्वाधिक गहरी खाई को सदा-सदा के लिये समाप्त करना पड़ेगा, तभी और तभी सच्चे लोकतंत्र का भव्य-भवन प्रस्थापित किया जा सकता है जिसमें समूचा सर्वहारा वर्ग सुख, शान्ति से रह सके। उसके प्रति क्रूरतापूर्ण नहीं सहानुभूति पूर्ण व्यवहार किया जाये। उसे पशु की संज्ञा से अभिहित न कर पूर्ण मनुष्य माना जाये। उसके सभी अधिकार और कर्तव्य सुरक्षित रहें। उसे कभी भी परमुखापेक्षी न बनना पड़े, साथ ही साथ शासन में भी उसकी समुचित भागीदारी हो। उनके बच्चों को वे सारी सुख-सुविधायें प्राप्त हों जो राजकुमारों या अन्य कुलीन घरानों के बालकों को सहज सुलभ होती हैं।

वर्णाश्रम धर्म के अनुयायी और परिपोषक होते हुये भी तुलसीदास इस अर्थ में प्रगतिशील हैं और जनवादी भी। उनकी कृतियों में यत्र तत्र सर्वत्र जनवादी भावनायें मुखर हुई हैं यथा-

'जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी, सो नृप अवस नरक अधिकारी।।''

तुलसी के राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। उनमें मनुष्यता के समूचे श्रेष्ठ गुण विद्यमान हैं। अपने आदर्शीकृत स्वरूप के कारण वे मानवता की प्रतिमूर्ति हैं जिन्होंने राज्याभिषेक की घोषणा होने के उपरान्त तुरन्त सहज रूप से हँसते हुये वनवास को स्वीकार कर लिया मात्र कर्तव्य परायणता की मर्यादा रखने के लिए। सामान्य और असामान्य का ऐसा अद्भुत और अनुपम समन्वय देखने को और कहाँ मिलेगा? आचार्य शुक्ल के मतानुसार **तुलसी के मानस से जो शील, शक्ति और सौन्दर्यमयी स्वच्छ धारा निकली, उसने जीवन की प्रत्येक स्थिति के भीतर पहुँचकर भगवान के स्वरूप का प्रतिबिम्ब झलका दिया। रामचरित की इसी जीवन व्यापकता ने तुलसी मत की वाणी को राजा, रंक, धनी, दरिद्र, मूर्ख, पण्डित सब के हृदय और कण्ठ में सब दिन के लिये बसा दिया। किसी श्रेणी का हिन्दू हो, वह अपने प्रत्येक जीवन में 'राम को साथ पाता है- सम्पत्ति में, विपत्ति में, घर में, वन में, रणक्षेत्र में, आन्दोत्सव में, जहाँ देखिये, वहाँ राम..................गोस्वामी जी के वचनों में हृदय को स्पर्श करने की जो शक्ति है- वह अन्यत्र दुर्लभ है, उनकी वाणी की प्रेरणा से आज हिन्दू जनता अवसर के अनुसार सौन्दर्य पर मुग्ध होती है, महत्व पर श्रद्धा करती है, शील की ओर प्रवृत्त होती है, सन्मार्ग पर पैर रखती है, विपत्ति में धैर्य धारण करती है, कठिन कार्य में उत्साहित होती है, दया से आर्द्र होती है, बुराई पर ग्लानि करती है, शिष्टता का अवलम्बन करती है और मानव जीवन के महत्व का अनुभव करती है।''** ऐसा तुलसी की उस लोक कल्याण की चेतना और राम के मानवीय स्वरूप के कारण है जो पारलौकिकता और भक्ति के आवरण के भीतर भी मानवता और मानवीय मूल्यों की व्यावहारिक प्रस्तुति करने का प्रयास करता है-

''जब जब होई धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।।
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहि विप्र धेनु सुर धरनी।।
तब-तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपा बिधि सज्जन पीरा।।

इस अनुशीलन से स्पष्ट है कि तुलसी साहित्य में सौन्दर्य के विविध रूप यथोचित रूप में माला के मोतियों के सदृश अपनी-अपनी आभा प्रस्तारित करते हैं जो तुलसी की सौन्दर्याभिव्यक्ति का सुललित प्रमाण देते हैं।

□□□

संदर्भ

१. तुलसी काव्य, मीमांसा पृष्ठ ६६

२. रामचरित मानस १-३३-३, ३४-३

३. माताप्रसाद गुप्त- तुलसीदास पृष्ठ २३६

४. मानस पीयूष - पृष्ठ ४८५/२

५. श्रीकृष्ण लीला मानस दर्शन पृष्ठ १४५

६. श्रीधर सिंह - मानस का कथा-शिल्प ६३

७. शम्भुनाथ सिंह हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृष्ठ ५३२-५३३

८. उदयभानु सिंह तुलसी काव्य-मीमांसा पृष्ठ ४०६

९. आचार्य शुक्ल, गोस्वामी तुलसी दास

१०. आचार्य शुक्ल, गोस्वामी तुलसीदास

११. व्यापक ब्रह्म निरंजन, निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौशल्या के गोद।। मानस १/१९८

१२. मानस १/१४६

१३. मानस ५/३१/३

१४. मानस २/२४०

१५. मानस २/१८०

१६. मानस २/२०७/४

१७. शम्भुनाथ सिंह हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृष्ठ ५४४

१८. डॉ० राजपति दीक्षित तुलसीदास और उनका युग पृष्ठ ३९७

१९. साहित्य दर्पण ६-३१७

२०. शम्भुनाथ सिंह, हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास पृ० ५५६

२१. आचार्य शुक्ल : गोस्वामी तुलसीदास

२२. मानस १/३०/२

२३. मानस १/३५१

२४. माताप्रसाद गुप्त- तुलसीदास पृष्ठ २५०-२५३

२५. रामनरेश त्रिपाठी **तुलसीदास** और उनका काव्य पृष्ठ २२६

२६. डॉ० उदयभानु सिंह : **तुलसी काव्य मीमांसा** पृष्ठ १२३

२७. डॉ० इन्द्रपाल सिंह इन्द्र **तुलसी साहित्य और साधना** पृष्ठ ६७

२८. डॉ० चन्द्रबली पाण्डेय **तुलसीदास** पृष्ठ २४६-५१

२६. **तुलसी दास और उनका काव्य** पृष्ठ २३४

३०. प्रो. दान बहादुर पाठक **विनयपत्रिका समीक्षा** पृष्ठ १६३-१६४

३१. सं० वियोगी हरि **विनयपत्रिका** परिचय पृष्ठ १

३२. वही वक्तव्य पृष्ठ ३२-३३

३३. **विनयपत्रिका** १२४

३४. **विनयपत्रिका** १६२

३५. डॉ० उदयभानु सिंह : **तुलसी काव्य मीमांसा** पृष्ठ ४७५-४७६

३६. **कृष्णगीतावली** पृष्ठ १३

३७. **कृष्णगीतावली** पद २१

३८. **पार्वतीमंगल** ५

३६. **पार्वतीमंगल** ३७-३८

४०. वही ६१-६२

४१. वही १३१-१३२

४२. वही ११४

४३. **जानकी मंगल** - ३

४४. **तुलसी दास और उनका काव्य** पृष्ठ २२६-२२७

४५. **जानकी मंगल** ८४

४६. वही ८१

४७. वही ५१-५२

४८. **जानकी मंगल** ८६

४६. वही १०६

५०. वही ८७

५१. **दोहावली** ३१०

५२. वही २४८

५३. वही ३५२

५४. वही ५६८

५५. वही ३८१

५६. वही ५०८

५७. **बरवै रामायण** १६

५८. वही ३७

५६. वही १८

६०. वही १३

६१. वही ३१

६२. डॉ० माता प्रसाद गुप्त, तुलसीदास पृष्ठ २२३

६३. **रामाज्ञा प्रश्न** ७/७/७

६४. माता प्रसाद गुप्त तुलसीदास पृष्ठ २१८

६५. डॉ० श्यामसुंदर दास - **गोस्वामी तुलसीदास** पृष्ठ ६६

६६. **तुलसी के चार दल** पृष्ठ ६६

६७. **तुलसीदास और उनकी कविता** पृष्ठ ३७६

६८. **हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास** पृष्ठ ३६४

६६. **गोस्वामी तुलसीदास** पृष्ठ ३३३

७०. **रामलला नहछू** ६

७१. वही ४

७२. वही १०

७३. **रामलला नहछू** ७

७४. वही ५

७५. माता प्रसाद गुप्त **तुलसीदास** पृष्ठ २१७

७६. **गोस्वामी तुलसीदास** पृष्ठ ७६

७७. **तुलसीदास** और उनका काव्य पृष्ठ २२३

७८. **तुलसीदास** और उनका साहित्य पृष्ठ ५६

७६. **तुलसीदास** मीमांसा पृष्ठ ८२

८०. **तुलसीदास** पृष्ठ २२१

८१. **हिन्दी सा० का आलोचनात्मक इतिहास** पृष्ठ ३६८

८२. **वैराग्य संदीपनी** २७, २८

८३. **वैराग्य संदीपनी** ४

८४. वही

८५. **तुलसीदास और उनकी कविता**

८६. **हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास** पृष्ठ ४१४-१५

८७. **हनुमान बाहुक,** ३

८८. हनुमान बाहुक, १४

८९. हनुमान बाहुक, १८

९०. सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना। ज्ञान नयन निरषत मन माना।।
रघुपति महिमा अगुन अबाधा। बरनब सोइ बर बारि अगाधा।।
राम सीअ जस सलिल सुधा सम। उपमा बीचि बिलास मनोरम।।
पुरइनि सघन चारु चौपाई। जुगुति मंजु मनि सीप सुहाई।।
छंद सोरठा सुंदर दोहा। सोइ बहु रंग कमल कुल सोहा।।
अरथ अनूप सुभाव सुभाषा। सोइ पराग मकरंद सुबासा।।
सुकृत पुंज मंजुल अलि माला। ज्ञान विराग बिचार मराला।।
धुनि अवरेब कबित गुन जाती। मीन मनोहर ते बहु भाँती।।
अरथ धरम कामादिक चारी। कहब ज्ञान विज्ञान बिचारी।।
नवरस जप तप जोग बिरागा। ते सब जलचर चारु तड़ागा।।
सुकृती साधु नाम गुन गाना। ते विचित्र जल बिहग समाना।।
संत सभा चहुं दिसि अँबराई। श्रद्धा रितु बसंत सम गाई।।
भगति निरूपन बिबिध बिधाना। छमा दया दम लता बिताना।।
सम जम नियम फूल फल ज्ञाना। हरि पद रति रस वेद बखाना।।

९१. वर्णानामर्थ संघानां रसानां छन्दसामपि।
मंगलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणी विनायकौ।। मानस १/१

९२. सं. डा. उदयभानु सिंहः तुलसी (उदयभानुसिंह) पृष्ठ ५०

९३. जो प्रबन्ध बुध नहिं आदरहीं। मानस १/१३/४
कथा प्रबन्ध विचित्र बनाई। मानस १/३२/१

९४. रामचरित मानस कवि तुलसी। मानस-१/३५/१

९५. वायुपुराण ६५, महाभारत ५१-५२, हर्षचरित-१

९६. रामदत्त भारद्वाज-काव्य शास्त्र की रूपरेखा

९७. कीरति भनिति भूति भल सोई। सुरसरि सम सब कर हित होई।। मानस

९८. भनिति विचित्र सुकवि कृत जोऊ। रामनाम बिनु सोह न सोऊ।।
बिधुबदनी सब भाँति सँवारी। सोह न बसन बिना नर नारी।। मानस

९९. वर्णानामर्थ संघानां रसानां छन्दसामपि।
मंगलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणी विनायकौ।। मानस १/१

आखर अरथ अलंकृति नाना। छन्द प्रबंध अनेक बिधाना। मानस १/८/४
कबिहिं अरथ आखर बहुँ साँचा। अनुहरि ताल गतिहि नदुनाँचा।। मानस
गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।

बंदहु सीता-रामपद जिनहिं परमप्रिय खिन्न।। मानस १/१५

१००. वागार्था विव संपृक्तौ वागर्थ प्रतिपत्तये
जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ। रघुवंश १/१

१०१. रामचरित जे सुनत अधाहीं। रस विशेष जान्हा तिन्ह नाहीं।। मानस ६/५२/१
हरिपद रति रस वेद बखाना। मानस १/३६-७
पूनों प्रेम-भगति-रस हरि-रस जानहिं दास। विनय पत्रिका २०३

१०२. दुःखार्त्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्।
विश्रान्तिजननं काले नाट्यमेतद भविष्यति।।
धर्म्यं यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धि विवर्द्धनम्।
लोकापदेश जननं नाट्यमेतद् भविष्यति।।

१०३. धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यम कलासु च
करोति कीर्ति प्रीतिं च साधु काव्यभिबन्धनम्। काव्यालंकार १/२

१०४. काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहार विदे शिवेत रक्षतये।
सद्यः परिनिर्वृत्तये कान्तासम्मित तयोपदेश युजे।।

१०५. स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा भाषा निबन्ध मति मंजुल मातनोति। मानस १/७

१०६. मन्दः कवि यशः प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम
प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः।। कालिदास
थ्ंउम पे जीम`चनत जींज जीम बसमंत`चपतपज कवजी तंपेम
;जींज सेंज पदपितदपजल व`िदवइसम उपदकद्ध
जीम`बवतद कमसपहीजे`दक सपअम संइवतपवने कंले.श्रवीद डपसजवद

१०७. जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयम।। -भर्तृहरि

१०८. मानस ७/१ श्लोक

१०९. मानस- १/२०४/३

११०. मानस १/३५/१

१११. मानस १/८/४-५

११२. मानस १/१३/४

११३. मानस २/१ (प्रथम श्लोक)

११४. मानस २/१३३

११५. मानस २/२६७-७-८

११६. मानस ६/११२-प्रथम छंद

११७. कवितावली २/१५

११८. कवितावली २/१६

११६. बरवै रामायण ४/३४

१२०. मानस १/१४

१२१. मानस १/२१

१२२. मानस १/२६

१२३. मानस १/३१

१२४. मानस १/२५/६-१/४३ (क)

१२५. मानस १/४७-४

१२६. मानस १/६६-(३-४)

१२७. मानस १/८०

१२८. मानस १/८४-८५

१२६. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल-**गोस्वामी तुलसीदास** पृष्ठ ७४

१३०. मानस १/२२६/३-४-११६

१३१. मानस १/११७/३-४

१३२. मानस १/२३०-१

१३३. मानस ६/६१

१३४. गीतावली पद ३३

१३५. मानस १/२३०-२

१३६. मानस १/२२७

१३७. मानस २/६-३

१३८. दोहावली १

१३६. मानस १/२२८/३-४

१४०. आचार्य शुक्ल **'चिन्तामणि'** कविता क्या है निबन्ध से

१४१. आचार्य शुक्ल **'चिन्तामणि'** कविता क्या है निबन्ध से

१४२. आचार्य शुक्ल **गोस्वामी तुलसीदास** पृष्ठ ७३

१४३. सं० उदयभानु सिंह **(निरंजन लाल शर्मा का लेख) तुलसी** पृष्ठ ३१७

१४४. सं० उदयभानु सिंह **'तुलसी' (श्रीधर सिंह का निबन्ध)** पृष्ठ १३५ से उद्धृत

१४५. तुलसी, **गीतावली** ३/१

१४६. तुलसी, **गीतावली** ३/२

१४७. तुलसी, **विनयपत्रिका** ४५

१४८. तुलसी, **रामचरित मानस** १/२४७-१

१४६. तुलसी, **रामचरित मानस** १/२४८-२/४

१५०. तुलसी, रामचरित मानस १/२३०-७/८

१५१. तुलसी, कवितावली २/१६

१५२. तुलसी, कवितावली २/२२

१५३. तुलसी, जानकी मंगल १०७

१५४. तुलसी, बरवै रामायण १/११

१५५. तुलसी, कवितावली १/२

१५६. तुलसी, रामचरितमानस १/२०३

१५७. तुलसी, कवितावली २/२४

१५८. तुलसी, गीतावली २/१४

१५९. तुलसी, गीतावली २/४४

१६०. तुलसी, गीतावली २/४६

१६१. तुलसी, रामचरितमानस ४/१३ (१)

१६२. तुलसी, रामचरितमानस ४/१६ (१-२)

१६३. तुलसी, रामचरितमानस १/२०१-२०२

१६४. तुलसी, रामचरितमानस १/११६/३-११६

१६५. तुलसी, रामचरितमानस १/११७/६-७

१६६. तुलसी, रामचरितमानस १/११८/३-१/११८

१६७. तुलसी, रामचरितमानस १/१६२ (१)

१६८. तुलसी, रामचरित मानस १/२२०/५-१/२२०

१६९. तुलसी, रामचरितमानस १/२४७

१७०. तुलसी, रामचरितमानस १/१६

१७१. तुलसी, कवितावली २/२४

१७२. तुलसी, गीतावली १/२५ (१)

१७३. तुलसी, गीतावली १/२७ (१)

१७४. तुलसी, गीतावली २/२४ (१-३)

१७५. तुलसी, गीतावली २/२८ (३-४)

१७६. तुलसी, गीतावली २/३० (१-२)

१७७. तुलसी, गीतावली ७/८

१७८. तुलसी विनय पत्रिका ४५

१७९. तुलसी जानकी मंगल ३२

१८०. तुलसी जानकी मंगल ४६-५०

१८१. तुलसी जानकी मंगल ८६-८७

१८२. तुलसी पार्वती मंगल १३वाँ छन्द

१८३. तुलसी पार्वती मंगल १११-११२

१८४. तुलसी पार्वती मंगल ११३-११४

१८५. तुलसी पार्वती मंगल १२४

१८६. तुलसी पार्वती मंगल १२६-१२७

१८७. तुलसी बरवैरामायण १/६

१८८. तुलसी बरवैरामायण ६/४२

१८९. तुलसी बरवैरामायण ७/६०

१९०. तुलसी वैराग्य संदीपनी ४

१९१. तुलसी दोहावली १६६

१९२. तुलसी कृष्णगीतावली २१ (४)

१९३. तुलसी कृष्णगीतावली २२ (५)

१९४. तुलसी कृष्णगीतावली २३ (२-४)

१९५. तुलसी रामचरित मानस १/५२, १/५३, १/५४

१९६. तुलसी रामचरित मानस १/२०१-२०२

१९७. तुलसी रामचरित मानस १/२११

१९८. तुलसी रामचरित मानस २/१२

१९९. तुलसी रामचरित मानस २/२०५/७-८ -२/२०५

२००. तुलसी रामचरित मानस २/२५२/२-४

२०१. तुलसी रामचरित मानस २/१३३/७-८

२०२. तुलसी रामचरित मानस ३/१-३/२

२०३. तुलसी रामचरित मानस ३/२४ (१-५)

२०४. तुलसी रामचरित मानस ५/२

२०५. तुलसी रामचरित मानस ५/२६

२०६. तुलसी रामचरित मानस ७/७९-७/८०

२०७. तुलसी रामचरित मानस ६/१०९

२०८. तुलसी कृष्णगीतावली २८

२०९. तुलसी गीतावली ७/१६

२१०. तुलसी रामचरित मानस ७/२६

२११. तुलसी रामचरित मानस ७/२६

२१२. तुलसी रामचरित मानस१/२१२/५

२१३. तुलसी रामचरित मानस१/२१३/१

२१४. तुलसी रामचरित मानस१/२८६
२१५. तुलसी पार्वती मंगल ८८
२१६. तुलसी पार्वती मंगल ११वाँ छन्द
२१७. तुलसी रामचरितमानस १/६४/८-१/६४
२१८. तुलसी विनयपत्रिका २४
२१९. तुलसी रामचरित मानस २/१३२/३-२/१३२
२२०. तुलसी रामचरित मानस २/२६१/१-२/२७६/८
२२१. तुलसी गीतावली २/४३
२२२. तुलसी गीतावली २/४४
२२३. तुलसी गीतावली २/४६
२२४. तुलसी कवितावली ७/१४१
२२५. तुलसी विनयपत्रिका २२
२२६. तुलसी कवितावली ७/१७१
२२७. तुलसी कवितावली ७/१४४
२२८. तुलसी रामचरित मानस २/१०५/३-२/१०६/२
२२९. तुलसी रामचरित मानस १/१००/३
२३०. तुलसी रामचरित मानस १/२५०/१-२
२३१. तुलसी रामचरित मानस १/२५१/१-२
२३२. तुलसी रामचरित मानस १/२६१/८-१/२६१
२३३. तुलसी कवितावली १/१०
२३४. तुलसी कवितावली १/११
२३५. तुलसी गीतावली १/८६
२३६. तुलसी रामचरितमानस १/२८७
२३७. तुलसी रामचरितमानस १/२८६/१-१/२८६/४
२३८. तुलसी रामचरितमानस १/३१६/७-१/३१७/२
२३९. तुलसी रामचरितमानस ६/८६ (३-४)
२४०. तुलसी रामचरितमानस ६/११६/१-६
२४१. तुलसी गीतावली ५/३
२४२. तुलसी गीतावली ५/४
२४३. तुलसी रामचरितमानस १/२६४(१)
२४४. तुलसी रामचरितमानस १/१६५ (३-७)
२४५. गीतावली १/६ (६-८)

२४६. तुलसी **रामचरितमानस** १/२१२/५-१/२१४/४

२४७. तुलसी **रामचरितमानस** ५/३

२४८. तुलसी **रामचरितमानस** ७/२७/३-७/२६

२४६. वियोगी हरि **हरितोषिणी टीका** पृष्ठ ६२

२५०. तुलसी **राम लला नहछू** ५-८

२५१. तुलसी **राम लला नहछू** ११

२५२. तुलसी **रामचरितमानस** १/१०१/७-८

२५३. तुलसी **रामचरितमानस** १/१६४/७-८

२५४. तुलसी **रामचरितमानस** १/२८८

२५५. तुलसी **रामचरितमानस** १/२६६

२५६. तुलसी **रामचरितमानस** १/२६८/४-५-६

२५७. तुलसी **रामचरितमानस** १/२६६/३-७

२५८. तुलसी **रामचरितमानस** १/३००/७

२५६. तुलसी **रामचरितमानस** १/३०१/३

२६०. तुलसी **रामचरितमानस** १/३०१/६-७

२६१. तुलसी **रामचरितमानस** १/३०५/१-६

२६२. तुलसी **रामचरितमानस** १/३०६/५

२६३. तुलसी **रामचरितमानस** १/३३३/५-१/३३३

२६४. तुलसी **रामचरितमानस** १/३५६/१-४

२६५. तुलसी, गीतावली ७/१८

२६६. तुलसी, रामलला नहछू ३

२६७. तुलसी, रामलला नहछू ४

२६८. तुलसी, रामलला नहछू १६

२६६. तुलसी, रामलला नहछू १७

२७०. तुलसी, रामलला नहछू १६

२७१. तुलसी जानकी मंगल १२६

२७२. तुलसी जानकी मंगल १५६

२७३. तुलसी जानकी मंगल १८२-१८४

२७४. तुलसी जानकी मंगल १८६

२७५. तुलसी पार्वती मंगल १५

२७६. तुलसी पार्वती मंगल ५/२३

२७७. तुलसी पार्वती मंगल ५/२४

चतुर्थ अध्याय

मानवीय सौन्दर्य

(क) पुरुष सौन्दर्य

१. बाह्य स्वरूप

२. आंतरिक सुषमा

(ख) नारी सौन्दर्य

१. बाह्य स्वरूप

२. आंतरिक सुषमा

(ग) बाल सौन्दर्य

१. बाह्य स्वरूप

२. आंतरिक सुषमा

(क) पुरुष सौन्दर्य

राम तुलसी की कृतियों के आलम्बन हैं। उनकी अधिकांश कृतियों में राम के चरित्र और लीला व्यापारों का ही न्यूनाधिक रूप में चित्रण हुआ है। राम कथा में तुलसी ने जिन अन्य पुरुषों का उल्लेख किया है उनके कार्य व्यापारों का प्रमुख उद्देश्य राम के व्यक्तित्व को निखार कर विस्तृत रूप प्रदान करना ही है। अतः तुलसी साहित्य में पुरुष सौन्दर्य का तात्पर्य राम के रूप-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति ही मानना असंगत न होगा। राम के साथ लक्ष्मण चूँकि अभिन्न रूप से जुड़े रहे। प्रायः अनुकूल और प्रतिकूल सभी स्थितियों में उनका साथ राम से नहीं छूटा। इसलिये राम के बाद तुलसी ने लक्ष्मण के सौन्दर्यांकन को अन्य पात्रों की अपेक्षा प्रमुखता दी है। भरत, शत्रुघ्न, दशरथ, जनक, रावण आदि अनेक पुरुष पात्रों के आंतरिक सौन्दर्य को तुलसी ने वाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा प्रमुखता से चित्रित किया है क्योंकि इनका आंतरिक सौन्दर्य किसी न किसी रूप में राम के सौन्दर्य और उसके अनुपम प्रभाव की ही व्यंजना करता है।

चूँकि तुलसी ने अपनी कृतियों में राम चरित्र के गायन-प्रकाशन को ही प्रमुखता दी है। इसलिये उनकी कृतियों में राम के सौन्दर्य का विविध रूपेण अंकन उपलब्ध होता है।

भारतीय संस्कृति में जहाँ राम को विश्व नियामक शक्ति पारब्रह्म परमेश्वर के रूप में स्वीकारा गया है। वहीं साहित्य में उनके मानव-शरीर धारी रूप (अतिमानवीयता से समन्वित) की भी प्रतिष्ठा की गई है। इस प्रकार राम लौकिक होते हुये भी अलौकिकता से युक्त हैं और अलौकिक होते हुये भी साधारण मानव की तरह क्रिया-व्यापारों में रत जान पड़ते हैं। तुलसी ने एक ओर राम की अलौकिकता को अभिव्यंजित किया है वहीं दूसरी ओर उन्हें लौकिक धरातल पर उतारकर भारतीय जनमानस के समक्ष मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में प्रस्तुत कर आदर्श का मानदण्ड स्थापित किया है।

तुलसी दास भक्तिकाल के एकमात्र ऐसे कवि हैं जिन्होंने सौन्दर्यांकन में मर्यादा का विशेष ध्यान रखा है। उनके विभिन्न काव्यग्रन्थों में रूप सौन्दर्य वर्णन की सामग्री अतिशयता से उपलब्ध है। सौन्दर्यांकन की विविध विधाओं तथा प्रभावों का सजीव एवं हृदयस्पर्शी वर्णन उनकी कृतियों में बार-बार वर्णित हुआ है। 'रामचरित मानस', 'कवितावली', 'विनय पत्रिका', बरवै रामायण, पार्वती मंगल, जानकी मंगल आदि में व्यंजित मर्यादित और शालीन सौन्दर्यानुभावन के संश्लिष्ट और विशिष्ट चित्र तुलसी की सौन्दर्याभिव्यक्ति की मनहरता का उदघाटन करते हैं।

"तुलसीदास के रूप वर्णन में मोहक और लोक-व्यापी प्रभावों की योजना अधिक मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त हुई है। शारीरिक सुकुमारता, सुघरता, आभा, यौवन आदि विभिन्न रूपोत्कर्षक भावनाओं के चित्रण उपलब्ध होंगे। रूप-वर्णन की विभिन्न विधा में भक्तिकाल के जिस परिवेश में प्रस्फुटित हुई थीं, उनका अभाव तुलसी में न मिलेगा। वस्त्राभूषणों से संपृक्त, मंडन-युक्त रूप-वर्णन में वस्त्रों की शोभा तथा रूप पर फबने वाली उनकी शालीनता को तुलसी ने मर्यादा

की भावना से संजोकर चित्रित किया। रूप के कल्याणकारी सौन्दर्य का उद्घाटन करके उन्होंने आंतरिक सौन्दर्य को अपरिमेय गौरव प्रदान किया। तुलसी के रूप वर्णन की यह सबसे बड़ी विशेषता है जो उन्हें अन्य भक्तिकालीन कवियों से पृथक करती है।"

चूंकि तुलसी ने राम को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में प्रस्तुत किया है इसलिये उन्होंने राम के रूप की वाह्य छवि और आंतरिक सुषमा का पूर्ण मनोयोग से वर्णन किया है। पुरुष रूप में चित्रित करने के कारण उन्होंने राम के अंग-प्रत्यंगों के वर्णन से परहेज नहीं किया है। यह अलग बात है कि इस प्रकार के वर्णन को प्रमुखता न देकर उन्होंने एक ही पद या कुछ चौपाइयों के माध्यम से समन्वित सौन्दर्य को ही प्रमुखता से अंकित किया है।

बाह्य स्वरूप

बाह्य सौन्दर्य के अन्तर्गत अंग-प्रत्यंग के सौन्दर्य का चित्रण किया जाता है। अंगों का यथोचित सन्निवेश समूचे सौन्दर्य को निखारने में सक्षम होता है। तुलसी के राम का सौन्दर्य निश्चित रूप से मोहक और मनोमुग्धकारी है। वे राम के किसी अंग विशेष का अलग से वर्णन न कर नख-शिख सौन्दर्य के समेकित वर्णन में सौन्दर्य की सार्थकता मानते है। ध्यातव्य है कि तुलसी ने विवाह पूर्व तक राम और लक्ष्मण का संयुक्त रूप से वर्णन किया है। रावण-वधोपरान्त अवध के राजा रूप में राम की शोभा का स्वतन्त्र रूप से वर्णन मिलता है।

तुलसी राम के रूप सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि राम सौन्दर्य शक्ति और शील के अनुपम भण्डार हैं। उनके अंग-प्रत्यंगों की छवि कामदेव को भी निरादृत करने में समर्थ है। उनके सिर पर अत्यन्त सुन्दर मणिटंकित स्वर्णिम मुकुट शोभित है। उसके नीचे जो कुटिल अलकावली है वह अपनी शोभा से मन को खींचे लेती है। वे कुछ ऐसे प्रतीत होते हैं मानों मुख और नेत्र रूपी कमलों की प्रसन्नता के लिए भौंरों ने अपने सुन्दर गुंजन से मुकुट रूपी राकापति को अपने वश में कर लिया हो। राम के नेत्र अरुण कमलदल के समान विस्तृत और लुभाने वाले है। उनके माथे पर सुन्दर भ्रकुटि तथा तिलक शोभित है। उनके कानों में स्वर्णकुण्डलों की सुन्दर जोड़ी सुशोभित हो रही है। उनकी नासिका, कपोल, ठोढ़ी और अरुण अधर वास्तव में अत्यन्त सुन्दर है। उनकी मुख से निस्सृत वाणी अत्यन्त मृदु और शान्तिप्रदायिनी है। उनके दाँत कुछ इस प्रकार शोभा विस्तीर्ण करते हैं मानो किसी कमलकोश के भीतर बिजली के रंग से मंडित अत्यन्त सुन्दर पद्मराग के शिखर। राम के कम्बुकण्ठ तथा विशाल वक्ष स्थल पर तुलसी की नवीन माला शोभित हो रही है। राम के श्याम शरीर पर निर्मल पीताम्बर ऐसा प्रतीत होता है मानों किसी नीलमेघ ने अपनी शोभा बढ़ाने के उद्देश्य से बड़ी अनुनय-विनय से क्षणप्रभा को धारण कर लिया हो। तुलसी के पुरुष सौन्दर्यांकन में सात्विक उदभावनाएं शालीनता और मर्यादा के धरातल पर अवस्थित हैं। प्रस्तुत हैं उपर्युक्त आशय और भाव की व्यंजना करने वाले कतिपय मनोहर चित्र-

(अ) लोक लोचनाभिराम, नीलमनि-तमाल-स्याम
रूप-सील-धाम, अंग छवि अनंग को री।।
भ्राजत सिर मुकुट पुरट-निरमित मनि रचित चारु
कुंचित कच रुचिर परम सोभा नहिं थोरी।
मनहुँ चंचरीक-पुंज कंजबृंद प्रीति लागि,
गुंजत कल गान तान दिनमनि रिझयो री।।
अरुन कंज-दल-बिसाल लोचन, भ्रू-तिलक भाल
मंडित स्रुति कुंडल बर सुंदरतर जोरी।
मनहुँ संबरारि मारि, ललित मकर-जुग बिचारि
दीन्हें ससिकहँ पुरारि भ्राजत दुहुँ ओरी।।
सुन्दर नासा-कपोल, चिबुक, अधर अरुन, बोल
मधुर, दसन राजत जब चितवत मुख मोरी।
कंज-कोस भीतर जनु कंजराज-सिखर-निकर,
रुचिर रचित बिधि बिचित्र तड़ित-रंग-बोरी।।
कंबु कंठ उर बिसाल, तुलसिका नवीन माल,
मधुकर बर-बास-बिबस, उपमा सुनु सो री।
जनु कलिदंजा सुनील सैलनें धसी समीप,
कंद-बृंद बरसत छवि मधुर घोरि घोरी।।
निर्मल अति पीत चैल, दामिनी जनु जलद नील,
राखी निज सोभाहित बिपुल बिधि निहोरी।
नयनन्हिं को फल बिसेष ब्रह्म अगुन सगुन बेष
निरखहु तजि पलक, सफल जीवन लेखौ री।।''[1]

(ब) बिथुरत सिररूह-बरूथ कुंचित, बिच सुमन-जूथ,
मनिजुत सिसु-फनि-अनीक ससि समीप आई।
जनु सभीत दै अँकोर राखे जुग रुचिर मोर,
कुंडल-छवि निरखि चोर सकुचत अधिकाई।
ललित भ्रकुटि तिलक भाल, चिबुक-अधर-द्विज रसाल,
हास चारुतर, कपोल नासिका सुहाई।
मधुकर जुग पंकज बिच, सुक बिलोक नीरज पर,
लरत मधुप अवलि मानो बीच कियो जाई।
सुंदर पटपीत बिसद, भ्राजत बनमाल उरसि

तुलसिका-प्रसून-रचित, बिबिध-बिधि बनाई।
तरु-तमाल अधबिच जनु त्रिबिध कीर-पाँति-रुचिर,
हेमजाल अंतर परि तातें न उड़ाई।[2]

(स) "सुखमा-सुख-सील-अयन नयन निरखि निरखि नील
कुंचित कच, कुंडल कल, नासिका चित पोहैं।
मनहुँ इंदुबिंब मध्य, कंज-मीन-खंजन लखि
मधुप-मकर-कीर आए तकि-तकि निज गौहैं।।
ललित-गंड-मंडल सुबिसाल भाल तिलक झलक
मंजुतर मयंक-अंक रुचिर बंक भौंहैं।
अरुन अधर, मधुर बोल, दसन-दमक दामिनि दुति
हुलसति हिय हँसनि चारु चितवनि तिरछौहैं।।
कंबु कंठ, भुज बिसाल, उरसि तरुन तुलसिमाल
मंजुल मुकतावलि जुत जागति जिय जोहैं।
जनु कलिंद-नंदिनि मनि-इंद्रनील-सिखर परसि
धँसति लसति हंससेनि-संकुल अधिकौहैं।।
दिव्यतर दुकूल भव्य, नव्य रुचिर चंपक चय,
चंचला कलाप, कनक-निकर अलि! किधौं हैं।
सज्जन-चष-झष निकेत, भूषन-मनिगन समेत
रूप-जलधि-बपुष लेत मन-गयंद बोहैं।।"[3]

(द) देखि सखि आजु रघुनाथ-सोभाबनी।
नील-नीरद-बपुष भुवनाभरन पीत-अंबर-धरन हरन दुति-दामिनी।
सघन चिक्कन कुटिल चिकुर बिलुलित मृदुल करनि बिबरत चतुर, सरस सुषमा जनी।
ललित अहि-सिसु-निकर मनहु ससि सन समर लरत, धरहरि करत रुचिर जनु जुग फनी।
भाल भ्राजत तिलक, जलज लोचन पलक, चारु भ्रू, नासिका सुभग सुक-आननी।
चिबुक सुंदर, अधर अरुन, द्विज-दुति सुघर बचन गंभीर मृदु हास भव-भाननी।।
स्रवन कुंडल बिमल गंड मंडित चपल फलित कलकांति अति भाँति कछु तिन्ह तनी
जुगल कंचन-मकर मनहु बिधुकर मधुर पियत पहिचानि करि सिंधु की रति भनी।
उरसि राजत पदिक, ज्योति रचना अधिक माल सुबिसाल चहुँ पास बनि गजमनी
स्याम नव जलद पर निरखि दिनकर कलाकौतुकी मनहुँ रही घेरि उडुगन-अनी।।"[4]

(क) मुकुट सुंदर सिरसि, भालबर, तिलक-भ्रू
कुटिल कच, कुंडलनि परम आभा लही।

मनहुँ हर-उर जुगल मारध्वज के मकर
लागि स्रवननि करत मेरुकी बतकही।।
अरुन राजीव-दल-नयन करुना-अयन
बदन सुषमासदन हास त्रय-तापही।
बिबिध कंकन हार, उरसि गजमनि-भाल,
मनहुँ बग-पाँति जुग मिलि चली जलदही।।
पीत निरमल चैल, मनहुँ मरकत सैल,
पृथुल दामिनि रही छाइ तजि सहजही।
ललित सायक चाप, पीन भुज बल अतुल
मनुज तनु दनुज बन-दहन मंडन मही।।[५]

(ख) सखि रघुनाथ-रूप निहारु।
सरद-बिधु रबि-सुवन मनसिज-मान भंजनहारु।
स्याम सुभग सरीर जन-मन-काम पूरनिहारु।
चारु चंदन मनहुँ मरकत-सिरवर लसत निहारु।।
रुचिर उर उपबीत राजत पदिक गजमनि-हारु।
मनहु सुरधनु नखतगन बिच तिमिर-भंजनिहारु।।
बिमल पीत दुकूल दामिनि-दुति-बिनिंदनिहारु।
बदन सुषमा सदन सोभित मदन-मोहनि हारु।।
सकल अंग अनूप, नहिं कोउ सुकबि बरननिहारु।
दास तुलसी निरखतहि सुख लहत निरखनि हारु।।[६]

(ग) भ्रकुटि भाल बिसाल राजत रुचिर-कुंकुम-रेखु।
भ्रमर द्वै रबि किरनि ल्याए करन जनु उनमेखु।।
सुमुखि केस सुदेस सुंदर सुमन-संजुत पेषु।
मनहु उडुगन-निबह आए मिलन तम तजि द्वेषु।।
स्रवन कुंडल मनहु गुरु-कबि करत बाद बिसेषु।
नासिका, द्विज अधर जनु रह्यो मदनु करि बहु बेषु।।[७]

(घ) रुचिर चिबुक रद-ज्योति अनूपम, अधर अरुन सित हास निहारु।
मनो ससिकर बस्यो चहत कमल महँ प्रगटत, दुरत, न बनत बिचारु।।
नासिका सुभग मनहुँ सुक सुंदर चितवत चकि आचरज अपारु।
कल कपोल, मृदु बोल मनोहर रीझि, चित चतुर अपनपौ वारु।।
नयन सरोज, कुटिल कच, कुण्डल, भ्रुकुटि, सुभाल तिलक सोभा-सारु।

मनहुँ केतुके मकर, चाप-सर गयो, बिसारि भयो मोहित मारु।।'[8]

(च) अरुन नैन बिसाल, ललित भ्रुकुटि, भाल
तिलक, चारु कपोल, चिबुक नासा सुहाई।
बिथुरे कुटिल कच, मानहु मधु लालच अलि,
नलिन जुगल उपर रहे लोभाई।।
स्रवन सुंदर, सम कुंडल कल जुगम,
तुलसिदास अनूप, उपमा कही न जाई।
मानो मरकत सीप सुंदर ससि समीप,
कनक मकर जुत बिधि-बिरची बनाई।।[6]

(छ) देखो रघुपति-छवि अतुलित अति।
जनु तिलोक-सुषमा सकेलि बिधि राखी रुचिर अंग-अंगनि प्रति।।
पदुम पराग रुचि मृदु पदतल धुज अंकुस-कुलिस-कमल यहि सूरति।
रही आनि चहुँ बिधि भगतनिकी जनु अनुराग भरी अंतरगति।।
सकल सुचिन्ह-सुजन सुखदायक ऊरध रेख बिसेस बिराजति।
मनहुँ भानु-मंडलहि सँवारत धरयो सूत बिधि-सुत बिचित्रमति।।
सुभग अंगुष्ठ, अंगुली अबिरल, कछुक अरुन नख ज्योति जगमगति।
चरन पीठ उन्नत नत पालक, गूढ़ गुलुफ, जंघा कदली जति।
कामतून-तल-सरिस जानु जुग, उरु करिकर करभहि बिलखावति।
रसना रचित रतन चामीकर, पीत बसन कटि कसे सरसावति।।
नाभी सर, त्रिवली निसेनिका, रोम राजि सैवल-छबि पावति।
उर मुकुतामनि भाल मनोहर मनहु हंस-अवली उड़ि आवति।।
हृदय पदिक भृगु-चरन चिन्हबर-बाहु बिसाल जानु लगि पहुँचति।
कल केयूर पूर कंचन-मनि, पहुँची मंजु कंजकर सोहति।।
सुजव सुरेख सेनख अंगुलिजुत सुंदर पानि मुद्रिका राजति।
अंगुलित्रान-कमान-बानछबि सुरनि सुखद, असुरनि उर सालति।।
स्याम सरीर सुचंदन-चरचित पीत दुकूल अधिक छबि छाजति।
नील जलंद पर निरखि चंद्रिका दुरनि त्यागि दामिनि जनु दमकति।।
यज्ञोपबीत पुनीत बिराजत गूढ़ जत्रु बनि पीन अंस तति।
सुगढ़ पुष्ट उन्नत कृकाटिका, कंबुकंठ-सोभा मन मानति।।
सरद-समय-सरसीरुह-निंदक मुख सुषमा कछु कहत न बानति।
निरखत ही नयननि निरुपम सुख, रबिसुत-मदन-सोम-दुति निदरिति।।

अरुन अधर, द्विजपाँति अनूपम, ललित हँसनि जनु मन आकरषति।
बिद्रुम-रचित बिमान मध्य जनु सुरमंडली सुमन-चय बरसति।।
मंजुल चिबुक, मनोरम हनुथल, कपोल, नासा मन मोहति।
पंकज-मान-बिमोचन लोचन, चितवनि चारु अमृत-जल सींचति।।
केस सुदेस, गँभीर बचन बर स्रुतिकुंडल-डोलनि जिय लागति।
लखि नव नील पयोद, रवित सुनि, रुचिर मोर जोरी जनु नाचति।।
भौंहें बंक मंयक-अंक-रुचि, कुंकुमरेख भाल भलि भ्राजति।
सिरसि, हेम-हीरक-मानिक मय मुकुट-प्रभा सब भुवन प्रकासति।।[10]

गीतावली में तुलसी ने राम के अनुपम सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने के लिए कथानुसार विविध प्रसंगों के माध्यम से सौन्दर्य की अनूठी व्यंजनाएं और उदभावनाएं प्रस्तुत की है। राम का सौन्दर्य सर्वथा निष्कलुष है। उदात्तता के समावेश से तुलसी ने पुरुष सौन्दर्य के अंकन में एक अनूठी गरिमा और लालित्य की सात्विक योजना प्रदर्शित की है जो उनके अभिव्यक्ति कौशल की चारुता को उद्घाटित करती है।

धनुष-भंग के समय तुलसी राम के सौन्दर्य को निरूपित करते हुये कहते हैं कि राम का शरीर नीलकमल मालिका के सदृश श्याम है। उनके हृदय, भुजा और नेत्र सुविस्तृत हैं। उनकी कमर में पीताम्बर तथा कलित कण्ठ में राजमुक्ताओं की मनोहर माला अत्यन्त सुशोभित हो रही है। उनके कानों में सुन्दर कुण्डल हैं तथा सिर पर पत्र-पुष्प एवं लाल रंग की सुन्दर चौतनी टोपी मन को अपनी ओर आकृष्ट करने में पूर्णतः सक्षम है। उनके सुन्दर मुख की कान्ति कामदेवों के सौन्दर्य को निरादृत करती है। उनके माथे पर अत्यन्त मनोहर तिलक भी सुशोभित है। उनकी रूप छवि को सम्पूर्ण राजसमाज अत्यन्त आदर के साथ निहार कर सराह रहा है-

स्याम-ताम रस-दाम-बरन बपु, उर-भुज-नयन बिसाल।
पीत बसन कटि, कलित कंठ सुंदर सिंधुर-मनिमाल।।
कल कुंडल, पल्लव प्रसून सिर चारु चौतनी लाल।
कोटि-मदन,-छवि-सदन बदन-बिधु तिलक मनोहर भाल।।[11]

धनुष भंग के पश्चात राम के रूप सौन्दर्य को सखियों के माध्यम से तुलसी ने निम्नवत निरूपित किया है-

जानकी-बर सुन्दर माई।
इन्द्रनील-मनि-स्याम सुभग, अँग-अंग मनोजनि बहु छबि छाई।।
अरुन चरन, अंगुली मनोहर, नख दुतिवंत, कछुक अरुनाईं।
कंजदलनि पर मनहु भौम दस बैठे अचल सुसदसि बनाई।।
पीन जानु, उर चारु, जटित मनि नूपुर पद कल मुखर सोहाई।

पीत पराग भरे अलिगन जनु जुगल जलज लखि रहे लोभाई।।
किंकिनि कनक कंज अवली मृदु मरकत सिखर मध्य जनु जाई।
गई न उपर, सभीत नमित मुख बिकसि चहूँ दिसि रही लोनाई।।
नाभि गंभीर, उदर रेखा बर, उर भृगु-चरन-चिन्ह सुखदाई।
भुज प्रलंब भूषन अनेक जुत, बसन पीत सोभा अधिकाई।।
जग्योपबीत विचित्र हेममय, मुक्तामाल उरसि मोहि भाई।
कंद तड़ित बिच जनु सुरपति धनु रुचिर बलाक पाँति चलि आई।।
कंबु कंठ चिबुकाधर सुंदर, क्यों कहौं दसनन की रुचिराई।
पदुमकोस महँ बसे बज्र मनो निज सँग तड़ित-अरुन-रुचि लाई।।
नासिक चारु, ललित लोचन, भ्रकुटिल, कचनि अनुपम छवि पाई।
रहे घेरि राजीव़ उभय मनो, चंचरीक कछु हृदय डेराई।।
भाल तिलक, कंचन किरीट सिर, कुंडल लोल कपोलनि झाँई।
निरखहि नारि-निकर बिदेह पुर निमि नृप की मरजाद मिटाई।।[१२]

ग्रामीण स्त्रियाँ राम के अद्‍भुत सौन्दर्य का बखान आपस में करती हुई कहती हैं कि यह श्यामल वर्ण का कुमार सभी अंगों से अत्यन्त सुन्दर जान पड़ता है। इसके रोम-रोम की छवि देखकर कामदेव, अश्विनी कुमार और शरदऋतु के चन्द्रमा की शोभाओं को निछावर करने का मन होता है। इसके सिर पर मनोहर जटाजूट सुशोभित हैं। तपस्वी जैसे वल्कल वस्त्र धारण किये हुए कटि में तरकस कसे हुए है। अपने वाम भाग में धनुष को धारण कर हाथ में सुन्दर बाण लिये हुए है। कुमार के वक्षस्थल, भुजाएँ तथा नेत्र सुविशाल हैं। इस कुमार के मुख की शोभा का तो बखान नहीं किया जा सकता-

कुँवर साँवरो, री सजनी! सुंदर सब अंग।
रोम-रोम छवि निहारि आलि बारि फेरि डारि,
कोटि भानु-सुवन सरद-सोम, कोटि अनंग।।
बाम अंग लसत चाप, मौलि मंजु जटा-कलाप,
सुचि सर कर, मुनि पट कटि-तट कसे निषंग।।
आयत उर बाहु नैन, मुख-सुखमा को लहै न,
उपमा अवलोकि लोक गिरामति-गति भंग।।[१३]

हेम-हरिण के पीछे भागते आखेट के लिए तत्पर मुद्रा तुलसी को अत्यंत प्रिय लगती है। अन्य कृतियों में भी इस मुद्रा की अभिव्यक्ति की पुनरावृत्ति उपलब्ध है। इस मुद्रा में राम के सौन्दर्य का अनुभावन करते हुए तुलसी कहते हैं-

राघव, भावति मोहि बिपिन की बीथिन्ह धावनि।
अरुन-कंज-बरन-चरन सोकहरन, अंकुस-कुलिस-केतु-अंकित अवनि।।

सुंदर स्यामल अंग, बसन पीत सुरंग, कटि निषंग परिकर मेरवनि।
कनक-कुरंग संग साजे कर सर-चाप, राजिवनयन इत उत चितवनि।।
सोहत सिर मुकुट जटा-पटल-निकर, सुमन-लता सहित रची बनवनि।
तैसेई स्रम-सीकर रुचिर राजत मुख तैसिए ललित भ्रकुटिन्ह की नवनि।।[१४]

इससे पूर्व पद में भी तुलसी दास जी ने लगभग इसी प्रकार के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति की है।''

इसके अतिरिक्त गीतावली में तुलसी ने राम और लक्ष्मण के युगल सौन्दर्य के सुमनोहर चित्र उकेरे हैं। बालकाण्ड और अयोध्याकांड में ऐसे बहुत से छन्द उपलब्ध होते हैं। प्रकारान्तर से युगल सौन्दर्यांकन के बहाने तुलसी ने एक ओर जहां लक्ष्मण के सौन्दर्य का वर्णन किया है वहीं दूसरी ओर राम के सौन्दर्यांकन की अपूर्वता के निमित्त एक नई व्यवस्था भी खोज ली है। गौर-श्यामल वर्ण का युगल चित्रण तुलसी के अभिव्यंजना कौशल की मौलिकता के साथ उनके सौन्दर्यानुभावन के लालित्य का बोध कराने में पूर्णतः सक्षम है। उनकी गौर-श्यामल वर्ण के सौन्दर्य को एक साथ अभिव्यक्त करने की प्रणाली **'विरोधाभास में सौन्दर्य स्वतः निवेशित होता है'** की उक्ति की सार्थकता का भाव भी संप्रेषित करती है। यथा सम्पुष्टि हेतु राम-लक्ष्मण के युगल सौन्दर्य की अभिव्यक्ति विषयक कतिपय चित्र अवलोकनीय हैं जिनमें तुलसी ने पुरुष सौन्दर्य को सम्पूर्ण गरिमा से अभिमंडित कर प्रस्तुत किया है।

तुलसीदास जी विश्वमित्र के साथ जाते समय राम और लक्ष्मण की किशोर वय सौन्दर्य का चित्रण करते हुए कहते हैं कि राम और लक्ष्मण के शरीर नीले और पीले रंग के कमलों की भांति हैं। उनके हाथों में धनुष-बाण तथा कमर में पीताम्बर और तरकस अत्यन्त शोभाप्रदायक प्रतीत हो रहा है। उनके मनोहर कण्ठ में मणियों की माला पड़ी है। चन्दन अनुलेपित होने के कारण उनके शरीर से चन्दन की सुगन्ध प्रसरित हो रही है। उनके मनोहर शरीर की कान्ति, कमलवत नयन और अरविन्द मुख का वर्णन करना असंभव नहीं तो सहज भी नहीं है। उनके सिर पर शोभित नवीन किसलय, पंख और पुष्प उनके सौन्दर्य को द्विगुणित कर रहे हैं। उनके वेष की सुन्दरता कुछ ऐसी प्रतीत होती है मानो समूची सृष्टि की सुन्दरता दो भागों में वर्गीकृत हो गयी हो। दोनों कुमारों का सौन्दर्य पुरुष सौन्दर्य की उत्कृष्टता का अनुभावन कराने में पूर्णतः समर्थ है-

(अ) ''नील पीत पाथोज बरन बपु, वय किशोर बनि आई।
सर धनु-पानि, पीत पट कटितट, कसे निखंग बनाई।।
कलित कंठ मनि-माल, कलेवर चंदन खौरि सुहाई।
सुन्दर बदन, सरोरुह लोचन, मुख छबि बरनि न जाई।।
पल्लव, पंख सुमन सिर सोहत क्यों कहौं बेष-लुनाई।
मनु मूरति धरि उभय भाग भई त्रिभुवन सुंदरनाई।।''[१५]

(ब) नखसिख लोने, लोने बदन, लोने लोने लोयन दामिनि-बारिद-बरबरन अंग।

सिरनि सिखा सुहाइ, उपबीत पीत पट, धनु-सर कर, कसे कटि निखंग।
माने मख-रुज निसिचर हरिबे को, सुत पावक के साथ पठये पतंग।।[१६]

(स) "काक पच्छ धर, कर कोदंड सर, सुभग पीतपट कटि तूनीर।
बदन इंदु अंभोरुह लोचन, स्याम गौर सोभा-सदन सरीर।।
पुलकत ऋषि अवलोकि अमित छबि, उर न समाति प्रेम की भीर।।"[१७]

(द) "तरुन तमाल चारु चंपक छबि कबि सुभाय कहि जाई।।
भूषन बसन अनुहरति अंगनि, उमगति सुंदरताई।
बदन मनोज सरोज लोचननि रही है लुभाय लुनाई।।
अंसनि धनु, सर-कर-कमलनि, कटि कसे हैं निखंग बनाई।
सकल भुवन सोभा सरबस लघु लागति निरखि निकाई।।"[१८]

(क) "मंजुल मंगलमय नृप ढोटा।
मुनि, मुनितिय, मुनिसिसु बिलोकि कहैं मधुर मनोहर जोटा।।
नाम रूप अनुरूप वेष बय, राम लखन लाल लोने।
इन्हतें लही है मानो घन-दामिनि दुति मनसिज, मरकत सोने।।
चरन सरोज, पीतपट, कटितट तून-तीर-धनुधारी।
केहरि कंध, काम-करि-करवर बिपुल-बाहु-बल भारी।।
दूषन रहित समय सम भूषन पाइ सुअंगिनि सोहैं।
नव-राजीव-नयन, पूरन बिधुबदन मदन मन मोहैं।।
सिरनि सिखंड, सुमन-दल-मंडन बाल सुभाय बनाये।
केलि अंक तनु रेनु पंक जनु प्रगटत चरित चोराये।।"[१९]

(ख) कौसिक के मख के रखवारे।
नाम राम अरु लखन ललित अति, दसरथ-राज-दुलारे।।
मेचक पीत कमल कोमल कल काकपच्छ-धर बारे।
सोभा सकल सकेलि मदन-बिधि सुकर सरोज सँवारे।।[२०]

(ग) कोसलराय के कुअँरोटा।
राजत रुचिर जनक-पुर पैठत स्याम गौर नीके जोटा।।
चौतनि सिरनि, कनककली काननि, कटि पट पीत सोहाये।
उर मनि-माल, बिसाल बिलोचन, सीय स्वयंबर आये।।
बरनि न जात, मनहिं मन भावत, सुभग अबहिं बय थोरी।
भई हैं मगन बिधुबदन बिलोकत, बनिता चतुर चकोरी।।[२१]

(घ) स्याम गौर सुंदर किसोर तनु, तून-बान-धनुधारी।

कटि पट पीत, कंठ मुकुतामनि, भुज-बिसाल, बल भारी।।
मुख मयंक, सरसीरुह लोचन, तिलक भाल टेढ़ी भौहैं।
कल कुंडल, चौतनी चारु अति, चलत मत्त-गज-गौहैं।।[२२]

(च) ए कौन कहाँ तें आए।
नील-पीत पाथोज-बरन मन-हरन, सुभाय सुहाए।।
मुनि सुत किधौं भूप-बालक, किधौं ब्रह्म-जीव जग जाए।
रूप जलधि के रतन, सुछबि-तिय-लोचन ललित ललाए।।
किधौं रबि-सुवन, मदन ऋतुपति, किधौं हरि-हर वेष बनाए।
किधौं आपने सुकृत-सुरतरु के सुफल रावरेहि पाए।।
भए बिदेह, बिदेह नेहबस देहदसा बिसराए।
पुलक गात न समात हरष हिय, सलिल सुलोचन छाए।।[२३]

(छ) भोर फूल बीनबे को गए फुलवाई हैं।
सीसनि टिपारे, उपबीत, पीत पट कटि,
दोना बाम करनि सलोने में सवाईं हैं।।
रूप के अगार, भूप के कुमार, सुकुमार
गुरु के प्रानअधार संग सेवकाई हैं।।[२४]

(ज) नील पीत नीरज कनक मरकत धन
दामिनी-बरन तनु रूप के निचोर हैं।
सहज सलोने, राम-लषन ललित नाम
जैसे सुने तैसेई कुँवर सिरमौर हैं।।
चरन-सरोज, चारु जंघा जानु उरु कटि,
कंधर बिसाल, बाहु बड़े बरजोर हैं।
नीके के निषंग कसे, कर कमलनि लसै
बान-बिसिषानन मनोहर कठोर हैं।।
काननि कनक फूल, उपबीत अनुकूल,
पियरे दुकूल बिलसत आछे छोर हैं।
राजिवनयन, बिधुबदन टिपारे सिर,
नख-सिख अंगनि ठगौरी ठौर-ठौर हैं।।[२५]

(झ) एई राम-लषन जे मुनि-संग आये हैं।
चौतनी-चोलना काछे, सखि! सोहैं आगे-पीछे,
आछे हुते आछे, आछे आछे भाय भाये हैं।।

साँवरे गोरे सरीर महाबाहु महाबीर,
कटि तून तीर धरे, धनुष सुहाये हैं।
देखत कोमल, कल, अतुल बिपुल बल,
कौसिक कोदंड-कला कलित सिखाये हैं।।[२६]

(य) राम-लषन जब दृष्टि परे, री।
अवलोकत सब लोग जनकपुर मानो बिधि बिबिध बिदेह करे, री।।
धनुष जग्य कमनीय अवनि-तल कौतुकही भए आय खरे री।
छबि-सुरसभा मनहु मनसिज के कलित कलपतरु रूप फरे री।।
सकल काम बरषत मुख निरखत, करषत, चित हित हरष भरे री।
तुलसी सबै सराहत भूपहि भलै पैत पासे सुढर ढरे, री।।[२७]

(र) नेकु, सुमुखि, चित लाइ चितौ री।
राजकुँवर-मूरति रचिबे की रुचि सुबिरंचि श्रम कियो है कितौ, री।।
नख-सिख-सुंदरता अवलोकत कह्यो न परत सुख होत जितौ, री
साँवर रूप-सुधा भरिबे कहँ नयन-कमल कल कलस रितौ री।।[२८]

तुलसी ने गीतावली में एक स्थल पर चारों भाइयों के सौन्दर्य का अंकन भी किया है-

चारयो भले बेटा देव दसरथ रायके।
जैसे राम-लषन, भरत-रिपुहन वैसे, सील-सोभा-सागर, प्रभाकर प्रभायके।।

इसके अलावा तुलसी ने गीतावली में राम और सीता के युगल स्वरूप के वर्णन के साथ राम, लक्ष्मण और सीता तीनों के रूप सौन्दर्य की अनुपम छवियों का वर्णन भी एक साथ किया है जिसका विस्तृत विवेचन आगे प्रस्तावित है।

मानस में गीतावली की अपेक्षा सौन्दर्य के रूपांकन में तुलसी अधिक संयत और मर्यादित प्रतीत होते हैं। मानस में कथा विस्तार और प्रसंग बहुलता के कारण भी शायद तुलसी को सौन्दर्य की उद्‌भावना के लिये अधिक अवकाश उपलब्ध नहीं हो सका फिर भी मानस में अपेक्षित सौन्दर्य अंकन पूरी गरिमा और प्रभाव के साथ लक्षित होता है। अतिमानवीयता से रंजित पुरुष सौन्दर्य का अनुरेखन मानस में निम्नवत् उपलब्ध होता है।

विश्वामित्र द्वारा कुमारों की याचना के समय तुलसी राम के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि राम के नेत्र अरुणिम, छाती चौड़ी और भुजाएँ विशाल हैं। नीलकमल और तमाल के वृक्ष की भाँति उनका शरीर श्याम वर्ण का है। उनके कमर में पीताम्बर और कसा हुआ सुन्दर तरकस अत्यन्त शोभायमान हो रहा है। वे दोनों हाथों में क्रमशः सुन्दर धनुष और बाण लिए हुए हैं।

अरुन नयन उर बाहु बिसाला। नील जलज तनु स्याम तमाला।।
कटि पट पीत कसें बर भाथा। रुचिर चाप सायक दुहुँ हाथा।।[२९]

जनकपुर में भ्रमण करते हुए तलसी ने राम और लक्ष्मण के समन्वित सौन्दर्य की अभिव्यक्ति कर पुरुष सौन्दर्य वर्णन की योजना का सुन्दर निर्वाह प्रस्तुत किया है। तुलसी सौन्दर्यानुभावन की अभिव्यक्ति निम्नवत प्रस्तुत करते हैं।

पीत बसन परिकर कटि भाथा। चारु चाप सर सोहत हाथा।।
तन अनुहरत सुचंदन खोरी। स्यामल और मनोहर जोरी।।
केहरि कंधर बाहु बिसाला। उर अति रुचिर नागमनि माला।।
सुभग सोन सरसीरुह लोचन। बदन मयंक तापत्रय मोचन।।
कानन्हिं कनक फूल छबि देहीं। चितवत चितहि चोर जनु लेहीं।।
चितवनि चारु भृकुटि बर बाँकी। तिलक रेख शोभा जनु चाँकी।।
रुचिर चौतनीं सुभग सिर, मेचत, कुंचित केस।
नख सिख सुंदर बंधु दोउ सोभा सकल सुदेस।।

सखियाँ आपस में वार्तालाप करती हुई युगल कुमारों के सौन्दर्य का वर्णन निम्नवत् करती हैं-

बय किसोर सुषमा सदन स्याम गौर सुख धाम।
अंग-अंग पर बारिअहिं कोटि-कोटि सत काम।।
कहहु सखी अस को तनु धारी। जो न मोह यह रूप निहारी।
कोउ सप्रेम बोली मृदु बानी। जो मैं सुना सो सुनहु सयानी।।
ए दोऊ दसरथ के ढोटा। बाल मरालन्हि के कल जोटा।।
मुनि कौसिक मख के रखवारे। जिन्ह रन अजिर निसाचर मारे।।
स्याम गात कल कंज बिलोचन। जो मारीच सुभुज मृदु मोचन।।
कौसल्या सुत सो सुख खानी। नामु रामु धनु सायक पानी।।
गौर किसौर बेषु बर काछें। कर सर चाप राम के पाछें।।
लछिमनु नामु राम लघु भ्राता। सुनु सखि तासु सुत्रिता माता।।[३०]

वाटिका प्रसंग में तुलसी ने पुरुष सौन्दर्यांकन की ललित योजना प्रस्तुत की है यथा-

लता भवन तें प्रगत भे तेहि अवसर दोउ भाई।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु जलद पटल बिलगाई।।
सोभा सीवँ सुभग दोउ बीरा। नील पीत जलजाभ सरीरा।।
मोर पंख सिर सोहत नीके। गुच्छ बीच बिच कुसुम कली के।।
भाल तिलक श्रमबिंदु सुहाए। श्रवन सुभग भूषन छबि छाए।।
बिकट भृकुटि कच घूघरवारे। नव सरोज लोचन रतनारे।।
चारु चिबुक नासिका कपोला। हास बिलास लेत मनु मोला।।
मुख छबि कहि न जाइ मोहि पाहीं। जो बिलोकि बहु काम लजाहीं।।

उर मनि माल कंबु कल गीवा। काम कलभ कर भुज बल सींवा।।
सुमन समेत बाम कर दोना। सावँर कुअँर सखी सुठि लोना।।
केहरि कटि पट पीत धर, सुषमा सील निधान।
देखि भानुकुल भूषनहि बिसरा सखिन्ह अपान।।[३१]

सीता स्वयंवर के समय राम-लक्ष्मण जब यज्ञशाला में पहुँचते हैं उस समय उनकी छवि का अंकन तुलसी ने इस प्रकार किया है-

(अ) राजकुअँर तेहि अवसर आए। मनहुँ मनोहरता तन छाए।।
गुन सागर नागर बर बीरा। सुंदर स्यामल गौर सरीरा।।
राज समाज बिराजत रूरे। उडगन महुँ जनु जुग बिधु पूरे।।[३२]

(ब) देखहिं रूप महा रन धीरा। मनहुँ बीर रसु धरें सरीरा।।[३३]

(स) राजत राज समाज महुँ कोसल राज किसोर।
सुंदर स्यामल गौर तन बिस्व बिलोचन चोर।।
सहज मनोहर मूरति दोऊ। कोटि काम उपमा लघु सोऊ।।
सरद चंद निंदक मुख नीके। नीरज नयन भावते जी के।।
चितवनि चारु मार मनु हरनी। भावति हृदय जाति नहिं बरनी।।
कल कपोल श्रुति कुंडल लोला। चिबुक अधर सुंदर मृदु बोला।।
कुमुदबंधु कर निंदक हाँसा। भृकुटी बिकट मनोहर नासा।।
भाल बिसाल तिलक झलकाहीं। कच बिलोकि अलि अवलि लजाहीं।।
पीत चौतनीं सिरन्हि सुहाईं। कुसुम कलीं बिच बीच बनाईं।।
रेखें रुचिर कंबु कल गीवाँ। जनु त्रिभुवन सुषमा की सीवाँ।।
कुंजर मनि कंठा कलित, उरन्हिं तुलसिका माल।
वृषभ कंध केहरि ठवनि, बलनिधि बाहु बिसाल।।
कटि तूनीर पीत पट बाँधें। कर सर धनुष बाम बर काँधें।।
पीत जग्य उपबीत सुहाए। नख सिख मंजु महाछबि छाए।।[३४]

तुलसी ने भरत और शत्रुघ्न के रूप-सौन्दर्य का संकेत भी मानस में दिया है। भरत-शत्रुघ्न भी बिल्कुल राम और लक्ष्मण की प्रतिच्छायावत प्रतीत होते हैं। तुलसी अभिव्यक्ति प्रकट करते हुए कहते हैं-

सखि जस राम लखन कर जोटा। तैसेइ भूप संग दुइ ढोटा।।
स्याम गौर सब अंग सुहाए। ते सब कहहिं देखि जे आए।।
कहा एक मैं आजु निहारे। जनु बिरंचि निज हाथ सँवारे।।
भरतु राम ही की अनुहारी। सहसा लखि न सकहिं नर-नारी।।

लखनु सत्रुसूदनु एक रूपा। नख सिख ते सब अंग अनूपा।।
मन भावहिं मुख बरनि न जाहीं। उपमा कहुँ त्रिभुवन कोउ नाहीं।।
उपमा न कोउ कह दास तुलसी कतहुँ कवि कोबिद कहैं।।
बल विनय विद्या सील सोभा सिंधु इन्ह से एइ अहैं।।
पुर नारि सकल पसारि अंचल बिधिहि वचन सुनावहीं।।
ब्याहिअहुँ चारिउ भाई एहिं पुर हम सुमंगल गावहीं।।[३५]

विवाह के लिए जाते समय तुलसी ने अश्वारूढ़ राम के सौन्दर्य को निम्नवत प्रस्तुत किया है-

(अ) केकि कंठ दुति स्यामल अंगा। तड़ित बिनिंदक बसन सुरंगा।
ब्याह विभूषन विविध बनाए। मंगल सब-सब भाँति सुहाए।।
सरद बिमल बिधु बदनु सुहावन। नयन नवल राजीव लजावन।।
सकल अलौकिक सुंदरताई। कहि न जाई मनहीं मन भाई।।[३६]

(ब) रामचंद्र मुख चंद्र छबि, लोचन चारु चकोर।
करत पान सादर सकल, प्रेमु प्रमोदु न थोर।।[३७]

दूल्हे के वेश में राम के सौन्दर्य को तुलसी ने निम्नवत परिकल्पित कर पुरुष सौन्दर्य की उदात्तता को स्पष्ट किया है। वे कहते हैं-

स्याम सरीर सुभायँ सुहावन। सोभा कोटि मनोज लजावन।।
जावक जुत पद कमल सुहाए। मुनि मन मधुप रहत जिन्ह छाए।।
पीत पुनीत मनोहर धोती। हरति बाल रवि दामिनि जोती।।
कल किंकिनि कटि सूत्र मनोहर। बाहु बिसाल विभूषन सुंदर।।
पीत जनेउ महाछबि देई। कर मुद्रिका चोरि चितु लेई।।
सोहत ब्याह साज सब साजे। उर आयत उरभूषन राजे।।
पिअर उपरना काखा सोती। दुहुँ आँचरन्हि लगे मनि मोती।।
सुंदर भृकुटि मनोहर नासा। माल तिलकु रुचिरता निवासा।।
सोहत मौरु मनोहर माथे। मंगलमय मुकुता मनि गाथे।।
गाथे महामनि मौर मंजुल अंग सब चित चोरहीं,
पुर नारि सुर सुंदरीं बरहिं बिलोकि सब तिन तोरहीं।
मनि बसन भूषन बारि आरति करहिं मंगल गावहीं,
सुर सुमन बरिसहिं सूत मागध बंदि सुजसु सुनावहीं।।''[३८]

सोते हुए राम के मुख-सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं-

नीदउ बदन सोह सुठि लोना। मनहुँ साँझ सरसीरुह सोना।[३९]

तपसी के रूप में तुलसी राम के सौन्दर्य का उद्घाटन निम्नवत करते हैं-

सीस जटा कटि मुनि पट बाँधे। तून कसें कर सरु धनु काँधे।।
बल्कल बसन जटिल तनु स्यामा। जनु मुनिवेष कीन्ह रति कामा।।
कर कमलनि धनु सायक फेरत। जिय की जरनि हरत हँसि हेरत।।[४०]

तुलसी ने भरत के तपसी वेष की छवि का संकेत निम्नवत दिया है-

जटा जूट सिर मुनि पट धारी। महि खनि कुस साँथरी सँवारी।।
असन बसन बासन ब्रत नेमा। करत कठिन ऋषि धरम सप्रेमा।।[४१]

लक्ष्मण के वीर रूप की व्यंजना तुलसी ने निम्नवत प्रकट की है-

छतज नयन उर बाहु बिसाला। हिमगिरि निभ तनु कछु एक लाला।।

युद्ध भूमि में राम के रूप का वर्णन करते हुए तुलसी कहते हैं कि अतुल बल से सम्पन्न रामचन्द्र जी रणभूमि में अत्यन्त शोभायमान प्रतीत हो रहे हैं। उनके मुख पर स्वेद-बिन्दु चमक रहे हैं। कमल के समान उनके नेत्रों में कुछ अतिरिक्त लालिमा दीखती है। शरीर पर रक्त की छींटें शोभित हैं। वे अपने दोनों हाथों से धनुष-बाण फिरा रहे हैं। उनके चारों ओर रीछ-वानर जमे हुए हैं। राम की इस छवि का वर्णन निश्चित रूप से असंभव है-

संग्राम भूमि बिराज रघुपति अतुल बल कोसल धनी।
श्रम बिंदु मुख राजीव लोचन अरुन तन सोनित कनी।।
भुज जुगल फेरत सर सरासन भालु कपि चहु दिसि बने।
कह दास तुलसी कहि न सक छबि सेष जेहि आनन घने।।[४२]

राक्षसराज रावण की मृत्यु के पश्चात राम के रूप का वर्णन तुलसी ने निम्नवत किया है-

सिर जटा मुकुट प्रसून बिच बिच अति मनोहर राजहीं।
जनु नीलगिरि पर तड़ित पटल समेत उडुगन भ्राजहीं।।
भुजदंड सर कोदंड फेरत रुधिर कन तन अति बने।
जनु रायमुनीं तमाल पर बैठीं बिपुल सुख आपने।।[४३]

कवितावली में भी तुलसी ने राम के चरित्र का गायन किया है। यद्यपि इसमें भी सात काण्ड हैं किन्तु इसमें तुलसी की दृष्टि उनके रूप सौन्दर्य के आकलन में नहीं रमी प्रतीत होती है। कथा में पर्याप्त विस्तार न होने के कारण इसमें प्रायः प्रमुख घटनाओं का ही उल्लेख उपलब्ध होता है। पुरुष सौन्दर्य के कतिपय स्थल प्रसंगानुकूल यत्र-तत्र उपलब्ध होते हैं। हाँ, बाल सौन्दर्य की छवियों को अवश्य तुलसी ने नूतन स्वरूप प्रदान किया है। कथा संक्षिप्त होने के कारण इसमें पुरुष-सौन्दर्य की आंतरिक सुषमा का वर्णन वाह्य रूप की अपेक्षा अधिक है किन्तु जितना भी अंकन कवितावली में उपलब्ध होता है उससे यह सुविदित होता है कि तुलसी में अभिव्यक्ति की चारुता और कला कौशल का लालित्य पर्याप्त रूपेण विद्यमान है।

कवितावली में बालकाण्ड के अंतर्गत तुलसी ने सीता स्वयंवर हेतु उपस्थित राजाओं और सम्राटों

का चित्रण निम्नवत प्रस्तुत किया है, जो प्रकारान्तर से राम की वीरता और सौन्दर्य को ही संकेतित करता है-

(अ) छोनी में छोनीपति छाजै जिन्हें छत्रछाया
छोनी-छोनी छाए छिति आए निमिराज के।
प्रबल प्रचंड बरिबंड बर बेष बपु
बरिबेकों बोले बैदेही बर काज के।।
बोले बन्दी बिरुद बजाइ बर बाजनेऊ,
बाजे-बाजे बीर बाहु धुनत समाज के।
तुलसी मुदित मन पुर नर-नारि जेते,
बार-बार हेरैं मुख औध मृगराज के।।[४४]

(ब) सिय कें स्वयंबर समाजु जहाँ राजनिको,
राजन के राजा महाराजा जानै नाम को।
पवन, पुरंदरु, कृसानु, भानु धनदु-से,
गुन के निधान रूपधाम सोमु कामु को।।
बान बलवान जातुधानप सरीखे सूर,
जिन्ह कें गुमान सदा सालिम संग्राम को।
तहाँ दसरत्थ के समत्थ नाथ तुलसी के,
चपरि चढ़ायौ चापु चंद्रमा ललाम को।।[४५]

तुलसी को जहाँ जरा भी अवकाश मिलता है वहाँ वे राम के रूप-सौन्दर्य का अंकन करने से चूकते नहीं। यही कारण है कि उनके कृतियों के पात्र अप्रत्यक्ष रूप से राम की ही व्यक्तित्व की उदात्तता का परिचय देते हैं। सखियों के माध्यम से तुलसी अभिव्यक्ति देते हैं-

लोचनाभिराम घनस्याम राम रूप सिसु
सखी कहै सखी सों तूँ प्रेमपय पालि री।
बालक नृपाल जू कें ख्याल ही पिनाकु तोरयो
मंडलीक-मंडली-प्रताप-दापु दालि री।।[४६]

कवितावली में तुलसी ने राम की अनूठी भंगिमा के सुरेखन से पुरुष सौन्दर्य का उत्कृष्ट उदाहरण प्रकट किया है। वे कहते हैं कि रामचन्द्र एक नवीन वृक्ष की डाल को पकड़ कर खड़े हुए हैं। कन्धे पर धनुष धारण किए और हाथ में धनुष लिये वे अत्यन्त सुशोभित प्रतीत होते हैं। उनकी भृकुटी टेढ़ी और आँखें बड़ी-बड़ी हैं। उनके कपोलों से अनुपम आभा प्रस्तारित हो रही है। उनके शरीर पर स्वेद बिन्दु ऐसे प्रतीत होते हैं मानो तारिकाओं से समन्वित महान तमोराशि उपस्थित हो गई हो। निश्चित रूप से ऐसी अद्भुत कांतिमयी छवि प्राण निछावर कर भी हृदय में बसाने योग्य है-

ठाढ़े हैं नव दुमडार गहें
धनु काँधें धरें, कर सायकु लै।
बिकटी भृकुटी, बड़री अँखियाँ,
अनमोल कपोलन की छबि है।।
तुलसी अस मूरति आनु हिएँ,
जड़ डारु धौं प्रान निछावरि कै।
श्रम-सीकर साँवरि देह लसै
मनो रासि महातम तारक मै।।[४७]

वन जाते समय मार्ग के नर-नारी, राम-लक्ष्मण के रूप-सौन्दर्य की चर्चा निम्नवत् करते हैं-

१. जलज नयन, जलजानन जटा है, सिर,
जौबन उमंग अंग उदित उदार हैं।
\- - - - - - - - - - - - - - -
करनि सरासन सिलीमुख, निषंग कटि,
अति ही अनूप काहू भूप के कुमार हैं।[४८]

२. आगें सोहै साँवरो कुँवरु गोरो पाछें-पाछें
आछे मुनिबेष धरें, लाजत अनंग हैं।
बान बिसिषानन, बसन बनही के कटि
कसे हैं बनाइ, नीके राजत निषंग हैं।।[४९]

३. सुन्दर, बदन, सरसीरुह सुहाए नैन,
मंजुल प्रसून माथें मुकुट जटनि के।
अंसनि सरासन, लसत सुचि सर कर,
तून कटि मुनिपट लूटक पटनि के।
\- - - - - - - - - - - - - - - - - -
गोरे को बरनु देख सोनो न सलोनो लागै
साँवरे बिलोकें गर्व घटत घटनि के।[५०]

४. साँवरे-गोरे सलोने सुभायँ, मनोहरताँ जिति मैन लियो है।
बान-कमान, निषंग कसें, सिर सोहैं, जटा, मुनिबेषु कियो है।[५१]

५. सीस जटा, उर-बाहु बिसाल, बिलोचन लाल, तिरीछी सी भौहैं।
तून-सरासन बान धरें तुलसी बन-मारग में सुठि सोहैं।।[५२]

६. मुख पंकज, कंज बिलोचन मंजु, मनोज-सरासन-सी बनी भौहैं।
कमनीय कलेवर कोमल स्यामल-गौर किसोर, जटा सिर सोहैं।।

तुलसी कटि तून, धरें धनु बान, अचानक दिष्टि परी तिरछौहैं।
केहि भाँति कहौं सजनी! तोहि सों मृदु मूरति द्वै निवसी मन मोहैं।।[५३]

तुलसी को राम की आखेट मुद्रा अत्यन्त प्रिय थी। कवितावली में राम की विशिष्ट भंगिमा का रूपांकन तुलसी ने निम्नवत किया है-

प्रेम सों पीछें तिरीछें प्रियाहि चितै चितु दै चले लै चितु चोरें।
स्याम सरीर पसेउ लसै हुलसै 'तुलसी' छवि सो मन मोरें।।
लोचन लाल, चलैं भृकुटी कल काम कमानहु सो तृनु तोरें।
राजत रामु कुरंग के संग निषंगु कसे धनुसों सरु जोरें।।[५४]

एक अन्य छन्द में तुलसी ने राम की छवि के अंकन के साथ ही रूप के प्रभाव की अनुपम व्यंजना प्रस्तुत की है। यथा-

सर चारिक चारु बनाइ कसें कटि, पानि सरासनु सायक लै।
बन खेलत रामु फिरैं मृगया, तुलसी छबि सो बरनै किमि कै।।
अवलोकि अलौकिक रूपु मृगीं मृग चौंकि चकैं चितवैं चितु दै।
न डगैं, न भगैं जियँ जानि सिलीमुख पंच धरें रति नायकु है।।[५५]

बरवैरामायण में भी पुरुष सौन्दर्य के कुछ उदाहरण मिलते हैं यद्यपि यह अत्यंत लघुकलेवरी रचना है। मात्र ६९ बरवै में सातों काण्ड की कथा को समेटने का प्रयास तुलसी ने किया है।

स्वयंवर के समय राम-लक्ष्मण की कान्ति का वर्णन करते हुये तुलसी कहते हैं कि जैसे ही राम-लक्ष्मण रूपी अरुण का आगमन होता है वैसे ही अन्यागत नरोशों के मुख चन्द्रमा के समान कान्तिहीन हो जाते हैं-

नित्य नेम कृत अरुन उदय जब कीन।
निरखि निसाकर नृप मुख भये मलीन।।[५६]

राम-लक्ष्मण अनन्त सौन्दर्य के भण्डार हैं। मार्गवासी उन्हें देखकर भ्रमित हो उठते हैं-

कोउ कह नर नारायन हरि हर कोउ।
कोउ कह बिहरत बन मधु मनसिज दोउ।।
तुलसी भइ मति बिथकित करि अनुमान।
राम लखन के रूप न देखेउ आन।।[५७]

इस कृति में भी तुलसी राम की विशिष्ट मुद्रांकन का लोभ संवरण नहीं कर पाये। वे अभिव्यक्त करते हैं-

जटा मुकुट कर सर धनु संग मरीच।
चितवनि बसति कनखियन अँखियनु बीच।।[५८]

हनुमान राम-लक्ष्मण का परिचय सुग्रीव से निम्नवत कराते हैं-

स्याम गौर दोउ मूरति लछिमन राम।
इन तें भइ सित कीरति अति अभिराम।।[५९]

जानकी मंगल, कथा और कलेवर दोनों ही दृष्टियों से लघु रचनाओं की कोटि में आती है। इसमें तुलसी ने केवल राम और सीता के परम मंगलमय विवाहोत्सव का सुन्दर वर्णन किया है। विवाहोत्सव की कथा में तुलसी को सौन्दर्याभिव्यक्ति का पूरा अवसर मिला है।

राम और लक्ष्मण के सौन्दर्य को तुलसी मनोहरता के भंडार की उपमा देते हुए कहते हैं-

(अ) स्यामल गौर किसोर मनोहरता निधि।
सुषमा सकल सकेलि मनहुँ बिरचे बिधि।।[६०]

(ब) बिरचे बिरंचि बनाइ बाँची रुचिरता रंचौ वहीं।
दस चारि भुवन निहारि देखि बिचारि नहिं उपमा कहीं।।
रिषि संग सोहत जात मग छबि बसत सो तुलसी हिएँ।
कियो गवन जनु दिननाथ उत्तर संग मधु माधव लिएँ।।[६१]

जनक के माध्यम से तुलसी पुरुष सौन्दर्य का निरूपण निम्नवत करते हैं-

देखि मनोहर मूरति मन अनुरागेउ।
बँधेउ सनेह बिदेह बिराग बिसारेउ।।
प्रभुदित हृदयँ सराहत भल भवसागर।
जहँ उपजहिं अस मानिक बिधि बड़ नागर।।
पुन्य पयोधि मातु पितु ए सिसु सुरतरु।
रूप सुधा सुख देत नयन अमरनि बरु।।
केहि सुकृती के कुँअर कहिय मुनिनायक।
गौर स्याम छवि धाम धरें धनु सायक।।[६२]

रंगभूमि में राम-लक्ष्मण के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति तुलसी निम्नवत करते हैं-

राजत राज समाज जुगल रघुकुल मनि।
मनहुँ सरद बिधु उभय नखत धरनी धनि।।
काकपच्छ सिर सुभग सरोरुह लोचन।
गौर स्याम सत कोटि काम मद मोचन।।[६३]

तुलसी अभिव्यक्ति प्रकट करते हुये कहते हैं कि उनकी भृकुटि पर तिलक ऐसा प्रतीत होता है मानो कामदेव की कमान पर बाण सुशोभित हो। उनके सुन्दर कर्णाभूषण मन को प्रफुल्लित करते हैं। उनकी नाक, ठोड़ी, कपोल, होंठ और दाँत अत्यन्त सुन्दर हैं। उनका सुन्दर मुख स्वाभाविक रूप से मन हरण करने वाला और शरतकाल के चन्द्रमा को निरादृत करने वाला है। उनका वक्षस्थल अत्यन्त विस्तृत है। कंधे वृषभ के टिल्ले के सदृश सुन्दर और भुजाएँ अत्यन्त बलशालिनी हैं। पीताम्बर और

जनेऊ धारण किए वे अत्यन्त शोभित हो रहे हैं। उनके गले में मौक्तिक हार सर्वत्र अपनी अनुपम आभा प्रस्तारित कर रहा है। वे कमर में तरकस और करकमलों में धनुष-बाण धारण किये अत्यन्त शोभित हो रहे हैं। उनके सभी अंग सुमनोहर और चित्त हरण करने वाले हैं यथा-

(अ) तिलकु ललित सर भ्रुकुटी काम कमानै।
श्रवन विभूषन रुचिर देखि मन मानै।।
नासा चिबुक कपोल अधर रद सुंदर।
बदन सरद बिधु निंदक सहज मनोहर।।
उर बिसाल वृषकंध सुभग भुज अतिबल।
पीत बसन उपबीत कंठ मुकुता फल।।
कटि निषंग कर कमलन्हिं धरें धनु-सायक।
सकल अंग मन मोहन जोहन लायक।।
राम-लखन छवि देखि मगन भए पुरजन।
उर अनंद जल लोचन प्रेम पुलक तन।।[६४]

(ब) दुहु दिसि राजकुमार विराजत मुनिबर।
नील पीत पाथोज बीच जनु दिनकर।।
काकपच्छ रिषि परसत पानि सरोजनि।
लाल कमल जनु लालत बाल मनोजनि।।[६५]

(स) मनसिज मनोहर मधुर मूरति कस न सादर जोवहू।
बिनु काज राज समाज महुँ तजि लाज आपु बिगोवहू।।
सिष देइ भूपति साधु भूप अनूप छबि देखन लगे।
रघुवंश कैरव चंद चितइ चकोर जिनि लोचन लगे।।[६६]

(द) रोम-रोम छबि निंदति सोभ मनोजनि।
देखिय मूरति मलिन करिय मुनि सोजनि।।[६७]

(क) नख सिख सुंदर राम रूप जब देखहिं।
सब इंद्रिन्ह महँ इंद्रबिलोचनि लेखहिं।।[६८]

(ख) सिल पोहनी करि मोहनी मन हर्यो मूरति साँवरी।[६९]

पार्वती मंगल में तुलसी ने माता पार्वती और शंकर के परिणय का वृत्तान्त अत्यंत मनोहर ढंग से प्रस्तुत किया है जिसे दिव्य सौन्दर्याभिव्यक्ति का अभिधान दिया जा सकता है। एक स्थान पर शंकर के सौन्दर्य में पुरुष सौन्दर्य के सुमनोहर स्वरूप की व्यंजना मिलती है। यथा दृष्टव्य हैं पंक्तियाँ-

सुंदर गौर सरीर भूति भलि सोहइ।
लोचन भाल बिसाल बदनु मन मोहइ।।

सैल कुमार निहारि मनोहर मूरति।
सजल नयन हियँ हरषु पुलक तन पूरति।।[७०]

कृष्ण गीतावली में तुलसी ने कृष्ण के रूप-सौन्दर्य का अनुभावन सुरेखित किया है। इसमें मात्र ६१ पद होने के कारण इसे लघुकलेवरी कृति माना जाता है। इसमें तुलसी ने कृष्ण के रूप-सौन्दर्य को तीन पदों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। इन पदों में तुलसी ने मुख, अलकावली, नेत्र, कपोल, कर्ण-कुण्डल, नासिका, भौंहों, तिलक, वस्त्राभूषण आदि के माध्यम से कृष्ण के मनोहारी रूप की अभिव्यंजना प्रस्तुत की है यथा-

(अ) देखु सखी हरि बदन इंदु पर।
चिक्कन कुटिल अलक-अवली-छवि कहि न जाइ सोभा अनूप बर।।
बाल भुअंगिनि निकर मनहुँ मिलि रहीं घर रस जानि सुधाकर।
तजि न सकहिं नहिं करहिं पान, कहु, कारन कौन बिचारि डरहिं उर।।
अरुन बनज लोचन कपोल सुभ स्रुति मंडित कुंडल अति सुंदर।
मनहु सिंधु निज सुतहि मनावन पठए जुगुल बसीठ बारिचर।।
नंदनँदन मुख की सुन्दरता कहि न सकत स्रुति सेष उमाबर।
तुलसिदास त्रैलोक्यबिमोहन रूप कपट नर त्रिबिध सूल हर।।[७१]

(ब) "आजु उनीदे आए मुरारी।
आलसवंत सुभग लोचन सखि छिन मूदत छिन देत उघारी।।
मनहुँ इंदु पर खंजरीट द्वै कछुक अरुन बिधि रचे सँवारी।
कुटिल अलक जनु मार फंद कर गहे सजग ह्वै रह्यो सँभारी।।
मानहुँ उड़न चहत अति चंचल पलक पंख छिन देत पसारी।
नासिक कीर, बचन पिक, सुनि करि, संगति मनु गुनि रहत बिचारी।।
रुचिर कपोल, चारु कुंडल बर, भृकुटि सरासन की अनुहारी।
परम चपल तेहि त्रास मनहुँ खग प्रगटत दुरत न मानत हारी।।"[७२]

(स) घनस्याम काम अनेक छबि, लोकाभिराम मनोहरं।
किंजल्क बसन, किसोर मूरति भूरि गुन करुनाकरं।।
सिर केकि पच्छ बिलोल कुंडल, अरुन बनरुह लोचनं।
गुंजावतंस बिचित्र सब अंग धातु, भव भय मोचनं।।
कच कुटिल, सुंदर तिलक भ्रू, राका मयंक समाननं।
अप हरन तुलसीदास त्रास बिहार बृंदाकाननं।।[७३]

यत्राकारो गुणास्तताः के अनुसार आकार में ही गुणों का स्वतः निवेश होता है अर्थात् शरीर यदि साधन है तो गुण को साध्य का अभिधान दिया जा सकता है। यह शरीर श्रेष्ठ और उदात्त गुणों

की साधना हेतु निरन्तर प्रयासरत रहता है। मान्यता भी है कि स्वस्थ एवं श्रेष्ठ शरीर में स्वस्थ और उदात्त भावनाओं का स्फुरण होता है। तुलसी साहित्य के उपर्युक्त अनुशीलन से स्पष्टतः ध्वनित होता है कि राम और लक्ष्मण सौन्दर्य के अनुपम आगार हैं। उनके अंग-प्रत्यंग न केवल स्वस्थ और पुष्ट हैं वरन समन्वित रूप में उनके सौन्दर्य पर मुग्ध हो मानवादि क्या पशु-पक्षी और यहाँ तक कि स्वयं प्रकृति भी अनुकूल रूप में आचरण करती प्रतीत होती है। उनके वाह्य सौन्दर्य की मोहिनी मन हरण कर चित्त में रसोद्रेक करने में समर्थ है।

यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि तुलसी ने अवतारी रूपों को मानवीय रूप में प्रस्तुत किया है। उनके चरित्र मानवीय क्रिया-व्यापार में संलग्न दिखते हैं किन्तु निश्चित रूप से सामान्य मानवों की कोटि से कुछ अलग दिखाई देते हैं। अलौकिक चरित्रों को लौकिक रूप प्रदान करने में निश्चित रूपेण मानवीय सौन्दर्य का चरम उत्कर्ष लक्षित होना सहज और स्वाभाविक है।

तुलसी के पुरुष सौन्दर्य में अतिमानवीयता का प्रसन्न प्रसार दृष्टिगत होता है। तुलसी की यही अतिमानवीयता पुरुष सौन्दर्य के उत्कृष्ट और उदात्त स्वरूप की अभिव्यंजना में सहायक हुई है। उनके पुरुष पात्रों का सौन्दर्य तुलसी की अभिव्यक्ति की उदात्तता और सौन्दर्यपूरित दृष्टिकोण का परिचय देने में पूर्ण समर्थ है।

आंतरिक सुषमा-

कोई भी सौन्दर्य केवल आवयविक सौन्दर्य मात्र से पूर्ण नहीं माना जा सकता क्योंकि सच्चा सौन्दर्य तो बाह्याकृति और आंतरिक गुणों के समन्वय में ही सन्निविष्ट होता है। इसलिए जब तक पुरुष में आन्तरिक गुण लक्षित नहीं होते तब तक उसे सुन्दर की मान्यता नहीं दी जा सकती। वास्तव में पुरुष सौन्दर्य का श्रेष्ठतम अनुभावन उसके पौरुषपूरित ओजस्वी स्वरूप में ही आभासित होता है। चरित्र की उदात्तता, समाज और राष्ट्रोन्नयन की व्यापक दृष्टि, गांभीर्य युक्त चिन्तन, सामान्य जन के प्रति संवेदना और सहानुभूति जैसे श्रेष्ठ गुण पुरुष सौन्दर्य को सम्पूर्णता प्रदान करते हैं।

तुलसी साहित्य में आदर्शों की श्रृंखलाबद्ध योजना लक्षित होती है। राम शक्तिशील और सौन्दर्य के समुच्चय हैं। उनके सौन्दर्यानुभावन में श्रेष्ठ नायक के सभी गुण परिलक्षित होते हैं। वे अत्यन्त धीर-गंभीर मितभाषी तथा मृदुभाषी हैं। उन्हें विषम से विषम परिस्थति में क्रोध नहीं आता। इसके विपरीत लक्ष्मण के स्वभाव में उग्रता दिखाई देती है। यद्यपि वे भी आदर्श भाई और आदर्श अनुचर के रूप में सामने आते हैं। फिर भी प्रसंगानुकूल क्रोध उनके उग्र स्वभाव की व्यंजना करता है।

तुलसी की कृतियों में भरत सर्वथा निष्कलुष और संकोचशील भाई के रूप में उपस्थित हुए हैं। आदर्श भाई के रूप में भरत अपना स्पष्ट प्रभाव छोड़ते हैं। इसके अतिरिक्त विभीषणादि अनेक पुरुष पात्र हैं जो प्रकारान्तर से राम के ही सौन्दर्यानुभावन में सहायक हैं। तुलसी ने विभिन्न पुरुष पात्रों का वर्णन राम की आंतरिक सुषमा के संप्रसार हेतु किया है। राम तुलसी की कृतियों के केन्द्रीय पात्र हैं।

सर्वाधिक ध्यान तुलसी ने राम पर ही दिया है। आइए उनके सौन्दर्य की आंतरिक सुषमा का निरीक्षण करें।

मानस का कलेवर विस्तृत होने के कारण तुलसी को प्रसंगबहुलता और सौन्दर्य निरूपण का बहुत अवकाश मिला है। मानस में इसलिए अन्य कृतियों की अपेक्षा राम और लक्ष्मण तथा अन्य पुरुष पात्रों का सौन्दर्य अपनी पूरी सम्पूर्णता के साथ अभिव्यक्त हुआ है। अन्य पात्रों के गुणों से भी राम का चरित्र और अधिक प्रकाशमान होकर अपने उत्कृष्टतम स्वरूप को प्रदर्शित करता है। विरोधाभासी चरित्रों की सृष्टि सात्विक पात्रों की उत्कृष्टता को व्यंजित करने में सहायक हुई है।

तुलसी के राम में श्रेष्ठ और धीरोदात्त नायक के सभी गुण हैं। तुलसी ने राम को एक आदर्श नायक की भांति प्रस्तुत करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। प्लेटो के अनुसार-**"श्रेय विधायकता, नैतिकता, उत्कर्ष, मंगलकारिता आदि जहाँ भी है वहीं सौन्दर्य है।** अर्थात् सच्चा सौन्दर्य वहीं उपस्थित हो सकता है जहाँ नैतिकता, उत्कर्ष और मंगलकारिता का विधान होता है। व्यवहार का सौन्दर्य गहन संस्कार बोध, वृहद ज्ञान और सोच की व्यापकता से सृजित किया जाता है। तुलसीदास के चरित्रों में व्यवहार कर्म संवादादि का सौन्दर्य उनकी संस्कृति निष्ठता और आस्था को संकेतित करता है। अनुभव के विस्तृत धरातल और अपनी संप्रसारित चेतना के कारण ही उनके पात्रों में आन्तरिक गुणों का ललित प्रस्तार उपलब्ध होता है।

तुलसी ने राम के चरित्र में सर्वत्र नैतिकता और मंगलकारिता के विशिष्ट विधान को नियोजित किया है। पुत्र, भ्राता, शिष्य, पति, राजा, स्वामी, मित्र सभी रूपों में राम सदैव नैतिक, संयमित और सांस्कृतिक गरिमोचित व्यवहार करते दिखाई पड़ते हैं। वन-गमन-प्रसंग राम के आदर्श पुत्र के रूप की सम्यक व्यंजना करता है। वन-गमन की आज्ञा हेतु दशरथ राम को बुलाते हैं। पुत्र के प्रति प्रेमातिरेक के कारण दशरथ की वाणी अवरुद्ध हो जाती है फलतः कैकेयी ही अपनी कुमंत्रणा को राम के सम्मुख रखती हैं.। राम के व्यवहार में कहीं लोभ या प्रतिकूलता परिलक्षित नहीं होती। तुलसी राम के प्रत्युत्तर को निरूपित करते हुए कहते हैं-

बोले बचन बिगत सब दूषन। मृदु मंजुल जनु बाग विभूषन।।
सुन जननी सोइ सुत बड़ भागी। जो पितु मातु वचन अनुरागी।।
तनय मातु पितु तोष निहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा।।
मुनिगन मिलनु विसेषि बन, सबहिं भाँति हित मोर।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरिं, संमति जननी तोर।।
भरतु प्रान प्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू।।
जौ न जाहु बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा।।[७४]

भरत के लिये राज सिंहासन त्यागने के उपरान्त भी राम का भरत के प्रति स्नेह किंचित भी कम नहीं दिखता बल्कि उनका प्रेम दिनानुदिन बढ़ता ही जाता है। भरत के ससैन्य आगमन की सूचना

पर यद्यपि लक्ष्मण के मन में शंका उत्पन्न होती है और वे आवेशित भी हो उठते हैं किन्तु राम का भरत के प्रति अगाध स्नेह लक्ष्मण के भ्रम का निराकरण करता है। तुलसी ने इस स्थल पर राम के गांभीर्य और भरत के चरित्र की उज्ज्वलता को एक दोहे के माध्यम से स्पष्ट किया है। यथा-

भरतहि होइ न राजमद, विधि हरि हर पद पाई।
कबहु कि काजी सीकरनि, क्षीर सिन्धु बिनसाई।।[७५]

भरत जब सारी सभा के सामने राम से लौटने और पुनः सिंहासन संभालने हेतु आग्रह करते हैं तो राम स्वयं भरत से ही कहते हैं-तुम स्वयं धर्मानुकूल आचरण करने वाले हो इसलिये जो धर्मोचित हो वह मुझसे कराओ और स्वयं भी तदनुसार करो। तुलसी इस भाव की अभिव्यंजना निम्नवत प्रस्तुत करते हैं-

"सो तुम्ह करहु करावहु मोहू। तात तरनिकुल पालक होहू।।
साधक एक सकल सिधि देनी। कीरति सुगति भूतिमय बेनी।।
सो बिचारि सहि संकटु भारी। करहु प्रजा परिवार सुखारी।।
बाँटी बिपति सबहिं मोहि भाई। तुम्हहिं अवधि भरि बड़ि कठिनाई।।
जानि तुम्हहिं मृदु कहउँ कठोरा। कुसमयँ तात न अनुचित मोरा।।
होहिं कुठायँ सुबंधु सहाए। ओड़िअहुँ हाथ असनिहु के धाए।।

सेवक कर पद नयन से, मुख सो साहिबु होइ।
तुलसी प्रीति कि रीति सुनि, सुकवि सराहहिं सोइ।।

सभा सकल सुनि रघुबर बानी। प्रेम पयोधि अमिअँ जनु सानी।।
सिथिल समाज सनेह समाधी। देखि दसा चुप सारद साधी।।
भरतहि भयउ परम संतोषू। सनमुख स्वामि बिमुख दुख दोसू।।
मुख प्रसन्न मिटा बिषादू। भा जनु गूँगेहि गिरा प्रसादू।।"[७६]

तुलसी ने राम को आदर्श मित्र के रूप में भी प्रतिष्ठित किया है। सुग्रीव-मित्रता प्रसंग उनके मित्र रूप की व्यंजना करता है। मित्र के कष्ट को दूर करना, विपत्ति में उसका साथ देना ही राम का परम धर्म है। राम के समक्ष मित्रता का कर्त्तव्य है-

"जे न मित्र दुख होंहि दुखारी। तिन्हहिं विलोकत पातक भारी।
निज दुख गिरि सम रज कर जाना। मित्र के दुख रज मेरु समाना।।
जिन्ह कें असि मति सहज न आई। ते सठ कत हठि करत मिताई।।
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटै अवगुनन्हिं दुरावा।।"[७७]

सुग्रीव की पीड़ा जानकर राम उन्हें निश्चिन्त और अभय रहने का आश्वासन देते हुए कहते हैं-

सखा सोच त्यागहु बल मोरा। सब विधि घटब काज मैं तोरा।।"[७८]

मित्रता के धर्म का निर्वाह करते हुए राम बालि का वध करते हैं। यद्यपि कतिपय मनीषी कुतर्क

के कारण इस प्रसंग को राम चरित्र पर आक्षेप बताते हैं किन्तु तुलसी का तो मन्तव्य ही था नैतिक और मंगलकारी आदर्शों का प्रतिस्थापना, अत्यन्त निपुणता से वे इस शंका का समाधान भी दे देते हैं। बालि के द्वारा प्रश्न पूछने पर राम प्रत्युत्तर में स्पष्ट रूप से कहते हैं-

"अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी।।
इन्हहिं कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधें कछु पाप न होई।।"[७६]

इस प्रकार तुलसी ने नैतिकता और मंगलकारिता के सुस्थापन हेतु बालि-वध का औचित्य स्पष्ट कर जहाँ कला-कौशल का परिचय दिया है वहाँ राम के चरित्र को धूमिल होने से भी बचाकर उनकी संप्रभुता को निखारा है।

शिष्य के रूप में राम सदा मर्यादित और गुरु आज्ञा के उपरान्त ही क्रिया-व्यापारों में संलग्न लक्षित होते हैं। लक्ष्मण के मन में जनकपुरी भ्रमण करने की इच्छा जाग्रत होती है किन्तु राम से कहने में संकोच हो रहा है। राम छोटे भाई के हृदय की बात समझकर स्वयं गुरु से आज्ञा प्राप्त कर विनयपूर्वक अनुमति मांगते हैं। विश्वामित्र राम के आचार-व्यवहार की सराहना करते हुए प्रेमपूर्वक आज्ञा प्रदान करते हैं। तुलसी ने इस प्रसंग का चित्रण निम्नवत कर राम की आंतरिक सुषमा की गरिमा का परिचय दिया है-

राम अनुज मन की गति जानी। भगत बछलता हियँ हुलसानी।
परम बिनीत सकुचि मुसुकाई। बोले गुर अनुशासन पाईं।।
नाथ लखनु पुर देखन चहहीं। प्रभु सकोच डर प्रगट न कहहीं।।
जौं राउर आयसु मैं पावौं। नगर देखाइ तुरत लै आवौं।।
सुनि मुनीसु कह बचन सप्रीती। कस न राम तुम्ह राखहु नीती।।
धरम सेतु पालक तुम्ह ताता। प्रेम बिबस सेवक सुखदाता।।
जाइ देखि आवहु नगरु, सुख निधान दोउ भाइ।
करहु सुफल सबके के नयन, सुंदर बदन देखाइ।।[८०]

विश्वामित्र की आज्ञा प्राप्त करके ही राम कोई कार्य संपादित करते हैं। वन और विवाह के प्रसंग राम की आज्ञाकारिता के प्रमाण देते हैं। इसके अतिरिक्त सोने के पहले गुरु के चरणों को दबाना राम के जीवन का निश्चित क्रम था। विश्वामित्र के बार-बार कहने पर ही राम-लक्ष्मण सोने के लिए जाते हैं। इसके बाद लक्ष्मण बड़े भाई की सेवा में संलग्न होते हैं और उसके बाद ही शयन करते हैं। जिस प्रकार सोने का क्रम है उसी प्रकार जागने का भी। लक्ष्मण और राम नित्य प्रति गुरु के जागने से पहले ही उठ जाते हैं। तुलसी ने इस प्रसंग को निम्नवत् प्रस्तुत किया है-

मुनिबर सयन कीन्ह तब जाई। लगे चरन चापन दोउ भाई।।
जिन्ह के चरन सरोरुह लागी। करत बिबिध जप जोग बिरागी।।
तेउ दोउ बंधु प्रेम जनु जीते। गुरु पद कमल पलोटत प्रीते।।

बार-बार मुनि अग्या दीन्हीं। रघुबर जाइ सयन तब कीन्हीं।।
चापत चरन लखनु उर लाएँ। समय सप्रेम परम सचु पाएँ।।
पुनि-पुनि प्रभु कह सोवहु ताता। पौढ़े धरि उर पद जल जाता।।
उठे लखनु निसि बिगत सुनि अरुन सिखा धुनि कान।
गुरु तें पहिलेहिं जगत पति जागे रामु सुजान।।
सकल सौच करि जाइ नहाए। नित्य निवाहि मुनिहि सिर नाए।।
समय जानि गुरु आयसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई।।[८१]

सामान्य जन की भाँति राम के मन में सीता को देखकर प्रेम का स्फुरण होता है किन्तु उनके प्रेम में भी एक उदात्तता दृष्टिगत होती है उच्छृंखलता नहीं। तुलसी ने राम के इन्हीं अंतर्गत भावों का निरूपण निम्नवत प्रस्तुत किया है-

(अ) देखि सीय सोभा सुखु पावा। हृदँ सराहत वचनु न आवा।[८२]

(ब) सिय सोभा हियँ बरनि प्रभु आपनि दसा बिचारि।
बोले सुचि मन अनुज सन बचन समय अनुहारि।।[८३]

(स) तात जनक तनया यह हियँ सोई। धनुष जग्य जेहि कारन होई।।[८४]
\- - - - - - - - - - - - - - - -

(द) जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मनु छोभा।।
सो सबु कारन जान विधाता। फरकहिं सुभद अंग सुनु भ्राता।।
रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपंथु पगु धरइ न काऊ।।
मोहिं अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहिं सपनेहुँ पर नारि न हेरी।।
\- -

करत बतकही अनुज सन, मन सिय रूप लोभान।
मुख सरोज मकरंद छबि करइ मधुप इव पान।।[८५]

पति के रूप में भी तुलसी ने राम के चरित्र में उदात्तता और आदर्श के श्रेष्ठतम स्वरूप को अभिनिवेशित किया है। तुलसी के राम एक पत्नीव्रत और सम्पूर्णता से अपनी पत्नी के प्रति समर्पित पुरुष हैं। मानस के कतिपय प्रसंग राम के आदर्श पति के स्वरूप को स्पष्ट करते हैं।

वन-गमन की आज्ञा के उपरान्त राम स्वयं तो वन जाने के लिए तैयार हो जाते हैं किन्तु सीता की सुकुमारिता को सोच कर भाँति-भाँति प्रकार से सीता को समझाने की कोशिश करते हैं। उनका यह समझाना राम के सौन्दर्य की आंतरिक सुषमा के प्रकाशन के साथ ही उनके पत्नी के प्रति असीम प्रेम की भी सार्थक व्यंजना करता है। तुलसी ने उनके इन भावों को अत्यंत ललित रूप से अभिव्यक्त किया है। वे कहते हैं-

रामकुमारि सिखावनु सुनहू। आन भाँति जियँ जनि कछु गुनहू।।

आपन मोर सासु सेवकाई। सब विधि भामिनि भवन भलाई।।
एहि ते अधिक धरमु नहिं दूजा। सादर सासु ससुर पद पूजा।।
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी। होइहि प्रेम बिकल मति भोरी।।
तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी। सुंदरि समुझाएहु मृदु बानी।।
कहउँ सुभायँ सपथ सत मोही। सुमुखि मातु हित राखउँ तोही।।

गुरु श्रुति संमत धरम फलु पाइअ बिनहिं कलेस।
हठ बस सब संकट सहे, गालव नहुष नरेस।।

मैं पुनि करि प्रवान पितु बानी। बेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी।।
दिवस जात नहिं लागिहि बारा। सुंदरि सिखवनु सुनहु हमारा।।
जौं हठ करहु प्रेम बस बामा। तौ तुम्ह दुखु पाउब परिनामा।।
काननु कठिन भयंकरु भारी। घोर घामु हिम बारि बयारी।।
कुस कंटक मग काँकर नाना। चलब पयादेहिं बिनु पदत्राना।।
चरन कमल मृदु मंजु तुम्हारे। माखा अगम भूमिधर भारे।।
कंदर खोह नदीं नद नारे। अगम न जाहिं निहारे।।
भालु बाघ बृक केहरि नागा। करहिं नाद सुनि धीरजु भागा।।

भूमि सयन बलकल बसन, असनु कंद फल मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं, सबुइ समय अनुकूल।।

नर अहार रजनीचर चरहीं। कपट वेष बिधि कोटिक करहीं।।
लागइ अति पहार कर पानी। बिपिन बिपति नहिं जाइ बखानी।।
ब्याल कराल बिहग घन घोरा। निसिचर निकर नारि नर चोरा।।
डरपहिं धीर गहन सुधि आएँ। मृग लोचनि तुम्ह भीरु सुभाएँ।।
हंसगवनि तुम्ह नहिं बन जोगू। सुनि अपजसु मोहि देइहि लोगू।।
मानस सलिल सुधा प्रतिपाली। जिअइ कि लवन पयोधि मराली।।
नव रसाल बन बिहरन सीला। सोह कि कोकिल विपिन करीला।।
रहहु भवन अस हृदयँ बिचारी। चंद बदनि दुखु कानन भारी।।

सहज सुहृद गुर स्वामि सिख, जो न करइ सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर, अवसि होइ हित आनि।।"[८६]

एक स्थल पर तुलसी ने राम द्वारा फूलों के गहने बनाकर सीता जी को पहनाने का चित्र भी अंकित किया है-

एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषन राम बनाए।
सीतहि पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक सिला पर सुंदर।।[८७]

शूर्पणखा द्वारा प्रणय-याचना करने पर भी राम, सीता की तरफ देखकर अपने विवाहित होने का संकेत देते हैं। तुलसी ने इसे निम्नवत अभिव्यक्त किया है-

सीतहि चितइ कही प्रभु बाता। अहइ कुआर मोर लघु भ्राता।[८८]

व्यक्तित्व को सौन्दर्य से मंडित करने में वाणीगत लालित्य का विशिष्ट महत्व होता है। तुलसी ने राम को मानक प्रतिमानों के आदर्श रूप में चित्रित किया है इसीलिए राम की वाणी सुसंस्कृत और संस्कारपूर्ण है। वाणीगत सौन्दर्य का आशय शब्दोच्चारण मात्र नहीं वरन वाणी में उच्चारण के अतिरिक्त संस्कारयुक्तता तथा अर्थवत्ता भी निहित होनी चाहिये। तभी वाणी का सौन्दर्य किसी भी पात्र के व्यक्तित्व को सम्पूर्णता और सार्थकता देने में सक्षम होता है। प्रकारान्तर से कह सकते हैं कि अर्थमयता से युक्त सुसंस्कृत वाणी व्यक्तित्व को आभूषित कर उत्कृष्टता से अभिमंडित करने में योग देती है। तुलसी ने राम के वाणीगत सौन्दर्य को प्रसंगानुसार सर्वत्र अपने कला-कौशल से मानस में नियोजित किया है। निम्न पंक्तियाँ राम की विशिष्ट अर्थमयता युक्त संस्कार शील वाणी का सक्षम प्रमाण प्रस्तुत करती हैं-

राम वचन मृदु मूढ़ सुनि उपजा अति संकोच।
सती सभीत महेश पहिं चली हृदय बड़ सोच।।[८९]

शीतलता और मृदुता राम की संस्कारित वाणी का सर्वप्रमुख गुण था। राम सदैव सबसे स्नेहपूर्ण व्यवहार करते हैं, यहाँ तक कि अपने विरोधियों के प्रति भी उन्होंने कटु वचनों का प्रयोग नहीं किया। उपर्युक्त तथ्य की सम्पुष्टि के लिए दृष्टव्य हैं कतिपय पंक्तियाँ जिसमें परशुराम के सम्मुख वे अत्यन्त विनम्रता से अपनी बात प्रस्तुत करते हैं-

अति विनीत मृदु सीतल बानी। बोले रामु जोरि जुग पानी।
सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना। बालकु वचन करिअ नहिं काना।।
बररै बालकु एकु सुभाऊ। इन्हहिं न संत बिदूषहिं काऊ।।
तेहि नाहीं कछु काज बिगारा। अपराधी मैं नाथ तुम्हारा।।
कृपा कोपु बधु बँधब गोसाईं। मो पर करिअ दास की नाईं।।
कहिअ बेगि जेहि बिधि रिस जाई। मुनिनायक सोइ करौं उपाई।।[९०]

वीरता राम के व्यक्तित्व का अभिन्न अंग है। मानस में उनकी वीरता विषयक कई प्रसंग तुलसी ने नियोजित किए हैं। ताड़का वध, विराध, खर-दूषण, मारीच, बालि, कुम्भकर्ण तथा रावणादि जैसे महावीरों और राक्षसों को मारकर वे अपनी वीरता का प्रमाण देते हैं। इसके अतिरिक्त धनुष-भंग-प्रसंग, तमाल वृक्षों को एक ही बाण से बेधने तथा रावण के मुकुट तथा कर्ण कुण्डलों को एक ही बाण से गिराने के प्रसंग उनकी महावीरता की व्यंजना करते हैं। यथा तमालवृक्ष और रावण के मुकुटादि गिराने विषयक प्रसंग दृष्टव्य हैं-

(अ) कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। बालि महाबल अति रन धीरा।।
दुंदुभि अस्थि ताल देखराए। बिनु प्रयास रघुनाथ दहाए।।[९१]

(ब) छत्र मुकुट ताटंक तब, हते एक हीं बान।
सब कें देखत महि परे, मरमु न कोऊ जान।।
अस कौतुक करि राम सर प्रबिसेउ आइ निषंग।
रावन सभा ससंक सब देखि महा रसभंग।।[६२]

समुद्रोत्तरण के लिए सेतु बाँधने तथा सुबेल पर्वत पर (जहाँ स्वयँ काल का पहरा रहता था) अपना सैन्य निवेश निर्धारित करने के प्रसंग राम के युद्ध कौशल को उद्घाटित करते हैं-

(अ) सेन सहित उतरे रघुबीरा। कहि न जाइ कपि जूथप भीरा।।
सिंधु पार प्रभु डेरा कीन्हा। सकल कपिन्ह कहुँ आयसु दीन्हा।।[६३]

(ब) इहाँ सुबेल सैल रघुबीरा। उतरे सेन सहित अति भीरा।।[६४]

उदारता राम के व्यक्तित्व का अन्यतम आयाम है। अत्यंत संकोच के साथ वे विभीषण को लंकाधिपति की पदवी से विभूषित करते हैं। जो यश, धन, वैभव रावण ने अत्यन्त कठिन तपस्या के उपरान्त अर्जित किया था, वह सारा ऐश्वर्य विभीषण को क्षण मात्र में प्राप्त हो जाता है। तुलसी ने राम के औदार्य को अत्यन्त गरिमापूर्ण ढंग से अभिव्यक्त किया है-

जो संपति सिव रावनहिं, दीन्ह दिये दसमाथ।
सोइ संपदा विभीषनहिं, सकुच दीन्ह रघुनाथ।।[६५]

तुलसी की राम राज्य की अवधारणा राम के राजा रूप को तीव्रता से मुखर करती है। मानस के उत्तर काण्ड में राम राज्य की अवधारणा की सम्यकाभिव्यक्ति राम की राज-नीति का परिचय देती है। तुलसी कहते हैं-

बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई।।
बरनाश्रम निज-निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग।।
दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा।।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।।
चारिउ चरन धर्म जग माहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं।।
राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी।।
अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब बिरुज सरीरा।।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।।
सब निर्दंभ धर्मरत गुनी। नरु अरु नारि चतुर सब गुनी।।
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपट सयानी"
- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

सब उदार सब पर उपकारी। बिप्र चरन सेवक नर नारी।।
एक नारिब्रत रत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी।।
दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचंद्र कें राज।।[६६]

कहा जा सकता है कि तुलसी ने मानस में पुरुष के रूपगत सौन्दर्य के साथ ही कर्म विचार और भावगत सौन्दर्य की सम्यकाभिव्यक्ति राम के माध्यम से उद्‌घाटित की है। प्रसंग बहुलता और कथा के अपरिमित विस्तार के कारण वे जिन तथ्यों की उद्‌भावना मानस में नहीं नियोजित कर सके उन्हें तुलसी ने अपनी अन्य कृतियों में अभिनिवेशित किया है। पुरुष सौन्दर्य की उत्कृष्टतम परिकल्पना तुलसी ने राम के रूप में प्रस्तुत की है। तुलसी की दृष्टि लोक कल्याण और श्रेय विधायकता से अनुरंजित थी इसीलिए आंतरिक सुषमा का सर्वत्र ललित उत्कर्ष उनकी कृतियों में लक्षित होता है।

राम के रूप में तुलसी आदर्श के उत्कृष्ट रूप की व्यंजना करना चाहते थे इसलिए अपनी कृतियों में उन्होंने प्रकारान्तर से कथा की पुनरावृत्ति की है। पुनरावृत्ति के कारण ही वे राम का भव्य और उदात्त वर्णन कर सके हैं। मानस में कथा विस्तार के कारण वे राम से सम्बन्धित कई प्रसंगों को शायद पूर्णता न दे सके जिसके कारण अपनी अन्य कृतियों में भी उन्होंने उसी कथा का आश्रय लिया। उनकी अन्य कृतियों में राम का ललित और मनोहर स्वरूप देखा जा सकता है। बाह्याकृति के अलावा आंतरिक गुणों का प्रकाशन पूरी तन्मयता के साथ उनकी अन्य कृतियों में उपलब्ध होता है। आइये, अब अन्य कृतियों में व्यंजित पुरुष सौन्दर्य की आंतरिक मनोहरता पर दृष्टि निक्षेप करते हैं।

गीतावली में तुलसी ने मानस में नियोजित कतिपय प्रसंगों को बिल्कुल ही छोड़ दिया है और कुछ प्रसंगों को मानस की अपेक्षा विस्तार भी दिया है। इसमें भी तुलसी ने राम को आदर्श भाई आदर्श पति, आदर्श पुत्र, आदर्श मित्र तथा धीरोदात्त नायक के रूप में चित्रित किया है।

राम पिता की आज्ञा पाकर वन गमन हेतु प्रस्थान करते हैं। भरत लौटने पर राम को वापस लौटाने हेतु जाते हैं। तुलसी ने राम-भरत संवाद के माध्यम से आदर्श भाई और आदर्श पुत्र की आंतरिकता को उत्कृष्ट रूप में अभिव्यंजित किया है। निम्न उद्धरण इसी उपर्युक्त भाव की सम्पुष्टि करते हैं-

(अ) (भरत वचन) जानत हौ सबही के मन की।
तदपि, कृपालु! करौं विनती सोइ सादर सुनहु दीन-हित जन की।।
ये सेवक संतत अनन्य अति, ज्यों चातकहि एक गति घन की।
यह बिचारि गवनहु पुनीत पुर, हरहु दुसह आरति परिजन की।।
मेरो जीवन जानिय ऐसोइ, जियै जैसो अहि, जासु गई मनि फन की।
मेटहु कुल कलंक कोसलपति, आग्या देहु नाथ मोहि बन की।।
मोको जोइ लाइय लागै सोइ उतपित है कुमातुतें तनकी।।
तुलसिदास सब दोष दूरि करि प्रभु अब लाज करहु निज पन की।।[६७]

(ब) (रामवचन) तात! बिचारो धौं, हौं क्यों आवौं।

तुम्ह सुचि, सुहृद सुजान सकल बिधि, बहुत कहा कहि कहि समझावौं।।

निज कर खाल खैंचि या तनु तें जौ पितु पग पानही करावौं।

होउँ न उरिन पिता दसरथ तें कैसे ताके बचन मेटि पति पावौं।।

तुलसिदास जाको सुजस तिहूँ पुर, क्यों जेहि कुलहि कालिमा लावौं।।

प्रभु रुख निरखि निरास भरत भए, जान्यो है सबहि भाँति बिधि बावौं।।[९८]

भरत पुनः एक बार याचना करते हैं कि हे राम! यदि आपका लौटना संभव नहीं तो कृपा कर इतना कर दीजिए कि लक्ष्मण के बजाए मुझे अपने साथ ले चलिए और लक्ष्मण को अयोध्या लौट जाने की आज्ञा दीजिए किन्तु आप तो मुझे ही बार-बार लौट कर जाने के लिए कहते हैं। तुलसी कहते हैं-

(क) (भरत वचन) रघुपति! मोहि संग किन लीजै।

बार-बार 'पुर जाहु', नाथ! केहि कारन आयसु दीजै।।

जद्यपि हौं अति अधम, कुटिलमति, अपराधिनि को जायो।

प्रनतपाल कोमल-सुभाव जिय जानि, सरन तकि आयो।।

- -

बंधु-बचन सुनि श्रवन नयन-राजीव नीर भरि आए।

तुलिसदास प्रभु परम कृपा गहि बाँह भरत उर लाए।।[९९]

(ख) (राम वचन) काहे को मानत हानि हिये हौ?

प्रीति-नीति-गुन-सील-धरम कहँ तुम अवलंब दिये हौ।।

तात! जानिबे न ए दिन, करि प्रमान पितु बानी।

ऐहौं बेगि धरहु धीरज उर कठिन कालगति जानी।।

तुलसिदास अनुजहि प्रबोधि प्रभु चरनपीठ निज दीन्हें।

मनहु सबनि के प्रान-पाहरू भरत सीस धरि-लीन्हें।।[१००]

इतना समझाने पर भरत किसी प्रकार अयोध्या वापिस लौटने के लिए तैयार हो जाते हैं किन्तु साथ ही यह भी कहते हैं कि-

तुलसी बीते अवधि प्रथम दिन जो रघुबीर न ऐ हौ।

तौ प्रभु-चरन-सरोज-सपथ जीवत परिजनहि न पैहौ।।"[१०१]

इसके उपरान्त तुलसी ने भरत की जीवन शैली का चित्र उकेरा है जो भरत की साधुता और संस्कारित पुरुष की सुषमा को प्रत्यक्ष करता है यथा-

जब तें चित्रकूट तें आए

नंदिग्राम खनि, अवनि, डासि कुस, परनकुटी करि छाए।।

अजिन बसन, फल असन, जटा धरे रहत अवधि चित दीन्हें।

प्रभु-पद-प्रेम-नेम-ब्रत निरखत मुनिन्ह नमित मुख कीन्हें।।
सिंहासन पर पूजि पादुका बारहि बार जोहारे।
प्रभु-अनुराग माँगि आयसु पुरजन सब काज सँवारे।।
तुलसी ज्यों-ज्यों घटत तेज तनु, त्यों-त्यों प्रीति अधिकाई।
भए, न हैं, न होहिंगे कबहूँ भुवन भरत-से भाई।।[१०२]

लक्ष्मण, शक्ति लग जाने पर मूर्छित हो जाते हैं। इस समय राम-विलाप के माध्यम से तुलसी ने जहाँ राम के आंतरिक सौन्दर्य का प्रकाशन किया है वहीं लक्ष्मण के गुणों की चर्चा राम के मुख से करायी है। राम यहाँ तक कहते हैं कि मेरा सारा पुरुषार्थ लक्ष्मण के कारण ही था। तुलसी ने राम की विनम्रता को इस प्रकार अभिव्यक्त किया है-

(अ) राम-लषन उर लाय लये हैं।
भरे नीर राजीव-नयन सब अँग परिताप तए हैं।।
कहत ससोक बिलोकि बंधु-मुख वचन प्रीति गुथए हैं।
सेवक-सखा भगति-भायप-गुन चाहत अब अथए हैं।।
निज कीरति-करतूति तात! तुम सुकृती सकल जए हैं।।
मैं तुम्ह बिनु तनु राखि लोक अपने अपलोक लए हैं।।
मेरे पन की लाज इहाँ लौं हठि प्रिय प्रान दए हैं।
लागति साँग विभीषन ही पर, सीपर आपु भए हैं।।[१०३]

(ब) मोपै तो न कछू ह्वै आई।
ओर निबाहि भली बिधि भायप चल्यो लखन-सो भाई।।
पुर, पितु-मातु, सकल सुख परिहरि जेहि बन-बिपति बँटाई।
ता सँग हौं सुरलोक सोक तजि सक्यो न प्रान पठाई।।
जानत हौं या उर कठोरतें कुलिस कठिनता पाई।
सुमिरि सनेह सुमित्रा-सुत को दरकि दरार न जाई।।
तात-मरन, तिय-हरन, गीध-बध, भुज दाहिनी गँवाई।
तुलसी मैं सब भाँति आपने कुलहि कालिमा लाई।।[१०४]

(स) मेरो सब पुरुषारथ थाको ।
बिपति बँटावन बंधु-बाहु बिनु करौं भरोसो काको।।
सुनु सुग्रीव! साँचेहू मोपर फेर्‌यो बदन बिधाता।
ऐसे समय समर-संकट हौं तज्यो लषन-सो भ्राता।।[१०५]

(द) (लक्ष्मण वचन) हृदय घाउ मेरे पीर रघुबीरै।
पाइ सजीवन, जागि कहत यों प्रेम पुलकि बिसराय सरीरै।।[१०६]

दशानन को मार-मार कर अयोध्या वापस आने के समय नगरवासियों के वार्तालाप के माध्यम से तुलसी ने राम के युद्ध कौशल, वीरता, शरणागत वत्सलता, दयालुता आदि गुणों का प्रकाशन किया है। प्रस्तुत हैं पंक्तियाँ जो राम की आंतरिक सुषमा को तीव्रता से अभिव्यक्त करती हैं-

सुनियत सागर सेतु बँधायो।
कोसलपति की कुसल सकल सुधि कोउ इक दूत भरत पहँ ल्यायो।।
बध्यो बिराध, त्रिसिर, खर-दूषन सूर्पनखा को रूप नसायो।
हति कबंध, बल-अंध बालि दलि, कृपासिंधु सुग्रीव बसायो।।
सरनागत अपनाइ बिभीषन, रावन सकुल समूल बहायो।
बिबुध-समाज निवाजि, बाँह दै, बंदि छोर बर बिरद कहायो।।[१०७]

राम राज्य के माध्यम से तुलसी ने राम के राजा के रूप की प्रतिष्ठा नियोजित की है। वे कहते हैं-

पालत राज यों राजा राम धरम धुरीन।
सावधान, सुजान, सब दिन रहत नय-लयलीन।।
स्वान-खग-जति न्याउ देख्यो आपु बैठि प्रबीन।
नीचु हति महिदेव-बालक कियो मीचुबिहीन।।
भरत ज्यों अनुकूल जग निरुपाधि नेह नवीन।
सकल चाहत रामही ज्यों जल अगाधहि लीन।।
गाइ राज-समाज जाँचत दास तुलसी दीन।
लेहु निज करि, देहु निज-पद-प्रेम पावन पीन।।[१०८]

इस कृति के अंतिम पद में तुलसी ने राम चरित्र का उल्लेख संपूर्णता से प्रकट किया है। इस पद में राम की आंतरिक वृत्तियों और भावों का सम्यक सुरेखन तुलसी के पुरुष सौन्दर्य के आंतरिक पक्ष की अभिव्यक्ति की सार्थकता और चारुता का अनुपम प्रमाण प्रस्तुत करता है। तुलसी ने राम की आंतरिकता को निम्नवत निरूपित किया है-

प्रथम ताड़का हति, सुबाहु बधि, मख राख्यो द्विज, हितकारी।
देखि दुखी अति सिला सापबस रघुपति बिप्र-नारि तारी।।
सब भूपन को गरब हर्‌यो भंज्यो संभु-चाप भारी।
जनक सुता समेत आवत गृह परशुराम अति मदहारी।।
तात बचन तजि राज-काज सुर चित्रकूट मुनिबेष धर्‌यो।
एक नयन कीन्हों सुरपति-सुत, बधि बिराध रिषि-सोक हर्‌यो।।
पंचवटी पावन राघव करि सूपनखा कुरूप कीन्हीं।
खर-दूषन संहारि कपट मृग-गीधराज कहँ गति दीन्हीं।।
हति कबंध, सुग्रीव सखा, करि, बेधे ताल, बालि मारयो।।

बानर-रीछ सहाय, अनुज सँग सिंधु बाँधि जस विस्तार्‍यो।।
सकल पुत्र दल सहित दसानन, मारि अखिल सुर-दुख टार्‍यो।
परम साधु जिय जानि विभीषन लंकापुरी तिलक सार्‍यो।।[१०९]

इस प्रकार तुलसी ने गीतावली में अनूठे लालित्य का समावेश कर अपनी सौन्दर्याभिरुचि का सक्षम प्रमाण प्रस्तुत किया है।

कवितावली में तुलसी ने वन-गमन प्रसंग में राम की निस्पृहता और निष्कामता का सुरेखन अत्यन्त सुन्दर ढंग से किया है। बटोही की भाँति राम का चित्रांकन जहाँ एक ओर राम की आंतरिक सुषमा को अभिव्यक्त करता है वहीं दूसरी ओर तुलसी की आभिव्यक्तिक कुशलता को भी संकेतित करने में समर्थ है। यथा-

(क) कीर के कागर ज्यों नृपचीर, विभूषन उप्पम अंगनि पाई।
औध तजी मगवास के रूख ज्यों पंथ के साथ ज्यों लोग लोगाई।।
संग सुबंधु, पुनीत प्रिया, मनो धर्मु क्रिया धरि देह सुहाई।
राजिव लोचन रामु चले तजि बाप को राजु बटाउ कीं नाई।।[११०]

(ख) कागर कीर ज्यों भूषन-चीर सरीरु लस्यो तजि नीरु ज्यों काई।
मानु-पिता प्रिय लोग सबै सनमानि सुभायँ सनेह सगाई।।
संग सुभामिनि, भाइ भलो, दिन द्वै जनु औध हुते पहुनाईं।
राज़िव लोचन रामु चले तजि बाप को राजु बटाउ की नाईं।।[१११]

वन गमन हेतु सीता जी राम के साथ तैयार होती हैं किन्तु कमनीयता और सुकुमारिता के कारण शीघ्र ही उनके ललाट पर स्वेद बिन्दु चमकने लगते हैं। सूखे अधर पुटों से वे पूछती हैं कि हे स्वामी! अब कितनी दूर और चलना है। प्रिया की आतुरता को देखकर राम के नेत्रों में सहसा जल भर आता है। तुलसी ने राम के पति रूप को अत्यन्त सौन्दर्यपूर्ण ढंग से निम्नवत सुरेखित किया है-

"पुरतें निकसी रघुबीर वधू धरि धीर दए मग में डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनीं जल की, पुटि सूखि गए मधुराधर वै।।
फिरि बूझति हैं चलनो अब केतिक, पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै।
तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै।।"[११२]

इसी छन्द के आगे तुलसी ने सीता के पैर से काँटे निकालने के वर्णन के माध्यम से राम के पत्नी के प्रति प्रेम को नियोजित किया है। प्रिया के पैर के कांटे निकालने का वर्णन तुलसी की कल्पना शक्ति की प्रवणता के साथ आदर्श पति रूप की भी व्यंजना करने में समर्थ है। यथा-

तुलसी रघुबीर प्रियाश्रम जानि कै बैठि बिलंब लौं कंटक काढ़े।
जानकीं नाहको नेहु लख्यो पुलको तनु, बारि बिलोचन बाढ़े।।[११३]

लक्ष्मण मूर्च्छा के अंतर्गत तुलसी ने राम के शील स्वभाव, शरणागत वत्सलता और अन्यादि गुणों

की चर्चा की है। प्रस्तुत हैं उनकी आंतरिक सुषमा का प्रकाशन करने वाले उद्धरण-

(अ) भाई को न मोहु, छोह सीय को न तुलसीस
कहैं 'मैं' विभीषन की कुछ न सबील की।
लाज बाँह बोले की, नेवाजे की संभार-सार
साहेबु न रामु-से बलाइ लेउँ सील की।।[११४]

(ब) काननु बासु दसाननु सो रिपु
आनन श्री ससि जीति लियो है।
बालि महा बलसालि दल्यो
कपि पालि बिभीषनु भूपु कियो है।।
तीय हरी, रन बंधु पर्‍यो
पै भर्‍यो सरनागत सोच हियो है।
बाँह पगार, उदार कृपाल,
कहाँ रघुबीर सो बीरु बियो है।।[११५]

राम की उदारता का अन्यतम सुरेखन इस कृति में सुन्दर कांड के अंतर्गत उपलब्ध होता है। तुलसी ने विभीषण प्रसंग के माध्यम से राम के औदार्य को स्पष्ट किया है।

नगरु कुबेर को सुमेरु की बराबरी,
बिरंचि-बुद्धि को बिलासु लंक निरमान भो।
ईसहि चढ़ाइ सीस बीसबाहु बीर तहाँ,
रावनु सो राजा रज-तेज को निधानु भो।।
'तुलसी' तिलोक की समृद्धि, सौंज, सपंदा,
सकेलि चाकि राखी, रासि, जाँगरु जहानु भो।
तीसरें उपास बनबास, सिंधु पास सो
समाजु महाराज जू को एक दिन दानु भो।।[११६]

कवितावली के उत्तरकांड में तुलसी ने राम के आंतरिक गुणों की चर्चा पूरी तन्मयता से की है। कतिपय चित्रों का सुरेखांकन निम्नवत है जो तुलसी के पुरुष-सौन्दर्य के आंतरिक पक्ष की सुव्यवस्थित और सुललित योजना को प्रकाशित करता है। यथा-

१. बालि-सो बीरु बिदारि सुकंठु, थप्यो, हरषे सुर बाजने बाजे।
चल में दल्यो दासरथी दसकंधरु, लंक विभीषनु राज-बिराजे।।
राम सुभाउ सुने 'तुलसी' हुलसै अलसी हम-से गलगाजे।
कायर कूर कपूतन की हद, तेउ गरीबनेवाज नेवाजे।।[११७]

२. वेद-विरुद्ध मही, मुनि साधु ससोक किए, सुरलोकु उजारो।

और कहा कहौं, तीय हरी, तबहूँ करुनाकर कोपु न धारो।।
सेवक-छोह तें छाड़ी छमा, तुलसी लख्यो राम! सुभाउ तिहारो।
तौलौं न दापु दल्यौ दसकंधर, जौलौं बिभीषन लातु न मारो।।[११८]

३. सोक समुद्र निमज्जत काढ़ि कपीसु कियो, जगु जानत जैसो।
नीच निसाचर बैरि को बंधु विभीषनु कीन्ह पुरंदर कैसो।।
नाम लिएँ अपनाइ लियो तुलसी-सो, कहौं जग कौन अनैसो।
आरत आरति मंजन रामु, गरीबनेवाज, न दूसरो ऐसो।।[११९]

४. मीत पुनीत कियो कपि भालु को, पाल्यो ज्यों काहुँ न बाल तनूजो।
सज्जन सींव विभीषनु भो, अजहूँ बिलसै बर बंधुबधू जो।।
कोसलपाल बिना तुलसी सरनागत पाल कृपाल न दूजो।
कूर, कुजाति, कुपूत, अघी, सबकी सुधरै, जो करै तरु पूजो।।[१२०]

५. तीय सिरोमनि सीय तजी, जेहिं पावक की कलुषाई दही है।
धर्म धुरंधर बंधु तज्यो, पुर लोगनि की बिधि बोलि कही है।
कीस निसाचर की करनी न सुनी, न बिलोकी, न चित्त रही है।
राम सदा सरनागत की अनखौंही, अनैसी सुभायँ सही है।।[१२१]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कवितावली में पुरुष सौन्दर्य के बाह्य रूपांकन की अपेक्षा तुलसी ने आंतरिक गुणों के प्रकाशन को प्रमुखता दी है। मानस के प्रसंगों में से कुछ प्रसंग लेकर तुलसी ने इसे लघु कलेवरी रूप दिया है जिसके कारण तुलसी ने केवल उन तथ्यों के अंकन-सुरेखन को प्रमुखता दी है जिन्हें वे गीतावली और मानस में विस्तार से पूर्ण रूपेण नियोजित नहीं कर सके थे।

बरवै रामायण अत्यंत लघु कलेवरी कृति है। इसमें कतिपय बरवै राम की आंतरिकता से सम्बद्ध हैं। तुलसी राम की आंतरिक सुषमा की अभिव्यक्ति निम्नवत् करते हैं-

"साधु सुसील सुमति सुचि सरल सुभाव।
राम नीति रत काम कहा यह पाव।।[१२२]

राम की निष्कामता का चित्र इस कृति में तुलसी ने निम्नवत् उकेरा है।

राजभवन सुख बिलसत सिय सँग राम।
बिपिन चले तजि राम सो बिधि बड़ बाम।।[१२३]

सीता हरण के पश्चात राम-लक्ष्मण संवाद के माध्यम से तुलसी ने प्रिया के प्रति राम के प्रेम की सुन्दर व्यंजना प्रस्तुत की है-

सीतलता ससि की रहि सब जग छाई।

अगिनि ताप ह्वै हम कहँ सँचरत आइ।।[124]

जानकी मंगल में चूँकि तुलसी ने केवल राम-जानकी परिणय को ही नियोजित किया है। अतः इस कृति में कतिपय चित्र ही सुरेखित हो सके हैं जो राम की आंतरिक सुषमा का परिचय देते हैं।

ताड़का वध के माध्यम से तुलसी ने राम की वीरता को संकेतित किया है। ताड़का वध के उपरान्त ही विश्वामित्र उन्हें सर्वथा योग्य जानकर शस्त्र विद्या के मन्त्रों और गुप्त रहस्यों की शिक्षा देकर उन्हें युद्ध-कौशल में पारंगत कर देते हैं। तुलसी कहते हैं-

बधी ताड़का राम जानि सब लायक।
बिद्या मंत्र रहस्य दिए मुनि नायक।[125]

राक्षसों के समूह का नाश करके राम विश्वामित्र के यज्ञ को पूर्ण कराते हैं और मुनि समूह को निर्भय करते हैं। सारा संसार राम की वीरता के सुयश का गुणगान करके स्वयं को धन्य मानता है। तुलसी ने राम की वीरता प्रकाशन हेतु इस बरवै को निम्नवत अंकित किया है-

मारि निसाचर निकर जग्य करवायउ।
अभय किए मुनिबृंद जगत जसु गायउ।।[126]

जनक को परिचय देते समय विश्वामित्र युगल कुमारों के रूप, शील आयु और वंश की परिपूर्णता को निम्नवत संकेतित करते हैं-

पूषन बंस विभूषन दसरथ नंदन
नाम राम अरु लखन सुरारि निकंदन।।
रूप सील बय बंस राम परिपूरन।
समुझि कठिन पन आपन लाग बिसूरन।।"[127]

राम और लक्ष्मण के रूप सौन्दर्य को देखकर सकल मिथिला वासी हृदय में आनन्द का अनुभव करते हैं। तुलसी ने रूप की मनोहरता के प्रभाव का सुललित अंकन निम्नवत किया है-

राम लखन छबि देखि मगन भए पुर जन।
उर अनंद जल लोचन प्रेम पुलक तन।।
नारि परस्पर कहहिं देखि दोउ भाइन्ह।
लहेउ जनम फल आजु जनमि जग आइन्ह।।[128]

शिष्य रूप की प्रतिष्ठा को संकेतित करते हुए तुलसी कहते हैं कि धनुष को तोड़ने के लिए रामचन्द्र जब चलते हैं तो सर्वप्रथम गुरु चरणों की वंदना करते हैं। इस समय उनका हृदय हर्ष या विषाद से रहित था-

सुनि, सकुचि सोचहिं जनक गुरु पद बंदि रघुनंदन चले।

नहिं हरष विषाद कछु भए सगुन सुभ मंगल भले।।[१२९]

शिव जी का धनुष संधान करने और तोड़ने के माध्यम से तुलसी ने राम की अतिवीरता भाव का अंकन निम्नवत किया है-

अंतरजामी राम मरम सब जानेउ।
धनु चढ़ाई कौतुकहिं कान लगि तानेउ।।
प्रेम परखि रघुवीर सरासन भंजेउ।
जनु मृगराज किसोर महागज भंजेउ।।[१३०]

परशुराम जी जब धनुष टूटने के उपरान्त क्रोध करते हैं तो राम अपनी विनम्रता से उन्हें संतुष्ट करते हैं। फलस्वरूप वे मुदित भाव से अपना धनुष भी राम को सौंपकर चले जाते हैं। तुलसी ने जानकी मंगल में इस तथ्य को भी संकेतित किया है। यथा-

पंथ मिले भृगुनाथ हाथ फरसा लिए।
डाटहिं आँखि देखाइ कोप दारुन किए।।
राम कीन्ह परितोष रोष रिस परिहरि।
चले सौंप सारंग सुफल लोचन करि।।[१३१]

इस प्रकार निकष रूप में अवधेय है कि तुलसी साहित्य में पुरुष सौन्दर्य का सुरेखन अत्यन्त ललित और मनोहारी रूपों में अभिव्यक्त हुआ है। तुलसी साहित्य पर दृष्टि-निक्षेप करने से स्पष्ट है कि पुरुष सौन्दर्य के अनुभावन और अंकन में तुलसी की समग्र निष्ठा और चेतना केवल राम पर केन्द्रित थी। उन्होंने राम के रूप में पुरुष सौन्दर्य के उत्कृष्ट और श्रेष्ठतम प्रतिमान को अपनी आस्थायुक्त अनुभूति के आश्रय से सिरजा है। यद्यपि उन्होंने राम के बाह्यरूपांकन में नख-शिख वर्णन की पारम्परिक शैली का आधार भी ग्रहण किया है किन्तु उनकी दृष्टि राम के समन्वित रूप सौन्दर्यांकन में अधिक रमी है। अंग-प्रत्यंग की समन्वित रूप-माधुरी के भव्यांकन के साथ उन्होंने पुरुष की आंतरिक सुषमा के मनोहारी स्वरूपांकन को भी अनूठी गरिमा के साथ चित्रित किया है। रूप के साथ आंतरिक वृत्तियों की भव्य अवतारणा ने उनकी पुरुष सौन्दर्याभिव्यक्ति में एक विशिष्ट उदात्तता का समाहार किया है जो उनकी आभिव्यक्तिकता की चारुता को स्पष्टतः उद्‌घाटित करने में समर्थ है।

राम के माध्यम से तुलसी ने पुरुष के विविध रूपों के आदर्श को स्थापित करके समाज और युग के समक्ष एक ऐसा प्रतिमान प्रतिष्ठित किया है जिसके चरित्र में कहीं कालिमा लक्षित नहीं होती। मानवीय मूल्यों की उदात्त अवधारणाएँ नियोजित कर तुलसी ने पुरुष-सौन्दर्य को अनूठी आभा से अभिमंडित किया है। तुलसी साहित्य में अभिव्यक्त पुरुष सौन्दर्य अत्यन्त मनभावन और मनोमुग्धकारी है। वह बाहर से जितना भव्य, प्रीतिमय और प्रभावशाली लक्षित होता है, अन्दर से वह उतना ही उदात्त, नैतिक, लोकमंगल की भावना से समन्वित और श्रेय विधायक है।

नारी सौन्दर्य

आदि काल से लेकर आज तक साहित्यकारों की कृतियों में नारी सदैव प्रमुखता से चित्रित होती रही है। अपने रूप-लावण्य, शक्ति और निहित गुणों के कारण नारी ने सबको मुग्ध और आकृष्ट किया है। उसके असीमित गुणों के कारण ही कवियों तथा कलाकारों ने नारी को अनेक रूपों में चित्रित कर प्रस्तुत किया है। वास्तव में, **''नारी अपनी सीमितता में असीमता कोमलता-सुकुमारता में कर्तव्य परायणता, अपूर्णता में पूर्णता, पिपासा में सजलता तथा नश्वरता में अमरता को छिपाये अनादिकाल से जीवन एवं साहित्य की प्रेरणास्रोत रही है। जिसके परिणामतः जीवन एवं साहित्य की प्रत्येक विद्या की पिपासा को वह अपनी महिमा की सजलता से आप्यायित करती रही है। इस प्रकार, साहित्य का कोई भी भाग नारी से अछूता नहीं बचाहै।''**[१३२]

तुलसी साहित्य में सीता का विशिष्ट महत्व है। राम की सहधर्मिणी होने के नाते तुलसी साहित्य में राम के समान ही सीता के चरित्र में उदात्तता का पूर्ण समाहार मिलता है। सीता के रूप में तुलसी ने नारियोचित आदर्शों के मानक रूप की प्रतिस्थापना अत्यंत ही गरिमामय ढंग से अभिव्यक्त की है। तुलसी ने नारी के सम्यक रूपायन हेतु सीता, कौशल्या, सुनयना, सुमित्रा, कैकेयी, उर्मिला, मन्दोदरी आदि (रामकथा के अंतर्गत) तथा यशोदा, और गोपियों आदि की उदभावना कृष्ण कथा के सन्दर्भ में प्रस्तुत की है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इसे हम निम्न शीर्षकों में वर्गीकृत कर सकते है-

(क) तुलसी साहित्य में सीता

(ख) तुलसी साहित्य में अभिव्यक्त अन्य नारी पात्र

(क) तुलसी साहित्य में सीता

कृष्ण कथा में राधा तथा रामकथा में सीता नायिका के रूप में चित्रित हैं किन्तु दोनों के चित्रांकन में पर्याप्त अंतर स्पष्टतः दृष्टिगत होता है। राधा ब्रह्म की ह्लादिनी शक्ति के रूप में स्वीकृत हैं। इसीलिये निम्बार्क, चैतन्य, राधावल्लभ आदि संप्रदायों में राधा की अर्चना-उपासना को विशेष रूप से प्रमुखता मिली है और इसी कारण राधा का उन्मुक्त चित्रण कृष्णभक्त कवियों ने साग्रह पूरी तन्यमता से किया है। नख-शिख-वर्णन परंपरा के अनुसार कृष्णोपासक कवि राधा के आंगिक परिगणन और निरूपण में संकोच नहीं करते किन्तु रामकथा में ऐसा नहीं है क्योंकि सीता ब्रह्म की ह्लादिनी शक्ति न होकर ब्रह्म की सृजन-शक्ति हैं। अतः रामभक्त कवियों ने सीता का जो चित्रांकन किया है। वह उन्मुक्त और कामोद्दीप्त न होकर शालीन, शील, गरिमायुत, नैतिक, उदात्त और सात्विक है। कतिपय श्रृंगारी भक्तों ने यद्यपि सीता सौन्दर्य के कतिपय चित्र अपनी कृतियों में संजोये हैं किन्तु वे भी राधा के अंकन की तुलना में अत्यंत शिष्ट और शालीन ही कहे जा सकते है; उन्हें किसी भी प्रकार से अश्लील और अभद्र नहीं माना जा सकता।

तुलसी साहित्य में यद्यपि सीता सौन्दर्यांकन अधिक उपलब्ध नहीं होता किन्तु जिस रूप में और

जितना भी उपलब्ध होता है। वह तुलसी के कला कौशल और सौन्दर्यांकन की उदात्तता को सुरुचिपूर्ण ढंग से उद्घाटित करने में समर्थ है। तुलसी साहित्य में अभिव्यंजित सीता-सौन्दर्य का अध्ययन भी निम्न प्रकारों के आलोक में करना अपेक्षित होगा।

बाह्य स्वरूप

तुलसी ने सीता के सौन्दर्य का अंकन एक निश्चित परिधि में रहकर किया है। नैतिकता और मर्यादा की प्रतिष्ठा उन्मुक्त होकर नहीं की जा सकती। सीता को मातावत प्रतिष्ठा देने के कराण तुलसी ने सीता-सौन्दर्य की संयमित अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है। माँ के सौन्दर्य के अंकन में निश्चित रूप से आंगिक निरूपण हेय और अश्लील ही माना जायेगा, इसीलिए तुलसी ने सीता के रूप चित्रण में निश्चित सीमा का कहीं भी अतिक्रमण नहीं किया। कहीं राम के माध्यम से तथा कहीं सखियों या ग्राम्यवधुओं द्वारा सीता के समेकित सौन्दर्य वर्णन को ही उन्होंने प्रमुखता दी है।

गौरी पूजन प्रसंग के अन्तर्गत तुलसी ने सीता के नेत्रों को मृगशावक के नेत्रों के सदृश्य बताया है-

चितवत चकित चहूँ दिसि सीता। कहँ गए नृप किसोर मनु चिंता।।
जहँ बिलोक मृग सावक नैनी। जनु तहँ बरिस कमल सित श्रेनी।।[१३३]

सीता का प्रथम दर्शन राम के मन में अनुराग-भाव का स्फुरण करता है। वे सानुज सीता के निष्कलुष सौन्दर्य की सराहना करते हुए विश्वामित्र के पास जाते हैं। रात्रि के समय चन्द्रमा पूर्व दिशा में उदित होता है। राम उसे देखकर सीता के मुख के साथ उसकी तुलना निम्नवत करते हैं-

(अ) **हृदय सराहत सीय लोनाई। गुरु समीप गवने दोउ भाई।।**[१३४]

(ब) **प्राची दिसि ससि उयउ सुहावा। सिय मुख सरिस देखि सुखु पावा।।**
बहुरि बिचारु कीन्ह मन माहीं। सीय बदन सम हिमकर नाहीं।।
जनमु सिंधु पुनि बंधु बिषु दिन मलीन सकलंक।
सिय मुख समता पाव किमि चंद बापुरो रंक।।
घटइ बढ़इ बिरहिनि दुखदाई। ग्रसइ राहु निज संधिहि पाई।।
कोक सोकप्रद पंकज द्रोही। अवगुन बहुत चंद्रमा तोही।।
बैदेही मुख पटतर दीन्हे। होइ दोषु बड़ अनुचित कीन्हे।।[१३५]

इस प्रकार सीता के मुख को चन्द्रमा से उपमित करने में भी राम को अत्यंत संकोच होता है।

रूप और गुण की अपरिमित खान सीता के रूपायन में तुलसी को सृष्टि की सारी उपमाएं तुच्छ जान पड़ती हैं। यहाँ तक कि वे अभिव्यक्ति देते हैं कि सीता-सौन्दर्य को उपमाओं की परिधि में समेटना कुकवि की भाँति अपयश बटोरना है अर्थात सीता के सौन्दर्य के निमित्त लौकिक उपमाएँ देने वाला निश्चित रूप से सुकवि होने का अधिकार खो देता है और कोई भी सुकवि जानबूझकर अपयश को नहीं लेगा। इस संसार में सीता सी सर्वांग सौन्दर्यमयी युवती है ही नहीं जिसकी समता उनसे की जा सके।

अपनी अभिव्यक्ति को और अधिक उदात्तता और गरिमा प्रदान करते हुये वे व्यंजित करते हैं कि जिन्हें संसार ने देवताओं की मान्यता प्रदान की है उनकी स्त्रियाँ भी सीता सौन्दर्य की तुलना में कहीं नहीं ठहरती हैं। यथा सरस्वती अत्यधिक वाचाल हैं, पार्वती अर्द्धांगिनी हैं अर्थात अर्द्धनारीश्वर के रूप में उनका अर्द्धांग ही स्त्री का है शेष अर्द्धांग पुरुष शिव का है। अनंग प्रिया रति पति को बिना शरीर का जान वैसे ही दुखी रहती है और जिनके विष और मद्य सरीखे (समुद्र से उत्पन्न होने के कारण) भाई हैं, ऐसी लक्ष्मी जी के समान सीता की उपमा कैसे दी जा सकती है क्योंकि लक्ष्मी खारे जल के समुद्र से आविर्भूत हुई थीं जिसे मथने के लिए स्वयं भगवान ने अति कठोर पीठ वाले कच्छप का रूप धरा था। महान विषधर वासुकि को रस्सीवत और मन्दराचल पर्वत को मथानी बनाकर सुरासुरों ने मिलकर जिस समुद्र को मथा था। कठोर उपकरणों के माध्यम से अवतरित लक्ष्मी को भला सीता के सदृश कैसे माना जा सकता है? हाँ, यदि छविरूपी समुद्र को परम रूपमय कच्छप, शोभा रूपी रज्जु और श्रंगार रस रूपी पर्वत को यदि स्वयं कामदेव मथे तो जिस प्रकार की लक्ष्मी का आविर्भाव होगा, उसे भी कविगण संकुचित हो सीता के सदृश मान सकते हैं सीता नहीं। यथा-

सिय सोभा नहिं जाइ बखानी। जगदंबिका रूप गुन खानी।।
उपमा सकल मोहि लघु लागीं। प्राकृत नारि अंग अनुरागीं ।।
सिय बरनिअ तेइ उपमा देई। कुकवि कहाइ अजसु को लेई।।
जौ पटतरिअ तीय सम सीया। जग असि जुबति कहाँ कमनीया।।
गिरा मुखर तन अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी।।
बिष बारुनी बंधु प्रिय जेही। कहिअ रमा सम किमि बैदेही।
जौं छबि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छपु सोई।।
सोभा रजु मंदरु सिंगारू। मथै पानि पंकज निज मारू।।
एहि बिधि उपजै लच्छि जब सुंदरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कबि, कहहिं सीय समतूल।।[१३६]

उपर्युक्त पंक्तियाँ तुलसी के आभिव्यक्तिक सौन्दर्य की कलात्मकता और उदात्तता की एक साथ व्यंजना करने में समर्थ हैं। रंगभूमि में प्रस्थान करते समय तुलसी ने सीता की उदात्त छवि को निम्नवत नियोजित किया है-

सोह नवल तनु सुंदर सारी। जगत जननि अतुलित छबि भारी।
भूषन सकल सुदेस सुहाए। अंग अंग रचि सखिन्ह बनाए।।
रंगभूमि जब सिय पगु धारी। देखि रूप मोहे नर नारी।।[१३७]

इसी प्रसंग के अंतर्गत तुलसी ने जयमाला से सुशोभित हाथों को कमलवत बताया है-

पानि सरोज सोह जयमाला। अवचट चितए सकल भुआला।।[१३८]

सीता के नेत्रों की चपलता तुलसी ने अत्यंत ललित ढंग से निम्नवत प्रस्तुत की है-

प्रभुहि चितव पुनि चितव महि राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग जनु बिधु मंडल लोल।।[१३९]

धनुष भंग के पश्चात कुलगुरु शतानन्द राम को वरमाला पहनाने की आज्ञा देते हैं। जयमाल पहनाने के प्रसंग के माध्यम से तुलसी ने उनकी गति को बाल हंसिनी तथा जयमाल लिए हाथों को दो डंडी युक्त कमल की उपमा से उपमित कर सीता के अनूप रूप का संकेत दिया है। इस प्रसंग में संकोच, उत्साह और प्रेमानुराग जैसे भावों के समन्वय ने उनकी अभिव्यक्ति में एक अद्‌भुत चारुता का भी निवेशन किया है जो तुलसी के आभिव्यक्तिक लालित्य का निदर्शन कराता है। यथा प्रस्तुत हैं कतिपय पंक्तियाँ-

संग सखी सुंदर चतुर गावहिं मंगल चार।
गवनी बाल मराल गति सुषमा अंग अपार।।
सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसे। छबिगन मध्य महाछबि जैसें।।
कर सरोज जयमाल सुहाई। बिस्व बिजय सोभा जेहिं छाई।।
तन सकोचु मन परम उछाहू। गूढ़ प्रेम लखि परइ न काहू।।
जाइ समीप राम छबि देखी। रहि जनु कुअँरि चित्र अवरेखी।।
चतुर सखीं लखि कहा बुझाई। पहिरावहु जयमाल सुहाई।।
सुनत जुगल कर माल उठाई। प्रेम बिबस पहिराइ न जाई।।
सोहत जनु जुग जलज सनाला। ससिहि सभीत देत जयमाला।।
गावहिं छबि अवलोकि सहेली। सियँ जयमाल राम उर मेली।।[१४०]

मण्डप के समय तुलसी ने सीता-सौन्दर्य को पुनः नियोजित किया है। उनके सौन्दर्यवर्णन में यद्यपि कवि को बहुत संकोच होता है किन्तु यही संकोच अभिव्यक्ति को उदात्त बनाने में योग भी देता है। उनके उदात्त सौन्दर्य का सुरेखन कवि ने निम्नवत मानस में नियोजित किया है-

सोहति बनिता बृंद महुँ सहज सुहावनि सीय।
छबि ललना संगन मध्य जनु सुषमा तिय कमनीय।।
सिय सुंदरता बरनि न जाई। लघु मति बहुत मनोहरताई।।
आवति दीखि बरातन्हिं सीता। रूप रासि सब भाँति पुनीता।।[१४१]

सीता सौन्दर्य निरूपण में तुलसी बार-बार अपनी असमर्थता व्यक्त करते हैं और असमर्थता के भाव के साथ ही उनकी छवि के उदात्त और समेकित अंकन को नियोजित भी करते चलते हैं। अपनी उदात्त और ललित अभिव्यक्ति का परिचय देते हुए वे कहते हैं कि विधाता ने अपनी सारी निपुणता और कुशलता सीता को गढ़ने में लगाकर उस विश्व विमोहिनी की सृष्टि की है। सीता का उज्जवल सौन्दर्य कुछ ऐसी कान्ति प्रस्तारित करता है जैसे छवि रूपी भवन में दीपक जलाने से एक अनूठी कान्ति निःसृत होती है। वास्तव में इतनी उदात्त और गरिमापूरित सात्विक अभिव्यंजना तुलसी जैसा

भक्त कवि ही कर सकता था। यथा दृष्टव्य हैं पंक्तियाँ-

जनु बिरंचि सोभा सुखु पावा। हृदयँ सराहत बचनु न आवा।।
सुंदरता कहुँ सुंदर करई। छबि गृहँ दीपसिखा जनु बरई।।
सब उपमा कबि रहे जुठारी। केहि पटतरौं बिदेह कुमारी।।[१४२]

सीता का रूप सौन्दर्य सर्वथा सराहनीय है। शूर्पणखा भी रावण से सीता के अपरूप सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए कहती है

रूप रासि बिधि नारि सँवारी। रति सत कोटि तासु बलिहारी।।[१४३]

तुलसी ने राम विलाप के प्रकारान्तर से भी सीता के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है यथा-

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृग नैनी।।
खंजन सुक कपोत मृग मीना। मधुप निकर कोकिला प्रबीना।।
कुंद कली दाड़िम दामिनी। कमल सरद ससि अहिभामिनी।।
बरुन पास मनोज धनुहंसा। गज केहरि निज सुनत प्रशंसा।।
श्री फल कनक कदलि हरषाहीं। नेकु न संक सकुच मन माहीं।।
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाइ जनु राजू।।[१४४]

इस प्रकार मानस में तुलसी ने सीता सौन्दर्य के रूपायन में अपनी अभिव्यक्तिक कुशलता से सर्वथा सात्विक ओर मर्यादित उदभावना प्रस्तुत की है। उनकी अभिव्यक्ति की सहजता और पावनता निश्चित रूप से मानस को एक अनूठे सौन्दर्य से अभिमंडित करने में पूर्ण सक्षम है।

कवितावली में सीता के रूप सौन्दर्य का अंकन कवि ने नहीं किया है। कहीं **'सीय सी न तीय'** और कहीं **भामिनी सुदामिनी** आदि कहकर ही तुलसी ने इस कृति में अपना काम चलाया है। बाह्य रूपांकन कहीं-कहीं राम-लक्ष्मण-सीता के एक साथ समन्वित चित्रण में उपलब्ध होता है। जिसका आकलन इस अध्याय के समापन में किया जाना ही अपेक्षित होगा।

बरवै रामायण के कतिपय अंशों में तुलसी ने सीता-सौन्दर्य की व्यंजना नियोजित की है। तुलसी का बाह्य निरूपण भी एक अनूठी उदात्तता से मंडित है। यथा सम्पुष्टि हेतु कतिपय बरवै दृष्टव्य हैं जिनमें तुलसी ने सीता के केश, आंगिक कमनीयता, मुख और आंगिक कान्ति को संकेतित किया हे-

केस मुकुट सखि मरकत मनि मय होत।
हाथ लेत पुनि मुकुता करत उदोत।।
सम सुबरन सुषमाकर सुखद न थोर।
सिय अंग सखि कोमल कनक कठोर।।
सिय मुख सरद कमल जिमि किमि कहि जाइ।
निसि मलीन वह निसि दिन यह बिगसाइ।।
चंपक हरवा अंग मिलि अधिक सोहाइ।

जानि परै सिय हिवरें जब कुंभिलाइ।।
सिय तुव अंग रंग मिलि अधिक उदोत।
हार बेल पहिरावौं चंपक होत।।[१४५]

आंगिक कांति की उज्ज्वलता स्वतः हीं बाह्य छवि की अपरूपता ओर उदात्तता का संकेत देती हैं। लघु कलेवरी कृति होने के नाते तुलसी ने इसमें अत्यंत संक्षिप्तता से सीता सौन्दर्य को मर्यादित ढंग से नियोजित किया है जो उनकी आभिव्यक्तिक मनोहरता और कलात्मकता का परिचायक है। अरण्यकांडान्तर्गत नियोजित दो बरवै भी सीता सौन्दर्य का परिचय देते है-

(अ) हेमलता सिय मूरति मृदु मुसुकाइ।
हेम हरिन कहँ दीन्हेउ प्रभुहि दिखाइ।।[१४६]

(ब) कनक सलाक कला ससि दीप दिखाउ।
तारा सिय कहँ लछिमन मोहि बताउ।।[१४७]

जानकी मंगल में कवि ने सीता-सौन्दर्य का निरूपण अत्यंत मनोहरता से नियोजित किया है। इस कृति में भी सर्वत्र मर्यादित और उदात्ताभिव्यक्ति के दर्शन होते है। रंगभूमि में सीता का रूपायन करते हुए तुलसी कहते है कि सीता के सुन्दर शरीर में मंगलमय वस्त्राभूषण सुसज्जित हैं। उनकी सुन्दरता देखकर मूर्ख नरेशादि मोहवश मोहित हो जाते हैं। अतुलित रूप राशि वाली सीता जिस तरफ भी सहजता से दृष्टि निक्षेप करती हैं उसी तरफ मानो कामदेव नीलकमल के शरों की झड़ी सी लगा देता है। यथा-

मंगल भूषन बसन मंजु तन सोहहिं।
देखि मूढ़ महिपाल मोह बस मोहहिं।।
रूप रासि जेहि ओर सुभायँ निहारइ।
नील कमल सर श्रेनि मयन जनु डारइ।।[१४८]

अपने कर कमलों में जयमाला लिए सीता की छवि का तुलसी ने निम्नवत शब्दायन किया है-

कर कमलनि जयमाल जानकी सोहइ।
बरनि सकै छबि अतुलित अस कबि को हइ।।
सीय सनेह सकुच बस पिय तन हेरइ।
सुरतरु रुख सुरबेलि पवन जनु फेरइ।।
लसत ललित कर कमल माल पहिरावत।
काम फंद जनु चंदहि बनज फँसावत।।[१४९]

तुलसी ने मंडप के समय सीता-सुषमा का एक चित्र और नियोजित किया है जो निम्नवत है-

जुबति जुत्थ महँ सीय सुभाइ बिराजइ।
उपमा कहत लजाइ भारती भाजइ।।[१५०]

गीतावली में भी सीता-सुषमा निरूपण के यद्यपि अधिक चित्र नहीं उपलब्ध होते फिर भी यह सहजता से स्वीकारा जा सकता है कि जितनी संक्षिप्तता से सीता का रूपायन तुलसी ने किया है वह उतनी ही व्यापकता से सीता के सौन्दर्य को उदात्तता से प्रस्तारित करता है। जयमाल प्रसंग का चित्रांकन करते हुए तुलसी कहते हैं कि-

जयमाल जानकी जलज कर लई है।
सुमन सुमंगल सगुन की बनाइ मंजु,
मानहु मदनमाली आपु निरुमई है।।[१५१]

इसके बाद के गीतों में भी सीता-सुषमा का पूर्ण चित्र कहीं भी उपलब्ध नहीं होता। कहीं-कहीं उनकी रूप व्यंजना हेतु तुलसी ने एक-एक पंक्ति पूरे पद में नियोजित की है। कतिपय पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं जो उनकी आभिव्यक्तिक सात्विकता को मुखरित करने में पूर्णतः समर्थ हैं-

१. **कन्या भूप बिदेह की रूप की अधिकाइ।।**[१५२]

२. **संग नारि सकुमारि सुभग सुठि, राजति बिन भूषन नव-सात।**
सुखमा निरखि ग्राम-बनितनि के नलिन-नयन बिकसित मनो प्रात।।[१५३]

३. **संग चंद्रबदनि बधू, सुंदरि सुठि सोऊ।**[१५४]

४. **सोभा को साँचो साँवरि रूप जात रूप,**
ढारि नारि बिरची बिरंचि संग सोही।[१५५]

५. **सखि सरद-बिमल बिधुबदनि बधूटी।**
ऐसी ललना सलोनी न भई, न है, न होनी
रत्यो रची बिधि जो छोलत छबि छूटी।।[१५६]

६. **सोहैं साँवरे पथिक पाछे ललना लोनी।**
दामिनि-बरन गोरी, लखि सखि तृन तोरी
बीती हैं बय किसोरी, जोबन होनी।।[१५७]

७. **सुखमा की मूरति-सी साथ निसिनाथ-मुखी**
नख सिख अंग सब सोभा के सदन हैं।[१५८]

८. **रूप की-सी दामिनी सुभामिनी सोहति संग,**
उमहु रमातें आछे अंग अंग ती के है।[१५९]

९. **सिरिस-सुमन-सकुमारि, ससुखमा की सींव**
सीय राम बड़े ही सकोच संग लई है।[१६०]

इस प्रकार स्पष्ट है कि तुलसी ने सीता की समेकित स्वरूपाभिव्यक्ति को प्रमुखता दी है। मर्यादा और नैतिकता के धरातल पर अवस्थित सीता-सुषमा की ललित अभिव्यक्ति उनकी आभिव्यक्तिक गरिमा का सुन्दर प्रदर्शन करने में पूर्ण सक्षम है।

आंतरिक सुषमा

आंतरिक सुषमा का यथोचित प्रस्तार किसी भी चरित्र या पात्र के रूप सौन्दर्य को बहुगुणित करने में सक्षम होता है। सीता की रूपाकृति जितनी सम्मोहक और अनुपमेय है उतनी ही आंतरिकता का प्रसार उनके सौन्दर्य में दृष्टिगत होता है। तुलसी ने सीता का चित्रांकन भारतीय संस्कृति की परम्परा और गरिमा के अनुसार किया है। आदर्श पत्नी और आदर्श बहू के रूप में उनका चित्रांकन तुलसी के नारी विषयक दृष्टिकोण को सम्पूर्णता से मुखरित करता है।

तुलसी ने सीता के चरित्र में उदात्त और श्रेष्ठ गुणों का समाहार निवेशित किया है। आइये सीता के माध्यम से अभिव्यंजित तुलसी की नारी सौन्दर्य विषयक आंतरिक सुषमा का अध्ययन अनुशीलन करें-

आदर्श पत्नी एवं पुत्रवधू

तुलसी ने सीता के माध्यम से पतिव्रता नारी का प्रतिमान प्रस्तुत किया है। कैकेयी द्वारा राम को वन-गमन और भरत को राज-सिंहासन का वरदान प्राप्त करने के पश्चात ही सीता का आदर्श पत्नी का रूप हमें मानस में दृष्टिगोचर होता है। राम की इच्छा है कि सीता अयोध्या में रहकर माता-पिता की सेवा कर अपने गृहस्थ धर्म का निर्वाह करे और अन्य स्वजन-परिजन एवं परिचारकों के प्रति स्नेह-सहानुभूति और यथोचित सम्मान प्रदर्शित करते हुये आनन्दित रहे, जिससे राम अपने कर्तव्य का निर्वाह भली भाँति सुचारु रूप से सम्पन्न कर सकें।

सीता की अन्तर्व्यथा स्वाभाविक है क्योंकि उनके प्राणपति को राजसिंहासन के स्थान पर वन का साम्राज्य मिला है। किन्तु ऐसी विषम परिस्थिति में वे अपनी कुल-मर्यादा का पालन करते हुये ही दृष्टिगोचर होती हैं:-

"समाचार तेहि समय सुनि, सीय उठी अकुलाइ।
जाइ सासु-पद-कमल जुग, बन्दि बैठि सिरु नाइ।।"[१६१]

सीता की मानसिक स्थिति और अन्तर्द्वन्द्व का वर्णन अयोध्याकांड में गोस्वामी तुलसी दास ने बड़े ही मार्मिक और मर्यादित ढंग से अभिव्यक्त किया है। पुनश्च ऐसी अनन्त रूप की राशि, गुण शीला और आज्ञा कारिणी प्राणों से भी प्यारी पुत्रवधू को पाकर कौशल्या स्वयं को कृतकृत्य समझती हैं। यथा:-

"मैं पुनि पुत्रवधू प्रिय पाई। रूप रासि गुन सील सुहाई।।
नयन पुतरि करि प्रेम बढ़ाइ।। राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई।।"[१६२]

ज्येष्ठ पुत्रवधू होने के कारण स्वभावतः ही सीता, कौशल्या को सर्वाधिक प्रिय हैं क्योंकि कौशल्या ने सीता रूपी कल्पलता को अत्यधिक अनुराग के साथ आँखों के पवित्र जल से अभिसिंचित किया है। सीता को आँखों की पुतली बनाकर बड़े चाव से पाला-पोसा है। मैं कभी उसे कठोर भूमि पर

चरण नहीं रखने देती। वह मेरी जीवन-मूरि है। उस शुभांगिनी को मैं कभी दीप वर्तिका के निर्वाण के लिये नहीं भेजती ऐसी प्राण प्रिय एवं मुझे अनन्त-अनन्त सुख प्रदायिनी सीता आज तुम्हारे साथ वन-गमन हेतु उत्सुक प्रतीत होती है। सुधा वर्षिणी चन्द्र-किरणों का पान करने वाली चारु चकोरी भला कभी प्रचण्ड प्रभाकर की ओर निहार सकेगी? विधाता ने वन का सृजन हिसंक जीव-जन्तुओं के लिये किया है, वन-वासिनी कोल-किरात बालायें ही वह कठिन कष्ट झेलने में प्रवीण और पटु होती हैं। तपनिरता तपस्विनियों के लिये वन नितान्त उपयुक्त है क्योंकि उन्होंने उसकी सफलता के लिये सभी विषय-भोग त्याग दिये हैं। पर, जानकी तो मेरी जान की जान है। वह सुर-सरोवर के सरसिज-उपवन की सुखदा सुहंसिनी है। कोमल-कलेवरा, कलित कान्ति से युक्त वह भला पोखरों का अशुद्ध जल पान के योग्य बन पायेगी? अर्थात् कदापि नहीं! फिर जैसी तुम्हारी इच्छा (आज्ञा) हो, वैसा मुझसे कहो तदनुसार मैं सीता को उसी प्रकार की शिक्षा प्रदान करूंगी। यद्यपि मेरी हार्दिक इच्छा तो यही है कि परम सुकुमारी सीता मेरे ही साथ रहे, मेरा अवलम्ब बने। तथापि जैसा तुम समीचीन समझो, वैसा करो।

भारतीय संस्कृति की पूर्णरूपेण मर्यादा का पालन करते हुये कुछ संकोच में पड़े हुए राम अपनी धर्मपत्नी राजकुमारी सीता से सास-ससुर की सेवा में रत रहने की अनुज्ञा देते हैं किन्तु साथ-साथ यह भी कह देते है कि तुम इसे अन्यथा मत समझनाः-

"मातु समीप कहत सकुचाहीं। बोले समय समुझि मन मांही।।
राजकुमारि सिखावन सुनहू। आन भाँति जियँ जनि कछु गुनहू।।
आपन मोर नीक जौं चहहू। वचन हमार मानि गृह रहहू।।
आयुस मोर सास सेवकाई। सब विधि भामिनि भवन भलाई।।"[१६३]

राम अनेक शास्त्रों के दृष्टान्त देकर कहते हैं कि सास-ससुर के चरणों की सेवा करने से बढ़कर तुम्हारे लिये कोई, दूसरा धर्म नहीं हो सकता। क्योंकि मेरे वियोग में जब-जब मेरी माँ प्रेम के वशीभूत होकर मेरी स्मृति के महासिन्धु में निमग्न हो जायेगी तब तुम्हीं और केवल तुम्हीं उस वियोग-विमग्ना विवशा माँ को एकमात्र अवलम्बन बनकर उबार सकोगी। मेरी भिन्न-भिन्न कथाओं और लीलाओं की पुनरावृत्ति करके माँ को सान्त्वना दे सकोगी। अस्तु मेरी माता के हित के लिये भी तुम्हारा अयोध्या में रहना ही हर प्रकार से हितकर होगा। अपने नारी-हठ से मुझे पराभूत न करना अन्यथा तुम्हें गालव और नहुष की भाँति क्लेश और कष्ट ही सह्य होंगे। इसलिये **हे सुमुखि! हे परम सयानी** मेरी हितकर सीख सुनो। मैं शीघ्रातिशीघ्र अपने पिता के वचनों को सत्य करके लौट आऊँगा। अरे, दिन व्यतीत होते कितना विलम्ब लगता है? अनन्तर वन के गहन और दुर्गम मार्ग, अनेक कष्ट, हिंसक जीव-जन्तु एवं शीत, आतप ओर ग्रीष्म का भयावह वर्णन करते हुये राम ने कहाः-

"भूमि सयन बलकल सयन, असन कन्द फल मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं, सबुइ समय अनुकूल।।[१६४]

पुनः वन में भंयकर राक्षसों का बाहुल्य है। वे अत्यन्त मायावी, विषयी और दुष्ट प्रवृत्ति के होते हैं। उनके द्वारा अनेकानेक अनिष्ट उपस्थित किये जा सकते हैं। अस्तु, हे हंस गमनी! तुम कदापि वन जाने के योग्य नहीं हो। यदि तुम मेरी बात न समझ जाओगी ही तो समस्त लोग मुझे ही दोष देंगे और स्वयं मैं अपयश का भाजन बनूँगाः-

"हंस गवनि तुम नहिं वन जोगू। सुनि अपजस मोहिं देहहिं लोगू।।"[१६५]

अपने प्राण प्यारे प्रियतम के मुख से ऐसी सीख सुनकर सीता की आँखों में अश्रुओं का सिन्धु उमड़ पड़ा। वह अवाक् रह गईं। मुझसे ऐसा कौन सा अपराध बन गया जो मेरे स्वामी मुझे घर छोड़कर स्वयं बन जाना चाहते हैं। कुछ क्षण के लिये तो सीता ऐसा सोचकर किंकर्तव्य विमूढ़ा हो गईं। और, तुरन्त ही पृथ्वी-पुत्री जनक-नन्दिनी ने धरती की भाँति अत्यन्त धैर्य धारण करके, अपनी सास की चरण-वन्दना करते हुये करबद्ध कहाः-

लागि सासु पग कहकर जोरी। छमबि देवि बड़ि अविनय मोरी।।
दीन्ह प्रानपति मोहि सिख सोइ। जेहि विधि मोर परम हित होई।
मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं। पिय वियोग सम दुख जग नाहीं।।[१६६]

हे प्राण नाथ! हे दया के धाम!! सुन्दर सुखद रघुकुल-कुमुद को प्रमुदित करने वाले पीयूष वर्षी सुधाकर!!! आपके बिना स्वर्ग भी मेरे लिये नरक के समान है। पति के बिना, नारी के लिये माता,पिता, भाई, बहन, परिवार, मित्र समुदाय, सास-ससुर, गुरु तथा बन्धु-बान्धव, परिचर और अनन्त सुख दायक पुत्र भी त्याज्य हैं। ये सब पति-वियुक्ता नारी के लिये शोक का समाज हैं। सृष्टि के समूचे भोग, रोग की भाँति दुखद, आभूषण भार-रूप, और संसार यम यातना के समान कष्टप्रद हैं। मुझे तो आपके बिना संसार में कुछ भी सुखद प्रतीत नहीं होताः-

"प्राननाथ करुनायतन सुन्दर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमद-विधु सुरपुर नरक समान।।"[१६७]

अतएव सुर, विप्र, स्वजन, परिजन, माता-पिता और अग्नि के समक्ष मेरा पाणि ग्रहण करने वाले मेरे प्राणाराध्य! बिना जीव के देह और बिना जल के नदी जिस प्रकार प्राण-हीन और अरस है, उसी प्रकार इस अगाध और अगम संसार में बिना पुरुष (पति) के पत्नी का जीवन नीरस और महत्व हीन है। किन्तु आपके सान्निध्य में जो मुझे अनन्त सुख और शान्ति उपलब्ध होगी, उसका वर्णन वाणी से परे है। नाथ! मैं सच कहती हूँ कि मैं आपका शरदकालीन पूर्णिमा के समान मुख चन्द्र निहार कर धन्य हो उठूँगी। आपके सान्निध्य में वन के पशु-पक्षी ही मेरे परिवारीय जन की भाँति सुख प्रद, वन स्वयं नगर की भाँति आनन्द प्रद, वृक्षों की छाल निर्मल और बहुमूल्य वस्त्रों की भाँति वैभव शाली और पर्णकुटी (पत्तों की बनी झोपड़ी) कोटि-कोटि स्वर्ग के समान सुख प्रदान करने वाली सिद्ध होगीः-

"खग मृग परिजन नगर बनु बलकल विमल दुकूल।
नाथ सदासुर सदन सम परनसाल सुखमूल।।"[१६८]

इसलिये प्रत्येक क्षण में वन्य-जीवन में भी आपके चरण कमलों को देख-देख अपने को वैसी प्रमुदित मानूँगी जैसी दिन में चकवी रहती है:-

"छिन-छिन प्रभु-पद-कमल बिलोकी। रहिहउँ मुदित दिवस जिमि कोकी।।"[१६९]

मैं सब प्रकार से कोमलांगी होते हुये भी आपके साथ वन के विभिन्न कष्ट और दुख सहती हुई पूरी निष्ठा से चलने योग्य हूँ। मेरा परित्याग न करें, फिर आप तो स्वयं अन्तर्यामी हैं:-

"वन दुख नाथ कहे बहुतेरे। भय विषाद परिताप घनेरे।।
प्रभु वियोग लवलेस समाना। सब मिलि होहिं न कृपा विधाना।।
अस जियँ जानि सुजान सिरोमनि। लेइअ संग मोहि छाड़िअ जनि।।"[१७०]

दाम्पत्य प्रेम की चरम सीमा का चूड़ान्त निदर्शन करती हुई सती शिरोमणि सीता अपनी अन्तिम इच्छा की परिणति भी सुस्पष्ट शब्दों में विनम्रता पूर्वक निवेदन कर देती हैं:-

"राखिअ अवध जो अवधि लगि रह तन जनिअहिं प्रान।
दीनबन्धु सुन्दर सुखद सील सनेह निधान।।"[१७१]

कहने का तात्पर्य यह कि हर प्रकार से सीता वन जाने के योग्य है क्योंकि उसे चरण कमल देखने पर तनिक सी भी थकावट प्रतीत नहीं होगी। आपकी सेवा-सुख में मेरा मार्ग जनित सारा कष्ट स्वयमेव सुख में परिवर्तित हो जायेगा। जब आपके धूल-धूसरित चरणों का प्रक्षालन करके पेड़ों की शीतल छाया में प्रसन्न मना आपके ऊपर पंखा डुलाउँगी तथा समतल भूमि पर घास और वृक्षों के पत्ते बिछाकर यह दासी रात्रि भर आपके चरण दबायेगी तब मुझे वन की अत्यन्त प्रतप्त वायु भी मुझे उष्ण नहीं लगेगी। मैं बारम्बार आपकी मंजुल मूर्ति देखकर सब कुछ भूल जाऊँगी-

मोहि मग चलत न होइहि हारी। छिन छिन चरन सरोज निहारी।।
सबहिं भाँत पिय सेवा करिहौ। मारग जनित सकल श्रम हरिहौं।।
पाय पखारि बैठ तरु छाहीं। करिहउँ बाउ मुदित मन माँहीं।।
श्रम कन सहित स्याम तनु देखें। कहँ दुख समउ प्रानपति पेखें।।
सम महि तृन तरु पल्लव डासी। पाय पलोटहि सब निसि दासी।।
बार-बार मृदु मूरति जोही। लागिहि तात बयार न मोही।।[१७२]

इस प्रकार अपने पति श्री राम को पूर्ण रूपेण आश्वस्त कर दिया कि आपके साथ रहते हुए किसकी इतनी शक्ति है कि जो मेरी ओर आँख उठाकर भी देखे! अर्थात कोई नहीं देख सकता। जैसे सिंह की स्त्री सिंहिनी को खरगोश और सियार नहीं देख सकते। फिर भला आपके कथनानुसार मैं सुकुमारी हूँ (इसकी आप तनिक भी चिन्ता न करें) मैं वैभव-विलास का जीवन व्यतीत करूँ अयोध या में रहकर और आप स्वयं वन में जाकर तपस्यापूर्ण जीवन व्यतीत करें। क्या यह मेरे लिए समुचित और समीचीन होगा? अन्यथा परिस्थिति में मेरा मरण अवश्यंभावी है-

को प्रभु संग मोहि चितवन हारा। सिंघ बधुहि जिमि ससक सियारा।।

मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुमहिं उचित तप मो कहुँ भोगू।।[१७३]

तथा- **ऐसेउ बचन कठोर सुनि, जो न हृदय बिलगान।**

तौ प्रभु बिषम बियोग दुख, सहहहिं पाँवर प्रान।।[१७४]

सज्जन अपनी प्रशंसा सुनकर संकुचित होते हैं। सर्वोच्च शील और मर्यादा की मूर्तिमन्त भगवती सीता माता-पिता का सान्निध्य पाकर तपस्विनी वेश में उनके द्वारा प्रशंसित होने पर संकोच में समा जाती हैं-

पितु कह सत्य सनेह सुबानी। सीय सकुचि मह मनहु समानी।।[१७५]

तथा- **कहति न सीय सकुचि मन माही।**[१७६]

राम और सीता में अनन्य प्रेम है। वे एक-दूसरे के परिपूरक दाम्पत्य प्रेम के सिन्धु में अवगाहन करते हुए अपने-अपने प्रेम की पराकाष्ठा का परिचय दे रहे हैं-

एक बार चुनि कुसुम सुहाये। निज कर भूषन राम बनाये।।

सीतहि पहिराये प्रभु सादर। बैठे फटिक सिला पर सुन्दर।।[१७७]

पुत्रवधू के रूप में भी सीता ने सर्वत्र अपनी शालीनता का परिचय दिया है। महर्षि अत्रि के आश्रम में पहुँच कर वे अपने राजकुलोचित धर्म का विस्मरण नहीं करतीं अपितु वयोवृद्ध गुरुजनों और ऋषि पत्नी का हार्दिक एवं सादर सश्रद्ध चरण-स्पर्श करती हैं-

अनुसुइया के पद गहि सीता। मिली बहोरि सुसील बिनीता।।[१७८]

ऋषि पत्नी अनुसुइया सीता को शुभाशीष देकर उन्हें अपने निकट बैठा लेती हैं और दिव्य वसन तथा आभूषण प्रदान कर अपने को धन्य समझती हैं। साथ ही साथ नारि धर्म का उपदेश देती हुई कहती हैं-

सुन सीता तव नाम सुमरि नारि पतिव्रत करहिं।

तोहि प्रान प्रिय राम कहिउँ कथा संसार हित।।[१७९]

प्रकारान्तर से सच्ची एवं पतिपरायणा नारी की परिभाषा भी कह देती हैं कि-

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखिअहिं चारी।।[१८०]

इस प्रकार सीता आपत्ति की अग्नि में जलकर कुन्दन की भाँति और निखरकर परीक्षा के निकष पर खरी उतरती हैं। वे समग्र राजसी सुख-वैभवों का परित्याग करके अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय पति के साथ अपार विपत्ति में उनका साथ देती हैं न केवल उनकी अर्द्धांगिनी बनकर अपितु भारतीय संस्कृति के अनुरूप उनकी धर्मपत्नी बनकर। वे सुखद प्रेरक ओर अभिन्न हृदया ह्लादिनी शक्ति बनकर राम के कर्तव्य मार्ग में व्यवधानों के कंटकों को हटाकर अपनी मधुर मुस्कान के प्रभावी और अत्यधिक आकर्षक पुष्प विकीर्ण कर देती हैं। क्योंकि सीता जहाँ त्रैलोक्य सुंदरी हैं वहाँ जगज्जननी भी हैं। वे उद्‌भव, स्थिति एवं संहार करने में पूर्ण रूपेण सक्षम हैं। क्लेश हारिणी एवं सर्वश्रेयस्करी हैं। तुलसी अभिव्यक्ति प्रकट करते हुए कहते हैं-

उद्भव स्थिति संहार कारिणी, क्लेश हारिणीम्।
सर्व श्रेयस्करीं सीता नतोऽहं राम वल्लभाम्।।[१८१]

हर्ष और विषाद के क्षणों में समान रूप से रहने वाली सीता, अत्यन्त शोभा की खान, सुशील, विनम्र एवं अहिर्निश पति के अनुकूल आचरण करने वाली हैं। उन्होंने राम-राज्याभिषेक के महोत्सव पर पति के चरणों की सेवा का ही एकमात्र व्रत ले लिया है क्योंकि वे श्री राम का महत्व भली-भाँति जानती हैं। यद्यपि राज-परिवार की सुख-सुविधा के हितार्थ अन्तःपुर में भी अनेक दास-दासियाँ, सेवक और अनुचर विद्यमान हैं जो संकेत मात्र में ही पूरे मनोयोग द्वारा अपनी सेवायें समर्पित करने को तुरन्त प्रस्तुत हैं तथापि **सीता योगीराज विदेह की धर्मपुत्री और चक्रवर्ती सम्राट महाराज दशरथ की अप्रितम पुत्रवधू हैं तब भी वे स्वामी की सेवा का महत्व जानती हैं। इसीलिए सीता घर की सब सेवा अपने ही हाथों से करती हैं तथा सदैव अपने पति श्री राम की आज्ञा का अनुसरण करती हैं।** कृपासिन्धु श्रीराम जिस प्रकार से सुखानुभव करते हैं, सीता वही करती हैं क्योंकि वे सेवा की विद्या में पारंगत हैं। इतना ही नहीं पुत्रवधू होने के नाते सीता अपनी सभी सासों की भी सेवा करती हैं। उन्हें किसी बात का अभिमान और मद नहीं है-

पति अनुकूल सदा रह सीता। सोभा खानि सुसील बिनीता।।
जानति कृपासिंधु प्रभुताई। सेवति चरन कमल मन लाई।।
जद्यपि गृहँ सेवक सेवकिनी। बिपुल सदा सेवा बिधि गुनी।।
निज कर गृह परिचरजा करई। रामचंद्र आयसु अनुसरई।।
जेहि बिधि कृपासिंधु सुख मानइ। सोइ कर श्री सेवा बिधि जानइ।।
कौसल्यादि सासु गृह माहीं। सेवइ सबन्हिं मान मद नाहीं।।[१८२]

राम और सीता के हृदय एक हैं। वे एक प्राण दो देह हैं। दोनों में ही पारस्परिक अनुराग का असीम सिन्धु लहरा रहा है। राम राजा हैं। प्रजावत्सल हैं। उनके राज्य में एक-एक व्यक्ति के मत का महत्व है। वे हास-परिहास में भी अपनी राज-मर्यादा से विचलित नहीं होते हैं। वे कभी भी लोकमत का निरादर नहीं करते हैं। गुप्तचरों द्वारा यह जानकर कि सीता के प्रति लोकापवाद बढ़ता जा रहा है। अस्तु, उसके निराकरण हेतु कठोर से कठोर और मर्मान्तक निर्णय लेकर, अपनी प्राणप्रिया, अर्द्धांगिनी सीता जो उस समय गर्भवती भी थीं, के परित्याग का दृढ़ निश्चय कर लेते हैं और प्रातः होते ही लक्ष्मण को बुलाकर सीता को वन में विद्यमान वाल्मीकि आश्रम में छोड़ आने का आदेश देते हैं-

(अ) **राम बिचारि के राखी ठीक दै मन माँहिं।**
लोक बेद सनेह पालत पल कृपालहि जाहिं।।
प्रियतमा पतिदेवता, जिहि उमा रमा सिहाहिं।
गुरुविनी सुकुमार सियतियमनि समुझि सकुचाहिं।।

मेरे ही सुख सुखी, सुख अपनो सपनहूँ नाहिं।
गेहिनी गुन गेहिनी गुन सुमिरि सोच समाहिं।।[१८३]

(ब) चरचा चरनिसों चरची जानमनि रघुराइ।
दूत मुख सुनि लोकधुनि घर घरनि बूझी आइ।।
जानि करुनासिंधु भाबी-बिबस सकल सहाइ।
धीर धरि रघुबीर भोरहि लिए लषन बोलाइ।।
तात तुरतहि साज स्यंदन सीय लेहु चढ़ाइ।
बालमीकि मुनीस आश्रम आइयहु पहुँचाइ।।[१८४]

लक्ष्मण द्वारा उन्हें आश्रम में पहुँचाने के उपरान्त उनकी ग्लानि दूर के उद्देश्य से सीता कहती हैं कि मैं स्वयं जब तक आश्रम में रहकर तपस्वियों की रीति भली-भाँति न सीख लूँ तब तक तुम उनकी सेवा करते रहना। मैं तपस्विनी होकर राजाओं के अनुकूल वचन क्या कहूँ। मुझे विश्वास है कि जिस प्रकार मेरे प्रति प्रतिकूल वचन कहे गए हैं उसी प्रकार अनुकूल वचन भी कहे जाएँगे इसलिए तुम व्याकुल न हो। इस प्रकार की अनुकूलता और प्रतिकूलता के समुच्चय का नाम ही तो जीवन है। इस प्रकार की भावाभिव्यक्ति के माध्यम से तुलसी ने एक ओर जहाँ सीता के आंतरिक सौन्दर्य की उदात्तता का परिचय दिया है वहीं दूसरी ओर अपनी आभिव्यक्तिक प्रणाली की कलात्मकता को सुललित ढंग से संकेतित किया है। यथा दृष्टव्य हैं पंक्तियाँ

तौलौं बलि, आपुही कीबी बिनव समुझि सुधारि।
जौलौं हौं सिखि लेउँ बन रिषि-रीति बसि दिन चारि।।
तापसी कहि कहा पठवति नृपनि को मनुहारि।
बहुरि तिहि बिधि आइ कहिहै साधु कोउ हितकारि।।
लषनलाल कृपाल ! निपटहि डारिबी न बिसारि।
पालिबी सब तापसनि ज्यौं राजधरम बिचारि।।
सुनत सीता-बचन मोचत सकल लोचन-बारि।
बालमीक न सके तुलसी सो सनेह सँभारि।।[१८५]

सीता अत्यंत सहज भाव से श्री राम की प्रत्येक आज्ञा को अंगीकार करती हैं। वाल्मीकि-आश्रम भेजने का निर्णय राजा राम और उनके पति का है अतएव अपने प्रजा और पतिव्रत धर्म का निर्वाह करते हुए उन्होंने प्रसन्नमना शिरोधार्य कर लिया। यह सीता के आंतरिक सौन्दर्य की चरम सीमा है।

भगवती जानकी के आने और सान्निध्य सुख पाने पर जंगल में सर्वत्र मंगल हो उठा है। मंगल दायक विधान के माध्यम से तुलसी ने सीता के आंतरिक सौन्दर्य के प्रसन्न प्रस्तार को संकेतित करने की सफल चेष्टा की है-

"जब तें जानकी रही रुचिर आश्रम आइ।
गगन, जल, थल बिमल तबतें मंगलदाइ।।

निरस भूरुह सरस फूलत, फलत अति अधिकाई।
कंद मूल अनेक अंकुर स्वाद सुधा लजाई।।
मलय मरुत मराल मधुकर मोर पिक समुदाइ।
मुदित-मन मृग-बिहग बिहरत बिषम बैर बिहाइ।।[१८६]

तुलसी की विभिन्न कृतियों में नारी के मातृरूप की जो प्रतिष्ठापना की गई है, वह ममत्व, वात्सल्य एवं अपनत्व से परिपूर्ण है।

कौशल्या- स्वायंभू मनु और शतरूपा के वंश में कश्यप और अदिति ने ही त्रेतायुग में दशरथ और कौशल्या के रूप में जन्म लिया था। सत् चित् आनन्दमय भगवान श्री राम की जननी बनने का उन्हें महान सौभाग्य प्राप्त हुआ है-

तहँ करि भाग बिसाल, तात गये कछु काल पुनि।
होइहहु अवध भुआल, तब मैं होब तुम्हार सुत।।[१८७]

गोस्वामी जी ने इस पूरे प्रकरण को रामचरितमानस में इस प्रकार आख्यायित किया है-

अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहउँ दिनकर बंस उदारा।।
कस्यप अदिति महातप कीन्हा। तिन्ह कहुँ मैं पूरब वर दीन्हा।।
ते दसरथ कौसल्या रूपा। कौसलपुरी प्रगट नर भूपा।।
तिनके गृह अवतरिहउँ जाई। रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई।।[१८८]

महाराजा दशरथ की तीनों रानियाँ कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी सदाचारिणी और अपने पति के चरणों में अभंग निष्ठा रखने वाली हैं। उनमें परस्पर अद्‌भुत प्रेम और स्नेह है। वे सब अत्यधिक शोभा से युक्त शील एवं तेज की निधि हैं। पुत्र प्रेम में कौशल्या इतनी निमग्न हैं कि उन्हें दिन-रात का भी भान नहीं रहता। वे तो एकमात्र राम की बाल-लीलाओं का ही चिन्तन और गान करती रहती हैं। तुलसी कहते हैं-

प्रेम मगन कौसल्या, निसि दिन जात न जान।
सुत सनेह बस माता, बाल चरित कर गान।।[१९०]

कौशल्यादि सभी माताएँ लोकसंस्कारों में अत्यन्त निपुण हैं। ज्यों ही चारों भाई दूल्हा बने अपनी-अपनी दुलहिनों के साथ अयोध्या के राजद्वार पर उपस्थित होते हैं तो वे सभी अत्यन्त प्रमुदित हो परछन करने के लिए प्रस्तुत हो जाती हैं-

एहि बिधि सब ही देत सुख, आये राजदुआर।
मुदित मातु परछन करहिं, बधुन्ह समेत कुमार।।[१९१]

समस्त कुलरीतियों को प्रसन्न मन से वे पूर्ण करती हैं और पुत्र तथा पुत्रवधुओं से सम्पन्न कराती हैं-

(क) निगम नीति कुल रीति करि, अरघ पाँवड़े देत।
बधुन्ह सहित सुत परिछि सब, चलीं लवाई निकेत।।[१९२अ]

(ख) लोक रीति जननी करहिं बर दुलहिनि सकुचाहिं।

मोदु बिनोदु बिलोकि बड़ रामु मनहिं मुसुकाहिं।।[१६२ख]

(ग) सुदिन सोधि कल कंकन छोरे।[१६३]

कवितावली के अयोध्याकांड में कौशल्या सुमित्रा से कहती हैं-

सिथिल सनेह कहैं कौसिला सुमित्राजू सौं,
मैं न लखी सौति, सखी भगिनी ज्यों सेई है।
कहै मोहि मैया, कहौं-मैं न मैया भरत की,
बलैया लेहौं भैया, तेरी मैया कैकेई है।।[१६४]

इस प्रकार कौशल्या दशरथ की अन्य दोनों रानियों को अपनी लघु भगिनी जैसा ही मानती हैं उनका पारस्परिक स्नेह, अनुराग और वात्सल्य अनुपम है। यथा-

भुजनि पर जननी वारि-फेरि डारी।
क्यों तोरयो कोमल कर-कमलनि, संभु सरासन भारी?
क्यों मारीच सुबाहु महाबल प्रबल ताड़का मारी।
मुनि प्रसाद मेरे रामलखन की, विधि वर करवर टारी।
चरन रेनु ले नयननि लावति, क्यों मुनिवधू, उधारी।।
कहौ धौं तात ! क्यों जीत सकल नृप बरी है विदेह कुमारी।।
दुसह शेष मूरति भृगुपति अति, नृपति निकल खयकारी।
क्यों सौंप्यों सारंग हारि हिय, करी है बहुत मनुहारी।।
उमगि-उमगि आनन्द बिलोकिति, बधुन्ह सहित सुत चारी।
तुलसीदास आरती उतारति प्रेम मगन महतारी।।[१६५]

तथा- मुदित मन आरती करै माता।
कनक वसन, मनि वारि-वारि कर पुलक प्रफुल्लित गाता।।
पालागन दुलहियन सिखावत सरिस सासु सत माता।
दूहि असीस ते बरसि कोटि लगि अचल होउ अहिवाता।।[१६६]

राम के वियोग मात्र की कल्पना से ही कौशल्या म्रियमाण-सी हो जाती हैं। पुत्र प्रेमातिरेक के कारण वे कह उठती हैं- "बेटा राम ! मैं किस प्रकार घर में रह सकूँगी? मैं बार-बार अंक भरकर, गोद में ले किससे 'लाल' कहकर बोलूँगी? मेरे लाल ! तुम तो बहुत से बालकों को साथ लेकर इस आँगन में विहार किया करते थे, सो हे बेटा ! तुम्हारी उन बाल-लीलाओं को याद कर करके मेरे प्राण कैसे रह सकेंगे? जिन कानों से तुम्हारे सुन्दर बोल सुन-सुनकर मैं स्नेह में डूब जाती थी, आज उन्हीं से तुम्हारे वन-गमन का समाचार सुन रही हूँ। भला मुझसे अधिक अभागिनी और कौन होगी? हे राम ! तुम्हारा मुखारविन्द न देखने पर तो मुझे एक-एक निमेष युग के समान बीतता है, अब यदि चौदह वर्ष बीतने पर भी यह शरीर रह गया तो बेटा ! बलिहारी जाऊँ, इसकी तुम्हारे प्रति क्या प्रीति समझी जायेगी? यथा-

राम हौं कौन जतन घर रहिहौं?

बार-बार भरि अंक गोद में ललन कौन सों कहिहौं?[१६७]

माँ कौशल्या के हृदय की आशंका प्रेमाधिक्य का सशक्त एवं परिपुष्ट प्रमाण है। गीतावली के अयोध्याकांड प्रकरण में ५१वाँ पद इस सन्दर्भ में दृष्टव्य है जिसमें कौशल्या कहती हैं-अरी माई ! आज का प्रातः काल तो कुछ और ही सा लग रहा है। आज द्वार पर न तो वेद और बंदीजन की ही ध्वनि सुनाई देती है और न गुणियों की मनोहर वाणी का ही शब्द है। अपने-अपने पतियों के सुन्दर राजप्रसादों से रूप, शील और छवि से सम्पन्न मेरी पुत्रवधुएँ भी सीता को आगे कर आज मेरे पास आशीर्वाद लेने के लिये नहीं आईं। आज मुझसे राम ने हँसकर यह नहीं पूछा कि अरी माँ ! सुमित्रा माँ कहाँ हैं? अहो ! मेरे महासुख को मानो विधाता भी नहीं देख सका-

आजु को भोर और सो माई।
सुनौं न द्वार बेद-बंदी-धुनि गुनिगन-गिरा सोहाई।।
निज-निज सुंदर पति-सदननि तें रूपसील-छबि छाईं।
लेन असीस सीय आगे करि मोपै सुतबधू न आईं।।
बूझी हौं न बिहँसि मेरे रघुबर 'कहाँ री ! सुमित्रामाता।
तुलसी मनहु महासुख मेरो देखि न सकेउ बिधाता।।[१६८]

इसी क्रम में **'जननी निरखति बान धनुहियाँ'** (पद संख्या ५२), **'माई री ! मोहि कोउ न समझावै** (पद संख्या ५३), **'जब-जब भवन बिलोकति सूनो'** (पर संख्या ५४) तथा **मेरो यह अभिलाषु बिधाता** (पद संख्या ५५) भी कम उद्धरणीय नहीं हैं। इन पदों में गोस्वामी तुलसीदास ने राम-जननी कौशल्या के अन्तर्मन की जिन सुकोमल और मार्मिक मनःस्थितियों का हृदयस्पर्शी चित्रण किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। मातृ-हृदय की व्यथा एवं विह्वलता स्वयं साक्षात रूप धारण करके पाठक को रोने हेतु विवश कर देती है।

पुत्र के वियोग में व्यथित माँ के हृदय की पीड़ा को भला कोई और कैसे समझ पाने में समर्थ हो सकता है? क्योंकि उसे तो केवल मातृ-हृदय ही जान सकता है। देखिये न, जब श्री राम लंकाधिपति रावण का विनाश कर अयोध्या आने को हैं, तब माता कौशल्या अपने राजप्रासाद के सर्वोच्च शिखर पर चढ़कर दक्षिण दिशा की ओर अपनी दृष्टि गड़ा देती हैं। उधर से आते-जाते पथिकों से पूछती हैं- ये पथिक कहाँ से आ रहे हैं? राम के आने की अवधि में विलम्ब जान वे शोक ग्रस्त हो जाती हैं। शरीर में रोमांच हो उठता है और आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती हैं-

अवधि आजु किधौं औरौ दिन हुइहै।
चढ़ि धौरहर बिलोकि दखिन दिसि बूझधौं पथिक कहाँ ते आये वैहैं।।[१६९]

इसी क्रम में **'आली, अब राम-लषन कित है हैं'** पद संख्या १८ तथा **'बैठी सगुन मनावति माता'** (पद संख्या १९) में भी इसी प्रकार माता कौशल्या की उतावली, राम के आने की प्रतीक्षा और औत्सुक्य की मार्मिक झाँकी चित्रित की गई है जिसमें सहृदय पाठकों को उनके पुनीत मातृत्व के दर्शन होते हैं।

श्री राम चरित मानस में भी महारानी कौशल्या आदर्श माता के रूप में ही सर्वाधिक रूप से दृष्टिगोचर होती हैं। तुलसी इसीलिये कौशल्या रूपी पूर्व दिशा की वन्दना करते हैं जिससे सम्पूर्ण विश्व को सुख देने वाले दुष्ट रूपी कमलों के लिए पाले के समान राम सुन्दर चन्द्रमा प्रकट हुए-

बंदउँ कौसल्या दिसि प्राची। कीरति जासु सकल जग माची।।
प्रगटेउ जहँ रघुपति ससि चारू। बिस्व सुखद खल कमल तुसारू।।[200]

माता कौशल्या को विराट रूपधारी विष्णु-स्वरूप तनिक भी भला नहीं लगता क्योंकि उन्होंने तो उनसे पुत्र बनकर रहने का वरदान माँगा था जिससे वे अपने शिशु राम की बाल-सुलभ क्रीड़ाएँ देख सकें और ब्रह्मानन्द के असीम सिन्धु में निमग्न हो सकें तभी तो वे **'ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया, रोम रोम प्रति वेद कहै'** से विनती करती हैं **'तजहु तात यह रूपा'** और भक्त वत्सल भगवान भी अपना वह अलौकिक रूप त्याग माता की हार्दिक इच्छा की सम्पूर्ति हेतु शिशु रूप धारण करके रोना आरम्भ कर देते हैं-

माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा।
कीजै सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा।।
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुर भूपा।।[201]

इसे देखकर माता कौशल्या को अभूतपूर्व स्वर्गिक आनन्द और सुख की अनुभूति हुई।

वन-गमन की बात सुनकर ज्यों ही राम कौशल्या की चरण-वन्दना करने को गये (तब कौशल्या को इसकी तनिक भी भनक नहीं थी।) तो वे स्नेहातिरेक के कारण बार-बार राम के मुख का चुम्बन करने लग जाती हैं। नेत्रों से प्रसन्नता के कारण कि मेरे राम का राजतिलक होगा, प्रेमाश्रु छलक उठते हैं। सभी अंग रोमांचित हो उठते हैं। उन्होंने राम को अपनी गोद में बिठला लिया और हृदय से लगा लिया। स्वयमेव सुन्दर स्तनों से तत्क्षण दुग्ध-धार प्रवाहित होने लगी-

बार-बार मुख चुम्बति माता। नयन नेह जल पुलकित गाता।।
गोद राखि पुनि हृदय लगाये। स्रवत प्रेम रस पयद सुहाये।।[202]

किन्तु जब राम ने इस परमानन्द के वातावरण के मध्य कहा-**'पिता दीन्ह मोहि कानन राजू।'** इसलिए हे माता! तुम भी मुझे मुदित मन से वन-गमन की आज्ञा प्रदान करो। तुम्हारी कृपा से हे माता! सर्वत्र आनन्द ही होगा क्योंकि-

बरष चारि दस बिपिन बसि, करि पितु बचन प्रमान।
आइ पाय पुनि देखिहउँ, मनु करसि मलान।।[203]

मानवी होने के कारण सारी परिस्थिति जानकर कौशल्या विष का घूँट पीकर रह जाती हैं-

बचन विनीत मधुर रघुबर के। सर सम लगे मातु उर करके।।
सहमि सूखि सुनि सीतल बानी। जिमि जवास परें पावस पानी।।
कहि न जाय कुछ हृदय बिसादू। मनहुँ मृगी सुनी केहरि नादू।।
नयन सजल तन थर-थर काँपी। मसाजहि खाइ मीन जनु मापी।।[204]

तथा- धरम सनेह उभय मति घेरी। भइ गति साँप छछूँदर केरी।।
राखउँ सुतहि करउँ अनुरोधू। धरम जाइ अरु बन्धु विरोधू।।
कहउँ जात तन तो बड़ि हानी। संकट सोच बिबस भइ रानी।।[२०५]

तब-

बहुरि समुझि तिय धरम सयानी। राम भरत दोउ सुत सम जानी।।
तात जाउँ बलि कीन्हेउ नीका। पितु आयसु सब धरमक टीका।।[२०६]

धरती के समान क्षमाशीला और धैर्यशाली कौशल्या ने तुरन्त अपने को संयत किया और राम से कहा-

राज देन कहि दीन्ह बन, मोहि न सो दुख लेस।
तुम्ह बिन भरतहि भूपतहि, प्रजहि प्रचण्ड कलेस।।[२०७]

इसलिये "जो केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता।।[२०८]
और यदि- जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना।।"[२०९]

अरस्तु वन के देवता तुम्हारे पिता होंगे और देवियाँ माता होंगी। वहाँ के पशुपक्षी तुम्हारे चरण कमलों के सेवक होंगे। राजा के लिये अन्त में तो वनवास करना उचित ही है केवल तुम्हारी (सुकुमार) अवस्था देखकर दुख होता है। हे रघुवंश तिलक! वन बड़ा भाग्यवान है और यह अवध अभागी है जिसे तुमने त्याग दिया। हे पुत्र! यदि मैं कहूँ कि मुझे भी साथ ले चलो तो तुम्हारे हृदय में सन्देह होगा (कि माता इसी बहाने मुझे रोकना चाहती हैं)। हे पुत्र! तुम सभी के परम प्रिय हो। प्राणों के प्राण और हृदय के जीवन हो। वहीं (प्राणाधार) तुम कहते हो कि हे माता! मैं वन को जाऊँ और मैं तुम्हारे वचनों को सुनकर बैठी पछताती हूँ। यह सोचकर झूठा स्नेह बढ़ाकर मैं हठ नहीं करती। बेटा! मैं बलैयाँ लेती हूँ, माता का नाता मानकर मेरी सुधि भूल न जाना-

पितु बनदेव मातु बनदेवी। खग मृग चरन सरोरुह सेवी।।
अंतहुँ उचित नृपहि बनबासू। बय बिलोकि हियँ होइ हराँसू।।
बड़भागी बनु अवध अभागी। जो रघुबंस तिलक तुम्ह त्यागी।।
जौं सुत कहौं संग मोहि लेहू। तुम्हरे हृदयँ होइ संदेहू।।
पूत परमप्रिय तुम्ह सबही के। प्रान प्रान के जीवन जी के।।
ते तुम्ह कहहु मातु बन जाऊँ। मैं सुनि बचन बैठि पछिताऊँ।।
यह बिचारि नहिं करउँ हठ झूठ सनेह बढ़ाइ।
मानि मातु कर नात बलि सुरति बिसरि जनि जाइ।।[२१०]

चित्रकूट मिलन के प्रकरण में कौशल्या नीति-विशारदा होने का परिचय देती हैं और कहती हैं-

कौसल्या कह दोस न काहू। करम-बिबस दुख सुख छति लाहू।।
कठिन करम गति जान विधाता। जो सुभ-असुभ सकल फलदाता।।

ईस रजाइ सीत सबही कें। उतपति थिति लय बिषहु अमी कें।।
देबि मोहबस सोचिअ बादी।। बिधि प्रपंच अस अचल अनादी।।
भूपति जिअब मरब उर आनी। सोचिअ सखि लखि निज हित हानी।।
सीय मातु कह सत्य सुबानी। सुकृती अवधि अवधपति रानी।।[२११]

तब कौशल्या ने पुनः कहा-श्री राम, लक्ष्मण और सीता वन में जायें, इसका परिणाम अच्छा ही होगा बुरा नहीं। मुझे तो भरत की चिन्ता है। हे सखी! मैंने कभी राम की सौगन्ध नहीं की किन्तु आज राम की शपथ करके सत्यभाव से कहती हूँ कि भरत के शील, गुण, नम्रता, बड़प्पन, भाईपन, भक्ति, भरोसे और अच्छेपन का वर्णन करने में सरस्वती की बुद्धि भी हिचकती है। भला सीप से कभी समुद्र उलीचे जा सकते हैं? मैं भरत को सदा कुल का दीपक जानती हूँ। महाराज ने भी बार-बार मुझसे यही कहा था कि सोना कसौटी पर कसे जाने पर और रत्न, पारखी (जौहरी) के मिलने पर ही पहचाना जाता है। वैसे ही पुरुष की परीक्षा समय पड़ने पर उसके स्वभाव से ही (अर्थात् चरित्र देखकर) हो जाती है-

लखन रामु सिय जाहुँ बन, भल परिनाम न पोचु।
गहबरि हियँ कह कौसिला मोहि भरत कर सोचु।।
ईस प्रसाद असीस तुम्हारी। सुत सुतबधू देवसरि बारी।।
राम सपथ मैं कीन्हि न काऊ। सो करि कहउँ सखी सति भाऊ।।
भरत सील गुन बिनय बड़ाई। भायप भगति भरोस भलाई।।
कहत सारदहु कर मति हीचे। सागर सीप कि जाहिं उलीचे।।
जानउँ सदा भरत कुलदीपा। बार बार मोहि कहेउ महीपा।।
कसें कनकु मनि पारिखि पाएँ। पुरुष परिखिअहिं समयँ सुभाएँ।।[२१२]

रावण को मार कर पुष्पक विमान द्वारा जब अयोध्या में उतरे तब **'क्षण महँ सबहि मिले भगवाना'** और आगे बढ़े। जब माताओं ने यह संवाद सुना तब वे सब ऐसी दौड़ीं मानो नयी ब्यायी हुई गायें अपने बछड़ों को देखकर त्वरा गति से उन्हीं की ओर चली आ रही हों यथा-

जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृहँ चरन बन परबस गईं।
दिन अंतपुर रुख स्रवत थन हुंकार करि धावत भईं।
अति प्रेम प्रभु सब मातु भेटीं बचन मृदु बहुबिधि कहे।
गइ बिषम बिपति बियोग भव तिन्ह हरष सुख अगनित लहे।।[२१३]

समग्र रूप से विचार करने पर यह भली-भाँति सुस्पष्ट हो जाता है कि माता कौशल्या में तुलसी ने नारी के उत्कृष्ट और आदर्श मातृत्व को जिस कुशलता से उभारा है, वह विश्व-साहित्य में भी दुर्लभ है। वे मातृ-प्रेम की साकार और दिव्यातिदिव्य एवं भव्यातिभव्य अनुपमेय प्रतिमा हैं।

सुमित्रा- इसी प्रकार माता सुमित्रा का भी आदर्श कम प्रशंसनीय नहीं जिन्होंने अपने एक मात्र

पुत्र को राम की सेवार्थ सहर्ष चौदह वर्ष पर्यन्त वन में भेज दिया यह कहकर-

तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही।।
अवध जहाँ तहँ राम निवासू। तहँइ दिवस जहँ भानु प्रकासू।।
जौं पै सीय राम बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं।।
गुरु पितु मातु बन्धु सुर साईं। सेइअहिं सकल प्रान की नाईं।।
राम प्रान प्रिय जीवन जी के। स्वारथ सहित सखा सबही के।।
पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते। सब मानिअहिं राम के नाते।।
अस जियँ जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू।।[२१४]

अतएव मैं बलिहारी जाती हूँ। हे पुत्र! मेरे समेत तुम बड़े ही सौभाग्य के पात्र हुए जो तुम्हारे चित्त ने छल छोड़कर श्री राम के चरणों में स्थान प्राप्त किया है क्योंकि संसार में वही युवती स्त्री पुत्रवती है जिसका पुत्र राम का भक्त हो, नहीं तो जो राम से विमुख पुत्र से अपना हित जानती है वह तो बाँझ ही अच्छी। पशु की भाँति उसका ब्याना (पुत्र प्रसव करना) व्यर्थ ही है। मुझे तो पूरा-पूरा विश्वास है कि तुम्हारे भाग्य से ही राम वन को जा रहे हैं। हे तात! दूसरा कोई कारण नहीं है। सम्पूर्ण पुण्यों का सबसे बड़ा फल यही है कि राम के चरणों में स्वाभाविक प्रेम हो। राग, द्वेष, ईर्ष्या, मद और मोह, इनके वश स्वप्न में भी मत होना। सब प्रकार के विकारों का त्याग कर मन, वचन और कर्म से श्री सीता-राम की सेवा करना। तुमको वन में सब प्रकार आराम ही आराम होगा क्योंकि तुम्हारे साथ राम-सीता रूप पिता-माता हैं। हे पुत्र! तुम वही करना जिससे राम को वन में तनिक भी क्लेश न होने पावे। मेरा यही उपेदश है-

उपदेस यहु जेहिं तात तुम्हरे राम सिय सुख पावहीं।
पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं।।
तुलसी प्रभुहिं सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई।
रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित-नित नई।।[२१५]

इस प्रकार कौशल्या जहाँ आदर्श माता हैं, वहीं सुमित्रा कर्तव्यपरायणा हैं। सुनयना अति धीर, गंभीर और प्रसन्न वदना हैं। पार्वती पतिव्रताओं में श्रेष्ठ हैं और मन्दोदरी भी पति की दुर्नीति का विरोध करती हुई उसे सन्मार्ग दिखलाती है। महिमामयी यशोदा का वात्सल्य तो त्रैलोक्य में भी चर्चित है।

तुलसी के नारी पात्रों में जिस आदर्श की प्रतिष्ठा है, वह सर्वश्रेष्ठ धर्म पातिव्रत ही है। राम के नाते, धर्म के नाते, संस्कृति के नाते उक्त सभी नारी पात्र सतपात्रों की कोटि में ही परिगणित किये जाते हैं। इन सब पात्रों में वाह्य सौन्दर्य के साथ-साथ उनके अन्तः सौन्दर्य का चित्रण युगानुरूप और प्रशंस्य है। मातृ हृदय की मनोरम अभिव्यंजना में भी तुलसी निष्णात हैं। उनके ये सभी नारी पात्र महीयसी गरिमा से अभिमण्डित हैं, वंद्य हैं, प्रणम्य हैं। तुलसी की मर्यादा और नैतिकता के धरातल पर अवस्थित कुशल भावाभिव्यक्ति ने ही इन्हीं लोकोत्तर बना दिया है।

(ग) बाल सौन्दर्य

तुलसी साहित्य में बाल सौन्दर्य का पर्याप्त अंकन उपलब्ध होता है। यद्यपि तुलसी का अभीष्ट राम चरित्र गायन के माध्यम से नैतिक और उदात्त मूल्यों की स्थापना करना था इसीलिए उनका जितना ध्यान राम के पुरुषोचित सौन्दर्यांकन में रमा उतना बाल सौन्दर्यांकन में नहीं। प्रसंगानुसार फिर भी जितना वर्णन उन्होंने प्रस्तुत किया है। वह उनकी अभिव्यक्ति की सार्थकता और चारुता प्रदर्शित करने में पर्याप्त सक्षम है इतना तो निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है। हाँ, यह बात अवश्य है कि बाल-जीवन के समूचे सौन्दर्यांकन के लिए उनके पास अवकाश ही नहीं था। राम के चरित्र को सम्पूर्णता से प्रस्तुत करने के लिए उन्होंने बाल-मन की आंतरिकता और रूप माधुरी को संक्षिप्तता से ही नियोजित कर प्रस्तुत किया है। तुलसी का बाल-सौन्दर्य किसी भी प्रकार से तुलनात्मक रूप में किसी भी अन्य कवि से कम नहीं ठहरता। कथा विस्तार की विवशता ने ही उन्हें बाल-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति हेतु सीमित अवश्य कर दिया है।

तुलसी ने राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के माध्यम से बाल सौन्दर्य को अपनी कृतियों में संक्षिप्तता से सुरेखांकित किया है। संक्षिप्तता में भी तुलसी ने बाल-रूप और बाल-दशा की लगभग सभी स्थितियों का मनभावन निवेश अपनी कृतियों में किया है। बालदशाओं की चित्ताकर्षक और ललित अभिव्यक्ति उनके बाल मनोविज्ञान की सुविज्ञता को संकेतित करने में पूर्णतः समर्थ है। उनकी कृतियों में अभिव्यक्त बाल सौन्दर्य का अनुशीलन निम्न प्रकारों के आलोक में किया जा सकता है।

(क) बाल सौन्दर्य का बाह्य स्वरूप

(ख) बाल सौन्दर्य की आंतरिक सुषमा

(क) बाह्य स्वरूप-

बाह्यांकन के अंतर्गत नख-शिख-वर्णन, समन्वित रूप छवि, वेशभूषा तथा प्रसाधानिक चित्रण किया जाता है। तुलसी ने कहीं राम, कहीं राम-लक्ष्मण तो कहीं चारों भाइयों के माध्यम से बाल-सौन्दर्य की उद्‌भावना अभिव्यंजित की है किन्तु प्रमुखता से केवल राम की छवि या चारों भाइयों के समवेत सौन्दर्य को प्रकट किया है।

मानस में रामजन्म का उल्लेख करते हुए तुलसी ने उनकी छवि का वर्णन निम्नवत किया है-

सुनि सिसु रुदन परम प्रिय बानी। संभ्रम चलि आईं सब रानी।।
दसरथ पुत्र जन्म सुनि काना। मानहु ब्रह्मानंद समाना।।
परम प्रेम मन पुलक सरीरा। चाहत उठन करत मति धीरा।।
परमानंद पूरि मन राजा। कहा बोलाइ बजावहु बाजा।।
अनुपम बालक देखेन्हि जाई। रूप रासि गुन कहि न सिराइ।।[२१६]

नामकरण का संकेत तुलसी ने निम्नवत दिया है-

जो आनंद सिंधु सुखरासी। सीकर तें त्रैलोक सुपासी।।
सो सुख धाम राम अस नामा। अखिल लोकदायक बिश्रामा।।
बिस्व भरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई।।
जाकें सुमिरन तें रिपु नासा। नाम सत्रुहन बेद प्रकासा।।
लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत आधार।
गुरु बसिष्ठ तेहि राखा लछिमन नाम उदार।।[२१७]

चारों भाइयों के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए तुलसी कहते हैं कि श्याम और गौरांग वर्णी दोनों जोड़ियाँ अत्यन्त ही अनायास रूप से हृदय को आकृष्ट करने वाली हैं। यद्यपि चारों कुमार सौन्दर्य से परिपूर्ण हैं किन्तु राम सबसे सलोने जान पड़ते हैं। यथा-

स्याम गौर सुंदर दोउ जोरी। निरखहिं छवि जननीं तृन तोरी।।
चारिउ सील रूप गुन धामा। तदपि अधिक सुख सागर रामा।।
हृदय अनुग्रह इंदु प्रकासा। सूचत किरन मनोहर हासा।।[२१८]

राम की बाल छवि का अंकन तुलसी ने निम्नवत प्रस्तुत किया है-

अरुन चरन पंकज नख जोती। कमल दलन्हिं बैठे जनु मोती।।
रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहे। नूपुर धुनि सुनि मुनि मन मोहे।।
कटि किंकिनी उदर त्रय रेखा। नाभि गभीर जान जेहिं देखा।।
भुज बिसाल भूषन जुत भूरी। हियँ हरि नख अति सोभा सूरी।।
उर मनिहार पदिक की सोभा। बिप्र चरन देखत मन लोभा।।
कंबु कंठ अति चिबुक सुहाईं। आनन अमित मदन छवि छाईं।।
दुइ-दुइ असन अधर अरुनारे। नासा तिलक को बरनै पारे।।
सुंदर श्रवन सुचारु कपोला। अति प्रिय मधुर तोतरे बोला।।
चिक्कन कच कुंचित गभुआरे। बहु प्रकार रचि मातु सँवारे।।
पीत झगुलिआ तनु पहिराई। जानु पानि बिचरनि मोहि भाई।।[२१९]

उत्तर कांड में पुनः तुलसी ने काकभुशुण्डि और पक्षिराज गरुड़ संवाद के माध्यम से राम की बालछवि को नियोजित किया है। वे वर्णन करते हुए कहते हैं कि राम का शरीर मरकत मणि की भाँति हरिताभ-श्याम और अत्यंत कमनीय है। उनके चरण नूतन लाल कमल के समान लाल और कोमल हैं। उंगलियां अत्यन्त सुंदर हैं और नाखून अपनी आभा से चन्द्रमा की कान्ति को भी निरादृत करने में समर्थ हैं। उनके तलवों में वज्र, अंकुश, ध्वजा और कमल के चार सुन्दर चिन्ह शोभित हैं। चरणों में मधुर ध्वनि करने वाले सुन्दर नूपुर हैं। उनकी मणि जटित हेम करधनी अत्यन्त ही श्रुतिमधुर ध्वनि गुंजित करती है जो सहज ही चित्त को आकर्षित करने में समर्थ है। उनके उदर पर सुन्दर

त्रिबली है। नाभि गहरी होने के कारण अत्यन्त भली जान पड़ती है। वे अपनी विशाल वक्षस्थल पर अनेकों प्रकार के आभूषण और वस्त्र धारण किए हुये हैं।

बालक राम की अरुणाभ हथेलियाँ, नाखून और अंगुलियाँ अत्यन्त ही मनभावन हैं। उनके कंधे बाल केहरि के सदृश और गला शंखवत तीन रेखाओं से युक्त है। ठुड्डी और मुख की शोभा की तो उपमा नहीं दी जा सकती है। उनके होंठ अरुण वर्ण के हैं। उनके गाल सुन्दर और नासिका शुकवत है। उनकी चितवन चंद्रमा की किरणों के समान मधुर प्रतीत होती है। बालक राम के नेत्र नीलाभ कमल की भांति हैं। उनके मस्तक पर गोरोचन का तिलक अत्यन्त शोभादायक है। भौंहे टेढ़ी हैं। उनके कान समान और अत्यन्त आकर्षक हैं। काले और घुंघराले बाल उनकी छवि को निखार कर प्रस्तुत करने में पूर्णतः सक्षम हैं। पीली महीन झंगुली उनके श्यामवर्ण पर अत्यन्त शोभित जान पड़ती है। उनका किलकना और उनकी चितवन निश्चित रूप से अत्यन्त चित्ताकर्षी है। यथा दृष्टव्य हैं उनकी अभिव्यक्ति के लालित्य की परिचायक पंक्तियां-

मरकत मृदुल कलेवर स्यामा। अंग-अंग प्रति छबि बहु कामा।।
नव राजीव अरुन मृदु चरना। पदज रुचिर नख ससि दुति हरना।।
ललित अंक कुलिसादिक चारी। नूपुर चारु मधुर रव कारी।।
चारु पुरट मनि रचित बनाई। कटि किंकिनि कल मुखर सोहाई।।
रेखा त्रय सुंदर उदर, नाभी रुचिर गंभीर।
उर आयत भ्राजत बिबिध, बाल बिभूषन चीर।।
अरुन पानि नख करज मनोहर। बाहु बिसाल बिभूषन सुंदर।।
कंध बाल केहरि दर ग्रीवा। चारु चिबुक आनन छवि सींवा।।
कलबल बचन अधर अरुनारे। दुइ-दुइ दसन बिसद बर बारे।।
ललित कपोल मनोहर नासा। सकल सुखद ससि कर सम हासा।।
नील कंज लोचन भव मोचन। भ्राजत भाल तिलक गोरोचन।।
पीत झीनि झगुली तन सोही। किलकनि चितवनि भावति मोही।। [२२०]

इस प्रकार मानस में बालक राम की बाह्य छवि का रूपांकन कृति के कलेवर के अनुपात में यद्यपि अत्यल्प मात्रा में है किन्तु अपने आप में पूर्ण और संतुलित भी माना जाएगा। क्योंकि तुलसी को अपने मन्तव्य और अभीष्ट लक्ष्यानुरूप इससे अधिक अवकाश भी नहीं था।

कवितावली में भी अत्यन्त संक्षिप्त से बाल छवि का निरूपण मिलता है। इसमें सखियों से वार्तालाप के बहाने से तुलसी ने बालक राम के रूप सौन्दर्य को नियोजित किया है। यथा-

१. अवधेस के द्वारें सकारें गई सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोकि हौं सोच बिमोचन को ठगि-सी रही, जे न ठगे धिक से।।
तुलसी मन-रंजन रंजित-अंजन नैन सुखंजन-जातक-से।

सजनी ससि में समसील उभै नवनील सरोरुह-से बिकसे।।[२२१]

२. पग नुपूर औ पहुँची करकंजनि मंजु बनी मनिमाल हिएँ।
नवनील कलेवर पीत झँगा झलकै पुलकैं नृपु गोद लिएँ।।
अरबिंदु सो आननु रूप मरंदु अनंदित लोचन-भृंग पिएँ।
मनमो न बस्यौ अस बालकु जौं तुलसी जग में फलु कौन जिएँ।।[२२२]

३. तन की दुति स्याम सरोरुह लोचन कंज की मंजुलताई हरैं।
अति सुंदर सोहत धूरि भरे छबि भूरि अनंग की दूरि धरैं।।
दमकैं दँतियाँ दुति दामिनि-ज्यौं किलकैं कल बाल-बिनोद करैं।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मन मंदिर में बिहरैं।।[२२३]

कवितावली में वाह्य रूप वर्णन के केवल तीन ही छन्द हैं। मात्र तीन छन्दों में बाल-सौन्दर्य की बाह्य छवि को पूर्णतः समायोजित कर तुलसी ने अपनी अभिव्यक्ति की सार्थकता और निपुणता का ललित प्रमाण दिया है।

बरवै रामायण अत्यन्त लघु कलेवरी कृति है। इसमें कलेवर के अनुपात में बाल सौन्दर्य का अंकन संतुलित और सम्यक रूपेण दृष्टिगत होता है। इसमें प्रारम्भ के पाँच बरवै बालक राम के अंगों की रूप-छवि को चित्ताकर्षक दंग से व्यंजित करते हैं। तुलसी बालक राम के सौन्दर्य का अनुभावन करते हुए व्यक्त करते हैं कि बालक राम के नेत्र विशाल हैं, भौंहे टेढ़ी हैं और मस्तक चौड़ा है। बालक राम सब प्रकार से सबके मन को अपने सौन्दर्य से मन मोहने में समर्थ हैं। सखियाँ आपस में चर्चा करती हैं कि राम के मस्तक पर केसर का तिलक शोभित है, कानों में चंचल स्वर्ण कुंडल अतीव मनोहर हैं। घुंघराली जुल्फों से समन्वित गोल-गोल कपोल उनकी शोभावर्धन में पूर्णतः सक्षम हैं। राम का मुख चन्द्रमा के समान है। उनके मस्तक पर तिलक की रेखा बाणवत शोभित हो रही है और उनकी भौंहें धनुषवत कुटिल प्रतीत होती हैं।

कवि अनुभूत करता है कि बालक राम की तिरछी चितवन और अधरों पर खेलती मुस्कान अत्यंत मनभावन और चित्ताकर्षी है। राम के नेत्रों को कमलवत कहने में तुलसी को अत्यन्त संकोच होता है क्योंकि कमल रात्रि में कुम्हला जाता है किन्तु बालक राम के नेत्रों में सदैव प्रफुल्लता विराजती है। तुलसी ने इस प्रकार बालक राम के माध्यम से बाल सौन्दर्य की ललित उद्भावना बरवै रामायण में निम्नवत् नियोजित की है-

"बड़े नयन कुटि भृकुटी भाल बिसाल।
तुलसी मोहत मनहि मनोहर बाल।।
कुंकुम तिलक भाल श्रुति कुंडल लोल।
काकपच्छ मिलि सखि कस लसत कपोल।।
भाल तिलक सर सोहत भौंह कमान।

मुख अनुहरिया केवल चंद समान।।
तुलसी बंक बिलोकनि मृदु मुसुकानि।
कस प्रभु नयन कमल अस कहौं बखानि।।
चढ़त दसा यह उतरत जात निदान।
कहीं न कबहूँ करकस भौंह कमान।।"[२२४]

गीतावली में तुलसी ने बाल-सौन्दर्य को पर्याप्त विस्तार से नियोजित किया है। बालकाण्ड के प्रारम्भिक सैंतालीस पदों में बाल-सौन्दर्य से सम्बन्धित चित्रांकन की सुव्यवस्थित क्रमिक योजना दृष्टिगत होती है। इस कृति में तुलसी ने बाल सौन्दर्यांकन में लालित्य का अनूठा समाहार निवेशित कर अपने आभिव्यक्तिक लालित्य-कौशल का अनुपम और सुमधुर प्रमाण प्रस्तुत किया है। इसमें भी बालक राम का निरूपण अधिक हुआ है। **राम के बालरूप की झांकी में तुलसी ने अपनी सारी चेतना और ऊर्जा लगा दी है जिसके कारण ही वे बालक राम की रूप माधुरी का इतना भव्य रूपांकन प्रस्तुत कर सके हैं। आस्था और भक्ति की समन्वित पीठिका पर सिरजी गई उनकी सर्जना बाल सौन्दर्य की उदात्तता और गरिमा का ललित और मनभावन बोध कराती है।**

राम की बाल छवि का रूपांकन करते हुए तुलसी कहते हैं कि बालक राम का श्याम शरीर मयूरकंठ की कान्ति के समान प्रकाशमान है जिस पर बालकोचित अनेक आभूषण अत्यंत शोभित होते हैं। उनके बाल अत्यंत घुंघराले हैं। भृकुटि पर ललित लटकन अत्यन्त मनोहर है। उनके नेत्र नीलोत्पल की भांति मन-भावन और चित्ताकर्षक हैं। उनके नयन कमलों में अंजन लगा है। उनके अरुणवर्णी अधर, हाथ और चरण कुछ ऐसे शोभा प्रस्तारित करते हैं मानों श्रृंगार सरोवर में विकासमान स्वर्ण कमल हों। उनके मनभावन मुख कमल पर काजल की बिन्दी अत्यन्त मनोहर लगती है। निकष रूप में तुलसी ने गीतावली में बाल सौन्दर्य के उत्कृष्ट, उदात्त और सात्विक रूपांकन का मनभावन बोध कराया है। इसमें ऐसे अनेक चित्र उपलब्ध होते हैं जो बालक राम के रूपानुभावन की सम्यक् अभिव्यक्ति के साथ तुलसी की अभिव्यक्ति चारुता का भी बोध कराने में पूर्णतः समर्थ हैं। यथा प्रस्तुत हैं गीतावली में अभिव्यंजित कतिपय बाल सौन्दर्योद्भावक चित्र-

१. केकि कंठ दुति स्याम बरन बपु, बाल विभूषन बिरचि बनाए।
अलकैं कुटिल, ललित लटकन भ्रू, नील नलिन दोउ नयन सुहाए।।[२२५]

२. रंजित-अंजन कंज-बिलोचन। भ्राजत भाल तिलक गोरोचन।।
लस मसिबिंदु बदन-बिधु नीको। चितवत चित चकोर तुलसी को।।[२२६]

३. अरुन चरन अंकुस-धुन-कंज कुलिस-चिन्ह रुचिर,
भ्राजत अति नूपुर बर मधुर मुखर कारी।
किंकिनी विचित्र जाल, कंबुकंठ ललित माल,
उर बिसाल केहरि-नख, कंकन करधारी।।

चारु चिबुक नासिका कपोल, भाल तिलक भृकुटि,
श्रवन अधर सुंदर, द्विज-छवि अनूप न्यारी।
मनहुँ अरुन कंज-कोस मंजुल जुगपाँति प्रसव
कुंदकली जुगल जुगल परम सुभ्रवारी।।
चिक्कन चिकुरावली मनो षडंघ्रि-मंडली;
बनी बिसेषि गुंजत जनु बालक किलकारी।
इकटक प्रतिबिंब निरखि पुलकत हरि-हरषि-हरषि
लै उछंग जननी रसभंग जिय बिचारी।।[२२७]

४. कटि किंकिनी, पैजनी पायनि बाजति रुनझुन मधुर रेंगाये।
पहुँची करनि, कंठ कठुला बन्यो केहरि नख मनि-जरित जराये।।
पीत पुनीत बिचित्र झंगुलिया, सोहति स्याम सरीर सोहाये।
दँतियाँ द्वै-द्वै मनोहर मुख छबि, अरुन अधर चित लेत चोराये।।
चिबुक कपोल नासिका सुन्दर, भाल तिलक मसिबिंदु बनाये।
राजत नयन मंजु अंजन जुत खंजन कंज मीन मद नाये।।
लटकन चारु भ्रुकुटिया टेढ़ी, मुढ़ी सुभग सुदेस सुभाये।
किलक-किलक नाचत चुटकी सुनि उरपति जननि पानि छुटकाये।।[२२८]

कुछ चित्र अत्यन्त ही ललित और सुषमा युक्त हैं। तुलसी ने गीतावली में सर्वत्र माधुर्य युक्त शब्दावली के चयन से बाल सौन्दर्याभिव्यक्ति में अद्भुत चारुता और मनोहरता का अनूठा लालित्य निवेशित किया है। निम्नवत प्रस्तुत दो चित्र बालक राम की अनूठी रूप-सुषमा के परिचायक हैं-

(क) छोटी-छोटी गोड़ियाँ, अँगुरियाँ छबीलीं छोटी,
नख-जोति मोती मानों कमल-दलनि पर।
ललित आँगन खेलैं, ठुमुक-ठुमुक चलैं,
झुँझनु-झुँझनु पाँय पैजनी मृदु मुखर।।
किंकिनी कलित कटि हाटक जटित मनि,
मंजु कर-कंजनि पहुँचियाँ रुचिरतर।
पियरी झीनी झँगुली साँवरे सरीर खुली,
बालक धमिनि ओढ़ी मानो बारे बारिधर।।
उर बघनखा, कंठ कठुला, झँडूले केस
मेढ़ी लटकन मसिबिंदु मुनि-मन-हर।
अंजन-रंजित नैन, चित चोरै चितवनि,
मुख-सोभा पर वारौं अमित असम सर।।[२२९]

(ख) सादर सुमुखि बिलोकि राम-सिसुरूप, अनूप भूप लिये कनियाँ।
सुंदर स्याम सरोज बरन तनु, नखसिख सुभग सकल सुखदनियाँ।।
अरुन चरन नख जोति जगमगति, रुनझुनु करति पाँय पैंजनियाँ।।
कनक-रतन-मनिजटित रटति कटि किंकिनि कलित पीतपट-तनियाँ।।
पहुँची करनि, पदिक हरि नख उर, कठुला कंठ मंजु गजमनियाँ।
रूचिर चिबुक रद, अधर मनोहर, ललित नासिका लसति नथुनियाँ।।
बिकट भ्रुकुटि, सुखमानिधि आनन, कल कपोल, काननि नगफनियाँ।
भाल तिलक मसि बिन्दु बिराजत, सोहत सीस लाल चौतनियाँ।।[२३०]

राम की समेकित अनूप शोभा का चित्र तुलसी ने निम्नवत् संजोया है-

सोहत सहज सुहाये नैन।
खंजन मीन कमल सकुचत तब जब उपमा चाहत कवि दैन।।
सुंदर सब अंगनि सिसु-भूषन, राजत जनु सोभा आये लैन।
बड़ो लाभ, लालची लोभबस रहि गयो लखित सुखमा बहु मैन।।
भोर भूप लिये गोद मोद भरे, निरखत बदन, सुनत कल बैन।
बालक रूप अनूप राम-छबि निवसति तुल सिदास-उर ऐन।।[२३१]

तुलसी ने चारों भाइयों के रूप सौन्दर्य का वर्णन एक साथ प्रस्तुत कर अभिव्यक्ति की नूतन प्रणाली निर्दिष्ट की है। राम, लक्ष्मण, भरत तथा शुत्रघ्न सभी का सौन्दर्य मनभावन और सराहने योग्य है। सभी कुमार, रूप, वंश, शील और आयु से सबके मन को अनायास ही मुग्ध करने वाले हैं। आँगन में खेलते हुए चारों भाइयों के रूप सौन्दर्य को तुलसी ने निम्नवत गीतावली में संजोया है-

१. छँगन मँगन अँगना खेलत चारु चारयो भाई।
सानुज भरत लाल लषन राम लोने लोने
लरिका लखि मुदित भानु समुदाई।।
बाल बसन भूषन धरे, नख सिख छबि छाई
नील पीत मनसिज-सरसिज मंजुल
मालनि मानो है देहनितें दुति पाई।।[२३२]

२. आँगन खेलत आनँदकंद। रघुकुल-कुमुद-सुखद चारु चंद।।
सानुज भरत लषन सँग सोहैं। सिसु-भूषन भूषित मन मोहैं।।
तन दुति मोरचंद जिमि झलकैं। मनहुँ उमगि अँग-अँग छबि छलकैं।।
कटि किंकिनि पग पैजनि बाजैं। पंकज पानि पहुँचिआँ राजैं।।
कठुला कंठ बघनखा नीके। नयन-सरोज-मयन-सरसी के।।
लटकन लसत ललाट लटूरीं। दमकत द्वै-द्वै दँतुरिया रूरीं।।

मुनि मन हरत मंजु मसि बुंदा। ललित बदन बलि बाल मुकुंदा।।
कुलही चित्र विचित्र झँगूली। निरखत मातु मुदित मन फूलीं।।
गहि मनिखंभ डिंभ डगि डोलत । कल बल बचन तोतरे बोलत।।[२३३]

३. जैसे राम ललित तैसे लोने लषन लालु।
तैसेई भरत सील-सुखमा-सनेह-निधि, तैसेई सुभग सँग सत्रुसालु।।
धरे-धनु सर कर, कसे कटि तरकसी, पीरे पट ओढ़े चले चारु चालु।।
अंग-अंग भूषन जरायके जगमगत, हरत जनके जीको तिमिर जालु।।
खेलत चौहट घाट बीथी बाटिकनि प्रभु सिव सुप्रेम-मानस-मरालु।
सोभा-दान दैं दै सनमानत जाचक जन करत लोक-लोचन निहालु।।[२३४]

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्टतः ध्वनित होता है कि चारों भाइयों के रूप-सौन्दर्य की उद्‌भावना में भी तुलसी की दृष्टि सर्वथा राम पर ही प्रमुखता से केन्द्रित रही है। वे बार-बार राम का रूप वर्णन करके भी नहीं अघाते। कहीं न कहीं उन्हें अधूरेपन का भाव प्रत्यक्ष होता है और वे पुनः उनकी रूप चर्चा के बहाने बाल सौन्दर्य के सुललित अंकन में तल्लीन हो जाते हैं। बाल सौन्दर्य के मधुरातिमधुर भव्य चित्र जहाँ राम के प्रति उनकी आस्था को प्रकाशित करते हैं, वहीं दूसरी ओर उनके काव्य कौशल की सार्थकता भी प्रदर्शित करते हैं। दृष्टव्य हैं दो मन-भावन चित्र जिसमें तुलसी ने राम की रूप माधुरी का ललितांकन किया है-

१. ललित-ललित लघु-लघु धनुसर कर,
तैसी तरकसी कटिं कैसे, पट पियरे।
ललित पनहीं पाँय पैंजनी-किंकिनि-धुनि,
सुनि सुख लहै मनु, रहै नित नियरे।।
पहुँची अंगद चारु, हृदय पदिक हारु,
कुंडल-तिलक-छबि गड़ी कबि जियरे।
सिरसि टिपारो लाल, नीरज-नयन बिसाल,
सुंदर बदन, ठाढ़े सुरतरु सियरे।।[२३५]

२. छोटिए धनुहियाँ, पनहियाँ पगनि छोटी,
छोटिए कछौटी कटि, छोटिऐ तरकसी।
लसत झँगूली झीनी, दामिनि की छबि छीनी,
सुंदर बदन, सिर पगिया जरकसी।।
बय अनुहरत बिभूषन बिचित्र अंग,
जोहे जिय आवति सनेह की सरक सी।
मूरति की सूरति कही न परै तुलसी पै,

जानै सोई जाके उर कसकै करक सी।।[२३६]

निकष रूप में अवधेय है कि तुलसी साहित्य में बाल सौन्दर्य का सुललित रूपायन मिलता है। बालक राम के अनूप सौन्दर्यांकन के बहाने तुलसी ने बाल सौन्दर्य की उत्कृष्ट और उदात्त अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है। जहाँ तक अन्य पात्रों यथा भरत लक्ष्मण और शत्रुघ्न आदि की रूप-सुषमा का प्रश्न है वहाँ यह ध्यातव्य है कि तुलसी की दृष्टि केवल राम के ललित रूपायन पर थी इसलिए अन्य पात्रों के बाह्य सौन्दर्य को तुलसी ने संकेतित भर किया है। बाल सौन्दर्य की सर्वाधिक उत्कृष्ट और उदात्त बाह्य रूपाभिव्यक्ति गीतावली में तुलसी ने नियोजित की है। मानस में कथा विस्तार और अन्य कृतियों में अत्यन्त लघु कलेवर होने के कारण वे बाल-सौन्दर्य की पूर्णाभिव्यक्ति प्रस्तुत नहीं कर सके। जिसकी सम्पूर्ति गीतावली में पूरी गरिमा के साथ दृष्टिगत होती है।

आंतरिक सुषमा-

किसी भी चरित्र का आंतरिक सौन्दर्य उसमें अंतर्निहित गुणों के न्यूनाधिक्य पर निर्भर करता है। यद्यपि गुण भी जन्मजात होते हैं किन्तु कई कारकों के अनुकूल-प्रतिकूल प्रभावों के कारण कतिपय गुण दबे रहते हैं और कतिपय गुण सम्यक रूप से पल्लवित हो जाते हैं। संस्कार, परिवेश, पर्यावरण, परम्परा, विवेक और पूर्वाग्रह के कारण गुणों का प्रस्तार न्यूनाधिक परिमाण में हुआ करता है। ये कारक ही मानव के अंतस में रुचि के मानक प्रतिमान स्थापित कर देते हैं जिनके कारण आंतरिक सौन्दर्य की व्याप्ति में अंतर दिखाई देने लगता है।

नारी और पुरुष सौन्दर्य के आंतरिक अनुभावन में उपर्युक्त कारकों का प्रभाव स्पष्टतः देखा जा सकता है किन्तु बाल सौन्दर्य के अनुशीलन में इन कारकों का प्रभाव नगण्य होता है। बाल सौन्दर्य में बालक की बाह्य रूपाकृति ही चित्ताकर्षण और भावन का मूल कारण होती है। क्योंकि आंतरिक सुषमा का प्रस्तार तो दायित्व निर्वहनता और मानवीय मूल्यों के बोध पर निर्भर करता है। शिशु इन मूल्यों और बोधों से सर्वथा अनभिज्ञ होता है। उसके क्रिया कलाप नितान्त निजी और आत्मकेन्द्रित होते हैं। न उसके आचार-व्यवहार में कोई विशेष पूर्वाग्रह होता है और न ही उसके राग-द्वेष में। वह सर्वथा निश्छल और निष्कलुष भाव से अपने सीमित परिवेश और सीमित संसार में निरत रहता है। इसलिए बाल सौन्दर्य की अंतराभा के अनुशीलन हेतु बाल सुलभ चेष्टाओं, चपलताओं और बाल स्वभाव का अवलोकन-आकलन अपेक्षित होता है।

तुलसी साहित्य में बाल सौन्दर्य की आंतरिक सुषमा का प्रस्तार राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, लव-कुश, तथा कृष्ण के माध्यम से नियोजित है। अन्य पात्रों की अपेक्षा तुलसी ने बालक राम और बालकृष्ण की अंतराभा को प्रमुखता से अंकित किया है। आइये उनकी कृतियों में अभिव्यक्त बाल सौन्दर्य की आंतरिक सुषमा का अनुशीलन-आकलन करें।

मानस में बाल सौन्दर्य की आंतरिक सुषमा को तुलसी ने कहीं राम और कहीं चारों भाइयों के

समवेत अंकन के माध्यम से नियोजित किया है। तुलसी ने भोजन करने के समय का चित्र मानस में कुछ इस तरह से संजोया है- राम आँगन में खेल रहे हैं। राजा दशरथ भोजन के लिए राम को आवाज लगाते हैं किन्तु राम अपने बाल-सखाओं को छोड़कर नहीं आते और जब माता कौशल्या बुलाने हेतु जाती हैं तो वे ठुमुक-ठुमुक कर भाग उठते हैं। थोड़ी देर बाद धूल-धूसरित हो राजा के पास आते हैं। दशरथ उन्हें हँसकर गोदी में बिठाल लेते हैं किंतु राम जैसे ही अवसर पाते हैं मुँह में दही भात लिपटाये हुए पुनः किलकारी मारते हुए भाग निकलते हैं। यथा प्रस्तुत हैं दोहा-चौपाई शैली में नियोजित पंक्तियाँ-

भोजन करत बोल जब राजा। नहिं आवत तजि बाल समाजा।
कौसल्या जब बोलन जाई। ठुमुक-ठुमुक प्रभु चलहिं पराई।।
धूसर-धूरि भरें तनु आए। भूपति बिहसि गोद बैठाए।।
भोजन करत चपल चित, इत उत अवसरु पाइ।
भाजि चले किलकत मुख, दधि ओदन लपटाई।।[२३७]

मानस में तुलसी ने बालक राम के अध्ययन, मृगया और प्रातः कालीन आचरण का संकेत भी दिया है। यथा-

(क) गुरुगृहँ गए पढ़न रघुराई। अलप काल बिधा सब आई।।[२३८]
(ख) राम सखा सँग लेहिं बोलाई। बन मृगया नित खेलहिं जाईं।।[२३९]
(ग) अनुज सखा सँग भोजन करहीं। मातु पिता अग्या अनुसरहीं।।[२४०]
(घ) प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा।।[२४१]

चारों भाइयों के गलियों में घूमने का वर्णन भी तुलसी ने निम्नवत प्रस्तुत किया है-

विद्या बिनय निपुन गुन सीला। खेलहिं खेल सकल नृपलीला।
करतल बान धनुष अति सोहा। देखत रूप चराचर मोहा।।
जिन्ह बीथिन्ह बिहरहिं सब भाई। थकित होहिं सब लोग लुगाई।।[२४२]

कवितावली में बाल सौन्दर्यानुभावन के निमित्त तुलसी ने चार छन्दों की नियोजना की है। इन छन्दों में तुलसी ने बाल-स्वभाव और बाल चेष्टाओं का ललित सुरेखांकन अभिव्यक्त किया है। कवितावली में बाल सौन्दर्योद्भावक छन्द निम्नवत हैं-

१. कबहूँ ससि मागत आरि करैं कबहूँ प्रतिबिंब निहारि डरैं।
कबहूँ करताल बजाइकै नाचत मातु सबै मन मोद भरैं।।
कबहूँ रिसिआइ कहैं हठिकै पुनिलेत सोई जेहि लागि अरैं।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मन-मंदिर में बिहरैं।।[२४३]

२. बर दंत की पंगत कुंदकली अधराधर पल्लव खोलन की।
चपला चमकैं घन बीच जगैं छबि मोतिन माल अमोलन की।।

घुँघरारि लटैं लटकैं मुख ऊपर कुंडल लोल कपोलन की।
नेवछावरि प्रान करै तुलसी बलि जाउँ लला इन बोलन की।।[२४४]

३. पंद कंजनि मंजु बनी पनहीं धनुहीं सर पंकज-पानि लिएँ।
लरिका सँग खेलत डोलत हैं सरजू-तट चौहट हाट हिएँ।।[२४५]

४. सरजू बर तीरहिं तीर फिरैं रघुबीर सखा अरु बीर सबै।
धनुहीं कर तीर, निषंग कसें कटि पीत दुकूल नवीन फबै।।[२४६]

बरवै रामायण में बालक राम की आंतरिक सुषमा से संबंधित केवल एक बरवै है जिसमें तुलसी ने बालक राम द्वारा धनुष सीखने के भाव को प्रस्तुत किया है-

सींक धनुष हित सिखन सकुचि प्रभु लीन।
मुदित माँगि इक धनुही नृप हँसि दीन।।[२४७]

दोहावली में बाल सौन्दर्य की आंतरिक सुषमा को अभिव्यक्त करने वाले कतिपय चित्र उपलब्ध होते हैं। जिनमें तुलसी ने बालक राम और उनके भाइयों के क्रीड़ा कौतुक को संकेतित किया है। प्रस्तुत हैं दोहा-शैली में व्यंजित कतिपय चित्र-

(क) बाल बिभूषन बसन बर धूरि धूसरित अंग
बालकेलि रघुबर करत बाल बंधु सब संग।।[२४८]

(ख) अनुदिन अवध बधावने, नित नव मंगल मोद।
मुदित मातु पितु लोग लखि रघुबर बाल बिनोद।।[२४९]

(ग) राज अजिर राजत रुचिर कोसल पालक बाल।
जानु पानि चर चरित बर सगुन सुमंगल माल।।[२५०]

(घ) नाम ललित लीला ललित ललित रूप रघुनाथ।
ललित बसन भूषन ललित ललित अनुज सिसु साथ।।[२५१]

(ट) बालक कोसल पाल के सेवकपाल कृपाल।
तुलसी मन मानस बसत मंगल मंजु मराल।।[२५२]

गीतावली में बाल सौन्दर्य की अंतराभा का प्रसन्न प्रस्तार सुरेखांकित है। इसमें तुलसी ने बालक राम की बाल सुलभ चेष्टाओं, बाल दशाओं और चपलताओं का तथा चारों भाइयों की क्रीड़ा और वीथिका-भ्रमण प्रसंगों को अत्यन्त चारुता और लालित्य के साथ सुनियोजित किया है। गीतावली में बालक राम की शालीनता और उदात्तता की सर्वत्र मुखर अभिव्यक्ति मिलती है। तुलसी साहित्य में अभिव्यंजित सभी बाल पात्र कहीं भी शालीनता का अतिक्रमण करते नहीं दीखते। बाल सौन्दर्य की आंतरिक सुषमा तुलसी की बाल मनोविज्ञान की सुविदितता को भी संकेतित करती है।

एक चित्र में तुलसी अनुभूति देते हैं कि एक दिन राम न तो ठीक से दूध पीते हैं ओर न ही किलकारी भर रहे हैं, बस केवल रोये जा रहे हैं। माता कौशल्या समझती हैं कि शायद किसी दुष्टा

स्त्री की नजर लग गयी है। वे कुलगुरु वशिष्ठ जी को नृसिंह मंत्रोच्चारणार्थ बुलाती हैं। मुनिवर जैसे ही मन्त्रोच्चारण करके राम के मस्तक पर हाथ रखते हैं। वैसे ही वे किलक उठते हैं। तुलसी ने इस प्रसंग को निम्नवत प्रत्यक्ष किया है-

''आजु अनरसे हैं भोर के, पय पियत न नीके।
रहत न बैठे, ठाढ़े, पालने झुलावत हू, रोवत राम मेरो, सो सोच सबही के।।
देव, पितर, ग्रह पूजिये तुला तौलिये घी के।
तदपि कबहुँ कबहुँक सखी ऐसेहि, अरत जब परत दृष्टि दुष्ट तीके।।
बेगि बोलि कुलगुरु छुऔ माथे हाथ अमी के।
सुनत आई ऋषि कुस हरे नरसिंह मंत्र पढ़े, जो सुमिरत भय नीके।।''[२५३]

तथा- **''माथे हाथ ऋषि जब दियो राम किलकन लागे।''[२५४]**

चारों भाइयों के ठुमक-ठुमक कर चरण रखने, नाचने, लड़खड़ाने, दौड़ने, मिलने, ढूँढने, प्रसन्न होने, किलकने तथा देखने की क्रियाओं को तुलसी ने निम्नवत संजोया है-

ठुमक-ठुमुक पग धरनि, नटनि, लरखरनि सुहाई।
भजनि, मिलनि, रूठनि, तूठनि, किलकनि, अवलोकनि, बोलनि बरनि न जाई।।[२५५]

कौशल्या राम की अंगुली पकड़कर चलना सिखा रही हैं। तुलसी इसकी अभिव्यक्ति इस प्रकार करते हैं-

ललित सुतहि लालति सचु पाये।
कौसल्या कल कनक अजिर महँ सिखवति चलन अँगुरियाँ लाये।।[२५६]

बालक राम की तोतली वाणी, हँसी और किलकारी सहज रूप में चित्ताकर्षी ओर वीतरागी मुनियों के मन को भी मोहने में समर्थ है। तुलसी ने उपर्युक्त तथ्य की व्यंजना निम्न पंक्तियाँ के माध यम से निरूपित की है-

मनमोहनी तोतरी बोलनि, मुनि-मन-हरनि हँसति किलकनियाँ।
बाल सुभाय बिलोल बिलोचन, चोरति चितहि चारु चितवनियाँ।।
सुनि कुलवधू झरोखनि झाँकति रामचन्द्र-छबि चंदबदनियाँ।
तुलसिदास प्रभु देखि मगन भई प्रेम बिबस कछु सुधि न अपनियाँ।।[२५७]

भरत अपने भाइयों सहित विनती करते हैं कि सभी साथी आ गये हैं इसलिए अब खेलने के लिए तैयार हो जाइये। यह सुनकर, राम बाल केसरी, की भाँति उठते हैं। हाथों में धनुष-बाण लिए वे अत्यन्त शोभायमान प्रतीत होते हैं। उनकी छवि को देखकर माताओं के मन में यह लालसा जाग्रत होती है कि अब राम घर में ही खेलें। तुलसी ने इन भावों को निम्नवत निरूपित किया है-

खेलन चलिए आनंद कंद।
सखा प्रिय नृपद्वार ठाढ़े बिपुल बालक-बृंद।।

तृषित तुम्हरे दरस कारन चतुर चातक दास।
बपुस बारिद बरषि छबि-जल हरहु लोचन-प्यास।।
बंधु बचन बिनीत सुनि उठे मनहुँ केहरि-बाल।
ललित लघु सर चाप कर उर-नयन बाहु बिसाल।।
चलत पद प्रतिबिम्ब राजत अजिर सुखमा-पुंज।
प्रेम सब प्रति चरन महि मानो देति आसन कंज।।
निरखि परम बिचित्र सोभा, चकित चितवहिं मात।
हरष-बिबस न जात कहि, निज भवन बिहरहु तात।।[२५८]

अवध की वीथिकाओं में भ्रमण का मनोहर और भव्य चित्र तुलसी ने निम्नवत निरूपित किया है-

"बिहरत अवध-बीथिन राम।
संग अनुज अनेक सिसु, नव-नील-नीरद स्याम।।
तरुन अरुन-सरोज-पद बनी कनकमय पहत्रान।
पीत-पट कटि तून बर, कर ललित लघु धनु-बान।।"[२५६]

गीतावली में तुलसी ने चौगान क्रीड़ा का अत्यन्त सुन्दर चित्र भी नियोजित किया है। दृष्टव्य हैं पंक्तियाँ-

राम-लषन इक ओर, भरत-रिपुदवन लाल इक ओर भये।
सरजुतीर सम सुखद भूमि-थल, गनि-गनि गोइयाँ बाँटि लये।।
कंदक-केलि-कुसल हय चढ़ि-चढ़ि, मंन कसि-कसि ठोंकि-ठोंकि खये।
कर कमलनि बिचित्र चौगानें, खेलन लगे खेल रिझये।।
- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -
एक लै बढ़त एक फेरत, सब प्रेम-प्रमोद-बिनोद चये।
एक कहत भइ हार रामजू की, एक कहत भइया भरत जये।।
- -
हारे हरष होत हिय भरतहि जिते सकुच सिर नयन नये।
तुलसी सुमिर सुझाव-सील सुकृती तेइ जे एहि रंग रये।।[२५०]

तुलसी ने बाल राम की आन्तरिक सुषमा के वर्णन में भी सर्वथा उदात्तता और भव्यता का ध्यान रखा जिसके कारण उनकी अभिव्यक्ति में सात्विकता का नूतन आभास मिलता है। अनुशीलन से यह भी स्पष्ट होता है कि तुलसी की वृत्ति समेकित सौन्दर्यांकन में अधिक रमती है। तुलसी ने अपने पदों में बाह्य और आंतरिक सौन्दर्य के यथोचित समन्वय से राम की समेकित रूप छवि को प्रत्यक्ष करने का विधान अत्यंत लालित्य पूर्ण ढंग से समायोजित किया है जो उनकी आभिव्यक्ति सुषमा और गरिमा का प्रबल प्रमाण भी देता है। प्रस्तुत हैं दो चित्र जिनमें बाल सौन्दर्य को समेकित रूप

से उद्घाटित किया गया है-प्रथम चित्र में आँगन में घुटनों के बल दौड़ते-फिरते बालक राम के सौन्दर्य का लालित्यपूर्ण अंकन निम्नवत् किया गया है-

आंगन फिरत घुटरुवनि धाए।
नील-जलद तनु-स्याम राम-सिसु जननि निरखि मुख निकट बुलाए।।
बंधक सुमन अरुन पद-पंकज, अंकुस प्रमुख चिन्ह बनि आए।
नूपुर जनु मुनिबर-कलहंसनि रचे नीड़ दै बाँह बसाए।।
कटि मेखल, बर हार ग्रीव-दर, रुचिर बाँह भूषन पहिराए।
उर श्रीवत्स मनोहर हरिनख हेम मध्य मनिगन बहु लाए।।
सुभग चिबुक, द्विज, अधर, नासिका, श्रवन कपोल मोहि अति भाए।
भ्रू सुंदर करुनारस-पूरन, लोचन मनहु जुगल जलजाए।।
भाल बिसाल ललित लटकन बर, बाल दसा के चिकुर सोहाए।
मनु दोउ गुर सनि कुज आगे करि ससिहि मिलन तम के गन आए।।[२६१]

दूसरे चित्र में तुलसी ने राम की बाल छवि के सौन्दर्य को अतिमानवीयता से अनुरंजित कर सम्पूर्णता से व्यक्त करने का प्रयास निम्नवत किया है-

रघुबर बाल छबि कहौं बरनि।
सकल सुख की सींव, कोटि-मनोज-सोभा हरनि।।
बसी मानहु चरन-कमलनि, अरुनता तजि तरनि।
रुचिर नूपुर किंकिनी मन हरति रुनझुनु करनि।।
मंजु मेचक मृदुल तन अनुहरति भूषन भरनि।
जनु सुभग सिंगार सिसु तरु फर्यो है, अदभुत फरनि।।
भुजनि भुजग, सरोज नयननि, बदल बिधु जित्यो लरनि।
रहे कुहरनि सलिल, नभ, उपमा अपर दुरि डरनि।।
लसत कर-प्रतिबिम्ब मनि आँगन घुटरुवनि चरनि।
जनु जलज-संपुट सुछबि भरि-भरि धरति उर धरनि।।
पुन्यफल अनुभवति सुतहि बिलोकि दसरथ-धरनि।
बसति तुलसी-हृदय प्रभु किलकनि ललित लरखरनि।।[२२६२]

इस प्रकार निकष रूप में कह सकते हैं कि तुलसी को राम का वैभव और ऐश्वर्यमंडित रूप अत्यंत प्रिय था। उनके राम बाल रूप में अत्यंत ही मनमोहक और चित्ताकर्षक हैं। उनके क्रिया-कलापों और चेष्टाओं से उनका धीर-प्रशान्त रूप प्रत्यक्ष होता है। उनकी उदात्त बाल छवि युवा राम के रूप सौन्दर्य और आंतरिक आभा को बीज रूप में संकेतित करने में समर्थ है।

कृष्ण गीतावली में तुलसी ने बालकृष्ण के माध्यम से बाल सौंदर्य की आंतरिक सुषमा का मनोहर

और मधुर निरूपण किया है। बाल कृष्ण की विविध लीलाओं और बाल सुलभ क्रिया कलापों का सुललित अंकन तुलसी के बाल सौन्दर्य की आंतरिकता को सर्वाधिक मुखरता से संप्रेषित करता है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि कृष्ण के आंगिक निरूपण में उनका बिल्कुल नहीं रमा। हाँ, लीलाओं के चित्रण में प्रसंगानुसार कहीं-कहीं रूप वर्णन स्वाभाविक रूप से अवश्य समाविष्ट हो गया है।

कृष्ण गीतावली में तुलसी ने ६१ पदों में से २० पदों में बाल कृष्ण की लीलाओं का सुमधुर और रसमय अंकन सुनियोजित किया है। यह कहना कदापि असंगत न होगा कि बाल मन की आंतरिकता का जो प्रस्तार वे बालक राम के चित्रण में न कर सके थे, वह प्रस्तार उन्होंने बाल कृष्ण के माध्यम से कृष्णगीतावली में साकार किया है।

इस कृति के दूसरे पद में तुलसी ने बाल मन का अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन किया है। कृष्ण माता यशोदा से मिस्सी रोटी, घी लगाकर माँगते हैं और साथ ही कहते हैं कि पूरी रोटी मुझे ही देना, मैं बल्दाऊ भैया को बिल्कुल नहीं दूँगा और वे रोटी लेकर अन्य बालकों को दिखा-दिखा कर खाने लगते हैं। तुलसी ने इस पद में बालक के स्वभाव को यथातथ्य अंकित कर अपनी अभिव्यक्ति की सार्थकता का सक्षम प्रमाण दिया है। तुलसी कहते हैं-

''छोटी मोटी मीसी रोटी चिकनी चुपरि कै तू,
दै री, मैया! 'लै कन्हैया!' 'सो कब? 'अबहिं तात'।
'सिगरियै हौंहीं खैहौं बलदाऊ को न देहौं,
'सो क्यों?' 'भटू, तेरो कहा' कहि इत उत जात।।
बाल बोलि डहकि बिरावत, चरित लखि,
गोपि गन महरि मुदित पुलकित गात।
नूपुर की धुनि किंकिनि को कल रव सुनि
कूदि-कूदि किलकि-किलकि ठाढ़े-ठाढ़े खात।।
तनियाँ ललित कटि, बिचित्र टेपारो सीस,
मुनि मन हरत बचन कहै तोतरात।
तुलसी निरखि हरषत बरषत फूल
भूरिभागी ब्रजबासी बिबुध सिद्ध सिहात।।[२६३]

इसके आगे के पदों में तुलसी ने ग्वालिनी, बाल कृष्ण और यशोदा के पारस्परिक संवादों के माध्यम से बाल मन की आंतरिकता को सजीवता से साकार किया है। चाहे ग्वालिनी का उलाहना हो, चाहे कृष्ण की सफाई, चाहे यशोदा का पुत्र-पक्षपात हो, सभी के कथनों से बाल मन की अंतराभा सम्पूर्णता से मुखरित होती दिखाई देती है जो तुलसी की आभिव्यक्ति कुशलता को पूरे लालित्य से उद्घाटित करती है।

ग्वालिनी के बर्तन तोड़ने को तुलसी ने निम्नवत नियोजित किया है-

तोहि स्याम की सपथ जसोदा! आइ देखु गृह मेरें।
जैसी हाल करी यहि ढोटा छोटे निपट अनेरे।।
गोरस हानि सहौं, न कहौं कछु, यहि ब्रजवास बसेरें।
दिन प्रति भाजन कौन बेसा है? घर निधि काहू केरें।।
किएँ निहोरो हँसत, खिझे ते डाँटत नयन तरेरें।
अबहीं तें ये सिखे कहाँ धौ चरित ललित सुत तेरें।।
बैठो सकुचि साधु भयो चाहत मातु बदन तन हेरें।।
तुलसिदास प्रभु कहौं ते बातैं जे कहि भजैं सबेरें।।[२६४]

कृष्ण अपनी सफाई निम्नवत् प्रस्तुत करते हैं-

मो कहँ झूठेहुँ दोष लगावहिं।
मैया इन्हहिं बानि पर धर की, नाना जुगुति बनावाहिं।।
इन्ह के लिएँ खेलिबो छाँडयो, तऊ न उबरन पावहिं।
भाजन फोरि, बोरि कर गोरस, देन उरहनो आवहिं।।
कबहुँक बाल रोवाई पानि गहि, निस करि उठि-उठि धावहि।
करहिं आपु, सिर धरहिं आन के, बचन बिरंचि हरावहिं।।
मेरी टेव बूझि हलधर सों, संतत संग खेलावहिं।।
जे अन्याउ करहिं काहू को, ते, सिसु मोहि न भावहिं।
सुनि सुनि बचन चातुरी ग्वालिनि, हँसि-हँसि बदन दुरावहिं।
बाल गोपाल केलि कल कीरति तुलसिदास मुनि गावहिं।।[२६५]

माता यशोदा सहजता से कृष्ण की बात पर विश्वास कर लेती हैं। वे अत्यन्त कोमल भाव से कृष्ण को किसी और के घर जाने से मना करती हैं किन्तु भला कृष्ण कहाँ मानने वाले, फलतः परेशान होकर ग्वालिन फिर उलाहना देने आती है। कृष्ण फिर अपनी सफाई बड़ी होशियारी से देते हैं। तुलसी ने बालकृष्ण की चपलता को अत्यन्त स्वाभाविकता से अंकित किया है जो उनके बाल सौन्दर्य की आंतरिकता के स्वाभाविक लालित्य को अत्यन्त कलात्मकता से प्रकट करता है। यथा-

अबहिं उरहनो दै गई, बहुरी फिरि आई।
सुनु मैया! तेरी सौं करौं, याको टेव लरन की, सकुच बेंचि सी खाई।।
या व्रज में लरिका घने, हौं ही अन्याई।
मुँह लाएँ मूँडहिं चढ़ी, अंतुहुँ अहिरिनि, तू सुधी कर पाई।।
सुनि सुत की अति चातुरी जसुमति मुसुकाई।
तुलसिदास ग्वालिनि ठगी, आयो न उतरु कछु कान्ह ठगौरी लाई।।[२६६]

बालकृष्ण के प्रत्युत्तर बाल मन की चंचलता और आंतरिकता को सम्पूर्णता से अभिव्यक्ति करने

में समर्थ हैं। तुलसी ने बाल मन के चातुर्य का निरूपण निम्नवत योजित किया है-

भूलि न जान हौं काहू के काऊ।
साखि सखा सब सुबल, सुदामा, देखि धौं बूझि, बोलि बलदाऊ।।
यह तो मोहि खिझाई कोटि बिधि उलटि बिबादन आइ अगाऊ।
याहि कहा भैया मुँह लावति गनति कि ए लंगरि झगराऊ।।
कहत परसपर बचन जसोमति, लखि नहिं सकति कपट सतिभाऊ।
तुलसिदास ग्वालिनि अति नागरि, नट नागर मनि मंद ललाऊ।।[२६७]

बार-बार शिकायत और उलाहनों से परेशान यशोदा एक तरकीब निकालती हैं। वे बाल कृष्ण को समझाती हैं कि तू अपने इस लड़कपन को छोड़ दे नहीं तो तुम्हारी सगाई नहीं हो सकेगी क्योंकि तेरे बाबा ने तेरी बात एक जगह चला रखी है। चोरी की बात सुनकर तेरे सास-ससुर तैयार नहीं होंगे और तेरी दुल्हन भी तेरी हँसी बनाएगी इसलिए इन फालतू बातों को छोड़ दें और चल तुझे उबटन आदि लगाकर तुझे सुन्दर बना दूँ जिससे देखने वाले तुझे पसन्द कर लें। बाल कृष्ण की समझ में बात आ जाती है और वे नहा धोकर चोटी गुंथवाकर तैयार हो जाते हैं किन्तु किसी को न आते देखकर माता से पूंछते हैं कि तूने कहा था कि कल देखने वाले आएंगे पर अभी तक कल नहीं आया। यशोदा कहती हैं जब तू सोने के बाद जागेगा तब कल आएगा। यह सुनकर कृष्ण अपनी आँखें बन्द कर सोने का उपक्रम करते हैं किन्तु दूसरी ही क्षण आँखें खोलकर कहते हैं मैया, सवेरा हो गया, मुझे झंगुली पहनने के लिए दे दो क्योंकि मुझे देखने वाले आते ही होंगे। यशोदा पुत्र के चातुर्य पर मुग्ध हो उसकी आतुरता परखने लगती हैं। माता को देखकर बाल कृष्ण लजा जाते हैं और माता के अंग में छिप जाते हैं। तुलसी ने इस प्रसंग का सुरेखन निम्नवत् किया है-

छाँड़ो मेरे ललन! ललित लरिकाईं।
ऐ हैं सुत! देखुवार कालि तेरे, बबै ब्याह की बात चलाई।।
डरिहैं सास ससुर चोरी सुनि हँसिहैं नइ दुलहिया सुहाई।
उबटौं न्हाहु, गुहौं चुटिया बलि, देखि भलो बर करिहिं बड़ाईं।।
भानु कह्यो करि कहत बोलि दै, भइ बड़ि बार, कालि तौ न आईं।
'जब सोइबो तात' यो 'हाँ' कहि नयन मीचि रहे पौढ़ि कन्हाईं।।
उठि कह्यो, भोर भयो, झँगुली दै मुदित महरि लखि आतुरताई।
बिहँसी ग्वालि जानि तुलसी प्रभु, सकुचि लगे जननी उर धाईं।।[२६८]

इसके अतिरिक्त तुलसी ने उलूखल बन्धन, गोवर्धन लीला तथा छाक लीला के प्रसंगों के माध्यम से भी बाल सौंदर्य की आंतरिक उद्भावना नियोजित की है। यह कहना कदापि असंगत न होगा कि बाल सौन्दर्य की आंतरिक सुषमा के प्रकाशन हेतु उन्होंने बालकृष्ण का आलम्बन ग्रहण किया है क्योंकि राम के माध्यम से वे बाल मन की उन्मुक्तता और चंचलता को उतनी तीव्रता से व्यक्त

नहीं कर सकते थे जितनी तीव्रता से बालकृष्ण के माध्यम से बाल सौन्दर्य की अंतराभा को उन्होंने उद्घाटित करने में सफलता प्राप्त की है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अनन्त सौन्दर्य से युक्त तो एकमात्र परब्रह्म परमात्मा ही हो सकता है जो सत् भी है, चित् भी है और है आनन्दमय ! इसी सौन्दर्य को दिव्यातिदिव्य भव्यतिभव्य और अलौकिक कहा जाता है। इसकी किसी अन्य पदार्थ से उपमा नहीं दी जा सकती क्योंकि यह अनुपमेय है। जब ऐसे सौन्दर्य की प्रतिच्छाया सृष्टि के भौतिक पदार्थों पर पड़ती है तब वे भी उसी प्रकार अनन्त-अनन्त सौन्दर्य से प्रोद्भासित हो उठते हैं। अलौकिक सौन्दर्य असीम होता है जबकि लौकिक सौन्दर्य की अपनी एक निश्चित सीमा होती है। अलौकिक सौन्दर्य अजर और अमर होता है जबकि लौकिक सौन्दर्य अनित्य और क्षण भंगुर होता है। सच्चा सौन्दर्य प्रेरक और अध र्वमुखी होता है और लौकिक प्रेम पतनोन्मुखी। इस प्रकार नैसर्गिक सुषमा और सौन्दर्य भी असीम और शाश्वत नहीं है।

लौकिक अथवा पार्थिव सौन्दर्य के अन्तर्गत मानवीय सौन्दर्य की परिगणना की जाती है। मानवीय सौन्दर्य में नारी सौन्दर्य सर्वोपरि माना जाता है। उसमें सर्वाधिक रूप में आकर्षण की महती शक्ति विद्यमान रहती है। उसके अंग-प्रत्यंगों का सुगठन, सुचिक्कन, स्वस्थ, यौवन की दीप्ति से आभायुक्त और तीक्ष्ण कटाक्ष भला किसे न विमुग्ध कर लेंगे? कवियों ने नारी के वाह्य सौन्दर्य का अतिशयोक्तिपूर्ण सर्वाधिक चित्रण किया है, जो नख-शिख वर्णन की परम्परा में आता है। इसी प्रकार का शिशु-सौन्दर्य भी है। उसकी भोली-भाली चितवन, आकर्षक मुख-चन्द्र, उसके ऊपर इतस्ततः बिखरी कृष्ण कुन्तल केश राशि, धूल-धूसरित अंग और बाल-चापल्य के साथ-साथ सहज और स्वाभाविक चेष्टायें किसका मन न मोह लेंगी? राम और कृष्ण की बाल-छवि का अनूठा वर्णन करके न जाने कितने सहृदय महाकवि की कोटि में पहुंच गये?

वाह्य सौन्दर्य का निःसन्देह अपना विशिष्ट महत्व है किन्तु इसके साथ ही साथ आन्तरिक सौन्दर्य भी कम महत्व का नहीं। प्रकारान्तर से यह कहा जा सकता है कि अन्तः सौन्दर्य की ज्योति से ही वाह्य सौन्दर्य दिव्य, भव्य और आकर्षक हो उठता है।

नारी सौन्दर्य, मानवीय सौन्दर्य के अन्तर्गत सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। उसका वाह्य अत्यन्त आकर्षक होता है। पर, केवल वाह्य सौन्दर्य ही सब कुछ नहीं होता। आभ्यान्तरिक सौन्दर्य के बिना उसका कोई मूल्य नहीं।

तुलसी द्वारा निरूपित नारी-सौन्दर्य उनकी भिन्न-भिन्न कृतियों में यत्र-तत्र-सर्वत्र बिखरा पड़ा है। यद्यपि कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी, मैना, सुनयना, अनुसुइया, मन्दोदरी, जनकपुरी की सखियां और कृष्ण गीतावली की गोपिकायें इसके अन्यतम उदाहरण हैं तथापि राम की ह्लादिनी शक्ति के रूप में सीता उद्भव, स्थिति और लय कारिणी हैं। वे तो साक्षात् जगज्जननी हैं। प्रभु की महामाया हैं। सौन्दर्य और सुषमा की अधिष्ठात्री देवी रति तो उनकी चरण-धूलि के भी बराबर नहीं। जिसके रूप-सौन्दर्य

की प्रशंसा स्वयं राम करें, उसका क्या कहना? वास्तव में वह तो सुन्दरता को भी सुन्दरता प्रदान करने वाली हैं। राम को वह ऐसी प्रतीत होती हैं मानो सुन्दरता रूपी भव्य प्रासाद में दीपक की निष्कम्प लौ प्रज्ज्वलित हो रही हो। कोई भी तो ऐसी वस्तु नहीं जिससे मैं उसकी उपमा दे सकूँ! अर्थात् सीता, सीता के समान ही सुन्दर और अप्रितम हैं।

तुलसी ने अभूतोपमालंकार के द्वारा सीता के अद्भुत सौन्दर्य का निरूपण किया है, वह विश्व-वांग्मय में भी दुर्लभ है। इसीलिये वे बड़े ही सुस्पष्ट शब्दों में कह रहे हैं कि:-

"सिय सोभा नहिं जाइ बखानी। जगदम्बिका रूप गुन खानी।।
उपमा सकल मोहि लघु लागी। प्रकृित द्वारा अंग अनुरागी।।
सिय बरनिउ तेइ उपमा देई। कुकबि कहाय अजस को लेई।।
जौं पटतरिअ तीय सम सीया। जग अस जुबति कौन कमनीया।।
गिरा मुखर तन अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी।।
विष बारुनी बन्धु प्रिय जेही। कहिय रमा सम किमि बैदेही।।
जौं छबि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छप सोई।।
सोभा रजु मन्दरु सिंगारू। मथै पानि पंकज निज भारू।।
एहि विधि उपजै लच्छि जब, सुन्दरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कबि, कहहिं सीय सम तूल।।"[२६६]

निःसन्देह नारी-सौन्दर्य के अन्तर्गत सीता तुलसी की अनूठी और अनुपम सौन्दर्य-सृष्टि है जिसके न केवल दर्शन मात्र से वरन् स्मरण मात्र से ही मनुष्य की सारी ऐहिक वितृष्णायें समाप्त हो जाती हैं। मन वासना-शून्य हो जाता है तथा समस्त सांसारिक वृत्तियां ईश्वरोन्मुखी हो उठती हैं।

जहाँ तक कवि कुल चूड़ामणि राम के अनन्य भक्त गोस्वामी तुलसीदास के साहित्य में सौन्दर्याभिव्यक्ति का प्रश्न है, वहां वे इसके चित्रण में पूर्ण रूपेण सक्षम और निष्णात सिद्ध होते हैं। मानवीय सौन्दर्य के अन्तर्गत उनके श्री राम कोटि-कोटि-कन्दर्प-सौन्दर्य हारी हैं। वे सच्चिदानन्द घन हैं। उनका नवनील नीरद के समान कोमल और कलित गात अद्भुत है। तुलसी जहाँ उनके वीर-वेश पर मुग्ध हैं, वहाँ उनका कैशोर्य भी कम आकर्षक नहीं। बाल-सौन्दर्य का तो कहना ही क्या? वह तो वाणी का विषय हो ही नहीं सकता। सच बात तो यह है कि राम-नाम का पारस-स्पर्श पाकर तुलसी द्वारा वर्णित राम का सामान्य रूप भी असामान्य और असाधारण बनकर अनमोल हो गया। राम स्वयं सौन्दर्य की साक्षात् प्रतिमूर्ति हैं। सृष्टि में उन्हीं से सौन्दर्य रूपाकार ग्रहण कर सुन्दर प्रतीत होता है।

❑❑❑

संदर्भ-सूची

१. तुलसी, गीतावली ७/७

२. तुलसी, गीतावली ७/३ (३,४,५)

३. तुलसी, गीतावली ७/ (२,३,४,५,)

४. तुलसी, गीतावली ७/५/१-६

५. तुलसी, गीतावली ७/६ (३,४,५)

६. तुलसी, गीतावली ७/८

७. तुलसी, गीतावली ७/९ (३,४,५)

८. तुलसी, गीतावली ७/१० (२-४)

९. तुलसी, गीतावली ७/११ (२,३)

१०. तुलसी, गीतावली ७/१७ (२-१५)

११. तुलसी, गीतावली १/९० (२-३)

१२. तुलसी, गीतावली १/१०८ (१-६)
साथ में दृष्टव्य गीतावली १/९७

१३. तुलसी, गीतावली २-१७ (१-२)

१४. तुलसी, गीतावली ३/५ (१,२,३)

१५. तुलसी, गीतावली १/५२ (२,३,४)

१६. तुलसी, गीतावली १/५३ (१,२)

१७. तुलसी, गीतावली १/५४ (१,२)

१८. तुलसी, गीतावली १/५५ (१-३)

१९. तुलसी, गीतावली १/१५ (१-५)

२०. तुलसी, गीतावली १/६० (१-२)

२१. तुलसी, गीतावली १/६२ (१-२,३)

२२. तुलसी, गीतावली १/६३ (२,३)

२३. तुलसी, गीतावली १/६५ (१-४)

२४. तुलसी, गीतावली १/७१ (१,२)

२५. तुलसी, गीतावली १/७३ (२-४)

२६. तुलसी, गीतावली १/७४ (१-२)

२७. तुलसी, गीतावली १/७६

२८. तुलसी, गीतावली १/७७ (१,२)

२९. तुलसी रामचरित मानस १/२०६ (१)

३०. तुलसी रामचरित मानस १/२२०-२२१

३१. तुलसी रामचरित मानस १/२३२-२३३

३२. तुलसी रामचरित मानस १/२४१ (१,२३)

३३. तुलसी रामचरित मानस १/२४१/५

३४. तुलसी रामचरित मानस १/२४२-१/२४३ (१)

३५. तुलसी रामचरित मानस १/३११ (३-१२)

३६. तुलसी रामचरित मानस १/३१६ (१-४)

३७. तुलसी रामचरित मानस १/३२१

३८. तुलसी रामचरित मानस १/३२७ (१-१४)

३९. तुलसी रामचरित मानस १/३५८ (१)

४०. तुलसी रामचरित मानस २/२३९ (५,७,८)

४१. तुलसी रामचरित मानस २/३२४ (३,४)

४२. तुलसी रामचरित मानस ६/७१ (१३-१६)

४३. तुलसी रामचरित मानस ६/१०३ दूसरा छंद

४४. तुलसी, कवितावली १/८

४५. तुलसी, कवितावली १/९

४६. तुलसी, कवितावली १/१२

४७. तुलसी, कवितावली २/१३

४८. तुलसी, कवितावली २/१४

४९. तुलसी, कवितावली २/१५

५०. तुलसी, कवितावली २/१६

५१. तुलसी, कवितावली २/१९

५२. तुलसी, कवितावली २/२१

५३. तुलसी, कवितावली २/२५

५४. तुलसी, **कवितावली** २/२६

५५. तुलसी, **कवितावली** २/२७

५६. तुलसी, **बरवै रामायण** १-१४

५७. तुलसी, **बरवै रामायण** २/२२-२३

५८. तुलसी, **बरवै रामायण** ३/३०

५६. तुलसी, **बरवै रामायण** ४/३४

६०. तुलसी **जानकी मंगल** ३२

६१. तुलसी **जानकी मंगल** ५ वाँ छन्द

६२. तुलसी **जानकी मंगल** ४१-४४ बरवै

६३. तुलसी **जानकी मंगल** ४६-५० बरवै

६४. तुलसी **जानकी मंगल** ५१-५५ बरवै

६५. तुलसी **जानकी मंगल** ६३-६४ बरवै

६६. तुलसी **जानकी मंगल** छन्द संख्या ८

६७. तुलसी **जानकी मंगल** ६५

६८. तुलसी **जानकी मंगल** १३३

६६. तुलसी **जानकी मंगल**, छन्द संख्या १८

७०. तुलसी **पार्वती मंगल** ६७-६८

७१. तुलसी, श्रीकृष्ण **गीतावली** २१ वां पद

७२. तुलसी, श्रीकृष्ण **गीतावली** २ -२(१-४)

७३. तुलसी, श्रीकृष्ण **गीतावली** २३ (२-३-४)

७४. तुलसी **रामचरितमानस** २/४१ (७-८)से २/४२ (१-२)

७५. तुलसी **रामचरितमानस** २/२३१

७६. तुलसी **रामचरितमानस** २/३०६ (३)-२/३०७ (४) तक

७७. तुलसी **रामचरितमानस** ४/७ (१-४)

७८. तुलसी **रामचरितमानस** ४/७ (१०)

७६. तुलसी **रामचरितमानस** ४/८ (७-८)

८०. तुलसी **रामचरितमानस** १/२१८ (३) से १/२१८ तक

८१. तुलसी **रामचरितमानस** १/२२६ (३) से १/२२७ (२)

८२. तुलसी **रामचरितमानस** १/२३० (५)

८३. तुलसी **रामचरितमानस** १/२३०

८४. तुलसी **रामचरितमानस** १/२३१ (१)

८५. तुलसी **रामचरितमानस** १/२३१

८६. तुलसी **रामचरितमानस** २/६१ (२) से२/६३

८७. तुलसी **रामचरितमानस** ३/१ (३-४)

८८. तुलसी **रामचरितमानस** ३/१७ (११)

८६. तुलसी **रामचरितमानस** १/५३

६०. तुलसी **रामचरितमानस** १/२७६ (१-६)

६१. तुलसी **रामचरितमानस** ४/७ (११-१२)

६२. तुलसी **रामचरितमानस** ६/१३ (क-ख)

६३. तुलसी **रामचरितमानस** ६/५ (२-३)

६४. तुलसी **रामचरितमानस** ६/११ (१)

६५. तुलसी **रामचरितमानस** ५/४६ ख

६६. तुलसी **रामचरितमानस** ७-२० (८) से७/२२

६७. तुलसी **गीतावली** २/७१

६८. तुलसी **गीतावली** २/७२

६६. तुलसी **गीतावली** २/७४

१००. तुलसी **गीतावली** २/७५

१०१. तुलसी **गीतावली** २/७६ (४)

१०२. तुलसी **गीतावली** २/७६

१०३. तुलसी **गीतावली** ६/५ (१-४)

१०४. तुलसी **गीतावली** ६/६ (१-४)

१०५. तुलसी **गीतावली** ६/७ (१-२)

१०६. तुलसी **गीतावली** ६/१५ (१)

१०७. तुलसी **गीतावली** ६/२१ (१-३)

१०८. तुलसी **गीतावली** ७/२४

१०६. तुलसी **गीतावली** ७/३८(२-७)

११०. तुलसी, **कवितावली** २/१

१११. तुलसी, **कवितावली** २/२

११२. तुलसी, कवितावली २/११
११३. तुलसी, कवितावली २/१२
११४. तुलसी, कवितावली ६/५२
११५. तुलसी, कवितावली ६/५३
११६. तुलसी, कवितावली ५/३२
११७. तुलसी, कवितावली ७/१
११८. तुलसी, कवितावली ७/३
११९. तुलसी, कवितावली ७/४
१२०. तुलसी, कवितावली ७/५
१२१. तुलसी, कवितावली ७/६
१२२. तुलसी, बरवै रामायण १/७
१२३. तुलसी, बरवै रामायण २/२१
१२४. तुलसी, बरवै रामायण ३/३३
१२५. तुलसी, जानकी मंगल ३६
१२६. तुलसी, जानकी मंगल ३८
१२७. तुलसी, जानकी मंगल ४७-४८
१२८. तुलसी, जानकी मंगल ५५-५६
१२९. तुलसी, जानकी मंगल छंद १२
१३०. तुलसी, जानकी मंगल १०३-१०४
१३१. तुलसी, जानकी मंगल १७७-१७८
१३२. डॉ० रामसजन पाण्डेय,
विद्यापति का सौन्दर्यबोध पृष्ठ ६०
१३३. तुलसी, मानस १/२३१ (१,२)
१३४. तुलसी, मानस १/२३७ (१)
१३५. तुलसी, मानस १/२३७ (७)-१/२३८ (३)
१३६. तुलसी, मानस १/२४७ (१-८)-१/२४७
१३७. तुलसी, मानस १/२२४८ (२,३,४)
१३८. तुलसी, मानस १/२४८ (६)
१३९. तुलसी, मानस १/२५८
१४०. तुलसी, मानस १/२६३-१/२६४ (१-८)
१४१. तुलसी, मानस १/३२२-१/३२३ (१,२)
१४२. तुलसी, मानस १/२३० (६,७,८)
१४३. तुलसी, मानस ३/२२ (९)
१४४. तुलसी, मानस ३/३०/९-१४
१४५. तुलसी, बरवैरामायण १/९-१३
१४६. तुलसी, बरवैरामायण ३/२९
१४७. तुलसी, बरवैरामायण ३/३१
१४८. तुलसी जानकी मंगल ८१-८२
१४९. तुलसी जानकी मंगल १०७/१०८/१०९
१५०. तुलसी जानकी मंगल १४१
१५१. तुलसी गीतावली १/६६ (१)
१५२. तुलसी गीतावली १/१०३ (२)
१५३. तुलसी गीतावली २/१५ (३)
१५४. तुलसी गीतावली २/१६ (२)
१५५. तुलसी गीतावली २/२० (३)
१५६. तुलसी गीतावली २/२१ (१)
१५७. तुलसी गीतावली २/२२ (१)
१५८. तुलसी गीतावली २/२६ (२)
१५९. तुलसी गीतावली २/३० (२)
१६०. तुलसी गीतावली २/३४ (१)
१६१. तुलसी मानस २/५७
१६२. तुलसी मानस १/५९ (१-२)
१६३. तुलसी मानस १/६१ (१-२)
१६४. तुलसी मानस २/६२
१६५. तुलसी मानस २/६३ (५)
१६६. तुलसी मानस २/६४ (५-८)
१६७. तुलसी मानस २/६४
१६८. तुलसी मानस २/६५
१६९. तुलसी मानस २/६६ (४)
१७०. तुलसी मानस २/६६ (५-७)
१७१. तुलसी मानस २/६६
१७२. तुलसी मानस २/६७ (१-६)

ठीक ऐसा ही विवरण गीतावली के अयोध्याकांड के पद संख्या ५,६,७,८ में स्पष्ट रूप से दृष्टव्य है।

१७३. तुलसी मानस २/६७ (७-८)

१७४. तुलसी मानस २/६७

१७५. तुलसी मानस २/२८७ (५)

१७६. तुलसी मानस २/२८७ (७)

१७७. तुलसी मानस ३/१ (३-४)

१७८. तुलसी मानस ३/५ (१)

१७९. तुलसी मानस ३/५ ख

१८०. तुलसी मानस ३/५ (७)

१८१. तुलसी मानस बालकाण्ड ५ वाँ श्लोक

१८२. तुलसी मानस ७/२४ (३-८)

१८३. तुलसी गीतावली ७/२६ (१,२,३)

१८४. तुलसी गीतावली ७/२७ (१,३,४)

१८५. तुलसी गीतावली ७/२९

१८६. तुलसी गीतावली ७/३३

१८७. तुलसी मानस १/१५१

१८८. तुलसी मानस १/१८७ (१,२,३,४)

१८९. सोभा सील तेज की खानी।

तुलसी, मानस, बालकाण्ड

१९०. तुलसी, मानस १/२००

१९१. तुलसी, मानस १/३४८

१९२अ. तुलसी, मानस १/३४९

१९२ब. तुलसी, मानस १/३५०ख

१९३. तुलसी, मानस १/३६० (१)

१९४. तुलसी कवितावली २/३

१९५. तुलसी गीतावली १/१०९

१९६. तुलसी गीतावली १/११०

१९७. तुलसी गीतावली २/४ (१)

१९८. तुलसी गीतावली २/५१

१९९. तुलसी गीतावली ६/१७ (१)

२००. तुलसी रामचरित मानस १/१६ (४,५)

२०१. तुलसी रामचरित मानस १/१९२ चौथा छन्द

२०२. तुलसी मानस २/५२ (३-४)

२०३. तुलसी मानस २/५३

२०४. तुलसी मानस २/५४ (१-४)

२०५. तुलसी मानस २/५५ (३-५)

२०६. तुलसी मानस २/५५ (६,८)

२०७. तुलसी मानस २/५५

२०८. तुलसी मानस २/५६ (१

२०९. तुलसी मानस २/५६ (२)

२१०. तुलसी मानस २/५६ (३) से २/५६

२११. तुलसी मानस २/२८२ (३-८)

२१२. तुलसी मानस २/२८२ से २/२८३ (६)

२१३. तुलसी मानस ७/६ का छन्द

२१४. तुलसी मानस २/७४ (२-८)

२१५. तुलसी मानस २/७५ का छन्द

२१६. तुलसी मानस १/१९३ (१,३,४,६,८)

२१७. तुलसी मानस १/१९७ (५)-१/१९७

२१८. तुलसी मानस १/१९ (३,४,५)

२१९. तुलसी मानस १/९९ (२-११)

२२०. तुलसी मानस ७/७६ (५)-७/७७ (७)

२२१. तुलसी कवितावली १/१

२२२. तुलसी कवितावली १/२

२२३. तुलसी कवितावली १/३

२२४. तुलसी, बरवै रामायण १/१-५

२२५. तुलसी, गीतावली १/२३ (२)

२२६. तुलसी, गीतावली १/२४ (५-६)

२२७. तुलसी, गीतावली १/२५ (३-५)

२२८. तुलसी, गीतावली १/३२ (२-५)

२२९. तुलसी, गीतावली १/३३ (१-३)

२३०. तुलसी, **गीतावली** १/३४ (१-४)
२३१. तुलसी, **गीतावली** १/३५ (१-३)
२३२. तुलसी, **गीतावली** १/३० (१-२)
२३३. तुलसी, **गीतावली** १/३१ (१-५)
२३४. तुलसी, **गीतावली** १/४२ (१-३)
२३५. तुलसी, **गीतावली** १/४३ (१-२)
२३६. तुलसी, **गीतावली** १/४४
२३७. तुलसी, **मानस** १/२०३ (६,७,६)-१/२०३
२३८. तुलसी, **मानस** १/२०४ (४)
२३६. तुलसी, **मानस** १/२०५ (१)
२४०. तुलसी, **मानस** १/२०५ (४)
२४१. तुलसी, **मानस** १/२०५ (७)
२४२. तुलसी, **मानस** १/२०४ (६,७,८)
२४३. तुलसी, **कवितावली** १/४
२४४. तुलसी, **कवितावली** १/५
२४५. तुलसी, **कवितावली** १/६
२४६. तुलसी, **कवितावली** १/७
२४७. तुलसी **बरवै रामायण** १/८
२४८. तुलसी, **दोहावली** ११७
२४६. तुलसी, **दोहावंली** ११८
२५०. तुलसी, **दोहावली** ११६
२५१. तुलसी, **दोहावली** १२०
२५२. तुलसी, **दोहावली** १२२
२५३. तुलसी, **गीतावली** १/१२ (१-३)
२५४. तुलसी, **गीतावली** १/१३ (१)
२५५. तुलसी, **गीतावली** १/३० (२)
२५६. तुलसी, **गीतावली** १/३२ (१)
२५७. तुलसी, **गीतावली** १/ ३४ (५,६)
२५८. तुलसी, **गीतावंली** १/ ४० (१-५)
२५६. तुलसी, **गीतावली** १/४१ (१-२)
२६०. तुलसी, **गीतावली** १/४५ (१,२,४,७)
२६१. तुलसी, **गीतावली** १/२६ (१-५)
२६२. तुलसी, **गीतावली** १/२७
२६३. तुलसी, **कृष्ण गीतावली** २
२६४. तुलसी, **कृष्ण गीतावली** ३
२६५. तुलसी, **कृष्ण गीतावली** ४
२६६. तुलसी, **कृष्ण गीतावली** ८
२६७. तुलसी, **कृष्ण गीतावली** १२
२६८. तुलसी, **कृष्ण गीतावली** १३
२६६. तुलसी, **मानस,** १/२४७ (१-८)-१/२४७

□□□□

पंचम अध्याय

सौन्दर्य, शक्ति एवं शील का समन्वय

शील एवं चरित्र

तुलसी की समन्वय साधना

शील एवं चरित्र

तुलसी ने भगवान के प्रतीक रूप में राम का आलंबन प्रस्तुत किया है। महाकाव्य के नायक में शील, शक्ति और सौन्दर्य का समन्वय आवश्यक माना गया है। रामचरितमानस विश्व-विश्रुत महाकाव्य है। अतः महाकाव्य के नायक होने के कारण राम के स्वरूप में शील, शक्ति और सौन्दर्य का चरम उत्कर्ष मिलना स्वाभाविक है।

वैसे भी रसोद्रेक की दृष्टि से किसी भी पात्र अथवा चरित्र के एक मनोविकार की मात्र व्यंजना पर्याप्त होती है किन्तु शील प्रतिष्ठा के हेतु उस चरित्र की विविध अवसरों पर समुचित व्यंजना प्रस्तुत करना आवश्यक हो जाता है। तुलसी ने अपने साहित्य में राम, लक्ष्मण, भरत, दशरथ तथा रावणादि के चरित्रों को साकार किया है। उनके स्वभाव की अनुकूलता और प्रतिकूलता उनके परिस्थिति जन्य आचरणों से स्पष्ट होती है जो चरित्रों के शील-निरूपण के कौशल को प्रत्यक्ष परिलक्षित करती है। तुलसी के शील-निरूपण और चरित्र-चित्रण के कौशल के सम्बन्ध में आचार्य शुक्ल का अभिमत है- **"रस-संचार से आगे बढ़ने पर हम काव्य की उस उच्च भूमि में पहुँचते हैं जहाँ मनोविकार अपने क्षणिक रूप में ही न दिखाई देकर जीवन-व्यापी रूप में दिखाई पड़ते हैं। इसी स्थायित्व की प्रतिष्ठा द्वारा शील निरूपण और पात्रों का चरित्र-चित्रण होता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस उच्च भूमि में आने पर फुटकरिए कवि पीछे छूट जाते हैं, केवल प्रबंध कुशल कवि ही दिखाई पड़ते हैं। खेद के साथ कहना पड़ता है कि गोस्वामी जी को छोड़ हिंदी का और कोई पुराना कवि इस क्षेत्र में नहीं दिखाई पड़ता। चारणकाल के चंद आदि कवियों ने भी प्रबंध रचना की है, पर उसमें चरित्र चित्रण को वैसा स्थान नहीं दिया गया है, वीरोल्लास ही प्रधान है। जायसी आदि मुसलमान कवियों की प्रबंधधारा केवल प्रेम पथ का निदर्शन करती गई है। दोनों प्रकार के आख्यानों में मनोविकारों के इतने भिन्न-भिन्न प्रकृतिस्थ स्वरूप नहीं दिखाई पड़ते जिन्हें हम किसी व्यक्ति या समुदाय-विशेष का लक्षण कह सकें।"**[1]

तुलसी के राम ईश्वर के अवतार भी हैं और महाकाव्य के नायक भी। श्रेष्ठतम मानवमूल्यों की स्थापना और धर्म की पुनर्प्रतिष्ठा हेतु उन्होंने मानव रूप में जन्म लिया है। लोकरक्षण, धर्म पुनर्स्थापना तथा लोकरंजन के निमित्त शील, शक्ति तथा सौन्दर्य का समन्वय नायक में होना आवश्यक है। राम के स्वरूप में तुलसी ने शील, शक्ति और सौन्दर्य के उत्कर्ष की अनुपम पराकाष्ठा व्यंजित की है। दृष्टव्य है उपर्युक्त मत को संपुष्ट करने वाली कतिपय चौपाइयाँ-

१.(क) रूप सकहिं नहिं कहि श्रुति सेषा। सो जानै सपनेहुँ जेहिं देखा।

(ख) रामहिं देखि एक अनुरागे। चितवत चले जाहिं संग लागे।।
एक नयन मग छबि उर आनी। होंहि सिथिल तन मन बर बानी।।

(ग) हम भरि जनम सुनहु सब भाई। देखी नहिं असि सुन्दरताई।।

जद्यपि भगिनी कीन्ह कुरूपा। बध लायक नहिं पुरुष अनूपा।।

२.(क) लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े। काहु न लखा देख सबु ठाढ़े।

तेहि छन राम मध्य धनु तोरा। भरेउ भुवन धुनि घोर कठोरा।।

(ख) रावन सिर सरोज बन चारी। चलि रघुबीर सिलीमुख धारी।।

दस दस बान भाल दस मारे। निसरि गए चले रुधिर पनारे।।

३.(क) गुर आगमनु सुनत रघुनाथा। द्वार आइ पद नायेउ माथा।।

सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगल मूल अमंगल दमनू।।

(ख) जौं अनीति कछु भाषौं भाईं। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई।।[२]

निराश्रित समाज को लोकरंजन तथा आलम्बन प्रदान करने के लिये तुलसी ने राम में अलौकिक सौन्दर्य को निरूपित किया है। आराध्य में तुलसी की भक्तिभावना तथा दास्य भाव ने अपने आराध्य में अनिंद्य और अपरूप सौन्दर्य की अवधारणा व्यंजित की है जिससे हृदय स्वतः आराध्य की ओर आकृष्ट हो सके। मर्यादित अभिव्यक्तिप्रियता के कारण तुलसी सीता या अन्य स्त्री पात्रों का नख-शिख वर्णन नहीं कर सकते थे क्योंकि वह अश्लीलता की परिधि में आ जाता या मर्यादा के धरातल के बाहर पहुँच जाता। चूँकि उस समय कवि कर्म में नख-शिख वर्णन का प्राधान्य था। राम के सौन्दर्य निरूपण के माध्यम से तुलसी ने कवि धर्म का निर्वाह भी पूर्ण कर लिया और मर्यादित अभिव्यक्ति का भी। राम के सौन्दर्य की प्रतिष्ठा में तुलसी की यह भावना भी दृष्टिगत होती है कि सांसारिक प्राणियों में सौन्दर्य का प्रभाव सीधा पड़ता है जिसके कारण सामान्यजन को राम के सौन्दर्य के प्रभाव से अभिभूत कर शील और शक्ति का स्थायी प्रभाव डाला जा सकता है। तुलसी की निम्न पंक्तियों में सौन्दर्य निरूपण के साथ साथ अवतारवाद सिद्धान्त की व्यंजना भी ध्वनित होती है-

काम कोटि छवि स्याम शरीरा। नील कंज बारिद गंभीरा।।[३]

तथा-

राम रूप नख सिख सुभग बारहिं बार निहारि।[४]

रूप सौन्दर्य की शीतलता भक्ति-भाव के स्रोत का दर्शन कराती है इसीलिये तुलसी ने राम की बाल्यावस्था, किशोरावस्था तथा युवावस्था के नयनाभिराम सौन्दर्य के चित्र अत्यन्त मुग्ध होकर खींचे हैं। तुलसी के राम की यह रूपाभा दशरथ के आँगन से प्रस्फुटित[५] होकर सम्पूर्ण अयोध्या में प्रसार[६] पाती है। राम का रूप सौन्दर्य मिथिलावासियों को अमृत पान के सदृश प्रतीत होता है।[७] श्रंगबेरपुर तथा वन्य प्रदेश में रहने वाले स्त्री-पुरुष उनके सौन्दर्य को देख रंक से राजा होने की अनुभूति करते हैं।[८] वीतराग तपस्वी आर्द्र हो उठते हैं।[९] सैन्य शिविर में श्रान्त-क्लान्त सैनिक उनकी रूप-सुषमा को देखकर अपनी थकान भूलकर अद्‌भुत स्फूर्ति से भर उठते हैं।[१०] रण प्रांगण में शत्रु उन्हें देखकर विमोहित हो उठते हैं। खर जैसा भयानक राक्षस भी उनकी छवि सुषमा को देखकर ठगा सा रह जाता है।[११] राम को देखकर विषैले बिच्छू तथा सर्प अपनी विषता छोड़ देते

हैं[12] तथा अन्य विषैले तथा सामान्य जन्तु उनकी रूप माधुरी का पान करते हुये स्वयं सेना को उस पार पहुँचने के निमित्त जलचर सेतु का निर्माण कर देते हैं।[13]

तुलसी द्वारा अभिव्यक्त रूप सौन्दर्य देखकर देवता आदि भी मुग्ध हो जाते हैं क्योंकि इतना अनुपम सौन्दर्य न उनके पास है और न उन्होंने कभी देखा है। ऐसा अनुपम और अनूठा अनिंद्य सौन्दर्य तो परमसत्ता के अवतार रूप श्रीराम का ही हो सकता है।

मात्र सौन्दर्य के वर्णन से श्रेष्ठता का कोई सम्बन्ध नहीं होता। राम की पुरुषोत्तमता भी केवल सौन्दर्य के कारण नहीं वरन उनकी शीलता के कारण ही है। तुलसी ने सम्पूर्ण साहित्य में राम के शील का अनुपम चित्रण किया है। यद्यपि वाल्मीकि तथा अन्य कवियों ने राम के चरित्र में दुर्बलताओं को भी विस्तार से उभारा है किंतु तुलसी ने राम को आदर्श रूप में प्रस्तुत कर उन्हें अलौकिकता से मण्डित किया है जिससे वे सहज ही वन्दनीय और पूजनीय भगवान बन जाते हैं।

तुलसी ने राम में धीरोदात्त नायक के सभी गुणों को समाविष्ट किया है। शील और सामर्थ्य के अन्तर्गत हृदय के मनोविकार, स्वभाव, वाह्य एवं अंतरंग सबलतायें तथा दुर्बलतायें आ जाती हैं। तुलसी का निरूपण कौशल स्वयं राम के शील-सामर्थ्य की व्यंजना करने में पूर्ण रूपेण सक्षम है। दृष्टव्य है भिन्न भंगिमाओं को प्रदर्शित करने वाली **कतिपय पंक्तियाँ-**[14]

दया- अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा।

शरणागत वत्सलता- प्रनतपाल रघुनायक, करुना सिन्धु खरारि।
गये सरन प्रभु राखिअहिं, सब अपराध बिसारि।

भक्तवत्सलता- (क) मोरे अधिक दास पर प्रीती।
(ख) भगत बछल कृपाल रघुराई।

पतित पावनता - सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अध नासहिं तबही।।

कृपालुता - अति कोमल रघुबीर सुभाऊ।

उदारता - जो सम्पति सिव रावनहिं, दीन्ह दिये दस माथ।
सोइ सम्पदा विभीषनहिं, सकुचि दीन्ह रघुनाथ।।

वीरता - इहाँ सुबेल सैल रघुबीरा । उतरे सेन सहित अति भीरा।।

दीनवत्सलता-जेहि दीन पियारे बेद पुकारे द्रवउ सो श्री भगवाना।

इसके अतिरिक्त तुलसी ने राम के माध्यम से आदर्श शिष्य, आदर्श पुत्र, आदर्श भ्राता, आदर्श पति, आदर्श परिवार प्रमुख आदर्श मित्र, आदर्श सेनाध्यक्ष तथा आदर्श राजा के स्वरूप को प्रकट किया है जो तुलसी के सुन्दर कौशल के साथ-साथ राम के शील को पूर्णतः व्यक्त करता है।

राम अपने समस्त पराक्रम का श्रेय गुरुकृपा को स्वीकारते हैं जो उनकी विनम्रशीलता तथा निरभिमानता का परिचय प्रस्तुत करती है तथा साथ ही शिष्यत्व के आदर्श स्वरूप की प्रतिष्ठा करती है-

(क) बामदेव बसिष्ट मुनिनायक। देखे प्रभु महि धरि गुन सायक।।
धाई धरे गुरु चरन सरोरुह । अनुज सहित अति पुलक तनोरुह।।[१५]

(ख) पुनि रघुपति सब सखा बोलाए । मुनि पद लागहु सकल सिखाए।
गुरु बसिष्ठ कुल पूज्य हमारे। इन्ह की कृपा दनुज रन मारे।।[१६]

आदर्श पुत्र के रूप में तुलसी ने राम के चरित्र को इस प्रकार वर्णित किया है-

धन्य जनमु जगती तल तासू। पितहिं प्रमोदु चरित सुनि जासू।।
चारि पदारथ करतल ताकें। प्रिय पितु मातु प्रान सम जाकें।।[१७]

राम का सम्पूर्ण जीवन आदर्श मातृ-पितृ भक्ति का उदाहरण प्रस्तुत करता है। वे कैकेयी द्वारा पिता के आदेश को सुनकर विचलित होने की जगह शान्ति के साथ अपना मत प्रकट करते हुए कहते हैं-

सुनु जननी सोइ सुत बड़ भागी । जो पितु मातु बचन अनुरागी।।
तनय मातु पितु तोषनहारा । दुर्लभ जननि सकल संसारा।।

इस प्रकार राम अपनी विनम्रता से सबका हृदय जीतने में पूर्णतः सक्षम हैं।

आदर्श भ्राता के रूप में भी राम का चरित्र कम प्रंशसनीय नहीं है। यद्यपि लक्ष्मण और शत्रुघ्न भ्रातृत्व की श्रेष्ठता का सुन्दर आदर्श प्रस्तुत करते हैं। भरत का अपूर्व त्याग भ्रातृनिष्ठा का जीवन्त आदर्श है किन्तु राम का भ्रातृप्रेम भी किसी से कम नहीं है। एक ओर राम, भरत के लिये राज्य त्याग कर स्वयं वन जाने का आदर्श प्रस्तुत करते हैं तो वहीं दूसरी ओर लक्ष्मण के मूर्च्छित हो जाने पर उनका विलाप भाई के प्रति उनके अनन्य प्रेम को व्यंजित करता है।

(क) मेरो सब पुरुषारथ थाको ।
बिपति बँटावन बँधु बाहु बिनु, करौं भरोसो काको।[१८]

(ख) सुत बित नारि भवन परिवारा। होंहि जाहिं जग बारहिं बारा।
अस बिचारी जागहु ताता। मिलइ न जगत सहोदर भ्राता।।[१९]

सीता के अपहरण के पश्चात राम का विलाप सीता के प्रति उनके आदर्श प्रेम तथा अग्निपरीक्षा प्रकरण उनके परम कर्तव्य का परिचय देता है। तुलसी के राम सर्वदृष्टा हैं। वे जानते थे कि भविष्य में रावण वध की पृष्ठभूमि सीता का अपहरण है किन्तु फिर भी तुलसी ने रामविलाप के माध्यम से उनके चरित्र का एक और कोना स्पष्ट किया है-

आश्रम देखि जानकी हीना। भए बिकल जस प्राकृत दीना।।
लछिमन समझाए बहु भाँती। पूछत चले लता अरु पाँती।।
हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम देखी सीता मृग नैनी।।[२०]

आदर्श परिवारं प्रमुख के रूप में राम ने परिवार को एक सूत्र में बांधने की चेष्टा की है। कहीं भी बिखराव का संकेत मात्र पाते ही उन्होंने स्वयं को उत्सर्ग के लिये प्रस्तुत कर परिवार को बिखरने

नहीं दिया है। महाभारत की कथा कौरव तथा पाण्डवों के गृह-कलह का ही आख्यान मात्र है। गृह कलह कितना भयानक स्वरूप ग्रहण कर सकता है इसका सुन्दर निरूपण महाभारत में उपलब्ध होता है। गृह-कलह के व्यूह में उलझे परिवार प्रमुख का आचरण कैसा होना चाहिये। यह मानस में प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। यदि राम चाहते तो मानस का स्वरूप महाभारत से भी अधिक विकृत हो सकता था। किन्तु राम के शील स्वभाव एवं आचरण ने ही सम्पूर्ण कथा को विकृत होने से बचाया है।

युवराज अभिषेक के विचार तक राम का आचरण परिवार में सामान्य सदस्य की भाँति था। विवाहोपरान्त वे राजकाज में थोड़ा ध्यान देने लगे थे। कौशल्या तथा कैकेयी में सपत्नि-स्वभाव-सुलभ-ईर्ष्या तथा द्वेषभाव स्वाभाविक रूप से स्वीकार किया जा सकता है किन्तु राम के लिये दोनों माताओं में कोई भेद न था। इसीलिये जब वरदान में कैकेयी ने राम के लिये वनवास तथा भरत हेतु राज्य माँगा तो दशरथ आश्चर्यचकित हो पूछते हैं कि भरत से भी अधिक और सदा तेरी सेवा-सुश्रूषा में रत आज्ञाकारी राम को वन भेजना तुम्हें कैसे अच्छा लग रहा है-

तुहूँ सराहसि करसि सनेहू। अब सुनि मोहि भयउ संदेहू।।
जासु सुभाउ अरिहि अनुकूला। सो किमि करिहि मातु प्रतिकूला।।[21]

वृद्धावस्था में दशरथ का कैकेयी पर अनुराग राम भी समझते थे। प्रकारान्तर से संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि राजप्रासाद में भीतर ही भीतर चलने वाले शीत कलह को भलीभाँति समझते हुये भी राम शान्ति, सौम्यता तथा सरल आचरण से सबका हृदय अपनी ओर आकृष्ट करते रहे।

राम ने मानस में कहीं भी माता कैकेयी की निन्दा नहीं की है। मानसकार के चरित्र चित्रण का कौशल राम के चरित्र में पूर्णतः परिलक्षित होता है। वनवास के लिये प्रस्थान करने तथा सीता को साथ लेने के निर्णय से पूर्व राम ने सीता को जो उपदेश दिये हैं वह उनकी पारिवारिक आचारनीति तथा परिवार-प्रमुख के दायित्व का उद्घाटन करती है। मानस के अन्यान्य प्रसंगों में भी राम का आदर्श परिवार प्रमुख का भाव देखा जा सकता है।

भ्रातृभाव के समकक्ष ही उनका सखाभाव भी आदर्श है। राम ने राक्षस कुलभूषण विभीषण, वानरराज सुग्रीव तथा निषादराज को बराबरी का स्थान देकर अपना मित्र माना है। यद्यपि ये तीनों ही राम की तुलना में विजातीय, वन्य, असंस्कृत तथा अत्यन्त दीन-हीन हैं। किन्तु राम के मित्रत्व के आदर्श ने न तो श्री सम्पन्नता की चिन्ता की और न उनके गुणदोषों की। यद्यपि विभीषण और सुग्रीव की मित्रता के पीछे स्वार्थ-सिद्धि का तर्क दिया जा सकता है किन्तु यह भी सर्वमान्य है कि अभीष्ट कार्य के संपादित होने के बाद भी मित्रता का स्थायित्व स्वार्थ-सिद्धि के भाव को तिरोहित कर देता है। इन दोनों से अधिक निष्कपट और निस्वार्थ मित्रता का आदर्श निषादराज गुह को माना जा सकता है।

राम का कुशल सेनापतित्व कम श्लाघ्य नहीं है। वानरों से मैत्री कर खरदूषण त्रिशिरा आदि का वध, सुग्रीव व हनुमान के सहयोग से वानर-भालुओं की सेना खड़ी कर देना, विभीषण को आश्रय

देकर लंका की भौगोलिक तथा सेना सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करना, हनुमान के माध्यम से सीतान्वेषण के बहाने लंका निरीक्षण कराना, अंगदादि दूतों के माध्यम से शत्रु जनता में भय उत्पन्न कर उनके मनोबल को तोड़ना, तदुपरान्त कुशल युद्ध-संचालन कर शत्रुपक्ष का विनाश ये सभी प्रकरण प्रकारान्तर से स्वयं राम के कुशल सेनापतित्व का बोध कराते हैं। क्योंकि स्वदेश से सुदूर अपरिचित प्रदेश में विजातियों के सहयोग से महाबली राक्षसों का विनाश कर स्वधर्म एवं संस्कृति का ध्वज लहराना सहज साध्य नहीं है?

इस प्रकार राम के माध्यम से तुलसी ने आदर्शों के आयाम स्थापित किये हैं जो निरन्तर प्रेरणा देते हैं कि आचरण कैसा होना चाहिये। राम का शील व सामर्थ्य अनुकरणीय है। तुलसी ने विनयपत्रिका में राम के शीलत्व का संपूर्ण चित्र एक ही पद में वर्णित किया है- **"राम को बाल्यकाल से लेकर अंत तक किसी ने अनुचित क्रोध करते नहीं देखा। खेल में स्वयं जीतने पर वे दूसरे बालकों को जीता हुआ मान लेते थे। अहिल्या उद्धार पर उन्हें गर्व या हर्ष होने के बजाय उन्हें निरन्तर ब्राह्मण पत्नी को पैर से स्पर्श करने का पश्चाताप रहा। परशुराम के दुर्वचनों को वे शान्त स्वभाव से सुनकर क्षमा करते रहे। जिस कैकेयी के कारण उन्हें वनवास मिला, उस कैकेयी की रुचि की रक्षा उन्होंने उसी भाव से की जिस भाव से मनुष्य अपने शरीर के घावों को यत्नपूर्वक हर प्रकार के आघात से बचाता है। हनुमान की सेवा से अभिभूत हो स्वयं को आजन्म ऋणी मानते रहे। वानरराज सुग्रीव और राक्षसराज विभीषण को अत्यन्त प्रेमभाव से राम ने स्वीकारा किन्तु उन्होंने अपने स्वभाव में परिवर्तन नहीं किया फिर भी राजसभा के मध्य उनकी प्रशंसा करते हुये वे थकते नहीं थे। अपने भक्तों के साथ वे सद्व्यवहार करते हैं। उनकी चर्चा मात्र से ही वे संकुचित हो उठते हैं। उन्हें कोई एक बार भी प्रणाम कर देता है और उनके यश का गान करता है तो वे उस पर अत्यन्त प्रसन्न हो उठते हैं और बार-बार उस भक्त की प्रशंसा सुनना चाहते हैं।**

सुशील अंतःकरण का यह वैशिष्ट्य है कि वह किसी दूसरे में बुरे भाव का आरोप नहीं करता। यही कारण है कि जब भरत अवधवासियों सहित चित्रकूट की ओर आते हैं तो लक्ष्मण यह मानकर कि भरत ससैन्य राम पर आक्रमण करने आ रहे हैं, क्रोधित हो उठते हैं। किन्तु राम के मन में भरत के प्रति ऐसा कोई संदेह उत्पन्न ही नहीं होता। वे लक्ष्मण को अत्यन्त विनम्रता से समझाते हुये कहते हैं-

सुनहु लषन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा।।
भरतहिं होइ न राजमदु बिधि हरि-हर-पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी-सीकरनि छीर सिंधु बिनसाई।।[२३]

राम-लक्ष्मण को विदा कर जब सुमंत अयोध्या लौटने लगते हैं तो राम अत्यन्त विनम्रता से पिता के लिये संदेश देते हैं। उनके संदेश में कहीं भी खिन्नभाव दृष्टिगत नहीं होता है। सारथी से अपनी भावना का प्रकाशन वे निम्न रूप में करते हैं-

सब विधि सोइ करतव्य तुम्हारे। दुख न पाव पितु सोच हमारे।।

किन्तु यह भाव लक्ष्मण को भला प्रतीत नहीं होता और वे पिता के प्रति कठोर वचन कहने को उद्धत हो जाते हैं। राम फिर अपने उसी सौम्य भाव से लक्ष्मण को रोकते हैं और सारथी से विनती करते हैं कि लक्ष्मण के इस कड़वेपन को पिता से न कहें-

पुनि कछु लषन कही कटु बानी। प्रभु बरजेउ बड़ अनुचित जानी।।

सकुचि राम निज सपथ दिवाई। लषन-संदेसु कहिय जनि जाई।।

यहाँ 'सकुचि' शब्द का प्रयोग तुलसी के चरित्रगत कौशल का उद्घाटन करता है। स्वजन और परिचित के असभ्य या अशिष्टाचरण पर लज्जा अथवा संकोच का बोध होना स्वाभाविक है। यह संकोच राम के सुशीलाचरण तथा लोक मर्यादा के भाव के भाव को तीव्रता से अभिव्यंजित करता है।

चित्रकूट में कैकेयी से राम इसीलिये बार-बार मिलते हैं कि कुटिलाचरण से उत्पन्न ग्लाानि की भावना माता के हृदय से दूर हो जाये। उनके शील स्वभाव और आचरण का कैकेयी के हृदय पर इतना अधिक प्रभाव पड़ता है कि जीवन-पर्यन्त वे यह अनुभव करती रहीं कि राम उनके लिये भरत से भी बढ़कर हैं-

कैकेयी जौ लौं जियत रही।

तौ लौं बात मातु सों मुँह भरि भरत न भूलि कही।

मानी राम अधिक जननी तें जननिहु गँस न गही।।[२४]

तुलसी ने राम के चरित्र में उज्जवलता तथा आदर्श के आयामों को समन्वित किया है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम के शुभ चरित्र पर कतिपय विद्वानों ने आरोप भी लगाये हैं। **डॉ० माताप्रसाद गुप्त प्रमुख रूप से राम पर शूर्पणखा के विरूपीकरण तथा छिपकर बालि वध का आरोप लगाते हैं।** इस सन्दर्भ में हमें उनके चरित्रों तथा आचरणों का अध्ययन करना अपेक्षित होगा।

प्रथम आरोप शूर्पणखा के विरूपीकरण का है। इस प्रकरण में शूर्पणखा के अपराधों की ओर दृष्टि-निक्षेप करने से निम्न तथ्य सामने आते हैं-

१. शूर्पणखा ने अपने वैधव्य को राम से छिपाया था

ताते अब लगि रहउँ कुमारी।[२५]

२. वह तीनों लोकों में अनार्योचित आचरण करती हुई स्वच्छन्द घूमती थी

देखेउँ खोजि लोक तिहु माहीं।[२६]

३. राम द्वारा तिरस्कृत होने पर वह सीता के भक्षण हेतु उद्धत होती है

रूप भयंकर प्रगटत भई।[२७]

४. वह राम और लक्ष्मण दोनों की पत्नी होना स्वीकार कर लेती है जिससे यह स्पष्ट होता है कि शूर्पणखा में आर्योचित भार्याभाव नही था वरन् प्रबल कामासक्ति मात्र थी।

५. पुलस्त्य कुल जन्मा होने के कारण शूर्पणखा ब्राह्मणी थी। क्षत्रिय और ब्राह्मणी का विवाह प्रातिलोम्य विवाह कहलाता है। स्मृतियों में ऐसी ब्राह्मण स्त्री हेतु दण्ड का प्रावधान किया गया है यथा-

सजातौ उत्तमो दण्ड आनुलोम्ये तु मध्यमः।

प्रातिलोम्ये वधः पुंसो नार्य कर्णादि कर्त्तनम।।[२८]

इन आरोपों के प्रकाश में शूर्पणखा का विरूपीकरण पूर्णतः धर्मोचित है और इस प्रकार राम शूर्पणखा के विरूपीकरण के आरोप से मुक्त हो जाते हैं। डॉ० बल्देव प्रसाद मिश्र भी अपना मत व्यक्त करते हुये कहते हैं कि- पापाचारिणी शूर्पणखा की कामवासना में सहायक उसके सौन्दर्य मात्र का विच्छेद कर उसे जीवन-साधना के लिये छोड़ देना उसके अपराध को देखते हुए बहुत ही अल्प दण्ड था।

द्वितीय आरोप बलि-वध का है। इस सन्दर्भ में विचारणीय है कि बालि को मारने के पश्चात राम ने तुरन्त मुक्ति लाभ प्रदान कर दिया था, तब ऐसी स्थिति में उसके साथ अन्याय की बात करना तर्क संगत नहीं है। श्री राम बालि के शरीर को अचल बनाने का वरदान देते हैं-

अचल करौं तनु राखहु प्राना।[२९]

किन्तु बालि स्वयं ही मृत्यु वरण कर मोक्ष प्राप्ति का अभिलाषी है-

जन्म-जन्म मुनि जतन कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं।।

- -

मम लोचन गोचर सोई आवा। बहुरि कि प्रभु अस बनिहि बनावा।।[३०]

रामचरन दृढ़ प्रीतिकर, बालि कीन्ह तनु त्याग।

सुमन माल जिमि कंठ ते, गिरत न जानई नाग।।[३१]

दूसरा तर्क यह है कि बालि को सामने से मारने पर उसके शरणागत होने की संभावना थी और राम पहले ही सुग्रीव को बालिवध का वचन दे चुके थे-

सुनु सुग्रीव मारिहउँ, बालिहिं एकहिं बान।

ब्रह्म रुद्र सरनागत, गये न उबरिहि प्रान।।[३२]

श्रीराम की समदर्शिता से बालि भलीभाँति परिचित था इसलिये वह राम को देखते ही उनकी शरण में जा सकता था-

कह बाली सुन भीरु प्रिय, समदरसी रघुनाथ।[३३]

किन्तु पूर्व की गई प्रतिज्ञा के कारण राम बालिवध के लिये विवश थे। इसीलिये वृक्षों की आड़ में बालि वध किया गया।

डॉ० बल्देव मिश्र के अनुसार **"यदि बालि और रावण का खुला युद्ध होता तो अंगद और जाम्बवान आदि सदवीरों को बालि की सहायता उसी प्रकार अनिच्छया करनी पड़ती, जिस प्रकार द्रोणाचार्य और भीष्मपितामह आदि ने दुर्योधन की सहायता की थी।** देवांश से उत्पन्न सद्वीरों-

पुरुषा ते सेवक भए (जाम्बवान)। दोहावली । १४३

की मृत्यु अभीष्ट न होने के कारण श्री राम ने उस वीरवाटिका के कंटक स्वरूप बालिमात्र का उच्छेदन किया। यही कारण है कि श्री राम ने भक्त कलाप के वधरूप महान अनुचित कर्म के परिहार के लिये अपेक्षाकृत अल्प दोषयुक्त कार्य (छिप कर वध करना) को उचित माना।"[३४]

मेरे विचार में यही एक प्रसंग ऐसा है जो राम के मानव रूप को संकेतित करता है। यह प्रकरण संपूर्ण मानस को उच्चादर्शों की कल्पना मात्र समझे जाने का निषेध करता है। यदि यह प्रसंग न होता तो राम की कोई बात साधारण मानवों सी न प्रतीत होती। उनका अवतार रूप मात्र अवतार के रूप में ही परिगणित होता। बालि वध का आरोप उन्हें मानव सिद्ध करता है, और इस बात की पुष्टि करने में सहायक सिद्ध होता है कि स्वयं ईश्वर हमारे मध्य मानव के रूप में अवतरित हुए और मानवोचित कार्यों को निष्पादित कर उन्होंने प्रत्येक क्षेत्र में आदर्श की अवधारणाओं की प्रतिष्ठा की।

लक्ष्मण को तुलसी ने उपनायक के रूप में चित्रित किया है। सम्पूर्ण रामकथाओं में लक्ष्मण का नाम राम के साथ अनिवार्य रूप से जुड़ा है। राम और लक्ष्मण के चरित्र वस्तुतः एक दूसरे के पूरक हैं। राम के व्यक्तित्व की पूर्णता बिना लक्ष्मण के और लक्ष्मण के व्यक्तिव का आकलन बिना राम के चरित्रानुशीलन के संभव नहीं है। प्रकारान्तर से यह कह सकते हैं कि प्रकृति में सर्वथा भिन्न होते हुये भी लक्ष्मण को राम से भिन्न नहीं माना जा सकता।

तुलसी ने लक्ष्मण को राम की छाया स्वरूप मानकर उसके चरित्र का सुन्दर चित्रण किया है। वह राम का अनन्य भक्त है। प्रकृतिगत अंतर को छोड़कर राम के प्रायः सभी गुण लक्ष्मण में विद्यमान हैं। तुलसी ने उपनायक लक्ष्मण के चरित्र में सौन्दर्य, शील एवं शक्ति के समन्वित स्वरूप की प्रतिष्ठा की है। लक्ष्मण के सौन्दर्य चित्रण में कवि ने आवश्यकता से अधिक कमी दिखलाकर मात्र इतने कथन में ही सन्तोष कर लिया है कि दोनों कुमार रूप, शील और शक्ति के धाम हैं-

राम लखनु दोउ बंधुवर रूप सील बल धाम।[३५]

जनक दोनों कुमारों के सौन्दर्य से अभिभूत हो विश्वामित्र से पूछ बैठते हैं कि ये दोनों बालक मुनि कुल तिलक हैं या किसी राजवंश के पालक? या जिसका वेदों ने नेति कहकर यश गायन किया है, वह परब्रह्म कहीं युगलरूप में तो अवतरित नहीं हो गया है-

कहहु नाथ सुन्दर दोउ बालक। मुनिकुल तिलक कि नृपकुल पालक।।
ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय वेष धरि की सोइ आवा।।[३६]

तुलसी ने लक्ष्मण-जनक-प्रसंग तथा परशुराम-लक्ष्मण-संवाद में लक्ष्मण की ओजस्विता का मौलिक निदर्शन प्रस्तुत किया है। धनुर्भंग के अवसर पर सुदूर प्रान्तों से आये हजारों महान पराक्रमी योद्धा उस धनुष को तोड़ना तो दूर जब तिल भर अपने स्थान से हिला भी न सके तो राजा जनक आवेशाकुल हो कहने लगे कि ऐसा प्रतीत होता है कि धनुष को तोड़कर मेरी कन्या को वरण कर यश अर्जित करने वाला मानो विधाता ने रचा ही नहीं है, यदि मैं यह पहले से जानता कि पृथ्वी

वीरों से रहित है तो इस प्रकार की प्रतिज्ञा ही न करता जिससे मेरी जग हँसाई तो न होती-

कुँअरि मनोहर विजय बड़ि, कीरति अति कमनीय।

पावनिहार बिरंचि जनु रंचेउँ न धनु दमनीय।।"[३७]

अब जनि कोउ भाखै भटमानी। बीर बिहीन मही मैं जानी।

जौ जनतेउ बिनु भट भुबि भाई । तौ पनु करि होतेउँ न हँसाई।।[३८]

जनक का यह प्रलाप लक्ष्मण को अनुचित और अपमानदायक प्रतीत होता है। वे गरज कर कह उठते हैं कि जहाँ कोई रघुवंशी उपस्थित होता है वहाँ आज तक कोई ऐसे वचन नहीं कह पाया। भरी राजसभा में लक्ष्मण राजा जनक को भली बुरी सुनाते हैं। उन्हें इस बात का कोई भय नहीं कि वे जिस राज्य में है उसी के अधिपति से ऐसी बातें कह रहे हैं। उन्हें अपने अग्रज राम का अपमान तनिक भी सहन नहीं होता। तुलसी ने बड़े ही प्रभावशाली ढंग से इस प्रसंग में लक्ष्मण की उग्रता की व्यंजना प्रस्तुत की है-

रघुबंसिन्ह महँ जहँ कोउ होई। तेहिं समाज अस कहइ न कोई।।

कही जनक जसि अनुचित बानी। विद्यमान रघुकुल मनि जानी।।[३९]

लक्ष्मण परशुराम संवाद में लक्ष्मण की निर्भीकता, साहस, मर्यादा तथा विनम्रता का समन्वित रूप परिलक्षित हुआ है। धनुर्भंग के पश्चात परशुराम के इस कथन पर कि जिसने इस पूज्य धनुष को तोड़ा है, वह मेरा परम शत्रु है इसलिये वह इस समाज से अलग हो जाये अन्यथा सभी राजाओं को मैं मार डालूंगा तथा यह जानने के पश्चात कि धनुष का मर्दन राम ने किया है। वे कहते हैं कि **'नाहिं त छाँड़ि कहाउब रामा'**। लक्ष्मण अत्यन्त क्रोधित हो उठते हैं तथा अपनी बातों से उनका दर्प चूर कर देते हैं। इस प्रसंग में यद्यपि लक्ष्मण कुछ अधिक असहिष्णु हो उठते हैं किन्तु मानसकार ने राम के गांभीर्य तथा लक्ष्मण के उत्कट भ्रातानुराग को प्रदर्शित करने के लिये ही उनकी असहिष्णुता का इतना प्रभावोत्पादक चित्रण किया है। किसी भी दशा में राम का अहित और अपमान उन्हें सहन नहीं होता है। पिता दशरथ के प्रति भी वे कटु वचन कहने से नहीं चूकते। लक्ष्मण के भ्रातानुराग का एक अन्य चित्र कुछ अधिक ही सुन्दर बन पड़ा है। चित्रकूट में भरत, अग्रज राम से मिलने आते हैं। स्वभाव से उग्र लक्ष्मण को इसमें भरत की चाल दिखाई पड़ती है। उनका अनुमान है-

कुटिल कुबंधु कुअवसर ताकी। जानि राम बनवास एकाकी।

करि कुमंत्र मन साजि समाजू। आए करइ अकंटक राजू।।[४०]

ऐसा अनुभव करते ही वे साधु स्वभाव वाले भरत से युद्ध करने के लिये तत्पर हो उठते हैं।

जिमि करि निकर दलइ मृगराजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू।।

तैसेहि भरतहिं सेन समेता। सानुज निदरि निपातउँ खेता।।[४१]

तब राम उन्हें समझा बुझाकर शान्त करते हैं। जहाँ भी लक्ष्मण उग्र हुये हैं राम का एक संकेत उनकी उग्रता को सौम्यता में परिवर्तित कर देता है। प्रकारान्तर से यदि कहें तो लक्ष्मण की नियामक

शक्ति राम हैं। लक्ष्मण को विनय की नीति अच्छी नहीं लगती थी। दोनों के स्वभाव का एक अन्य मनोहर चित्र दृष्टव्य है- समुद्र किनारे खड़े होकर राम उससे मार्ग देने के लिये विनय करते हैं। तीन दिवस के पश्चात वे अत्यन्त क्रोधित हो कह उठते हैं कि अब विनय की मर्यादा पूरी हो चुकी। बिना भय के प्रीति सर्वथा असंभव है। लक्ष्मण! शीघ्रता से मेरा धनुष लाओ-

विनय न मानत जलधि जड़ गये, तीन दिन बीत।
बोले राम सकोप तब, भय बिनु होइ न प्रीत।।[४२]

लछिमन बान सरासन आनू। सोखौं बारिधि बिसिख कृसानू।[४३]
अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा। यह मत लछिमन के मन भावा।।[४४]

उनका यह विचार लक्ष्मण को अत्यन्त रुचिकर लगता है क्योंकि लक्ष्मण को विनय की अपेक्षा उग्रता अधिक अनुकूल लगती थी।

तुलसी ने लक्ष्मण को मर्यादित प्रेमी भक्त के रूप में अंकित किया है। अनन्य भ्रातृभाव युक्त और अग्रज भक्त लक्ष्मण अपने स्वामी राम से वियोग होने का समाचार पाते ही अत्यन्त दुखी हो जाते हैं। शरीर में कंपन होने लगता है तथा आँखों से अश्रु धारा प्रवाहित होने लगती है

समाचार जब लछिमन पाये। व्याकुल बिलख बदन उठि धाए।
कंप पुलक तन नयन सनीरा। गहे चरन अति प्रेम अधीरा।।[४५]

तुलसी ने लक्ष्मण के स्वभाव में उग्रता के साथ-साथ प्रेमी भक्त स्वरूप का चरमतम उत्कर्ष भी दिखाया है। राम के वियोग की कल्पना में उनका हृदय चातक और जलविहीन मीन के सदृश दैव को मन ही मन कोसने लगता है-

कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े। मीन दीन जनु जल से काढ़े।।
सोचु हृदय बिधि का होनिहारा। सबु सुखु सुकृतु सिरान हमारा।।[४६]

लक्ष्मण के हृदय में शंका है कि पता नहीं राम उसे अपने साथ ले चलेंगे अथवा नहीं। राम उनकी दशा का अनुमान करके भी उसे अयोध्या में ही रहने का उपदेश देते हैं क्योंकि पिता की वृद्धावस्था और भरत तथा शत्रुघ्न की अनुपस्थिति में अयोध्या की सुरक्षा का दायित्व कौन संभालेगा? इसीलिये राम, लक्ष्मण से कहते हैं-

यहीं रहहु सब कर परितोषू।[४७]

इतना सुनते ही लक्ष्मण की दशा ऐसी हो गई जैसे पाले के स्पर्श से कमल-

सिअरे वचन सूखि गए कैसे। परसत तुहि न तामरस जैसे।।[४८]

इस स्थल पर तुलसी ने लक्ष्मण माध्यम से आदर्श भक्त की व्यंजना व्यंजित की है। व्याकुल लक्ष्मण के अपनी आतुरता प्रकट करते हुये कहते हैं- हे स्वामी। यदि आप मुझे छोड़ ही दें तो मेरा आप पर क्या वश है? आपने यद्यपि शिक्षा तो बहुत ही अच्छी दी है परन्तु वह सीख मुझ जैसे कायर के लिये अगम है। हे प्रभु! मैं तो आपके स्नेह में पला हुआ शिशु हूँ। हंस में इतनी सामर्थ्य कहाँ

होती है कि वह मंदराचल या सुमेरु पर्वत को उठा सके। आप मेरा विश्वास करें, मैं आपके अलावा माता, पिता, गुरु आदि किसी से भी परिचित नहीं। मैं तो मनसा-वाचा-कर्मणा आपके चरणों में ही रत हूँ, फिर भी क्या आप मुझे इस तरह छोड़ देंगे?

नाथ दास मैं स्वामि तुम्ह तजहुत काह बसाइ।

दीन्हि मोहि सिख नीकि गोसाई। लागि अगम अपनी कदराई।।

मैं सिसु प्रभु सनेह प्रतिपाला। मंदरु मेरु कि लेहिं मराला।।

गुरु पितु मातु न जानउँ काहूँ। कहउँ सुभाऊ नाथ पति आहूँ।।

मोरे सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबन्धु उर अंतरजामी।।

मन क्रम बचन चरन रत होई। कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई।।[४९]

लक्ष्मण के चरित्र में प्रधानता मूलतः पराक्रम और शौर्य की है। इसी लिये सम्पूर्ण तुलसी साहित्य में लक्ष्मण के चरित्र में यही शक्ति भाव व्यंजित हुआ है। चाहे सुग्रीव की ढिलाई का प्रसंग हो या शूर्पणखा के विरूपीकरण का। तुलसी ने लक्ष्मण के इस अतुलित पराक्रम का कारण प्रभु-प्रताप ही माना है क्योंकि राम से बढ़कर पराक्रम तो किसी का हो ही नहीं सकता-

प्रभु प्रताप उर धरि रनधीरा। बोले धन इव गिरा गंभीरा।।[५०]

इसके अतिरिक्त लक्ष्मण साक्षात शेष का अवतार हैं। अतः स्वभाव में मूल अंश परिलक्षित होना पूर्णतः स्वाभाविक ही है-

जगदाधार सेष किमि, उठै चलै खिसिआइ।।[५१]

सुनु गिरजा क्रोधानल जासू। जारइ भुवन चारिदस आसू।।

संग्राम जीति को ताहीं सेवहि सुर नर अग जग जाहीं।।[५२]

इस प्रकार विभिन्न प्रसंगों के माध्यम से तुलसी लक्ष्मण के व्यक्तित्व और चरित्र को भलीभाँति चित्रित करने में सफल रहे हैं। स्वभाव की भिन्नता ही मूल रूप से लक्ष्मण को राम से पृथक करती है। निर्विवाद रूप से लक्ष्मण को राम के बाद रामकथा का सर्वाधिक प्रमुख चरित्र स्वीकारा जा सकता है क्योंकि लक्ष्मण ही राम के साथ आद्यन्त रहे हैं। **रामकथा के इस महत्वपूर्ण चरित्र को तुलसी ने पूर्ण तन्मयता और निष्ठा से जिया है। राम की संपूर्ण प्रभुता बिना लक्ष्मण के चरित्र के अधूरी प्रतीत होती है। मात्र एक स्थल पर जहाँ वे निषादराज गुह को श्री राम के परब्रह्मत्व तथा संसार की असारता का उपदेश देते हुये चिन्तक की भूमिका निभाते हैं। वह उनकी उग्रता के अनुकूल नहीं है क्योंकि चिन्तन तथा उग्रता में कोई साम्य नहीं होता।**

भरत रामकथा का सर्वाधिक उदात्त और निर्मल चरित्र है। तुलसी ने भरत के चरित्र को शील और भक्ति की जीवन्त कसौटी के रूप में अंकित किया है। यद्यपि तुलसी साहित्य में भरत के चरित्र को राम-लक्ष्मण की अपेक्षा न्यूनता से चित्रित किया गया है किन्तु भरत का चरित्र अपनी विनम्रता के कारण सर्वाधिक गरिमायुक्त तथा महत्वपूर्ण बन गया है। **आचार्य शुक्ल** इस संदर्भ में अपना

अभिमत व्यक्त करते हुए कहते हैं- "राम-लक्ष्मण के चरित्रों का चित्रण आख्यान के भीतर सबसे अधिक व्यापक होने के कारण सबसे अधिक पूर्ण है। भरत का चरित्र जितना अंकित है उतना सबसे उज्ज्वल सबसे निर्मल और सबसे निर्दोष है। पर साथ ही यह भी है कि वह उतना अधिक अंकित नहीं है। राम से भी अधिक जो उत्कर्ष उनमें दिखाई पड़ता है, वह बहुत कुछ चित्रण की अपूर्णता के कारण- उतनी अधिक परिस्थितियों में उसके न दिखाये जाने के कारण जितनी अधिक परिस्थितियों में राम-लक्ष्मण का चरित्र दिखाया गया है। पर इसमें भी कोई संदेह नहीं कि जिस परिस्थिति में भरत दिखाए गये हैं उससे बढ़कर शील की कसौटी हो ही नहीं सकती।"[५३]

संक्षेप में भरत का चरित्र इतना है कि उसकी अनुपस्थिति में कैकेयी दो वरदानों के माध्यम से उसे राज्य तथा राम को चौदह वर्ष का वनवास दिला देती है। ननिहाल से लौटने पर भरत को पितृशोक के साथ ही राम-वन-गमन की सूचना भी मिलती है। कारण ज्ञात होने पर वह माता कैकेयी को कटुवचन सुनाते हैं। तत्पश्चात राम से पुनः अयोध्या वापस चलने के लिये आग्रह करने चित्रकूट जाते हैं। वहाँ राम के समझाने पर वह चरण-पादुकाओं के साथ प्रतिनिधि के रूप में काम करने के लिये तैयार हो जाते हैं। चौदह वर्षों के बाद राम के अयोध्या लौटने पर वह उन्हें राज्य सौंपकर दास-भाव से उनकी सेवा में लगे रहते हैं। इतने से कथानक में ही तुलसी ने भरत के चरित्र को अद्भुत महत्ता प्रदान कर दी है। भरत के चरित्रगत प्रसंगों में मौलिकता का सन्निवेश तुलसी की अपनी निजी विशेषता मानी जा सकती है।

भरत के जन्मोपरान्त नामकरण के समय तुलसी उनका परिचय विश्व के भर्ता तथा पोषक के रूप में देते हैं-

विश्व भरन पोषन कर सोई। ताकर नाम भरत अस होई।।[५४]

भरत का व्यक्तित्व उनके मातुलगृह से लौटने पर ही उभरा है। परिवार के सदस्यों के प्रति उनका अटूट प्रेम था, इसकी मनोरम व्यंजना निम्न पंक्तियों में परिलक्षित होती है-

अनरथु अवध अरंभेउ जब तें। कुसगुन होंहि भरत कहुँ तब तें।।
देखहिं राति भयानक सपना। जागि करहि कटु कोटि कलपना।।
विप्र जेवाँइ देहिं दिन दाना। सिव अभिषेक करहिं बिधि नाना।।
मागहिं हृदयँ महेस मनाई। कुसल मातु पितु परिजन भाई।।[५६]

अयोध्या लौटते ही भरत सर्वप्रथम अपने कुल की कुशल क्षेम ही पूछते हैं जो उनके उदात्त पारिवारिक प्रेम का संकेत देती है-

सकल कुसल कहि भरत सुनाईं। पूँछी निज कुल कुसल भलाई।।
कहु कँह तात कहाँ सब माता। कँह सिय राम लखन प्रिय भ्राता।।[५७]

तब कैकेयी मन ही मन मुदित हो तथा ऊपर से दुख प्रकट करती हुई उसे पिता की मृत्यु का समाचार देती है। कारण पूछने पर वह अपनी कुटिलता का उल्लेख अत्यन्त प्रसन्नता से करती है।

पितृ-मृत्यु और राम-वन-गमन का कारण अपनी माता को जानकर वह पितृ-मृत्यु का शोक कुछ क्षण के लिये भूल जाते हैं। हृदय का क्रोध क्षोभ बनकर निकल पड़ता है। कतिपय विद्वान मातृ-भर्त्सना को भरत की दुर्बलता बताते हैं किन्तु ध्यातव्य है कि स्वजनों की कुटिलता पर आत्मग्लानि उत्पन्न होना स्वाभाविक है। तुलसी ने भरत की इस आत्मग्लानि का निदर्शन अत्यन्त मनोवैज्ञानिक ढंग से दिखाया है। भरत अपनी माता को फटकारते हुये कहते हैं-

सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारू। पाकें छत जनु लाग अंगारू।।
धीरज धरि मरि लेंहि उसासा। पापिनि सबहि भाँति कुलनासा।।
जौं पै कुरुचि रही अति तोही। जनमत काहे न मारे मोही।।
पेड़ काटि तैं पालउ सींचा । मीन जिअन नित बारि उलीचा।।
हंस बंसु दसरथु जनकु, राम लखन से भाइ।
जननी तूँ जननी भई, बिधि सन कछु न बसाइ।।
जब तै कुमति कुमत जियँ ठयऊ। खंड-खंड होइ हृदय न गयउ।।
बर मागत मन भइ नहिं पीरा। गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा।।
भूपँ प्रतीति तोरि किमि कीन्ही। मरन काल बिधि मति हरि लीन्ही।।
बिधिहुँ न नारि हृदय गति जानी। सकल कपट अघ अवगुन खानी।।
सरल सुसील धरम रत राऊ। सो किमि जानै तीय सुभाऊ।।
अस को जीव जंतु जग माहीं। जेहि रघुनाथ प्रान प्रिय नाहीं।।
भे अति अहित रामु तेउ तोही। को तू अहसि सत्य कहु मोही।।
जो हसि सो हसि मुँह मसि लाई। आँखि ओट उठ बैठहि जाई।।
राम बिरोधी हृदय तें प्रगट कीन्ह बिधि मोहि।
मो समान को पातकी बादि कहउँ कछु तोहि।।[५७]

'बादि कहउँ कछु तोहि' कहकर तुलसी ने भरत के शील स्वभाव की रक्षा के साथ उनका अग्रज राम के प्रति उत्कट अनुराग भी कुशलता से व्यंजित किया है। इतना कहकर भरत तुरन्त ही कौशल्या के पास जाकर अपनी वेदना को प्रकट करते हैं जिससे माता कौशल्या के मन का विषाद कम हो जाता है और वे भरत को उठाकर छाती से लगा लेती हैं। तत्पश्चात अनेक प्रकार से उन्हें समझाती हैं जिससे भरत अपनी आत्म ग्लानि की परिधि से बाहर आ सकें -

(क) भरतहि देखि मातु उठि धाई। मुरुछित अवनि परी झइँ आई।।
देखत भरतु बिकल भए भारी। परे चरन तन दसा बिसारी।।
मातु तात कहँ देहि देखाई। कहँ सिय राम लखनु दोउ भाई।।
कैकई कत जनमी जग माझा। जौ जनमित भइ काहे न बाँझा।।
कुल कलंकु जेहिं जनमेउ मोही। अपजस भाजन प्रियजन द्रोही।।

को तिभुअन मोहि सरिस अभागी। गति असि तोर मातु जेहि लागी।।
पितु सुरपुर बन रघुबर केतू। मैं केवल सब अनरथ हेतू।।
धिग मोहि भयउ बेनु बन आगी। दुसह दाह दुख दूषन भागी।।
मातु भरत के बचन मृदु सुनि पुनि उठी सँभारि।।
लिए उठाइ लगाइ उर लोचन मोचति बारि।।[५८]

(ख) "काहुहि दोष देहु जनि ताता। भा मोहि सब बिधि बाम बिधाता।।
जो एतेहुँ दुख मोहि जिआवा। अजहुँ को जानइ का तेहि भावा।।
पितु आयसु भूषन बसन, तात तजे रघुबीर।
बिसमउ हरषु न हृदयँ कछु पहिरे बलकल चीर।।"[५९]

माता के बहुत प्रकार समझाने पर भरत के हृदय का संताप होता है और वह निश्चित विधि-विधान से पिता के दाह-संस्कार में लग जाते हैं। दाह संस्कारोपरान्त गुरु वशिष्ठ उन्हें अनेक प्रकार से उपदेश देकर राज्याभिषेक के लिये कहते हैं। भरत शान्त भाव से सारी बातें सुनकर बड़ी ही विनम्रता से अपनी दीनता प्रकट करते हैं और श्री राम के समीप चित्रकूट जाने की अनुनय करते हैं। दीनता के माध्यम से यहाँ तुलसी ने भरत की चारित्रिक विशेषता का उद्घाटन अत्यंत ही प्रभावोत्पादक ढंग से किया है-

अब तुम्ह विनय मोहि सुन लेहू। मोहि अनुहरत सिखावनु देहू।।
ऊतरु देउँ छमब अपराधू। दुखित दोष गुन गनहिं न साधू।।
पितु सुरपुर सिय रामबन, करन कहहु मोहि राजु।
एहि तें जानहु मोर हित, कै आपन बड़ काजु।।
हित हमार सियपति सेवकाई। सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाई।।
मैं अनुमानि दीख मन माहीं। आन उपायँ मोर हित नाहीं।।
सोक समाजु राजु केहि लेखें। लखन राम सिय बिनु पद देखें।।
बादि बसन बिनु भूषन भारू। बादि बिरति बिनु ब्रह्म विचारू।।
सरुज सरीर बादि बहु भोगा। बिनु हरि भगति जायँ जप जोगा।।
जायँ जीव बिनु देह सुहाई। बादि मोर सबु बिनु रघुराई।।
जाउँ राम पहिं आयसु देहू। एकहि आँक मोर हित एहू।।
मोहि नृप करिभल आपन चहहू। सोउ सनेह जड़ता बस कहहू।।
कैकेई सुअ कुटिलमति, राम बिमुख गत लाज।
तुम्ह चाहत सुखु मोहबस, मोहि से अधम के राज।।
कहहुँ साँच सब सुनि पतिआहू। चाहिअ धरमसील नर नाहू।।
मोहि राजु हठि देइहहु जबही। रसा रसातल जाइहि तबहीं।।[६०]

इसके पश्चात भरत सभी माताओं, गुरुजनों व परिजनों सहित चित्रकूट की ओर प्रस्थान करते हैं। राम के प्रति भरत का अनुराग स्थान-स्थान पर परिलक्षित होता है। निषाद राज गुह द्वारा बताने पर कि राम ने यहाँ विश्राम किया था, उनके नेत्र प्रेमाश्रुओं से परिपूरित हो जाते हैं। तुलसी ने भरत की भावुकता का बड़ा ही सुन्दर चित्र खींचा है-

जहँ सिय राम लखनु निसि सोए। कहत भरे जल लोचन कोए।।
भरत बचन सुनि भयउ बिषादू। तुरत तहाँ लई गयउ निषादू।।
जहँ सिंसुपा पुनीत तर, रघुबर किय बिश्रामु।
अति सनेह सादर भरत, कीन्हेउ दंड प्रनामु।।
कुस साँथरी निहारि सुहाई। कीन्ह प्रनामु प्रदच्छिन जाई।।
चरन रेख रज आँखिन्ह लाई। बनइ न कहत प्रीति अधिकाई।।
कनक बिंदु दुइ चारिक देखे। राखे सीस सीय सम लेखे।।''[६१]

इसके पश्चात चित्रकूट की सभा भरत की विवेकशीलता तथा विनम्रता का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करती है। तुलसी ने इस स्थल पर भरत की भक्ति-भावना तथा शालीनता के उत्कर्ष को दिखाया है। भरत इस आशय से चित्रकूट सभा का आयोजन गुरु वशिष्ठ की सम्मति से कराते हैं कि गुरुभक्त राम इस सभा के निष्कर्षों के अनुपालन में सहर्ष तत्पर होंगे। भरत के विवेक और प्रेमातिरेक से अभिभूत हो वशिष्ठ स्वयं कह उठते हैं कि हे राम! मेरा हृदय भरत के वशीभूत हो गया है। मेरे विचार में भरत जो भी कहेंगे, उससे सबका कल्याण ही होगा। इसके साथ ही भरत की अनुनय के लिये तुलसी मार्ग प्रशस्त कर देते हैं-

''तेहि तें कहउँ बहोरि बहोरी। भरत भगति बस भइ मति मोरी।।
मोरें जान भरत रुचि राखी। जो कीजिअ सो सुभ सिव साखी।।
भरत विनय सादर सुनिअ, करिअ बिचारु बहोरि।
करब साधुमत लोक मत नृपनय निगम निचोरि।।[६२]

भरत की दैन्य भाव से परिपूरित अनुनय उनके चरित्र की शालीनता और राम के प्रति अनन्य भक्ति को व्यंजित करती है-

''सिसुवन तें परिहरेउ न संगू। कबहुँ न कीन्ह मोर मन भंगू।
मैं प्रभु कृपा रीति जियँ जोही। हारेहुँ खेल जितावहि मोही।।

***

विधि न सकेउ सहि मोर दुलारा। नीच बीचु जननी मिस पारा।।
यहउ कहत मोहि आजु न सोभा। अपनी समुझि साधु सुचि को भा।।
मातु मंदि मैं साधु सुचाली। उर अस आनत कोटि कुचाली।।
फरइ कि कोदव बालि सुसाली। मुकता प्रसव कि संबुक काली।।

सपनेहुँ दोसक लेसु न काहू। मोर अभाग उदधि अवगाहू।।
बिनु समुझें निज अघ परिपाकू। जारिउँ जायँ जननि कहि काकू।।
हृदय हेरि हारेउँ सब ओरा। एकहि भाँति भलेहिं भल मोरा।।
गुर गोसाईं साहिब सिय रामू। लागत मोहि नीक परिनामू।।
साधु सभाँ गुर प्रभु निकट, कहउँ सुथल सति भाउ।
प्रेम प्रपंचु कि झूठ फुर जानहि मुनि रघुराउ।।
भूपति मरन पेम पनु राखी। जननी कुमति जगतु सबु साखी।।
देखि न जाहिं बिकल महतारी। जरहिं दुसह जर पुर नर नारी।।
महीं सकल अनरथ कर मूला। सो सुनि समुझि सहेउँ सब सूला।।
सुनि बन गवनु कीन्ह रघुनाथा। कर मुनिबेष लखन सिय साथा।।
बिनु पानहिन्ह पयादेहिं पाएँ। संकरु साखि रहेउँ एहि धाएँ।।
बहुरि निहारि निषाद सनेहू। कुलिस कठिन उर भयउ न बेहू।।
अबु सबु आँखिन्ह देखेउँ आई। जिअत जीव जड़ सबइ सहाई।।
जिन्हहि निरखि मग साँपिनि बीछी। तजहिं बिषम बिषु तामस तीछी।।
तेइ रघुनंदनु लखनु सिय, अनहित लागे जाहि।
तासु तनय तजि दुसह दुख, दैउ सहावइ काहि।।[६३]

राम सहित अयोध्या का सम्पूर्ण समाज भरत के भावुक और मार्मिक वचनों को सुनकर शोक-निमग्न हो उठता है। तब राम भरत की प्रशंसा करते हुये उन्हें आत्मग्लानि के शोक से उबारने का यत्न करते हैं। भरत के चरित्र के मंगल पक्ष का प्रकाशन करने वाली निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

तात जायँ जिय करहु गलानी। ईस अधीन जीव गति जानी।।
तीनि काल तिभुअन मत मोरें। पुन्यसिलोक तात तर तोरें।।
उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई। जाइ लोक परलोकु नसाइ।।
दोखु देहि जननिहि जड़ तेई। जिन्ह गुर साधु सभा नहिं सेई।।
मिटिहहिं पाप प्रपंच सब, अखिल अमंगल भार।
लोक सुजसु परलोक सुखु, सुमिरतु नामु तुम्हार।।[६४]

इस प्रकार जब राम भरत को समझा बुझाकर उनसे अपनी बात कहने का आग्रह करते हैं तो भरत मन ही मन इस आशय से प्रसन्न होकर **"कि अब तो प्रभु राम मेरी बात स्वीकार कर ही लेंगे"** कहते हैं कि हे नाथ! आपके लौटने में सब का स्वार्थ है और आपकी आज्ञापालन में करोड़ों प्रकार से कल्याण है। अतः मेरी विनती है कि शत्रुघ्न के साथ मुझे वन में भेजकर अयोध्या को सनाथ करें और यदि यह आपको स्वीकार्य न हो तो लक्ष्मण और शत्रुघ्न दोनों भाइयों को लौटा दीजिये। आपके साथ मैं चलने को तैयार हूँ। यदि यह भी मान्य न हो तो एक मार्ग और है। हम तीनों

भाई वन चले जाते हैं और आप सीताजी सहित अयोध्या लौट जायें। हे प्रभु! जिस तरह से आपका मन प्रसन्न हो, आप करें। तुलसी ने अत्यन्त युक्तिपूर्ण ढंग से भरत के चरित्र को वैविध्य प्रदान किया है। दृष्टव्य हैं उपर्युक्त भाव व्यंजित करने वाली पंक्तियाँ-

स्वारथु नाथ फिरें सबही का। किएँ रजाइ कोटि बिधि नीका।।
यह स्वारथ परमारथ सारू। सकल सुकृत फल सुगति सिंगारू।।
देव एक बिनती सुनि मोरी। उचित होइ तस करब बहोरी।।
तिलक समाजु साजि सबु आना। करिअ सुफल प्रभु जौं मनु माना।।
सानुज पठइअ मोहि बन कीजिअ सबहि सनाथ।
नतरु फेरि अहिं बंधु दोउ, नाथ चलौं मैं साथ।।
नतरु जाहिं बन तीनिउ भाई। बहुरिअ सीय सहित रघुराई।।
जेहिं बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुना सागर कीजिअ सोई।।"[६५]

इसी प्रसंगान्तर्गत जनक अपने परिवार सहित चित्रकूट आते हैं। यहाँ रात्रि के समय तुलसी ने जनक और सुनयना के वार्तालाप के माध्यम से भरत के चरित्र पर प्रकाश डाला है जो तुलसी की आभिव्यक्तिक मौलिकता का सुन्दर संकेत देता है। भरत-व्यवहार और प्रेम से अभिभूत होकर जनक उनके यश की प्रशंसा करते हुये कहते हैं-

सावधान सुनु सुमुखि सुलोचन। भरत कथा भव बंध बिमोचनि।।
धरम राजनय ब्रह्म बिचारू। इहाँ जथामति मोर प्रचारू।।
सो मति मोरि भरत महिमाही। कहै काह छलि छुअति न छाँही।।
बिधि गनपति अहिपति सिव सारद। कबि कोबिद बुध बुद्धि बिसारद।।
भरत चरित कीरति करतूती। धरम सील गुन बिमल बिभूती।।
समुझत सुनत सुखद सब काहू। सुचि सुरसरि रुचि निदर सुधाहू।।
निरवधि गुन निरुपम पुरुषु, भरतु भरत सम जानि।
कहिअ सुमेरु कि सेर सम, कबिकुल मति सकुचानि।।
अगम सबहि बरनत बर बरनी। जिमि जलहीन मीन गमु धरनी।।
भरत अमित महिमा सुनु रानी। जानहिं रामु न सकहिं बखानी।।[६६]

स्वयं तुलसी अपने आपको भरत के चरित्र की महिमा का वर्णन करने में असमर्थ पाते हैं। असमर्थता का संकेत तुलसी के आभिव्यक्तिक सौन्दर्य तथा भरत की मानसिक गंभीरता का एक साथ परिचय देने में पूर्ण सक्षम है। दृष्टव्य हैं कतिपय पंक्तियाँ-

जासु बिलोकि भगति लवलेसू। प्रेम मगन मुनिगत मिथिलेसू।।
महिमा तासु कहै किमि तुलसी। भगति सुभायँ सुमति हियँ हुलसी।।
आपु छोटि महिमा बड़ि जानी। कबिसुल कानि मानि सकुचानी।।

कहि न सकति गुन रुचि अधिकाई। मति गति बाल बचन की नाई।।

भरत बिमल जसु बिमल बिधु, सुमति चकोर कुमारि।।

उदित बिमल जन हृदय नभ, एक टक रही निहारि।।

भरत सुभाउ न सुगम निगमहूँ। लघुमति चापलता कबि छमहूँ।।

कहत सुनत सति भाउ भरत को। सीय राम पद होइ न रत को।।"[६७]

इस प्रकार तुलसी ने भरत के चरित्र को उदात्तता से मंडित कर दिया है कि जिस भरत के यशगायन में वेद भी असमर्थ हैं, उसकी महिमा का यशोगान कवि की साधारण बुद्धि कैसे कर सकती है?

राम द्वारा अनेक प्रकार से समझाने पर भरत राम के प्रतिनिधि के रूप में राज्यसिंहासन पर उनकी चरणपादुकाएँ रख सेवक की भाँति अयोध्या का भार वहन करने के लिये तैयार हो जाते हैं। उस समय उनकी वेशभूषा, आचार-व्यवहार आदि का सुन्दर चित्र तुलसी ने अपनी तूलिका से निखारकर चरित्र चित्रण के सौन्दर्य को अद्भुत गरिमा तथा अर्थवत्ता प्रदान की है। अवलोकनीय हैं निम्न पंक्तियाँ-

सुनि सिख पाइ असीस बड़ि गनक बोलि दिनु साधि ।

सिंघासन प्रभु पादुका, बैठारे निरुपाधि।।

राम मातु गुर पद सिरु नाई। प्रभु पद पीठ रजायसु पाई।

नंदिगाँव करि परन कुटीरा। कीन्ह निवासु धरम धुर धीरा।।

जटाजूट सिर मुनिपट धारी। महि खनि कुस साँथरी सँवारी।।

असन बसन बासन ब्रत नेमा। करत कठिन रिषि धरम सप्रेमा।।

भूषन बसन भोग सुख भूरी। मन तन बचन तजे तिन तूरी।।

अवध राजु सुर राजु सिहाई। दसरथ धनु सुनि धनदु लजाई।।

तेहिं पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा।।

रमा बिलास राम अनुरागी। तजत बमन जिमि जन बड़भागी।

राम पेम भाजन भरतु, बड़े न एहिं करतूति।

चातक हंस सराहिअत, टेंक विवेक बिभूति।।

देह दिनहु दिन दूबरि होई। घटइ तेज बलु मुखछबि सोई।।

नित तव राम प्रेम पनु पीना। बढ़त धरम दलु मनु न मलीना।।

जिमि जलु निघटत सरद प्रकासे। बिलसत बेतस बनज बिकासे।।

सम दम संजम नियम उपासा। नखत भरत हिय बिमल अकासा।।

ध्रुव बिस्वासु अवधि राका सी। स्वामि सुरति सुर बीथि बिकासी।।

राम पेम बिधु अचल अदोषा। सहित समाज सोह नित चोखा।।

भरत रहनि समुझनि करतूती। भगति बिरति गुन बिमल बिभूती।।

बरनत सकल सुकबि सकुचाहीं। सेस महेस गिरा गमु नाहीं।।
नित पूजत प्रभु पाँवरी, प्रीति न हृदय समाति।
मागि मागि आयसु करतु, राज काज बहु भाँति।।
पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू। जीह नामु जप लोचन नीरू।
लखन राम सिय कानन बसहीं। भरतु भवन बसि तप तनु कसहीं।।"[६८]

तुलसी ने भरत के चरित्र को अत्यन्त कुशलता से संजोया है। इसीलिये वे बार-बार भरत के आचरण और स्वभाव का बखान करते हैं-

परम पुनीत भरत आचरनू। मधुर मंजु मुद मंगल करनू।।
हरन कठिन कलि कलुष कलेसू। महामोह निसि दलन दिनेसू।।
पाप पुंज कुंजर मृगराजू। समन सकल संताप समाजू।।
जन रंजन भंजन भव भारू। राम सनेह सुधाकर सारू।।
सिय राम प्रेम पियूस पूरन होतु जनम न भरत को।
मुनि मन अगम जम नियम सम दम विषम व्रत आचरत को।।
दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
कलि काल तुलसी से सठन्हिं हठि राम सन्मुख भरत को।।
भरत चरित करि नेमु, तुलसी जो सादर सुनहिं।
सीय राम पद पेमु, अवसि होइ भव रस बिरति।।[६९]

यह तो हुई भरत की शील-सौम्यता की अभिव्यक्ति की बात। अब आइये भरत की शक्ति-सामर्थ्य की विवेचना करते हैं। मानस के लंकाकाण्ड में तुलसी ने भरत की शक्ति और सजगता का सुन्दर चित्रण किया है। इस प्रसंग के चित्रण में तुलसी ने अपनी मौलिकता से दो भाव एक साथ व्यंजित किये हैं, हनुमान को शर संधान द्वारा आहत कर गिराना तथा दोनों भक्तों का पूर्ण परिचय कराना। भरत की सजगता और शक्ति निश्चित ही दर्शनीय है-

देखा भरत बिसाल अति, निसिचर मन अनुमानि।
बिनु फर सायक मारेउ चाप श्रवन कर तानि।।
परेउ मुरुछि महि लागत सायक। सुमिरत राम राम रघुनायक।।
सुनि प्रिय बचन भरत तब धाए। कपि समीप अति आतुर आए।।[७०]

भरत, हनुमान से पूर्ण परिचय प्राप्त करते हैं तथा यह बताने पर (कि लक्ष्मण, शक्ति लगने से मूर्च्छित हो गये हैं उन्हीं के लिये मैं यह संजीवनी लिये जा रहा हूँ) भरत पहले तो यह कहकर-

अहह दैव मैं कत जग जायउँ। प्रभु के एकहुँ काज न आयउँ।।
जानि कुअवसरु मन धरि धीरा। पुनि कपि सन बोले बलबीरा।।[७१]

शोक व्यक्त करते हैं कि अभागा प्रभु के किसी काम न आ सका। फिर तुरन्त ही शोक का

अवसर न जान हनुमान से कहते हैं कि हे तात तुम्हारा शीघ्र पहुँचना आवश्यक है। अतः विलम्ब न हो इसलिये तुम पर्वत सहित मेरे बाण पर चढ़ जाओ। मैं तुमको प्रभु राम के पास पहुँचा दूँगा-

तात गहरु होइहि तोहि जाता। काजु नसाइहि होइ प्रभाता।।

चढ़ु मम सायक सैल समेता। पठवौं तोहि जहँ कृपानिकेता।।[७२]

तुलसी का मूल भाव भरत की भक्ति तथा सौम्यता का चित्रण करना रहा है। धीरोदात्त नायक में शील के साथ शक्ति का समन्वय आवश्यक होता है इसीलिये तुलसी ने इस प्रसंग के माध्यम से यह संकेत दे दिया है कि भरत शक्ति में किसी से कम नहीं थे।

तुलसी ने भरत के चरित्र में सर्वत्र विनयशीलता की मधुरातिमधुर झाँकियाँ संजोई हैं। तुलसी का अभीष्ट समाज में आदर्शों की प्रतिष्ठा करना था। भरत के माध्यम से तुलसी ने आदर्श भक्त, सेवक, अनुज आदि स्वरूपों का मानदण्ड प्रस्तुत किया है। भरत की सौम्यता और विनम्रता वास्तव में अनुकरणीय है। पर तुलसी ने यहाँ भी भक्ति भाव को प्रधानता दी है। भक्त की आकुलता,आतुरता और भावुकता भरत के चरित्र में देखी जा सकती है। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि अयोध्याकांड में तुलसी ने भरत को कथानायक का रूप प्रदान कर दिया है। भरत की भक्तिभावना तुलसी के अभीष्ट के सौन्दर्य को स्पष्ट ध्वनित करती है। भरत के माध्यम से तुलसी ने अपने आराध्य राम के प्रताप का ही गुणगान किया है। भरत की कामना है-

अरथ न धरम न काम रुचि, गति न चहउँ निरबान।

जनम जनम रति राम पद, यह बरदानु न आन।।[७३]

तुलसी ने भरत के चरित्र में सौन्दर्य की उदात्तता समाविष्ट कर अपनी अभिव्यक्ति व्यंजित की है। मानस में सर्वाधिक निर्दोष और निर्मल चरित्र भरत का ही है। भरत का राज्य-त्याग, राम के राज्य त्याग से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। भरत के चरित्र में शील के साथ भक्ति तथा सौम्यता का समावेश उसके चरित्र को अभिनव गरिमा से युक्त करने में सक्षम ठहरता है। इसीलिये तुलसी भरत के चरित्र को निष्कलंक चन्द्रमा की उपमा से विभूषित कर अपनी सुन्दर अभिव्यक्ति निम्न रूप में संप्रेषित करते हैं-

नव बिधु बिमल तात जस तोरा। रघुबर किंकर कुमुद चकोरा।।

उदित सदा अथइहि कबहूँ ना। घटिहि न जग नभ दिन दिन दूना।।[७४]

दशरथ का चरित्र अत्यंत विवादास्पद है क्योंकि दशरथ के चरित्र में सर्वाधिक जटिलतायें दृष्टिगोचर होती हैं। पुत्र और पत्नी के प्रेम में निमग्न किन्तु किंकर्तव्यविमूढ़ दशरथ का भावुक और अवश चित्र उनके चरित्र को परखने में सहायक सिद्ध होता है। कर्तव्य के घेरे में झूलते दशरथ अंत में भावुकता को छोड़ कर्तव्य पालन में ही प्रवृत्त होते है। दशरथ के चरित्र का वर्णन रामकथा के प्रारम्भ में ही उपलब्ध होता है। मृत्यु के कारण चरित्र-चित्रण न्यूनता से होना स्वाभाविक है। अयोध्या के वर्णन से दशरथ के चरित्र की झलक स्पष्ट होती है-

अवधपुरी रघुकुल मनि राउ। बेद बिदित तेहि दसरथ नाऊ।।
धरम धुरन्धर गुननिधि ग्यानी। हृदय भगति मति सारंगपानी।।[७५]

दशरथ को कोई संतान न होने से अत्यंत ग्लानि थी। अपनी ग्लानि का वर्णन वे गुरु के सम्मुख करते हैं-

एक बार भूपति मन माँही। भै गलानि मोरे सुत नाहीं।।
गुरु गृह गयउ तुरत महिपाला। चरन लागि कर बिनय बिसाला।।[७६]

दशरथ के चरित्र की दो विशेषताऐं प्रमुख हैं उदारता तथा प्रेमातिशयता। इन गुणों के कारण ही उन्हें अत्यन्त परेशानियों का सामना करना पड़ता है। आत्यन्तिक पत्नी और पुत्र प्रेम के कारण ही उन पर अनेक आरोप लगाए जाते हैं किन्तु वह अपने इस सत्य प्रेम की रक्षा प्राणों की आहुति देकर भी करते हैं। उदार दशरथ स्त्री प्रेम या सत्य प्रेम की अतिशयता के कारण अत्यंत भावुक भी होते हैं और निर्विकार भी। इस भावुकता के कारण ही वह एक राजा की सजगता भूलकर स्वीकृति-अस्वीकृति का मानदण्ड याद नहीं रख पाते जो उसके चरित्र दौर्बल्य का कारण बन उसे मृत्यु तक पहुँचा देती है।

दशरथ ने कैकेयी से वृद्धावस्था में विवाह किया था। दशरथ अपनी कामुकता तथा विषयासक्ति के जाल में स्वयं फँस जाते हैं। मंथरा से राम के युवराजाभिषेक के सम्बन्ध में जानकर तथा उसके अनेक प्रकार से समझाने पर कैकेयी कोप भवन में चली जाती है। तुलसी ने अत्यन्त मर्यादित ढंग से दशरथ की कामुकता और विषयलम्पटता का चित्रण किया है-

"कोप भवन सुनि सकुचत राऊ। भय बस अगहुड़ परइ न पाऊ।।
सुरपति बसइ बाँह बल जाके। नरपति सकल रहहिं रुख ताके।।
सो सुनि तिय रिस गयउ सुखाई। देखहु काम प्रताप बड़ाई।।
सूल कुलिस अति अंगवनिहारे। ते रतिनाथ सुमन सर मारे।।[७७]

अपनी कामान्धता के वशीभूत हो दशरथ राम की सौगन्ध खाकर कैकेयी मनोरथ को पूर्ण करने का वचन देकर उसके कोपभवन गमन का कारण पूछते हैं। अनेकों प्रकार से उसे प्रसन्न करने का प्रयत्न करते हुए सबको कैकेयी के वश में होने की बात कहते हैं। प्रकारान्तर से यदि कहें तो कैकेयी के सम्मुख दशरथ अपनी चारित्रिक दृढ़ता खो बैठते थे। न्याय और विवेक की बात वे भूल जाते थे। तुलसी ने अत्यन्त सुन्दर और मर्यादित अभिव्यक्ति के माध्यम से इस प्रसंग को रुचिकर बना दिया है। मोह में फंसे दशरथ, प्रिया के कथन मात्र से प्रतिकूल आचरण हेतु तैयार हो जाते हैं-

'अनहित तोर प्रिया केइ कीन्हा। केहि दुइ सिर केहि जम चह लीन्हा।।
कहु केहि रंकहि करौं नरेसू। कहु केहिं नृपहिं निकासउँ देसू।।
जानसि मोर सुभाउ बरोरू। मन तब आनन चंद चकोरू।।
प्रिया प्रान सुत सर बस मोरे। परिजन प्रजा सकल बस तोरे।।

जौं कछु कहौं कपटतरि तोही। भामिनि राम सपथ सत मोही।।
बिहसि मागु मन भावति बाता। भूषन सजहिं मनोहर गाता।।
घरी कुघरी समुझि जिय देखूँ। बेगि प्रिया परिहरहिं कुवेषू।।''[७८]

दशरथ के चरित्र की यह दुर्बलता उस दाम्पत्य दोष की ओर संकेतित करती है जिसका परिहार राम ने अपने आचरण द्वारा स्पष्ट किया। तुलसी आदर्श की प्रतिष्ठा में संलग्न थे। मानव-मन के विज्ञान और समाज के विधानों से वह पूर्ण परिचित थे। आधी उम्र के पश्चात विवाह करने का परिणाम अंत में दशरथ की गति ही हो सकता है। तुलसी ने एक ओर राम के एकपत्नी व्रत की मर्यादित अभिव्यक्ति प्रस्तुत की वहीं दूसरी ओर दशरथ की स्थिति का विश्लेषण अत्यन्त सूक्ष्मता से प्रदर्शित किया है। यह प्रसंग बहुविवाह की नियति का संकेत देता है।

दशरथ के पुत्र प्रेम का निदर्शन कैकेयी के वर याचना से पूर्व प्रसंग तथा राम वन गमन के पश्चात उसकी स्थिति से स्पष्ट परिलक्षित होता है। विश्वामित्र के आगमन का प्रसंग भी दशरथ के पुत्र प्रेम का परिचय देता है-

''सुनि राजा अति अप्रिय बानी। हृदय कंप मुख दुति कुमुलानी।।
चौथेपन पायउँ सुत चारी। विप्र वचन नहिं कहेउ बिचारी।।
सब सुत प्रिय मोहि प्रान की नाई। राम देत नहिं बनई गोसाई।।
कँह निसिचर अतिघोर कठोरा। कँह सुन्दर सुत परम किसोरा।।[७९]

तुलसी ने सभी पात्रों को रामभक्त के रूप में ही चित्रित किया है। दशरथ के मन में भी राम के प्रति भगवद्-विषयक धारणा उनके जन्म से ही उपस्थित है-

दशरथ पुत्र जन्म सुनि काना। मानहुँ ब्रह्मानंद समाना।।
जाकर नाम सुनत सुभ होई। मोरे गृह आवा प्रभु सोई।।[८०]

इसके अतिरिक्त भी दशरथ की राम के प्रति वत्सल भक्ति उपलब्ध होती है। जिसके कारण ही वे **जीवन राम दरस आधीना** तथा **'जीवन मोर राम बिनु नाहीं** की धारणा बार-बार अभिव्यक्त करते हैं।

दशरथ की सत्यनिष्ठा में सन्देह का किंचित मात्र भी स्थान नहीं है। विश्वामित्र के कार्य को पूरा कराने के लिये दशरथ वचन देते हैं। राम-लक्ष्मण को भेजने की बात से उनका पितृसुलभ मोह उत्पन्न होना स्वाभाविक है किन्तु थोड़ी आनाकानी के पश्चात वे विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण को भेज देते हैं। इसी तरह कैकेयी को दिये वचनों का निर्वाह भी वे राम को वन की आज्ञा देकर करते हैं भले ही इसके लिये उन्हें मृत्यु का वरण करना पड़ता है। इस प्रकार दशरथ के चरित्र में कर्तव्य और धर्मपालन का समुचित सामंजस्य मिलता है जिसे तुलसी ने अत्यन्त सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है।

दशरथ अत्यंत व्यवहार-कुशल तथा राजनीति परायण थे किन्तु रामावतार के कारण मात्र और

राम के यश गान की प्रमुखता के कारण दशरथ का यह पक्ष पूर्णता से चित्रित नहीं हुआ। मात्र भावुक, उदार तथा विषयासक्त राजा के रूप में ही उनका चित्रण उपलब्ध होता है किन्तु तुलसी की तूलिका ने दशरथ के चरित्र को अत्यन्त उदात्त रूप में प्रस्तुत किया है। कर्तव्य की बलिवेदी पर समस्त सांसारिक सुखों के परित्याग तथा सर्वस्व संमर्पण की भावना दशरथ के चरित्र को महानता प्रदान करती है। पत्नी प्रेम के कारण पुत्र-प्रेम से वंचित दशरथ सत्यनिष्ठा के धरातल पर अवस्थित हैं। तुलसी ने दशरथ चित्रण में स्वाभाविकता तथा मानवीयता को प्रमुखता दी है।

रामकथा का यह पात्र अपनी स्वभावगत विशिष्टता के कारण अन्य चरित्रों से भिन्नता का भाव प्रदर्शित करता है। भावना तथा कर्तव्य का ऐसा विचित्र संघर्ष किसी अन्य चरित्र में उपलब्ध नहीं होता। भावना और कर्तव्य की ऊहापोह दशरथ के चरित्र के वैशिष्ट्य को प्रत्यक्ष करती है। इस प्रकार विषयासक्त स्त्री प्रेमी तथा भावुक व्यक्तियों के सम्मुख दशरथ का चरित्र एक सार्वभौमिक आदर्श प्रस्तुत करता है कि कर्तव्य पालन, भावना से श्रेष्ठ होता है।

रावण घोर भौतिकवादी, अनाचारी तथा अधर्मी था। इसका मूल रावण जन्म से संदर्भित अंतर्कथाओं से स्पष्ट होता है। तुलसी स्पष्टतः स्वीकार करते हैं कि रावण का जन्म शाप के कारण हुआ। भगवान विष्णु के दो ब्राह्मण द्वारपाल जय और विजय शाप के कारण हिरण्यकश्यप तथा हिरण्याक्ष होते हैं। इनका वध वराह तथा नृसिंह रूप में भगवान स्वयं करते हैं। ये दोनों ही रावण तथा कुम्भकर्ण के रूप में अगला जन्म प्राप्त करते हैं–

(क) **''विप्र श्राप ते दूनउ भाई। तामस असुर देह तिन्ह पाई।।**
कनक कसिपु अरु हाटक लोचन। जगत बिदित सुरपति मद मोचन।।
बिजई समर वीर विख्याता। धरि बराह बपु एक निपाता।।
होइ नरहरि दूसर पुनि मारा। जन प्रहलाद सुजस बिस्तारा।।[८१]

(ख) **''भए निसाचर जाइ तेइ, महाबीर बलवान।**
कुम्भकरन रावन सुभट, सुर बिजई जग जान।।[८२]

दूसरी अंतर्कथा के अनुसार युद्ध में देवतागणादि जालंधर से हार जाते हैं। स्वयं महादेव शंकर जालंधर का विनाश करने में असफल रहते हैं। उनकी असफलता का एकमात्र कारण था जलंधर-भामिनी का सतीत्व। शिवजी धोखे से जालंधर-प्रिया का व्रत भंग करते हैं तब वह शंकर को पृथ्वी पर जन्म लेने का शाप देती है। शाप की सत्यता के हेतु ही भगवान राम रूप में अवतरित होते हैं तथा जालंधर रावण के रूप में जन्म लेता है।

''तासु श्राप हरि दीन्ह प्रमाना। कौतुक निधि कृपाल भगवाना।।
तहाँ जलंधर रावन भयऊ। रन हति राम परम पद दयउ।।[८३]

एक अन्य अंतर्कथा के अनुसार नारद एक सुन्दर राजकन्या पर मुग्ध हो जाते हैं। उस सुन्दरी से परिणय हेतु वह विष्णु भगवान से रूपयाचना करते हैं। भगवान विष्णु उन्हें कपि रूप प्रदान कर

स्वयं उस माया रूपी कन्या का वरण करते हैं। शिवजी के दो गण नारद से अपना मुख देखने को कहते हैं। नारद कुपित होकर उन्हें शाप देते हैं-

होहु निसाचर जाइ तुम्ह, कपटी पापी दोऊ।
हँसेहु हमहि सो लेहु फल, बहुरि हँसेहु मुनि कोउ।।[८४]

ये दोनों ही अत्यन्त बलशाली राक्षस रावण और कुम्भकर्ण के रूप में जन्मते हैं।

तुलसी ने रावण जन्म के साथ एक और शाप कथा को संयुक्त किया है। कैकय नरेश सत्यकेतु के दो पुत्र अरिमर्दन और प्रतापभानु थे। प्रताप भानु राजा होने के पश्चात अपने पराक्रम से सम्पूर्ण संसार को जीत लेता है। प्रतापभानु अत्यन्त धर्मशील था। एक पराजित राजा मायावी छल से उसे बहकाकर ब्राह्मण भोज का आयोजन कराता है और सामिष आहार परसवाता है किन्तु आकाशवाणी से ब्राह्मण सावधान हो जाते हैं-

बिबिध मृगन्ह कर आमिष राँधा। तेहि महुँ बिप्र माँसु खल साँघा।।
भोजन कहुँ सब बिप्र बोलाए। पद पखारि सादर बैठाये।।
परुसन जबहिं लाग महिपाला। भै अकास बानी तेहिं काला।।
बिप्रवृन्द उठि उठि गृह जाहू। है बड़ि हानि अन्न जनि खाहू।।''[८५]

कुपित होकर ब्राह्मण उसे परिवार सहित निशाचर होने का शाप देते हैं-

बोले बिप्र सकोप तब नहिं कछु कीन्ह बिचार।
जाइ निसाचर होहु नृप मूढ़ सहित परिवार।।[८६]

पुनः आकाशवाणी होती है कि हे ब्राह्मणो, तुमने बिना सोचे समझे ही शाप दे दिया है। इस कार्य में राजा का कोई अपराध नहीं है। किन्तु ब्रह्मशाप व्यर्थ नहीं होता अतः प्रतापभानु कालान्तर में रावण बनता है। उसका अनुज अरिमर्दन कुम्भकर्ण तथा अन्य सभी परिजन राक्षसों के रूप में जन्म लेते हैं-

''काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा। भयउ निसाचर सहित समाजा।।
दस सिर ताहि बीस भुजदंडा। रावन नाम बीर बरि बंडा।।
भूप अनुज अरिमर्दन नामा। भयउ सो कुम्भकरन बलधामा।।
सचिव जो रहा धरमरुचि जासू। भयउ बिमात्र-बन्धु लघु तासू।।
नाम बिभीषन जेहि जग जाना। बिष्नुभगत बिग्यान निधाना।।
रहे जे सुत सेवक नृप केरे। भए निसाचर घोर घनेरे।।[८७]

पुलस्त्य ऋषि के पावन कुल में जन्म लेने के बाद भी मात्र ब्रह्मशाप के कारण वे सब पाप रूप में प्रकट होते हैं-

उपजे जदपि, पुलस्त्य-कुल, पावन अमल अनूप।
तदपि महीसुर श्रापबस, भए सकल अघरूप।।[८८]

इस विवेचन का मन्तव्य केवल यह है कि रावण द्वारा तपस्वियों को पीड़ा पहुँचाना, अधार्मिक आचरण करना तथा बलात दूसरे के राज्य तथा स्त्रियों को छीन लेना रावण की प्रतिशोध भावना को भी संकेतित करता है कि निरपराध को शाप देने का फल कितना भयंकर हो सकता है।

तुलसी का एक मात्र आदर्श है-

''जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिए ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही।[८९]

इस आदर्श की पूर्ण परिणिति रावण के चित्रांकन में देखी जा सकती है। रामद्वेषी रावण के प्रति तुलसी की कोई सहानुभूति नहीं है। इसीलिये रावण के चरित्र में उतनी तीव्रता नहीं आ पाई है जितनी अपेक्षित थी। रावण के चरित्रांकन में तुलसी की उदासीनता स्पष्ट दिखाई देती है। तुलसी ने उपेक्षित दृष्टि से रावण के सौन्दर्य तथा शक्ति का चित्रण किया है। तुलसी ने रावण का वर्णन राक्षसोचित रूप में किया है। अंगद अपनी भावना को अभिव्यक्ति करते हुये कहते हैं -

''अंगद दीख दसानन वैसे। सहत प्राण कज्जल गिरि जैसे।।
भुजा बिटप सिर शृंग समाना। रोमावली लता जनु नाना।।
मुख नासिका नयन अरु काना। गिरि कंदरा खोह अनुमाना।।[९०]

रावण के दस सिर तथा बीस भुजायें थी किन्तु राम द्वेषी होने के कारण उसके व्यक्तित्व की सुरूपता भी कवि को कुरूपता ही समझ आती है। यद्यपि तुलसी ने काम रूप कहकर रावण के रूप का संकेत भी दिया है-

कामरूप खल जिनस अनेका। कुटिल भयंकर बिगत बिबेका।।[९१]

कामरूप रावण अत्यन्त मायावी था, इसका संकेत तुलसी **'कामरूप जानहिं सब माया'** कहकर देते हैं।

रावण अत्यंत भयंकर तपस्या कर मानव तथा वानर अन्य किसी के हाथों से न मरने का वरदान प्राप्त करता है।

हम काहू के मरहिं न मारे। बानर मनुज जाति दुइ बारे।।[९२]

रावण यक्षपति कुबेर को परास्त कर उसकी अतुलित संपत्ति पुष्पक विमान के साथ जीत लाता है। तुलसी ने उसके शौर्य से सम्बन्धित प्रसंगों को भी अत्यधिक संक्षिप्तता से अंकित किया है-

एक बार कुबेर पर धावा। पुष्पक जान जीति लै आवा।।[९३]

रावण जानता था कि ब्राह्मण तथा ऋषि आदि के अनुष्ठानों को पूर्ण न होने दिया जाये तो वह आसानी से देवताओं को जीत सकता है और फिर उसे मारने वाला कोई बचेगा ही नहीं-

तेन्ह कर मरन एक बिधि होई। कहउँ बुझाइ सुनहुँ अब सोई।।
द्विज भोजन मख होम सराधा। सब कै जाइ करहु तुम्ह बाधा।।[९४]

इस प्रकार रावण देवताओं को परास्त करता है। देवतागण भयभीत होकर पर्वत कन्दराओं में

छिप जाते हैं-

रावन आवत सुनेउ सकोहा। देवन्ह तके मेरु गिरि खोहा।।[९५]

सूर्य, चन्द्र, वायु, वरुण, अग्नि, यमादि देवताओं को वह बन्दी बना लेता है। किन्नर, सिद्ध, मनुज, सुर तथा नागादि स्वयं उसके अधीन हो जाते हैं-

रवि ससि पवन बरुन धनधारी। अगिनि काल जम सब अधिकारी।।
किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पंथहि लागा।।"[९६]

इस प्रकार सम्पूर्ण विश्व को वह अपने आधीन कर लेता है।

ब्रह्मसृष्टि जहँ लगि तनुधारी। दसमुख बसबर्ती नरनारी।।[९७]

तुलसी ने सीता-अपहरण का कारण युद्ध में राम के हाथों रावण की मोक्ष प्राप्ति के साधन के रूप में माना है

"क्रोधवंत तब रावन, लीन्हसि रथ बैठाई।
चला गगनपथ आतुर, भय रथ हाँकि न जाई।।"[९८]

राक्षसेन्द्र रावण को राम के ईश्वरत्व के प्रति अंत तक शंका बनी रहती है। खर-दूषण वधोपरान्त वह विचार करता है कि यदि राम ईश्वर हैं तो उनसे युद्ध करते हुये मारे जाने पर भी मेरी शापमुक्ति निश्चित है तथा यदि ऐसा नहीं है तो उन्हें पराजित कर उनकी सुन्दर पत्नी का हरण कर उपभोग करूँगा। इसलिये वह मामा मारीचि की सहायता से राम के ईश्वरत्व का परीक्षण करने की योजना बनाता है-

खर दूषण मोहि सम बलवंता। तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता।।
सुररंजन भंजन महि भारा। जौं भगवन्त लीन्ह अवतारा।।
तो मैं जाइ बैरु हठि करउँ। प्रभु सर बान तजें भव तरउँ।।"[९९]

उसकी परीक्षा में राम असफल रहते हैं क्योंकि वे स्वर्णमृग का रहस्य नहीं जान सके। अतः रावण ने अपनी बुद्धि के अनुसार उन्हें राजा मात्र ही माना, ईश्वर नहीं। इसीलिये दूसरे मन्तव्यानुसार वह सीता का हरण कर लेता है-

जौं नररूप भूपसुत कोऊ। हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ।।[१००]

इसीलिये वह मन्दोदरी, विभीषणादि परिजनों तथा हनुमान और अंगद आदि के समझाने पर उनका उपहास करता है।

तुलसी ने रावण की युद्ध नीति और कौशल का भी सुन्दर वर्णन किया है किन्तु उसका अहंकार केवल अपने मत के अनुसार ही उसे कार्य करने को बाध्य करता है। तुलसी के रावण को युद्धनीति के चारों अंगों का समुचित ज्ञान था-

बहुबिधि खल सीतहि समझावा। साम दान भय भेद दिखावा।।[१०१]

शत्रु के सैन्य बल का पता लगाने के लिये शुक सारणादि गुप्तचरों को भेजना रावण की भेदनीति

का उदाहरण है-

(क) जबहिं बिभीषन प्रभु पहिं आए। पाछें रावन दूत पठाए।[१०२]

(ख) सकल चरित तिन्ह देखे, धरें कपट कपि देह।

प्रभु गुन हृदय सराहहिं सरनागत पर नेह।।[१०३]

राम की प्रभुता चित्रण के लिये रावण के उपेक्षित चित्रण परम आवश्यक था। इसीलिये एक ओर तुलसी ने रावण के पराजय संबंधी प्रसंगों में व्यंग्यात्मक शैली अपनाई है वहीं दूसरी ओर उसकी शारीरिक तथा आत्मिक शक्ति का वर्णन भी अत्यन्त उपेक्षा से किया है-

(क) एक कहत मोहि सकुच अति, रहा बालि की काँख।

इन महुँ रावन तै कवन सत्य बदहि तजि माख।।[१०४]

(ख) सूर कवन रावन सरिस, स्वकर काटि जेंहि सीस।

हुते अनल अति हरष बहु बार साखि गौरीस।।[१०५]

(ग) कह अंगद सलज्ज जग माँही। रावन तोहि समान कोई नाहीं।।

लाजवंत तब सहज सुभाउ। निज मुख निज गुन कहसि न काउ।।

सिर अरु सैल कथा चित रही। ताते बार बीस तैं कही।।

सो भुजबल राखेहु उर घाली। जीतेहु सहसबाहु बलि बाली।।[१०६]

(घ) छत्र मुकुट ताटंक सब, हते एक ही बान।

सबके देखत महि परे, मरमु न कोऊ जान।।[१०७]

तुलसी बार-बार रावण के उपहास का चित्रण करते हैं। अंगद द्वारा किरीट-मुकुट गिराना तथा पैर उठाने के लिये रावण को ललकारना उसकी शक्ति की उपेक्षा और उपहास को ही व्यंजित करता है-

गिरत संभारि उठा दसकंधर। भूतल परे मुकुट अति सुन्दर।।

कछु तेहिं लै निज सिरन्हि संवारे। कछु अंगद प्रभु पास पबारे।।[१०८]

राजसभा के मध्य तथा बाहर दोनों ही स्थानों पर तुलसी ने रावण के प्रताप का मर्दन प्रस्तुत किया है। नल-नील उसके सिरों पर चढ़कर बिना भयभीत हुये उछल कूद मचाते हैं-

एक नखन्हि रिपु बपुष बिदारी। भाग चलहिं एक लातन्ह मारी।।

तब नल नील सिरन्हि चढ़ि गयऊ। नखन्हि लिलार बिदारत भयऊ।।[१०९]

हनुमान उसे मुक्का मारकर मूर्च्छित कर देते हैं तथा जाम्बवान लात मारकर रथ से नीचे गिरा देते हैं-

(क) जानु टेकि कपि भूमि न गिरा। उठा संभारि बहुत रिस भरा।।

मुठिका एक ताहिं कपि मारा। परेउ सैल जनु बज्र प्रहारा।।[११०]

(ख) देखि भालुपति निज दल घाता। कोपि माझ उर मारेसि लाता।।[१११]

लात मार कर निष्कासित किया हुआ विभीषण उसे अपनी गदा से धराशायी कर देता है। मूर्च्छित लक्ष्मण को उठाने में रावण सफल नहीं होता किन्तु हनुमान अचेत लखन लाल को उठा लेते हैं। रावण हनुमान की पूँछ पकड़कर लक्ष्मण सहित गिराना चाहता है किन्तु हनुमान उन्हें लेकर आकाश में उड़ जाते हैं। इस प्रकार इन सारी स्थितियों की अभिव्यक्ति के माध्यम से तुलसी ने रावण को अत्यन्त दयनीय बना दिया है। तुलसी का अभीष्ट भी यही था कि रावण की दीनता दर्शाकर राम की प्रभुता का वर्णन। रावण की दीनता के चित्रण के बिना राम के औदार्य तथा शक्ति का चित्रण असंभव था। कतिपय मनीषी तुलसी पर रावण की शक्ति का सम्यक वर्णन प्रस्तुत न करने का दोष लगाते हैं किन्तु इस सन्दर्भ में ध्यातव्य है कि तुलसी का एकमात्र उद्देश्य रामचरित्र का गुणगान करना था रावण चरित्र का नहीं। इस दृष्टि से तुलसी ने रावण का चरित्र-चित्रण अत्यन्त सफलता से प्रस्तुत किया है, यह कहना असंगत नहीं ठहरता। तुलसी ने रावण के पिता, भाई, पति तथा राजा रूप को समुचित रूप में दिखाया है। तुलसी के रावण का चरित्र-चित्रण उनके ध्येय वाक्य **'जाके प्रिय न राम बैदेही'** के अनुसार ही हुआ है। रावण यद्यपि अत्यन्त ज्ञानी, तपस्वी, नीतिनिपुण तथा महावीर था किन्तु शक्ति का दुरुपयोग अहंकार को जन्म देता है और अहंकार का विनाश होना सार्वभौमिक सत्य है। इसलिये राम उसे मारकर सद्गति प्रदान करते हैं। भक्त वत्सल राम किसी का अनिष्ट नहीं करते। मरने के बाद रावण के तेज को अपने तेज में विलीन कर उसे शापमुक्त करते हैं-

तासु तेज समान प्रभु आनन।[११२]

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से तुलसी साहित्य में **हनुमान** का अपना एक विशिष्ट स्थान है। तुलसी ने अन्य पात्रों की तरह हनुमान को भी राममय चरित्र के रूप में प्रस्तुत किया है। मानस में तुलसी ने हनुमान के शील और सामर्थ्य की सुन्दर व्यंजना प्रस्तुत की है। हनुमान बाहुक में तुलसी ने हनुमान के रूप सौन्दर्य का परिचय भी दिया है। दृष्टव्य हैं कतिपय पंक्तियाँ-

स्वर्न सैल संकास कोटि रबि तरुन तेज धन।
उर बिसाल भुजदंड चंड नख बज्र बज्रतन।।
पिंग नयन भृकुटी कराल रसना दसनानन।
कपिस केस करकस लंगूर, खर-दल, बल भानन।।
कह तुलसिदास बस जासु उर, मारुत सुत मूरति बिकट।
संताप पाप तेहि पुरुष चहिं सपनेहु नहिं आवत निकट।।[११३]

पवन-तनय की बुद्धिमत्ता तथा वाक-कौशल का वर्णन तुलसी ने राम से हनुमान की प्रथम भेंट में अत्यन्त सूक्ष्मता से प्रदर्शित किया है। राम ने विप्र संबोधन से हनुमान के बुद्धि कौशल की प्रशंसा का संकेत दिया है-

इहाँ हरी निसिचर बैदेही। बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही।
आपन चरित कहा हम गाई। कहहु बिप्र निज कथा बुझाई।।[११४]

तुलसी ने वानर राष्ट्र के प्रमुख प्रतिनिधि के रूप में हनुमान का चित्रण किया है। राम और वानर-राष्ट्र का सम्बन्ध हनुमान के माध्यम से हुआ है। राम के सहयोग से हनुमान ने अपने राष्ट्र के गौरव की रक्षा ही नहीं की अपितु उसका मानाभिवर्द्धन भी किया है।

तुलसी ने हनुमान को परम भक्त के रूप में दिखाया है। जब राज्याभिषेक के पश्चात सुग्रीवादि किष्किंधा लौट आते हैं तो हनुमान सुग्रीव से राम के चरणों में रहने की अनुमति माँगते हैं। उसकी अनन्य भक्ति देखकर सुग्रीव सहर्ष अनुमति दे देते हैं-

तब सुग्रीव बचन कहिं नाना। भाँति बिनय कीन्हें हनुमाना।।
दिन दस करि रघुपति पद सेवा। पुनि तव तरन देखिहऊँ देवा।।
पुन्य पुंज तुम्ह पवन कुमारा। सेवहु जाइ कृपा आगारा।।[११५]

हनुमान पूरे दस दिन तक रघुपति-चरणों की सेवा करते हैं तथा जन्म जन्मान्तर राम कृपा का वरदान प्राप्त करते हैं-

नाथ एक बर मागउँ, राम कृपा करि देहु।
जन्म जन्म प्रभु पद कमल, कबहुँ घटे जनि नेहु।।[११६]

तुलसी ने आदर्श सेवक के गुणों का समावेश हनुमान के चरित्र में किया है। भक्त के अतिरिक्त हनुमान की राजनीति-पटुता सचिव तथा दूतगत कुशलता, वाक्पटुता, बुद्धिमत्ता तथा दूरदर्शिता का तुलसी ने अत्यन्त सुन्दर ढंग से वर्णन किया है।

बालि-वध के पश्चात सुग्रीव भोग और विलासिता में रम जाते हैं। निश्चित अवधि के उपरान्त लक्ष्मण अत्यंत क्रोध में किष्किंधा आते हैं कि सुग्रीव को उसकी करनी का दण्ड मिलना ही चाहिए। किन्तु सुयोग्य सचिव हनुमान यह पहले से ही भाँप जाते हैं और अत्यन्त नम्रता के साथ सुग्रीव से कहते हैं कि भार्याहरण के कारण राम अत्यन्त दुखी हैं इसलिये यदि लखन लाल कुछ अपशब्द भी कहें तो उन्हें चुपचाप होकर सुन लीजियेगा। आपसे अपराध हुआ है और इसका निवारण लक्ष्मण को प्रसन्न करने सें ही हो सकता है। मंत्री का यह कर्तव्य है कि राजा का अहित न होने दे। इसीलिये मैं यह विचार प्रस्तुत कर रहा हूँ। हे राजन! आप पुत्र मित्राादि स्वजनों के साथ लक्ष्मण को प्रणाम कर अपना अपराध स्वीकार कर लें तथा वचनानुसार रामकाज में तत्परता से जुट जायें। जिस प्रकार पत्नी पति के वश में रहती है उसी भाँति राम के आधीन रहने में ही आपकी सुगति है अन्यथा राम-लक्ष्मण का कोप और शक्ति दोनों ही आप भलीभाँति जानते हैं। तुलसी ने इस प्रसंग का अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन पूर्ण कौशल से किया है-

(क) **"इहाँ पवन सुत हृदय बिचारा। राम काजु सुग्रीव बिसारा।।**
निकट जाइ चरनन्हिं सिरु नावा। चारिहु बिधि तेहि कहि समुझावा।।
अब मारुत सुत दूत समूहा। पठवहुँ जहँ तहँ वानर जूहा।।
तब हनुमंत बोलाए दूता। सब कर करि सनमान बहूता।।"[११७]

(ख) "सुनु हनुमंत संग लै तारा। करि बिनती समुझाउ कुमारा।।
तारा सहित जाइ हनुमाना। चरन बन्दि प्रभु सुजस बखाना।।
पवन तनय सब कथा सुनाई। जेहि बिधि गए दूत समुझाई।।"[११८]

हनुमान की दूरदर्शिता का इससे सुन्दर दृष्टान्त क्या हो सकता है कि राम कोई कार्य हनुमान की सलाह के बिना नहीं करते थे। इसका प्रमाण विभीषण-आश्रय प्रसंग से मिलता है। राम के निर्णय से हनुमान पूर्ण संतुष्ट होते हैं-

सुनि प्रभु बचन हरष अनुमाना। सरनागत बच्छल भगवाना।।[११९]

हनुमान अपनी कल्पना शक्ति और प्रेरणा का मूल राम को ही स्वीकारते हुये कहते हैं-

कह हनुमन्त सुनहु प्रभु, ससि तुम्हार प्रिय दास।
तबं मूरति बिधु उर बसति, सोइ स्यामता अभास।।[१२०]

सीतान्वेषण के निमित्त राम को हनुमान पर ही सबसे अधिक भरोसा है। सुग्रीव भी इस हेतु हनुमान को ही सक्षम मानते हैं। राम, हनुमान को ही पहचान के लिये अपनी मुद्रिका देते हैं। भक्त हनुमान ऐसे जटिन कार्य को प्रभु प्रसाद मानकर स्वीकारते हैं-

पाछे पवन तनय सिरु नावा। जानि काज प्रभु निकट बोलावा।।
परसा सीस सरोरुह पानी। कर मुद्रिका दीन्हि जन जानी।।
बहु प्रकार सीतहि समुझाएहु। कहि बल विरह बेगि तुम्ह आएहु।।
हनुमत जन्म सुफल करि माना। चलेउ हृदय धरि कृपानिधाना।।[१२१]

सुग्रीव तथा राम के आदेशानुसार यह परम कर्तव्य आशानुरूप निभाने में हनुमान के चरित्र का वैशिष्ट्य स्पष्ट प्रत्यक्ष परिलक्षित होता है। अकेले लंका यात्रा कर, सीतान्वेषण कर वापिस लौटने तथा राम के साथ युद्ध में सहयोगी योद्धा के रूप में हनुमान की शक्ति-सामर्थ्य का सुन्दर परिचय मिलता है। लंका का पूर्ण भ्रमण कर गोपनीय तथा अन्य आवश्यक जानकारियों को प्राप्त कर वह सफल तथा कुशल गुप्तचर की सक्षमता सिद्ध करते हैं। रावण के सम्मुख उसका दूतकर्म अत्यंत प्रभावी सिद्ध हुआ है। इसके अतिरिक्त हनुमान की सुशीलता रावण के महल में उपस्थित नारियों को देखकर संकुचित होने से स्पष्ट होती हैं। सीता की करुण अवस्था से उनका हृदय द्रवीभूत हो उठता है। उनकी संवेदन-शीलता का चित्रण तुलसी ने अत्यंत भावुक होकर किया है। भक्ति भाव से पूर्णतः मंडित हनुमान का चरित्र तुलसी ने पूर्ण तन्मयता से चित्रित किया है।

तुलसी ने हनुमान को सुन्दरकाण्ड में कथानायक का रूप प्रदान किया है। सीतान्वेषण के दायित्व की पूर्ति करते समय तुलसी ने हनुमान की परीक्षाओं का भी सम्यक चित्रण कर उनके चरित्र को निखारने में सफलता प्राप्त की है। इन परीक्षाओं के माध्यम से हनुमान की प्रलोभन विमुखता, बौद्धिक निपुणता तथ वीरता का प्रमाण मिलता है।

समुद्र-लंघन में सक्षम, पुण्यकर्ता रामसेवक हनुमान को क्षणभर विराम देने की दृष्टि से

समुद्र-मैनाक पर्वत से प्रकट होने के लिये कहता है। मैनाक पर्वत हनुमान का मार्ग रोककर कहता है कि आप इतनी लम्बी यात्रा पर निकले हैं। कुछ क्षण विश्राम कर लें ताकि आपकी थकान दूर हो सके। किन्तु हनुमान प्रलोभन में न पड़ कहते हैं कि राम-कार्य पूर्ण किये बिना विश्राम की बात निरर्थक है-

हनूमान तेहि परसा, कर पुनि कीन्ह प्रणाम।
राम काजु कीन्हें बिना, मोहि कहाँ बिश्राम।।[१२२]

इसके पश्चात हनुमान की दूसरी परीक्षा का प्रसंग मिलता है। महर्षि तथा देवगणादि नागमाता सुरसा से कहते हैं कि हनुमान समुद्र के ऊपर आकाशमार्ग से जा रहा है। उसकी बुद्धि परीक्षा हेतु आप उसके मार्ग में बाधा उत्पन्न कर दें-

जात पवन सुत देवन्ह देखा। जानै कहुँ बल बुद्धि बिसेसा।।
सुरसा नाम अहिन्ह कै माता। पठइन्हि आई कही तेहि बाता।।[१२३]

नागमाता सुरसा हनुमान का मार्ग रोककर उसे आहार रूप में खाने की बात कहती हैं। हनुमान अत्यन्त विनम्रता से कहते हैं कि यदि आप मेरा भक्षण ही करना चाहती हैं तो मुझे पहले सीता का दर्शन कर प्रभु राम से मिल, समाचार दे आने दीजिये तत्पश्चात मैं स्वयं आपके मुँह में भक्षण हेतु उपस्थित हो जाऊँगा।

राम कांजु करि फिरि मैं आवौं। सीता कई सुधि प्रभुहि सुनावौं
तब तव बदन पैठिहउँ आई। सत्य कहउँ मोहि जान दै माई।।[१२४]

नागमाता अपने हठ पर अड़ी रहती हैं तब हनुमान अपनी बुद्धि का प्रयोग कर अपनी शरीर बढ़ाते हैं। स्पर्धाभाव से सुरसा अपना आकार भी बढ़ाती है तब हनुमान अत्यन्त सूक्ष्म रूप से ग्रहण कर उसके मुँह में प्रवेश कर तुरन्त बाहर निकल आते हैं। तब नागमाता सुरसा प्रसन्न होकर हनुमान को बुद्धि परीक्षा की बात बताती हैं-

मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा। बुधि बल मरमु तोर मैं पावा।[१२५]

तत्पश्चात लंका प्रवेश के समय द्वाररक्षक लंकिनी को देखकर मच्छर के सदृश अत्यन्त लघु रूप रखकर प्रवेश करना चाहते हैं। लंकिनी के रोकने पर उसे घूंसा मारकर अर्द्धमूर्च्छित कर देते हैं। यह प्रसंग हनुमान की शक्ति और बुद्धि-चातुर्य का निदर्शन प्रस्तुत करता है।

(क) **पुर रखवारे देख बहु कपि मन कीन्ह बिचार।**
अति लघु रूप धरौं निसि नगर करौं पइसार।।[१२६]

(ख **"मसक समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिर नरहरी।।**
नाम लंकिनी एक निसिचरी। सो कह चलेसि मोहि निंदरी।।
जानेउ नहीं मरमु सठ मोरा। मोर अहार जहाँ लगि चोरा।।
मुठिका एक महाकपि हनी। रुधिर बमत धरनीं ढनमनी।।[१२७]

विभीषण के सहयोग से सीता तक पहुँचना हनुमान की तात्कालिक बुद्धि का प्रमाण देता है। सीता से परिचय तक का प्रसंग उनकी मनोवैज्ञानिकता का उदाहरण प्रस्तुत करता है। मुद्रिका डालने के पश्चात रामकथा का गायन कर सीता के मन में उत्कंठा जगाना, तदनंतर परिचय देकर कुशलता प्राप्त करना हनुमान के ही वश की बात थी।

लंका आक्रमण के पश्चात युद्ध-प्रसंगों में हनुमान के शौर्य तथा पराक्रम से संबंधित अनेक उदाहरण मिलते हैं। जिनमें रावण द्वारा लक्ष्मण को मूर्च्छित करने पर हनुमान का रावण को मुष्टिप्रहार से धराशायी कर लक्ष्मण को राम के पास ले जाना, कुम्भकर्ण तथा इन्द्रजीत मेघनाद से युद्ध करना, संजीवनी आनयन में पूरे पर्वत को उठा लाना आदि प्रमुख प्रसंग हैं जो हनुमान के रणकौशल तथा अतुल बल का प्रत्यक्ष प्रमाण देते हैं। हनुमान अपनी सारी शक्ति और पराक्रम का मूल केवल रामकृपा मानते हैं जो उनके आदर्श भक्त होने का परिचायक है-

सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोर प्रभुताई।।
ता कहुँ प्रभु कछु अगम नहिं जा पर तुम्ह अनुकूल।।[१२८]

तुलसी ने हनुमान के चरित्र में भक्ति का अनुपम समावेश किया है। दुर्बलताओं में विस्मरणशीलता तथा असंयतता उनके चरित्र को और उदात्त स्वरूप प्रदान करने में सहयोगी सिद्ध हुई है। समुद्र लंघन के पूर्व अपने बल तथा द्रोणाचल पर पहुँचकर औषधियों के विवरण की विस्मरणशीलता भी उनके चरित्र को अन्यतम गरिमा प्रदान करती है।

इन नगण्य दुर्बलताओं से युक्त हनुमान अपने विशिष्ट गुणों से राम के सर्वप्रिय भक्त का अधिकार प्राप्त करने में सक्षम रहे हैं। यही कारण है कि तुलसी ने राम और सीता के बाद हनुमान के चरित्र को सर्वाधिक प्रमुखता से चित्रित किया है। राम की अनन्य भक्ति हनुमान के चरित्र को वन्दनीय बना देती है। **आचार्य शुक्ल** के मतानुसार- **वे सेवक के आदर्श हैं। सेव्य सेवक-भाव का पूर्ण स्फुरण उनमें दिखाई पड़ता है। बिना किसी प्रकार के पूर्व परिचय के राम को देखते ही उनके शील, सौन्दर्य और शक्ति के साक्षात्कार मात्र पर मुग्ध होकर पहले पहल आत्मसमर्पण करने वाले भक्त राशि हनुमान ही हैं। उनके मिलते ही मानों भक्ति के आश्रय और आलंबन दोनों पक्ष पूरे हो गए और भक्ति की पूर्ण स्थापना लोक में हो गई। इसी रामभक्ति के प्रभाव से हनुमान सब रामभक्तों की भक्ति के अधिकारी हुये।"**

इस प्रकार तुलसी ने हनुमान के माध्यम से सेवक के आदर्शों की सुन्दर प्रतिष्ठा की है। स्वामी के प्रति अगाध भक्ति तथा कार्य के प्रति निरालसता हनुमान के चरित्र में उपलब्ध होती है। हनुमान के चरित्र की सौन्दर्यात्मक प्रस्तुति तुलसी के चरित्रचित्रण के सौन्दर्य को अत्यन्त सुन्दर ढंग से प्रतिबिम्बित करती है।

विभीषण भी रामकथा का प्रमुख पात्र है। कतिपय आलोचक विभीषण पर राष्ट्रद्रोही तथा कुलघातक होने का आक्षेप लगाते हैं किन्तु यदि सूक्ष्मता से बिना किसी पूर्वाग्रह के विचार किया जाये तो विभीषण

का रावण का साथ छोड़कर राम की शरण में आना लोकमंगल की दृष्टि से पूर्ण उचित ठहरता है।

तुलसी ने प्रारंभ में ही विभीषण के धर्मनिष्ठ स्वरूप का वर्णन करते हुये कहा है-

सचिव जो रहा धरम रुचि जासू। भयउ बिमात्र बंधु लघु तासू।।

नाम विभीषन जेहि जग जाना। विष्नुभगत विज्ञान निधाना।।[१२६]

विभीषण भगवान से निष्काम भक्ति का वरदान प्राप्त करते हैं-

तेहिं मागेउ भगवंत पद, कमल अमल अनुराग।[१३०]

धर्ममति होने के कारण विभीषण स्वयं को राक्षसकुल में सदैव उपेक्षित सा अनुभव करते हैं। राम भक्त विभीषण लंका में रहकर भी अपनी भक्ति साधना से कभी विमुख नहीं हुये। हनुमान को लंका भ्रमण के समय एक ऐसा भवन दिखाई देता है जिसमें राम के आयुध अंकित थे तथा सब तरफ तुलसी वृन्द थे-

(क) **भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मंदिर तँह भिन्न बनावा।।**[१३१]

(ख) **रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाई।**

नव तुलसिका वृन्द तहँ देखि हरष कपिराई।।[१३२]

विभीषण के मुख से राम-नाम का उच्चारण सुन हनुमान की उत्कंठा बढ़ जाती है। वह ब्राह्मण के रूप में विभीषण को रामकथा सुनाते हैं जिससे विभीषण अत्यन्त प्रसन्न होते हैं-

(क) **राम नाम तेहि सुमिरन कीन्हा। हृदय हरष कपि सज्जन चीन्हा।।**[१३३]

(ख) **विप्ररूप धरि बचन सुनाए। सुनत बिभीषन उठि तहँ आए।।**[१३४]

(ग) **तब हनुमन्त कही सब, रामकथा निज नाम।**

सुनत जुगत तन पुलक मन मगन सुमिरि गुनग्राम।।[१३५]

तब रामभक्त विभीषण अत्यन्त दीनता से अपनी स्थिति का चित्रण करते हुये कहते हैं-

सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हिं महुँ जीभ बिचारी।।[१३६]

इस प्रकार पुरातन संस्कार और वरदानों से विभीषण की भक्ति दिन प्रतिदिन बढ़ती जाती है। उसके पुण्योदय के संकेत रूप में उनका हनुमान से साक्षात्कार हुआ तथा सन्तदर्शन के उपदेश के प्रभाव से वे आत्मविकास के पथ की ओर अग्रसर हुये।

विभीषण के नीतिवान होने का प्रमाण दूत को न मारने की सलाह से मिलता है-

नाइ सीस करि बिनय बहूता। नीति बिरोध न मारिय दूता।।

आन दण्ड कछु करिअ गोसाईं। सबही कहा मंत्र भल भाई।।[१३७]

विभीषण कई बार रावण को सीता को वापस करने तथा राम की भक्ति हेतु समझाता है, किन्तु राम के ईश्वरत्व पर संदेह करने वाला रावण ऐसा करने को तैयार नहीं होता वरन् उसे द्रोही कहकर लात मारता है-

(क) **काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक के पंथ।**

सब परिहरि रघुबीर हि भजहु भजहिं जेहि संत।।[138]

(ख) तात चरन गहि मागउँ, राखहु मोर दुलार।
सीता देहु राम कहुँ अहित न होइ तुम्हार।।[139]

(ग) मम पुर तपसिन्ह पर प्रीती। सठु मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती।।
अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा। अनुज गहे पद बारहिं बारा।।[140]

तिरस्कृत होकर भी राक्षस-कुल तथा राक्षस-राष्ट्र की उन्नति के लिये विभीषण विचार करते हैं कि लोकमंगल की दृष्टि से रावण का परित्याग करना ही श्रेष्ठ है। विभीषण का हृदय इस बात से भली भाँति परिचित है कि राक्षस-राष्ट्र राम की प्रभुता के सामने टिकने वाला नहीं है। उसे बचाने के लिये राम की शरण में जाना ही उचित है। अतः विभीषण निर्विकार रूप से राम की शरण में चले जाते हैं। इस प्रसंग में गोस्वामी तुलसी दास ने चरित्र-चित्रण की उदात्तता का प्रमाण दिया है। विभीषण यदि लात प्रहार के विरोध में जरा भी क्रोध करते तो उनका चरित्र-हनन निश्चित था परन्तु तुलसी ने सुन्दर अभिव्यक्ति के द्वारा धर्मात्मा विभीषण का चरित्र स्खलित होने से बचा लिया है। आचार्य शुक्ल तुलसी के चरित्र चित्रण के सौन्दर्य के बारे में अपना अभिमत देते हुये कहते हैं कि-

"इस स्थल पर गोस्वामी जी का चरित्र-निर्वाह-कौशल झलकता है यदि यहाँ थोड़ी से भी असावधानी हो जाती, विभीषण क्रोध करते हुये दिखा दिए जाते, तो जिस रूप में विभीषण का चरित्र वे दिखलाना चाहते, वह बाधित हो जाता। अधिकतर यही समझा जाता कि क्रोध के आवेश में विभीषण ने रावण का साथ छोड़ा। कवि ने विभीषण को साधु प्रकृति का बनाया है। हरी हुई सीता को लौटाने के बदले रावण का राम से लड़ने के लिये तैयार होना असाधुता की चरम सीमा थी, जिसे विभीषण की साधुता न सह सकी, गोस्वामी जी का पक्ष यह है।

इस प्रकार व्यापक दृष्टि से तुलसी ने विभीषण का चरित्र निस्वार्थ, उदार, राजनीति-कुशल तथा राष्ट्रहितैषी के रूप में चित्रित किया है। भक्ति का सन्निवेश उसके चरित्र को और परिष्कृत स्वरूप में निखारता है।

सुग्रीव का चरित्र अत्यधिक औसत स्वरूप के चित्रण को स्पष्ट करता है। उनकी भलाई या बुराई भी सामान्य कोटि की है। राम के साथ मैत्री में भी उसका पूर्वाग्रह स्पष्ट झलकता है। बालिवध के पश्चात सुग्रीव किष्किंधा के नरेश हो जाते हैं। राम द्वारा अपने कार्यसाधन के उपरान्त वे राम के कार्य में सहयोग करना भूल जाते हैं। सुख-विलास में निश्चिंत सुग्रीव को हनुमान सावधान करते हैं। तत्पश्चात सुग्रीव रघुवंशियों के कोप से घबराकर, उनके कार्य में तत्परता से संलग्न हो जाते हैं। इस प्रकार तुलसी ने सुग्रीव का चित्रण सामान्य पात्र के अनुसार ही किया है। भक्ति के समावेश से तुलसी ने उन्हें भी अन्यतम स्थान का अधिकारी बना दिया है। तुलसी ने राम की प्रभुता को ही मूल प्रेरक तथा अन्य को निमित्त मात्र स्वीकार कर ही सर्जना की है इसीलिये सुग्रीव की शक्ति का वर्णन तुलसी ने अत्यधिक नगण्य रूप में किया है। सुग्रीव निम्न वानर जाति के प्रतिनिधि हैं। उसके

चरित्र से वानर जाति की संस्कृति व सभ्यता ध्वनित होती है।

आदर्श मित्र की पूर्ण पराकाष्ठा तुलसी ने **निषादराज गुह** के चरित्र में व्यंजित की है। वानरराज सुग्रीव तथा राक्षस श्रेष्ठ विभीषण की तुलना में निषादराज गुह का चरित्र अत्यधिक उदात्त है क्योंकि गुह का चरित्र विभीषण तथा सुग्रीव की भाँति किंचित भी स्वार्थपरक नहीं है। गुह का सख्यभाव इसी कारण सर्वाधिक प्रशंसा का अधिकारी है।

गुह को जब राम के आगमन का समाचार प्राप्त होता है तो वह भक्ति भाव से फलमूलादि लेकर राम के सम्मुख आकर विनय भाव से दंडवत करता है। तुलसी ने अत्यन्त मर्यादित भाव से इस प्रसंग को अभिव्यक्ति देकर गुह के चरित्र को अनुपम आभा से प्रकाशित किया है। दृष्टव्य है गुह के चरित्र की निर्मलता का घोष करने वाली कतिपय पंक्तियाँ-

यह सुधि गुह निषाद जब पाई। मुदित लिये प्रिय बंधु बोलाई।।
लिए फल मूल भेंट भरि मारा। मिलन चहेउ हिय हरषु अपारा।।
करि दंडवत भेंट करि आगे। प्रभुहि बिलोकत अति अनुरागे।।
नाथ कुसल पद पंकज देखे। भयउँ भाग भाजन जन लेखें।।
देव धरनि धनु धामु तुम्हारा। मैं जनु नीचु सहित परिवारा।।
कृपा करिअ पुर धारिउ पाऊ। थापिअ जनु सबु लोग सिहाऊ।।[१४१]

इस प्रकार गुह अपने परिवार के साथ राम, लक्ष्मण तथा जानकी की सेवा, अभ्यर्थना में लगा रहता है। निषादराज गुह का कथानक में दूसरी बार प्रवेश भरत के चित्रकूट आगमन के समय चित्रित हुआ है। भरत को ससैन्य राम की दिशा में प्रयाण करते देख गुह उद्विग्न हो राम के हित भरत से युद्ध करने के लिये तत्पर हो उठता है। सर्वप्रथम वह नीति के अनुसार भरतागमन का ध्येय जानने के लिये उसके पास पहुँचता है। तुलसी ने शुभ शकुनों के माध्यम से भरत द्वारा अहित न होने का संकेत देकर प्रसंग को अत्यधिक सुंदर बना दिया है। जब भरत के शुभ मन्तव्य से गुह परिचित होता है तो अत्यन्त प्रसन्न होकर भरत की अगवानी करता है तथा नौकाओं के माध्यम से भरत को परिवार तथा स्वजनों सहित राम तक पहुँचाने का प्रबन्ध करता है। चित्रकूट से विदा करते समय राम समुचित सम्मान के साथ गुह को विदा करते हैं। तुलसी ने कथा की क्रमबद्धता अत्यन्त सुन्दर ढंग से संयोजित की है।

बिदा कीन्ह सनमानि निषादू। चलेउ हृदय बड़ बिरह बिषादू।।[१४२]

अपनी निस्वार्थ भक्ति के कारण ही तुलसी का गुह राम की विशेष कृपा का अधिकारी होता है। पुष्पक विमान से लौटते समय गुह का वर्णन तुलसी ने पूर्ण तन्मयता से किया है। राज्याभिषेक के उपरान्त सुग्रीव, विभीषण तथा अंगदादि की तुलना में गुह राम की दृष्टि में अधिक विशिष्ट स्थान को प्राप्त करता है। राम, गुह को अन्य की भाँति विदा करते समय वस्त्राभूषण देते हैं और उसके साथ ही यह कहते हैं कि मेरा स्मरण करते रहना। मन वचन और कर्म से सदैव धर्मानुकूल आचरण

करना तथा अयोध्या आते-जाते रहना। तुम मेरे मित्र और भरत के समान ही भ्रातृवत हो-

"पुनि कृपाल लियो बोलि निषादा। दीन्हे भूषन बचन प्रसादा।।
जाहु भवन मम सुमिरन करेहू। मन क्रम वचन धर्म अनुसरेहू।।
तुम मम सखा भरत सम भ्राता। सदा रहेहु पुर आवत जाता।।[१४३]

इस प्रकार विजातीय होते हुये भी गुह अपनी भक्ति के कारण विशिष्ट महत्ता प्राप्त कर लेता है। तुलसी ने भक्त तथा सखा रूप में निषादराज गुह का चरित्रांकन अत्यन्त सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। जो गुह के शील स्वभाव और सौम्यता का पूर्ण सक्षमता से प्रकाशन करने में समर्थ है।

तुलसी ने जिस प्रकार राम के चरित्र को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में प्रस्तुत किया है उसी भाँति सीता के चरित्र में आदर्श पत्नी के सभी गुणों को समाहित कर नारियोचित आदर्शों की पूर्ण प्रतिष्ठा की है। राम के चरित्र-चित्रण में सीता के शील-सौन्दर्य तथा चरित्र की उदात्तता जिस प्रकार स्वतः भासित होती है उसी प्रकार सीता के चरित्र में राम के गुणों का निदर्शन परिलक्षित होना नितान्त स्वाभाविक है। प्रकारान्तर से यदि कहें तो राम और सीता का व्यक्तित्व और चरित्र इतना पोषक है कि बिना एक दूसरे के दोनों के चरित्रों में अधूरापन स्पष्ट झलकता है। तुलसी ने अत्यन्त सुन्दर ढंग से राम और सीता के पूरक चरित्रों को अभिव्यक्त किया है।

तुलसी ने सीता के शील एवं चरित्र का निरूपण तत्कालीन युग के प्रतिबन्धानुसार ही किया है। अयोनिजा सीता के चरित्र में अलौकिकत्व का समावेश तुलसी की भक्तिभावना को पूर्णतः ध्वनित करता है।

आराध्य राम की पत्नी सीता का चित्रण कवि ने मातृवत किया है। यही कारण है कि तुलसी साहित्य में उनका नख शिख वर्णन उपलब्ध नहीं होता। रूप वर्णन में कवि ने मर्यादित एवं संयमित अभिव्यक्ति का आश्रय लिया है। अलौकिक सौन्दर्य का वर्णन किसी भी कवि के लिये संभव नहीं, अतः कवि स्पष्ट रूप से घोषणा करता है कि सीता के अदभुत सौन्दर्य की तुलना किसी से की ही नहीं जा सकती। ऐसा प्रतीत होता है, मानों विधाता ने सीता के रूप में अपनी सम्पूर्ण निपुणता को साकार कर दिया है। उनका सौन्दर्य सुन्दरता से भी अधिक सुन्दर है-

जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहँ प्रगट देखाई।।
सुन्दरता कहुँ सुन्दर करई। छबि गृह दीप सिखा जनु बरई।।
सब उपमा कबि रहे जुठारी। केहिं पटतरों बिदेह कुमारी।।
उपमा सकल मोहि लगु लागीं। प्राकृत नारि अंग अनुरागीं।।
सिय बरनिअ तेइ उपमा देई। कुकबि कहाइ अजसु को लेई।।
जौं पटतरिअ तीय सम सीया। जग असि जुबति कहाँ कमनीया।।[१४४]

तुलसी को सम्पूर्ण संसार में कोई भी सीता के समान रूप-सौन्दर्य से युक्त नहीं दिखाई देता। यहाँ तक कि लक्ष्मी, सरस्वती, पार्वती आदि सर्वश्रेष्ठ देवांगनायें भी सीता के समान सर्वांग सुन्दरी नहीं प्रतीत होती हैं-

गिरा मुखर तन अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी।।

बिष बारुनी बंधु प्रिय जेही। कहिअ रमा सम किमि बैदेही।।[१४५]

तुलसी की सीता का सौन्दर्य उसकी अपनी अद्भुत गरिमा की अनूठी प्राणवत्ता है जो सुकुमारता तथा शील से संयुक्त हो अपनी अनुपमाभा सर्वत्र मुखरित करने में पूर्णतः सक्षम है।

तुलसी ने वन-गमन-प्रसंग में कौशल्या के माध्यम से पुत्रवधू सीता की सुकुमारिता के वर्णन में मौलिक उद्भावनाओं का निदर्शन प्रस्तुत किया है जो अत्यन्त प्रभावोत्पादक स्वरूप में सीता के रूप-सौन्दर्य को ध्वनित करता है-

(क) **"तात सुनहु सिय अति सुकुमारी। सास ससुर परिजनहि पिआरी"।।**[१४६]

(ख) **"नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई।।**

कलपबेलि जिमि बहुबिधि लाली। सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली।।

पलंग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सिय न दीन्ह पगु अवनु कठोरा।।

जिअन मूरि जिमि जोगवत रहउँ। दीप बाति नहिं टारन कहऊँ"।।[१४७]

(ग) **"सुरसर सुभग बनज बनचारी। डाबर जोगु कि हंसकुमारी"।।**[१४८]

राम स्वयं सीता की सुकुमारिता के विषय में कहते हैं-

मानस सलिल सुधा प्रतिपाली। जिअइ कि लवन पयोधि मराली।।

नव रसाल बन बिहरन सीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला।।[१४९]

तुलसी ने सीता को अति कमनीय रूप में चित्रित किया है पुरुषोचित साहस का सर्वथा अभाव सीता की कोमलता को और अधिक उदात्तता प्रदान करता है यथा-

सिय बन बसिहि तात केहि भाँती। चित्रलिखित कपि देखि डेराती।।[१५०]

परशुराम आगमन प्रसंग, चित्रकूट में अपनी सासुओं को विधवारूप में देखने के प्रसंग में सीता का आचरण उनकी कमनीयता को पूर्णतः व्यंजित करता है।

तुलसी ने सीता के चरित्र में नारियोचित आदर्शों की पूर्ण प्रतिष्ठा की है। सीता का चरित्र उनके शील-सौन्दर्य के कारण अत्यन्त गरिमावान बन गया है। सीता के उदात्त चरित्र का मूलाधार अचल पातिव्रत्य है। वनगमन, वनवास, अपहरण, अशोक वाटिका, अग्निपरीक्षा आदि प्रसंग सीता के पातिव्रत्य धर्म की अचलता व उत्कृष्टता का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

इस प्रकार तुलसी ने सीता के लिये राम के सहवास को ही सबसे अधिक रुचिकर माना है चाहे वह वनवास हो या चाहे जितना कष्टकर। राम-वन-गमन का समाचार सुनकर सीता अपने मन में विचार कर लेती हैं कि राम का अनुसरण ही एकमात्र उसका अभीष्ट है। अन्यथा अपने प्राण विसर्जित कर देगी--

"चलत चहत बन जीवन नाथू। केहि सुकृती सन होइहि साथू।।

की तनु प्रान कि केवल प्राना। विधि करतबु कछु जाई न जाना"।।[१५१]

कौशल्या अनेक प्रकार से सीता को समझाती हैं। स्वयं राम वन के भयंकर कष्टों का वर्णन कर सीता को वन न जाने के लिये समझाते हैं और अंत में तीखे शब्दों में चेतावनी देते हुये कहते हैं कि जो गुरु और स्वामी की आज्ञा नहीं मानता व उनके मतानुरूप आचरण नहीं करता, उसका अहित निश्चित है। सीता अत्यन्त गंभीरता से बातों को सुनती हैं और विनम्रता के साथ अपनी बात कहती हैं कि इस संसार में पति-वियोग से दारुण दुख और कोई नहीं है-

मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं। पिय वियोग सम दुख जग नाहीं।।[१५२]

इसलिये सीता के लिये राम का सहवास ही स्वर्ग है। बिना राम के सीता के लिये साक्षात स्वर्ग भी नरक के सदृश .है-

तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान।[१५३]

सीता की स्पष्ट मान्यता है कि संसार में पतिव्रता नारी के लिये अन्य सभी नेह नाते बिना पति के ग्रीष्म कालीन सूर्य से भी अधिक दाहक प्रतीत होते हैं-

जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहुते ताते।।[१५४]

इतना ही नहीं, पति के बिना स्त्री के सुखोपकरण शोक के कारण हो जाते हैं। भोग, रोग के समान तथा वस्त्राभूषण भारस्वरूप प्रतीत होने लगते हैं तथा सारा संसार यम की यातना सा प्रतीत होने लगता है-

तनु धनु धामु धरनि पुर राजू। पति बिहीन सब सोक समाजू।।
भोग रोग सम भूषन भारू। जम जातना सरिस संसारू।।[१५५]

तुलसी की सीता आगे कहती हैं कि हे प्रभु जिस तरह बिना प्राण के शरीर तथा बिना जल के नदी की गति होती है उसी प्रकार पति के बिना पत्नी की दशा वैसी ही होती है-

जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी।।[१५६]

इस प्रकार सीता के लिये सारी वन की विपत्तियाँ पतिभक्ति के कारण सुखप्रदायिनी हो जाती हैं तुलसी यह अभिव्यक्ति व्यंजित करते हुये कहते हैं-

खग मृग परिजन नगरु बनु बलकल विमल दुकूल।
नाथ साथ सुर सदन सम परसनाल सुख मूल।।[१५७]

अयोध्या नरेश दशरथ एक बार पुनः सुमन्त्र के माध्यम से पुत्रवधू सीता को लौटाने का प्रयास करते हैं किन्तु सीता फिर अपने पतिव्रत धर्म को निभाने की बात कहती हुई सुमन्त्र को स्पष्ट रूप से बताती हैं कि राम का सहवास उसके लिये सभी सुखोपभोगों से अधिक सुख प्रदायक है। अरण्यवास का आनंद उसके लिये पिता और श्वसुर-गृहों के आनंद से बहुत अधिक है। तुलसी ने राम के सान्निध्य में विभोर सीता के आनंद का तन्मयता से चित्र खींचा है जो उपर्युक्त अभिमत को संपुष्ट करता है-

राम संग सिय रहति सुखारी। पुर परिजन गृह सुरति बिसारी।।
छिनु छिनु पिय बिधु बदनु निहारी। प्रमुदित मनहुँ चकोर कुमारी।।

नाह नेहु नित बढ़त बिलोकी। हरषित रहति दिवस जिमि कोकी।।
सिय मनु राम चरन अनुरागा। अवध सहस सम बनु प्रिय लागा।।
परन कुटी प्रिय प्रियतम संगा। प्रिय परिवारु कुरंग बिहंगा।।
सास ससुर सम मुनितिय मुनिबर। असनु अमिय सम कन्द मूलफर।।
नाथ साथ सांथरी सुहाई। मयन सयन सय सम सुखदाई।।[१५८]

राम प्रत्येक क्षण सीता को प्रसन्न रखने का हर संभव प्रयास करते हैं-

सीय लखन जेहि बिधि सुख लहहीं। सोइ रघुनाथ करहिं सोइ कहहीं।।[१५९]

जिस प्रकार पलक नेत्र के गोलक को संभालते हैं उसी भाँति राम अतिशय प्रेम से सीता का ध्यान रखते हैं। ऐसे पति-प्रेम को पाकर सीता के मन में स्वर्गिक आनंदानुभूति क्योंकर न हो?

जोगवहिं प्रभु सिय लखनहि कैसे। पलक बिलोचन गोलक जैसे।।[१६०]

वन्यप्रान्त में तुलसी ने राम-सीता के संयोग शृंगार के मर्यादित भावपूर्ण चित्र अत्यन्त कौशल से अंकित किये हैं। सीता के जीवन का सर्वाधिक सुखद समय अरण्यवास ही माना जा सकता है। दृष्टव्य है एक चित्र-

एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषन राम बनाए।।
सीतहि पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक सिला पर सुंदर।।[१६१]

तुलसी ने सीता में नारी के सौन्दर्य और गुणों का आदर्श समन्वय प्रस्तुत किया है। अनुपम सौन्दर्य से युक्त विदेहजा अत्यन्त सहज रूप में वन्य जीवन स्वीकार करती हैं और पूर्णरूपेण पत्नी धर्म का निर्वाह करती हैं पतिव्रता सीता का चरित्र राम के वियोग काल में सर्वाधिक निखरा है। अपहरण से पूर्व का अरण्यवास जितना सीता के लिये सुखद था उतना ही पीड़ादायक तथा दुखद अपहरण के पश्चात का कालखंड। किन्तु संकट काल में भी उसने अपना आत्मविश्वास नहीं खोया। पति-पराक्रम तथा चारित्रिक-दृढ़ता उसके आत्म-विश्वास के मूल साधन थे।

रावण छलपूर्वक सीता का अपहरण कर उसे लंका में अशोक वाटिका में रख देता है। रावण अनेक प्रकार से प्रलोभन और भय दिखाता है किन्तु सीता इन प्रलोभनों और भय से किंचित भी प्रभावित नहीं होती-

बहु बिधि खल सीतहि समुझावा। साम दाम भय भेद दिखावा।।
कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी। मंदोदरी आदि सब रानी।।
तव अनुचरी करउँ पन मोरा। एक बार बिलोकु मम ओरा।।[१६२]

किंतु सीता तिनके की ओट लेकर रावण को दुत्कारती है कि क्या जुगनू की ज्योति से कभी कमलिनी विकसित हुई है। इन चिकनी चुपड़ी बातों से तू सीता को प्रभावित करना चाहता है। अरे दुष्ट! तू क्या राम के बाणों को नहीं पहचानता? तदनन्तर क्रोध से उफनती सीता लंकापति रावण को शठ, अधम तथा निर्लज्ज के संबोधन से संबोधित करती हुई कह बैठती है कि वह (रावण) उसे

राम-लक्ष्मण की अनुपस्थिति का लाभ उठाकर ही अपहृत कर सका है।

सनु दसमुख खद्योत प्रकासा। कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा।।
अस मन समुझु कहति जानकी। खल सुधि नहिं रघुबीर बान की।।
सठ सूने हरि आनेहु मोही। अधम निलज्ज लाज नहिं तोही।।[१६३]

यह सुनकर रावण का क्रोध चरम सीमा पर पहुँच जाता है और वह तलवार लेकर कहता है कि या तो सीता मेरी बात माने या अपना सिर कटाने को तैयार रहे-

सीता तैं मम कृत अपमाना। कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना।।
नाहिं त सपदि मानु मम बानी। सुमुखि होती न त जीवन हानी।।[१६४]

किंतु सीता अत्यन्त निर्भीकता से प्रत्युत्तर देती हुई कहती हैं कि सीता को गले में केवल दो ही चीजें स्वीकार्य हैं या तो राम की श्यामल सरोजवत सुंदर भुजायें या रावण की तीक्ष्ण तलवार-

स्याम सरोज दाम सम सुन्दर। प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर।।
सोभुज कंठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा।।[१६५]

रावण भी सीता की निर्भीकता से अवाक रह जाता है और एक महीने की अवधि देकर पराजित सा अपने भवन लौट जाता है। हनुमान द्वारा मुद्रिका फेंकी जाने पर सीता आश्चर्य चकित हो सोचने लगती हैं, यह मुद्रिका कौन लाया है? रावण उसके पति को पराक्रम में पराजित नहीं कर सकता। सीता के हृदय में निहित राम के अपराजेय पौरुष के प्रति अटूट विश्वास निम्न पंक्ति में दृष्टिगत होता है।

जीति को सकई अजय रघुराई। माया तें असि रचि नहिं जाई।।[१६६]

तुलसी ने सीता के चरित्र को भक्तिभाव से चित्रित किया है। माया सीता की कल्पना तुलसी की मौलिक विशेषता है। राम पंचवटी पहुँचते ही सीता को गुप्तरूप से अग्नि में छिपा देते हैं जिससे रावण असली सीता का अपहरण न कर माया सीता का अपहरण करता है-

तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौं लगि करौं निसाचर नासा।।
जबहिं राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरि हिय अनल समानी।।[१६७]

रावण विजयोपरान्त राम, सीता के प्रति कुछ तीखे वचन कहते हैं जिससे सीता अपनी पवित्रता का प्रमाण देने के लिये अग्निपरीक्षा हेतु तत्पर हो जाती हैं। तुलसी की सीता, पति भक्ति और पति निष्ठा को ही सर्वोपरि मानती हैं। लक्ष्मण से शीघ्र अग्नि जलाने को कह सीता प्रसन्न चित्त हो अग्नि में प्रवेश करती हैं-

पावक प्रबल देखि बैदेही। हृदय हरष नहिं भय कछु तेही।।
जौं मन बच क्रम मन उर माहीं। तजि रघुबीर आन गति नाहीं।।
तौ कृसानु सब कै गति जाना। मो कहुँ होउ श्री खंड समाना।।[१६८]

इस प्रकार अग्नि परीक्षा के उपरान्त जब गौरवर्णी विदेहजा श्यामल रघुबीर के समीप आती हैं तो उनका रूप तप्त कुंदनवत निखरा प्रतीत होता है-

नव नील नीरज निकट मानहुँ कनक पंकज की कली।।[१६६]

सीता के जीवन का अत्यन्त सुखद समय राम के अयोध्या के सिंहासन पर आसीन होने के पश्चात प्रारम्भ होता है। सीता का सुगृहिणी रूप तुलसी ने अत्यन्त मनोरम ढंग से प्रस्तुत किया है। सीता अनुकूल भाव से पति की सेवा करती हैं। तीनों सास, देवरों तथा गुरुजनों की सेवा और सुख का अनवरत ध्यान ऱखती हैं। कथानुसार सीता के सुहाग-सुख के आनंद का कालखंड अधिक नहीं है किन्तु सीता के माध्यम से तुलसी ने जीवन की सार्थकता निष्काम सेवा के अंतर्गत दिखाई है। निम्न पंक्तियों में उपर्युक्त भाव की सक्षम व्यंजना दृष्टिगत होती है-

(क) **पति अनुकूल सदा रह सीता। सोभा खानि सुसील बिनीता।।**
जद्यपि गृह सेवक सेवकिनी। बिपुल सदा सेवा बिधि गुनी।।[१७०]

(ख) **निज कर गृह परिचरजा करई। रामचन्द्र आयसु अनुसरई।।**
जेहि बिधि कृपासिंधु सुख मानई। सोइ कर श्री सेवा बिधि जानई।।[१७१]

इस प्रकार तुलसी ने सीता के मानवीय चरित्र में अलौकिकता का सन्निवेश कर आदर्श नारी के स्वरूप की प्रतिष्ठा की है। रामकथा का यह प्रमुख नारी पात्र समस्त नारी जाति के लिये आदर्श तथा वन्दनीय बन गया है। तुलसी की भक्ति-भावना ने सीता के चरित्र में अद्‌भुत गरिमा और उदात्तता का निवेश किया है जो तुलसी के चरित्र-चित्रण-कौशल की विशिश्टता का परिचय देता है।

तुलसी ने व्यक्ति चित्रण के अलावा समुदाय विशेष की प्रकृति का चित्रण भी अत्यन्त कुशलता से किया है। **आचार्य शुक्ल** का अभिमत है-**''स्त्रियों की प्रकृति की जैसी तद्रूप छाया हम 'मानस' के अयोध्याकांड में देखते हैं, वैसी छाया के प्रदर्शन का प्रयत्न तक हम और किसी हिंदी कवि में नहीं पाते।''**

तुलसी ने **मंथरा** का चित्रण नीच पात्र के रूप में किया है। राम के वनवास की भूमिका मंथरा की कुटिलता के कारण ही बनती है। मन्थरा रामकथा का अत्यन्त महत्वपूर्ण पात्र है जिसका चित्रण तुलसी ने पूर्ण मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है। कैकेयी की दासी मंथरा को कौशल्या तनिक भी अच्छी नहीं लगती। इसी कारण रामाभिषेक की तैयारी देखकर वह अत्यन्त कुढ़ जाती है और मुंह लटकाकर कैकेयी कें पास आ खड़ी होती है। कैकेयी उससे मुंह लटकाने का कारण पूछती है पर वह कोई उत्तर नहीं देती-

उतरु देइ नहिं, लेइ उसासू। नारि चरित करि ढारइ आँसू।।
हँस कहि रानि गाल बड़ तोरे। दीन्ह लखन सिख अस मन मोरे।।
तबहुँ न बोलि चेरि बड़ि पापिनि। छाँड़इ स्वास कारि जनु साँपिनि।।[१७२]

उसकी यह मुद्रा इस बात का संकेत देती है कि मंथरा ने अपने द्वेष का आभास कैकेयी को इससे पूर्व प्रकट नहीं किया था। शीघ्र उत्तर न देने से यह संकेतित होता है कि वह नितान्त नवीन सूचना लिये है जिसे बताने में उसे समय और धैर्य की आवश्यकता है। तुलसी **'गाल बड़ि तोरे'** के माध्यम से बात कहने का मार्ग खोल देते हैं। मंथरा अपनी उसी मुद्रा में कहती है-

कत सिख देइ हमहिं कोउ माई। गाल करब केहि कर बलु पाई।।[१७३]

'किसका बल पाकर मैं गाल करूँगी' मात्र इतना कह वह भाव को व्यंजित कर देती है कि मुझे एक तुम्हारा ही भरोसा है सो मैं देख रही हूँ कि तुम्हारा यहाँ कोई अस्तित्व नहीं है। क्रोध, द्वेषादि उद्‌गारों को क्रम से प्रकट करने का चातुर्य स्त्रियों में स्वाभाविक रूप से रहता है क्योंकि लाज और संकोच के कारण वे अपने भावों को एक साथ तीव्रता से व्यक्त नहीं कर पाती हैं?

रानी द्वारा पूछने पर कि सब कुशल तो है, मंथरा उसी मुद्रा में उत्तर देती है-

रामहि छाँड़ि कुसल केहि आजू। जिनहि जनेसु देइ जुबराजू।।
भएहु कौसिलहि बिधि अति दाहिन। देखत गरब रहत उर नाहिन।।[१७४]

मंथरा, कैकेयी को अपने भावानुकूल देखना चाहती है। राम के प्रति द्वेष जगाने के लिये मंथरा सौत के रूप में कौशल्या को प्रस्तुत करती है। सपत्नी के सुख और अभिमान की चर्चा किसी नारी को अच्छी नहीं लग सकती। ईर्ष्याभाव के साथ ही भरत के प्रति वत्सलता प्रकट कर मंथरा क्रमशः अपने मन्तव्य की ओर अग्रसर होती है-

पूत बिदेस न सोच तुम्हारे। जानति हहु बस नाहु हमारे।।[१७५]

मंथरा राजा की कुटिलता के बारे में कैकेयी को समझाती है कि तुम्हारे पुत्र को जान-बूझकर राजा ने हटा दिया है। इस पर कैकेयी उसे फटकारती है और उसके खेद प्रकाशन का कारण पूछती है। मंथरा का स्वयं को दोष देना नीच स्त्रियों की प्रकृति का प्रत्यक्षीकरण करता है। दृष्टव्य हैं कतिपय पंक्तियाँ-

एकहिं बार आस सब पूजी। अब कछु कहब जीभ कर दूजी।
फोरइ जोगु कपार अभागा। भलेउ कहत दुख रउरेहिं लागा।।
कहहिं झूठ फुर बात बनाई। ते प्रिय तुम्हहिं करुइ मैं माई।।
हमहुँ कहब अब ठकुर सोहाती। नाहिं त मौन रहब दिन राती।।
करि कुरूप विधि परबस कीन्हा। बवा सो लुनिय लहिय जो दीन्हा।।[१७६]

अपने भाग्य को कोसने के पश्चात वह और आगे कहती है-

कोउ नृप होउ हमहिं का हानी। चेरि छाँड़ि अब होब कि रानी।।
जारइ जोग सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा।।[१७७]

कैकेयी के मन में कुछ असर हो रहा है यह भाँपकर मंथरा राम के अभिषेकोपरान्त होने वाली कैकेयी की दुरवस्था का चित्र प्रस्तुत करती है, साथ ही यह भी प्रकट करती है कि यद्यपि राम का तिलक प्रसन्नता की बात है और न मुझे ही राम से कोई द्वेष है किन्तु मुझे तो केवल तुम्हारी होने वाली दुर्दशा पर तरस आ रहा है-

रामहिं तिलक कालि जो भयउ। तुम कहँ विपति-बीज बिधि बयऊ।।
रेख खँचाइ कहहुँ बल भाखी। भामिनि भइहु दूध कै माखी।।
जौं सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु, न आन आईं।।[१७८]

इस प्रकार भविष्य के चित्र से कौन नारी चिंतित न होगी? मंथरा का यही तो कौशल है कि सर्वप्रथम भिन्न-भिन्न मनोविकारों के उद्दीपन से कैकेयी के मानस को अपने अनुकूल बनाया। अनुकूल रुचि के कारण कैकेयी का हृदय भी मंथरा की बात के समर्थन में तत्पर हो कह उठता है-

सुनु मंथरा बात फुरि तोरी। दहिनि आँख नित फरकइ मोरी।।
दिन प्रति देखेउँ राति कुसपने। कहौं न तोहिं मोहि बस अपने।।
काह करौं सखि! सूध सुभाऊ। दाहिन बाम न जानौं काऊ।।[१७९]

कैकेयी का हृदय भविष्य के चित्र से अत्यन्त क्षुब्ध हो उठता है और इसी भावावेश में वह कहती है-

नैहर जनमु भरब बरु जाई। जियत न करब सवति सेवकाई।।
अरि बस दैव जिआवत जाही। भरनु नीक तेहि जीव न चाही।।[१८०]

इस अवस्था में मंथरा उसे ढाढ़स बँधाती है और अपने अभीष्ट मन्तव्य हेतु यह कहकर तत्पर करने का प्रयत्न करती है-

जे राउर अति अनभल ताका। सोइ पाइहि यह फलु परिपाका।।
पूछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची। भरत मुआल होंहि यह साँची।।[१८१]

इस कैकेयी-मंथरा प्रसंग के चित्रण से तुलसी के अंतःकरण-रहस्योदघाटन के कौशल का पता चलता है। इस प्रकार की उद्भावना बिना सूक्ष्मतम विन्यास-कौशल के असंभव है।

संपूर्ण विवेचनोपरान्त यह कहा जा सकता है कि तुलसी ने पात्रों के शील निरूपण व चरित्र चित्रण में पूर्ण सफलता अर्जित की है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से तुलसी साहित्य में दो प्रकार के पात्र मिलते हैं आदर्श तथा सामान्य आदर्श पात्रों में राम, भरत, सीता, हनुमान आदि सात्विक आदर्श हैं। तामसी आदर्श के रूप में रावण की प्रतिष्ठा हुई है। सामान्य पात्रों में दशरथ, लक्ष्मण, विभीषण, सुग्रीव आदि सात्विक प्रकृति के हैं तथा तामसी प्रकृति के सामान्य पात्रों में मंथरा तथा शूर्पणखा को प्रमुख माना जा सकता है। लोक मंगल की भावना तथा भक्ति के सन्निवेश ने चरित्र-निरूपण को अदभुत गरिमा से मंडित कर दिया है। तुलसी के राम नर नहीं नारायण हैं अतः उनके चरित्र की तुलना किसी अन्य से हो ही नहीं सकती। तुलसी ने संपूर्ण रामकथा के चरित्रों को ऐसी कुशलता से निरूपित किया है कि रामचरित मानस धर्मग्रंथ के रूप में मान्य हो गया है। तुलसी के सियाराम सारे मानव समाज के वन्दनीय देव हैं। तुलसी ने अपनी मौलिक उद्भावनाओं के माध्यम से पात्रों को समुचित धार्मिक व्यवस्था प्रदान की है। चरित्रों के माध्यम से तुलसी ने मानवीय उत्कृष्ट आदर्शों की सुन्दर प्रतिष्ठा की है। संपूर्ण तुलसी साहित्य में शील एवं चरित्र का सौन्दर्य पूर्ण तीव्रता से ध्वनित होता है अतः निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि तुलसी ने मर्यादित और भक्तिपूर्ण अभिव्यक्ति के कारण पात्रों के शील और चरित्र गत सौन्दर्य का प्रकाशन पूर्ण तन्मयता से किया है। मनोवैज्ञानिक ढंग से तुलसी ने पात्रों के शील और चरित्र को नूतन आयाम और अभिनव सौन्दर्य बोध प्रदान किया है जिसकी समानता अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।

(ख) तुलसी की समन्वय भावना

जिस युग में तुलसी का अवतरण हुआ उस युग में प्रत्येक क्षेत्र में सर्वत्र असन्तुलन तथा वैषम्य व्याप्त था। धर्म, समाज, राजनीति, संस्कृति, नीति आदि के प्रतिष्ठित मूल्यों में सर्वत्र शिथिलता और गिरावट स्पष्ट परिलक्षित होती थी। धर्म के क्षेत्र में हिन्दू-मुस्लिम भावनाओं के कारण जहाँ मनमुटाव बढ़ रहा था वहीं शैव शाक्त और वैष्णव मत के अनुयायी परस्पर द्वन्द्व रत दिखाई पड़ते थे। दक्षिण भारत में इस द्वन्द्व की अतिशयता से शिवकांची तथा विष्णुकांची तक का निर्माण हो गया था। उत्तरी भारत में भी धार्मिक संघर्ष की जड़ें गहरी हो रही थीं जो धार्मिक शान्ति की दृष्टि से अत्यन्त हानिकर तथा घातक थीं। धार्मिक अशान्ति से सामाजिक शान्ति भी अत्यन्त प्रभावित हो रही थी। धार्मिक क्षेत्र में तांत्रिकों, वज्रयानी सिद्धों तथा गोरखपंथी साधुओं ने अपने चमत्कारों तथा कौशल से समाज को अपने जाल में जकड़ रखा था। भक्ति का स्वरूप विकृत होते-होते विलुप्त हो चला था। निर्गुण-सगुण तथा ज्ञान और भक्ति का पारस्परिक विरोध चरम उत्कर्ष पर था। वर्णाश्रम धर्म की अवहेलना ने सम्पूर्ण हिन्दू समाज को विश्रंखलित कर दिया था। वर्ग-वैषम्य और परस्पर विद्वेष ने तत्कालीन हिन्दू समाज को पतन के द्वार पर ला खड़ा किया था। समूचा भारत अशान्ति और विषमता की आग में जल रहा था। अकबर जैसे धार्मिक सहिष्णु शासक ने यद्यपि पारस्परिक विद्वेष समाप्त करने की दृष्टि से एकता व समता के प्रयास किये किन्तु साम्राज्य वृद्धि की स्वार्थी मनोवृत्ति और लिप्सा के कारण वह सफल नहीं हो सका।

तत्कालीन सन्त कवियों ने सम्पूर्ण भारत को एक भावात्मक सूत्र में बाँधने का प्रयास किया। तुलसी ऐसे ही सन्त कवि थे। तुलसी का भावुक हृदय देश की अराजकता और अशान्ति पूर्ण स्थितियों से अकुला उठा। उन्होंने 'सुरसरि सम सब कर हित' करने वाली वाणी के माध्यम से विषमता को दूर करने का प्रयास किया। विषमता को दूर करने के लिये तुलसी ने समन्वय सिद्धान्त को अपनाया तथा राजनीति, धर्म, समाज, साहित्य आदि के असन्तुलन को अपनी समन्वय-भावना से दूर किया। उनकी समन्वय-भावना में विचारों की गहनता, भावनाओं की मधुरता तथा विश्वास की अचलता स्पष्ट परिलक्षित होती है। अपने समन्वयात्मक दृष्टिकोण के कारण ही तुलसी को लोकनायक की संज्ञा से विभूषित किया गया है। लोकनायक तुलसी की समन्वय भावना का अध्ययन निम्न शीर्षकों के आलोक में किया जा सकता है।

१. शैव तथा वैष्णव मतों का समन्वय-

भारतीय संस्कृति में त्रिदेव की कल्पना का अत्यन्त प्रमुख स्थान है। ये देव ब्रह्मा, विष्णु और महेश क्रमशः सृष्टिकारक, सृष्टिपालक तथा सृष्टि विनाशक के रूप में मान्य हैं। अपनी स्वार्थवृत्ति के कारण मानव ने सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा की कालान्तर में पूर्ण उपेक्षा कर दी। कतिपय अनुयायियों ने

भगवान विष्णु को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया तथा स्वयं को वैष्णव घोषित किया। अन्य ने शिव को सर्वप्रमुख देवता स्वीकारा और स्वयं को शैववादी माना। धीरे-धीरे विद्वेष बढ़ने पर वैष्णव, शैवों से तथा शैव, वैष्णवों से मत विभिन्नता के कारण एक दूसरे के घोरतम प्रतिद्वन्द्वी बन गये। फलस्वरूप भारतीय संस्कृति में विघटन तथा ह्रास परिलक्षित होने लगा। तुलसी के समय में यह पारस्परिक द्वन्द्व चरम उत्कर्ष पर था। भक्त तुलसी से संस्कृति का यह पतन देखा न गया। उन्होंने दोनों मतों में समन्वय स्थापित करने के लिये राम तथा शिव को एक दूसरे का भक्त तथा उपासक बना दिया। राम कथा के वक्ता के रूप में शिव अपना मत निम्न प्रकार से व्यक्त करते हैं-

सोइ मम इष्ट देव रघुबीरा। सेवत जाहिं सदा मुनिधीरा।।[१८२]

तथा राम स्पष्ट रूप से घोषणा करते हैं कि

संकर प्रिय मम द्रोही, सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहि कलप भरि, घोर नरक महुँ बास।।[१८३]

इस प्रकार वैष्णव तथा शैव मतों में समन्वय कर तुलसी ने पारस्परिक विद्वेष और वैमनस्यता को दूर करने में सफलता प्राप्त की। तुलसी ने विष्णु के अवतार राम और शिव की स्तुतियों में ऐक्य भाव प्रदर्शित करने के लिये समान विशेषणों का प्रयोग किया जो शैव और वैष्णव के एक समन्वित स्वरूप को संकेतित करता है। शिव की स्तुति करते हुये वे कहते हैं-

नमामीशमीशान निर्वाण रूपं। विभुं व्यापकं ब्रह्मवेद स्वरूपं।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं। चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं।।[१८४]

तथा राम की आराधना वे निम्न शब्दों में करते हैं-

तुम्ह समरूप ब्रह्म अविनासी। सदा एक रस सहज उदासी।।
अकल अगुन अज अनघ अनामय। अजित अमोघ शक्ति करुनामय।।[१८५]

राम कथा के वास्तविक अधिकारी का उल्लेख करते हुये तुलसी भाव व्यंजित करते हैं-

हरि हर पद रति मति न कुतरकी। तिन कहुँ मधुर कथा रघुबर की।।[१८६]

इससे स्पष्ट है कि तुलसी उसे (**जिसकी 'हरि' तथा 'हर' दोनों के चरणों में एक समान रति नहीं है,**) कुतर्की की संज्ञा देते हैं। सेतुनिर्माण के समय राम द्वारा शिवलिंग की स्थापना तथा पूजा-अर्चना के द्वारा वे राम को शिव का उपासक सिद्ध करते हैं। **विनय पत्रिका में तुलसी ने हरिशंकरी स्तुति के माध्यम से विष्णु और शिव की ऐक्यता प्रदर्शित की है।**[१८७] मानस में शिव स्तोत्र की रचना के साथ राम स्तोत्र की रचना उनकी शैव तथा वैष्णव मतों में समन्वयात्मक दृष्टिकोण की परिचायक है। तुलसी के इस सफल समन्वयात्मक प्रयास ने उत्तरी भारत में व्याप्त शैव-वैष्णव विरोध को दूर करने में बहुत सफलता प्राप्त की।

२. शाक्त तथा वैष्णव मत का समन्वय-

उस समय विष्णुवादियों में भी अंतर्विरोध व्याप्त था। कबीर के कथन से इसकी पुष्टि होती है-

वैस्नव की छपरी भली, ना साषत का बड़ गाँउ।[१८८]

तुलसी ने इस अंतर्विरोध को समाप्त करने की दृष्टि से सीता तथा शक्ति में ऐक्यभाव प्रदर्शित किया। तुलसी ने शाक्तमतानुसार शक्ति को सृष्टिकर्ता तथा पालक के रूप में वर्णित कर रामकथा की प्रथम श्रोत्री के रूप में पार्वती को प्रस्तुत किया। सीता को राम की शक्ति के रूप में मान्यता देकर तुलसी **उदभवस्थिति-संहारकारिणी क्लेश हारिणी, सर्वश्रेयस्करी** आदि विशेषणों के माध्यम से उनकी आराधना करते हैं। तदनन्तर सीता से शक्तिस्वरूपा पार्वती की स्तुति इन शब्दों से कराते हैं-

नहिं तव आदि मध्य अवसाना। अमित प्रभाउ बेद नहिं जाना।।

भव भव विभव पराभव कारिनि। बिस्व बिमोहनि स्ववस बिहारिनि।।[१८९]

इस प्रकार तुलसी ने एक दूसरे की परस्पर उपासना कराकर वैष्णव तथा शाक्त मतों में सुन्दर समन्वय स्थापित किया। समान गुणों का सन्निवेश दिखाकर तुलसी ने अभेदत्व की व्यंजना निरूपित की। उनके इस सुन्दर समन्वयात्मक प्रयास के कारण ही वैष्णव, शैव तथा शाक्त एक दूसरे के प्रति श्रद्धावनत होने लगे तथा स्वयं को एक ही संस्कृति का अंग समझने लगे।

३. निर्गुण-सगुण समन्वय-

तुलसी से पूर्व ब्रह्म का सगुण-निर्गुण स्वरूप विवाद का विषय था। दोनों ही मतों के अनुयायी अपने-अपने मत का श्रेष्ठत्व सिद्ध कर परस्पर लड़ते-झगड़ते रहते थे। निर्गुण मत की आड़ में होने वाले भ्रामक तथ्यों के प्रसार से अत्यंत क्षुब्ध हो तुलसी कहते हैं-

हम लखि हमहिं हमार लख, हम हमार के बीच।

तुलसी अलखहिं का लखै, राम नाम जपि नीच।।[१९०]

इस कथन का यह अर्थ नहीं कि तुलसी ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप के प्रति अनुदार भावना रखते थे। तुलसी एक महान समन्वयवादी कवि थे। इसीलिये वे निर्गुण स्वरूप के साथ सगुण स्वरूप की उपासना अत्यावश्यक मानते थे। दोनों के अस्तित्व को मान्यता देते हुये वे कहते हैं-

निर्गुन कहै जो सगुन बिनु, सो गुरु तुलसीदास।[१९१]

तुलसी अपने आराध्य राम में ब्रह्म के सगुण तथा निर्गुण दोनों स्वरूपों को समन्वित रूप में चित्रित करते हैं। राम की आराधना करते हुये तुलसी अपनी समन्वयवादी अभिव्यक्ति अंकित करते हैं। यथा-

अमल, अनवद्य, अद्वैत, निर्गुण, सगुण ब्रह्म सुमिरामि नरभूप रूपं।[१९२]

तुलसी की धारणा थी कि भक्त की पुकार से आकुल होकर ब्रह्म अपने निर्गुण स्वरूप को छोड़ सगुण या साकार रूप में भक्त को दर्शन देता है। तुलसी के राम भी ब्रह्म का साक्षात स्वरूप हैं जो पृथ्वी पर सदाचरण की प्रतिष्ठा हेतु अवतरित हुये हैं। तुलसी इसे अभिव्यक्त करते हुये कहते हैं-

व्यापक ब्रह्म निरंजन, निर्गुण बिगत विनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या के गोद।।[963]

तुलसी निर्गुण और सगुण में केवल समन्वय के ही नहीं वरन उनके ऐक्य स्वरूप की आराधना के पक्षधर थे। इसलिये वे स्पष्ट रूप से प्रतिपादन करते हैं-

अगुनहिं सगुनहिं नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुराण बुध वेदा।।
जो गुनरहित सगुन सोइ कैसे। जल हिम उपल विलग नहिं जैसे।।[964]

इस प्रकार उनकी ऐक्य स्वरूप अवधारणा ने निर्गुण और सगुण मतावलिम्बयों के पारस्परिक मतभेद दूर करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की।

४. भक्ति कर्म और ज्ञान का समन्वय-

तुलसी से पूर्व सन्तों ने ज्ञानाश्रयी विचारधारा का प्रतिपादन सर्वाधिक प्रमुखता से किया था। फलतः भक्ति के प्रति पूर्ण उपेक्षा उस समय दृष्टिगत होती थी। कबीरादिक सन्त कवियों ने भक्ति तथा प्रचलित कर्मकांडों की तीव्रता से उपेक्षा और भर्त्सना की। तुलसी एक भक्त कवि थे। अतः तुलसी ने भक्ति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया किंतु समन्वयवादी कवि होने के कारण तुलसी ने ज्ञान तथा कर्म के श्रेष्ठत्व को भी नकारा नहीं है। भक्ति को तुलसी अन्न जल के सदृश सहज सुलभ बताते हुये कहते हैं-

निगम अगम साहेब सुगम, राम सोंचिली चाह।
अंबु असन अवलोकियत, सुलभ सबै जग माँह।।[965]

ज्ञान मार्ग की कठिनाइयों का चित्रण करते हुये तुलसी कहते हैं-

कहत कठिन, समुझत कठिन, साधत कठिन विवेक।
होइ घुनाक्षर न्याय तें पुनि प्रत्यूह अनेक।।[966]

तुलसी ज्ञानदीप रूपक के माध्यम से **'ज्ञान का पंथ कृपान कै धारा'** बताते हुये उसकी दुर्लभता बताते हैं तथा ज्ञान को पुरुष तथा माया को नारी मानते हुये साधक को ज्ञानमार्ग से विचलित होने की संभावना से परिचित कराते हैं। ज्ञानमार्ग में बाधक माया के कारण ही वे मायारहित भक्ति की पुनीत अवधारणा प्रस्तुत करते हैं। भक्ति की सहज सुलभता के कारण ही वे ज्ञान से समन्वित भक्ति के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुये कहते हैं-

श्रुति सम्मत हरि भगति पथ, संजुत फिरत विवेक।[967]

तुलसी की विचारधारा भक्ति के ज्ञान तथा वैराग्य के समन्वित स्वरूप को रूपायित करती है तथा उनके द्वारा वर्णित ज्ञान भी कर्म और भक्ति में एकरूपता स्थापित कर चलता है। भक्ति और ज्ञान की ऐक्यता निम्न पंक्ति से स्पष्ट ध्वनित होती है-

भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा। उभय हरिहिं भव-संभव खेदा।।[968]

भक्ति तथा ज्ञान के साथ कर्म के समन्वित स्वरूप के चिंतन में तुलसी ने अप्रत्यक्ष मार्ग का

आश्रय लिया है। संत-वर्णन के प्रसंग में प्रयाग का रूपक इसका सुन्दर उदाहरण है जिसमें भक्ति, ज्ञान तथा कर्म के सुन्दर समन्वित स्वरूप की व्यंजना उपलब्ध होती है। दृष्टव्य हैं निम्न पंक्तियाँ-

''राम भगति जहँ सुरसरि धारा। सरसइ ब्रह्म बिचार प्रचारा।।

बिधि निषेध मय कलिमल हरनी। करम कथा रबिनंदनि बरनी।।[१९९]

ज्ञान भक्ति तथा कर्म की त्रिवेणी मंगलोद्भावना की सरस सृष्टि करती है। जो व्यष्टि और समष्टि के लिये अत्यन्त लाभप्रद है। तुलसी के काव्य में यही त्रिवेणी प्रवाहित हुई है जो भक्ति, ज्ञान तथा कर्म के समन्वित स्वरूप की महत्ता प्रतिपादित करती है।

दार्शनिक समन्वय-

तुलसी ने तत्कालीन और पूर्व प्रचलित सभी दार्शनिक मान्यताओं और विचारधाराओं में अद्भुत समन्वय कर अपने साहित्य में दार्शनिकता का अनूठा समावेश किया है। तुलसी से पूर्व अनेक दार्शनिक वाद प्रचलित थे। **गौड़ पादाचार्य** तथा उनके शिष्य **शंकराचार्य** ने **'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'**, **'एकोब्रह्म द्वितीयोनास्ति'** तथा **'सर्व खलु इदं ब्रह्म'** आदि का उद्घोष करते हुये अद्वैतवाद की अभूतपूर्व प्रतिष्ठा की। **रामानुजाचार्य** ने अद्वैतवाद के परिमार्जित स्वरूप को विशिष्टाद्वैत के माध्यम से स्पष्ट किया। **विष्णु स्वामी** ने अद्वैतवाद के परिशोधनोपरान्त शुद्धाद्वैत की अवधारणा को प्रचारित किया। **मध्वाचार्य** ने अद्वैतवाद की अवहेलना करते हुये द्वैतवाद की धारणा पर बल दिया। **निम्बार्काचार्य** ने द्वैत तथा अद्वैत दोनों सिद्धान्तों को नकारते हुये द्वैताद्वैतवाद के मध्यममार्गी सिद्धान्त की अवधारणा को प्रस्तुत किया।

तुलसी ने अत्यन्त सफलता के साथ समस्त दार्शनिक वादों का समन्वय किया है। गौड़पादाचार्य ने बौद्धों के शून्य वाद को ब्रह्मवाद में परिणित करते हुये ब्रह्म की शून्य रूप में प्रतिष्ठित किया था। शंकराचार्य ने भी उसे पूर्णतः तत्वरूप की मान्यता दी। तुलसी ने शून्यमिति कहकर गौड़ पादाचार्य की धारणा को माना तथा **'केशव कहि न जाइ का कहिये'** कहकर शंकर के अभिमत को भी पूर्णतः स्वीकार किया। जगत के मिथ्यास्वरूप की स्वीकारोक्ति उन्होंने शंकर की भाँति **''बूड़योमृगवारि, खायौ जेवरी कौ सांप रे**[२००] के माध्यम से की है। तुलसी द्वारा वर्णित अविद्या माया के स्वरूप और प्रभाव का चित्रण अद्वैतवादी सिद्धान्त की अनुकूलता को स्पष्ट करता है, किन्तु शंकर से भिन्न विद्यामाया को वे माया के दूसरे स्वरूप में भी स्वीकारते हैं।

ब्रह्म तथा जीव के पारस्परिक सम्बन्ध को वे विशिष्टाद्वैत वादियों की विचारधारा के अनुसार व्यंजित करते हैं। इसी कारण तुलसी जीव को ईश्वर का अंशमात्र मानते हुये उसे चेतन, अमल तथा अविनाशी आदि कहते हैं-

ईश्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।।

सो माया बस भएउ गोसाईं। बंध्यो कीर मर्कट की नाईं।।[२०१]

साथ ही वे ईश्वर की स्वतंत्रसत्ता तथा जीव की परवशता का चित्रण करते हैं-

माया बस्य जीव अभिमानी। ईस बस्य माया गुन खानी।।
परबस जीव स्वबस भगवंता। जीव अनेक एक श्री कंता।।[२०२]

तुलसी ब्रह्म की विशिष्टता का उद्घोष अगुण, अरूप, अलख, अजादि कहकर करते हैं और यह भी स्वीकारते हैं कि वही निर्गुण ब्रह्म, भक्त के प्रेमाधीन हो सगुण रूप ग्रहण कर लेता है।

वस्तुतः तुलसी मायाच्छादित जगत को मिथ्या तथा राममय जगत को ही सत्य मानते हैं। व्यावहारिक दृष्टि से जगत की सत्यता मानते हुये भी वे परमार्थिक दृष्टि से उसकी सत्यता अस्वीकार करते हैं। उनके लिये तो सियाराम जगत ही प्रणाम करने योग्य है। अपनी समन्वित विचारधारा की अभिव्यक्ति व्यंजित करते हुये वे कहते हैं-

कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसिदास परिहरहि तीनि भ्रम, सो आपन पहिचानै।[२०२क]

तुलसी ने सभी दार्शनिक वादों के समन्वित स्वरूप के रूप में अपने भक्ति सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है जिसमें सभी दार्शनिक मतों का सम्मिलित उत्कर्ष दृष्टिगोचर होता है। भक्ति सिद्धान्त जहाँ एक ओर द्वैतवाद का समर्थन करता है तो वहीं दूसरी ओर अद्वैतवाद की भी मान्यता भी स्वीकार करता है। तुलसी जीव के अस्तित्व को ईश्वरीय अस्तित्व से भिन्न मानने पर बल देते हैं। **'सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि'** कहकर तुलसी द्वैतवाद की आस्था को पुष्ट करते हैं। एक ओर वे द्वैत जनित **'संसृति दुख'** की भावना को प्रकट करते हैं वहीं दूसरी ओर **'सगुणोपासक मोच्छ न लेहीं, तिन्हँ कहँ राम भगति निज देहीं'** कहकर वे आराध्य से अपना अस्तित्व पृथक रखने के भाव को स्पष्ट करते हैं। उनके संपूर्ण साहित्य में भक्त का अभीष्ट ब्रह्म ज्ञान या मोक्ष प्राप्ति न होकर मात्र रामभक्ति की प्राप्ति है। तुलसी साहित्य में सर्वत्र भक्तिवाद की व्याप्ति देखी जा सकती है जो सम्पूर्ण दार्शनिक मतों के निचोड़ से समन्वित है।

इन दार्शनिक सिद्धान्तों के अतिरिक्त तुलसी ने तत्कालीन प्रचलित पुष्टिमार्ग तथा रामावत संप्रदाय का भी कुशलता से समन्वय चित्रित किया है। रामावत संप्रदाय के अनुसार राम और परब्रह्म दोनों एकरूप हैं। ब्रह्म की अर्चना तथा उपासना पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी तथा अर्चावतार रूपों में की जाती है। तुलसी ने उपर्युक्त भेदानुसार ही राम का चित्रण अपने साहित्य में अंकित किया है। पुष्टिमार्ग की मान्यता ब्रह्मकृपा अथवा अनुग्रह को सर्वाधिक महत्ता प्रदान करती है। पुष्टिमार्ग की अवधारणानुसार चाहे कितनी भी आराधना की जाये किंतु बिना ईश्वर कृपा के कुछ भी संभव नहीं है। इसीलिये तुलसी निम्न पंक्ति के माध्यम से स्पष्ट करते हैं कि ब्रह्म कृपा से ही भगवान का साक्षात्कार संभव है-

तुम्हरिहिं कृपा तुम्हहि रघुनंदन। जानहि भगत-भगत उर चन्दन।।[२०३]

तुलसी की स्पष्ट धारणा है कि बिना ईश्वरीय कृपा के राम भक्ति भी दुर्लभ है-

राम भगति मनि उर बस जाके। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताके।।
चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं। जे मनि लागि सुजतन कराहीं।।

सो मनि जदपि प्रकट जग अहई। राम कृपा बिनु नहिं कोउ लहई।।[२०४]

इस प्रकार राम की भक्ति के भी निमित्त राम कृपा की अनिवार्यता घोषित करते हुये और कवितावली, गीतावली, मानसादि में बालरूप प्रभु श्री राम की भक्ति का चित्रण कर तुलसी ने रामावत सम्प्रदाय तथा पुष्टिमार्ग के मणिकांचनवत समन्वय का प्रमाण प्रस्तुत किया है।

यह कहना असंगत नहीं है कि विभिन्न दार्शनिक मतों को समन्वित कर प्रस्तुत करने का दृष्टिकोण तुलसी के मानस की विशालता को पूर्णतः बिम्बित करता है। सभी दार्शनिक मान्यताओं को भक्ति के सूत्र में पिरोकर चित्रित करना तुलसी की उत्कृष्ट समन्वयात्मकता का परिचय देता है। परस्पर मतवैभिन्य दृष्टिकोणों में एकरूपता स्थापित कर तुलसी ने अपनी अपूर्व क्षमता प्रमाणित की है। निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि तुलसी ने समन्वय भावना के माध्यम से श्रेष्ठ दार्शनिक मान्यताओं को सहज और बोधगम्य स्वरूप में प्रस्तुत कर अपनी प्रतिभा तथा विशालहृदयता को अभिव्यंजित किया है।

६. सामाजिक समन्वय-

तुलसी ने अपने साहित्य के माध्यम से समाज में पूर्ण समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया जिसमें वे पूर्ण सफल रहे। तुलसी के युग से पूर्व राम की प्रतिष्ठा परात्पर, ब्रह्म या अविनाशी के रूप में नहीं थी। कबीर की पंक्ति, **'दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना, राम नाम का मरम है आना।'** राम के दशरथ नंदन रूप को ब्रह्म से भिन्नता प्रदान करती है किंतु तुलसी **'भए प्रगट कृपाला' दीनदयाला कौसल्या हितकारी'** कहते हुये उसी परमब्रह्म को कौशल्यानंदन या दशरथ पुत्र के रूप में प्रस्तुत करते हैं। तुलसी ने अपने आराध्य को साधारण मानव से ऊपर उठाते हुये नारायण की गरिमा से मंडित किया है। यही कारण है कि **तुलसी के राम सगुण होकर भी निर्गुण तथा निर्लिप्त हैं तथा अज, अनवद्य, अरूप और अगोचर होते हुये भी अवतारी पुरुष है, अयोध्यावासी होते हुये भी अनिकेत हैं तथा अनूठे शील और सौन्दर्यशाली होते हुये भी अनन्त, व्यापक तथा अखण्ड हैं। इस प्रकार तुलसी ने नर में नारायणत्व की प्रतिष्ठा कर मानव तथा ब्रह्म का अद्भुत समन्वय प्रस्तुत किया है।**

शूद्र तथा ब्राह्मण के समन्वय के माध्यम से उन्होंने अस्पृश्यता निदान का आदर्श उपस्थित किया है। तत्कालीन युग में उच्चवर्ग के लोग निम्न वर्ग से व्यवहार करना अशोभन मानते थे किंतु तुलसी ने भक्ति की भूमि पर वशिष्ट जैसे परम ब्रह्म ज्ञानी, निषाद और शबरी जैसे शूद्र तथा रीछ-वानर जैसे वन्य जातियों को एक ही स्थान पर ला खड़ा किया है जो उनके समन्वय के सौन्दर्य का उद्घाटन करने में पूर्ण समर्थ है।

राजा और प्रजा के मध्य तुलसी ने अपूर्व समन्वय दिखाया है। उस समय राजा और प्रजा के बीच गहरा अंतर था। राजा ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता था। वह प्रजा से अत्यंत श्रेष्ठ और महान स्वीकारा जाता था। इसी भावना के अनुरूप **दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो** वा की उक्ति स्थापित

हुई, किंतु तुलसी ने रामचरित मानस में दोनों के रूप और कर्तव्यों की सुन्दर व्यवस्था व समीक्षा की है। तुलसी की मान्यता है कि **सेवक कर पद नयन से मुख सो साहिबु होई** अर्थात राजा को मुख के सदृश तथा प्रजा को कर, पद एवं नेत्रों के समान राजा का शुभ चाहने वाला होना चाहिये। यही नहीं

'मुखिया मुख सों चाहिये, खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषई सकल अंग तुलसी सहित विवेक।।[२०५]

कहकर तुलसी राजा को मुख के समान बताते हुये प्रजा के हितार्थ वस्तुओं का संग्रह करने वाला निर्धारित करते हैं। तुलसी शरीर के अंगों की भाँति राजा और प्रजा के समन्वय पर जोर देते हैं।

तुलसी ने पारिवारिक जीवन में भी उत्कृष्ट समन्वय का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया है। पिता-पुत्र, पति-पत्नी, सास-बहू, भाई-भाई, पत्नी-सपत्नी तथा स्वामी-सेवक आदि का श्रेष्ठ आदर्श मानस में प्रमुख रूप से चित्रित हुआ है। यही कारण है कि राम जितना प्रेम अपने माता-पिता और बन्धु-बान्धवों से करते हैं, वे सब भी राम को उतना ही सम्मान और आदर देते हैं। जितना सम्मान वधुएँ अपनी सासों को देती हैं उनसे कहीं अधिक स्नेह व प्रेम उन्हें अपनी सासों से मिलता है। सेवक और स्वामी का परस्पर स्नेहमय सद्‌भाव सर्वत्र उनकी कृतियों में झलका है। **अतः यह स्पष्टतः कहा जा सकता है कि तुलसी ने सामाजिक और पारिवारिक जीवन में समन्वय की अभूतपूर्व व्यंजना प्रस्तुत की है। चराचर जगत का ऐसा कोई विषय नहीं बचा है। जहाँ तुलसी की समन्वय भावना का सौन्दर्य सम्पूर्ण पूर्णता से न उभरा हो।** उनके आराध्य स्वयं शील शक्ति और सौन्दर्य के अद्‌भुत समन्वय हैं। अपने अनुचर से **"दैव कौन कछूरिनियाँ हौं धनिक तू पत्र लिखाउ"**[२०६] का विनम्र अनुरोध करने वाले, शील के साक्षात स्वरूप राम **काम सत कोटि सुभगतन** तथा **दुर्गा कोटि अमित अरिमर्दन**[२०७] हैं।

तुलसी की जीवन और समाज के प्रति युगानुकूल समन्वयात्मक दृष्टि सर्वथा प्रासंगिक और प्रभावी है। आदर्श समाज और आदर्श परिवार की गरिमा व प्रतिष्ठा जिस प्रकार तुलसी ने प्रस्तुत की है, वह उनकी समन्वयात्मक सौन्दर्य परकता को सलालित्य पूर्णतः प्रत्यक्ष करने में सक्षम है।

७. साहित्यिक समन्वय-

तुलसी विशुद्ध रूप से भक्त कवि थे। यद्यपि भक्ति-भावातिरेक से उपजे उद्‌गारों ने ही उन्हें कवि की प्रतिष्ठा दिलाई किन्तु विश्वमानस पर उन-सा दूसरा कवि मिलना दुर्लभ ही है। कविता विवेक से रहित होने की घोषणा करने वाले तुलसी की प्रतिभा और कौशल का प्रमाण स्वतः मानस रूपक दे देता है। उन्होंने साहित्यिक समन्वय की उत्कृष्टता का श्रेष्ठ उदाहरण रामचरितमानस के रूप में प्रस्तुत किया जिसमें समस्त पुराण, निगम, आगम, काव्य तथा धर्म ग्रन्थों के सारतत्वों को समन्वित किया गया है। अपनी समन्वयात्मक प्रस्तुति को स्पष्ट रूप से स्वीकारते हुये वे कहते हैं-

नाना पुराण निगमागमसम्मतं यद्रामायणेनिगदितं क्वचिदन्यतोऽपि[२०८]

शब्द और अर्थ के समान महत्व को स्पष्ट करते हुये वे कहते हैं-

गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।।[२०९]

काव्य में व्यंजित अर्थ का सौन्दर्य हृदय, बुद्धि एवं कल्पना तत्वों के समन्वय पर निर्भर करता है। कवि और भावक के समन्वय संकेत के साथ ही उपर्युक्त तीनों तत्वों के उचित समन्वय को निम्न रूपक के माध्यम से तुलसी ने स्पष्ट किया है-

हृदय सिंधु मति सीप समाना। स्वाति सारदा कहहिं सुजाना।।
जौ बरषई बर बारि बिचारू। होंहि कवित मुकतामनि चारू।।
जुगुति बेधि पुनि पोहिअहिं राम चरित बर ताग।
पहिरहिं सज्जन बिमल उर, सोभा अति अनुराग।।[२१०]

तुलसी ने काव्यशास्त्र के सैद्धान्तिक समन्वय के साथ-साथ व्यावहारिक समन्वय को नकारा नहीं है। तुलसी के पूर्व रामचरित्र देववाणी में ही प्रमुख रूप से उपलब्ध होता है, किंतु तुलसी ने जनसाधारण के हित को देखते हुये मानस की आयोजना लोकभाषा में प्रस्तुत की। उस समय व्रज और अवधी को काव्य सृजन हेतु प्रमुखता दी जाती थी। तुलसी ने भी युगानुरूप अवधी में रामचरितमानस, पार्वतीमंगल, जानकीमंगल, बरवै रामायण तथा रामलला नहछू की रचना की तथा ब्रज भाषा में विनयपत्रिका, गीतावली, कृष्ण गीतावली तथा कवितावली आदि कृतियों का प्रणयन किया। मानस और विनयपत्रिका के स्तोत्रों में प्रयुक्त संस्कृत तथा विनय के पदों में जनसाधारण में बहुतायत से प्रयोग होने वाली लोक भाषा का प्रयोग उनकी साहित्यिक समन्वयात्मकता की उत्कृष्टता का उदाहरण प्रस्तुत करता है। समासान्त क्लिष्ट पदावली और सहज बोधगम्य शैली का प्रयोग उनकी शैलीगत समन्वय की विशेषता को प्रत्यक्ष करता है।

तुलसी ने प्रचलित सभी काव्यरूपों में रचना की है। मानस का निगमागम सम्मत आयोजन उनकी अनूठी प्रतिभा का द्योतक है। तुलसी ने तत्कालीन रचना पद्धतियों में समन्वय की दृष्टि से मानस दोहा-चौपाई पद्धति में, विनय पत्रिका, गीतावली तथा कृष्णगीतावली पद पद्धति में, दोहावली दोहा पद्धति में, कवितावली कवित्त-सवैया-छप्पय पद्धति में, बरवै रामायण बरवै पद्धति में तथा रामलला नहछू लोक गीत पद्धति पर सोहर छन्द में सृजित कर रचना-पद्धतियों के समन्वित सौन्दर्य को उद्‌घाटित करने का अभिनव प्रयास किया जो उनकी साहित्यिक समन्वयात्मकता को पूर्णता से अभिव्यंजित करता है।

इस प्रकार यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि तुलसी एक अनूठे समन्वयवादी कवि थे। उन्होंने जीवन और समाज के सभी क्षेत्रों का असन्तुलन और वैषम्य दूर करने की दृष्टि से समन्वय का आधार ग्रहण किया जिसके कारण वे श्रेष्ठ और उच्चतम आदर्शों का मार्ग प्रशस्त कर सके। निस्संदेह तुलसी की समन्वय साधना अनुपम थी जिसने विद्वेष, अव्यवस्था और कुरीतियों को दूर करने के लिये नवीन मान्यताओं की उदभावनायें प्रस्तुत की। तुलसी की समन्वय साधना पूर्णतः सफल रही, यही कारण है कि उन्हें सफल समाज सुधारक और लोक नायक की संज्ञा से विभूषित किया जाता है।

□□□

संदर्भ

१. आचार्य शुक्ल, गोस्वामी तुलसीदास-पृष्ठ ६७-६८
२. मानस १/११६/६, २/११३/४, ३/१८/३, १/२६०/४, ७/६१/४, २/८/१, २/८/३, ७/४२/३
३. मानस १/१६८/१
४. मानस १/३१५
५. मानस १/१६० से १/१६५
६. मानस १/२०२/२ से १/२०४/४
७. मानस १/२१८/१ से १/२४४/४
८. मानस २/११३/१ से २/११६
९. मानस १/२०६/३, १/२६८/४
१०. मानस ६/४७/१
११. मानस ३/१८/१-३
१२. मानस २/२६१/४
१३. मानस ६/३/२-४
१४. मानस ५/२२ ,, ,, ,, ५/४६ख, ६/१०/१,१/१८५
१५. मानस ७/४ख/१-२
१६. मानस ७/७/४
१७. मानस २/४५/१
१८. गीतावली ६/७
१९. मानस ६/६०ख/४
२०. मानस ३/२६ख/४-५
२१. मानस २/३१/४
२२. विनयपत्रिका पद १००
२३. मानस २/२३०/४ - २/२३१
२४. गीतावली ७/३७
२५. मानस ३/१६/५
२६. मानस ३/१६/५
२७. मानस ३/१६/१०
२८. याज्ञवल्क्य स्मृति
२९. मानस ४/६/१
३०. मानस ४/६/२, ४/६/३
३१. मानस ४/१०
३२. मानस ४/६
३३. मानस ४/७
३४. डॉ० बल्देव मिश्र तुलसी दर्शन पृष्ठ १५५
३५. मानस १/२१६
३६. मानस १/२१५/१
३७. मानस १/२५१
३८. मानस १/२५१/२, १/२५१/३
३९. मानस १/२५२/१
४०. मानस २/२२७/२,३
४१. मानस २/२२६/३,४
४२. मानस ५/५७
४३. मानस ५/५७/१
४४. मानस ५/५७/३
४५. मानस २/६१/१
४६. मानस २/६६/२
४७. मानस २/७०/३
४८. मानस २/७०/४
४९. मानस २/७१/१-४
५०. मानस ६/७४/६
५१. मानस ६/५४
५२. मानस ६/५४/१
५३. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, गोस्वामी तुलसीदास, पृष्ठ ९८
५४. मानस १/१६६/४
५५. मानस २/१५६/३-४
५६. मानस २/१५८/४
५७. मानस २/१६०/३, २/१६२
५८. मानस २/१६३/२-३-४, २/१६४
५९. मानस २/१४४/४-२/१६५
६०. मानस २/१७६/४ -२/१७८/१
६१. मानस २/१६७/४ - २/१६८/१-२
६२. मानस २/२५७/४ -२/२५८
६३. मानस २/२५६/४ -२/२६२
६४. मानस २/२६३/३ - २/२६४

६५. मानस २/२६७/३ - २/२६८/१
६६. मानस २/२८७/२ - २/२८८/१
६७. मानस २/३०२/३ - २/३०३/१
६८. मानस २/३२३/ - २/३२५/१
६९. मानस २/३२५/३ -२/३२६
७०. मानस ६/५८ - ६/५८/१
७१. मानस ६/५६/२
७२. मानस ६/५६/३
७३. मानस २/२०४
७४. मानस २/२०८/१
७५. मानस १/१८७/४
७६. मानस १/१८८/२
७७. मानस २/२४/१-२
७८. मानस २/२५/१-४
७९. मानस १/२०७/१-३
८०. मानस १/१९२/२-३
८१. मानस १/१२३/३-४
८२. मानस १/१२२
८३. मानस १/१२३/१
८४. मानस १/१३५
८५. मानस १/१७२/२-३
८६. मानस १/१७३/
८७. मानस १/१७५/१-३
८८. मानस १/१७६
८९. विनयपत्रिका - १७४
९०. मानस ६/१८/२-३
९१. मानस १/१७५/४
९२. मानस १/१७६/२
९३. मानस १/१७८/४
९४. मानस १/१८०/४
९५. मानस १/१८१/३
९६. मानस १/१८१/५-६
९७. मानस १/१८१/६
९८. मानस ३/२८
९९. मानस ३/२२/१-२
१००. मानस ३/२२/३
१०१. मानस ५/४/२
१०२. मानस ५/५०/४
१०३. मानस ५/५१
१०४. मानस ६/२४
१०५. मानस ६/२८
१०६. मानस ६/२८/३-४
१०७. मानस ६/१३क
१०८. मानस ६/३१क/३
१०९. मानस ६/९७/३
११०. मानस ६/८३/१
१११. मानस ६/९७/८
११२. मानस ६/१०३/५
११३. हनुमान बाहुक, २
११४. मानस ४/१/२
११५. मानस ७/१८/४-५
११६. मानस ७/४९
११७. मानस ४/१८/१,२,३
११८. मानस ४/१९/२,५
११९. मानस ५/४२/५
१२०. मानस ६/१२क
१२१. मानस ४/२२/५-६
१२२. मानस ५/१
१२३. मानस ५/१/१
१२४. मानस ५/१/२-३
१२५. मानस ५/१/६
१२६. मानस ५/३
१२७. मानस ५/३/१-२
१२८. मानस ५/३२/५, ५/३३
१२९. मानस १/१७५/२-३
१३०. मानस १/१७७
१३१. मानस ५/४/४
१३२. मानस ५/५
१३३. मानस ५/५/२
१३४. मानस ५/५/३
१३५. मानस ५/६
१३६. मानस ५/६/१
१३७. मानस ५/२३/४
१३८. मानस ५/३८
१३९. मानस ५/४०
१४०. मानस ५/४०/३

१४१. मानस २/८७/१-४
१४२. मानस २/३२०/१
१४३. मानस ७/१६/१-२
१४४. मानस १/२४६/१-२
१४५. मानस १/२४६/३
१४६. मानस २/५७/४
१४७. मानस २/५८/१-३
१४८. मानस २/५६/३
१४९. मानस २/६२/३-४
१५०. मानस २/५६/२
१५१. मानस २/५७/२
१५२. मानस २/६३/४
१५३. मानस २/६४
१५४. मानस २/६४/२
१५५. मानस २/६४/२-३
१५६. मानस २/६४/४
१५७. मानस २/६५
१५८. मानस २/१३६/१-४
१५९. मानस २/१४०/१
१६०. मानस २/१४१/१
१६१. मानस ३/०/२
१६२. मानस ५/८/२-३
१६३. मानस ५/८/४-५
१६४. मानस ५/६/१
१६५. मानस ५/६/२
१६६. मानस ५/१२/२
१६७. मानस ३/२३/१-२
१६८. मानस ६/१०८/३-४
१६९. मानस ६/१०८/२
१७०. मानस ७/२३/४
१७१. मानस ७/२४/१
१७२. मानस २/१२/३-४
१७३. मानस २/१३/१
१७४. मानस २/१३/१-२
१७५. मानस २/१३/३
१७६. मानस २/१५/१-३
१७७. मानस २/१५/३-४
१७८. मानस २/१८/३-४
१७९. मानस २/१६/३-४
१८०. मानस २/२०/१
१८१. मानस २/२०/३-४
१८२. मानस १/५०/४
१८३. मानस ६/२
१८४. मानस ७/१०७/१
१८५. मानस ६/१०६/३
१८६. मानस १/८/३
१८७. विनयपत्रिका ४६
१८८. कबीर ग्रंथावली
१८९. मानस १/२३४/४
१९०. दोहावली १६
१९१. दोहावली २५१
१९२. विनयपत्रिका ५०
१९३. मानस १/१६८
१९४. मानस १/११५/१-२
१९५. दोहावली ८०
१९६. मानस ७/११८
१९७. मानस ७/१००
१९८. मानस ७/११४/७
१९९. मानस १/४५/१
२००. विनयपत्रिका ७३
२०१. मानस ७/११६/१-२
२०२. विनय पत्रिका ७/७७/३-४
२०२क. विनय पत्रिका १११
२०३. मानस २/१२६/२
२०४. मानस ७/११६/५-६
२०५. मानस २/३१५
२०६. विनयपत्रिका १००
२०७. मानस ७/६०/४
२०८. मानस १/०/७वां श्लोक
२०९. मानस १/१८
२१०. मानस १/१०/४-५, १/११

□□□

षष्ठ अध्याय

प्रकृति सौन्दर्य

मानव और प्रकृति

तुलसी साहित्य में प्रकृति के विविध रूप

मानव और प्रकृति

मानव का प्रकृति से और प्रकृति का मानव से शाश्वत और चिरन्तन सम्बन्ध है। जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त मानव प्रकृति के सौन्दर्य की व्यापकता और विशदता से अभिभूत रहता है। निरन्तर प्रकृति का साहचर्य उसे जीवन की नाना अनुभूतियों और जगत् में व्याप्त नाना-व्यापारों का बोध कराता है। मानव का अस्तित्व प्रकृति के पंचतत्वों का समन्वित रूप है। सनातन काल से मानव प्रकृति के निरन्तर सम्पर्क में रहता आया है। वस्तुतः मानव और प्रकृति का परस्पर चिरनिगूढ़ हार्दिक सम्बन्ध है, क्योंकि मानव ने प्रकृति के क्रोड़ में ही अस्तित्व बोध पाया, उसी के विशाल आँचल में मानव का पोषण हुआ और प्रकृति के नाना रूपों से उसने हास-परिहास, रुदन, मुस्कराना, सौम्यता लज्जा-भाव, इतराना और इठलाना आदि गुणों को ग्रहण किया है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र का मर्म उसने प्रकृति के माध्यम से ही समझा है और अन्त में प्रकृति के ही आलिंगन में बंधकर चिर निद्रा में लीन हो जाता है और, प्रकृति के समन्वित रूप को त्यागकर स्वतन्त्र तत्व के रूप में परिवर्तित हो जाता है। सम्पूर्ण विश्व में प्रत्येक कण एक ही जीवन शक्ति से गतिमय है। **वर्डसवर्थ की पंक्तियाँ**[1] प्रकृति और मानव के संबंध को स्पष्ट करती हैं। **कण्व के आश्रम से शकुंतला की विदा के समय का मार्मिक प्रसंग**[2] मानव और प्रकृति में निहित एक चेतन शक्ति के अस्तित्व का बोध कराता है।

प्रकृति और मानव एक ही चेतना बीज के दो अंकुर हैं अतः दोनों परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं।[3] विभिन्न विद्वानों ने उसे जड़ और चेतन स्वरूप में मानकर अपने-अपनों तर्कों से मान्यताएँ स्थापित की है। प्रकृति को सांख्य और शैव दर्शन ने सबसे अधिक महत्ता प्रदान की है। प्रकारान्तर से सांख्य दर्शन को विशुद्ध प्रकृति दर्शन माना जा सकता है जिसके अनुसार प्रकृति ही सृष्टि रचना का मूल है। इसके अनुसार पुरुष निष्क्रिय और निर्लिप्त होने के अनन्तर भी चेतनायुक्त है और प्रकृति निष्क्रिय न होकर स्वयं में जड़रूप है। निष्क्रियता के फलस्वरूप पुरुष को पूर्ण समर्थ नहीं स्वीकारा जा सकता और न ही जड़ता के कारण प्रकृति को समर्थ माना जा सकता है। वस्तुतः प्रकृति सत,रज और तम त्रिगुण रूपात्मक है। यह त्रिगुण रूपा प्रकृति और पुरुष क्रमशः भोग्या और भोक्ता भाव को स्वयं में निहित किए रहते हैं और परस्पर संयोग से पूर्ण भाव को प्राप्त करते हैं। कतिपय मनीषी **"केवल ईश्वरीय रचना को ही प्रकृति"**[4] कहते हैं। कतिपय विद्वानों का अभिमत है- **"प्रकृति का संसार एक मशीन है। वह ऐसे आकारों का समूह एवं रचना है जिन्हें किसी बाहरी मस्तिष्क ने किसी विशेष उद्देश्य के लिए संयोजित एवं व्यवस्थित किया है।**[5]

"प्रकृति विचार की ही बाह्य अभिव्यक्ति है। प्रकृति में सर्वत्र सुव्यवस्था दृष्टिगोचर होती है। चेतन और प्रकृति सौन्दर्य तथा अभिरामता से परिपूर्ण है। मन निरपेक्ष तत्व की उपलब्धि बुद्धि या क्रिया रूप में से नहीं करता बल्कि प्रकृति तथा कला में सौन्दर्य की भावना के रूप में ही करता है। कला धर्म तथा दैवी स्फूर्ति एक ही वस्तु हैं और ये दर्शन से भी श्रेष्ठ हैं क्योंकि

तत्व ज्ञान ईश्वर की कल्पना करता है, कला भगवान का वास्तविक सान्निध्य है''[६]

प्रकृति के स्वरूप का विवेचन मनीषियों ने अपने-अपने विचारधारा के अनुसार ही किया है। विज्ञान और दर्शन विषयक मान्यताओं में प्रकृति विषयक रुक्षता स्पष्ट होती है। जहाँ दार्शनिक और वैज्ञानिक प्रकृति को तर्क की कसौटी पर कसते रहते हैं वहीं साहित्यकार सहृदय होने के कारण प्रकृति के साथ अनुरागात्मक तादात्म्य स्थापित कर लेता है और प्रकृति की मोहकता, रमणीयता, कमनीयता और सौन्दर्य से अभिभूत होकर सरस अभिव्यक्ति करता है।

चूँकि सौन्दर्य दृष्टि में निहित होता है अतः कलाकार प्रकृति के अणु-अणु में व्याप्त रमणीयता सौन्दर्य का प्रत्येक क्षण आभास करता है और सरस अभिव्यक्ति से परम सौन्दर्य को निरूपित करने की चेष्टा करता है। उसे प्रकृति का जड़ स्वरूप नहीं आकर्षित करता। उसे प्रकृति के प्रत्येक कण में सौन्दर्य के अक्षय भण्डार का बोध अनुभूत होता है। कल्पना के समन्वय से ही सामान्य रूप से ऋतु परिवर्तन का स्वरूप निखरकर ऋतु संहार के रूप में व्यंजित होता है।

कवि सहज़ रूप में प्रकृति में व्याप्त उपकरणों तथा उपादानों के माध्यम से अपनी कल्पना को एक नवीन और मौलिक स्वरूप प्रदान करता है- **''कल्पना एक दूसरी प्रकृति का निर्माण करती है, उन्हीं तमाम साधनों से, जो उसे वास्तविक प्रकृति द्वारा प्राप्त होते हैं। अपनी रुचि और समझ के मुताबिक कवि भावों के नाना रूपों की सहायता और कल्पना के उन्मुक्त प्रयोग के आधार पर एक ऐसी पूर्ण वस्तु का निर्माण करता है जिसके समान्तर कोई दूसरी वस्तु प्रकृति में उपलब्ध नहीं हो सकती।''**[७]

प्रकृति के स्वरूप में मानव को जीवन के विभिन्न रूपों का उद्‌घाटन मिलता है। सूखा ठूंठ जहाँ जीवन की अन्तिम परिणति को उद्‌घाटित करता है वहाँ बसन्त और अन्यान्य ऋतुओं में क्रमशः यौवन, उल्लास, आशा और निराशा का भाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। बीज रूप से क्रमशः वट वृक्ष में रूपान्तरण और तदनन्तर अनायास ही टूट कर गिरना जीवन के वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट करता है। प्रकृति के विभिन्न रूपों में मानव अपने जीवन के तथ्यों की समानता पाकर उसे अपना अभिन्न घनिष्ठ स्वीकार कर लेता है। यही कारण है कि प्रकृति उसे कहीं ममतामयी माँ के सामन उसे आंचल में छिपाती है, कहीं बाल-सखा के रूप में उसकी विभिन्न क्रीड़ा हेतु विभिन्न उपकरण जुटाती है। किशोरावस्था में नवयौवना की भाँति उसे आकर्षित करती है। मानिनी प्रेयसी की भाँति नाना उपालम्भ देती है, मान-मनुहार करती है। कहीं सहचरी के रूप में सलज समर्पण करती दृष्टिगत होती है तो कहीं सहयोगी की भाँति सम्यक मार्ग दर्शन और प्रेरणा प्रदान करती है। इस प्रकार नाना स्वरूपों में प्रकृति और मानव के घनिष्ठतम संबंध को किसी भी प्रकार नकारा नहीं जा सकता। वस्तुतः प्रकृति और मानव को विभाजित कर स्वतंत्र अस्तित्व का सम्पूर्ण बोध नहीं किया जा सकता। मानव के बिना तो प्रकृति के अस्तित्व का बोध संभव है किन्तु प्रकृति के बिना मानव के स्वरूप के अस्तित्व बोध की कल्पना भी असंभाव्य है।

प्रकृति के सौन्दर्य का निरूपण मात्र निरपेक्ष रूप में अंकन नहीं किया जा सकता। प्रकृति चित्रण का अभीष्ट उद्देश्य रस निष्पत्ति में सहायक होता है और यह तब ही संभव है जब प्रकृति और मानव जीवन में एकरूपता स्थापित होती है। **कवीन्द्र रवीन्द्र** ने सूर्यास्त के उदाहरण से इसे स्पष्ट किया है कि- **"सूर्यास्त को तीन तरह के भाव से देखा जाये। विज्ञान का सूर्यास्त, चित्र का सूर्यास्त एवं साहित्य का सूर्यास्त। विज्ञान का सूर्यास्त होता है -प्रतिदिन के सूर्यास्त की घटना, चित्र का सूर्यास्त होता है- केवल सूर्य का अन्तर्ध्यान मात्र नहीं, जल-स्थल, आकाश, बादलों के साथ मिलकर सूर्यास्त को देखना, साहित्य का सूर्यास्त होता है, उस जल, स्थल, आकाश, मेघ के मध्यवर्ती सूर्यास्त को मनुष्य के जीवन के ऊपर प्रतिफलित करके देखना-केवल मात्र सूर्यास्त का फोटो खींचना मात्र नहीं। अपने मर्म के सौन्दर्य के साथ उसे मिलाकर प्रकट करना।"**[८]

प्रकृति का जड़ सौन्दर्य जीवन की गति के सामंजस्य से समन्वित हो चेतन स्वरूप के सौन्दर्य की प्रतिष्ठा करता है। कवि सहृदयता से ऐसे चित्रों को अंकित करता है जो मनोरम और रमणीय होते हैं। सामान्यतः प्रकृति के वीभत्स रूप का चित्रण कवि के मानस को प्रिय नहीं होता यद्यपि कहीं-कहीं प्रकृति के भयानक और रौद्र रूप का अंकन प्रकृति के मनोहर स्वरूप को स्पष्ट करने की दृष्टि से किया जाता है। **"साहित्यकार प्रकृति के वाह्य सौन्दर्य पर मुग्ध होकर केवल उसका चित्रांकन ही नहीं करता वरन उसकी सौन्दर्यान्वेषी दृष्टि प्रकृति की आत्मा में अन्तर्निहित सौन्दर्य के मौक्तिकों को भी खोज़ लाती है। उसमें उसे मानव के उच्च स्तरीय गुणों के दर्शन होते हैं। कहीं-कहीं वह मधुर-मधुर फल-फूल एवं धान्यादि द्वारा मातृवत्सलता, ममता, परोपकार आदि का संकेत देती प्रतीत होती है और कहीं वह उदार, क्षमाशीलता, सेवाशीलता, मानव के हित चिन्तन में लीन प्रकट होती है। इस प्रकार कलाकार उसकी आत्मा तक में झाँक आता है। यही सौन्दर्य सहृदय के निकट अधिक सत्य है।**

प्रकृति में अनन्त सौन्दर्य की अक्षय राशि परम सत्ता के अनिवर्चनीय और अखण्ड सौन्दर्य का आभास प्रत्यक्ष मिलता है। प्रकृति स्वयं न किसी के उल्लास में सम्मिलित होती हैं और न किसी को व्यथित करती है। शोक, उल्लासादि भाव मानसिक अवस्था को स्पष्ट करते हैं। यही कारण है कि प्रकृति का एक स्वरूप किसी के लिए आनन्द और जीवनी शक्ति का अभिवर्द्धक होता है तो दूसरा रूप किसी के हृदय में वेदना की अनुभूति का वर्द्धन करता है। मानसिक अवस्था के कारण कभी-कभी जो उपादान मानव के हृदय में उल्लास और आनन्दातिरेक के कारण लगते हैं वही अवस्था परिवर्तन में वेदना और पीड़ा के सहयोगी जान पड़ते हैं। प्रकृति के प्रत्येक स्वरूप में न जाने कितने रूप अन्तर्निहित रहते हैं। यही कारण है कि गगन मंडल में छाए हुए नील और श्याम वर्णी जलधर किसी को प्रिय के मधुरागमन का संदेश देकर प्रेमातुर बना देते हैं तो वे ही मेघ विरह-व्यथा से आकुल हृदय की संतप्त वेदना को और अधिक बढ़ा देते हैं।

परिवर्तन के कारण प्रकृति का अन्यतम सौन्दर्य उभर कर विशिष्टता की संज्ञा प्राप्त कर लेता

है। शीत ऋतु में प्रकृति हिमाभूषणों से अलंकरण कर सौन्दर्य की आभा को शतगुणित कर लेती है। वसन्तागमन के साथ पुरातन जीर्ण-शीर्ण वसन को तिलांजलि दे प्रकृति पीली चूनर पहन लेती है। भ्रमर, पिक आदि के स्वरों के माध्यम से सुमधुर संगीत की सरस सृष्टि करती है। ग्रीष्मागमन तक वह थकान का अनुभव करने लगती है और भीषण ताप की असह्य वेदना से क्लान्त हो निस्तेज हो जाती है। गर्म हवा के भयंकर थपेड़े उसकी सम्पूर्ण सत्ता को झुलसा कर रख देते हैं। वर्षाकाल के आगमन का संदेश उसमें पुनः जीवन का संचार करता है और वह अपनी जीवनी शक्ति को पुनः प्राप्त कर पूर्ण चेतन स्वरूप की अनुभूति करती है। वर्षाकाल में नवचेतना का संदेश सर्वत्र वातावरण में मुखरित हो उठता है। प्रकृति नटी सतंरगी वस्त्राभूषण पहन इतराने लगती है। मयूर उल्लसित हो नर्तन में निमग्न हो उठते हैं। निर्झरों की कल-कल ध्वनि एक अभूतपूर्व संगीत की प्रस्तुति में लीन हो जाती है। इस प्रकार प्रकृति का परिवर्तन चक्र अबाध और निर्बाध गति से निरन्तर चलता रहता है।

मानव के हित प्रकृति की उपयोगिता को सर्वमान्य स्वीकृति प्रदान की जा सकती है। प्रकृति का सान्निध्य उसे नाना सद्गुणों की प्रेरणा देता है। कवि, प्रकृति का आश्रय पाकर ही उस अखण्ड सौन्दर्य के रहस्योद्घाटन में तत्पर होता है। अतः प्रकृति को कविता का अनिवार्य उपादान मानना अनुचित नहीं है। इसीलिए आदिकाल से लेकर वर्तमान तक उपलब्ध काव्यग्रंथों में प्रकृति के सौन्दर्य का अंकन विशदता के साथ मिलता है।

काव्य में प्रकृति का वर्णन अनेक रूपों में परिलक्षित होता है। कहीं प्रकृति विषय रूप में कवि के समक्ष प्रस्तुत होती है तो कहीं विषय को उद्दीप्त करने वाली के रूप में दिखाई पड़ती है, कहीं अभीष्ट प्राप्ति का निमित्त लगती है तो कहीं सौन्दर्य का अभिवर्द्धन करने वाली दृष्टिगोचर होती है। कहीं रहस्यमयी प्रतीत होती है तो कहीं रहस्य का उद्घाटन करने वाली, कहीं प्रकृति पाषाणवत निष्ठुर हृदया मालूम पड़ती है तो कहीं चेतन स्वरूप में हमारी अनुभूतिगत संवेदना से तादात्म्य स्थापित कर लेती है। इस प्रकार जड़ और चेतन दोनों स्वरूपों में हमारी संवेदनशील अनुभूतियों को अभिव्यक्ति प्रदान करने में सहयोग प्रदान करती है। प्रकृति के इन विभिन्न स्वरूपों के कारण ही विद्वानों ने प्रकृति चित्रण के नौ प्रकारों को मान्यता प्रदान की है-

१. आलम्बन रूप में

२. उद्दीपन रूप में

३. पृष्ठभूमि के रूप में

४. उपमान रूप में

५. मानवीकरण रूप में

६. प्रतीक रूप में

७. उपदेशिका रूप में

८. अलंकार रूप में

६. रहस्यात्मक रूप में।

१. आलम्बन रूप में-

प्रकृति का स्वतन्त्र रूप में जहाँ वर्णन किया जाता है वहाँ आलम्बन रूप माना जाता है। इस प्रकार के वर्णन में कवि प्राकृतिक तत्वों के प्रति आकर्षणानुभूति के कारण प्रकृति का यथातथ्य वर्णन करता है। आचार्य शुक्ल के अनुसार-"इस प्रकार के प्रकृति चित्रण को दो रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है- वस्तु ग्रहण और बिम्बग्रहण। जब कवि प्रकृति के प्रति राग-विराग, हर्ष-अवसाद विस्मय आदि का प्राकट्य न कर केवल वस्तुपरक तालिका की लम्बी कर देता है तो इस प्रकार का चित्रण प्रकृति का वस्तुग्रहण रूप वर्णन माना जाता है यद्यपि इस प्रकार के वर्णन को काव्य में हेय और निषेध्धात्मक माना जाता है। किन्तु कुछ कवियों की रचनाओं में इस प्रकार का वर्णन भी दृष्टिगत होता है। यथा पन्त की 'ग्राम्या' में इस प्रकार की शैली का प्रयोग बहुलता से उपलब्ध होता है-

नव वसन्त की रूपराशि का ऋतु उत्सव यह उपवन,
सोच रहा हूँ जन जग से क्या सचमुच लगता शोभन,
रंग बिरंग के खिले फ्लाक्स पर वीना छपे डियाथस,
नतदृग ऐन्टीह्नम तितली, सी पेंजी पापी मानस,
हंसमुख कैण्डीटफ्ट, रेशमी, चटकीले नैशटरटम,
खिली स्वीट पी एवडंस, फिर बास्केट औब्लुबैंटम।
दुहरे कर्नेशंस, स्वीट सुलतान सहज रोमांचित,
ऊँचे हाली हाकलार्क स्वर पुष्प स्तम्भ से शोभित।[१०]

इस लम्बी कविता में केवल कुसुमों की गिनती मात्र दिखाई देती है। यद्यपि कवि ने हंसमुख, रेशमी चटकीले, नतदृग तितली सी आदि विशेषणों के प्रयोग के माध्यम से बिम्ब ग्रहण का प्रयास किया है किन्तु पुष्पों के कैटेलाग की वजह से विम्ब-ग्रहण का प्रयास निरर्थक प्रतीत होता है।

विम्बग्रहण की कविता में कवि जब चित्रण करता है तो आँखों के सामने साकार चित्र सा प्रत्यक्ष हो जाता है। शास्त्रीय भाषा में प्रकारान्तर से इसे प्रकृति विषयक रतिभावाभिव्यंजना स्वीकार सकते हैं। पन्त की रचनाओं में विम्ब ग्रहण परक प्रकृति निरूपण की विस्तृत योजना दृष्टिगत होती है। स्याही की बूँद, छाया, एकतारा आदि रचनाओं को इसी श्रेणी में परिगणित किया जाता है यथा-

पावस ऋतु थी पर्वत प्रदेश, पल पल परिवर्तित प्रकृति-वेष।
मेखलाकार पर्वत अपार, अपने सहस्त्र दृग सुमन फाड़।
अवलोक रहा है बार-बार, नीचे जल में निज महाकार।

जिसके चरणों में पला ताल, दर्पण सा फैला है विशाल।
गिरि का गौरव गाकर झर-झर, मद से नस-नस उत्तेजित कर।
मोती की लड़ियों में सुन्दर, झरते हैं झाग भरे निर्झर।।''[११]

कहीं कवि अप्रस्तुत योजना के माध्यम से संश्लिष्ट चित्र उपस्थित करते हैं यथा-

कहो कौन हो दमयन्ती सी, तुम तरु के नीचे सोई,
हाय तुम्हें भी छोड़ गया क्या, अलि, नल सा निष्ठुर कोई।

प्रकृति के विम्ब ग्रहण परक अंकन में कवि विभिन्न क्रिया-कलापों के चित्र भी सरस तूलिका के संस्पर्श से प्रस्तुत करते हैं। यथा-

विस्फारित नयनों से निश्चल, कुछ खोज रहे चल तारक दल।
ज्योतित कर जल का अन्तस्तल
जिनके लघु दीपों को चंचल, अंचल को ओट किये अविरल।
फिरती लहरें लुक छिप पल-पल।[१३]

विम्ब योजना की प्रस्तुति में कवि कहीं-कहीं रंगों के चमत्कार पूर्ण उपादानों के माध्यम से अभिव्यंजना करते हैं। रंगों की भिन्नता का एक सरस चित्र देखें-

''रुपहले सुनहले आम्र बौर
नीले-पीले औ ताम्र मौर
रे गंध अंध हो ठौर-ठौर
रे पाँति-पाँति में चिर उन्मन
करते मधु के वन में गुंजन।।[१४]

नाद के माध्यम से बिम्ब योजना का एक चित्र प्रस्तुत है-

बाँसों की झुरमुट
सन्ध्या की झुटपुट
हैं चहक रहीं चिड़ियाँ टी वी टी टुट्र टुट्र।[१५]

इस प्रकार कवि प्रभावी चित्रण के लिए गन्ध, स्पर्श, संवेदना, भावाभिव्यजंना आदि से सरस सर्जना कर उसे सजीव और चित्रात्मक बना देते हैं।

२. उद्दीपन रूप-

प्रकृति इस रूप में मनोगत भावों को उद्दीप्त करती है। प्रकृति मानसिक अवस्था के अनुरूप तीव्रतर अभिव्यक्ति को व्यंजित करती है। यही कारण है कि प्रकृति के जो उपकरण संयोगावस्था में मधुरता और सरसता की सृष्टि करते हैं वियोगावस्था में वही स्निग्धता दग्धता का पर्याय बन जाती है और वे ही उपकरण प्रतिकूल सृष्टि करते दिखाई देते हैं। प्रस्तुत हैं उद्दीपन रूप के दो चित्र-

संयोग उद्दीपन-

"दूत, अलि, ऋतुपति के आये।
काँप उठी विटपी यौवन के
प्रथम कम्प मिस, मन्द पवन से,
सहसा निकल लाज-चितवन के
भाव-सुमन छाये।
बही हृदय-हर प्रणय-समीरण,
छोड़ छोर नभ-ओर उड़ा मन,
रूप राशि जागी जगती-तन,
खुले नयन, भाये।[१६]

वियोग उद्दीपन-

अलि घिर आये घन पावस के।
छोड़ गये गृह जब से प्रियतम
बीते अपलक दृश्य मनोरम,
क्या मैं हूँ ऐसे ही अक्षम,
क्यों न रहे बस के-
अलि घिर आये घन पावस के।[१७]

३. पृष्ठभूमि के रूप में-

इस प्रकार के वर्णन में एक निश्चित प्रयोजन व्यंजित होता है। पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति का वर्णन आगे के वर्णन के लिए प्रसंगानुकूल पृष्ठभूमि को स्पष्ट कर देता है। इस प्रकार का प्रकृति वर्णन प्रायः महाकाव्यों में परिलक्षित होता है। यथा प्रस्तुत है कामायनी का एक दृश्य-

उषा सुनहले तीर बरसती, जयलक्ष्मी सी उदित हुई,
उधर पराजित कालरात्रि भी, जल में अन्तर्निहित हुई।
वह विपन्न मुख त्रस्त प्रकृति का, आज लगा हँसने फिर से,
वर्षा बीती हुआ सृष्टि में, शरद-विकास नए सिर से।।[१८]

राम की शक्ति पूजा में निराला ने भाव और समयानुरूप प्रकृति का अंकन किया है-

है अमा निशा, उगलता गगन घन अंधकार,
खो रहा दिशा का ज्ञान, स्तब्ध है पवन-चार
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल,
भूधर ज्यों ध्यान मग्न, केवल जलती मशाल।

स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा फिर-फिर संशय,
रह-रह उठता जग-जीवन में रावण-जय-भय।[१६]

४. उपमान रूप में-

कवियों ने प्रकृति में निहित अनिवर्चनीय और विचक्षण सौन्दर्य के दर्शन किए हैं। इसीलिए मानव सौन्दर्य को रूपायित करने के लिए उन्होंने प्रकृति के नाना उपादानों को चयनित किया है। प्रकृति से ग्रहीत उपमानों के माध्यम से उन्होंने परिष्कृत सौन्दर्य-बोध की निष्कलुष अभिव्यक्ति को व्यंजित किया है। यही कारण है कि प्रकृति का उपमान रूप में सर्वाधिक प्रयोग दृष्टिगत होता है, चाहे नायिका की कान्ति का वर्णन हो या नायक के सौन्दर्य का। कवियों ने प्राचीन काल से अधुनातन युग तक प्रकृति से ग्रहीत उपमानों के माध्यम से सौन्दर्यानुभूति की अभिव्यक्ति को निरूपित किया है। यथा चन्द और प्रसाद के निम्न उदाहरण इसका प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत करते हैं-

(क) मनहुँ कला ससिभान, कला सोलह सों बन्निय।
बाल बैस ससिता समीप, अम्रित रस पिन्निय।।
बिगसि कमल स्रग, भ्रमर बेनु खंजन मृग लुट्टिय।
हीर कीर अरु बिम्ब मोति नषसिष अहि घुट्टिय।।
छप्पति गयंद हरि हँस गति, विह बनाय संचै सचिय।
पद्मिनि रूप पद्मावतिय, मनहुँ काम कामिनि रचिय।।[२०]

(ख) नील परिधान बीच सुकुमार खुल रहा मृदुल अधखुला अंग
खिला हो ज्यों बिजली का फूल मेघवन बीच गुलाबी रंग।
घिर रहे थे घुंघराले बाल हंस अवलम्बित मुख के पास
नील घन शावक से सुकुमार सुधा भरने को विधु के पास।

प्रायः सभी रीतिकालीन कवियों ने नायिका के अंग-प्रत्यंग वर्णन के लिए प्रकृति से अनेक उपमान ग्रहीत किए हैं।

५. मानवीकरण रूप में-

प्रकृति पर मानवीय चेतना का आरोप प्रकृति का मानवीकरण कहा जाता है। मानवीकरण की दशा में प्रकृति के नाना अंग और उपांग चेतन स्वरूप की अवधारणा प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार के वर्णन में कहीं सरिता नायिका रूप में नायक समुद्र से चिरमिलन हेतु आतुर दिखाई देती है। कहीं लता प्रेयसी रूप में तरु प्रेमी से आलिंगन बद्ध प्रतीत होती है तो कहीं यामिनी अपने प्रियतम हिमांशु से मिलन उत्कंठा लिए प्रेयसी की भाँति मनोहारी अलंकारों से श्रंगार करती परिलक्षित होती है। प्रसाद की **'उषा नागरी'** निराला की **'संध्या सुन्दरी'** व **'जूही की कली'** और महादेवी की **'बसन्त रजनी'** मानवीकरण रूप के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

१. "बीती विभावरी जाग री।
अम्बर पनघट में डुबो रही, तारा घट ऊषा नागरी।।
खग कुल-कुल सा बोल रहा किसलय का अंचल डोल रहा
लो यह लतिका भी भर लाई मधु मुकुल नवल रस माधुरी।।"[२२]

२ अ. "दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है।
वह सन्ध्या-सुन्दरी परी-सी
धीरे-धीरे-धीरे,
तिमिरांचल में, चंचलता का नहीं कहीं आभास,
मधुर-मधुर हैं दोनों उसके अधर,
किन्तु गम्भीर-नहीं है उनमें हास-विलास"।[२३]

ब. विजन-वन-वल्लरी पर
सोती थी सुहाग-भरी-स्नेह-स्वप्न-मग्न
अमल-कोमल-तनु तरुणी-जुही की कली,
दृग बन्द किये, शिथिल-पत्रांक में,
वासन्ती-विधुर-प्रिया संग छोड़
किसी दूर देश में था पवन
जिसे कहते थे मलयानिल।"[२४]

३. "धीरे-धीरे उतर क्षितिज से आ बसन्त रजनी।
तारकमय नव वेणी बन्धन
शीश फूल शशि का कर नूतन
रश्मिवलय, सित घन-अवगुंठन
मुक्ताहल अभिराम बिछादे चितवन से अपनी।
पुलकती आ बसन्त रजनी"।[२५]

६. प्रतीक रूप में-

भाव-साम्य के आधार पर जब प्रकृति के उपकरणों को ग्रहण किया जाता है तो इसे प्रकृति का प्रतीक रूप में चित्रण कहा जाता है। प्रायः यौवनोल्लास हेतु बसन्त को, नैराश्य के लिये गहनान्धकार को, दुख के निमित्त रात्रि और सुख के लिए दिवस तथा आह्लादन हेतु उषा का प्रतीक रूप में प्रयोग किया जाता है। प्रकारान्तर से कहा जा सकता है कि जब किसी शब्द को प्रचलित अर्थ से भिन्नार्थ द्योतन हेतु प्रयोग करते हैं और वह दोनों अर्थों को सम्यक रूप से स्पष्ट करता है तो शास्त्रीय

मतानुसार इसे प्रतीक संज्ञा से अभिहित किया जाता है। 'दीपशिखा' के सभी गीतों में प्रकृति के प्रतीक रूप का विपुलता से अंकन मिलता है। दीपशिखा में महादेवी ने जीवन का प्रतीक दीपक को माना है-

"मधुर-मधुर मेरे दीपक जल।
युग-युग प्रतिदिन, प्रतिक्षण, प्रतिपल, प्रियतम का पथ आलोकित कर।
सौरभ फैला विपुल धूप बन
मृदुल मोम सा घुल रे मृदु तन।
दे प्रकाश का सिन्धु अपरिमित,
तेरे जीवन का अणु गल-गल, पुलक-पुलक मेरे दीपक जल"।[२६]

७. उपदेशिका रूप-

प्रकृति मानव को अनेकानेक जीवनोपयोगी संदेश देती है। इसीलिए कवियों ने प्रकृति के नाना उदाहरणों से उपदेश देने के प्रयास किए हैं। उपदेशिका रूप में प्रकृति का स्वरूप उदात्त भाव से अभिमंडित हो जाता है और एक अलौकिक सौन्दर्य की सृष्टि परिलक्षित होती है। अनेकानेक कवियों में प्रकृति का उपदेशिका रूप में अंकन करने की प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। पंत हंसमुख प्रसून के माध्यम से हँसकर जीवन को बिताने तथा जगती को सौरभयुक्त करने का संदेश प्रेषित करते हैं।[२७] निराला निर्झर की गतिशीलता के माध्यम से मानव को प्रगति पथ पर बढ़ने का उपदेश देते हैं।[२८] महादेवी पुष्प के झरने के माध्यम से उपदेश देती हैं-

यह बतलाया झर सुमन ने
यह सुनाया मूक तृण ने।
यह कहा बेसुध पिकी ने
चिर पिपासित चातकी ने।
सत्य जो दिव कह न पाया
था अमिट सन्देश में
आँसुओं के देश में।"[२९]

इन पंक्तियों में महादेवी ने प्रकृति को उपदेशिका रूप में निरूपित कर पुष्प, तृण, पिकी और चातकी के माध्यम से संदेश प्रेषित किया है कि उस सत्य को इस आँसुओं के देश में कोई व्यक्त करने में समर्थ नहीं है। महादेवी ने यह भी स्पष्ट किया है कि यह सन्देश झरते हुये पुष्प, मौन तृण, सुधि रहित पिकी तथा चिरकाल से तृषित चातकी ने ही प्रेषित किया है, प्रकृति के उपकरणों ने नहीं क्योंकि यह निखिल विश्व ही आँसुओं का तथा करुणा का देश है।

८. अलंकार रूप-

कविता में रमणीयता की योजना कभी अप्रस्तुत विधान के माध्यम से की जाती है तो कभी अलंकारों के माध्यम से। सभी कवियों ने अलंकारों का प्रयोग तन्मयता से किया है। उत्प्रेक्षा, रूपक, विरोधाभास और संदेह अलंकारों के प्रयोग से प्रकृति का नूतन रूप उभर कर आता है-

उत्प्रेक्षा-आह! वह मुख! पश्चिम के व्योम बीच जब घिरते हों घन श्याम।
अरुण रविमंडल उनको भेद दिखाई देता हो छवि धाम।''[३०]

रूपक- विश्व कमल की मृदुल मधुकरी, रजनी तू किस कोने से-
आती चूम-चूम चल जाती पढ़ी हुई किस टोने से।[३१]

संदेह- थी किस अनंग के धनु की वह शिथिल शिंजनी दुहरी।
अलबेली बाहुलता या तनु छवि-सर की नव लहरी?[३२]

विरोधाभास- बाड़व ज्वाला सोती थी इस प्रणय सिंधु के तल में,
प्यासी मछली-सी आँखें थीं विकल रूप के जल में।[३३]

९. रहस्यात्मक रूप में-

कवि जब अनुभूति के वाह्य पक्ष की सीमाओं को पार कर जब आंतरिक पक्ष का उद्‌घाटन करता है तो स्वतः ही विशिष्ट अभिव्यक्ति व्यंजित होती है। प्रकृति के वाह्य पक्ष के रूपाकर्षण से परे जब कवि प्रकृति के आंतरिक पक्ष की ओर दृष्टिपात करता है तो प्रकृति में उसे एक अज्ञात आकर्षण दिखाई पड़ता है। उसके मानस में स्वतः जिज्ञासा और कौतूहल का समन्वित भाव उभरने लगता है। यही भाव प्रकृति के रहस्यात्मक रूप की अभिव्यक्ति की योजना में सहायक होता है। स्वाभाविक रूप से उसे सोच का नवीन धरातल मिलता है कि कौन है जो वीणा के मौन तारों में लुप्त रहता है और स्पर्शमात्र से ही व्यक्त हो उठता है? सरोवर के अंदर कौन छुपा रहता है जो मात्र एक कंकड़ के फेंकने पर अपनी मानसी हलचल को व्यक्त कर देता है? महादेवी की निम्न पंक्तियाँ इसी कौन की सत्ता का आभास कराती हैं-

कौन तुम मेरे हृदय में।
कौन मेरी कसक में नित, मधुरता भरता अलक्षित।
कौन प्यासे लोचनों में घुमड़ फिर झरता अपरिमित।
स्वर्ण स्वप्नों का चितेरा नींद के सूने निलय में
कौन तुम मेरे हृदय में।[३४]

कवियों को प्रकृति के नाना स्वरूपों, अंगों और उपांगों में किसी अदृश्य रहस्यात्मक रूप के संकेत मिलते हैं और वे उसे अपने काव्य का विषय बना लेते हैं। इस प्रकार की भावनाभिव्यक्ति प्रकृति की रहस्यात्मक रूप में व्यंजना कही जाती है। इस प्रकार की अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति छायावादी

कवियों में अधिक मिलती है- यथा

दूर तक उन खेतों के पार, जहाँ तक गाई नील झंकार।
छिपा छाया वन में सुकुमार स्वर्ग की परियों का संसार।
वहीं उन पेड़ों में अज्ञात चाँद का है चाँदी का वास।
वहीं से खद्योतों के साथ स्वप्न आते उड़ उड़ कर पास।
इन्हीं में छिपा कहीं अनजान मिला कवि को था निज गान।।[३५]

कहीं-कहीं प्रकृति के माध्यम से दार्शनिक तथ्यों की सरस व्यंजना भी परिलक्षित होती है यथा नौका विहार के माध्यम से पन्त नश्वरता तथा अनश्वरता का बोध कराते हैं-

"ज्यों-ज्यों लगती है नाव पार, उर में आलोकित शत विचार।
इस धारा सा ही जग का क्रम, शाश्वत इस जीवन का उद्गम।।
शाश्वत है गति शाश्वत संगम, शाश्वत नभ का नीला विकास।
शाश्वत शशि का यह रजत हार, शाश्वत लघु लहरों का विकास।।
हे जग जीवन के कर्णधार, चिर जन्म-मरण के आर पार।
शाश्वत जीवन नौका बिहार।।"[३६]

इन प्रकृति रूपों के प्रकारों के अतिरिक्त स्वतंत्र रूप से प्रकृति के नाना अंगों-उपांगों का वर्णन प्रकृति चित्रण के अन्तर्गत मान्य है। प्रकृति के अंगों-उपांगों के वर्णन में निशा, दिवस, सूर्यास्त, सूर्योदय, सरिता, सागर, पर्वत, निर्झरादि का चित्रण किया जाता है।

(ख) तुलसी साहित्य से प्रकृति के विविध रूप

विस्तृत नभ मंडल में अपनी आभा की अनूठी छटा विकीर्ण करने वाले दिनकर, हिमाँशु और अगणित तारापुंज, अपनी विशालता का उदघोष करने वाला ठाठें मारता सागर, गजगामिनी सी मंथरगति से प्रवाहित होने वाली नदियाँ, हरीतिमा से युक्त वन प्रदेश, नवजात कोमलकान्त कलेवरी कलियों को स्पर्श से सिहराती मन्द-मधुर बयार, नाना प्रकार के कलरव करते विविध विहंग, सुमनोहर पुष्प, चपल मृगशावक, प्राची की कोख से झाँकता बाल रवि, रातरानी के जूड़े में तारे टांकता चाँद, इठलाते हुए जल प्रपात, हिमाच्छादित शैल श्रृंखलाओं आदि का यथातथ्य अंकन प्रकृति वर्णन के अंतर्गत आता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि मानव और मानव निर्मित पदार्थो के अतिरिक्त शेष गोचर सृष्टि को प्रकृति चित्रण के अंतर्गत स्वीकारा जा सकता है।

प्रकृति के वैभव और ऐश्वर्य से प्रभावित होकर कवि प्रकृति का अंकन अपने-अपने कौशलानुसार करते हैं। कवि भावुक प्राणी होता है। भावों के सहज आवेग के कारण कवि प्रकृति के उपादानों के माध्यम से अनूठे सौन्दर्य की योजना प्रस्तुत करता है। प्रत्येक काल के कवियों में

प्रकृति के प्रति अनुराग अभिव्यक्ति की ललित व्यंजना मिलती है क्योंकि प्रकृति के प्रति अनुराग की अभिव्यक्ति जहाँ एक ओर सफल भावाभिव्यंजना में सहायक होती है वहाँ दूसरी ओर रमणीयता का हेतु भी बनती है।

तुलसी का जन्म मध्ययुग या भक्तिकाल में हुआ था। भक्तिकाल में प्रकृति का स्वतन्त्र चित्रांकन नहीं हुआ है। भक्तिकाल की मान्यतानुसार प्रकृति ब्रह्म की अभिव्यक्ति मात्र है। अतः उपास्य और आराध्य के सौन्दर्य में ही निसर्ग के सौन्दर्य को सन्निहित माना गया। भक्ति कालीन धारणानुसार वह (आराध्य) ही सौन्दर्य का अक्षय स्त्रोत है जिसके चिन्तन, मनन, दर्शन और संस्पर्श मात्र से ही प्रकृति, सौन्दर्य से अनुप्राणित हो उठती है। तुलसी के काव्य में सर्वत्र यही भावना परिलक्षित होती है। तुलसी मूलतः भक्ति भाव में रमे कवि हैं। राम, तुलसी के आराध्य हैं जिनकी भृकुटि संकेत पर सृष्टि का कार्यसंपादन होता है। सीता आराध्य राम की अर्द्धांगिनी है। सम्पूर्ण विश्व में तुलसी को राम और सीता की व्याप्ति दिखाई पड़ती है। तुलसी का मूल प्रयोजन राम की लीलाओं का प्रचार और प्रसार है इसीलिये उसका हृदय और कल्पना केवल राम ही देखती है। राम-सीता के चरित्रों के गायन में जो प्रकृति का अंकन हुआ है वह केवल अपने प्रयोजन की सिद्धि के निमित्त हुआ है। तुलसी का मूलतः उद्देश्य मात्र प्रकृति अंकन नहीं है अपितु प्रकृति के नाना उपादानों के आश्रय से तुलसी ने अपने प्रयोजन को ही सिद्ध करने का प्रयास किया है। तुलसी के प्रकृति सौन्दर्य के अनुशीलन में कवि की मूल भावना तथा युगीन स्थिति को दृष्टिगत रखना अपेक्षित होगा। तुलसी के काव्य में विद्वानों द्वारा निरूपित प्रकृति वर्णन के प्रायः सभी रूपों के दर्शन होते हैं।

आलम्बन रूप में

भाव के प्रेरक आधार को आलम्बन की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। प्रकृति के सन्दर्भ में इसका अभिप्राय है कि प्रकृति को स्वतन्त्र सत्ता के रूप में अंकित करना। प्रकृति का सफल कवि उसे ही माना जा सकता है जो प्रकृति के मधुर और वीभत्स रूपों के सौन्दर्य का कुशल अंकन करने में समर्थ हो। तुलसी निसर्ग सुषमा पर ही मोहित होने वाले कवि नहीं हैं। तुलसी के सामने एक मात्र लक्ष्य है रामानुराग और उसका अंकन। यही कारण है कि उनकी वृत्ति केवल प्रकृति के अंकन में नहीं रमी, उसमें भी कवि तुरन्त ही अपने मूल प्रयोजन को समन्वित कर देता है।

बालकाण्ड का एक चित्र अवलोकनीय है इसमें सहज रूप में प्रकृति को चित्रित किया गया है यथा-

सदा सुमन फल सहित सब द्रुम नव नाना जाति।
प्रगटीं सुंदर सैल पर मनि आकर बहु भाँति।।
सरिता सब पुनीत जल बहहीं। खग मृग मधुप सुखी सब रहहीं।

सहज बयरु सब जीवन्ह त्यागा। गिरि पर सकल करहिं अनुरागा।।[३६क]

तुलसी ने राम के जीवन का अधिकाँश समय प्रकृति के सान्निध्य में चित्रित किया है अतः कवि को पूर्ण स्वतंत्रता थी कि वह प्रकृति का विस्तृत अंकन आलम्बन रूप में करता किंतु कवि ने जहाँ ऐसा प्रयास करना चाहा वहाँ तुरन्त ही उसके मूल उद्देश्य ने कोरे प्रकृति-चित्रण को नकार कर उसका उदात्तीकरण कर दिया है। गीतावली में चित्रकूट वर्णन में कहीं-कहीं संस्कृत कवियों की भाँति सूक्ष्म निरीक्षण और संश्लिष्ट योजना के दर्शन होते हैं। निम्न उद्धरण में जल से अभिसिंचित शिलाओं पर प्रतिविम्बित विस्तृत वितान में भी कवि को विराट-स्वरूप की झलक दिखाई देती है यथा-

सोहत स्याम जलद मृदु घोरत धातु-रँगमगे सृंगनि।
मनहुँ आदि अंभोज बिराजत सेवित सुर-मुनि भृंगनि।।
सिखर-परस-घन घटहिं मिलति बग-पाँति सो छबि कबि बरनी।
आदि बराह बिहरि बारिधि मनो उठ्यो है दसन धरि धरनी।।
जल जुत बिमल सिलनि झलकत नभ बन - प्रतिबिंब तरंग।
मानहुँ-जग-रचना बिचित्र बिलसित बिराट अंग-अंग।।
मंदाकिनिहि मिलत झरना झरि झरि भरि जल आछे।
तुलसी सफल सुकृत सुख लागे मानौ राम-भगति के पाछे।।[३७]

आचार्य शुक्ल अपना अभिमत देते हुए कहते हैं-**"इसमें यों ही नहीं कह दिया गया है कि "बादल छाए हैं' और 'बगलों की पाँत' उड़ रही है। मंद मंद गरजते हुए काले बादल गेरू से रंगे (लाल) श्रृंगों से लगे दिखाई देते हैं और शिखरस्पर्शी घटाओं से मिली श्वेत बक-पंक्ति दिखाई दे रही है। केवल जलद कहकर उसमें वर्ण और ध्वनि का भी विन्यास किया गया है। वर्ण के उल्लेख से 'जलद' पद में विंब-ग्रहण कराने की जो सामर्थ्य आई थी, वह रक्ताभ श्रृंग के योग में और भी बढ़ गई और बगलों की श्वेत पंक्ति ने मिलकर तो चित्र को पूरा ही कर दिया। यदि ये तीनों वस्तुएँ-मेघमाला, श्रृंग और बक पंक्ति-अलग-अलग पड़ी होतीं, उनकी संश्लिष्ट योजना न की गई होती, तो कोई चित्र ही कल्पना में उपस्थित न होता। तीनों का अलग अर्थ-ग्रहण मात्र हो जाता, बिंब ग्रहण न होता। इसी प्रकार काली शिलाओं पर फैले हुए जल के भीतल आकाश और वनस्थली का प्रतिबिंब देखना भी सूक्ष्म निरीक्षण सूचित करता है।"**[३८]

पंपा सरोवर के वर्णन में तुलसी प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण कर मूल उद्देश्य के प्रतिपादन में रम जांते हैं यथा-

बिकसे सरसिज नाना रंगा। मधुर मुखर गुंजत बहु रंगा।।
बोलत जल कुक्कुट कलहंसा। प्रभु बिलोकि जनु करत प्रशंसा।।
चक्रबाक बक खग समुदाई। देखत बनइ बरनि नहिं जाई।।
सुंदर खगगन गिरा सुहाई। जात पथिक जनु लेत बुलाई।।

ताल समीप मुनिन्ह गृह छाए। चहु दिसि कानन बिटप सुहाए।।
चंपक बकुल कदंब तमाला। पाटल पनस परास रसाला।।
नव पल्लव कुसुमित तरु नाना। चंचरीक पटली कर गाना।।
सीतल मंद सुगंध सुभाऊ। संतत बहइ मनोहर बाऊ।।
कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं। सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं।।

फल भारन नमि बिटप सब रहे भूमि निअराइ।
पर उपकारी पुरुष जिमि नवहि सुसंपति पाई।।[३६]

राम के चित्रकूट निवास-स्थान का वर्णन तुलसी ने केवट के माध्यम से व्यक्त किया है-

नाथ देखिअहिं बिटप बिसाला। पाकरि जम्बु रसाल तमाला।।
जिन्ह तरुबरन्ह मध्य बटु सोहा। मंजु बिसाल देखि मनु मोहा।।
नील सघन पल्लव फल लाला। अबिरल छाँह सुखद सब काला।।
मानहुँ तिमिर अरुनमय रासी। बिरची बिधि सँकेलि सुषमा सी।।[४०]

चित्रकूट के एक और अन्य चित्रण में कवि ने निसर्ग सौन्दर्य को कुशलता से संयोजित किया है-

फटिक सिला मृदु बिसाल, संकुल सुखरु तमाल
ललित लता-जाल हरति छबि बितान की।
मंदाकिनी-तटिनि-तीन, मंजुल-मृग-बिहग-भीर
धीर मुनि गिरा गभीर सामगान की।।
मधुकर पिक बरहि मुखर, सुंदर गिरि निरझर झर,
जल-कन, छन छाँह छन प्रभा न भान की।
सब ऋतु ऋतुपति-प्रभाउ, संतत बहै त्रिबिध बाउ,
जनु बिहार-बाटिका नृप पंच-बान की।।[४१]

किंतु यह प्रकृति की शोभा उनके आराध्य की उपस्थिति के कारण ही है। वे स्वयं इस तथ्य को संपुष्टि करते हैं-

जब तें आई रहे रघुनायक। तब तें भयउ बनु मंगलदायुक।।
फूलहिं फलहिं बिटप बिधि नाना। मंजु वलित वर बेलि बिताना।।
सुर तरु सरिस सुभायँ सुहाए। मनहु बिबिध बन परि हरि आए।।
गुंज मंजुतर मधुकर श्रेनी। त्रिबिध बयारि बहइ सुख देनी।।

नील कंठ कल कंठ सुक चातक चक्क चकोर।
भाँति भाँति बोलहिं बिहग, श्रवन सुखद चितचोर।।[४२]

तुलसी ने प्रकृति के मनोहर दृश्यों का अंकन अधिक किया है जो उनकी सौन्दर्य प्रियता को स्पष्ट करते हैं। आलम्बन रूप के कतिपय उदाहरणों से यह बात स्वतः उभरती है-

(क) झरना झरहिं सुधा-सम बारी। त्रिबिध-ताप-हर त्रिबिध बयारी।।
बिटप-बेलि-तृन अगनित जाती। फल प्रसून पल्लव बहु भाँती।।
सुंदर सिला सुखद तरु-छाहीं। जाइ बरनि बन-छबि केहि पाहीं।।
सरनि सरोरुह जल-बिहग, कूजत गुंजत भृंग।
बैर बिगत बिहरत बिपिन, मृग बिहंग बहुरंग।।[४८]

(ख) बिटप बेलि नव किसलय, कुसुमित सघन सुजाति।
कंदमूल जल-थल-रुह अगनित अनबन भाँति।।
मंजुल मंजु बकुल-कुल, सुर-तरु, ताल-तमाल।
कदलि कदंब सुचंपक पाटल, पनस रसाल।।
सरित-सरन सरसीरुह फूले नाना रंग।
गुंजत मंजु मधुपगन, कूजत बिबिध बिहंग।।[४४]

एक स्थल पर प्रकृति के भंयकर रूप का सजीव चित्र मिलता है। सीता, को वनगमन हेतु प्रस्तुत देखकर राम उन्हें वन की भंयकरता का बोध कराते हैं। राम वन का एक काल्पनिक किंतु भयावह चित्र प्रस्तुत करते हैं ताकि सीता को वनगमन से रोका जा सके। अनायास प्रस्तुत काल्पनिक वन की भयंकरता का चित्र तुलसी के आलम्बन रूप में निसर्ग वर्णन की कुशलता का परिचय प्रस्तुत करता है-

कानन‌ु कठिन भयंकरु भारी। घोर घाम हिम बारि बयारी।।
कुस कंटक मग कंकर नाना। चलब पयादेहि बिनु पद माना।।
कंदर खोह नदी नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे।।
भालु बाघ वृक केहरि नागा। करहिं नाद सुनि धीरजु भागा।।
व्याल कराल काल बन घोरा। निसिचर निकर नारि-नर चोरा।।[४५]

इसे आलम्बन रूप का श्रेष्ठ उदाहरण माना जा सकता है। इसके श्रेष्ठत्व का मूल है कि कवि ने केवल वन की भयंकरता को ही अंकित करना चाहा है और इसमें कवि को पर्याप्त सफलता मिली है।

उद्दीपन रूप में-

काव्य में मनोगत भावनाओं की अनुभूति को तीव्रता प्रदान करने वाले कारण को उद्दीपन कहा जाता है। अथ से लेकर इति तक मानव प्रकृति के क्रिया कलाप और व्यापार से प्रभावित होता है, यही कारण है कि जो उपकरण और उपादान संयोग में सुख की सृष्टि करने वाले होते हैं, वे ही वियोगावस्था में पीड़ा और वेदना के पर्याय बन जाते हैं।

तुलसी काव्य में प्रकृति के उद्दीपन रूप का सफल और सम्यक निदर्शन मिलता है। तुलसी

ने प्रकृति के माध्यम से पात्रों को समयोचित अभिव्यक्ति प्रदान की है और स्पष्ट किया है कि मानव जब प्रसन्न होता है तो वह दूसरों को आनंद-मंगलयुक्त देख और अधिक प्रसन्न हो उठता है तथा जब वह दुखी होता है तो दूसरों की प्रसन्नता उसके हृदय को सालने लगती है। इन्हीं मनोभावों से मानव और परमसत्ता का अंतर भी स्पष्ट होता है।

तुलसी के राम वैसे तो मर्यादा पुरुषोत्तम हैं किन्तु मानवोचित दुर्बलताओं के कारण साधारण मानवों की तरह ही आचरण करते हैं। संयोग की अवस्था में वही प्रकृति राम को अनुकूल सृष्टि करती जान पड़ती है तो विरहावस्था में वही राम को व्याकुल कर वन में प्राणप्रिया सीता के अन्वेषणार्थ भटकने को विवश कर देती है।

राम और सीता के प्रथम मिलन का चित्र प्रस्तुत है जहाँ प्रकृति सहयोगी भाव से अनुकूल सृष्टि करती है-

भूप बागु बर देखेउ जाई। जहँ बसन्त रितु रही लोभाई।।
लागे विटप मनोहर नाना। बरन बरन बर बेलि बिताना।।
नव पल्लव फल सुमन सुहाए। निज संपति सुर-रुख लआए।
चातक कोकिल कीर चकोरा। कूजत बिहग नटत कल मोरा।।
मध्य बाग सरु सोह सुहावा। मनि सोपान बिचित्र बनावा।।
बिमल सलिल सरसिज बहुरंगा। जल खग कूजत गुंजत भ्रंगा।।[४६]

इस सुन्दर और मनोरम वातावरण में राम और सीता एक दूसरे के प्रति प्रेम पाश में निबद्ध हो जाते हैं। यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि तुलसी ने दास्यभावना के अनुकूल ही काव्य की सर्जना की है। इसीलिए राम और सीता के संयोग-वर्णन में उनकी वृत्ति अधिक नहीं रमी। फिर भी मर्यादित परिधि में तुलसी ने जितना भी वर्णन किया है, प्रकृति ने उसमें अपना पूर्ण सहयोग दिया है। एक और चित्र प्रस्तुत है जिसमें राम, सीता तथा उनकी अन्य सखियों के साथ झूला झूल रहे हैं। इस वर्णन में तुलसी ने वर्षा के माध्यम से प्रकृति का उद्दीपन रूप में आश्रय लिया है-

उनये सघन घनघोर मृदु झरि सुखद सावन लाग।
बगपाँति, सुरधनू दमक दामिनि हरित भूमि विभाग।।
दादुर मुदित भरे सरित-सर महि उमग जनु अनुराग।
पिक-मोर मधुप चकोर-चातक-सोर उपवन बाग।।
झूलहिं झुलावहिं, ओसरिन्ह गावै सुहौ गौड मलार।
मंजीर नूपुर-वलय-धुनि जनुकाम-करतल तार।।[४७]

सीता से वियोग के पश्चात यही प्रकृति राम जैसे धीर और प्रशान्त व्यक्तित्व को विचलित करने में पूर्ण सहयोग प्रदान करती है। यत्र तत्र वन में घूमते हुए उन प्राणियों को देखकर, राम को सीता की स्मृति और अधिक तीव्र हो उठती है जिनकी उपमा भी सीता के अंग-प्रत्यंगों की श्री सुषमा के

आगे व्यर्थ जान पड़ती थी। वे ही प्राणी अब सीता की अनुपस्थिति में निर्द्वन्द्व घूम रहे हैं। उनमें कोई हेय भावना दृष्टिगत नहीं होती। उन प्राणियों के क्रियाकलाप उन्हें और व्यथित करते हैं। राम अपनी एकाकी अवस्था की अनुभूति से पीड़ित हो उठते हैं-

खंजन सुक कपोत मृगमीना। मधुप निकर कोकिला प्रवीना।।
कुंद कली दाड़िम दामिनी। कमल सरद ससि अहिभामिनी।।
बरुन पास मनोज धनुहंसा। राजकेहरि निज सुनत प्रसंसा।।
श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं। नेकु न संक सकुच मनमाहीं।।
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाइ जनु राजू।।
किमि जात अनख तोहि पाहीं। प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं।।[४८]

यद्यपि कवि ने प्रकृति के उद्दीपन रूप की सांकेतिक रूप में कुशल अभिव्यक्ति की है किन्तु वह कहीं भी अपूर्ण नहीं प्रतीत होती है।

अंबर में वर्षा ऋतु के अभिमान से भरे बादलों का गर्जन प्रियाविहीन राम के हृदय में भय-के संचार में सहायक है-

घन-घमंड नभ गरजत घोरा। प्रिया-विहीन डरपत मन मोरा।।[४९]

उपर्युक्त पंक्ति में मानव की सूक्ष्मानुभूति का निदर्शन परिलक्षित होता है कि जो भय के नाशक हैं। जिनके धनु के संधान मात्र से निखिल विश्व भयरहित हो जाता है, ऐसे परम धैर्यवान राम, प्रिया के वियोग में व्यथित होकर धैर्य छोड़ देते हैं।

शीतलता प्रदायक हिमांशु भी राम को दाहक प्रतीत होता है जो तीव्रता से उनके शरीर को दग्ध कर रहा है। यथा-

सीतलता ससि की रहि सब जग छाई।
अगिनि ताप ह्वै तम कहँ सँचरत आई।।

रामदूत हनुमान द्वारा सीता को राम का सन्देश देते समय तुलसी ने प्रकृति के उद्दीपन रूप का मार्मिक अंकन किया है। प्रस्तुत हैं विरहावस्था में प्रकृति की प्रतिकूलता को प्रदर्शित करने वाली कतिपय पंक्तियाँ-

''कहेउ राम वियोग तव सीता। मो कहुँ सकल भए विपरीता।।
नव तरु किसलय मनहुँ कृसानू। काल निसा सम निसि ससि भानू।।
कुबलय बिपिन कुंत बन सरिसा। बारिद तपन तेल जनु बरिसा।।
जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा।।[५०]

भारतीय वांग्मय की उत्कृष्टता का मूल है उभयपक्षीय प्रेम। नायक-नायिकाओं की मिलन और विरह उभय स्थितियों में समानुभूति की अभिव्यक्ति को निर्विवाद रूप से भारतीय सर्जना का वैशिष्ट्य स्वीकारा जा सकता है। राम और सीता के संदर्भ में भी उपर्युक्त तथ्य सम्यक रूप से मुखरित होता

है। दोनों एक दूसरे को अपना पूरक मानते हैं और जीवनी शक्ति भी। एक ओर राम प्रिया वियुक्त हो वन-वन में आकुल हो घूम रहे हैं। आनंदमयी प्रकृति को देखकर और अधिक व्यथित हो रहे हैं वहीं दूसरी ओर सीता भी प्रिय विहीना हो मृत्यु की कामना कर रही हैं। अशोक वाटिका की रमणीयता उन्हें मोह नहीं पाती। उन्हें ऐसा लगता है मानो हिमकर शीतलता की जगह अग्निवर्षा कर रहा है। नूतन किसलय-समूह अंगार के सदृश उनके मानस को दग्ध कर रहा है-

"देखियत प्रगट गगन अंगारा। अवनि न आवत एकहु तारा।।
पावकमय ससि स्रवत न आगी। मानहुँ मोहि जानि हतभागी।।
सुनहिं बिनय मम बिटप अशोका। सत्य नामकरु हरु मम सोका।।
नूतन किसलय अनल समाना। देहि अगिनि जनि करहि निदाना।।"[५१]

चन्द्रमा की ज्योत्स्ना निखिल विश्व को शीतलता से आप्लावित करती है किन्तु वही ज्योत्स्ना सीता को प्रिय के वियोग में हृदय की दाहक प्रतीत होती है। सारा संसार राम के वियोग में सीता को जलता हुआ प्रतीत होता है-

"डहकु न है उजियरिया निसि नहि घाम।
जगत जरत अस लागु मोहि बिनु राम।।"[५२]

विरह की अपार अनुभूति नायक और नायिका को एक ऐसी अवस्था में पहुँचा देती है जहाँ उन्हें कुछ भी न ज्ञान रहता है और न भान। चेतना-शक्ति निस्पन्द और मृतप्राय हो जाती है। इसे उन्माद की अवस्था कह सकते हैं। प्रिया विहीना राम इसीलिए खग, मृग और मधुकर श्रेनी से मृगनयनी प्रिया का पता पूछते फिरते हैं। तुलसी के उद्दीपन रूप में प्रकृति वर्णन की अभिव्यक्ति के संदर्भ में **सुरेन्द्रनाथ सिंह** का अभिमत समीचीन प्रतीत होता है- **"तुलसी ने प्रकृति के जिस उद्दीपनकारी रूप का चित्रण किया है उसमें मौलिकता नहीं है अपितु परम्परागत शैली का ही निर्वाह है। लेकिन उनका वैशिष्ट्य इस बात में है कि उन्होंने प्रकृति के अतिशयोक्ति पूर्ण एवं भड़कीले चित्रों का अंकन नहीं किया बल्कि सीधे-सादे ढंग से पात्रों की भावनाओं को स्पष्ट करने के लिए पृष्ठभूमि के रूप में उनका संयोजन किया है। उनका प्रयोजन है प्रकृति के माध्यम से पात्र की आंतरिक स्थिति का प्रकाशन करना जिसमें उन्हें पूरी सफलता मिली है।"**[५३]

उपमान रूप में-

प्रकृति मोहक और रमणीय व्यापारों की इन्द्रधुषी रंगशाला है। कवि प्रकृति से नाना प्रकार के उपमानों को ग्रहण कर काव्य की सरस और मनोहर नियोजना प्रस्तुत करता है।

तुलसी साहित्य में उपमान रूप में प्रकृति के चित्रण की सुन्दर योजना मिलती है। तुलसी की सौन्दर्य प्रियता की झाँकी निम्नांकित चित्र से स्पष्ट परिलक्षित होती है- **कुंदकली अपने शुभ्र और उज्जवल वर्ण, लघुता एवं रमणीयता के लिए, किसलय अपनी लालिमा और कमनीयता के लिए**

तथा श्यामवर्णी जलधरों के अंक में चमकने वाली तड़ित्छटा अपनी चमक और दमक के लिए युग-युग से सर्वमान्य है। तुलसी ने इन उपमानों को राम की धवल दंतावली, अधरों, एवं श्यामल वक्ष पर धारित माला की श्री सुषमा का अंकन करने के लिए ग्रहण कर अपनी सौन्दर्य प्रियता का उत्कृष्ट प्रमाण प्रस्तुत किया है।

बरदंत की पंगति कुंदकली अधराधर पल्लव खोलन की।
चपला चमके घन बीच जगैं छवि मोतिन माल अमोलन की।।[५४]

अंग-प्रत्यंग के सौन्दर्य-वर्णन में कवि ने प्रकृति से ही उपमानों को ग्रहण कर चारुता को गरिमा प्रदान की है। ये उपमान कहीं तो शोभा की समता को प्रदर्शित करते हैं, कहीं रूप के साथ साम्य स्थापित कर लेते हैं तो कहीं उस अपरूप की अतुलनीय कांति का निदर्शन कर स्वयं को हीन समझते हैं। तुलसी ने यद्यपि परम्परागत उपमानों का ही प्रयोग किया है किन्तु अपनी प्रतिभा और कल्पना विधान की सामर्थ्य शक्ति से उसे निखार कर प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत है तुलसी के कौशल को प्रमाणित करने वाला राम के बाल सौन्दर्य का एक मनोहर भव्य चित्र -

आंगन फिरत घुटुरुवन धाए।
नील जलद तनु स्याम राम सिसु जननि निरखि मुख निकट बुलाए
बंधुक सुमन असन पद पंकज अंकुस प्रमुख चिन्ह बनि आए।
नूपुर जनु मुनिवर फल हंसनि रचे नीड़ दै बाँह बसाए।।

\- -

उपमा एक अभूत भई तब-जब जननी पट पीत ओढ़ाए।
नील जलद पर उड्डगन निरखत तजि सुभाव मनो तड़ित छपाए।।[५५]

उपर्युक्त उद्धरण की अंतिम पंक्तियों में उत्प्रेक्षा के माध्यम से बिम्ब की भव्य प्रस्तुति तुलसी के अन्यतम कौशल को स्पष्ट करती है।

एक अन्य चित्र में तुलसी ने भूमि और गगन के उपमानों को एक स्थान पर समन्वित कर अनुपम सौन्दर्य की उद्भावना की है। शिशु राम के मुखमण्डल में अंजन युक्त मोहक नेत्रों की उपमा तुलसी की सौन्दर्य प्रियता का भव्यतम प्रमाण प्रस्तुत करती है।

तुलसी मन रंजन रंजित अंजन नैन सुखंजन जातक से।
सजनी ससि में समशील उभै नवनील सरोरुह से बिकसे।।[५६]

सीता स्वयंवर के समय धनुष नउठा पाने के कारण पौरुषहीन राजाओं के आत्मग्लानि से नत मस्तकों की तुलना के लिए तुलसी ने छुई-मुई पौधे को उपमान रूप में ग्रहण कर वर्णन को सार्थकता प्रदान की है-

जनक बचन छुए बिरवा लजारु के से
बीर रहे सकल संकुचि सिर नाइकै।।

त्रैलोक्य विजेता रावण की विशाल रूपाकृति की भंयकरता के अंकन के लिए तुलसी ने प्रकृति के उपमानों को ग्रहणं कर सार्थक वर्णन करने में सफलता पाई है। प्रकृति के कज्जल गिरि, श्रंग, लता, कंदरा तथा खोह को उपमान रूप में चयनित कर तुलसी ने रावण के आकार, रोमावली, मुख, नाक तथा कानों की विकरालता और भयावहता का अंकन किया है। उपर्युक्त उपमानों के माध्यम से रावण की रूपाकृति को तुलसी सहज रूप में स्पष्ट कर देते हैं-

अंगद दीख दसानन वैसे। सहित प्रान कज्जल गिरि जैसे।।
भुजा बिटप सिर सृंग समाना। रोमावली लता जनु नाना।।
मुख नासिका नयन अरु क़ाना। गिरि कंदरा खोह अनुमाना।।[५७]

मानवीकरण रूप-

चराचर जगत् में मानव के अतिरिक्त पदार्थों में मानवीय गुणों को आरोपित करने की क्रिया को मानवीकरण की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। कवि परिस्थिति के अनुसार विविध अनुभूतियाँ अनुभूत करता है और इसी सन्दर्भ में वह प्रकृति पर मानवीय अनुभूतियों का प्रभाव अंकित करता है। तुलसी साहित्य में पृष्ठभूमि रूप में प्रकृति का मानवीकरण कुशल रूप में मिलता है। 'मानस' के कामदेव प्रसंगान्तर्गत सम्पूर्ण चराचर जगत में काम भाव की व्याप्ति स्पष्ट होती है। समुद्र से संगमन को आतुर सरिताओं तथा विटपों से मिलने हेतु आकुल लतरों पर मानवीकरण के आरोप ने सौन्दर्य की सरस अभिव्यंजना को व्यंजित कर तुलसी के रमणीय बोध की कुशल अभिव्यक्ति की है-

सबके हृदय मदन अभिलाषा। लता निहारि नवहिं तरु साखा।।
नदीं उमगि अंबुधि कहुँ धाई। संगम करहिं तलाब तलाई।।[५८]

प्रकृति के सम्पूर्ण उपादान राम की परम सत्ता को स्वीकारते है और श्रद्धानत हो अपना सेव्यभाव स्पष्ट करते हैं-

(अ) **जेहि तरु तर प्रभु बैठहिं जाई। करहिं कलपतरु तासु बड़ाई।।**
परस राम पद पदुम परागा। मानत भूमि भूरि निज भागा।।
छाँह करहिं घन बिबुध गन बरषहिं सुमन सिहाहिं।
देखत गिरि बन बिहग मृग रामु चले मग जाहिं।।[५९]

(ब) **जँह जहँ जाहिं देव रघुराया। करहिं मेघ तहँ तहँ नभ छाया।।**[६०]

सुविधा की दृष्टि से मानवीकृत प्रकृति को तीन विभागों में वर्गीकृत कर सकते हैं-

(क) मानव के प्रति सम भावानुभूति-

सम भावानुभूति से द्योतित होता है कि प्रकृति का इस रूप में अंकन जो मानव के चित्त और मानसिक अवस्था के अनुरूप हो। तुलसी साहित्य में राम को देखकर प्रकृति के उल्लसित और आनंदित होने का अंकन बहुत मिलता है किन्तु समान भावानुभूति के कतिपय चित्र ही उपलब्ध होते

हैं। सीताहरण के उपरान्त प्रकृति में राम के साथ समान भावानुभूति की स्थिति परिलक्षित होती है। प्रिया रहित राम के साथ प्रकृति शोक विह्वल हो अपनी संवेदना को यों अभिव्यक्त करती है-

सरित जल मलिन, सरनि सूखे नलिन,
अलि न गुंजत कल कूजैं न मराल।
कोलिनि कोल किरात जहाँ तहाँ बिलखात
बन न बिलोकि जा खग मृग माल।।
तरु जे जानकी लाए ज्याए हरि करि कपि,
हेरैं, न हुँकरि, झरैं फल न रसाल।
जे सुक सारिका पाले मातु ज्यों ललकि लाले,
तेऊ न पढ़त न पढ़ावें मुनि बाल।।
समुझि सहमे सुठि प्रिया तौ न आई उठि
तुलसी बिबरन परन तृन साल।
औरै सो सब समाजु कुसल न देखौं आजु
गहबर हिय कहँ कोसल पाल।।[६१]

संवेदनशीलता मानव का विशिष्ट गुण है जिसका आरोप प्रकृति पर व्यंजना के माध्यम से किया गया है।

(ख) मानव के प्रति विषम भावानुभूति-

विषम भावानुभूति से स्पष्ट है कि प्रकृति का चित्रण इस रूप में हो जो मानव अथवा पात्र की मानसिक अवस्था में प्रतिकूल हो अर्थात् अवसाद की अवस्था में उल्लास तथा आनंदित अवस्था में प्रकृति का विषादयुक्त वर्णनं। तुलसी साहित्य में इस प्रकार की अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप में नहीं की गई है। मानस के सीताहरण के पश्चात राम विलाप के प्रसंग में प्रकृति का कुछ इसी प्रकार का वर्णन मिलता है। प्रकृति की विषम भावानुभूति के साथ-साथ तुलसी सीता की श्री शोभा के सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने में सफल रहे हैं-

खंजन सुक कपोत मृग मीना। मधुप निकर कोकिला प्रबीना।।
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाइ जनु राजू।।
किमि सहि जात अनख तोहि पाहीं। प्रिया बेगि प्रगटसि कसि नाहीं।।[६२]

(ग) उदासीन भावानुभूति-

मानवीकरण रूप में प्रकृति की एक और स्थिति स्पष्ट होती है तटस्थता की। इसमें प्रकृति तटस्थ रहती है न वह मानव के प्रति संवेदना प्रकट करती है और न ही विरोधाभास। मानस के कतिपय स्थल इस बात का प्रमाण देते हैं यथा- प्रिया वियोग से व्यथित राम खग-मृग, मधुकर आदि से अपनी

प्रिया का पता पूछते हैं। इस स्थल पर प्रकृति का उदासीन रूप दृष्टिगोचर होता है-

हे खग, मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृग नैनी।।[६३]

प्रतीक रूप-

तुलसी साहित्य में प्रकृति का प्रतीक रूप में चित्रण दुर्लभ ही है। अत्यधिक श्रमोपरान्त शायद संभव हो कि कोई उदाहरण हाथ लगे। इसका मूल कारण है तुलसी की साकार रूपोपासना। निराकार और निर्गुणोपासना में प्रतीक रूप चित्रण की बहुत सम्भावना होती है। सूफी कवियों में इसे स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। तुलसी ने राम रूप की उपासना साकार रूप में की है। कहीं-कहीं संसार को माया और अज्ञान का प्रतीक स्वीकारा है।

उपदेशिका रूप में

प्रकृति में व्याप्त अनुपम सौन्दर्य को विभिन्न रूपों में रूपायित करना कवि की कुशलता पर निर्भर करता है। तुलसी ने प्रकृति के अन्तर में छिपी नीति और उपदेश की शक्ति को पहचाना है और इसीलिए तुलसी ने प्रकृति के उपदेशिका रूप का अंकन बहुतायत से किया है। तुलसी मात्र कवि नहीं थे। दार्शनिकता और लोकमंगल से अनुप्राणित काव्य की प्रतिष्ठा करना ही उनका अभीष्ट मंतव्य रहा है। तुलसी ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम के चरित्र का यशोगान किया है। प्रकृति इस हेतु उनकी सहयोगिनी रही है। साकार रूप की अभिव्यक्ति में ही तुलसी की लेखनी रमी है इसीलिए वे अणु-अणु में श्री राम के दर्शन करते हैं और उन्हीं की कीर्ति का गायन कर जनकल्याणकारी काव्य की प्रतिष्ठा करते हैं। तुलसी की अवधारणा है कि **सर्वोत्कृष्ट काव्य उसे स्वीकारा जा सकता है जो पतित पावनी 'सुरसरि' के सदृश जन-मन के कलुष को धोकर मंगल विधायक हो। प्रकृति के माध्यम से भी उन्होंने ऐसा ही प्रयास किया है।**

प्रकृति का उपदेशिका रूप मानस के अरण्यकांड और किष्किंधा कांड में मुखरित हुआ है। निसर्ग के हरिताभ अंक में क्रीड़ा करती गोदावरी तथा पंपा सरोवर के निकट पहुँचकर भी तुलसी स्वतन्त्र रूप सौन्दर्य को अंकित नहीं करते। पंपासरोवर तुलसी के शिव को उपदेशक के सदृश सन्देश प्रेषित करता जान पड़ता है-

संत हृदय जस निर्मल बारी। बाँधे घाट मनोहर चारी।
जहँ तहँ पिअहिं बिबिध मृग नीरा। जनु उदार गृह जाचर भीरा।।
पुरइनि सघन ओट जल बेगि न पाइअ मर्म।
मायाच्छन्न न देखिए जैसे निर्गुन ब्रह्म।।[६४]

उपर्युक्त उदारहण से तुलसी की दार्शनिक भावभूमि का अनुमान लगाया जा सकता है कि जो सरोवर के स्वच्छ जल को सन्त के पवित्र मानस के सदृश अंकित करती है। तुलसी ने **सघन पुरइन** से आच्छन्न अदृश्य नीर के उपमान के रूप में मायाच्छादित अदृश्य निर्गुण ब्रह्म की कल्पना की योजना

के माध्यम से गूढ़तम दार्शनिक तथ्य की सरस अभिव्यंजना प्रस्तुत की है।

प्रकृति का उपदेशिका रूप में अंकन कर तुलसी ने नैतिक उपदेशों को संप्रेषित कर मुक्ति मार्ग की ओर बढ़ने का संकेत दिया है। मानस के किष्किंधाकांड के अन्तर्गत तुलसी ने वर्षा और शरद ऋतु का विशद चित्रण किया है। वर्षा और शरद ऋतु के माध्यम से उपदेश और सन्देश प्रेषण की अभिव्यक्ति तुलसी की अन्यतम मर्मज्ञता का परिचय देती है। **सुरेन्द्रनाथ सिंह** अपना अभिमत प्रस्तुत करते हुए कहते हैं-

"किष्किंधा कांड में वर्षा एवं शरद ऋतु के वर्णन में उपदेश बाहुल्य अपनी चरम सीमा पर है। हिन्दी साहित्य में इस प्रकार का सारगर्भित उपदेश मूलक प्रकृति निरूपण तुलसी दास की अपनी निजी विशेषता है। इसमें कवि के हृदय का उल्लास नहीं अपितु धर्म दर्शन का प्राबल्य है। ऐसा लगता है जैसे वह एक बार प्रकृति के रूप को देखता है और दूसरी बार लोक व्यवहार के क्षेत्र की ओर और तुरन्त उसे उपमान-रूप में प्रस्तुत कर देता है।"[६५]

आइए वर्षा का मनोरम चित्र देखें-

दामिनि दमक रही घनमाहीं। खल के प्रीत जथा थिर नाहीं।
बरबहिं जलद भूमि निअराएँ। जथा नवहिं बुध विद्या पाएँ।।
बूँद अघात सहहिं गिरि कैसें। खल के बचल संत सह जैसें।।
छुद्र नदी भरि चलीं तोराई। जस थोरेहु धन खल इतराई।।
भूमि परत भा ढाबर पानी। जनु जीवहिं माया लपटानी।।
सिमिटि-सिमिटि जल भरहिं तलावा। जिमि सद्गुन सज्जन पहिं आवा।।
सरिता जल जलनिधि महुँ जाई। होइ अचल जिमि जिव हरि पाई।।
हरित भूमि तृन संकुल समुझि परहिं नहिं पंथ।
जिमि पाखंड बाद तें लुप्त होंहि सदग्रंथ।।[६६]

इस प्रकार वर्षा के माध्यम से सज्जन और दुर्जन के गुणों और लक्षणों का निरूपण तुलसी ने किया है। माया के प्रभाव का भी साथ-साथ उद्घाटन किया गया है। शरद के माध्यम से भी इसी प्रकार की अभिव्यक्ति व्यंजित हुई है-

फूलें कास सकल महि छाई। जनु बरषां कृत प्रगट बुढ़ाई।।
उदित अगस्ति पंथ जल सोषा। जिमि लोभहिं सोषई संतोषा।।
सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय गत जस मद मोहा।।
रस-रस सूख सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी।।
जानि सरद रितु खंजन आए। पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए।।[६७]

तुलसी के वर्षा और शरद ऋतु के अंकन से उनकी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का परिचय मिलता है। वर्षा के कारण हरे भरे विटपों के अंकन के साथ इस काल में शुष्क होने वाले अर्क और जवासे

का चित्रण तुलसी की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति और सजगता को स्पष्ट करता है

अर्क जवास पात बिनु भयऊ। जस सुराज खल उद्यम गयऊ।।

डा० किरण कुमारी गुप्त का कथन है- **"यद्यपि उन्होंने प्रकृति का यथातथ्य चित्रण किया है, किन्तु केन्द्रीय भावना उपदेश की रही है, तो भी इस चित्रण में कवि का प्रकृति के प्रति कुछ अनुराग व स्नेह भी प्रगट होता है, क्योंकि उन्होंने जहाँ वर्षा ऋतु में नवीन पल्लव और हरित भूमि का वर्णन किया है, वहाँ वे आक और जवास से पत्रविहीन सूखे वृक्षों का वर्णन करना भी नहीं भूले हैं।"**[६८]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रकृति के माध्यम से तुलसी ने लोककल्याण की मूल भावना को अभिव्यंजित किया है। तुलसी का कौशल इसमें है कि नीरस उपदेशों को सरल और सुबोध ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

यह ठीक है कि तुलसी साहित्य में प्रकृति वर्णन के अन्तर्गत उपदेशिका रूप में प्रकृति का विशुद्ध चित्रण नहीं मिलता, इसका कारण है तुलसी की साहित्य सर्जना की मूल भावना। तुलसी का अभीष्ट रहा है नीति एवं उपदेश की स्थापना द्वारा जनमंगल। अतएव तुलसी के उपदेशिका रूप में प्रकृति वर्णन को सार्थक माना जाना चाहिए क्योंकि तुलसी प्रकृति के माध्यम से नीरस उपदेशों को सहज और सरल ढंग से सम्प्रेषित करने में सफल रहे। तुलसी की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति और सजगता कम श्लाघनीय नहीं है।

मेरे विचार में तुलसी जैसा कवि लोक-मंगल की भावना से प्रेरित होकर उपदेश तो करना चाहता है पर प्रत्यक्षतः नहीं। वह परोक्ष रूप में अर्थात् प्रकृति आदि के माध्यम से ही अपना संदेश/उपदेश संप्रेषित करना अपना धर्म मानता है। इस दृष्टि से तुलसी सफल कलाकार कहे जा सकते हैं। अधिक उपदेशात्मकता काव्य की सरसता में व्याघात उपस्थित करने लगती है। तुलसी में कहीं कहीं यह दोष भी आ गया है।

अलंकार रूप में-

अलंकार से रमणीयता में अभिवृद्धि होती है। काव्य को रसात्मकता से अभिमंडित करने के लिए अलंकारों का आश्रय लिया जाता है। प्रकृति में एक ऐसी अनूठी शक्ति अंतर्निहित है जो युगों-युगों से मानव को आकर्षित करती आई है इसीलिए अभिव्यक्ति में चारुता और लालित्य की व्यंजना करने के लिए कवि प्रकृति के उपादानों को माध्यम बनाकर सर्जना करता है। यदि केवल यह कहा जाये कि नेत्र सुन्दर हैं तो इससे अभीष्ट तो स्पष्ट हो जाता है किन्तु सौन्दर्य की सम्यक व्यंजना स्पष्ट नहीं होती लेकिन यदि यह कहा जाए कि नेत्र नील कमल के समान सुन्दर हैं तो सौन्दर्य अपनी पूर्णता के साथ ध्वनित होता है। नीलकमल उपमान के माध्यम से नेत्रों की दीर्घता, श्यामलता तथा आर्द्रता की अभिव्यंजना नेत्रों के सम्पूर्ण सौन्दर्य की समर्थ अभिव्यक्ति करती है। यही कारण है कि प्रकृतिवियुता काव्य में सरसता की अभिव्यक्ति असंभव है। तुलसी साहित्य में प्रकृति का अलंकार

रूप में विस्तृत अंकन मिलता है। अलंकार रूप में तुलसी ने विभिन्न अलंकारों के माध्यम से प्रकृति सौन्दर्य को जहाँ एक ओर अभिव्यक्त किया है वहीं साथ ही अपने कथानक में रमणीयता का विधान प्रस्तुत भी किया है।

रूपक- तुलसी साहित्य में रूपक का प्रचुर प्रयोग मिलता है। तुलसी ने प्रकृति से अनेकानेक उपमानों को ग्रहीत कर उत्कृष्टतम रूपक योजना के माध्यम से प्रकृति सौन्दर्य के अंकन के साथ काव्य में रमणीयता का सार्थक विधान किया है।

धनुष-यज्ञ के प्रसंग में राम शिव के धनुष को उठाने के लिए सिंहासन से उठते हैं प्रकृति के उपादानों के प्रयोग से चित्रण में सजीवता के साथ औदात्य का समावेश व्यंजित होता है-

उदित उदय, गिरि मंच पर, रघुबर बाल पतंग।
बिकसे संत सरोज सब, हरषे लोचन भृंग।[६६]

वर्षाकालीन भयंकर नदी के समान उपमान के चयन से तुलसी ने कैकेयी का चित्र सजीवता से अंकित किया है-

अस कहि कुलिस भई उठि ठाढ़ी। मानहुँ रोष तरंगिनि बाढ़ी।।
पाप पहार प्रगट भइ सोई। भरी क्रोध जल जाइ न जोई।।
दोउ बर कूल कठिन हठ धारा। भँवर कूबरी बचन प्रचारा।।
ढाहत भूप रूप तरु मूला। चली बिपति बारिधि अनूकूला।।[७०]

गीतावली के चित्रकूट वर्णन के अंतर्गत कवि ने सांगरूपक के माध्यम से मनहर चित्र सम्पूर्ण प्राकृतिक वैभव के साथ अंकित किया है जो कवि के निसर्ग सौन्दर्यानुभति की सुन्दर भावना का निदर्शन करता है-

ऋतुपति आए भलो बन्यो बन समाज।
सिंहासन सैल सिला सुरंग। कानन छबि रति, परिजन कुंरग।।
सित छत्र सुमन बल्ली वितान। चामर समीर निरझर निसान।।
मनो मधुमाधव दोउ अनिप धीर। बर बिपुल बिटप बानैत बीर।।
मधुकर सुक कोकिल बदि-बृंद। बरनहिं बिसुद्ध जस बिबिध छंद।।[७१]

इसके अलावा नारी वर्णन और रामकथा आदि प्रसंगों में विषयानुकूल प्रकृति पर आधृत रूपकों की सम्यक और मनोहर योजना तुलसी-साहित्य में दृष्टिगत होती है। प्रकृति योजनान्तर्गत कवि ने मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यंजना से विषय को सुबोध और हृदयस्पर्शी बना दिया है।

उत्प्रेक्षा-

जहाँ परस्पर भिन्न समझते हुए भी उपमेय में उपमान की संभावना सादृश्य के कारण की जाती है वहाँ उत्पेक्षा अलंकार होता है। कल्पना विधान की स्वतंत्रता के कारण उत्प्रेक्षा कवियों का सर्वप्रिय अलंकार है। तुलसी साहित्य में उत्पेक्षा की छटा सर्वत्र देखी जा सकती है। उत्प्रेक्षा के माध्यम से कवि

की कल्पना की रमणीय योजना भी परिलक्षित होती है।

जनक वाटिका प्रसंग में राम, अनुज लक्ष्मण के साथ लताओं को हटाते हुए लतामंडप से बाहर निकलते हैं। कवि ने दोनों भाइयों की अतुलित रूप राशि की सुन्दरता का अंकन करने के लिए प्रकृति से अप्रस्तुत मेघ और चन्द्र उपमान ग्रहण कर उत्पेक्षा की भव्य योजना की है। प्राकृतिक वस्तुओं की उत्प्रेक्षा से एक अनूठी विशिष्ट उत्कृष्टता का सुन्दर समावेश निम्नांकित पंक्तियों से ध्वनित होता है-

लता भवन तें प्रगट भे, तेहि अवसर दोउ भाई।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु, जलद पटल बिलगाई।।[७२]

जहाँ एकाग्रचित्त होकर अनवरत निर्निमेष दृष्टि से देखने का भाव व्यंजित किया जाता है वहाँ चकोर पक्षी को उपमान रूप में अंकित किया जाता है। क्योंकि चकोर ही ऐसा पक्षी है जो चन्द्रमा के रूप सौन्दर्य का एकाग्र हो अनवरत पान करता है। तुलसी ने राम के अनुपम सौन्दर्य को मुग्ध हो निहारती जनक की रानियों की उत्प्रेक्षा चकोरी उपमान से की है। रानियों के चकोरी भाव से एक अनूठी चित्रात्मकता के दर्शन होते हैं-

तुलसी मुदित मन जनक नगर जन
झाँकती झरोखें लागीं सोभा रानी पावतीं।
मनहुँ चकोरी चारु बैठी निज निजनीड़
चंद की किरिनि पीवैं पलकैं न लावतीं।।[७३]

राम को जयमाल पहनाने के दृश्य में उत्प्रेक्षा के माध्यम से सौन्दर्य की प्रतिष्ठा अवलोकनीय है-

लसत ललित कर कमल माल पहि रावत।
काम फंद जनु चन्दहि बनज फँसावत।।[७४]

मानस में भी तुलसी ने जयमाला पहनाने के दृश्य का अंकन उत्प्रेक्षा की भव्य योजना के माध्यम से किया है। कवि ने कल्पना की है कि कान्तिवान चन्द्रमा के गले में मृणालयुत कमल माला पहना रहा है। सीता द्वारा राम के गले में माला पहनाने की इससे कमनीय और उदात्त कल्पना असंभव है। तुलसी के कल्पना विधान की उत्कृष्टता और रमणीयता को व्यंजित करने वाली निम्नांकित पंक्तियों में कल्पना विधान की गरिमा और चारुता स्पष्ट मुखरित होती है-

सुनत जुगल कर माल उठाई। प्रेम बिबस पहिराइ न जाई।
सोहत जनु जुग जलज सनाला। ससिहि सभीत देत जयमाला।।[७५]

इन पंक्तियों में तुलसी ने नैसर्गिक तथ्य का सुन्दर निरूपण भी किया है कि कमल का सकुचन चन्द्रमा के कारण होता है। तुलसी राम के मुख की समता चन्द्रमा से करते हैं। सीता के कोमल हाथ ही मृणाल सदृश हैं तथा उनकी हथेलियाँ गुलाबी होने के कारण जलज की भाँति प्रतीत होती है। सीता प्रेमातिरेक एवं नारी सुलभ लाज के कारण राम को जयमाल नहीं पहना पा रही हैं। इसी संकोच

को तुलसी ने कमल के संकुचन से मुखरित किया है। उपमेय और उपमान का यह सादृश्य विधान तुलसी की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति और उत्कृष्ट कल्पना विधान का परिचायक है।

कमल का संकुचन सूर्य के अस्त होते ही प्रारम्भ हो जाता है। उस समय उनकी शोभा अवलोकनीय होती है फिर स्वर्ण कमल की छटा तो और भी अनूठी होनी चाहिए। निद्रा, समय राम के मुख की कल्पना संकुचित स्वर्ण कमल के उपमान से चित्रित करना तुलसी की ही सामर्थ्य हो सकती है-

नीदउँ बदन सोह सुठि लोना। मनहुँ साँझ सरसीरुह सोना।।

राम के रक्त रंजित शरीर की छवि का सुन्दर चित्र उत्प्रेक्षा की योजना से कवि ने प्रस्तुत किया है। रक्त बिन्दुओं से युक्त शरीर की छवि के वर्णन के लिए कवि ने जिन उपमानों के माध्यम से व्यंजना की है, उससे बीर बहूटियों से युक्त मरकत मणि के पर्वत का चित्र आँखों के सामने उपस्थित हो जाता है। वीभत्स में सौन्दर्य की सरस अभिव्यंजना तुलसी के उत्प्रेक्षा विधान की गरिमा और कुशलता की प्रत्यक्ष परिचायक है-

श्रोनित छींट छटानि जटे तुलसी प्रभु सो हैं महाछबि छूटीं।
मानो मरक्कत सैल बिसाल में फैलि चली बर बीर बहूटीं।।[७६]
इसी प्रकार का चित्र कवि ने गीतावली में भी अंकित किया है-
स्याम शरीर रुचिर श्रम-सीकर सोनित कन बिच बीच मनोहर।
जनु खद्योत निकर हरि हितगन, भ्राजत मरकत सैल सिखर पर।।[७७]

उपमा-

तुलसी साहित्य में उपमा को मनहर छटा सर्वत्र दृष्टिगत होतीं है। मानस का कोई पृष्ठ ऐसा नहीं मिलता जहाँ उपमा का प्रयोग न हुआ हो। उपमा का प्रयोग सौन्दर्य की अनुभूति और दृश्य चित्रण की योजना के निमित्त ही हुआ है।

पिता के घर से विदा होती पुत्रियों को माताओं से विलग करने की क्रिया की मार्मिकाभिव्यक्ति के लिए तुलसी ने गाय और बछड़े की सुन्दर उपमा प्रस्तुत की है-

पुनि-पुन मिलति सखिन्ह बिलगाई। बाल बच्छ जिमि धेनु लवाई।।[७८]

प्रस्तुत के सौन्दर्य उद्घाटन के लिए तुलसी ने प्रकृति के शशि और नील सरोरुह उपमान क्रमशः मुखमण्डल तथा नेत्र के लिए ग्रहण कर सुन्दर अप्रस्तुत की नियोजना की है-

तुलसी मन रंजन रंजित अंजन नैन सुखंजन जातक से।
सजनी ससि में सम सील उभै, नव नील सरोरुह से विकसे।।[७९]

वैभवयुक्त अयोध्या में भरत की निस्पृहता को प्रकट करने के लिए तुलसी ने चंपक बाग में चंचरीक उपमान के माध्यम से सशक्त व्यंजना की है-

तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा।।[८०]

तुलसी ने अरुचिकर वस्तुओं को अपने कल्पना की सामर्थ्य से रुचिकर और सरस बना दिया है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण निम्नांकित चौपाई से मिलता है-

झलका झलकत पायन कैसे। पंकज कोस ओसगन जैसे।।[८१]

पैरों में फफोलों से सौन्दर्य की व्यंजना नहीं हो सकती है अपितु, उस व्यक्ति के प्रति केवल सहानुभूति की भावना ही उत्पन्न हो सकती है किन्तु तुलसी ने भरत के कमल रूपी चरणों में पड़े छालों की उपमा कमल पात्र में अवस्थित जल बिन्दु से देकर दोनों में सादृश्य माना है। उपमा द्वारा उपमेय में कमनीयता और चारुता की व्यंजना परिलक्षित होती है। इस प्रकार तुलसी ने प्रकृति से अनेक उपमानों को ग्रहण कर मौलिक कल्पनाओं की अभिव्यक्ति की है।

तुलसी साहित्य में विविध अलंकारों की रमणीय योजना दृष्टिगत होती है। प्रकृति से ग्रहीत नाना उपमानों के सहयोग से तुलसी ने सौन्दर्य की अनूठी उदभावना अभिव्यक्त की है। प्रकृति के अलंकार रूप में अंकन के कतिपय चित्र प्रस्तुत हैं-

तुल्ययोगिता- **गिरि, वन, सरित, सिंधु सर सुनइ जो पायउ।**
सब कह गिरिवर नायक-नेवति पठायउ।।''[८२]

रूपकातिशयोक्ति-राम सीय सिर सेन्दुर देही। सोभा कहि न जात विधि केही।।
अरुन पराग जलज भरि नीके। ससिहि भूष अहि लोभ अमी के।।[८३]

यथाक्रम- भुजनि भुजंग, सरोज नयननि, बदन विधु जित्यौ लरनि।
रहे कुहरनि, सलिल, नभ, उपमा ऊपर दुरि डरनि।।[८४]

प्रतीप- चिकुर कपोल नासिका सुन्दर भाल तिलक मसि बिन्दु लगाये।
राजत नयन मंजु अंजन युत खंजन कंज मनि मद नाये।।[८५]

तद्‌गुण- **सिव तुव अंग रंग मिलि अधिक उदोत।**
हार बेल पहरावौं चम्पक होत।।[८६]

इस प्रकार तुलसी ने अलंकार रूप में प्रकृति से ग्रहीत उपमानों के माध्यम से सौन्दर्य की विविध रूपों में अभिव्यक्ति की है।

रहस्यात्मक रूप में-

तुलसी साहित्य में प्रकृति का रहस्यात्मक रूप में चित्रण उपलब्ध नहीं होता है क्योंकि तुलसी ने साकार रूप की व्यंजना की है रहस्यात्मक रूप की अभिव्यक्ति निराकार रूपोपासना में संभव है साकार रूपोपासना में नहीं।

इन रूपों के अतिरिक्त तुलसी ने प्रकृति के अंगों का सम्यक् वर्णन किया है किन्तु इसमें भी तुलसी की केन्द्रीय भावना की सर्वत्र व्याप्ति परिलक्षित होती है। चित्रकूट वर्णन के अन्तर्गत चित्रकूट पर्वत, वन और मन्दाकिनी की शोभा का एक साथ समन्वित अंकन तुलसी की निसर्ग प्रियता का परिचायक है। किन्तु मात्र प्रकृति का रूपांकन तुलसी को प्रिय नहीं है क्योंकि निखिल विश्व के

अणु-अणु में तुलसी को अपने आराध्य की प्रतीति होती है इसीलिए प्रकृति को वे राममय मानते हैं। चित्रकूट की शोभा राम की प्रतीति के कारण अनुपम हो गई है-

चित्रकूट अति बिचित्र, सुंदर बन, महि पवित्र
पावनि पय-सरित सकल मल-निंकदिनी।

- - - - - - - - - - - - - - -

बर बिधान करत गान बारत धन-मान-प्रान
झरना झरत झिंग झिंग जल तरंगिनी।।

- - - - - - - - - - - - - - -

जोबन नव ढरत ढार दुत्तमत्त मृग मराल
मंद-मद गुंजत हैं अलि अलंगिनी।
चितवत मुनि गन चकोर, बैठे निज ठौर ठौर
अच्छय अकलंक सरद-चंद-चंदिनी।।[८७]

सम्पूर्ण चित्रकूट राममय हो रहा है। राम, लक्ष्मण और सीता के चरण कमलों के स्पर्श मात्र से चित्रकूट के वन की शोभा और अधिक निखर गई है। जल और भूमि में उत्पन्न होने वाले पौधे जो सूख गये थे, वे हरे भरे हो गये हैं। कमलों ने नवीन शोभा प्राप्त कर ली है। वृक्ष और लतायें पुष्पित, फलित और पल्लवित दिखाई देते हैं। पक्षीवृन्द कूकने लगे हैं। भ्रमर समूह मनोहर गुंजन कर रहे हैं। शीतल मन्द सुगन्धित समीरण प्रवाहित हो रहा है। उस वन की शोभा के आगे कामदेव के क्रीड़ोद्यान और नन्दन वन की सुषमा फीकी प्रतीत होती है-

उकठेउ हरित भए जल-थलरुह, नित नूतन राजीव सुहाई।
फूलत फलत पल्लवत पलुहत, बिटप बेलि अभिमत सुखदाई।।
सरित-सरनि सरसीरुह-संकुल, सदन सँवारि रमा जनु छाई।
कूजत बिहंग, मंजु गुंजत अलि, जात पथिक जनु लेत बुलाई।।
त्रिबिध समीर नीर झर झरननि, जहँ तहँ रहे ऋषि कुटी बनाई।
सीतल सुभग सिलनिपर तापस, करत जोग जप-तप मन लाई।।
काम केलि-बाटिका बिबुध-बन, लघु उपमा कवि कहत लजाई।
सकल भुवन सोभा सकेलि मनो राम बिपिन बिधि आनि बसाई।।[८८]

चित्रकूट वन पर मानवीकरण का आरोप तुलसी के प्रकृति वर्णन की व्यापकता का प्रमाण देता है। उत्प्रेक्षा के योग ने निम्नांकित छन्द में सौन्दर्य की अपूर्व व्यंजना निहित की है-

आजु बन्यो है बिपिन देखो, राम धीर। मानो खेलत फागु मदु मदन वीर।।
बट, बकुल, कदंब, पनस, रसाल। कुसुमित तरु-निकर कुरव-तमाल।।
मनो बिबिध वेष धरे छैल-यूथ। बिच बीच लता ललना-बरूथ।।

पनवानक निरझर, अलि उपंग। बोलत पारावत मानो डफ-मृदंग।
गायक सुक कोकिल, झिल्लि ताल। नाचत बहु भाँति बरहिं मराल।।
मलयानिल सीतल, सुरभि मंद। बह-सहित सुमन-रस रेनु बृंद।।
मनु छिरकत फिरत सबनि सुरंग। भ्राजत उदार लीला अनंग।।[८६]

वर्षा का सुमधुर अंकन अयोध्या की श्री शोभा की अभिवृद्धि में सहायक है, प्राकृतिक उपमानों से परिपूरित वर्षा का सजीव चित्र निसर्ग सौन्दर्य का उद्घाटन करता है।

बीर बहूटि बिराजही, दादुर-धुनि चहुँ ओर।
मधुर गरजि घन बरषहिं, सुनि सुनि बोलत मोर।।
बोलत जो चातक मोर, कोकिल कीर पारावत घने।
खग बिपुल पाले बालकनि, कूजत उड़ात सुहावने।।
बकराजि राजति गगन, हरिधनु तड़ित दस दिसि सोहहीं।।
नभ नगर को सोभा अतुल अवलोकि मुनि-मन मोहहीं।।[९०]

अन्य कवियों की भाँति तुलसी ने परम्परागत षट ऋतु वर्णन नहीं किया। इसका मूल कारण यह है कि रामकथा में जो ऋतु निमित्त रूप में सहायक हुई केवल उसी का चित्रण कवि ने अपनी कथा को पुष्ट करने हेतु किया है। नारी का षटऋतु अनुरूप वर्णन तुलसी के अभिव्यंजनात्मक कौशल को स्पष्ट करता है। एक चित्र प्रस्तुत है-

सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता। मोह बिपिन कहुँ नारि बसंता।।
जप तप नेम जलाश्रय झारी। होई ग्रीषम सोषइ सब नारी।।
काम क्रोध मद मत्सर भेका। इन्हहि हरष प्रद बरसा एका।।
दुर्बासना कुमुद समुदाई। तिन्ह कँह सरद सदा सुख दाई।।[९१]

कवितावली में सीता वट की शोभा का अनूठा और अनुपम महिमा युक्त चित्र अंकित किया गया है। सीतावट की प्राकृतिक सुषमा सुन्दरता का पुंज प्रतीत होती है-

मरकत बरन, फल मानिक से, लसै
जटाजूट जनु रूखबेष हरु है।
सुषमा को ढेरु कैधों, सुकृत-सुमेरु कैधौं,
संपदा सकल मुद-मंगल को घरु है।।
देत अभिमत जो समेत प्रीत सेइये,
प्रतीत मानि तुलसी, बिचारि काको थरु है।
सुरसरि निकट सुहावनी अवनि सोहै,
रामरवनी को बटु कलि कामतरु है।।[९२]

तुलसी साहित्य में प्रकृति के विभिन्न अंगों का सूक्ष्म चित्रण उपलब्ध होता है यथा-अनन्त

जलराशि वाले अथाह समुद्र की केवल एक चौपाई में व्यंजना तुलसी जैसे समर्थवान कवि ही कर सकते हैं। प्रकृति के कतिपय अंगों के चित्र प्रस्तुत हैं

सागर- संकुल मकर उरग झष जाती। अति अगाध दुस्तर सब भाँती।।[६३]

सरयू नदी- "उत्तर दिसि सरजू बह निर्मल जल गंभीर।
बांधे घाट मनोहर, स्वल्प पंक नहिं तीर।।
दूरि फिराक रुचिर सोघाटा। जँह जल पिअहिं बाजि गज बाटा।
पनिघट परम मनोहर नाना। तहाँ न पुरुष करहिं अस्नाना।।
राजघाट सब बिधि सुंदर बर। मज्जहिं तहाँ बरन चारिउ नर।।
तीर तीर देवन्ह के मंदिर। चहुँ दिसि तिन्ह के उपवन सुंदर।।
कहुँ कहुँ सरिता तीर उदासी। बसहि ग्यानरत मुनि सन्यासी।
तीर-तीर तुलसिका सुहाई। बृंद बृंद बहु मुनिन्ह लगाई।।[६४]

चन्द्रोदय- प्राची दिसि ससि उयउ सुहावा। सिय मुख सरिस देखि सुख पावा।
बहुरि बिचारु कीन्ह मन माहीं। सीय बदन सम हिमकर नाहीं।।[६५]

अरुणोदय- उयउ अरुन अवलोकहु ताता। पंकज कोक लोक सुखदाता।।
बोले लखनु जोरि जुग पानी। प्रभु प्रभाउ सूचक मृदु बानी।।
अरुणोदय सकुचे कुमुद, उडगन जोति मलीन।
जिमि तुम्हार आगमन सुनि, भए नृपति बल हीन।।
नृप सब नखत करहिं उजिआरी। ढारि न सकहिं चाप तम भारी।
कमल कोक मधुकर खग नाना। हरषे सकल निसा अवसाना।।[६६]

पर्वत-नदियाँ-वन-
कामद भे गिरि राम प्रसादा। अवलोकत अपहरत बिषादा।।
सर सरिता बन भूमि बिभागा। जनु उमगत आनंद अनुरागा।।
बेलि विटप सब सफल सफूला। बोलत खग मृग अलि अनुकूला।
तेहि अवसर बन अधिक उछाहू। त्रिबिध समीर सुखद सब काहू।।[६७]

चन्द्रोदय के एक दूसरी ओर अन्य प्रसंग में कवि ने चन्द्रमा के कलंक का वर्णन विविध आख्यानों के संकेत देकर प्रस्तुत किया है जो एक ओर तो तुलसी की प्रकृति चारुता की ओर संकेत करता है दूसरी ओर आभिव्यक्तिक सौन्दर्य को मनहरता प्रदान करता है। प्रस्तुत है प्रसंग से संदर्भित कुछ पंक्तियाँ-

"पूरब दिसा बिलोकि प्रभु देखा उदित मयंक।
कहत सबहि देखहु ससिहि मृगपति सरिस असंक।।
पूरब दिसि गिरिगुहा निवासी। परम प्रताप तेजबल रासी।।

मत्त नाग तम कुंभ बिदारी। ससि के सरी गगन बन चारी।।
बिथुरे नभ मुकुताहल तारा। निसि सुंदरी केर सिंगारा।।
कह प्रभु ससि महुँ मेचकताई। कहहु काह निज निज मति भाई।
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। ससि महुँ प्रगट भूमि कै झाँई।।
मारेउ राहु ससिहि कह कोई। उर मँह परी स्यामता सोई।।
कोउ कह जब बिधि रति मुख कीन्हा। सार भाग ससि कर हरि लीन्हा।।
छिद्र सो प्रगट इंदु उर माँही। तेहि भरा देखिअ नभ परिछाँही।।
प्रभु कह गरल बंधु ससि केरा। अति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा।।
विष संजुत कर निकर पसारी। जारत बिरहवंत नर नारी।।

कह हनुमंत सुनहु प्रिय ससि तुम्हार प्रिय दास।
तव मूरति बिधु उर बसति, सोइ स्यामता अभास।।[६८]

तुलसी साहित्य में प्रकृति के विविध अंगों के चित्रण में राममयता स्पष्ट परिलक्षित होती है जिसके कारण सम्पूर्ण प्रकृति में एक अनूठी आभा प्रभासित प्रतीत होती है। आराध्य की कण-कण में प्रतीति प्रकृति सुषमा की चारुता में अन्यतम अभिवृद्धि करती जान पड़ती है। तात्पर्य यह कि तुलसी साहित्य में प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता की अभिव्यक्ति नहीं है। रामचरित्र के गायन और प्रकाशन में प्रकृति सहयोगिनी भाव से अंकित हुई है। तुलसी के प्रकृति चित्रण के सम्बन्ध में **डा० इन्द्रपाल सिंह** अपना अभिमत प्रकट करते हुए लिखते हैं- **''तुलसी ने प्रकृति के संश्लिष्ट चित्र भी अंकित किए हैं। उनकी सूक्ष्म दृष्टि प्रकृति के प्रत्येक अंग पर रही है और उसका उन्होंने चित्रण भी किया है, फिर भी उनकी भक्ति भावना तथा उनका प्रतिपाद्य विषय रामचरित्र कहीं न कहीं, किसी न किसी प्रकार उसमें निहित रहा है। उन्होंने प्रकृति को भी राम भक्ति के सन्दर्भ में ही देखा है, और प्रकृति के उसी रूप के प्रति प्रेम व्यक्त किया है, जो राम से संबंधित है और जो राम के प्रति उन्मुख करता है, क्योंकि उनका तो स्पष्ट कथन है- ''नाते सबै राम के मनियत।'' फिर भी वे प्रकृति चित्रण में भी सफल हैं।**

सम्पूर्ण तुलसी साहित्य के अध्ययन और अनुशीलनोपरान्त प्राप्त उद्धरणों से इस बात की सम्पुष्टि होती है कि तुलसी की केन्द्रीय भावना रघुनाथ गाथा का प्रकाशन करना है। तुलसी ने अपने कौशल का प्रयोग रामचरित्र के सम्यक निदर्शन हेतु किया है। सम्पूर्ण प्रकृति की श्री-सुषमा राम के भृकुटि-संकेत पर ही नाना प्रकार के व्यापार संपादित करती है। अतः तुलसी ने प्रकृति का रूपांकन उस सीमा तक ही किया है जहाँ तक वह उसके आराध्य की लीलाप्रकाशन में योग देती है। इसीलिए तुलसी साहित्य में प्रकृति रघुनाथ चरित्र प्रकाशन हेतु मात्र सहयोगिनी रूप में अंकित हुई है। तुलसी की साहित्य सर्जना का अभीष्ट प्रकृति की रम्यता का स्वतंत्र रूपांकन नहीं था। तुलसी ने प्रकृति को माध्यम बनाकर अपने कथ्य का सम्यक प्रस्तुतीकरण किया है। यद्यपि मानस, गीतावली और

कवितावली में शायद ही कोई ऐसा पृष्ठ ढूँढने से मिल सके जहाँ कवि ने प्राकृतिक उपादानों का आश्रय न लिया हो। चाहे.अंग-प्रत्यंग की शोभा का वर्णन हो, भक्ति का निरूपण हो, दार्शनिक तत्वों का चिन्तन हो, लोकाचार की बात हो, लोक मंगल की भावना हो, समन्वय भावना हो, मर्यादा के विभिन्न स्वरूपों का अनुशीलन हो या राजनैतिक और धार्मिक अवधारणाओं का प्रस्तुतीकरण हो, प्रत्येक के सम्यक निरूपण और विवेचन हेतु तुलसी ने प्रकृति से नाना उपमानों को ग्रहीत कर अपनी अभीष्ट भावना की सम्पुष्टि की है। प्रकृति सौन्दर्य के अन्तर्गत प्रचलित सभी रूपों का चित्रण तुलसी ने कुशलता से कर अपनी निसर्ग-प्रियता का प्रमाण प्रस्तुत किया है। यद्यपि प्रकृति को रामकथा में मात्र सहयोगी भाव से ग्रहण किंया गया है फिर भी तुलसी साहित्य में प्रकृति चित्रण के अंतर्गत प्रकृति का आलम्बन रूप, उद्दीपन रूप, उपदेशिका रूप, अलंकार रूप तथा उपमान रूप विशदता से उपलब्ध होता है। प्रकृति के सभी अंगों और उपांगों का कुशल चित्रण जहाँ तुलसी की प्रकृति चारुता का उद्घाटन करता है .वहीं तुलसी के अभिव्यक्ति कौशल और उनकी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत करता है। इस प्रकार तुलसी प्रकृति चित्रण में पूर्ण सफल ठहरते हैं।

❑❑❑

संदर्भ

१. A presence that disturbs me with joy
of elevated thoughts, a sense sublime
of something far more deeply interfused
whose dewelling is the light of setting suns
And the round ocean and the living air
And the blue sky, and in the mind of man
A motion and a spirit, that empels
All thinking things, all objects of all thoughts
And rolls through all things -Tintern Abbey (Words worth)

२. कालिदास - अभिज्ञान शाकुंतलम ४/११ से ४/१५ तक

३. डा० रामेश्वर. लाल खण्डेलवाल, प्रसादः वस्तु और कला पृष्ठ २५४

४. Nature but a name for an effect whose cause is god.

- cowper New Dictionary of Thoughts P. 435

५. Instead of being on organism, the natural world is a machine a machine in the literal and proper sense of the world, an arrangement of bodily parts designed and put together and set going for a definite purpose by an intelligent mind outside itself.

R. G. Colling wood The Idea of nature Page 5

६. बल्देव उपाध्याय - भारतीय दर्शन पृष्ठ ६४१

७. डॉ० शिवप्रसाद सिंह विद्यापति पृष्ठ १६५

८. रवीन्द्रनाथ साहित्य - पृष्ठ ३०

९. वीणा माथुर, प्रसाद का सौन्दर्य-दर्शन, पृष्ठ १०१

१०. पंत, ग्राम्या से

११. पंत, पल्लव

१२. पंत

१३. पंत

१४. पंत

१५. पंत

१६. निराला, **परिमल** पृष्ठ ३२

१७. निराला, **परिमल** पृष्ठ ७८-७६

१८. प्रसाद **कामायनी** आशा सर्ग

१६. निराला- **राम की शक्ति पूजा**

२०. चन्दबरदाई, **पृथ्वी राजरासो** (पद्मावती समय)

२१. प्रसाद, **कामायनी** पृष्ठ ५७

२२. प्रसाद, **लहर,** पृष्ठ ११

२३. निराला, **परिमल** (सन्ध्या सुन्दरी) पृष्ठ १०४

२४. निराला **परिमल** (जूही की कली) पृष्ठ १४३

२५. महादेवी, **नीरजा** पृष्ठ ३

२६. महादेवी वर्मा, **सन्धिनी,** गीत संख्या २३

२७. हंसमुख प्रसून सिखलाते पलभर तो हँस पाओ।
अपने उर के सौरभ से जग का आंगन भर जाओ।।-पंत

२८. ऊँचा रे, नीचे आता जीवन भर-भर दे जाता,
गाता वह केवल गाता-"बंधु तारना-तारना। -निराला **गीतिका गीत** सं. १००

२६. महादेवी वर्मा **'दीपशिखा'** गीत १७

३०. प्रसाद **कामायनी** पृष्ठ २६

३१. वही पृष्ठ ४७

३२. प्रसाद, **आँसू** पृष्ठ २४

३३. प्रसाद, **आँसू** पृष्ठ १०

३४. महादेवी, **संधिनी गीत** सं० २०

३५. पंत

३६. पंत

३६क. **मानस** १/६५, १/६५/१

३७. **गीतावली** २-५०

३८. आचार्य शुक्ल, तुलसी पृष्ठ १२१

३६. **मानस** ३/४०

४०. **मानस** २/२३७-३

४१. **गीतावली** २/४४

४२. **मानस** २/१३६/३-४, २/१३७

४३. वही,

४४. गीतावली- २/४७

४५. मानस २/६१/२-३-४

४६. मानस- १/२२६/२-३-४

४७. गीतावली- ७/१८

४८. मानस ३/२६/५-६-७-८

४९. मानस ४/१३/१

५०. मानस ५/१४/१-२

५१. मानस ५/११ ४-५-६

५२. बरवै रामायण, ३७

५३. सं० उदयभानु सिंह 'तुलसी' में संकलित सुरेन्द्र नाथ सिंह के लेख पृ० १०४ से उदधृत

५४. कविता वली, १/५

५५. गीतावली, १-२६

५६. कवितावली १/१

५७. मानस ६/१८/२-३

५८. मानस १/८४/१

५९. वही २/११२/४, २/११३

६०. वही ३/६/३

६१. गीतावली - अरण्यकांड ३/६

६२. मानस - अरण्यकांड ३/२६/५, ७, ८

६३. मानस - ३/२६/५

६४. मानस ३/३८/४, ३/३९क

६५. सं उदयभानु सिंह - 'तुलसी' में संकलित सुरेन्द्र नाथ सिंह के लेख से उदधृत पृष्ठ १०१

६६. मानस ४/१३/३

६७. मानस ४/१५/३

६८. डा० किरण कुमारी गुप्त, हिंदी काव्य में प्रकृति चित्रण पृष्ठ १३१

६९. मानस - १/२५४

७०. मानस - २/३३/१-२

७१. गीतावली २/४६

७२. मानस १/२३२

७३. कवितावली १/१३

७४. जानकीमंगल -१०६

७५. मानस - १/२६३/३-४

७६. कवितावली ६-५१

७७. गीतावली ६-१६

७८. मानस १/३३६/८

७९. कवितावली १/१

८०. मानस २/३२३/४

८१. मानस २/२०३/१

८२. पार्वतीमंगल ६४

८३. मानस १/३२५/८-६

८४. गीतावली १/२८

८५. गीतावली १/३२

८६. बरवैरामायण १८

८७. गीतावली २/४३

८८. गीतावली २/४६

८९. गीतावली २/४८

९०. गीतावली ७/१९-२

९१. मानस ३/४३-२

९२. कवितावली ७/१३९

९३ मानस ५/५०-३

९४. मानस ७/२८/२९-२-४

९५. मानस २/२३७-४

९६. मानस १/२३८-४ से २३९-१-२

९७. मानस १/२७९-१/२

९८. मानस ६/११-१२

९९. डा० इन्द्रपाल सिंह 'इन्द्र', तुलसीः साहित्य और साधना पृष्ठ २७२

सप्तम अध्याय

वस्तु-सौन्दर्य

भवन सरोवर, उद्यान मण्डपादि

पलंग, दीप, पात्र आभूषणादि

भवन, सरोवर, उद्यान, मण्डपादि

प्रत्येक वस्तु में ईश्वर प्रदत्त कुछ निश्चित तत्व निहित रहते हैं, यथा- आकार, रूप रंग, गुण एवं धर्म। जो अपने सन्तुलन और समन्वय की विशिष्टता के कारण मानव को सहज और स्वाभाविक रूप में आकृष्ट करते हैं। मानव के अन्तर्मन में स्वयं सृजन की शक्ति विद्यमान रहती है जिसके कारण वह प्रत्येक क्षेत्र में नवीनतम उपलब्धियां प्राप्त करना चाहता है। सौन्दर्यान्मुखी मानवीय प्रवृत्ति और मानव की सृजन शक्ति का मणिकांचन संयोग उसकी नूतन निर्माणेच्छा का पोषण कर उसे मनोवांछित उपलब्धि प्रदान करता है। मानव सौन्दर्यान्वेषी है। वह सौन्दर्य की चरम उपलब्धियों को प्राप्त करने के लिए निरन्तर अथक प्रयास करता है। अपनी सौन्दर्यानुभूति की संतुष्टि हेतु उसने विशाल गिरि श्रंखलाओं में अनेकानेक गुहाओं की खोज कर उन्हें अपनी कलात्मकता से अनूठे सौन्दर्य से मंडित किया। अनगढ़ और बेडौल पाषाणों में उसने अपनी कलापारखी आंखों से छिपे सौन्दर्य के दर्शन किए और अपनी प्रतिभा और कुशलता से सजा संवारकर उन्हें सजीवता प्रदान की। विशाल झीलों और सरोवरों का निर्माण कर उसने प्रकृति की सत्ता को चुनौती दी। अपनी कलात्मक और गरिमा के प्रदर्शन के निमित्त उसने भव्य महलों और सुन्दर उद्यानों का निर्माण किया। मैसूर का वृन्दावन गार्डेन, कश्मीर के निशात और शालिमार उपवन, डीग का राजमहल, अजन्ता, एलोरा की गुफाएँ, खजुराहो की मूर्तियाँ व विश्वप्रसिद्ध आश्चर्य ताजमहल मानव निर्मित सौन्दर्य के प्रतीक स्वरूप हैं। इसी मानव निर्मित सौन्दर्य को वस्तुगत सौन्दर्य की संज्ञा से अभिहित किया जाता है।

इस मानव निर्मित सौन्दर्य के दो स्वरूप हैं। **प्रथम स्वरूप** के अंतर्गत वे वस्तुएँ आती हैं जिनका निर्माण मानव अपनी उपयोगिता की दृष्टि से करता है यथा- सुविधायुक्त आवास, शरीर की रक्षा के निमित्त वस्त्र, दैनिक उपयोगी विभिन्न पात्रादि व अलंकरण के लिए आभूषाणादि। इस प्रकार की वस्तुओं का मानव उपयोगितानुसार उपभोग करता है। इन वस्तुओं से मानव तब तक जुड़ा रहता है जब तक वे वस्तुएं उसके योग्य होती हैं। उपभोग योग्य न रहने पर मानव निर्विकार रूप में उन्हें त्याग देता है। **द्वितीय स्वरूप** के अंतर्गत वे वस्तुएं आती हैं जिनका उपभोग से सम्बन्ध आवश्यक नहीं होता, किन्तु वे अपनी चारुता से मानव मानस को आनन्द और सुख प्रदान करती हैं यथा- ताजमहल, उपभोग की दृष्टि से जिसका महत्व शून्य है किन्तु वह फिर भी अपने सौन्दर्य और कलात्मक वैभव से मानस को रुचिकर प्रतीत होता है।

मानव के अंतर्मन में सौन्दर्य की प्रवृत्ति निहित रहती है। इसी प्रवृत्ति के कारण वह प्रत्येक वस्तु को ऐसा कलात्मक स्वरूप प्रदान करना चाहता है जिससे उसकी अंतर्निहित भावना को तोष मिल सके। इसीलिए वह प्रत्येक वस्तु को अपनी कलात्मक अभिरुचि के अनुसार स्वरूप प्रदान करता है। उपयोगी वस्तुओं को भी अपनी रुचि के अनुरूप वह सौन्दर्य से मंडित करने का प्रयास करता है। उदाहरण के रूप में निवास के निमित्त गृह का निर्माण। उपयोगिता की दृष्टि से मात्र कुछ कमरे उसकी

आवश्यकता की पूर्ति करने में समर्थ हैं किन्तु केवल अपनी कलात्मक अभिरुचि के कारण ही वह अपने आवास को अधिक सुन्दर स्वरूप में निर्मित करता है। यथा- भवन में नाना प्रकार के वातायनों, स्तम्भों और झरोखों का निर्माण। अपनी सौन्दर्य भावना की संतुष्टि के लिए वह स्तम्भों पर विभिन्न प्रकार की कलात्मक खुदाई कर बेल बूटों का निर्माण करता है, भित्तियों पर नाना चित्रों से अलंकरण करता है। प्राकृतिक सौन्दर्य से प्रभावित होकर वह आवास के चारों ओर वाटिका निर्माण करता है। वाटिका में विभिन्न प्रकार के पेड़, पौधों पशु-पक्षियों, कृत्रिम जलप्रपात आदि के द्वारा उसे अलंकृत करता है। इस प्रकार के सौन्दर्य की सृष्टि ही वस्तुगत सौन्दर्य कही जाती है। परिभाषा रूप में हम कह सकते हैं कि **वह सौन्दर्य जो प्रकृति प्रदत्त वस्तुओं से मानव द्वारा निर्मित होता है उसे वस्तुगत सौन्दर्य कहते हैं।** इस प्रकार का सौन्दर्य मानव प्रकृति प्रदत्त सामग्री यथा चूना, पत्थर, मिट्टी एवं धातुओं के उचित समन्वय से निर्मित करता है। अपनी कलात्मक रुचि से वह अनगढ़ पत्थरों में प्राण डालकर उन्हें जीवन्त बना देता है। विशालकाय पर्वतों के अंक में कन्दराओं का निर्माण कर उन्हें संवारकर अपनी सौन्दर्य प्रियता का प्रमाण प्रस्तुत करता है। अजन्ता, एलोरा की गुफाएँ इसके जीवन्त उदाहरण हैं।

कभी-कभी शिल्पकार अपने कौशल से इतनी जीवन्त कलाकृति प्रस्तुत करता है कि वास्तविकता का भ्रम उत्पन्न हो जाता है। इस संदर्भ में एक कहानी का उल्लेख अनुचित न होगा। एक राजा के यहाँ बहुत ही कुशल मूर्तिकार थे। उसने उनमें से दो अति कुशल शिल्पियों का चयन किया। उन दोनों में से सर्वश्रेष्ठ कलाकार का निर्णय करना असम्भव प्रतीत होता था। बहुत सोच-विचार के पश्चात राजा ने फल लिये राजकुमारी की मूर्ति बनाने को दोनों कलाकारों से कहा। दोनों कलाकारों ने अपनी-अपनी कुशलता से मूर्ति बनाकर तैयार की। उन मूर्तियों के शिल्प की श्रेष्ठता की परीक्षा के लिए राजा ने एक तोता उनकी ओर छोड़ा। तोता एक मूर्ति पर जाकर बैठ गया। राजा ने दूसरे कलाकार को जिसकी मूर्ति पर तोता नहीं बैठा था सर्वश्रेष्ठ घोषित किया और इसका कारण बताते हुए कहा कि तोता मूर्ति को वास्तविक समझकर ही इस पर नहीं बैठा। जबकि दूसरी मूर्ति को उसने भी मूर्ति ही समझा और बैठ गया। इस कहानी से एक प्रश्न यह भी उठता है कि क्या वास्तविकता की सफल और कुशल अनुकृति वस्तुगत सौन्दर्य के लिए आवश्यक है?

निरपेक्ष दृष्टि से विचार करने पर यह तथ्य उद्घाटित होता है कि **मात्र अनुकृति कला के लिए आवश्यक नहीं, किन्तु वस्तुगत सौन्दर्य के सन्दर्भ में कुछ दशाओं में सफल अनुकृति होना आवश्यक है। अनुकृति में कलाकार की कुशलता का संस्पर्श उसमें मौलिकता की नूतन व्यंजना प्रस्तुत करता है।** कलाकार प्रकृति सौन्दर्य से अनुप्राणित होकर कला की प्रेरणा प्राप्त करता है और अनुकरण में कुछ मौलिकता भी प्रस्तुत करना चाहता है जो उसकी कला के वैशिष्ट्य का उद्घाटन कर सके। प्रकृति सौन्दर्य के अन्तर्गत पशु, पक्षी और अन्य उपादान आते हैं, उनका अनुकरण शिल्पकार अपने शिल्प के माध्यम से मूर्ति बनाकर प्रस्तुत करता है। यथा- मोर अपने सुन्दर स्वरूप

के कारण सबका मन मोह लेता है। शिल्पकार अपनी छेनी से पत्थर तराश कर मोर की प्रतिमूर्ति तैयार करता है तो कलाकार उद्यान के पेड़-पौधों को कर्तनी की सहायता से काट कर मयूराकृति बनाता है। दोनों के शिल्प की श्रेष्ठता सफल अनुकरण से आँकी जा सकती है। सफल अनुकरण से एक आश्चर्यजनक प्रभाव की व्याप्ति मानस में अंकित हो जाती है और अनायास ही कलाकर की प्रशंसा के लिए भाव उमड़ने लगते हैं।

श्री मर्ढेकर ने वस्तुगत सौन्दर्य विषयक एक आपत्ति प्रस्तुत की थी कि "मैदानों से विभिन्न भागों को लेकर उनसे किसी वस्तु का निर्माण करने पर हमें भले ही आनन्द प्राप्त हो परन्तु वह कला नहीं कहलाएगी।[१] इसका समाधान करते हुए श्री सुरेन्द्र बारलिंगे ने लिखा है कि "कलाकृति का सौन्दर्य निसर्ग के सौन्दर्य से भिन्न है अथवा समान है इनमें से चाहें कुछ भी मान लें किन्तु सौन्दर्य की कल्पना हमें प्रकृति के सौन्दर्य से करनी पड़ेगी। प्रकृति के सौन्दर्य के उपमान से हम कलाकृति के सौन्दर्य की कल्पना करते हैं।[२] "जिस निसर्ग वस्तु को सुन्दर कहा जा सकता है उस वस्तु से मिलती जुलती प्रति वस्तु उत्पन्न करना कला का प्रथम प्रकार है।"[३] इसलिए कलाकृति का सौन्दर्य और निसर्ग का सौन्दर्य एक ही प्रकार का होता है वह समझना उपयुक्त है।"[४]

मेरा मानना है कि शिल्पकार कलाकृति की प्रेरणा प्रकृति के अनुपम सौन्दर्य से ही प्राप्त करता है किन्तु अपनी कल्पना शक्ति और शिल्प कौशल से उसे ऐसा स्वरूप प्रदान करता है जिसमें उसकी मौलिकता की स्पष्ट छाप उभरती हो। मौलिकता प्रदान करने की प्रवृत्ति ही कलाकृति को कभी-कभी इतनी विशिष्टता प्रदान कर देती है जो सामान्यतः दुर्लभ होती है। मोनालिसा और वीनस की मूर्तियाँ उदाहरण स्वरूप ली जा सकती हैं। वीनस के अनुपम सौन्दर्य और मोनालिसा की मुस्कान के रहस्य ने सम्पूर्ण विश्व को अपने प्रशंसकों की परिधि में समेट लिया है। इन्हें मात्र प्रकृति की अनुकृति कहकर कृत्रिमता से नहीं जोड़ा जा सकता। सुविधा के लिए यह कहना समीचीन है, कि मानव रचित सौन्दर्य को वस्तुगत सौन्दर्य तथा ईश्वर रचित सौन्दर्य को प्रकृति सौन्दर्य की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है।

एक और प्रश्न उठता है कि क्या प्रकृति प्रदत्त सामग्री द्वारा निर्मित कृतियों को कलात्मक की संज्ञा दी जा सकती है तथा उन्हें किस श्रेणी की कला में परिगणित करना चाहिए? इसका समाधान इस प्रकार दिया जा सकता है।

डा० श्यामसुन्दर दास के अनुसार- "प्राचीन आचार्यों ने साहित्य संगीत एवं कला को अलग-अलग स्वीकार किया है। साधारणतः उन्होंने कला से तात्पर्य कर्मसु कौशलम माना है। कला और शिल्प आदि शब्द समवाची समझे जाते थे और अनेक मतों के अनुसार कलाओं की संख्या भी विभिन्न थी।"[५]

हमारे यहां चौसठ कलाएं मानी गई हैं। आधुनिक दृष्टिकोण में साहित्य संगीत व स्थापत्य आदि सभी भेदोपभेदों को कला के अन्तर्गत ही समन्वित कर दिया गया है। पाश्चात्य चिन्तन के अनुसार

अब कलाओं को केवल दो रूपों में वर्गीकृत कर दिया गया है-ललित कलाएं एवं उपयोगी कलाएं। इन्हें पुनः आधार के अनुसार मूर्त तथा अमूर्त कलाओं में विभाजित कर दिया गया है।

श्यामसुन्दर दास इन कलाओं के संदर्भ में लिखते हैं कि **"ललित कलाओं के अन्तर्गत साहित्य, संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला एवं वास्तुकला हैं। ललित कलाएँ दो मुख्य भागों में विभक्त की जा सकती हैं- एक ऐसी है जो मानसिक तृप्ति का साधन चक्षुरिंद्रिय के सन्निकर्ष से करती है और दूसरी श्रवणेन्द्रिय के सन्निकर्ष से। वास्तु (नगर, मन्दिर आदि का निर्माण, मूर्ति, तक्षण कला) और चित्रकलाएं तो दर्शन से तृप्ति का विधान करने वाली हैं और संगीत तथा काव्य श्रवण से - वास्तु मूर्ति तथा चित्रकलाओं में मूर्त आधार प्रत्यक्ष रहता है, परन्तु संगीत में उसका स्वरूप नाद के रूप में ही व्यक्त होता है, और काव्य कला में तो मूर्त आधार प्रायः होता ही नहीं। जिस कला में मूर्त आधार जितना ही कम होगा, वह उतनी ही उच्चकोटि की समझी जावेगी। इसी भाव अनुसार हम काव्यकला को सबसे ऊँचा स्थान देते हैं, क्योंकि उसमें मूर्त आधार का एक प्रकार से पूर्ण अभाव रहता है-उसी के अनुसार हम वास्तुकला को सबसे नीचा स्थान देते हैं, क्योंकि मूर्त आधार की विशेषता के बिना उसका अस्तित्व ही सम्भव नहीं। सच पूछिए तो इस आधार को सुचारु रूप से सजाने में ही वास्तुकला को ललितकला की पदवी प्राप्त होती है।"**[६]

इस प्रकार कलाओं का विवेचन माध्यम के दृष्टिकोण से करने पर वस्तुगत कलाओं को निम्न माना जा सकता है, किन्तु यह भी ध्यातव्य है कि वस्तुगत कलाओं का मूल उद्देश्य सौन्दर्यानुभूति कराना ही है। **भगवती चरण वर्मा** का कथन है कि **"कलाकार जीवन और जगत से अनुभूतियाँ ग्रहण कर सुन्दरम् के रूप में उन्हें मूर्त रूप प्रदान करता है। यही कला है। जब हम अपने अमूर्त भावों को मूर्त करते हैं तो हमें कला के दर्शन होते हैं।"**[७] वास्तुकला का अभीष्ट भी यही होता है। वह भी अपने मानसिक भावों को मिट्टी, पत्थरों, मोम आदि पदार्थ के द्वारा मूर्त रूप में अंकित करता है। शिल्पकार को काव्यकार तथा चित्रकार जैसा विस्तृत क्षितिज प्राप्त नहीं होता है। साहित्यकार शब्दों के माध्यम से विभिन्न प्रकार के सूक्ष्मातिसूक्ष्म और स्थूलातिस्थूल भावों को एक साथ व्यंजित कर सकता है। जहाँ वह स्थिर और गत्यात्मक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति की अभिव्यंजना एक साथ करने में सक्षम है वहीं चित्रकार रंगों एवं प्रकाश के सुन्दर समन्वय से मनोवांछित शोभन सृष्टि करने में सक्षम है किन्तु शिल्पकार का क्षितिज ससीम होता है। वह एक बार में एक ही भाव मूर्त कर सकता है। दूसरे शब्दों में वह गत्यात्मक एवं स्थिर सौन्दर्य की सृष्टि एक साथ मूर्त करने में असमर्थ है।

इस प्रकार उद्देश्य की दृष्टि से विचार करने पर सभी कलाओं का अभीष्ट एक ही ठहरता है। कला का मूल आनन्द है और आनन्द का मूर्त रूप ही सौन्दर्य या कला कहा जा सकता है जिसका एक पक्ष सत्य है और दूसरा शिव। वास्तुकार का मूल उद्देश्य या अभीष्ट भी यही होता है। वीणा माथुर के शब्दों में- **"वास्तुकार मूर्त कलाविज्ञ होने के कारण सम्मात्रा, सामंजस्य, सिमेट्री, सुडौलता आदि का बहुत ध्यान रखता है। यह भी उसकी कला की श्रेष्ठता का भाव है कि वह कितनी**

सामंजस्य पूर्ण रचना का निर्माण करता है? सम्मात्रा, सुडौलता, माप आदि के सुष्ठ ज्ञान के कारण ही वह विभिनन ज्यामितिक आकृतियों को भी सौन्दर्य से अलंकृत कर देता है जो अपने सौन्दर्य के कारण कला की अभिधा ग्रहण करते हैं। इस प्रकार वस्तुगत सौन्दर्य भी अन्य सौन्दर्य सृष्टियों की भाँति ही कला की अभिधा से अभिहित किया जाता है।''[५]

प्रत्येक कला का मूल्यांकन भिन्न-भिन्न आधारों के अनुसार किया जाता है, क्योंकि सभी कलाओं के मापदण्ड भिन्न होते हैं। यथा- साहित्यिक सौन्दर्य का मूल्यांकन जिसे शब्द, अलंकार, रीति, गुण आदि के आधार पर किया जाता है। रंगों और प्रकाश के समन्वय के आधार पर चित्रकला का मूल्यांकन किया जाता है। ताल, गति, माधुर्य और स्वरों के उतार-चढ़ाव से संगीत कला को मूल्यांकित किया जाता है। इसी प्रकार वस्तुगत सौन्दर्य के मानक आधार हैं। वस्तु विशेष (यथा मिट्टी, पत्थर आदि) आकार-प्रकार, सामंजस्य, सिमेट्री, सुडौलता, सम्मात्रा आदि। मूर्त वस्तु के सौन्दर्य को उद्घाटित करने के लिए उपर्युक्त गुणों का होना आवश्यक है। इन गुणों का सम्यक समन्वित स्वरूप ही किसी सहृदय के मानस में सौन्दर्य की सरस संसृष्टि करने में सक्षम होता है।

वाह्याकृति के अतिरिक्त कला के सौन्दर्य को अन्य दृष्टियों से देखा-परखा तथा मूल्यांकित किया जाता है। यथा- उपयोगिता, नैतिक, अभिव्यक्ति तथा आनन्दानुभूति की दृष्टि से।

डा० रामेश्वर दयाल खंडेलवाल का अभिमत है- **''जहाँ तक उपयोगिता का प्रश्न है वस्तुगत सौन्दर्य के अन्तर्गत उसमें कुछ उपयोगिता का तत्व अवश्य निहित रहता है। वैसे उपयोगी वस्तुओं के प्रति सौन्दर्य की भावना किसी विशेष कारणवश ही होती है।''**[६] वैसे यदि विचार किया जाये तो उपयोगिता और सौन्दर्य का समन्वय आवश्यक नहीं है क्योंकि मात्र सौन्दर्य का उपयोगिता से इतना सम्बन्ध भर है कि उपयोगी वस्तुओं से या तो हमारी किसी भौतिक आवश्यकता की सम्पूर्ति होती है या उनसे कोई नैकट्य होता है जिसके कारण वे हमें रुचिकर और सुन्दर प्रतीत होती हैं। सम्यक रूप से यदि सोचा जाए तो सौन्दर्य की व्यंजना में अनुभूति की प्रधानता आवश्यक है। उपयोगिता सम्बन्धी दृष्टिकोण गौण रहता है। अजन्ता, एलोरा की गुफाएँ, खजुराहो की मूर्तियाँ, ताजमहल आदि न जाने कितने उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं जो यह प्रमाणित करते हैं कि सौन्दर्य के साथ उपयोगिता का समन्वय आवश्यक नहीं है। अपितु वे केवल अपनी कलात्मकता से सहृदय मानस को आकृष्ट करते हैं।

कला के साथ संस्कृति का सम्बन्ध स्पष्ट रूप से जुड़ा है। कला से युग के सांस्कृतिक वैभव का परिचय मिलता है। प्रत्येक युग की कला युग की संस्कृति के अनुरूप अपना वैभव प्रदर्शित करती है। वस्तुगत कला में संस्कृति की मूर्त अभिव्यक्ति व्यंजित होती है। कला युग के अनुसार विचारधारा, रहन-सहन, परिस्थिति, वातावरण को ग्रहण कर अपना रूप बदलती रहती है। इसी कारण प्रत्येक काल और युग की एक विशिष्ट शैली बन जाती है। संगीत, चित्र, मूर्ति, साहित्य आदि सभी कलाओं से युग विशेष की ध्वनि मुखरित होती है। तात्पर्य यह है कि युगीन परिस्थितियों के अनुसार कला

के मूल्यांकन-मानकों में परिवर्तन होता रहता है किन्तु किसी भी युग में कला का मूल अभीष्ट सौन्दर्यानुभूति की कुशल अभिव्यक्ति का ही रहता है।

क्रोचे, बेनेडिटो आदि पाश्चात्य विद्वान तो केवल अभिव्यक्ति को ही कला स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार कला का मूल्यांकन-मानक केवल सफल अभिव्यक्ति ही है। संगीतकार, चित्रकार, शिल्पकार, वास्तुकार, साहित्यकार, आदि सभी कलाकार केवल अपनी भावानुभूति की व्यंजना अभिव्यंजित करने के लिए अनथक प्रयास करते हैं किन्तु ईंट, गारा, मिट्टी जैसे उपादानों की सहायता से व्यंजना को मूर्त रूप प्रदान करने वाले कलाकार के लिए अभिव्यक्ति करने के लिए ससीम क्षितिज ही उपलब्ध हो पाता है। वस्तु के अंश की प्रधानता के कारण स्थापत्य या वस्तुगत कला का परिगणन निम्न विद्या में किया जाता है किन्तु यह स्पष्ट है कि कला का मानक, वस्तु-नीति या कल्याण न होकर सौन्दर्यानुभूति ही होता है। मूर्तिकार ने मूर्त अभिव्यक्ति से किस सहृदय के अंतर में कितनी संवेदना और कितना प्रभाव छोड़ा है यही बात मूर्तिकार की सफलता प्रदर्शित करती है।

संस्कृत के महाकवियों ने वस्तुगत साहित्य सौन्दर्य का अंकन विशदता और बहुलता से किया है। यथा- कालिदास ने मेघदूत में अलकापुरी तथा विशाला नगरियों का अंकन पूरी तन्मयता से किया है। शूद्रक ने मृच्छकटिकम में वसन्त सेना के प्रकोष्ठों का वर्णन पूर्ण गरिमा से किया है। माघ कृत शिशुपाल वध में द्वारावती नगरी, कृष्ण व युधिष्ठिर के विशाल राजमहलों एवं सभा-भवनों का वर्णन वस्तुगत सौन्दर्य के उत्कृष्ट स्वरूप का प्रमाण देता है। हिन्दी कवियों में यह प्रवृत्ति बहुत ही कम रही है उन्होंने वस्तुगत सौन्दर्य को विशेष महत्व नहीं दिया। आचार्य शुक्ल के एक मत का उल्लेख मैं आवश्यक समझता हूँ कि -**महाराज रघुराज सिंह ने तो यह समझिए कि अपने समय के राजसी ठाट और जुलूस के सामान गिनाने के लिए ही "राम स्वयंवर" लिखा। इस प्रणाली का सबसे अधिक अनुकरण "सूदन" ने किया है। उनके "सुजान चरित्र" को तो हथियारों, घोड़ों, कपड़ों, सामानों की एक पुस्तकाकार नामावली समझिए। गोस्वामी जी को यह हवा बिल्कुल न लगी। इस अनर्गल विधान से दूर रहकर अपने गौरव और गांभीर्य की पूर्ण रक्षा की।"**[10]

हिन्दी कवियों में तुलसी ही ऐसे कवि हैं जिन्होंने वस्तुगत सौन्दर्य को उपेक्षा की दृष्टि से न देखकर उसके अलंकृत वर्णन में अपनी वृत्ति को रमाया है। गोस्वामी तुलसीदास के काव्य में वस्तुगत सौन्दर्य दो परम्परागत स्वरूपों में ही परिलक्षित होता है। कलात्मक दृष्टि से और उपयोगी दृष्टिकोण से। इस अध्याय में कलात्मक वस्तु सौन्दर्य के अंतर्गत हम भवन, सरोवर, उद्यान तथा मण्डपादि का तथा उपयोगिता की दृष्टि से दैनिक जीवन के उपयोग में आने वाली वस्तुओं यथा पलंग, दीप, पात्र, आभूषणादि का क्रमवार अध्ययन और आकलन करेंगे।

भवन-

तुलसी ने रामकथा को अपनी कृतियों में मूलरूप से अंकित किया है। उनकी कृतियों में मुख्यतः

तीन नगरों का चित्रण पूर्ण भव्यता के साथ मिलता है। अयोध्या, जनकपुर तथा लंका का वैभवयुक्त अंकन तुलसी के कौशल को संकेतित करता है। अपने आराध्य के नगर के वर्णन में तुलसी ने युगीन वैभव को पूर्ण भव्यता के साथ प्रस्तुत किया है। अयोध्या में स्वर्ण तथा रत्नों से खंचित अटारियां हैं जिनमें विभिन्न रंगीन मणियों से ढली फर्शें हैं। सम्पूर्ण नगर के चारों तरफ अत्यन्त सुन्दर कंगूरों से युक्त दिव्य परकोटा है। कवि की कल्पना है कि अयोध्या की छवि ऐसी लगती है कि जैसे नवग्रहों ने अमरावती को घेर लिया हो। गगनचुम्बी उज्जवल महल है, मणियों के खम्भे हैं, सोने की दीवार मरकत-मणियों से जड़ी हुई है। महलों में स्फटिक के आंगन हैं, प्रत्येक द्वार पर हीरों से जड़े हुये सोने के किवाड़ हैं। प्रत्येक घर में अत्यन्त सुन्दर चित्रशालायें हैं जो राजा राम के चरित्र का बखान करती हैं-

अवधपुरी बासिन्ह कर, सुख संपदा समाज।
सहस सेष नहिं कहि सकहिं, जहँ नृपराज बिराज।।

नारदादि सनकादि मुनीसा। दरसन लागि कोसलाधीसा।।
दिन प्रति सकल अयोध्या आवहिं। देखि नगरू बिरागु बिसरावहिं।।
जात रूप मनि रचित अटारीं। नाना रंग रुचिर गच ढारीं।।
पुर चहुँ पास कोट अति सुंदर । रचे कंगूरा रंग रंग बर।।
नवग्रह निकर अनीक बनाई। जनु घेरी अमरावति आई।।
महि रंग रचित गच काँचा। जो बिलोकि मुनिबर मन नाचा।।
धवल धाम ऊपर नभ चुंबत। कलस मनहुं रबि ससि दुति निंदत।।
बहुमनि रचित झरोखा भ्राजहिं। गृह गृह प्रतिमनि दीप बिराजहिं।।

छन्द- मनि दीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरीं बिद्रुम रची।
मनि खंभ भीति बिरंचि बिरची कनक मनि मरकत खची।।
सुंदर मनोहर मंदिरायत अजिर रुचिर फटिक रचे।
प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाई बहु बज्रन्हि खचे।।
चारु चित्रसाला गृह, गृह प्रति लिखे बनाइ।
राम चरित जे निरख मुनि ते मन लेहिं चोराइ।।[11]

अयोध्या के बाजार का वर्णन किया ही नहीं जा सकता है-

बाजार रुचिर न बनई बरनत बस्तु बिनु गथ पाइए।
जहँ भूप रमा निवास तहँ की सम्पदा किमि गाइए।।
बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहुँ कुबेर ते।
सब सुखी सब सच्चरित सुंदर नारि नर सिसु जरठ जे।।[12]

अयोध्या के उत्तर में निर्मल सलिला सरयू प्रवाहित होती है। राजघाट सहित अनेक सुन्दर घाट

वहाँ बनाये गये हैं। सम्पूर्ण अयोध्या की शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता है। नगर में सैकड़ों बावलियाँ, तालाब तथा विशाल कुएँ हैं जो नगर की शोभा और अधिक बढ़ाते हैं-

उत्तर दिसि सरजू बह निर्मल जल गंभीर।
बाँधे घाट मनोहर, स्वल्प पंक नहिं तीर।।
दूरि फराक रुचिर सो घाटा। जहँ जल पिअहिं बाजि गज ठाटा।।
पनिघट परम मनोहर नाना। तहाँ न पुरुष करहिं अस्नाना।।
राजघाट सब बिधि सुंदर बर। मज्जहिं तहाँ बरन चारिउ नर।।
तीर तीर देवन्ह के मंदिर। चहुं दिसि तिन्ह के उपबन सुन्दर।।
कहुँ कहुँ सरिता तीर उदासी। बसहि ग्यान रत मुनि सन्यासी।।
तीर तीर तुलसिका सुहाई। बृंद बृंद बहु मुनिन्ह लगाई।।
पुर सोभा कछु बरनि न जाई। बाहेर नगर परम रुचिराई।।
देखत पुरी अखिल अघ भागा। बन उपबन बापिका तड़ागा।।
बापी तड़ाग अनूप कूप मनोहरायत तोहहीं।
सोपान सुंदर नीर निर्मल देखि सुर मुनि मोहहीं।
बहु रंग कंज अनेक खग कूजहिं मधुप गुंजारहीं।
आराम रम्य पिकादि खग रव जनु पथिक हंकारहीं।।
रमानाथ जहँ राजा, सो पुर बरनि कि जाइ।
अनिमादिक सुख संपदा, रहीं अवध सब छाइ।।[93]

मानस में निषाद राज गुह के माध्यम से राजा दशरथ के भवन-वैभव की प्रंशसा निम्न रूप में व्यंजित हुई है-

भूपति भवन सुभाएं सुहावा। सुरपति सदनु न पटतर पावा।।
मनिमय रचित चारु चौबारे। जनु रतिपति निज हाथ संवारे।।[94]

राम के जन्मोपरान्त नगर की शोभा का वर्णन अयोध्या के वैभव को स्पष्ट करता है। सम्पूर्ण अयोध्या में कस्तूरी, चन्दन और केशर की व्याप्ति दिखाई देती है-

ध्वज पताक तोरन पुर छावा। कहि न जाई जेहि भाँति बनावा।।
सुमन बृष्टि अकास तें होई। ब्रह्मानन्द मगन सब लोई।।
बृंद बृंद मिलि चलीं लोगाई। सहज सिंगार किएँ उठि धाई।।
कनक कलस मंगल भरि थारा। गावत पैठहिं भूप दुआरा।।
करि आरति नेवछावरि करहीं। बार बार सिसु चरनन्हि परहीं।।
मागध सूत बंदिगन गायक। पावक गुन गावहिं रघुनायक।।
सर्बस दान दीन्ह सब काहू। जेहिं पावा राखा नहिं नाहू।।

मृगमद चंदन कुंकुम कीचा। मची सकल बीथिन्हं बिच बीचा।।[15]

राम विवाह के समाचार से अयोध्या में सर्वत्र प्रसन्नता की व्याप्ति दृष्टिगत होती है। बारात की तैयारी, अयोध्या के वैभव तथा अतुलनीय ऐश्वर्य की झाँकी प्रस्तुत करती है-

सोभा दशरथ भवन कह, को कबि बरनै पार।
जहाँ सकल सुर सीस मनि राम लीन्ह अवतार।।

भूप भरत पुनि लिए बोलाई। हय गय स्यंदन साजहु जाई।।
चलहु बेगि रघुबीर बराता। सुनत पुलक पूरे दोउ भ्राता।।
भरत सकल साहनी बोलाए। आयसु दीन्ह मुदित उठि धाए।।
रचि रुचि जीन तुरग तिन्ह साजे। बरन बरन बर बाजि बिराजे।।
सुभग सकल सुठि चंचल करनी। अय इब जरत धरत पगधरनी।।
नाना जाति न जाहिं बखाने। निदरि पवनु जनु चहत उड़ाने।।
तिन्ह सब छपल गए असवारा। भरत सरिस बय राज कुमारा।।
सब सुंदर सब भूषनधारी। सर कर चाप तून कटि भारी।।

छरे छबीले छयल सब, सूर सूजान नबीन।
जुग पदचर असवार प्रति, जे असकला प्रबीन।।

बाँधे बिरद बीर रन गाढ़े। निकसि भए पुर बाहेर छाँड़े।।
फेरहिं चतुर तुरग गति नाना। हरषहिं सुनि सुनि पनब निसाना।
रथ सारथिन्ह विचित्र बनाए। ध्वज पताक मनि भूषन लाए।।
चँवर चारू किंकिन धुनि करहीं। भानु जान सोभा अपहरहीं।।
सावँकरन अगनित हय होते। ते तिन्ह रथन्ह सारथिन्ह जोते।।
सुंदर सकल अलंकृत सोहे। जिन्हहिं बिलोकति मुनि मन मोहे।।
जे जल चलहिं थलहिं की नाई। टाप न बूड़ बेग अधिकाई।।
अस्त्र सस्त्र सबु साजि बनाई। रथी सारथिन्ह लिए बोलाई।।

चढ़ि चढ़ि रथ बाहेर नगर लागी जुरन बरात।
होत सगुन सुंदर सबहि जो जेहि कारन जात।।

कलित करिब रन्हि परीं अंबारी। कहि न जाहिं जेहि भाँति सँवारी।।
चले मस्त गज घंट बिराजी। मनहुँ सुभग सावन घन राजी।।
बाहन अपर अनेक विधाना। सिबिका सुभग सुखासन जाना।।
मागध सूत बंदि गुनगायक। चले जान चढ़ि जो जेहि लायक।।
बेसर ऊँट बृषभ बहु जाती। चले बस्तु भरि अगनित भाँती।।
कोटिन्ह काँवरि चले कहारा। बिबिध बस्तु को बरनै पारा।।

चले सकल सेवक समुदाई। निज निज साजु समाजु बनाई।।[१६]

गीतावली में भी अयोध्या के सौन्दर्य और वैभव की मनोहर व्यंजना मिलती है। सरयू के तट पर बसी अयोध्या की शोभा का बखान करना सहज संभाव्य नहीं है। नगर के प्रत्येक घर में हिंडोले, पृथ्वी पर कांच की सुन्दर और सुढाल गच तथा चारों दिशाओं में फटिक की भीतों पर चित्र, विचित्र परदे शोभित हो रहे हैं। मूंगे के सीधे विशाल और सुदृढ़ खंभे सुशोभित हैं तथा मढ़ी हुई सुन्दर पटलियों पर मरकतमणि के आँकड़े झिलमिला रहे हैं-

गृह-गृह रचे हिंडोलना, महि गच काँक सुढार।
चित्र बिचित्र चहू दिसि, परदा फटिक-पगार।।
सरल बिसाल बिराजहीं, बिदुम खंभ सुजोर।
चारु पाटि पट पुरट की झरकत मरकत भौंर।।[१७]

एक अन्यत्र स्थल पर तुलसी अयोध्या की सन्ध्याकालीन शोभा का चित्रण करते हुये कहते हैं-

साँझ समय रघुबीर पुरी की सोभा आजु बनी।
ललित दीपमालिका बिलोकहिं हित करि अवध धनी।।
फटिक-भीत-शिखरन पर राजति कंचन-दीप-अनी।
जनु अहिनाथ मिलन आयो मनि-सोभित सहस फनी।।
प्रति मंदिर कलसनि पर भ्राजहिं मनिगनि दुति अपनी।
मानहुँ प्रगटि बिपुल लोहित पुर पठइ दिये अवनी।।[१८]

अयोध्या की नगर रचना में ब्रह्मा जी को अनेकानेक भेद लक्षित होते हैं किन्तु फिर भी वह उन्हें इस प्रकार दुर्गम प्रतीत होती है जैसे जलचर का पृथ्वी पर स्वच्छन्द विचरना। कहने का आशय यह है कि अयोध्या नगर की दित्यातिदिव्य गरिमा के आगे सृष्टिकर्ता ब्रह्मा को अपना कौशल फीका प्रतीत होता है-

नगर-रचना सिखर को बिधि तकत बहु बिधि वृन्द।
निपट लागत अगम, ज्यों जनचाहि गमन सुछंद।।[१९]

विशेष उल्लेखनीय तत्व यह है कि तुलसी ने नगर सौन्दर्य के वर्णन में केतु, पताका और वन्दनवारों के माध्यम से अभिव्यंजना प्रस्तुत की है। जन्मोत्सव के समय कवि अयोध्या की भव्य सज्जा और श्री सुषमा का वर्णन करते हुये गलियों में कुंकुम की कीच बहा देता है। सम्पूर्ण वातावरण में अरगजा, अगर और अबीर की व्याप्ति नगर को और अधिक मोहक स्वरूप प्रदान करती है-

मनि तोरण बहु केतु पताकन, पुरी रुचिर कर छाई।
मागध सूत द्वार बन्दीजन जहँ तहँ करन बड़ाई।।
बीथिन्ह कुंकुम कीच अरगजा अगर अबीर उड़ाई।
नाँचहिं पुर नर नारि प्रेम भरि देह दसा बिसराई।।[२०]

मानसकार ने जनकपुरी का अत्यन्त भव्य और मोहक अंकन प्रस्तुत किया है। स्वयं राम मिथिला के सौन्दर्य से अभिभूत हो उसकी प्रशंसा करते हैं। तुलसी का शिल्प चातुर्य मिथिला नगर को सार्थकता प्रदान करने में सक्षम रहा है। मिथिला की सुन्दरता का वर्णन करते हुये तुलसी कहते हैं कि जनकपुर में अनेकों बावलियाँ, कुएँ, नदी और तालाब हैं, जिनमें मणिखचित सीढ़ियाँ हैं तथा जिनमें भरा जल अमृत के सदृश शीतल तथा तृप्तिदायक है। पराग रस से उन्मत्त भ्रमर जहां सुन्दर गुंजार कर रहे हैं। अनेकानेक वर्ण वाले पक्षी मधुर कलरव कर रहे हैं। सर्वत्र मिथिला में शीतल और मन्द समीरण बहता है। नगर के चारों ओर सुन्दर वन, उपवन तथा फुलवारियां हैं जो नगर के वैभव को और समृद्ध करने में सहायक हैं। नगर के सौन्दर्य का वर्णन तो मानो किया ही नहीं जा सकता। सुन्दर बाजार, मणिनिर्मित विचित्र छज्जे मन को स्वतः आकर्षण के पाश में आबद्ध कर देते हैं। नगर के चौराहे तथा गलियाँ सदैव सुगन्ध से सिचीं रहती हैं। जानकी ज़ी के महल का वर्णन करना तो असंभव ही है। गजशालाओं तथा घुड़सालों की विशालता देखने योग्य है। मंत्रिगणों, सेनापतियों आदि के भवन भी राजमहल से कम नहीं हैं-

पुर रम्यता राम जब देखी। हरषे अनुज समेत बिसेषी।।
बापीं कूप सरित सर नाना। सलिल सुधासम मनि सोपाना।।
गुंजत मंजु मत्त रस भृंगा। कूजत कल बहुबरन बिहंगा।
बरन बरन बिकसे बनजाता। त्रिबिध समीर सदा सुखदाता।।

सुमन बाटिका बाग बन, बिपुल बिहंग निवास।
फूलत फलत सुपल्लवत, सोहत पुर चहुँ पास।।

बनइ न बरनत नगर निकाई। जहां जाइ मन तहँइ लोभाई।।
चारु बजारु बिचित्र अंबारी। मनिमय बिधि जनु स्वकर संवारी।।
धनिक बनिक बर धनद समाना। बैठे सकल वस्तु लै नाना।।
चौहट सुंदर गलीं सुहाई। संतत रहहिं सुगंध सिंचाई।।
मंगलमय मंदिर सब केरें। चित्रित जनु रतिनाथ चितेरें।।
पुर नर नारि सुभग सुचि संता। धरमसील ग्यानी गुनवंता।।
अति अनूप जहँ जनक निवासू। बिथकहिं बिबुध बिलोकि बिलासू।।
होत चकित चित कोट बिलोकी। सकल भुवन सोभा जनु रोकी।।

धवल धाम मुनि पुरट पट, सुघटित नाना भाँति।
सिय निवास सुंदर, सदन, सोभा किमि कहि जाति।।

सुभग द्वार सब कुलिस कपाटा। भूप भीर नट मागध भाटा।।
बनी बिसाल बाजि गज साला। हय गय रथ संकुल सब काला।।
सूर सचिव सेनप बहुतेरे। नृप गृह सरिस सदन सब केरे।।

पुर बाहेर सर सरित समीपा। उतरे जहँ तहँ बिपुल महीपा।।[२१]

तुलसीदास ने बारात के स्वागत के निमित्त साज-सज्जा के भव्यांकन से तत्कालीन युग के राजसी वैभव को भी संकेतित किया है। मानस में संचित ऐश्वर्य और राजसी गरिमा को तुलसी ने अपनी सौन्दर्यशालिनी कल्पना के समुचित समन्वय से वस्तुगत सौन्दर्य के अंकन को उदात्त अर्थवत्ता प्रदान की है।

तुलसी ने मानस के प्रारम्भ काण्ड में लंका की स्थिति और उसकी दुर्गमता का चित्र अत्यंत कुशलता से खींचा है-

गिरि त्रिकूट एक सिंधु मझारी। बिधि निर्मित दुर्गम अति भारी।।
सोइमय दानव बहुरि संवारा। कनक रचित मनि भवन अपारा।।
भोगावति जसि अहिकुल बासा। अमरावति जसि सक्र निवासा।।
तिन्ह में अधिक रम्य अति बंका। जग बिख्यात नाम तेहि लंका।।
खाई सिंधु गंभीर अति, चारिहुं दिसि फिरि आव।
कनक कोट मनि खचित दृढ़ बरनि न जाइ बनाव।।
हरि प्रेरित जेहिं कलप जोइ, जातुधानपति होइ।
सूर प्रतापी अतुल बल, दल समेत बस सोइ।।[२२]

लंका वर्णन में कवि ने सौन्दर्य की सात्विकता को व्यंजित नहीं किया है। शुभ और मंगल तत्वों की व्यंजना न कर तुलसी ने विपुल सैन्यशक्ति के उल्लेख के माध्यम से आसुरी प्रवृत्ति की उद्भावना को प्रस्तुत किया है। यह अंतर मानस की मूल कथा को तीव्रता से मुखरित करता है। सीता की खोज में गये हनुमान के माध्यम से तुलसी लंका का चित्र निम्नवत प्रस्तुत करते हैं-

गिरि पर चढ़ि लंका तेहिं देखी। कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेषी।।
अति उतंग जलनिधि चहुं पासा। कनक कोट कर परम प्रकासा।।
कनक कोट बिचित्र मनि कृत, सुन्दरायतना घना।
चउ हट्ट भट्ट सुबट्ट बीथी, चारु पुर बहुबिधि बना।।
गजबाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथन्हि को गनै।
बहुरूप निसिचर जूथ अतिबल, सेन बरनत नहिं बनै।।
बन बाग उपबन वाटिका, सर कूप बापी सोहहीं।
नर नाग सुर गंधर्ब, कन्या रूप मुनि मन मोहहीं।।
कहुँ माल देख बिसाल सैल समान अतिबल गर्जहीं।
नाना अखारेन्ह भिरहिं बहुबिधि एक एकन्ह तर्जहीं।।
करि जतन भट कोटिन्ह बिकट तन नगर चहुँ दिसि रच्छहीं।।
कहुँ महिषु मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं।।

एहि लागि तुलसीदास इन्ह की कथा कछु एक है कही।
रघुबीर सर तीरथ सरीरन्ह त्यागि गत पैहहिं सही।।
पुर रखवारे देखि बहु कपि मन कीन्ह बिचार।
अति लघु रूप धरौ निसि नगर करौं पइसार।।[२३]

रावण के महल का संकेत मात्र देकर हनुमान आगे बढ़ जाते हैं-

मंदिर मंदिर प्रतिकर सोधा। देखे जहँ तहँ अगनित जोधा।।
गयउ दसानन मंदिर माहीं। अति बिचित्र कहि जात सो नाहीं।।[२४]

पार्वती मंगल और मानस में तुलसी ने हिमवान नगर की चर्चा भी प्रक्षिप्त रूप से की है जो भवन तथा नगर सौन्दर्य के प्रति उनकी सुरुचि को स्पष्ट करती है-

(क) तोरन कुलस चवंर धुज बिबिध बनाइन्ह।
हाट पटोरन्हि छाय सफल तरु लाइन्ह।।
गौरी नैहर केहि बिधि कहहु बखानिय।
जनु रितुराज मनोज राज रजधानिय।।
जनु राजधानी मदन की बिरची चतुर बिधि और हीं
रचना बिचित्र बिलोकि लोचन बिथकि ठौरहिं ठौर हीं।।[२५]

(ख) लघु लाग बिधि की निपुनता अवलोकि पुर सोभा सही।
बनबाग कूप तड़ाग सरिता सुभग सब सक को कही।।
मंगल विपुल तोरन पताका केतु गृह गृह सोहहीं।
बनिता पुरुष सुंदर चतुर छबि देखि मुनि मन मोहहीं।।
जगदंबा जहं अवतरी सो पुर बरनि कि जाइ।
रिद्धि सिद्धि संपत्ति सुख नित नूतन अधिकाइ।।[२६]

इस प्रकार तुलसी के नगर-सौन्दर्य-वर्णन में दिव्यता की झलक सर्वत्र परिलक्षित होती है जो उनके शिल्प कौशल तथा मानसिक उच्चता को पूर्णता से व्यंजित करती है।

सरोवर-

तुलसी ने सरोवरों का वर्णन मानस रूपक को छोड़कर अत्यन्त प्रक्षिप्त रूप में किया है किन्तु वह भी किसी से किंचित भी कम नहीं है। राजा जनक के सरोवर का एक चित्र देखें जो अनायास ही मन को आकर्षित कर लेता है-

मध्य बागु सरु सोह सुहावा। मनि सोपान बिचित्र बनावा।।
बिमल सलिलु सरसिज बहुरंगा। जल खग कूजत गुंजत भृंगा।।[२७]

पंपा सरोवर के वर्णन में तुलसी ने सरोवर के पूर्ण सौन्दर्य को अत्यन्त कुशलता से अभिव्यंजित

किया है। उस पंपा सरोवर का जल संतों के हृदय जैसा निर्मल है। चारों घाट मन को अपनी ओर खींचने वाले हैं। तालाब में रंग बिरंगे कमल विकसित हैं। भ्रमर बृंद मधुर स्वर में गुंजार कर रहे हैं। उसके चारों ओर सुन्दर-सुन्दर वृक्ष हैं। चक्रवाक, बगुले आदि पक्षियों के समुदाय उसके सौन्दर्य में और श्री वृद्धि करने में सहायक हैं। तुलसी ने रूपक के निवेश से पंपा सरोवर के अंकन में सरोवर सौन्दर्य की अत्यन्त कलात्मक और मनोहारी अभिव्यक्ति को संजोया है जो अन्यत्र दुर्लभ है-

पुनि प्रभु गए सरोवर तीरा। पंपा नाम सुभग गंभीरा।।
संत हृदय जस निर्मल बारी। बाँधे घाट मनोहर चारी।।
जहँ तहँ पिअहिं बिबिध मृग नीरा। जनु उदार गृह जाचक भीरा।।
पुरइनि सघन ओट जल, बेगि न पाइउ मर्म।
मायाछन्न न देखिए जैसें निर्गुन ब्रह्म।।
सुखी मीन सब एक रस, अति अगाध जल माहिं।
जथा धर्मसीलन्ह के, दिन सुख संजुत जाहिं।।
बिकसे सरसिज नाना रंगा। मधुर मुखर गुंजत बहु भ्रंगा।
बोलत जल कुक्कुट कलहंसा। प्रभु बिलोकि जनु करत प्रशंसा।।
चक्रबाक बक खग समुदाई। देखत बनइ बरनि नहिं जाई।।
सुंदर खग गन गिरा सुहाई। जात पथिक जनु लेत बुलाई।।[२८]

उपर्युक्त दोनों उद्धरणों में राजसी वैभव तथा आश्रम की दिव्यता स्पष्ट दृष्टिगत होती है जो तुलसी के वस्तु सौन्दर्य की मर्मज्ञता को प्रतिभासित करती है।

उद्यान-

तुलसी ने रामकथा में जनक वाटिका तथा अशोक वाटिका के प्रसंगों को निबद्ध किया है जिनमें उद्यान सौन्दर्य को पूर्ण कौशल से चित्रित किया गया है। देखिए मिथिला नरेश की पुष्प वाटिका का मनोरम चित्र-

भूप बागु बर देखेऊ जाई। जहँ बसंत रितु रही लोभाई।।
लागे बिटप मनोहर नाना। बरन बरन बर बेलि बिताना।।
नव पल्लव फल सुमन सुहाए। निज संपति सुर रूख लजाए।।
चातक कोकिल कीर चकोरा। कूजत बिहग नटत कल मोरा।।
बाग तड़ागु बिलोकि प्रभु, हरषे बंधु समेत।
परम रम्य आरामु यह, जो रामहिं सुख देत।।[२९]

लंकाधिपति रावण की अशोक वाटिका का चित्र खींचते हुये तुलसी कहते हैं कि उसका उपवन

इन्द्र, वरुण तथा स्वयं ब्रह्मा के उपवनों से भी श्रेष्ठ और मनोरम था। प्रस्तुत है- उपर्युक्त कथन की संपुष्टि करने वाला चित्र-

''बासव-बरुन-बिधि बनतें सुहावनी
दसानन को काननु बसंत को सिंगारु सो।
समय पुराने पात परत, डरत बातु,
पालत, लालत, रति-मारको बिहारु सो।।
देखें बर बापिका तड़ाग बाग को बनाउ
राग बस भो बिरागी पवन कुमारु सो।''[३०]

इनके अतिरिक्त तुलसी ने उपवनों का प्रक्षिप्त अंकन समय और स्थिति के अनुसार किया है।

मंडप-

तुलसी साहित्य में मंडप, वेदिका आदि का वर्णन पर्याप्त रूप से उपलब्ध है। पार्वती विवाह तथा जानकी विवाह के अवसरों पर विचित्र और अत्यन्त कलात्मक मण्डपों की सुन्दर अभिव्यंजना की गई है।

राजा जनक के आदेश से कारीगरों ने ब्रह्मा की वन्दना के उपरान्त विचित्र मण्डप बनाने का कार्य प्रारम्भ किया। सर्वप्रथम उन्होंने सोने के केले के खंभे बनाए फिर हरी मणियों के पत्ते तथा फल और पद्मराग मणियों (माणिक) के सुन्दर फूलों को बनाकर वितान को वैचित्र्य प्रदान किया। स्वयं ब्रह्मा भी उसकी कलात्मकता से विमोहित हुये बिना नहीं रह पाये। उसमें हरी मणियों के सीधे तथा गांठों से युक्त बांस बनाये। तदुपरान्त स्वर्ण नागबेलि बनाई जिनके मध्य मौक्तिकों की झालरें लटक रहीं थीं। माणिक, पन्ने, हीरे और फिरोजे आदि रत्नों को रंगकर तथा पच्चीकारी कर अनेकानेक कमल बनाये। रत्नों से ही विविधवर्णी ऐसे पक्षी बनाये जो वायु संस्पर्श से ध्वनि उत्पन्न करते थे। खंभों पर विभिन्न मूर्तियां गढ़ीं, जो मंगल द्रव्य लिये थीं। गजमुक्ताओं के अनेक चौक उसमें पुराये गये। नीलमणि से आम के सुन्दर पत्ते बनाये। स्वर्ण बौरों और मरकत मणियों के गुच्छों को रेशमी डोरी से बांधा गया। मणियों के सुन्दर दीपकों वाले उस मण्डल की विचित्रता और भव्यता का वर्णन कौन कर सकता है? जिस मण्डप में श्रीराम और सीता दूल्हा-दुल्हिन हों उस मण्डप की दिव्यता का बखान करना कवि की सामर्थ्य के बाहर है। इस प्रकार तुलसी अपनी कलात्मक कुशलता को दिव्यता के उच्च्य शिखर तक ले जाने में पूर्ण सक्षम हुये हैं-

पठए बोलि गुनी तिन्ह नाना। जे बितान बिधि कुसल सुजाना।।
बिधिहिं बंदि तिन्ह कीन्ह अरंभा। बिरचे कनक कदलि के खंभा।।
हरित मनिन्ह के पत्र फल पदुमराग के फूल।

रचना देखि बिचित्र अति मनु बिरंचि कर भूल।।

बेनु हरित मनिमय सब कीन्हे। सरल सपरब परहि नहिं चीन्हे।।
कनक कलित अहि बेलि बनाई। लखि नहिं परइ सपरन सुहाई।।
तेहि के रचि पचि बंध बनाये। बिच बिच मुकता दाम सुहाये।।
मानिक मरकत कुलिस पिरोजा। चीरि कोरि पचि रचे सरोजा।।
किए भृंग बहु रंग बिहंगा। गुंजहि कूजहिं पवन प्रसंगा।।
सुर प्रतिमा खंभन गढ़ि काढ़ी। मंगल द्रव्य लिएं सब ठाढ़ीं।।
चौकें भाँति अनेक पुराई। सिंधुर मनिमय सहज सुहाई।।

सौरभ पल्लव सुभग सुठि, किए नीलमनि कोरि।
हेम बौर मरकत धवरि, लसत पाटमय डोरि।।

रचे रुचिर बर बंदनिवारे। मनहुं मनोभव फंद संवारे।।
मंगल कलस अनेक बनाए। ध्वज पताक पट चमर सुहाए।।
दीप मनोहर मनिमय नाना। जाइ न बरनि बिचित्र बिताना।।
जेहि मंडप दुलहिन बैदेही। सो बरनै असि मति कबि केही।।[३१]

जानकी मंगल में तुलसी मंडप के भीतर विराजमान सीता के अतिरिक्त तीन अन्य जोड़ियों का उल्लेख करते हुये कहते हैं कि तीनों जोड़ियों के साथ वह मण्डप ऐसा शोभित हो रहा है मानो कामधेनु चन्द्रमा और चिन्तामणि के साथ कल्पवृक्ष सुशोभित होता है-

कल्यान मो कल्यान पाइ बितान छबि मन मोहई।
सुरधेनु ससि सुरमनि सहित मानहुं कलप तरु सोहई।।[३२]

पार्वती के विवाह के अवसर पर भी मण्डप ऐसा बनाया गया कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। मण्डप के वैचित्र्य में दिव्यता का निवेश तुलसी की उदात्त कल्पना को विम्बित करता है।

इहां हिमाचल रचेउ बिताना। अति बिचित्र नहिं जाइ बखाना।।[३३]

सीता परिणय के अवसर पर निर्मित वितान को देखकर मुनिगण तथा देवता भी उसकी विचित्रता और सौन्दर्य से विमोहित हो अपना मन हार उठते हैं। इसका संकेत तुलसी ने अन्यत्र भी दिया है-

क- चितवहिं चकित बिचित्र बिताना। रचना सकल अलौकिक नाना।।[३४]

ख- मंडपु बिलोकि बिचित्र रचना रुचिरताँ मुनि मन हरे।[३५]

इस प्रकार कलात्मक वस्तु सौन्दर्य की दृष्टि से तुलसी प्रभावशाली अभिव्यक्ति व्यंजित करने में पूर्णरूपेण सफल रहे हैं।

पलंग, दीप, पात्र, आभूषणादि

उपयोगिता की दृष्टि से तुलसी ने अवसरोचित वस्तु सौन्दर्य को अत्यन्त कुशलता से निरूपित किया है। पलंग, दीप, पात्र, आभूषणादि के सौन्दर्य के भव्य अंकन ने तुलसी साहित्य की गरिमा में यथोचित अभिवृद्धि की है। आइये क्रम से इनका अनुशीलन करते हैं-

पलंग-

राम के शयन कक्ष की भव्यता का अंकन करना सहज नहीं है। शयनकक्ष में स्वर्ण तथा मणियों से निर्मित पलंग हैं। जिन पर गाय के दूध के फेन के समान धवल चादरें बिछीं हैं। तकियों की सुन्दरता मन को अनायास अपनी ओर आकृष्ट कर लेती हैं। उनके सौन्दर्य की अभिव्यक्ति अवर्णनीय है। मणियों से निर्मित मन्दिर का संपूर्ण वातावरण सुगन्धि से परिपूरित है। सुन्दर चंदोवे के ऊपर रत्नों के दीपक जगमगा रहे हैं। उस शयनकक्ष के सौन्दर्य को शब्दों में नहीं बांधा जा सकता। उसे तो केवल संजोने और देखने वाला ही अनुभूत कर सकता है-

भूप बचन सुनि सहज सुहाए। जरित कनक मनि पलंग डसाए।।
सुभग सुरभि पय फेन समाना। कोमल कलित सुपेतीं नाना।।
उपबरहन बर बरनि न जाहीं। स्त्रग सुगंध मनिमंदिर माहीं।।
रतनदीप सुठि चारु चंदोवा। कहत न बनइ जान जेहिं जोवा।।[३६]

दीप-

तुलसी साहित्य में दीपोल्लेख बहुतायत से उपलब्ध होता है। दीप चूंकि शुभ संकेत का प्रतीक है इसलिये तुलसी ने स्वर्ण, रत्नजटित तथा मर्णिमय दीपों का उल्लेख किया है। स्फटिक मणि की भीतों के ऊपर सुवर्णमय दीपकों की पंक्ति ऐसी शोभित होती है मानों राम से मिलने मणिविभूषित सहस्त्र फर्णधारी शेष आए हों-

फटिक-भीत-सिखरन पर, राजति कंचन दीप अनी।
जनु अहिनाथ मिलन आयो मनि सोभित सहसफनी।।[३७]

दशरथ महल के वर्णन में मणि दीपकों का उल्लेख किया गया है-

सुचि सुबि चित्र सुभोगमय, सुमन, सुगंध सुबास।
पलंग मंजु मनि दीप जहं, सब बिधि सकल सुपास।।[३८]

रत्न दीप का उल्लेख राम के शयनकक्ष के वर्णन में देखा जा सकता है-

रतनदीप सुठि चारु चंदोवा। कहत न बनइ जान जेहिं जोवा।।[३९]

पात्र-

तुलसी ने इस बात का विशेष ध्यान रखा है कि अनावश्यक रूप से नामावली अधिक न हो। यही कारण है कि तुलसी साहित्य में पात्रादि की नामावली उपलब्ध नहीं होती, क्योंकि सौन्दर्य नामावली में नहीं वरन् अभिव्यक्ति में निहित होता है। तुलसी ने अनेक अवसरों पर मंगल पात्रों का विधान किया है जिनमें सर्वाधिक प्रमुखता कलश को मिली है।

लगे होन पुर मंगल गाना। सजे सबहिं हाटक घट नाना।।[४०]

हिमवान द्वारा दिये गये दहेज से वस्तुओं की विविधता स्पष्ट होती है-

दासी दास तुरग रथ नागा। धेनु वसन मनि बस्तु बिभागा।।

अन्न कनक भाजन भरि जाना। दाइज दीन्ह न जाइ बखाना।।[४१]

सोने के थाल का वर्णन भी इसी प्रसंग में उपलब्ध है-

कंचन थार सोह बर पानी। परिछन चली हरहिं हरषानी।।[४२]

राम बारात की अगवानी के समय तुलसी ने स्वर्ण कलश, परात तथा थाल आदि सुन्दर बरतनों का उल्लेख किया है-

कनक कलस भरि कोपर थारा। भाजन ललित अनेक प्रकारा।।

भरे सुधा सम सब पकवाने। नाना भाँति न जाहिं बखाने।।[४३]

स्वर्ण कलश तथा मणियों से जटित परातों की सुन्दरता अवर्णनीय है-

कनक कलस मनि कोपर रूरे। सुचि सुगंध मंगल जल पूरे।।[४४]

भोजन के समय मणियों के पत्तों में सोने की कील से टकी पत्तलों का चित्रण जनक के वैभव तथा युगीन वस्तु सौन्दर्य को व्यंजित करता है-

सादर लगे करन पनवारे। कनक कील मनि पान संवारे।।[४५]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि तुलसी ने पात्रादि का अत्यन्त संक्षिप्त किंतु सौन्दर्यपरक वर्णन किया है।

आभूषण-

वस्त्राभूषण तथा आभरण युग के अनुरूप परिवर्तित होते रहते हैं। मुकुट, माला तथा कुण्डलों को मध्ययुगीन राजाओं के प्रमुख आभूषणों की मान्यता प्राप्त थी। तुलसी साहित्य में मुकुट, माला, कंकन, नूपुर, कुण्डल, मुद्रिका तथा किंकिणी का उल्लेख प्रमुखता से उपलब्ध होता है-

मुकुट-१. **''कुंचित कच, कंचन-किरीट सिर, जटित ज्योतिमय बहु विधि मनिगन।**

तुलसीदास रबि कुल रबि छबि, कबि, कहि न सकत सुक-संभु-सहसफन।।[४६]

२. **''भौहें बंक मयंक-अंक-रुचि, कुंकुम रेख भाल अति भ्राजति।**

सिरसि-हेम-हीरक-मानिकमय, मुकुटप्रभा सब भवन प्रकासति।।[४७]

माला- १. ''कंबु कंठ भुज बिसाल उरसि तरुन तुलसिमाल,
मंजुल, मुकतावलि जुत जागति जिय जोहैं।
जनु कलिंद नंदनि मनि-इन्द्र नील-सिखर परसि,
धंसति लसति हंस सेनि-संकुल अधिकौहैं।।[४८]

२. ''जग्योपबीत बिचित्र हेममय, मुक्तावाल उरसि मोहि भाई।
कंद तड़ित बिच जनु सुरपति-धनु रुचिर बलाकपाँति चलि आई।।[४९]

कंकण- १. ''राम को रूप निहारति जानकी कंकण के नग की परिछाहीं।
यातै सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही पल टारति नाहीं।।''[५०]

२. ''अरुन चरन अंकुस-धुज-कुलिस चिन्ह रुचिर
भ्राजत अति नूपुर बर मधुर मुखर कारी।
किंकिनी बिचित्र जाल, कंबु कंठ ललितमाल,
उर बिसाल केहरि-नख, कंकन कर धारी।।''[५१]

नूपुर- १.''ललित अंक कुलिसादिक चारी। नूपुर चारु मधुर रव कारी।।''[५२]

२.''पीत जानु उर चारू जटित मनि नूपुर, पदकल मुखर सोहाई।
पीत पराग भरे अलिगन जनु जुगल जलज लखि रहे लोभाई।।''[५३]

कुण्डल-(क) स्त्रवन सुंदर, सम कुंडल कल जुगम
तुलसिदास अनूप, उपमा कही न जाई।
मानो मरकत सीप सुंदर ससि समीप,
कनक करजुत बिधि बिरची बनाई।।[५४]

(ख) सोभित स्रवन कनक कुंडल कल लंबित बिषि भुजभूले।
मनहुँ केकि तकि गहन चहत जुग उरग इंदु प्रतिकूले।।[५५]

मुद्रिका- माल मेलि मुद्रिका मुदित मन पवनपूत सिर नायो।।[५६]

किंकिणी- (क) चारु पुरट मनि रचित बनाई। कटि किंकिनि कल मुखर सुहाई।।[५७]

(ख) किंकिनी कलित कटि हाटक जटित मनि
मंजुकर-कंजनि पहुँचियाँ रुचिरतर।[५८]

इनके अतिरिक्त भी तुलसी ने अवसरोचित आभूषणों की चर्चा की है। आभरण में तुलसी ने प्रमुख रूप से जावक, तिलक, सेंदुर, काजल तथा चन्दन का उल्लेख किया है। प्रकारान्तर से कहा जा सकता है कि तुलसी ने मध्ययुगीन आभूषणों तथा आभरणों का वर्णन अत्यन्त कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है जो तुलसी के युगबोध को पूर्ण भव्यता से प्रत्यक्ष करने में सक्षम है।

वस्तुगत सौन्दर्य के अंतर्गत रथ, हिंडोला तथा पालने का चित्रण असंगत न होगा। तुलसी ने राम के पालने का मनोमुग्धकारी वर्णन किया है। तुलसी अपनी कलात्मक चारुता का परिचय देते

हुये कहते हैं कि जिस पालने में रामलला विराजमान हैं, वह स्वर्ण तथा मणियों से जड़ा हुआ है। उसमें तरह-तरह के खिलौने, घुँघरू तथा मनोहर मोतियों की मालायें लगी हुई हैं-

कनक-रतनमय पालनो रच्यो मनहुँ मार-सुतहार।
बिबिध खेलौना, किंकिनी, लागे मंजुल मुकुताहार।।
रघुकुल-मंडन राम लला।।[५९]

राम के हिंडोले का मनोहर चित्र भी तुलसी ने अपनी उदात्त कल्पना से उकेरा है। हिंडोले की भव्य कान्ति सहज ही मन को आकर्षित करने में सक्षम है। तुलसी ने अपना सम्पूर्ण कौशल हिंडोले की कलात्मकता में लगा दिया है। तुलसी कहते हैं कि राम के मनोहर हिंडोले में स्फटिक मणि की मनोहर भीतें हैं, जिसमें मणियों के अत्यन्त सुन्दर दरवाजे लगे हैं। उसकी काँच की गचें देखकर हृदय मयूर के समान नर्तन करने लगता है मानो वह कामदेव का फंदा हो। उस हिंडोले में जो बंदनवार, वितान, पताका, चमर, ध्वजा तथा पुष्प और फलों की रम्य आकृतियाँ बनी हैं उनकी परछाहीं अपने बिम्बों से होड़ करती प्रतीत होती हैं। उस हिंडोले में कामदेव के विजय स्तम्भ के सदृश सीधे और बड़े-बड़े खम्भे बने हैं। उसमें विचित्र आंकड़ों में लटकी हुई, चन्दन की पाटी तथा बेलन हैं। बेलन में लगी हुई सोने की डंडी ऐसी प्रतीत होती है मानो कामदेव के मस्तक पर कुंकुम के तिलक की रेखा हो तथा पटुली ऐसी प्रतीत होती है मानो कामभार्या रति के वक्षस्थल पर पदिक तथा सोने की कमनीय माला पड़ी है। ऐसी कलात्मक अभिव्यक्ति निश्चित रूप से केवल तुलसी ही प्रस्तुत कर सकते थे-

फटिक-भीति सुचारु चहुँ दिसि, मंजु मनिमय पौरि।
गज काँच लखि मन नाच सिखिजनु पाँचसर-सुफँसौरि।।
तोरन-बितान-पताक-चामर-धुज-सुमन-फल-धौरि।
प्रतिछाँह-छबि कबि-सखि दै प्रति सो कहै गुरुहौंरि।।
मदन-जय के खंभ-से रचे खंभ सरल बिसाल।
पाटीर-पाटि बिचित्र भंवरा बलित बेलत लाल।।
डाँड़ो कनक कुंकुम-तिलक-रेख सी मनसिज-माल।
पटली पदिक रति हृदय जनु कलधौत कोमलमाल।।[६०]

राम का हिंडोला तो दिव्याभा से मंडित है किन्तु अयोध्या में घर-घर में सुन्दर हिंडोले हैं जो अपनी कलात्मकता तथा सुन्दरता में किसी से कम नहीं-

गृह गृह रचे हिंडोलना, महि गच काँच, सुढार।
चित्र बिचित्र चहू दिसि परदा फटिक पगार।।
सरल बिसाल बिराजहीं बिद्रुम खंभ सुजोर।
चारु पाटि पटी पुरटकी झरकत मरकत भौंर।।
रकत भँवर डाँड़ी कनक मनि-जटित दुति जगमग रही।

पटुली मनहु बिधि निपुनता निज प्रगट करि राखी सही।।
बिहुरंग लसत बितान मुकुतादाम-सहित मनोहरा।
नव-सुमन-माल-सुगंध लोभे, मंजु गुंजत मधुकरा।।[६१]

उपयोगिता की दृष्टि से तुलसी ने रथ सौन्दर्य का अंकन भी सुमनोहर ढंग से प्रस्तुत किया है। राम विवाह के समय रथों की विलक्षणता देखते ही बनती है-

रथ सारथिन्ह बिचित्र बनाए। ध्वज पताक मनि भूषन लाए।।
चँवर चारु किंकिनि धुनि करहीं। भानु जान सोभा अपहरहीं।।
साँवकरन अगनित हय जोते। ते तिन्ह रथन्ह सारथिन्ह जोते।।
सुंदर सकल अलंकृत सोहे। जिन्हहि बिलोकत मुनि मन मोहे।।[६२]

राम-रावण युद्ध के अवसर पर तुलसी ने इन्द्र के दिव्य रथ का वर्णन किया है जिसका उल्लेख करना असंगत न होगा।

तेज पुंज रथ दिव्य अनूपा। हरषि चढ़े कोसलपुर भूपा।।
चंचल तुरग मनोहर चारी। अजर अमर मन सम गतिकारी।।[६३]

तुलसी के सौन्दर्य बोध में राम से सम्बन्धित प्रत्येक वस्तु कवि को दिव्याभा से अभिमंडित दिखाई देती है। यही कारण है कि तुलसी के वस्तु सौन्दर्य में एक अनूठी दिव्यता के दर्शन होते हैं। कवि राम से सम्बन्धित वस्तुओं की पूर्ण अभिव्यक्ति में स्वयं को सदैव असमर्थ पाता है। राम के घोड़े के चित्रांकन में कवि की यह असमर्थता उदाहरण स्वरूप देखी जा सकती है। राम जिस घोड़े पर सवार हैं उसकी गति देखकर स्वयं गरुड़ भी लज्जा का अनुभव करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो कामदेव स्वयं घोड़े का वेष धारण करके आये हों। उसकी अवस्था, बल रूप, चाल और गुणादि समस्त भुवनों को विमोहित करने में सक्षम हैं। उसकी जीन में सुन्दर मोती, मणि और माणिक्य जड़े हैं, जिनकी ज्योति उसके अतुलित सौन्दर्य में अभिवृद्धि कर रही है। उसकी सुन्दर घुंघरू लगी लगाम की ललिताभा सम्पूर्ण समष्टि को ठगने में समर्थ है। इतना ही नहीं स्वयं सरस्वती भी जब उसके अनुपम सौन्दर्य को अभिव्यक्त करने में असमर्थ हैं तो कवि में इतनी क्षमता कहाँ कि वह राम के घोड़े की भव्य कान्ति के सौन्दर्य का पूर्णांकन कर सके-

जेहि तुरंग पर राम बिराजे। गति बिलोकि खगनायकु लाजे।।
कहि न जाइ सब भाँति सुहावा। बाजि बेषु जनु काम बनावा।।
जनु बाजि बेषु बनाइ मनसिजु राम हित अति सोहई।
आपने बल बय रूप गुन गति सकल भुवन विमोहई।।
जगमगत जीनु जराव जोति सुमेति मनि मानिक लगे।।
किंकिनि ललाम लगामु ललित बिलोकि सुर नगर मुनि ठगे।।
प्रभु मनसहिं लयलीन मनु, चलत बाज छबि पाव।

भूषित उड़िगन तड़ित धनु, जनु बर बरहि नचाव।।

जेहिं बर बाजु राम असवारा। तेहि सारदउ न बरनै पारा।।[६४]

तुलसी के वस्तुगत सौन्दर्य में युगीन प्रवृत्ति पूर्णरूपेण परिलक्षित होती है। तत्कालीन युग साम्राज्यवादी युग था जिसमें प्रदर्शन की प्रवृत्ति अत्यधिक थी। साम्राज्यवादी नरेश अपनी प्रभुसत्ता बनाए रखने के लिये शक्ति तथा वैभव का प्रदर्शन करते थे। आतंक के लिये शक्ति के साथ-साथ ऐश्वर्य तथा सम्पन्नता का अकल्पनीय प्रदर्शन प्रजा को प्रभावित किये रहता था। भव्य राजमहलों का निर्माण इसी प्रवृत्ति को संकेतित करता है। रंगमहलों में सौन्दर्याभूषणों तथा प्रसाधनों का महत्व अत्यधिक था। राम जन्मोत्सव के प्रसंग में कुंकुम-कीच का वर्णन तुलसी ने युगीन नरेशों के उत्सवों में की गई भव्य नगर सज्जा से प्रभावित होकर किया होगा। इसे असत्य नहीं कहा जा सकता। रत्न और मोतियों का लुटाना, मणियों के बन्दनवारों, स्वर्णिम पताकाओं से नगर को भव्य सौन्दर्य प्रदान करने में तुलसी ने युगीन प्रवृत्तियों का आश्रय अवश्य लिया है। इन्द्रनीलमणि, पदमरागमणि, विद्रुम मरकतमणियों आदि की विशेष चर्चा का मूल युगीन सौन्दर्य प्रसाधन सम्बन्धी दृष्टिकोण स्वीकारा जा सकता है। **प्रकारान्तर से कहा जा सकता है कि तुलसी ने वस्तुगत सौन्दर्य की कलात्मक अभिव्यक्ति युगीन वैभव तथा अपनी सौन्दर्यशालिनी कल्पना के समुचित समन्वय से प्रस्तुत की है।**

तुलसी की कृतियों में तुलसी का दास्य भाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। इस प्रकार की भक्ति में आराध्य का जितना भव्य स्वरूप उपासक के समक्ष रहता है उतनी ही अधिक श्रद्धा भक्त के मन में जाग्रत होती है। अपनी हीनता तथा आराध्य के प्रति पूज्यभावना की निरन्तरता के लिए आराध्य के सौन्दर्य में उदात्तता तथा भव्यता का निवेश अनिवार्य है। यही कारण है कि **तुलसी ने राम से सम्बन्धित सभी वस्तुओं के सौन्दर्य निरूपण में अपने पूर्ण कौशल का प्रयोग किया है। उनके राम मानव के रूप में साक्षात ब्रह्म हैं अतः उनसे सम्बन्धित सभी वस्तुओं के सौन्दर्य में अनूठी दिव्यता का निवेश होना स्वाभाविक है। इसी दिव्यता के कारण तुलसी प्रत्येक वस्तु के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति में अपनी संपूर्ण क्षमता और कल्पना के प्रयोग के बावजूद स्वयं को असमर्थ पाते हैं। इसी असमर्थता ने तुलसी के वस्तुगत सौन्दर्य विधान को एक अनूठी कलात्मकता से मंडित कर दिया है। अभिव्यक्ति की सक्षमता ने तुलसी के वस्तुगत सौन्दर्य विधान को एक अद्भुत गरिमा, चारुता तथा उदात्तता प्रदान की है जिसकी समता अन्यत्र दुर्लभ ही है। ललित और कलात्मक वस्तु सौन्दर्य की मनोहराभिव्यक्ति को तुलसी साहित्य की अन्यतम विशेषता माना जा सकता है। संपूर्ण तुलसी साहित्य में राम की भव्यता की दिव्य झलक परिलक्षित होती है अतः यह सहजता से स्वीकारा जा सकता है कि तुलसी वस्तुगत सौन्दर्य के निरूपण में पूर्णतः सफल रहे हैं।**

●●●

संदर्भ

१. सुरेन्द्र बारलिंगे - सौन्दर्य तत्व और काव्य सिद्धान्त, पृष्ठ- ३२

२. सुरेन्द्र बारलिंगे - सौन्दर्य तत्व और काव्य सिद्धान्त, पृष्ठ- ३६

३. सुरेन्द्र बारलिंगे - सौन्दर्य तत्व और काव्य सिद्धान्त, पृष्ठ- ३८

४. सुरेन्द्र बारलिंगे - सौन्दर्य तत्व और काव्य सिद्धान्त, पृष्ठ- ३६

५. श्याम सुन्दर दास - हिन्दी साहित्य, पृष्ठ - ५३

६. श्याम सुन्दर दास - हिन्दी साहित्य, पृष्ठ - ५४

७. भगवती चरण वर्मा, साहित्य की मान्यताएं, पृष्ठ -८

८. वीणा माथुर - प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन, पृष्ठ - १३५

६. डा० रामेश्वर लाल खण्डेलवाल - आधुनिक कविता में प्रेम और सौन्दर्य, पृष्ठ-१६३

१०. आचार्य शुक्ल - गोस्वामी तुलसीदास, पृष्ठ - १२६

११. मानस - ७/२६-२७

१२. मानस - ७/२८ (छन्द)

१३. मानस - ७/२८-२६

१४. मानस - २/८६/४

१५. मानस - १/१६३/१, २, ३, ४

१६. मानस - १/२६७-२६६/१, २, ३, ४

१७. गीतावली - ७/१६-३

१८. गीतावली - ७/२०

१६. गीतावली - ७/२३-२

२०. गीतावली - १/१-६, १/१-८

२१. मानस - १/२११/३, १/२१३/१,२

२२. मानस - १/१७७/३,४, १/१७८ क, ख

२३. मानस - ५/२/५,६ - ५/३

२४. मानस - ५/४/३

२५. पार्वती मंगल - ८७-८८, छन्द -11

२६. मानस - १/६४

२७. मानस - १/२२६/४

२८. मानस - ३/३८/३-३/३६/२

२६. मानस - १/२२६/२,३, १/२२७

३०. कवितावली - ५/१

३१. मानस - १/२८६/४ - १/२८८/२

३२. जानकी मंगल - छन्द सं०-१६

३३. मानस - १/६३/१

३४. मानस - १/३१३/३

३५. मानस - १/३२० दोहान्तर्गत छन्द पंक्ति

३६. मानस - १/३५५/१,२

३७. गीतावली - ७/२०/३

३८. मानस - २/६०

३६. मानस - १/३५५/२

४०. मानस - १/६८/२

४१. मानस - १/१००/४

४२. मानस - १/६५/२

४३. मानस - १/३०४/१

४४. मानस - १/३२३/३

४५. मानस - १/३२७/४

४६. गीतावली - ७/१६/८

४७. गीतावली - ७/१७/१५

४८. गीतावली - ७/४/४

४६. गीतावली - १/१०८/६

५०. कवितावली- १/१७

५१. गीतावली - १/२५/३

५२. मानस - ७/७५/४

५३. गीतावली - १/१०८/३

५४. गीतावली - ७/११/३

५५. गीतावली - ७/१२/५

५६. गीतावली - ५/१/१

५७. मानस - ७/१५/४

५८. गीतावली - १/३३/२

५६. गीतावली - १/२२/१

६०. गीतावली - ७/१८/१,२

६१. गीतावली - ७/१६/३

६२. मानस - १/२६८/२,३

६३. मानस - ६/८८/२

६४. मानस - १/३१५/४ - १/३१६/१

❑❑❑

अष्टम अध्याय

अभिव्यंजनात्मक सौन्दर्य

(क) भाषा एवं शैलीगत

१. तुलसी की भाषा-शैली

२. तुलसी में अनुभूति और अभिव्यक्ति का सामंजस्य

(ख) बिम्ब एवं अलंकार योजना

(ग) छन्द-विधान

(घ) प्रतीक एवं शब्द-शक्ति

(ङ) गुण, रीति एवं वृत्ति

(च) ध्वनि एवं क्रोक्ति

(छ) औचित्य

(क) भाषा एवं शैलीगत

१. तुलसी की भाषा-शैली-

तुलसी का अभीष्ट उद्‌देश्य काव्य रचना के माध्यम से समष्टि का मंगल करना था। यद्यपि उनसे पूर्व भी राम का यश-गायन कवियों ने किया था किन्तु उनकी अभिव्यक्ति का माध्यम संस्कृत और अन्य भाषायें रहीं जिससे उनका काव्य जनमंगल का हेतु न बन सका। तुलसी ने इसीलिये लोकभाषा के माध्यम से राम के चरित्र का गायन प्रस्तुत किया। यही कारण है कि उनका काव्य जन-जन का काव्य माना जाता है। जनभाषा की महत्ता स्वीकारते हुये उन्होंने कहा-

का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिए साँच।
काम जु आवै कामरी, का लै करै कुमाच।।[1]

तुलसी की भाषा के सम्बन्ध में **डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव** का कथन पूर्णतः समीचीन है- **''यह बात सोलह आने सच जान पड़ती है कि तुलसी ने जनभाषा को अपनी रचनाओं का माध्यम बनाया था तो वह विशुद्ध जनोपयोगिता के विचार से तथा पूर्ण गौरव एवं आत्म-विश्वास के साथ।[2]**

तुलसी को संस्कृत का पूर्ण शास्त्रीय ज्ञान था। यह मानस और विनयपत्रिका के श्लोकों और स्तोत्रों से स्पष्ट होता है। संस्कृत के प्रति उनकी आस्था निम्न स्तुतियों से प्रकाशित होती है-

१. **यत्रकुत्रापि मम जन्म निज कर्मबस भ्रमत जग जोनि संकट अनेकम।**
तत्र त्वद्‌भक्ति सज्जन समागम सदा भवतु मे राम विस्रामेकम।।[3]

२. **प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः।**
मुखाम्बुज श्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मंजुल मंगलप्रदा।।[4]

तुलसी ने भाषा का प्रयोग पूर्णतः व्याकरण नियमों के अनुसार नहीं किया। उन्होंने स्वतंत्र रूप से नये शब्दों को संस्कृत के अनुरूप गढ़ा भी है और साथ ही **अयं, इदम्, अहम्, किमपि, कोऽपि, पश्चामि, अस्मि, वदति, अस्ति** अनेक संस्कृत शब्द रूपों को विषयानुसार प्रयुक्त भी किया है। तुलसी की मूल प्रवृत्ति ब्रज और अवधी के स्वभावानुकूल तद्‌भव शब्दों के प्रयोग की थी। उनके काव्य में **पखारन** (प्रक्षालन), **सवति** (सपत्नी), **भीख** (भिक्षा) **बाँझ** (वन्ध्या), **साँझ** (सन्ध्या), **बीछी** (वृश्चिक) **कनी** (कणिका), **अहेर** (आखेट), **भीतर** (अभ्यन्तर), **ससुर** (श्वसुर), **पाइक** (पदिक), **गय** (गज), **बरिआता** (वरयात्रा), **मयन** (मदन) तथा **लोयन** (लोचन) आदि अनेक तद्‌भव शब्दों का सफल प्रयोग देखा जा सकता है।

तुलसी ने प्राकृत और अपभ्रंश से प्रभावित शब्दावली का प्रयोग भी किया है। कवितावली में इसका प्राचुर्य दृष्टिगत होता है। दृष्टव्य है एक चित्र-

कतहुँ बिटप भूधर उपारि परसेन बरक्खत।
कतहुँ बाजि सों बाजि मर्दि गजरान करक्खत।।
चरन चोट चटकन चकोट अरि उर सिर बज्जत।
बिकट कटक बिछरत बोर बारिद जिमि गज्जत।।[५]

इसी प्रकार तुलसी काव्य में प्रयुक्त **दमंकहि, भट्टा, घट्टा, खप्पर, अलुज्झि, जुज्झहिं, पक्खर, तिक्खन, मुक्ख, पब्बै, उच्छलित, कटक्कर,** प्रभृति अनेक शब्दों की प्रवृत्ति अपभ्रंश से अत्यधिक प्रभावित दिखाई देती है।

तुलसी काव्य में अनेक देशज शब्दों यथा **डांग, डोंगर, अवढ़र, ढँढोरी, गुडी, ढाबर, गोड़, टाट, मोट, लुकाई, लबाई, घमोई, डसाई, हेरी** आदि का प्रयोग भी मिलता है।

तुलसी ने अनेक स्थानों का भ्रमण किया था जिसके फलस्वरूप उनकी भाषा में प्रान्तीय भाषाओं तथा बोलियों का प्रभाव भी दृष्टिगत होता है। चित्रकूट के आस-पास **बुन्देली** का क्षेत्र माना जाता है। इसीलिये उनके काव्य में **भाँडिगो, कीबो, डारिबी, पालिबो, घाइबो, रेंगाए, कोपर, सुपेती, पनवार, गेंडुआ, खेरा, चारितु** आदि बुन्देली शब्दों का प्रयोग मिलता है। इसी प्रकार काशी के निकट क्षेत्र में भोजपुरी बोली प्रचलित है जिससे उन्होंने **सूतल, सूतहि, लोइ, लोई, राउर, रावरी, दिहल, घायल, जँहवा, तँहवा** आदि शब्दों को ग्रहण कर प्रयुक्त किया है। यथा विनयपत्रिका के निम्न पद में भोजपुरी के प्रभाव को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है-

बाँस पुरान साज सब अटखट <u>सरल</u> तिकोन खटोला रे
हमहिं <u>दिहल</u> करि कुटिल करम चंद मंद मोल बिनु डोला रे।।[६]

बघेली के कुछ शब्द प्रयोग भी तुलसी साहित्य में उपलब्ध होते हैं यथा **सुआर, बागत** आदि। तुलसी काव्य में **खड़ी बोली के सर्वनाम** वह, यह, मेरी, हमारी आदि तथा **देखो, किया, लीजिये, कीजिये, लेना, देना, सुने हैं, देखे हैं, आया, मचा, करती हैं** इत्यादि **क्रिया रूपों** का प्रयोग भी दृष्टिगत होता है। यथा प्रस्तुत है एक उदाहरण-

"<u>देखे हैं</u> अनेक ब्याह, <u>सुने हैं</u> पुरान बेद
<u>बूझे हैं</u> सुजान साधु, नर-नारि-पारिखी।।[७]

प्रान्तीय भाषाओं के शब्दों का प्रयोग भी तुलसी ने किया है। उनके काव्य में **दारु** (बारुद), **म्हाको** (मेरा), **पूजी** (पूरी हुई), **सारा** (लगाया) **मनुहारि, मेली** (डाली), **माठ** (घड़ा) आदि **राजस्थानी,** मराठी के **फोकट, पँवारो, अवकलत,** गुजराती के **दरिया** (समुद्र) **लाधे** (प्राप्त किया) **भोगी, भूकिये** (छोड़िए) आदि **बंगला** के **खटाइ** (निभती है) **पारा** (सका) आदि तथा **पंजाबी** के **धुँआ** (शव), **सिखर** (जूठन) आदि शब्दों का अत्यन्त प्रवहमान स्वरूप दिखाई देता है जो तुलसी के शब्द प्रयोग की सामर्थ्य का परिचय देता है।

तुलसी का युग मुसलमानी शासन का युग था अतएव सामान्य जनभाषा में अरबी-फारसी शब्दों

का प्रयोग स्वाभाविक रूप से होने लगा था। पं० रामनरेश त्रिपाठी ने तुलसी साहित्य से चुनकर **अरबी-फारसी के चार सौ इकतालीस शब्दों की सूची प्रस्तुत की है।**[८] तुलसी द्वारा प्रयुक्त अरबी-फारसी के कतिपय शब्द **गुलाल, बाग, चैन, मालुम, सुमार, खजानो, साहेब, पोच, कागद, सक, सोर, कसम, लायक, जमात, परदा, जहाज, लबार, सराफ, निसान, गुमान, रहम, असबाब, दरबार, कमान, हुनर, मजूरी दाम, सिताज, दीलर** (दिल), **निहालु, मरद, खबास, रुख, फजीहत, मौज, अंदेस, सहर, दगा, रैयत, सहमे, सहनाइन्ह, महल, जोर, खलल, बेगार, जहरु** तथा **कबूलत** आदि ऐसे हैं जिनका प्रयोग अत्यन्त सहज और स्वभाविक लगता है। तुलसी ने कतिपय खटकने वाले यथा **नकीब, छिरयानी, गनी, सहियानी, सालिम, फराक, दराज** आदि शब्दों का भी प्रयोग किया है।

मुहावरे और लोकोक्तियाँ भाषा को और अधिक जीवन्तता प्रदान करती हैं। तुलसी ने इनके प्रयोग से मार्मिक भावों की सुन्दर व्यंजना प्रस्तुत की है। राम के राजा बन जाने पर मंथरा, कैकेयी को उसकी सम्भावित उपेक्षित अवस्था का भान कराने के लिये निम्न उक्ति कहती है-

भामिनि भइहु दूध की माखी।[६]

कौशल्या जब कैकेयी के राम-वन-गमन विषयक वर के सम्बन्ध में सुनती हैं तो उनका हृदय धर्म और ममता की दुविधापूर्ण स्थिति में दोलित होने लगता है। तुलसी ने कौशल्या की इस दुविधापूर्ण स्थिति का अंकन मुहावरे के माध्यम से किया है-

"धरम सनेह उभय मति घेरी। भइ गति साँप छछूंदर केरी।।[१०]

भरत को जब इस घटनाक्रम का पता चलता है तो उनका हृदय माता कैकेयी के प्रति अत्यन्त क्षुब्ध हो जाता है। इस भाव को तुलसी ने निम्न प्रकार से व्यंजित किया है-

पेड़ काटि तैं पालउँ सींचा। मीन जिअन हित वारि उलीचा।।

यही घटना लघु भ्राता शत्रुघ्न के मन में अत्यन्त क्रोध उत्पन्न करती है-

लखि रिस भरेउ लखन लघु भाई। बरत अनल घृत आहुति पाई।।[११]

राम की भक्ति से विरहित मानव की जगत में अत्यन्त उपेक्षापूर्ण स्थिति की व्यंजना करते हुये तुलसी कहते हैं-

तुलसी बनी है राम रावरे बनाए ना तौ
धोबी कैसो कूकर न घर को ना घाट कौ।[१२]

इसी प्रकार तुलसी ने अनेक मुहावरों का प्रयोग विविध भावनाओं की सुमधुर अभिव्यक्ति के निमित्त किया है। उनके काव्य में **जिमि दसननि बिच जीभ बिचारी, लाज ऊँचई घोर, जैहै बारह बाट, पतीआ भए बाइ के, पानी भरी खाल है, पेट खलाई, गालु करब साँपनि सौ खेलैं, घरोंदा हुतो बालु को, मुँह चाही होन लागी, जानहुँ लेइहिं माँग चबेना, सावन के अंधहि ज्यों सूझत रंग हरौ** इत्यादि मुहावरों का कलात्मक प्रयोग दृष्टव्य है।

लोकोक्तियों के प्रयोग के माध्यम से कवि अपने कथ्य को विशिष्ट अर्थवत्ता प्रदान करने में

सफल रहा है। यथा सीता की आकुलता को अंकित करते हुये तुलसी कहते हैं-

"तृषित वारि बिनु जो तनु त्यागा। मुए करइ का सुधा तड़ागा।।

का बरखा जब कृषी सुखाने। समय चूकि पुनि का पछिताने।।[९३]

इस प्रकार तुलसी काव्य में **अंतहु कीच तहाँ जहँ पानी, बाँझकि जानि प्रसव कै पीरा, चलइ जोंक जलवक्र गति, त्यों त्यों होइगी गरुइ ज्यों ज्यों कामरि भीजै, जस काछिअ तस चाहइ नाचा, खाती दीपमालिका ठठाइयत सूप है, लातहुँ मारै सिर चढ़ति, नीच को धूरि समान, चीरी को भरनि खेल बालकनि कैसो है** आदि लोकोक्तियों के सफल प्रयोग दृष्टिगत होते हैं जिनके माध्यम से तुलसी ने विविध भावों की उत्कृष्ट व्यंजनायें कर सौन्दर्य की अनूठी आभा से अपने काव्य को लालित्य युक्त पीठिका प्रदान की है।

तुलसी ने भाषा में अनुरणनात्मक शब्दावली का प्रयोग सौन्दर्य वर्द्धन की दृष्टि से ही किया है। शब्दों की ध्वनि मात्र से भाव व्यंजना का एक चित्र प्रस्तुत है-

ललित आँगन खेले ठुमुक-ठुमुक चलें

झंझुनु-झंझुनु पाँय पैंजनी मृदु मुखर

किंकिनी कलित कटि हाटक जटित मनि

मंजु कर कंजनि पहुँचियाँ रुचिरतर।।[९४]

तुलसी की भाषा में बिम्ब विधान की अनूठी सामर्थ्य है। वर्णन शैली के माध्यम से तुलसी ऐसे अद्भुत बिम्ब उपस्थित करते हैं कि आँखों के समक्ष सारा दृश्य साकार हो उठता है। यथा युद्ध की विभीषिका का एक गतिशील बिम्ब दृष्टव्य है-

हाथिन सौं हाथी मारे, घोड़े घोड़े से संहारे,

रथनि सों रथ विदरनि बलवान की।

चंचल चपेट चोट चरन चकोर चाहैं,

हहरानी फौजें भहरानी जातु धान की।।

बार-बार सेवक-सराहना करत रामु,

तुलसी सराहे रीति साहेब सुजान की।

लाँबी लूम लसत लपेटि पटकत भट,

देखी, देखो लखन लरनि हनुमान की।।[९५]

इस प्रकार तुलसी की भाषा सर्वत्र मधुर रूप में सर्वगुणों से युक्त लक्षित होती है।

तुलसी ने अपने युग तक प्रचलित सभी काव्य शैलियों को अपनाया है। रामचरित मानस जायसी की भाँति **दोहा-चौपाई** शैली में लिखा गया है। बीच-बीच में छन्दों का वैविध्य उसकी सौन्दर्याभा को द्विगुणित कर देता है। कवितावली की रचना चारणभाटों की **कवित्त-छप्पय-सवैया** आदि की शैली में की गई है। उसमें झूलना आदि छन्दों का प्रयोग वीरगाथाकालीन काव्यों के अनुरूप

किया गया है। दोहावली की रचना संत कवियों की **साखी या दोहा शैली** के अनुसार की गई है, जिसमें भक्ति एवं नीति विषयक तत्वों का प्रतिपादन किया गया है। विनयपत्रिका, गीतावली और कृष्णगीतावली की रचना भक्तकवियों की भाँति **पद शैली** में की गई है, जिसमें गीतिकाव्य के सभी गुणों का सुन्दर समावेश दिखाई देता है। भावों के अनुरूप रागों का प्रयोग उनके पदों के वैशिष्ट्य का उद्‌घाटन करने में समर्थ है। **तुलसी ने पदों की विशिष्टता हेतु गीतावली में रामजन्मोत्सव और रूप अंकन के लिये आसावरी तथा जैतश्री, सौन्दर्य अंकन के लिये कान्हड़ा और केदारा, भक्ति और करुणा के भावों की व्यंजना के निमित्त सोरठ, कृष्णगीतावली में विरह व्यंजना हेतु बिलावल, धनाश्री और केदारा, चित्रकूट महिमा और शिव के वररूप अंकन हेतु बसंत तथा वर्षा और उससे सम्बन्धित ऋतु वर्णनों के निमित्त मल्हार राग को अपनाकर अपूर्व सौन्दर्य सृष्टि की है। जो उनके शास्त्रीय संगीत ज्ञान का परिचय देती है तथा साथ ही काव्य में व्यंजना के ललित स्वरूप को भी प्रकाशित करती है।** राग चयन उनकी निजी प्रतिभा को द्योतित करता है। इन शैलियों के अतिरिक्त उन्होंने छन्दों के विविध रूपों को अपनाकर लगभग सभी शैलियों में सर्जना प्रस्तुत की है। **मंगल काव्यों में तुलसी ने सोहर छन्द को प्रमुखता दी है।**

तुलसी ने काव्य के सभी रूपों को अपनाया है। रामचरित मानस **महाकाव्य**, जानकीमंगल और पार्वती मंगल **खण्डकाव्य**, दोहावली **मुक्तक काव्य**, कृष्णगीतावली, गीतावली तथा विनयपत्रिका **प्रगीत काव्य**, कवितावली **प्रबन्धात्मक मुक्तक काव्य**, रामलला नहछू **वर्णनात्मक प्रकरण काव्य** के रूप में परिगणित किये जाते हैं।

इस प्रकार भाषा-शैली की दृष्टि से तुलसी सर्वोत्कृष्ट कवि की श्रेणी में आते हैं। भाषा-शैली की सुन्दर समाहार शक्ति के द्वारा उन्होंने सौन्दर्य की अनुपम सर्जना प्रस्तुत की है। उनकी भाषा-शैली उनके काव्य को चारुता से मण्डित करने और विशिष्ट गरिमा प्रदान करने में पूर्ण सक्षम है।

(२) तुलसी में अनुभूति और अभिव्यक्ति का सामंजस्य

अनुभूति पक्ष के आकलन के निमित्त मार्मिक और भावुक स्थितियों तथा रसादि का विवेचन अपेक्षित होता है। **डा० इन्द्रपालसिंह इन्द्र** के अनुसार- **"राम के जीवन का वर्णन करते हुये कवि ने केवल उसके मार्मिक एवं हृदयग्राही स्थलों का विशद वर्णन ही नहीं किया है, अपितु जीवन की प्रत्येक भावमयी स्थिति का सरस उद्‌घाटन भी किया है, इसी में उनकी प्रबन्ध पटुता है।"**[१६]

मार्मिक और भावुक स्थितियों का आशय किसी कथा के उस स्थलों की ओर संकेत करता है जो पाठक के हृदय को रससिक्त कर दें। ऐसे स्थल परुष और कोमल दोनों ही भावों की व्यंजना करने में समर्थ होते हैं। गीतावली में कोमल तथा कवितावली में परुष भावों की अनुपम व्यंजना इस कथन को प्रमाणित करती है। लक्ष्मण शक्ति के अवसर पर जहाँ राम का करुण विलाप हृदय को करुणा से आप्लावित कर देता है वहाँ हनुमान का निम्न कथन द्रवीभूत करने की जगह उत्साह

और प्रेरणा से तरंगित करने में समर्थ होता है। यथा-

''जौ हौं अब अनुशासन पावौं।
तौ चन्द्रमहिं निचोरि चैल ज्यों, आनि सुधा सिर नावौं।[१७]

तुलसी ने अपने काव्य में राम कथा के धनुष यज्ञ, राम वन गमन, तापसवेशधारी राम की वन यात्रा, चित्रकूट समागम, सीताहरण, लक्ष्मण को शक्ति लगने के पश्चात राम का विलाप, राम-रावण संग्राम, भरत-प्रतीक्षा तथा सीता-परित्याग प्रसंगों की अत्यन्त भावुक और मार्मिक व्यंजनाएँ संजोयी हैं जो तुलसी की अनुभूति की विशदता का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं।

जनक की पुष्प वाटिका में राम और सीता मात्र पारस्परिक दर्शन से अनुराग के पाश में आबद्ध हो जाते हैं। मन ही मन सीता अपना हृदय राम को समर्पित कर उन्हें पति के रूप में देखती हैं। उनके अभीष्ट की प्राप्ति में शिव-धनुष की गुरुता बाधक बनी है जिसे सम्पूर्ण संसार के महान और पराक्रमी योद्धा रंच मात्र भी हिला नहीं पाते हैं। उस वज्रसम धनुष को तोड़ने के लिये कोमल कान्त कलेवर राम जा रहे हैं, यह देखकर सीता के मन की दशा अत्यन्त विचित्र हो जाती है। तुलसी ने सीता के मानसिक भावों तथा उद्वेलनों को अत्यन्त मार्मिकता से प्रत्यक्ष किया है जो सहज ही हृदय को आकृष्ट करने में पूर्ण सक्षम है। यथा-

नीके निरखि नयन भरि शोभा। पितु पनु सुमिरि बहुरि मनु छोभा।।
अहह तात दारुण हठ ठानी। समुझत नहिं कछु लाभ न हानी।।
\- -
कँह धनु कुलिसहु चाहि कठोरा। कँह स्यामल मृदु गात किसोरा।।
बिधि केहि भाँति धरौं उर धीरा। सिरस सुमन कन बेधिअ हीरा।।
सकल सभा कै मति भै भोरी। अब मोहि संभु चाप गति तोरी।।
अति परिताप सीय मन माँही। लव निमेष जुग सय सम जाहीं।।
प्रभुहि चितइ पुनि चितव महि, राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग जनु बिधु मंडल डोल।।[१८]

इस प्रकार सीता के परिताप का भावपूर्ण अंकन तुलसी के अनुभूति कौशल की तीव्रता को स्पष्ट करता है।

दूसरा चित्र देखें- राम के राज्याभिषेक की घोषणा से सम्पूर्ण अयोध्या आनन्द और उल्लास से भर जाती है। प्रत्येक अवधवासी हर्षातिरेक के कारण अपने-अपने भवनों को सुरुचिपूर्ण ढंग से सजाने में लगा है। उसी समय कैकेयी की कुटिल चाल के वशीभूत हो दशरथ, भरत को राजसिंहासन तथा राम को १४ वर्षों के वनवास का वरदान दे बैठते हैं। राम के वन-गमन का समाचार सुन सारी अयोध्या शोकमग्न हो जाती है। तुलसी ने अयोध्या का चित्र अत्यन्त भावुकता के साथ उकेरा है-

लागति अवध भयावनि भारी। मानहुँ कालरात्रि अँधियारी।।

घोर जन्तु सम पुर नर-नारी। डरपहिं एकहिं एक निहारी।।
घर समान परिजन जनु भूता। सुतहित मीत मनहुँ जमदूता।।
बागन बिटप बेलि कुम्हलाहीं। सरित सरोवर देखि न जाहीं।।[१९]

राम के वन-गमन तथा पिता की मृत्यु का कारण स्वयं को समझ भरत आत्मग्लानि और क्षोभ से भर उठते हैं। आत्मग्लानि के बोध की अतिशयता उन्हें राम को वापस लौटा लाने की प्रेरणा देती है। समस्त गुरुजनों-परिवारीजनों सहित चित्रकूट में भरत की राम से भेंट होती है। भरत अत्यन्त दीन होकर कहते हैं-

जानत हौं सब ही के मन की।
तदपि कृपालु करौं विनती सोइ, सादर सुनहु दीन हित जन की।।
ए सेवक संतत अनन्य अति ज्यों चातकहिं एक गति घन की।
यह बिचारि गवनहु पुनीत पुर हरहु दुसह आरति परिजन की।।
मेरो जीवन जानिय ऐसोइ जिय जैसो अहि जासु गई मनिफन की।
मेरहु कुलकलंक कोसलपति आज्ञा देहु नाथ मोंहि वन की।।[२०]

इस प्रकार भरत की दीनता तथा आत्मग्लानि का निदर्शन तुलसी ने अत्यन्त मार्मिक रूप से किया है। एक अन्य चित्र में गर्भवती सीता को लोक निन्दा के भय से निष्कासित कर दिया जाता है। वाल्मीकि आश्रम के निकट लक्ष्मण उन्हें निर्वासन का कारण बताते हैं। कारण जान सीता अत्यंत व्यथित और खिन्न हो उठती हैं और करुणा विगलित स्वर में राम के प्रति संदेश प्रेषित करती हैं-

तौलौं बलि, आपुही कीबी विनय समुझि सुधारि।
जौलौं हौं सिखि लैउँ बन रिषि-रीति बसि दिन चारि।।
तापसी कहि कहा पठवति, नृपनि को मनु हारि।
बहुरि तिहि बिधि आइ कहि है साधु कोउ हितकारि।।
लखानलाल कृपाल! निपटहिं डारिबी न बिसारि।
पालिबी सब तापसिनि ज्यौं राज धरम बिचारि।।[२१]

उपर्युक्त उदाहरण तुलसी के भावुक हृदय का परिचय देने के लिये पर्याप्त हैं।

संयोग श्रृंगार

तुलसी ने अपने काव्य में सभी रसों का समाहार किया है। श्रृंगार का वर्णन तुलसी ने भक्त कवि होने के नाते अत्यन्त मर्यादित होकर किया है। निम्न पद में संयोग श्रृंगार का स्थायी भाव (रति) आलम्बन, उद्दीपन तथा व्यभिचारी भावों के योग से पुष्ट होकर पूर्ण सौन्दर्य के साथ रस रूप में व्यंजित हुआ है-

दूलह श्री रघुनाथ बने दुलही सिय सुन्दर मन्दिर माहीं।

गावहिं गीत सबै मिलि सुन्दरि बेद जुवा जुरि बिप्र पढ़ाहीं।।
राम कौ रूप निहारति जानकी कंकन के नग की परिछाहीं।
याते सबै सुधि भूलि गई, कर टेकि रही पल टारत नाहीं।।[२२]

एक अन्य चित्र दृष्टव्य है जिसमें रति की अभिव्यक्ति, राम के प्रातः जागरण के माध्यम से संकेतित की गई है जो तुलसी की सात्विक किन्तु गरिमायुक्त अभिव्यक्ति की परिचायक है। यथा-

स्यामल सलोने गात, आलस बस जँभात प्रिया प्रेम रस पागे।
उनींदे लोचन चारु, सुख-सुषमा-सिंगार हेरि हारे भार भूरि भागे।।[२३]

विप्रलम्भ श्रृंगार-

आचार्यो ने विप्रलम्भ श्रृंगार के अंतर्गत पूर्वराग मान, प्रवास तथा करुणा इन चार दशाओं की व्याप्ति मानी है मानस के निम्न प्रसंग में इसका पूर्ण परिपाक दृष्टिगत होता है-

(अ) आनि काठ रचु चिता बनाई। मातु अनल पुनि देहि लगाई।।[२४]

(ब) बिरह अगिनि तनु तूल समीरा। स्वास जरइ छन माँहि सरीरा।।
नयन स्रवहि जलु निज हित लागी। जरैं न पाव देह बिरहागी।।[२५]

वात्सल्य-

बालक के प्रति अनुराग और स्नेह भावना को वत्सलता की संज्ञा दी जाती है जिसकी अभिव्यक्ति वात्सल्य रस के रूप में प्रकट होती है। तुलसी ने वात्सल्य रस का सर्वाधिक अंकन गीतावली में किया है। शिशु राम की समस्त क्रीड़ायें और कलाप राजसी वैभव के पूर्ण अनुरूप हैं जिनका सुमधुर चित्रण तुलसी ने किया है। यद्यपि वात्सल्य वर्णन में वे सूर की सी सूक्ष्म व्यंजना नहीं कर सके हैं किन्तु सरसता की दृष्टि से उनका रूपांकन सौन्दर्य की सृष्टि करने में सफल रहा है, इसमें संदेह नहीं। वात्सल्य के संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों की सरस अभिव्यक्ति तुलसी ने अपने काव्य में व्यंजित की है। अयोध्या नरेश दशरथ की गोद में शिशु राम को देखकर नारियों का मानस अनुरागातिशयता से उल्लसित हो उठता है। एक सखी आनन्दित हो कह उठती है-

तुलसी मन रंजन रंजित अंजन नयन सुखंजन जातक से।
सजनी ससि में समसील उभै मनो नील सरोरुह से विकसे।।''[२६]

क्रीड़ा में तन्मय राम की शोभा कैसी अनुपम प्रतीत होती है। देखिये-

छोटी-छोटी गोड़ियाँ, अँगुरियाँ छबीलीं छोटी,
नख-जोति मोती मानो कमल दलनि पर।
ललित आँगन खेलैं, ठुमुक -ठुमुक चलैं,
झुंझनु-झुंझनु पाँय पैंजनी मृदु मुखर।।
किंकिनी कलित कटि हाटक जटित मनि,

मंजु कर-कंजनि पहुँचियाँ रुचिरतर।
पियरी झीनी झंगुली साँवरे सरीर खुली
बालक दामिनि ओढ़ी मानो बारे बारिधर।।[२७]

राम की क्रीड़ायें माताओं के हृदय को आनन्दित करती हैं किंतु जब बालक हठवश या अन्य किसी कारण से उदास दिखाई देता है तो मातायें चिंतित हो उठती हैं। उनकी शोकातुर दशा का चित्र खींचते हुये तुलसी कहते हैं-

आजु अनरसे हैं भोर के पय पियत न नीके।
रहत न बैठे, ठाढ़े, पालने झुलावत हू रोवत राम मेरो सो सोच सबही को।।
देव, पितर, ग्रह पूजिए तुला तौलिए घी के।
तदपि कबहुँ कबहुँक सखी ऐसेहि अरत जब पात दृष्टि दुष्ट ती के।।[२८]

मातायें चिन्तित हो झाड़-फूँक, टोना-टोटका इत्यादि में लग जाती हैं। तुलसी ने मातृ-हृदय की बड़ी ही सुन्दर अनुभूति को इन दशाओं के माध्यम से व्यंजित किया है। पुत्र का माँ के प्रति प्रेम पिता की अपेक्षा अधिक होता है। यह बाल मनोविज्ञान का स्वाभाविक सिद्धान्त है। तुलसी ने बाल मनोविज्ञान सम्मत ही बाल-वर्णन प्रस्तुत किया है। राम के माँ के प्रति अनुरागाधिक्य को प्रकट करते हुये तुलसी अभिव्यक्ति देते हैं-

भोजन करत बोल जब राजा। नहिं आवत तजि बाल समाजा।।
कौसल्या जब बोलन जाई। ठुमुक-ठुमुक प्रभु चलहिं पराई।।
धूसर धूरि भरें तनु आए। भूपति बिहँस गोद बैठाए।।
भोजन करत चपल चित, इत उत अवसर पाइ।
भाजि चले किलकत मुख, दधि ओदन लपटाइ।।[२९]

बाल वर्णन में तुलसी ने वात्सल्य की भागीरथी प्रवाहित कर अपने काव्य को अनुपम चारुत्व प्रदान किया है। कृष्ण गीतावली में तुलसी ने कृष्ण के बाल चरित्र को अत्यंत मनोहर रूप में व्यंजित किया है। माखन चोरी के लिये ग्वालिनें जब यशोदा को उपालम्भ देती हैं तो यशोदा कृष्ण का पक्ष लेती हुई कहती हैं-

कबहुँ न जात पराये धामहिं।
खेलत ही देखौं निज आँगन सदा सहित बलरामहिं।।
मेरे कहा थाकु गोरस को नव निधि मन्दिर यामहि।
ठाली ग्वालि उरहने के मिस आइ बकहिं बेकामहि।।[३०]

तुलसी ने वियोग वात्सल्य के अत्यंत भावुक चित्र खींचे हैं। पुत्र वियोग में पुत्र से सम्बन्धित वस्तुयें पुत्र की स्मृति को और उद्दीप्त कर देती हैं। दृष्टव्य है राम के वियोग में आकुल कौशल्या की स्थिति का एक भावप्रवण चित्र-

जननी निरखति बान-धनुहियाँ।
बार-बार उर-नैननि लावति प्रभु जू की ललित पनहियाँ।।
कबहुँ प्रथम ज्यौं जाइ जगावति कहि प्रिय बचन सवारे।
उठहु तात! बलि मातु मदन पर अनुज-सखा सब द्वारे।।"[३१]

करुण रस-

प्रिय का अभाव वेदना का भाव जाग्रत करता है। जिसकी अभिव्यक्ति करुण रस के माध्यम से व्यंजित की जाती है। आचार्य चन्द्रबली पाण्डेय के अनुसार- "वास्तव में तुलसीदास ने विषाद को वाणी के रूप में बहाया है, पर कहीं उसको वाचाल नहीं होने दिया है। इसी से उनकी अनुभूति भी सहज, गम्भीर और निर्भ्रान्त होती है।[३२] तुलसी काव्य में दशरथ मरण, राम का वन प्रस्थान, लक्ष्मण शक्ति तथा मेघनाद-वधादि प्रसंग करुण रस की व्याप्ति की दृष्टि से विशेष उल्लेख्य हैं। दशरथ-मरण के पश्चात का एक चित्र अवलोकनीय है-

सोक बिकल सब रोवहिं रानी। रूप सील बलु तेज बखानी।।
करहिं बिलाप अनेक प्रकारा। परहिं भूमि तल बारहिं बारा।।
बिलपहिं बिकल दास अरु दासी। घर-घर रुदन करहिं पुरबासी।।[३३]

इसमें राजा का शील, धर्म, रूप और गुण उद्दीपन का कार्य करते हैं तथा विलाप, भूमि तल पर गिरने आदि से करुण रस की सृष्टि हो रही है।

शान्त रस-

तुलसी का सम्पूर्ण साहित्य भक्ति की पुनीत भावना से अनुप्राणित है। विनयपत्रिका में सर्वत्र शान्ति का सौम्य स्वरूप दृष्टिगत होता है। कवितावली के उत्तरकाण्ड तथा वैराग्य संदीपनी में भी शान्त रस का मधुर प्रवाह देखा जा सकता है। तुलसी जड़-जीव को सावधान करते हुये अभिव्यक्ति मुखरित करते हैं-

विषया परनारि निसा तरुनाई सो पाइ पर्‌यौ अनुरागहिं रे।
जम के पहरू दुख, रोग, वियोग, बिलोकत हू न बिरागहि रे।।
ममता बस तैं सब भूलि गयौ, भयो भोरु, महामय भागहिं रे।
जरठाइ-दिसा, रवि कालु उग्यौ, अजहूँ जड़ जीव न जागहिं रे।।"[३४]

रौद्र रस-

रौद्र, वीर रस का सहयोगी माना जाता है तुलसी ने कतिपय स्थलों पर रौद्र की व्यंजना की है यथा-

गर्भ के अर्भक काटन को, पटुधार कुठार कराल है जाको।
सोई हौं बूझत राजसभा धनु को दाल्यो हौं दलिहौं बल ताको।।

लघु आनन उत्तर देत बड़ी लरिहै मरिहै, करिहै कछु साको।
गोरो गरूर गुमान भरौ कहौ कौसिक छोटो सौ ढौटो है काको।।[३५]

अद्भुत रस-

कवितावली का निम्न पद अदभुत रस की उत्कृष्टतम व्यंजना मुखरित करता है-

लीन्हो उखारि पहार बिसाल चल्यो तेहि काल बिलंब न लायो।
मारुतनन्दन मारुत को मन को खगराज को बेग लजायो।।
तीखी तुरा तुलसी कहतो पै हिये उपमा को समाउ न आयो।
मानो प्रतच्छ परब्बत की नभ लीक लसी कवि यों धुकि धायो।।[३६]

भयानक रस-

लंका दहन से भयभीत राक्षस गण अंगद को आता देखकर अत्यंत भयाक्रान्त हो उठते हैं। तुलसी ने इस स्थिति को भयानक रस के माध्यम से चित्रित किया है-

आयो! आयो! आयो! सोई बानरु बहोरि !" भयो,
सोरु चहुँ ओर लंका आएँ जुबराज के।।
एक काढ़ैं सौंज, एक धौंज करै कहा ह्वै है,
पोच भई महा सोचु सुभट समाज के।।
राज्यो कपिराजु रघुराज की सपथ करि,
मूँदे कान जातुधान मानो गाजें गाज के।
सहिम सुखात बात जात की सुरति करि,
लवा ज्यौं लुकात तुलसी झपेटे बाज के।।[३७]

वीभत्स रस-

वीभत्स रस का विशुद्ध चित्रण युद्ध भूमि के प्रसंग में रक्त, मांस मज्जा इत्यादि के वर्णनों में उपलब्ध होता है। प्रस्तुत है एक चित्र-

ओझरी की झोरी काँधे आँतनु की सेल्ही बाँधे,
मूँड़ के कमण्डलु खपर किये कोरि कै।
जोगिनी झुटुंग झुंड-झुंड बनी तापसीं सी,
तीर-तीर बैठीं सो समर-सरि खोरि कै।।
श्रोनित सों सानि-सानि गूदा खात सतुआ से
प्रेम एक पिबत बहोरि घोरि-घोरि कै।
तुलसी बैताल भूत साथ लिये भूतनाथ
हेरि-हेरि हँसत हैं हाथ जोरि-जोरि कै।।[३८]

हास्य रस-

तुलसी ने अपने काव्य में शिष्ट हास्य की व्यंजना प्रस्तुत की है।

विन्ध्य के वासी उदासी तपोब्रत धारी महा बिनु नारि दुखारे,
गौतम तीय तरी तुलसी सो कथा सुनि भे मुनि वृन्द सुखारे।
ह्वै हैं सिला सब चन्द्रमुखी परसे पद मंजुल कंज तिहारे,
कीन्ही भली रघुनायक जू करुना करि काननु को पगु धारे।।

वीर रस-

तुलसी ने मेघनाद-हनुमान युद्ध, लंका दहन और लंका काण्ड में वर्णित युद्ध प्रसंगों में वीर रस की व्यंजना की है। उनके काव्य में वीर रस के चारों प्रकारों की सुन्दर अभिव्यक्ति दृष्टिगत होती है।

(अ) युद्ध वीर रस-

मिथिला नरेश द्वारा वीर बिहीन मही मैं जानी। कहने पर लक्ष्मण अत्यंत उग्र हो जाते हैं। उस समय राम की ओर संकेत कर वे कहते हैं-

१. **जौं तुम्हार अनुसासन पावौं। कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं।।**
काचे घट जिमि डारौं फोरी। सकौं मेरु मूलक जिमि तोरी।।
कमल नाल जिमि चाप चढ़ावौं। जोजन सतप्रमान लै धावौं।।

२. **तोरउँ छत्रक दंड जिमि, तव प्रताप बल नाथ।**
जो न करउँ प्रभु पद सपथ, पुनि न धरउँ धनु हाथ।।

इसमें जनक की व्यंग्य-विदग्धता, उद्दीपन तथा धनुष आलम्बन के रूप में लक्षित है। लक्ष्मण के आवेश जन्य वचन अनुभाव हैं। आवेग, मति, धृति, गर्व तथा औत्सुक्य आदि संचारी भाव हैं जिनसे स्थायी भाव पुष्ट होकर वीर रस की व्यंजना मुखरित कर रहा है।

(ब) दानवीर रस-

दान में भी उत्साह तथा आनन्दोपलब्धि दृष्टिगत होती है किन्तु उसमें युद्धवीर जैसी तीव्रता का अभाव होता है। दृष्टव्य है कतिपय पंक्तियाँ जिसमें राम की दानवीरता स्पष्ट लक्षित होती है-

(१) नगर कुबेर को सुमेरु की बराबरी बिरंचि बुद्धि कौ विलास लंक निरमान भो।
ईसहिं चढ़ाई सीस बीस बाहु वीर तहाँ रावन सो राजा रज तेज को निधान भो।।
तुलसी त्रिलोक की समृद्धि सौंज सम्पद सकेलि चाकि राखी राशि जांगर जहान भो।
तीसरे उपास बनबास सिंधु पास सो समाज महाराज जू को एक दिन दान भो।।

(ब) **जो संपति सिव रावनहिं, दीन्ह दिए दसमाथ।**
सोइ संपदा विभीषनहिं, सकुचि दीन्ह रघुनाथ।।[४३]

(स) दयावीर रस–

राम घायल जटायु के प्रति करुणातुर हो अपनी गोद में उसका सिर रख लेते हैं जो उनके दयावीर स्वरूप को संकेतित करता है–

राखौ गीध गोद करि लीन्हो।।।
नयन सरोज, सनेह सलिल सुचि मनहुँ अरघ जल दीन्हो।।[४४]

(द) धर्मवीर रस–

निम्न पंक्तियाँ धर्मवीर रस के स्वरूप की व्यंजना करती हैं–

एक तीर तकि हती ताड़का बिद्या विप्र पढ़ाई।
राख्यो जज्ञ जीति रजनी चर, भइ जग बिदित बड़ाई।।[४५]

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि **तुलसी ने अपने काव्य में सभी रसों की सुन्दर व्यंजना समाहित की है किंतु उनके काव्य का अध्ययन करते समय यह न भूलना चाहिये कि उनके काव्य का धरातल सर्वथा भक्ति पर अवस्थित है। रस व्यंजना के साथ विविध भावों की मनोमुग्धकारी व्यंजना उनकी अनुभूति प्रवणता को स्पष्ट करती है।** वन प्रस्थान करते समय राम माता कौशल्या से आज्ञा माँगते हैं। उस समय विदेहजा सीता की मनः स्थिति की व्यंजना करते हुये तुलसी कहते हैं–

चारु चरन नख लेखति धरनी। नूपुर मुखर मधुर कवि बरनी।।[४६]

केवल एक चौपाई में एक चेष्टा के माध्यम से तुलसी ने एक साथ चिन्ता, आशंका तथा लज्जा इत्यादि भावों को अभिव्यंजित कर अनुभूति और अभिव्यक्ति के समन्वित सौन्दर्य को स्पष्ट किया है।

एक अन्य चित्र में ग्राम वनितायें राम के रूप को देख ठगी सी रह जाती हैं। तुलसी ने उनकी मुग्धता को अनूठी निश्छलता से अंकित कर अपनी सात्विक अनुभूति और अभिव्यक्ति को प्रकट किया है।

धरि धीर कहैं, चलु, देखिअ जाई, जहाँ सजनी रजनी रहि हैं।
कहि है जगु पोच न सोचु कछू, फल लोचन आपन तौ लहि हैं।।
सुखु पाइहैं कान सुनें बतियाँ कल, आपुस में कछु पै कहि हैं।
तुलसी अति प्रेम लगी पलकैं, पुलकीं लखि राम हिये महिं हैं।।[४७]

इस प्रकार न जाने कितने ऐसे भावों और भावुक स्थितियों की सूक्ष्मातिसूक्ष्म और मर्मप्रवण व्यंजना तुलसी ने अपने काव्य में अभिव्यक्त की है। यह कहने में कोई संकोच नहीं उत्पन्न होता कि तुलसी ने भाव जगत की प्रत्येक स्थिति का अंकन अत्यन्त सूक्ष्म रूप से और अनूठे बोध के साथ प्रस्तुत किया है जो उनके काव्य को अत्यन्त सरस और हृदयग्राही बना देता हे।

अभिव्यक्ति पक्ष का आकलन उपयुक्त पद-चयन, जीवन्त वाक्य संघटन तथा प्रकृत शैली के आधार पर करना अधिक तर्क संगत होता है।

उपयुक्त पद-चयन-

काव्य सर्जना का सर्वप्रमुख हेतु भाव-बोध होता है। भाव बोध के लिये पदों का उपयुक्त चयन अनिवार्य होता है। तुलसी काव्य में उपयुक्त पद-चयन उनके कला शिल्प की उत्कृष्टता को स्पष्ट करता है यथा एक साधारण सी क्रिया नवहिं का प्रयोग दृष्टव्य है-

सबके हृदय मदन अभिलाषा। लता निहारि नवहिं तरु साखा।।[४८]

यहाँ कवि झुकने के कार्य व्यापार की अभिव्यक्ति अनेक शब्दों द्वारा व्यंजित कर सकता था पर तुलसी ने केवल नवहिं का प्रयोग तर्क संगत समझा।

'नवहिं' शब्द मदन के प्रभाव को पूर्णतः आभासित कर रहा है। मदन के मादक वातावरण में कामाग्नि से आतुर विटप अपनी-अपनी शाखा रूपी भुजाओं को फैलाकर अत्यन्त कोमल भाव से लताओं को आलिंगनबद्ध करने के लिये उनकी ओर झुक रहे हैं। इस भाव को नवहिं क्रियापद अत्यन्त स्वाभाविक रूप से व्यक्त कर रहा है। 'निहारि' के योग से नवहिं और अधिक सार्थक हो गया है। जहाँ निहारि शब्द कनखियों से लताओं को देखने को व्यंजित करता है। वहाँ नवहिं उसी कोमल भाव से आलिंगनबद्ध होने की आतुरता को अभिव्यक्त करता है। निहारि और नवहिं क्रिया पद की व्यंज़ना से विटपों का सारा अनुराग-व्यापार ही नहीं प्रत्युत उनके मानस का कामजनित, आवेश, आवेग, आतुरता और मसृणता स्पष्ट होती है। इस प्रकार यह निश्चित है कि 'नवहिं' का स्थान भाषा का कोई अन्य शब्द नहीं ले सकता था।

जीवन के व्यापारों के सजीव अंकन के लिये शब्दों की समस्या सदैव रहती है। कवि इसके समाधान हेतु-नवीन शब्दों का निर्माण करता है। **तुलसी ने संज्ञा पदों से क्रियापदों का निर्माण कर शिल्प के अनूठे पक्ष का परिचय दिया है। तुलसी द्वारा विनिर्मित क्रियापद अवराधें, तोषेउ, परितोषी, अनुरागे, नेवते, मातहिं, सिरजा, आदरिअ, अनुसारी, अकुलानी, बिबाहहु, अनुसरहु, निरबाहा, अनुभयउ, बिस्तारहिं, ठाटहु, बेगहु, सनमाने, अपहरहीं संतोषे, अनुभयउ, उपदेसिउ, व्यापेउ आदि उनके निर्माण कौशल को स्पष्ट करते हैं।**

प्रत्येक शब्द क़ी व्यंजना अलग होती हैं। समानार्थी शब्दों का भावानुरूप अलग-अलग प्रयोग कवि की सूक्ष्म निरीक्षण वृत्ति को स्पष्ट करता है। तुलसी इस क्षेत्र में अन्य कवियों से बहुत आगे हैं। सामान्य शब्दों के अन्तर को पहचान कर उनका उपयुक्त प्रयोग उनकी प्रतिभा और ललिताभिव्यक्ति प्रियता का प्रत्यक्ष प्रमाण देती है। यथा मानस में **'देखना'** क्रिया व्यापार को स्पष्ट करने के लिये तुलसी ने चौदह समानार्थी शब्दों का प्रयोग किया है।

१. देखेउ- सतीं जाइ देखेउ तब जागा। कतहुँ न दीख संभु कर भागा।।

२. ताकि- सुमन चाप निज सर संधाने। अति रिस ताकि श्रवन लगि ताने।।

३. निरखहिं- जुबतीं भवन झरोखन्ह लागी। निरखहिं राम रूप अनुरागी।।

४. लखी- परबस सखिन्ह लखी जब सीता। भयउ गहरु सब कहहिं सभीता।।

५. अवलोके- अवलोके रघुपति बहुतेरे। सीता सहित न बेष घनेरे।।
६. चितए- अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा।।
७. तरेरे- सुनि लछिमन बिहँसे बहुरि, नैन तरेरे राम।।
८. हेरि- रथु हाँकेउ हय राम तन, हेरि हेरि हिहिनाहिं।।
९. सूझ- गाधिसूनु कह हृदयँ हँसि मुनिहि हरिअरइ सूझ।।
१०. जोहे- हरि हित सहित रामु जब जोहे। रमा समेत रमापति मोहे।।
११. चाहा- सीय चकित चित रामहि चाहा। भए मोहबस सब नर नाहा।।
१२. बिलोकति- चकित बिलोकति सकल दिसि, जनु सिसु मृगी सभीत।।
१३. पेखिअ- मज्जन फल पेखिअ ततकाला। काक होंहि पिक बकउ मराला।।
१४. निहारी- अस कहि दोउ भागे भय भारी। बदन दीख मुनि बारि निहारी।।

उपर्युक्त चौदह उदाहरणों में किसी भी क्रियापद की जगह दूसरा क्रिया पद नहीं रखा जा सकता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जो कवि देखना जैसी सपाट क्रिया के व्यापार को स्पष्ट करने के लिये इतने अधिक समानार्थियों का प्रयोग कर अपनी शिल्प सम्बन्धी क्षमता का परिचय देता है वह अन्य क्रियाओं के प्रयोग में कितना सफल रहा होगा यह अनुमान सहज में लगाया जा सकता है।

जीवन्त वाक्य संघटन-

वाक्य संघटन को जीवन्त बनाने के लिये तुलसी ने भाषा की व्याकरणिक व्यवस्था पर पूरा ध्यान दिया है। **श्रीधर सिंह** लिखते हैं- **"तुलसी के वाक्यों में इतनी अधिक स्वच्छता आ गई है कि न तो किसी पद के सम्बन्ध को पहचानने में भ्रान्ति का अवकाश रहा और न अन्वय करने में ही। इसीलिए तुलसी के वाक्यों के व्यंग्य चाहे, जितने हों, पर अभिधेय एक ही होते हैं।**[४९]

जब किसी और सा प्रयुक्त पद अपने वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट संकेतित करता है तब व्याकरणिक व्यवस्था की उत्कृष्टता परिलक्षित होती है। यथा-

तबहिं सप्तरिषि सिव पहिं आए। बोले प्रभु अति बचनु सुहाए।।[५०]

इसमें सामान्य रूप से देखने पर 'सुहाए' क्रियापद जैसा प्रतीत होता है किन्तु अन्वयोपरान्त इसका वास्तविक स्वरूप विशेषण के रूप में स्पष्ट होता है। 'सुहाए' 'बचन' के विशेषण रूप में प्रयुक्त हुआ है।

कहीं-कहीं व्याकरणिक प्रयोगों के अनुसार जहाँ अन्वय स्पष्ट नहीं होता वहाँ कथ्य का सन्दर्भ उसे स्पष्ट करने में सहायक होता है यथा-

मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा।।

इसमें कथ्य का सन्दर्भ अन्वय को स्पष्ट करता है कि जो मेरा दास होकर भी किसी अन्य मनुष्य की आशा करता है, उसका मेरे प्रति विश्वास क्षीण है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि तुलसी काव्य में वाक्य संघटन का जीवन्त स्वरूप स्पष्ट परिलक्षित होता है।

प्रकृतशैली-

प्रत्येक कवि की अभिव्यंजना का प्रकार अलग होता है। शैली का वैविध्य कवि की आभिव्यक्तिक क्षमता का प्रकाशन करता है। स्वाभाविक अभिव्यक्ति सर्वाधिक प्रभावी होती है। तुलसी ने शैली का प्रकृत प्रयोग कर कथ्य को जीवन्त बनाया है। यथा एक उदाहरण दृष्टव्य है-

नेकु सुमुखि चित लाइ चितौ री।
राजकुँवर मूरति रचिबे को रचि सु बिरंचि स्रम कियौ है कितौ री।।[५१]

उपर्युक्त पद में राम के रूप सौन्दर्य से प्रभावित स्त्रियाँ उनके सौन्दर्य का बखान करती हैं। ऐसे प्रसंगों में विस्मय और अतिशयता की सृष्टि स्वाभाविक है। तुलसी ने यहाँ **'री'** के माध्यम से विस्मय तथा **बिरंचि स्रम.......कितौ** के माध्यम से अतिशयता की उद्‌भावना व्यंजित की है। तुलसी ने स्पष्टतः नारी स्वभावानुकूल अभिव्यक्ति व्यंजित कर अपनी शैली के स्वभावोचित प्रयोग को प्रदर्शित किया है। **'नेकु सुमुखि चित लाइ चितौ री'** में भावाभिव्यक्ति का ढंग पूर्णतः नारी स्वभाव के सर्वथा अनुकूल है।

अभिव्यक्ति में तुलसी ने सर्वदा भावानुरूप शब्द-चयन अपनाया है इसीलिये उनके काव्य में युद्ध और परुष भावों के वर्णन के प्रसंगों के अतिरिक्त ट वर्ग के वर्णों का निषेध दृष्टिगत होता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि तुलसी ने शैली को प्रकृत बनाने का हर सम्भव प्रयास किया है। भाव और कथ्य के अनुरूप ही तुलसी ने विशिष्ट पुराण शैली में मानस की रचना की तो विनयपत्रिका में आत्मनिवेदन और दीनता को व्यंजित करने के लिये पदशैली को अपनाया। कवितावली में भाटचारणों की कवित्तशैली को प्रमुखता दी तो नीति, ज्ञान आदि गूढ़ विषयों के प्रतिपादन हेतु दोहा शैली को अपनाया। तुलसी ने अनुभूति और अभिव्यक्ति में अनूठा समन्वय कर विविध भावों को अत्यन्त मनोहारी ढंग से रूपायित किया है। उनकी इस विशिष्ट समन्वय क्षमता के कारण ही उन्हें श्रेष्ठतम समन्वयवादी कवि माना जाता है।

(ख) विम्ब एवं अलंकार योजना

विम्ब योजना-

आचार्य शुक्ल के अनुसार **"बिम्ब ग्रहण वहीं होता है जहाँ कवि अपने सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा वस्तुओं के अंग-प्रत्यंग वर्ण, आकृति तथा उनके आस-पास की परिस्थिति का परस्पर संश्लिष्ट विवरण देता है।"**[५२]

बिम्ब-विधान को और स्पष्ट करते हुये **असीम मधुपुरी** का अभिमत है-

बिम्ब के माध्यम से भाव अपने निश्चित स्वरूप को ग्रहण करते हैं क्योंकि विम्ब को कल्पना कौशल से निर्मित चित्र माना जाता है। कविता के क्षेत्र में विम्ब, चित्र अथवा प्रस्तुत विधान का

स्वरूप अपना लेता है। कवि का शिल्पनैपुण्य और कौशल काव्य में उपमा, रूपक, मानवीकरण आदि का भी विम्ब का रूप प्रदान कर भाव के वैशिष्ट्य का प्रत्यक्षीकरण करता है। विम्बों में ऐन्द्रियता की अनिवार्यता को नकारा नहीं जा सकता है। मानस विम्बों में अर्थात जहाँ मूर्त के लिये अमूर्त विधान की योजना नियोजित की जाती है, ऐन्द्रियता का अभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। अतः प्रकारान्तर से यह कहा जा सकता है कि जिन विम्बों में ऐन्द्रियता समाहित रहती है, वे सशक्त विम्ब होते हैं। ये विम्ब अधिकांशतः गन्ध स्पर्श, रस, दृष्टि, गति तथा ध्वनि पर निर्भर रहते हैं।

सौन्दर्य सृष्टि में विम्ब का योगदान नकारा नहीं जा सकता। तुलसी ने अपने अनूठे विम्ब विधान के माध्यम से अपने काव्य में सौन्दर्य की अनुपम योजना प्रस्तुत की है। तुलसी के काव्य में विम्बों का वैविध्य स्पष्टतः देखा जा सकता है।

तुलसी ने अपने काव्य में विभिन्न प्रकार के विम्बों के माध्यम से अनुभूति और अभिव्यक्ति पक्ष में जीवन्तता का समावेश कर सर्वत्र चारुता की आभा प्रसारित की है।

तुलसी ने नगर और उत्सवों से सम्बन्धित विम्बों की सर्जना भावप्रेषण में सहयोगी सिद्ध होने की दृष्टि से की है। दीपोत्सव पर अयोध्या का निम्न विम्ब इसी आशय की पुष्टि करता है-

साँझ समय रघुबीर पुरी की सोभा आजु बनी।
ललित दीपमालिका बिलोकहिं हित करि अवध घनी।।
फटित भीत सिखरन पर राजति कंचन, दीप अनी।
जनु अहिनाथ मिलन आयो मनि सोभित सहस फनी।।
प्रति मन्दिर कलसनि पर भ्राजहिं मनिगन दुति अपनी।
मानहुँ प्रगटि बिपुर लोहित पुर पठइ दिये अवनी।।''५४

शिव-पार्वती परिणयोत्सव पर हिमाचल नगरी कामदेव की राजधानी के सदृश दिखाई देती है। नगर की साज-सज्जा सौन्दर्य सृष्टि में सहयोग प्रदान करती है। यथा-

तोरन कलस चँवर धुज बिबिध बनाइन्हिं।
हाट पटोरन्हि छाय सफल तरु लाइन्हिं।।
गौरी नैहर केहि बिधि कहहुँ बखानिय।
जनु ऋतुराज मनोज राज रजधानिय।।[५५]

प्रकृति सौन्दर्य से सम्बन्धित बिम्बों का संयोजन तुलसी काव्य में बहुलता से उपलब्ध होता है। यथातथ्य रूप-चित्रण के अंतर्गत चित्रकूट वर्णन, सीतावट वर्णन, गंगा यमुना वर्णन सम्बन्धी बिम्ब इसका प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। प्रस्तुत हैं चित्रकूट तथा यमुना के दो विम्ब-

१. सब सोच बिमोचन चित्रकूट। कलिहरन करन कल्यान बूट।।
सुचि अवनि सुहावनि आलबाल। कानन बिचित्र बारी बिसाल।।

मंदाकिनि मालिनि सदा सींच। बर-बारि बिषम नर नारि नीच।।
साखा सुसृंग भूरुह सुपात। निरझर मधुबर मृदु मलय बात।।
सुक पिक मधुकर मुनिवर बिहारु। साधन प्रसून फल चारि चारु।।
भव घोर घाम हर सुखद छाँह। थप्यो फिर प्रभाव जानकी नाह।।[५६]

२. यमुना ज्यों-ज्यों लागी बाढ़न।
त्यों-त्यों सुकृत सुभट कलि भूपहिं निदरि लगे बहि काढ़न।।
ज्यों-ज्यों जल मलीन त्यों-त्यों जमगन मुख मलीन लहै आढ़न।
तुलसिदास जगदघ जवास ज्यों अनघ मेघ लागे डाढ़न।।[५७]

तुलसी साहित्य में प्रकृति का अप्रस्तुत रूप में प्रयोग अधिक मिलता है। प्रकृति को अप्रस्तुत रूप में प्रयोग कर तुलसी ने सुन्दर विम्बों का निर्माण कर उन्हें भाव प्रेरक में सहयोगी बनाया है। तुलसी का सर्वप्रिय उपमान कमल है जिसके माध्यम से उन्होंने विविध भावाभिव्यंजनायें मुखरित की हैं।

कर पद मुख चख कमल लसत लखि लोचन भँवर भुलावौं।[५८]

उपर्युक्त पंक्ति में राम के हाथ-पैर कमलवत कोमल, मसृण और सुन्दर हैं। कमल के अरुणिम वर्ण को देखते हुये तुलसी ने इसका प्रयोग किया है। राम के हाथों की उंगलियाँ ही विकसित कमल की पंखुड़ियाँ हैं। कमल के अत्यधिक सौन्दर्य के कारण ही तुलसी ने इसका प्रयोग पूर्ण मनोयोग से किया है। गतिशील विम्बों की सृष्टि में तुलसी अत्यंत सिद्धहस्त हैं। बालक राम की चंचलता को प्रत्यक्ष करते हुये तुलसी अभिव्यक्ति देते हैं-

कबहूँ ससि मागत आरि करैं कबहू प्रतिबिम्ब निहारि डरैं।
कबहूँ करताल बजाइ कै नाचत मातु सबै मन मोद भरैं।।
कबहूँ रिसि आइ कहैं हठि कै पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मन मन्दिर में बिहरैं।।[५९]

ऐसा ही एक अन्य चित्र देखें जिसमें तुलसी ने एक साथ ठुमुक कर चलने, नाचने, लड़खड़ाने, दौड़ने, मिलने, रूठने, प्रसन्न होने, किलकने, देखने तथा बोलने आदि सभी क्रिया व्यापारों की मनोहारी व्यंजना प्रस्तुत की है-

ठुमुक-ठुमुक पग धरनि नटनि लरखरनि सुहाई।
भजनि, मिलनि, रूठनि, तूठनि किलकनि
अवलोकनि बोलनि बरनि न जाई।।[६०]

सीता स्वयंवर में राजाओं की क्रियाओं का सजीव बिम्ब खींचते हुये तुलसी अभिव्यक्ति देते हैं-

एक चलहिं एक बीच एक पुर बैठहिं।
एक धरहिं धनु धाइ नाइ सिर बैठहिं।।

रंगभूमि पुर कौतुक एक निहारहिं।
ललकि लोभाहिं नयन मन फेरि न पारहिं।।[६१]

गतिशीलता की दृष्टि से सर्वाधिक सशक्त बिम्ब तुलसी ने लंका दहन प्रसंग में नियोजित किये हैं। हनुमान की हुंकार और पूँछ में धधकती अग्नि से लंका के सारे योद्धा भयभीत हो भागने लगते हैं। चारों तरफ हाहाकार मच जाता है। रावण के आदेश पर राक्षस सेना हनुमान को पकड़ने दौड़ती है। वह ऐसी प्रतीत होती है मानो सावन के मेघ पूर्ण तीव्रता से जलवृष्टि कर रहे हों। मंत्रीगण रावण को पीछे की तरफ ठेलकर ले जाते हैं। देखिये चित्र-

गाज्यौ कपि गाज ज्यों बिराज्यो ज्याल जाल जुत
भाजे बीर धीर अकुलाइ उठ्यो रावनो।
धावौ धावौ धरौ सुनि धाए जातुधान धारि
बारिधारा उलदै जलदु जौन सावनो।।
लपट झपट झहराने हहराने बात,
भहराने भट पर्यो प्रबल परावनो।
ढकनि ढकेलि पेलि सचिव चलै लै ठेलि,
नाथ न चलैगो बल अनलु भयावनो।।[६२]

भीषण आग देखकर लंकावासियों की भगदड़ का चित्र तुलसी ने अत्यंत मनोयोग से अंकित किया है-

जहाँ तहाँ बुबुक बिलोकि बुबुकारी देत
जरत निकेतु धावौ धावौ लागी आगिरे।
कहाँ तातु मातु भ्रात भगिनि भामिनी भाभी
ढोटा छोटे छोहरा अभागे भोरे भागि रे।।
हाथी छोरौ घोरा छोरौ महिष वृषभ छोरौ
छेरी छोरौ सोवै सो जगावौ जागि जाग रे।।[६३]

हनुमान की वीरता का सजीव चित्र खींचते हुये तुलसी कहते हैं-

दबकि दबोरे एक बारिध में बोरे एक
मगन मही में एक गगन उड़ात हैं।
पकरि पछारे कर चरन उखारे एक
चीरि फारि डारे एक मीजि मारे लात हैं।।[६४]

पुरुष विम्बों में तुलसी ने राम, लक्ष्मण, कृष्ण, विष्णु, शिव तथा हनुमान के ही विम्बांकन में अपने वैशिष्ट्य का परिचय दिया है। शिशु राम का विम्ब नीलकमल और कामदेव के अप्रस्तुतों के माध्यम से अनुपम सौन्दर्याभा प्रेषित करता है-

तन की दुति स्याम सरोरुह लोचन कंज की मंजुलताई हरैं।
अति सुन्दर सोहत धूरि भरे छवि भूरि अनंग की दूरि धरैं।।
दमकैं दँतियाँ दुति दामिनी ज्यों किलकैं कल बाल बिनोद करैं।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मन मन्दिर में बिहरैं।।[६५]

वनवासी वेश में राम-लक्ष्मण के रूप सौन्दर्य का सहज बिम्ब सबके मन को आकर्षित करने में पूर्ण सक्षम प्रतीत होता है। यथा-

जलजनयन जलजानन जटा है सिर
जोबन उमंग अंग उदित उदार हैं।
साँवरे गोरे के बीच भामिनी सुदामिनी सी
मुनि पट धारैं उर फूलनि के हार हैं।
करनि सरासन सिलीमुख निषंग कटि
अति ही अनूप काहू भूप के कुमार हैं।
तुलसी बिलोकि कै तिलोक के तिलक तीन
रहे नर नारि ज्यों चितेरे चित्रसार हैं।[६६]

मानवेतर विम्बों में हनुमान और सूर्य के विम्ब अत्यंत प्रभावी बन पड़े हैं-

(अ) हिम तम करि केहरि करमाली। दहन दोष दुख दुरित रुजाली।।
कोक कोकनद लोक प्रकासी। तेज प्रताप रूप रस रासी।।
सारथि पंगु दिव्य रथगामी। हरि संकर बिधि मूरति स्वामी।।[६७]

(ब) वात संजात विख्यात विक्रम बृहद्बाहु बल बिपुर बालधि बिसाला।
जातरूपा चलाकार विग्रह लसल्लोम विद्युल्लता ज्वालमाला।।
बालकि वर वदन पिंगल नयन कपिश कर्कश जटाजूट धारी।।
बिकट भ्रुकुटी वज्र दशन नख वैरि मदमत्त कुंजर-पुंज कुंजरारी।।[६८]

नारी रूप विम्बान्तर्गत तुलसी ने सीता सम्बन्धी बिम्बों को प्रमुखता दी है। सीता के सौन्दर्य का एक विम्ब अवलोकनीय है-

बड़े नयन कटि भ्रकुटी भाल बिसाल।
तुलसी मोहत मनहिं मनोहर बाल।।
चंपक हरवा अंग मिलि अधिक सोहाइ।
जानि परै सिय हियरे जब कुँभिलाइ।।[६९]

श्रांत क्लांत सीता का बिम्ब और अधिक मनोहारी बन पड़ा है।

पुरतें निकसी रघुबीर बधू धरि धीर दए मग में डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनीं जल की पुटि सूखि गए मधुराधर वै।।[७०]

तुलसी ने नाटकीय बिम्बों की नियोजना भी की है। विवाहोपरांत सीता से हास-परिहास करती सखी का विम्ब स्पष्टतः नाटकीयता का द्योतन करता है।

का घूँघट मुख मूँदहु नवला नारि।
चाँद सरग पर सोहत यह अनुहारि।।
गरब करहु रघुनंदन जनि मन माँह।
देखहु आपनि मूरित सिय कै छाँह।।
उठी सखी हँसि मिस करि कहि मृदु बैन।
सिय रघुबर के भए उनींदे नैन।।[७१]

विम्बों के माध्यम से तुलसी ने भावों को अधिक प्राणवन्त बनाया है। श्रंगार के अंकन में तुलसी ने आलंबन, आश्रय, लोकरीतियों तथा वातावरण के अंकन के विम्ब प्रस्तुत कर सौन्दर्य की अनुपम उद्भावना अभिव्यक्त की है। सीता के अनुपम और अप्रतिम सौन्दर्य के लिये तुलसी जब कोई सादृश्य नहीं ढूँढ पाते तो कह उठते हैं-

जुवति जुत्थ महँ सीय सुभाइ विराजइ।
उपमा कहत लजाइ भारती भाजइ।।[७२]

फिर भी तुलसी सीता की शोभा का वर्णन करते हुये कहते हैं-

मंगल भूषन बसन मंजु तन सोहहिं।
देखि मूढ़ महिपाल मोहबस मोहहिं।।
रूप रासि जेहि ओर सुभाय निहारइ।
नील कमल सर श्रेनि भयन जनु डारइ।।[७३]

इस प्रकार अत्यंत मर्यादित और सात्विक विम्बों की उद्भावना तुलसी का अभीष्ट रहा है। श्रंगार सम्बन्धी विविध प्रसंगों में तुलसी ने वातावरण के अनुकूल ही मनोहर विम्बों का संयोजन किया है। बाँस के मण्डप, मोतियों की झालर, गंगाजल से परिपूर्ण स्वर्ण मंडित मंगल कलश स्वतः वातावरण के सौन्दर्य को विकीर्ण करते हैं। राम और सीता का एक युगल विम्ब दृष्टव्य है जो तुलसी के विम्ब सौन्दर्य को प्रमाणित करता है-

राजति राम जानकी जोरी।
स्याम सरोज जलद सुन्दर तर दुलहिनि तड़ित बरनु तनु गोरी।।
ब्याह समय सोहत बितान तर उपमा कहुँ न लहति मति मोरी।।
मनहुँ मदन मंजुल मंडप मँह छवि सिंगार सोभा इक ठौरी।।
मंगलमय दोउ अंग मनोहर ग्रथित चूनरी पीत पिछौरी।
कनक कलस कहँ देत भाँवरी निरखि रूप सारद भइ भोरी।।[७४]

वैवाहिक वातावरण को अधिक जीवन्त बनाने की दृष्टि से तुलसी ने गौरी-गणेश पूजन, हल्दी

लेपन, कलश स्थापन, तेल चढ़ाना, अग्नि स्थापन कन्यादान संकल्प, सिंदूर वन्दन, लाजाहोम, भाँवर, अश्मारोहरण आदि लोक रीतियों और व्यापारों आदि के मनोहारी विम्बों को काव्य में चारुता और आभिव्यक्तिक लालित्य की दृष्टि से नियोजित किया है। इसके अतिरिक्त वितान, तोरण, स्वर्ण मंडित मंगल-कलश, चँवर, ध्वजा सुन्दर वस्त्राभूषण और वृक्षादि तथा जुआ खिलाना, जेवनार, पहिरावनी आदि लौकिक प्रथाओं के सुन्दर विम्बों द्वारा तुलसी ने अद्‌भुत सौन्दर्य सर्जना की है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि तुलसी के बिम्ब उनकी सौन्दर्य चेतना को आभासित करते हैं। विंबों का वैविध्य उनके प्रसंगानुरूप भावों का स्पष्ट बोध कराने में पूर्ण सक्षम है। यह कहना सर्वथा समीचीन है कि तुलसी के विम्ब उनके कथ्य और विषय को सौन्दर्य से अभिमंडित कर प्रस्तुत करते हैं। नर, नारी, पशु, पक्षी, प्रकृति और वस्तुजगत के विम्ब उनके विम्ब कौशल को स्पष्ट करते हैं। विम्ब-योजना के माध्यम से तुलसी ने अपने प्रतिपाद्य को अधिक हृदयसंवेद्य बनाने में सफलता प्राप्त की है। सर्वत्र भक्ति की भागीरथी में अवगाहन कराने में विम्बों का योगदान नकारा नहीं जा सकता है। तुलसी के विम्ब उनकी सौन्दर्यानुभूति और सौन्दर्याभिव्यक्ति का जीवन्त प्रमाण प्रस्तुत करने में पूर्ण सक्षम हैं।

अलंकार योजना-

काव्यकामिनी के शोभावर्द्धक उपकरणों को अलंकार की संज्ञा दी जाती है। तुलसी साहित्य में अलंकारों के सारे भेदपभेद पूर्ण तीव्रता से व्यंजित हुये हैं। रूपक और उत्प्रेक्षा का सर्वाधिक सुसंगत प्रयोग तुलसी काव्य में दृष्टिगत होता है। तुलसी काव्य में अलंकारों का सांगोपांग विवेचन अन्यतम शोध का मार्ग प्रशस्त करता है। संक्षेप में तुलसी की अलंकार योजना का आकलन दो प्रमुख प्रकारों के आलोक में निम्नवत किया जा सकता है- शब्दालंकार तथा अर्थालंकार।

शब्दालंकार-

शब्दालंकार में चमत्कार शब्दाश्रित होता है। इसके अंतर्गत अनुप्रास, यमक, पुनरुक्ति, वीप्सा, वक्रोक्ति तथा श्लेष अलंकार प्रमुख माने जाते हैं। तुलसी काव्य में अनायास रूप में इनका अत्यंत मनोहारी प्रयोग परिलक्षित होता है। अनायास रूप में प्रयुक्त होने के कारण भाव व्यंजना और अधिक सशक्त हो उठी है जो अन्ततः सौन्दर्याभिव्यक्ति में सहायक हुई है-

अनुप्रास-(१) "ये अब लही चतुरी चेरी पै चोखी चाल चलाकी।"[७५]

(२) "रघुनंद आनंदकंद कोशलचंद दशरथ नंदनं।"[७६]

यमक- (१) "भए विदेह विदेह नेहवस देह दसा बिसरायो"[७७]

(२) "जोग जोग ग्वालिनी बियोगनि जान सिरोमनि जानी।"[७८]

पुनरुक्ति-(१)"राम जपु ! राम जपु ! राम जपु ! बावरे।"[७९]

(२) "बार-बार बर बारिज लोचन भरि-भरि बरत बारि उर ढारति।"[८०]

वीप्सा- (१) ''आयो आयो आयो सोई वानर बहोरि! भयो।
सोर चहुँ ओर लंक आएँ जुबराज के।।''[८१]

(२) ''सिव सिव होइ प्रसन्न करु दाया।''[८२]

श्लेष- (१) राम लषन जब दृष्टि परे री।
अवलोकन सब लोग जनकपुर मानो बिधि बिबिध बिदेह करे री।।''[८३]

(२) ब्रह्म पियूष मधुर सीतल जो पै मन सो रस पावै।
तौ कत मृगजल रूप विषय कारन निसि वासर धावै।।[८४]

तुलसी का अभीष्ट शब्दों से चमत्कृत करना मात्र नहीं था इसीलिए उनकी वृत्ति शब्दालंकारों के निरूपण में अधिक नहीं रमी है। शब्दालंकार उनके काव्य में अत्यन्त सहज और स्वाभाविक रूप में स्वतः आ गये हैं जो उनके काव्य के सौन्दर्य वर्धन में योग देते हैं।

अर्थालंकार-

जहाँ काव्य में अर्थगत चमत्कार की प्रधानता होती है वहाँ अर्थालंकार होता है। तुलसी ने अर्थगत व्यंजना को भावानुरूप प्रमुखता दी है इसी कारण उनके काव्य में अर्थालंकारों का आधिक्य दृष्टिगत होता है। इसके अंतर्गत प्रमुख अलंकार **उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अनन्वय, उल्लेख, प्रतीप, सन्देह, तुल्योगिता, निदर्शना, दीपक, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त, भ्रान्तिमान, काव्यलिंग, स्मरण, अतिशयोक्ति, विरोधाभास, असंगति** तथा **विशेषोक्ति** आदि परिगणित किये जाते हैं। इनकी क्रमशः व्याप्ति तुलसी के शिल्प कौशल का परिचय कराने में सहायक होगी।

उपमा- (१) ''किंजल्क वसन, किसोर मूरति भूरि गुन करुनाकर
कच कुटिल सुंदर तिलक भ्रू राका मयंक समाननं।।''[८५]

(२) ''नगर रचना सिखन को बिधि तकत बहु बिधि बंद।
निपट लागत अगम ज्यों, जलचरहिं गमन सुदंद।।''[८६]

रूपक- (१) अब लौं मैं तोसों न कहे री।

\- -

बिरह बिषम बिष बेलि नदी उरते सुख संकल्प सुभाय दहेरी।
सोइ सींचबे लागि मनसिज के रहँट नयन नित रहत नहे री।।
सर सरीर सूखे प्रान वारिचर जीवन आस तजि चलन चहे री।
तें प्रभु सुजस सुधा सीतल करि राखै तदपि न तृप्ति लहेरी।।
रिपु रिस घोर नदी बिबेक बल छीर सहित हुते जात बहे री।
दै मुद्रिका टेक तेहि औसर, सुचि समीर सुत पैरि गहेरी।।[८७]

उत्प्रेक्षा- (१) मंजु अंजन सहित जलकन चुनत लोचन चारु।

स्याम सारस मग मनहुँ ससि स्रवत सुधा सिंगारु।
सुभग उर दधि बुंद सुंदर लखि अपनपौ वारु।
मानहुँ मरकत मृदु सिखर पर लसत बिसद तुषारु।।[८८]

(२) लसत ललित कर कमल माल पहिरावत।
काम फंद जनु चन्दहि बनज फँसावत।।[८९]

अनन्वय- दई पीठि बिनु दीठि मैं, तू बिस्व बिलोचन।
तो सों तुहीं न दूसरो नत सोच बिमोचन।।[९०]

उल्लेख- प्रान हू के प्रान से सुजीवन के जीवन से,
प्रेम हू के प्रेम, रंक कृपिन के धन हैं।
तुलसी के लोचन चकोर के चन्द्रमा से,
आधे मन मोर चित-चातक के घन हैं।।[९१]

प्रतीप- (१) चिकुर कपोर नासिका सुन्दर भाल तिलक मसि बिन्दु बनाये।
राजत नयन मंजु अंजन युत खंजन कंजन मनि मद नाये।।[९२]

(२) गोरे को बदन देखे सोनो न सलौनो लागै
साँवरे बिलोके गर्व घटत घटनि के।[९३]

सन्देह- (१) बालधी बिसाल विकराल ज्वाल जाल मानो
लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है।
कैधों ब्योम बीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु
बरी रस बीर तरवारि सी उघारी है।।[९४]

(२) किधौं सिंगार-सुखमा सुप्रेम मिलि चले जग चित बितलैन।
अद्‌भुत त्रयी किधौं पठई है बिधि मग लोगन्हि सुख दैन।।[९५]

तुल्ययोगिता-(१) तापर सानुकूल गिरिजा हर लखन राम अरु जानकी।
तुलसी कपि की कृपा बिलोकनि, खानि सकल कल्यान की।।[९६]

(२) कनक सलाक कलाससि दीप सिखाउ।
तारा सिय कँह लछिमन मोहि बताउ।।[९७]

निदर्शना- ते नर नरक रूप जीवित जग भव भज्जन पद बिमुख अभागी।
निसि बासर रुचि पाप असुचि मन खलमति मलिन निगम पथत्यागी।।[९८]

दीपक- राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरहु जो चाहसि उजियार।।[९९]

प्रतिवस्तूपमा- (१) तुलसी रघुबर सेवकहि खल डाटत मन माँखि।
बाज राज के बालकहि लवा दिखावत आँखि।।[१००]

(२) सो छवि जाइ न बरनि देखि मन माने।
सुधा पान करि मूक कि स्वाद बखाने।।[१०१]

दृष्टान्त- (१) आगम निगम ग्रन्थ रिषि मुनिसुर सन्त
सबही को एक मत सुनु मति धीर।
तुलसिदास पियास भरे पसु बिनु प्रभु
जदपि रहे निकट सुरसरि तीर।।[१०२]

(२) जाई राजघर, ब्याहि आई राजघर माँह,
राजपूत पाएहुँ न सुखु लहियतु है।
देह सुधागेह, ताहि भृगहू मलीन कियो,
ताहू पर बाहु बिन राहु गहियतु है।।[१०३]

भ्रान्तिमान-(१)अवलोकि अलौकिक रूप मृगीमृग चौंकि चकैं चितवैं चित दै।
न डगैं, न भगैं, जिय जान सिलीमुख पंच धरे रतिनायक है।।[१०४]

(२) देखु विभीषन दच्छिन आसा। घन घमण्ड दामिनी विलासा।।
मधुर-मधुर गरजत घन घोरा। होई वृष्टि जनु उपल कठोरा।।[१०५]

काव्यलिंग-(१)जदपि साधु सबही विधि हीना, तद्यपि समता के न कुलीना।।
यह दिन रैन नाम उच्चरै, वह नित मान अगिनि में जरै।।[१०६]

(२) तुलसी रामहु से अधिक राम भक्त जिय जान।
ऋनिया राजाराम में धनिक भए हनुमान।।[१०७]

स्मरण- जननी निरखति बाल धनुहियाँ।
बार-बार उर नयननि लावति प्रभुजू की ललित पनहियाँ।।[१०८]

अतिशयोक्ति-(१) देव नदी कहँ जो जन जान किये मनसा कुल-कोटि उधारे।
देखि चलें, झगरें सुर-नारि, सुरेस बनाइ विमान सँवारे।।
पूजा की साज बिरंचि रचैं तुलसी जे महातम जानन हारे।
ओंक की नींव परी हरिलोक विलोकत गंग तरंग तिहारे।।[१०९]

(२) राम सीय सिर सेन्दुर देही। सोभा कहि न जात विधि केही।।
अरुन पराग जलज भरि नीके। ससिहि भूष अहि लोभ अमी के।।[११०]

विरोधाभास-(१)मूक होंहि वाचाल पंगु चढ़इ गिरिवर गहन।
जासु कृपा सो दयाल, द्रवहु सकल कलिमल दहन।।[१११]

(२) बन्दी मुनि पद कंजु, रामायन जिन निरमयउ।
सखर सुकोमल मंजु दोष रहित दूषन सहित।।[११२]

असंगति- (१) लाज गाज उन बनि कुचाल कलि

परी बजाइ कहुँ कहुँ गाजी।[113]

(२) हृदय घाउ मेरे, पीर रघुबीरै।

पाइ सजीवन, जागि कहत यों प्रेम पुलकि बिसराइ सरीरै।[114]

विशेषोक्ति-(१) लगेइ रहत मेरे नैनन आगे, राम-लखन अरु सीता।

तदपि न मिटत दाह या उर को, बिधि जो भयो बिपरीता।।[115]

(२) ग्यान परसु दे मधुप पठायो बिरह बेलि कंसेहु करि जाई।

सो थाम्यो बरभ रहयो एकटक देखत इनकी सहज सिंचाई।।[116]

उपर्युक्त अलंकार विवेचन से स्पष्ट है, कि तुलसी ने अलंकारों के सहज और अर्थप्रधान स्वरूप को प्रधानता दी है। तुलसी के अलंकार प्रतिपाद्य विषय को स्पष्ट करने में सहायक हुये हैं। निष्कर्ष रूप में इतना कहना पर्याप्त होगा कि तुलसी काव्य में अलंकार अपने भेदोपभेदों के साथ उपलब्ध होते हैं। तुलसी की अलंकार योजना उनकी अभिव्यंजनात्मक गरिमा को तीव्रता से व्यंजित करने में पूर्ण सक्षम है।

इस प्रकार बिम्ब योजना और अलंकार योजना उनके काव्य के सौन्दर्य की अभिवृद्धि में पूर्ण सहयोग देती है जिससे काव्य का अभिव्यंजनात्मक पक्ष और अधिक निखरा हुआ प्रतीत होता है।

(ग) छन्द विधान

तुलसी साहित्य में छन्दों की विविधता स्पष्टतः दृष्टिगत होती है जो तुलसी के छन्दकौशल को पूर्णता से प्रकाशित करती है। छन्द सौन्दर्य का अभिप्राय भावानुकूल छन्द विधान के साथ उनका सम्यक प्रयोग होता है। तुलसी ने विषय और परिस्थिति के अनुरूप ही छन्दों का चयन कर अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है। छन्दों का वैविध्य और उनका भावानुकूल सम्यक प्रयोग उनके छन्द विधान की शास्त्रीयता को भी व्यंजित करता है। मुख्यतः तुलसी ने दोहा, चौपाई, श्लोक, स्तोत्र, सोरठा, हरिगीतिका, छप्पय, सवैया, कवित्त, इन्द्रवज्रा, बरवै आदि छन्दों का विधान अपने काव्य में किया है।

इष्ट वन्दना हेतु तुलसी ने स्तोत्रों को अपनाया है। तत्कालीन परिवेशानुसार स्तोत्रों में इष्टदेवों के अनेक विशेषण एक साथ सामासिक पदों के रूप में प्रयुक्त किये जाते थे। तुलसी ने युगानुरूप प्रचलित स्तोत्र शैली में ही वन्दना को प्रमुखता दी। इन स्तोत्रों में व्यवहृत संस्कृत भाषा का प्रयोग उनके संस्कृत ज्ञान का परिचय देता है। तुलसी रचित स्तोत्रों की प्रवहमानता उनकी प्रतिभा और सामर्थ्य का बोध कराती है। यथा प्रस्तुत है विनय पत्रिका का एक स्तोत्रांश-

भीषणाकार भैरव भयंकर, भूत प्रेत प्रमथाधिपति विपति- हर्त्ता।

मोहभूषक-मार्जार, संसार-भय-हरण, तारण-तर, करण-कर्ता।।

अतुल-बल, विपुल विस्तार, विग्रह गौर अमल अति धवल धरणी धराभं।

शिरसि संकुलित कलकूठ पिंगल जटपटल, शतकोटि विद्युत्छटाभं।।
जयति दसकंठ-घटकरन-बारिदनाब-कदन-कारन कालनेमि हंता।।
अघट घटना-सुघट, सुघट-विघटन-विकट, भूमि पाताल-जल गगनगंता।।[117]

परुष भावों की अभिव्यक्ति के लिये कवित्त छन्द सर्वाधिक उपयुक्त माना जाता है। कवितावली और हनुमान बाहुक में प्रयुक्त घनाक्षरी, कवित्त, छप्पय, झूलना आदि छन्दों में रसानुरूप शब्द, नियोजन तुलसी के छन्द-सौन्दर्य को प्रतिभासित करता है। इनके माध्यम से तुलसी ने वीर, भयानक तथा रौद्र रसों की सुन्दर व्यंजना प्रस्तुत की है। यथा दृष्टव्य हैं उपर्युक्त छन्दों के उदाहरण-

छप्पय- कतहुँ बिटप-भूधर उपारि परसेन बरष्षत।
कतहुँ बाजिसों बाजि मर्दि, गजराज करष्षत।।
चरन चोट चटकन चकोट अरि उर सिर बज्जत।
बिकट कटकु बिद्दरत बीरु बारिदु जिमि गज्जत।।
लंगूर लपेटत पटकि भट, जयति राम, जय! उच्चरत।
तुलसीस पवननंदनु अटल जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत।।"[118]

कवित्त- प्रबल प्रचंड बरिबंड बाहुदंड बीर,
धाए जातुधान, हनुमान लियो घेरिकै।
महाबल पुंज कुंजरारि ज्यों गरजि, भट
जहाँ-तहाँ पटके लंगूर फेरि-फेरि कै।
मारे लात, तोरे गात भागे जात हा हा खात,
कहैं तुलसीस! राखि राम की सौं टेरिकैं।
ठहर-ठहर, परे, कहरि-कहरि उठैं,
हहरि-हहरि हरु सिद्ध हँसे हेरि कै।।[119]

झूलना- मत्त-भट-मुकुट, दसकंठ-साहस-सइल
सृंग-बिददरनि जनु बज्र टाँकी।
दसन-धरि-धरनि चिक्करत दिग्गज कमठु
सेषु संकुचित, संकित पिनाकी।।
चलत महि-मेरु, उच्छलत सायर सकल,
बिकल बिधि बधिर दिसि बिदिसि झाँकी।
रजनिचर-घरनि घर गर्भ-अर्भक स्रवत,
सुनत हनुमान की हाँक बाँकी।।[120]

घनाक्षरी- भानु सों पढ़न हनुमान गये भानुभन
अनुमानि सिसुकेलि कियो फेरफार सो।

पाछिले पगनि गम गगन मगन-मन,
क्रम को न भ्रम कपि बालक-बिहार सो।।
कौतुक बिलाकि लोकपाल हरि हर बिधि,
लोचननि चकाचौंधी चित्तनि खभार सों
बल कैंधों बीररस धीरज कै साहस कै
तुलसी सरीर धरे सबनि को सारसो।।[१२१]

मधुरिम भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिये सर्वाधिक उपयुक्त छन्द सवैया माना जाता है यद्यपि पुरुष भावों की अभिव्यक्ति के लिये भी सवैया का विधान किया जाता है किन्तु सवैया का सर्वाधिक उपयोग कवि मधुर भावों के प्रकाशन के निमित्त ही करते हैं। कवितावली में सवैया के माध्यम से भावानुरूप सौन्दर्य का उद्घाटन किया गया है। यथा प्रस्तुत है एक चित्र जिसमें राम और लक्ष्मण के रूप सौन्दर्य का चित्रण किया गया है-

मुख पंकज, कंज बिलोचन मंजु, मनोज-सरासन सी बनी भौंहैं
कमनीय कलेवर कोमल स्यामल-गौर किसोर जटा सिर सोहैं।।
तुलसी कटि तून धरें धनु-बान, अचानक दिष्टि परी तिरछौहैं।
केहि भाँति कहौं सजनी! तोहि सों मृदु मूरति द्वै निवसी मनमोहैं।।[१२२]

'पद' में मधुरभावों की व्यंजना के साथ ही संगीतात्मकता की प्रधानता होती है। आत्मनिवेदन तथा दीनता आदि अनुभूतियों को पद के माध्यम से ही अभिव्यक्त किया जाता है। इसलिये तुलसी ने विनयपत्रिका तथा गीतावली में राग-रागिनियों के संकेत के साथ ही 'पद' का प्रयोग किया है। बरवै रामायण बरवै छंद में नियोजित की गई है। यथा दृष्टव्य है एक बरवै

कनक सलाक कला ससि दीपसिखाउ
तारा सिय कँह लछिमन मोहि बताउ।।[१२३]

पार्वती मंगल तथा जानकी मंगल में अरुण और हरिगीतिका छन्द का प्रयोग किया गया है, जिसके कारण कलेवर में अत्यन्त संक्षिप्त होने के बावजूद ये कृतियाँ अत्यन्त उत्कृष्ट हो गई हैं। जानकी मंगल में २४ हरिगीतिका तथा १६२ अरुण और पार्वती मंगल में १४८ अरुण तथा १६ हरिगीतिका छंद प्रयुक्त हुए हैं। यथा दृष्टव्य है अरुण छंद का उदाहरण-

सुंदर गौर सरीर भूति भलि सोहइ।
लोचन भाल बिसाल बदनु मन मोहइ।।[१२४]

अन्य कृतियों में छन्द नियोजन के अवलोकन के पश्चात अब हम मानस में प्रयुक्त छन्द विधान का अध्ययन करेंगे।

सम्पूर्ण मानस में छन्दों का अप्रितम वैविध्य स्पष्ट दृष्टिगत होता है। मानस में चौपाई, दोहा तथा सोरठा का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है। इसके उपरान्त मानस में हरिगीतिका, त्रिभंगी, त्रोटक एवं चौपैया

का प्रयोग दृष्टिगत होता है। मानस की इतिवृत्तात्मकता से सम्बन्धित एक और मात्रिक छन्द 'अडिल्ल डिल्ला' या अरिल्ल छन्द का प्रयोग भी तुलसी ने किया है जिसमें चौपाईयों की भाँति ही प्रत्येक चरण में १६ मात्रायें होती हैं तथा अन्त में जगण (।ऽ।) होता है। उपर्युक्त छन्दों का क्रमानुसार अध्ययन तुलसी के छंदविधान को स्पष्ट करने के लिये अपेक्षित होगा।

चौपाई-

इस छंद के प्रत्येक चरण में १६ मात्राओं का विधान होता है। लघु की एक तथा गुरु अक्षर की दो मात्रायें गिनी जाती हैं। इसके अन्त में जगण व तगण का निषेध सर्वमान्य है।

मानस में साधारणतः आठ अर्द्धालियों के बाद एक दोहे की नियोजना मिलती है किन्तु कहीं-कहीं अर्द्धालियों की संख्या पन्द्रह तक पहुँच गई है। अर्द्धालियों की यह स्थिति उत्तरकाण्ड में अधिकाँशतः दिखाई देती है। चौपाई जैसे लघु छन्द के माध्यम से तुलसी ने अपनी इतिवृत्तात्मक प्रवृत्ति को व्यंजित कर अपने कौशल का प्रमाण प्रस्तुत किया है। चौपाई के माध्यम से ही कवि ने काव्य में रस, रीति, गुण, वृत्ति-शब्द शक्ति, अलंकरण एवं साम्यविधानादि के कलात्मक उपादानों का समाहार भी पूर्ण सफलता से किया है। यह कहना असंगत नहीं कि जितनी व्यापक अभिव्यक्ति तुलसी ने चौपाईयों के माध्यम से व्यंजित की है उसका चतुर्थांश भी अन्य छन्दों के माध्यम से अंकित नहीं हो सका है। यथा प्रस्तुत हैं कतिपय चौपाइयाँ-

मनि मानिक मुकुता छवि जैसी। अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी।।[१२५]

नृप किरीट तरुनी तनु पाई। लहहिं सकल सोभा अधिकाई।।

तैसेहि सुकबि कबित बुधकहहीं। उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं।।[१२६]

दोहा-

इसमें ४८ मात्राओं का विधान होता है। इसके प्रथम व तृतीय चरणों में १३-१३ तथा द्वितीय एवं चतुर्थ चरणों में ११-११ मात्रायें होती हैं। द्वितीय और चतुर्थ चरणान्त में अन्त्यानुप्रास की उपस्थिति अनिवार्यतः दृष्टिगत होती है। प्रकारान्तर से इसे असम चरणों के छन्द की संज्ञा भी दी जाती है। मानस के दोहे सामान्यतः इसी रूप में व्यंजित किये गये हैं। यथा प्रस्तुत है एक उदाहरण-

जथा सुअंजन अंज दृग, साधक सिद्ध सुजान।

कौतुक देखत सैल बन, भूतल भूरि निधान।।[१२७]

सोरठा-

दोहे की भाँति तुलसी ने सोरठा का प्रयोग बहुतायत किया है। अयोध्या, अरण्य एवं किष्किंधा काण्डों में इसकी व्याप्ति दृष्टिगत होती है। इसमें भी दोहे की भाँति ४८ मात्रायें होती हैं किंतु इसकी नियोजना दोहे से विपरीत होती है। इसके प्रथम व तृतीय चरण में ११-११ तथा दूसरे व चतुर्थ चरणों में १३-१३ मात्रायें होती हैं। प्रथम व तृतीय चरण में अन्त्यानुप्रास की प्रवृति भी अनिवार्य रूप से

परिलक्षित होती है। यथा-

रघुबर उर जयमाल, देखि देव बरिसहिं सुमन।
सकुचे सकल भुआल, जनु बिलोकि रति कुमुद गन।।[१२८]

हरिगीतिका-

चौपाई, दोहा और सोरठा के पश्चात मानस में सर्वाधिक प्रयुक्त होने वाला छन्द 'हरिगीतिका' ही है। सार रूप में चौपाई के पश्चात हरिगीतिका के माध्यम से ही तुलसी ने सर्वाधिक सौन्दर्य सृष्टि नियोजित की है। इसके प्रत्येक चरण में १६ तथा १२ के विश्राम से २८ मात्रायें होती है। इसके अंत में लघु एवं गुरु की नियोजना दृष्टिगत होती है। रामजन्म, धनुर्भंग, सीता-परिणय तथा राम-रावण युद्धादि प्रसंगों में तुलसी ने पूर्ण वैशिष्ट्य के साथ हरिगीतिका छंद का प्रयोग कर अपूर्व सौन्दर्य सर्जना की है। यथा एक चित्र दृष्टव्य है-

मन जाहिं राच्यौ मिलहिं सो बर सहज सुन्दर साँवरो।
करुना निधान सुजान सीलु सनेहु जानत रावरो।।
एहि भाँति गौरि असीस सुनि सिय सहित हियँ हरषी अली।
तुलसी भवानहि पूजि पुनि-पुनि मुदित मन मंदिर चली।।[१२६]

तुलसी ने इसका प्रयोग वीररस की पार्श्वभूमि व्यंजित करने में भी किया है यथा-

उर माँझ गदा प्रहार घोर कठोर लागत महि पर्‌यौ।
दस बदन सोनित स्रवत पुनि सँभारि धायो रिस भर्‌यौ।।
द्वौ भिरे अति बल मल्ल जुद्ध विरुद्ध एक एकहिं हनै।
रघुवीर बल दर्पित विभीषनु घालि नहिं ता कहुँ गनै।।[१३०]

त्रिभंगी-

इसमें प्रत्येक चरण में १०, ८, ८ और ६ के विश्राम से ३२ मात्रायें होती हैं। इसके अन्त में गुरु होता है। इसके आदि में जगण का निषेध होता है। इस छन्द की योजना विशेष रूप से स्तुति के वातावरण में की जाती है। यथा दृष्टव्य है ३० मात्रा के त्रिभंगी छंद का सौन्दर्य-

जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता।
गोद्विज हितकारी जय असुरारी सिंधु सुता प्रिय कंता।।[१३१]

चौपैया-

इस छन्द के प्रत्येक चरण में १०, ८ व १२ के विश्राम से ३० मात्राओं का विधान होता है। इसके अन्त में एक सगण और एक गुरु का प्रयोग मिलता है। इसका प्रयोग तुलसी ने बालकाण्ड में किया है यथा-

सुर मुनि गंधर्वा मिलिकर सर्वा गे विरंचि के लोका।

संग गोतनुधारी भूमि बिचारी, परम बिकल भय सोका।।
ब्रह्मा सब जाना मन अनुमाना मोर कछू न बसाई।
जाकर वैं दासी सो अविनासी हमरउ तोर सहाई।।[१३२]

तोमर-

इस मात्रिक छन्द के प्रत्येक चरण में बारह मात्रायें होती हैं। इसके अंत में गुरु लघु (१) का विधान होता है। इसका प्रयोग मूलतः युद्ध वर्णनादि में किया जाता है। तुलसी ने इसका प्रयोग मानस के लंका तथा अरण्य कांड में किया है। यथा-

(अ) जब कीन्ह तेहि पाखंड। भए प्रगट जंतु प्रचंड।।
बैताल भूत पिसाच। कर धरे धनु नाराच।।[१३३]

(ब) तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहु ब्याल।।
कोप्यो समर श्री राम। चले बिसिख निसित-निकाम।।

तुलसी ने इसका प्रयोग कहीं-कहीं स्तुति व्यंजना में भी किया है-

जय राम सोभाधाम। दायक प्रनत विश्राम।
घृत त्रोन बर सर-चाप। भुज दण्ड प्रबल प्रताप।।

डिल्ला या अरिल्ल छन्द-

इसके प्रत्येक चरण में १६ मात्रायें होती हैं। इसके प्रत्येक चरण के अंत में भगण की अनिवार्यता मानी गई है। तुलसी ने इसका प्रयोग लंकाकाण्ड में किया है-

मामभिरक्षय रघुकुलनायक। धृत बर चाप रुचिर कर सायक।।
मोह महाघन पटल प्रभंजन। संसय विपिन अनल सुर रंजन।।

वार्णिक वृत्तों के अंतर्गत आचार्यों ने अनुष्टुप इन्द्रवज्रा, त्रोटक, मालिनी, रथोद्धता, भुजंग प्रयात, वंशस्थविलम, वसंततिलका, स्रगधारा, शार्दूलविक्रीड़ित एवं नगस्वरूपिणी छन्दों को मान्यता दी है। तुलसी ने मानस में इनका प्रयोग पूर्ण कौशल के साथ कर सुन्दर व्यंजना प्रस्तुत की है।

अनुष्टुप-

इस वृत्त के प्रत्येक चरण में आठ वर्ण का विधान होता है। प्रत्येक विषम चरण में पाँचवाँ वर्ण लघु तथा छठवाँ वर्ण दीर्घ होता है। सम चरण में सप्तम वर्ण लघु होता है। इसके अतिरिक्त इस छन्द में लघु दीर्घ का अन्य बंधन नहीं होता है। यथा-

रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं, विप्रेण हरतोषए।
ये पठन्ति नराभक्त्या तेषां शम्भु प्रसीदति।।[१३७]

इन्द्रवज्रा वृत्त-

इसके प्रत्येक चरण में ११-११ वर्ण होते हैं। इसके प्रत्येक चरण में दो तगण एक जगण और

अन्त में दो गुरु वर्ण होते हैं। इसके उदाहरण मानस में अत्यल्प परिमाण में उपलब्ध होते हैं-

नीलाम्बुजश्यामल कोमलांगं, सीता समारोपित वामभागम्।
पाणौ महासायक चारु चापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्।।[१३८]

त्रोटक-

यह बारह अक्षरों का वार्णिक वृत्त होता हैं इसके प्रत्येक चरण में ४ सगण का विधान किया गया है। इसका तीसरा, छठा, नवाँ तथा बारहवाँ अक्षर गुरु होता है। यथा-

जय राम रमा रमनं समनं। भव ताप भयाकुल पाहि जनं।
अवधेस सुरेस रमेस बिभो। सरनागत मागत पाहि प्रभो।।[१३९]

मालिनी-

इसके प्रत्येक चरण में १५-१५ अक्षर होते हैं। इसके प्रत्येक चरण में आचार्यों ने दो नगण, एक भगण और दो यगण का विधान किया है। सुन्दरकांड में इसका प्रयोग तुलसी ने किया है। यथा-

अतुलित बलधामं हेमशैलाभदेहं, दनुज बन कृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकल गुण निधानं वानराणामधीशं, रघुपति प्रियभक्तं वातजातं नमामि।।[१४०]

रथोद्धता-

इसके प्रत्येक चरण में ग्यारह-ग्यारह वर्ण का विधान होता है। इसके प्रत्येक चरण में रगण, नगण तथा रगण की स्थिति होती है। इसके अन्त में क्रमशः लघु तथा गुरु वर्ण विद्यमान होता है। निम्न मंगलाचरण श्लोक इसका सुन्दर उदाहरण है-

कोसलेन्द्र पद कंज मंजुलौ, कोमलावजमहेश वन्दितौ।
जानकी कर सरोज लालितौ चिन्तकस्यमन भृंगसंगिनौ।।[१४१]

भुजंग प्रयात-

इसके चारों चरणों में बारह-बारह अक्षरों का विधान होता है। इसमें प्रथम सप्तम तथा दशम अक्षर लघु होता है अर्थात प्रत्येक चरण में चार यगण की स्थिति होती है। मानस के उत्तरकांड में तुलसी ने शिवस्तुति को इसी छन्द में नियोजित किया है-

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं, विभुं व्यापकं ब्रह्मवेद स्वरूपं।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं, चिदाकाशमाकाशवासं भजेहं।।[१४२]

वंशस्थविलम-

इस वार्णिक छन्द के चारों चरणों में बारह-बारह अक्षर होते हैं। इसके प्रत्येक चरण में जगण-तगण, जगण एवं रगण की अनिवार्यता होती है। इसका प्रयोग तुलसी ने अयोध्याकांड में किया है। राम के वीतरागी और निर्विकार स्वरूप का प्राकटय तुलसी ने इस छन्द के माध्यम से निम्न प्रकार किया है-

प्रसन्नतां या न गताभिषेक तस्तथा न मम्ले बनवास दुःखतः।
मुखाम्बुज श्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु मंजुल मंगल प्रदाः।।[१४३]

वसंततिलका-

इसके प्रत्येक चरण में चौदह अक्षर का विधान किया गया है। प्रत्येक चरण में तगण, भगण तथा दो जगण की स्थिति अनिवार्य है। इसके अन्त में दो वर्ण गुरु होते हैं। तुलसी ने मानस के प्रसिद्ध श्लोक को इसी छन्द में बाँधा है-

नाना पुराण निगमागम सम्मतं यद्रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोपि।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा भाषा निबंधमति मंजुल मातनोति।।[१४४]

स्रगधारा-

इसके प्रत्येक चरण में इक्कीस अक्षर होते हैं। इसके प्रत्येक चरण में मगण, रगण, भगण, नगण और तीन यगण की उपस्थिति रहती है। तुलसी ने निम्न श्लोक में इस प्रकार के छंद का सौन्दर्य स्पष्ट किया है-

रामं कामारि सेव्यं भवभयहरणं कालमत्तेभसिंहं।
योगीन्द्र ग्यानगम्यं गुणनिधमजितं निर्गुणं निर्विकारम्।।[१४५]

शार्दूल विक्रीड़ित-

इसके प्रत्येक चरण में उन्नीस अक्षर का विधान होता है तथा प्रत्येक चरण में मगण, भगण, जगण, सगण व तगण तथा अन्त में गुरु वर्ण होता है। निम्न श्लोक में इसका सौन्दर्य देखा जा सकता है-

यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादि देवासुराः।
यत्सत्वादमृषैवभाति सकलं रज्जौयथाहेऽर्भ्रमः।।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां।
बन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्।।[१४६]

नगस्वरूपिणी-

इसके चारों चरणों में आठ-आठ अक्षर होते हैं तथा प्रत्येक चरण का दूसरा चौथा, छठा और आठवाँ वर्ण गुरु होता है। उत्तकांड के निम्नश्लोक में इसका सौन्दर्य दृष्टिगत होता है-

विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे।
हरिं नरा भजंति येऽति दुस्तरं तरन्तिते।।[१४७]

इस प्रकार छन्द विधान के विस्तृत विवेचन से यह स्पष्ट है कि तुलसी ने अपने काव्य में मात्रिक और वार्णिक छन्दों का प्रयोग अत्यन्त कलात्मक ढंग से किया है। छन्दों का वैविध्य उनके काव्य में अपूर्व सौन्दर्य की व्याप्ति करने में सफल रहा है यह कहना कदापि असंगत न होगा।

(घ) प्रतीक एवं शब्द शक्ति (अप्रस्तुत विधान)

प्रतीक विधान-

अर्थ की विस्तृत और गंभीर व्यंजना के लिये काव्य में प्रतीक योजना का विधान किया जाता है। प्रतीक, भावों के सफल संप्रेषण के साथ-साथ काव्य में सौन्दर्य की रमणीय उद्भावना भी व्यक्त करते हैं। प्रतीक के माध्यम से कवि अपनी अनुभूति को पाठक और भावक तक ज्यों की त्यों पहुँचाने में सफल रहता है। प्रकारान्तर से यह माना जा सकता है कि प्रतीक योजना काव्याकलन की प्रमुख कसौटी है क्योंकि प्रतीक चयन कवि की मेधा और प्रतिभा पर निर्भर करता है। जो कवि जितने सटीक प्रतीकों का चयन कर भावाभिव्यंजना को तीव्रता से व्यंजित करेगा उसके काव्य में उतना ही लालित्य दृष्टिगत होगा।

तुलसी के प्रतीक उनकी उर्वर मनीषा के परिचायक हैं। अपनी प्रतीक योजना से उन्होंने भावों की मधुर एवं सार्थक अभिव्यक्ति व्यंजित की है। प्रतीकों का वैविध्य उनके काव्य को चारुता के नये आयाम देता है। तुलसी काव्य में प्राकृतिक प्रतीकों का सर्वाधिक प्रयोग दृष्टिगत होता है। सौन्दर्य-निरूपण में कवि ने पौराणिक प्रतीकों के प्रयोग से विषय की उत्कृष्ट व्यंजना की है। तुलसी ने रति और काम को सौन्दर्य के सर्वाधिक श्रेष्ठ प्रतीक के रूप में चयनित कर अपने नैपुण्य का उद्घाटन किया है। आराध्य राम और सीता के सौन्दर्यांकन में इन प्रतीकों का प्राचुर्य स्पष्ट परिलक्षित होता है। इसके अतिरिक्त **मनोज-निकेतन, गन्धर्व, सर्प-मणि, कल्पवृक्ष, सुर-सभा, देवांगनाएँ, बिबुधवन** आदि पौराणिक प्रतीकों का चयन उनकी सुरुचि का परिचय देता है। यथा दृष्टव्य हैं दो चित्र-

(अ) **वर विराज मण्डप महँ विश्व विमोहइ।**
ऋतु बसन्त बन मध्य मदनु जनु सोहइ।।[१४८]

(ब) **मध्य बरात बिराजत अति अनुकूलेउ।**
मनहुँ काम आराम कल्पतरु फूलेउ।।[१४९]

तुलसी ने सौन्दर्य-निरूपण में प्रकृत उपमानों का प्रयोग पूर्ण वैशिष्ट्य के साथ किया है। जड़ और चेतन दोनों प्रकार के प्रकृत उपमान उनके काव्य में चारुता की अद्भुत सृष्टि करते हैं। यथा चन्द्रमा का प्रयोग कान्ति और शुभ्रता के वर्णन हेतु-

लता भवन ते प्रगट भे, तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग विमल बिधु जलद पटल बिलगाइ।।[१५०]

तुलसी ने सूर्य, चन्द्र, चाँदनी, तारागण, दिवा-रात्रि, इन्द्रधनुष, उल्का विद्युत आदि खगोलोपकरणों को भी प्रतीक रूप में प्रयुक्त कर सुन्दर अभिव्यक्ति व्यंजित की है। किशोर राम के

लिये सूर्योदय का प्रतीक उनके उत्कर्ष और दीप्ति को व्यंजित करने में पूर्ण समर्थ है-

उदित उदयगिरि मंच पर, रघुबर बाल पतंग।
विकसे संत सरोज सब, बिहँसे लोचन भृंग।।[१५१]

सौन्दर्य निरूपण में तुलसी ने कमल का सर्वाधिक प्रयोग किया है। सरोरुह, कंज, पंकज, जलजात, वारिज, सारस, राजीव, बनरुह, पाथोज, अम्बुज, अरविन्द, सरसीरुह, पंकरुह, कैरव, जलज, नीरज, बनजात, नलिनी, इंदीवर, जलजा या कुवलय, पद्म, बनज, कैरव, तामरस तथा अब्ज आदि कमल के पर्यायवाचियों का प्रसंगानुरूप प्रयोग उनके शाब्दिक कौशल तथा सौन्दर्य का परिचय प्रस्तुत करता है।

तुलसी ने आराध्य के वैभवोद्घाटन के निमित्त मणियों का प्रयोग प्रतीकवत किया है। फनमणि, मरकतमणि, नीलमणि, पदुमराग मणि के साथ मुक्ता और विद्रुम का प्रयोग ऐश्वर्य की सुन्दर व्यंजना व्यक्त करता है। यथा-

फटिक भीत सिखरन पर राजत कंचन दीप अनी।
जनु अहिनाथ मिलन आयो मनि सोभित सहसफनी।।[१५२]

तुलसी काव्य में रायमुनी हंस, गज, अलि, खद्योत, अहिनाथ, सर्प आदि सचेतन प्रकृत उपमानों को प्रतीक रूप में सौन्दर्य निरूपण की दृष्टि से अपनाया गया है। हंस प्रतीक उज्जवल कांति के साथ मधुर गति की आकर्षक व्यंजना प्रस्तुत करता है-

संग सखी सुंदर चतुर, गावहिं मंगलचार।
गवनी बाल मराल गति सुषमा अंग अपार।।[१५३]

मानवीय सौन्दर्य के अतिरिक्त विभिन्न भावों की सुमधुर व्यंजना तुलसी ने अनेक प्रतीकों के माध्यम से वर्णित की है। यथा भरत की निस्पृहता की व्यंजना चकवा-चकवी के प्रतीक से पूर्णतः व्यंजित होती है-

संपति चकई भरत चक, मुनि आयसु खेलवार।
तिहि निसि आश्रम पींजरा, राखे भा भिनुसार।।[१५४]

भक्ति के मर्म को स्पष्ट करने के लिये तुलसी ने चींटी का प्रयोग प्रतीकवत किया है जो पूर्ण तीव्रता से भाव को संप्रेषित करने में समर्थ है। यथा-

ज्यों सर्करा मिलै सिकता मँह, बल तें न कोउ बिलगावै।
अति रसज्ञ सूच्छम पिपीलिका, बिनु प्रयास ही पावै।।[१५५]

वन्य प्राणियों में तुलसी ने सिंह-सिंहनी, मृग, सियार, गाय, बछड़ा, शशक, वाराह, गज, श्वान, गर्दभ बैल, चूहा, चमगादड़, इत्यादि पशुओं तथा हिंसक जंतुओं, चातक, चकवा, हंस, कोकिल, मयूर, चकोर, खंजन, उलूक, बक, गिद्ध, सारस, बाज, काक, एवं गरुड़ आदि पक्षियों, जोंक, जलभ्रमर, मीन, ग्राह, कच्छप आदि जलचरों, बिच्छू, साँप आदि विषैले जीवों और चींटी, बर्र, मधुमक्खी, पतिंगा,

तितली, भ्रमर आदि जन्तुओं जैसे सामान्य प्रतीकों के माध्यम से उत्कृष्ट भावों की व्यंजना अपने काव्य में नियोजित की है। सामान्य प्रतीकों के माध्यम से सुन्दर व्यंजनाभिव्यक्ति उनकी सौन्दर्य निरूपण क्षमता का परिचय देती है। यथा दृष्टव्य हैं कुछ उदाहरण-

(अ) **अरुन नयन, भ्रकुटी कुटिल, चितवत नृपन्हिं सकोप।**
मनहुँ मत्त गज-गन निरखि, सिंघ किसोरहिं चोप।।[१५६]

(ब) **जाइ दीख रघुबंसमनि, नरपति निपट कृसाजु।**
सहमि परेउ लखि सिंघनिहि मनहुँ वृद्ध गजराजु।।[१५७]

(स) **अधम निसाचर लीन्हे जाई। जिमि मलेछ बस कपिला गाई।।**[१५८]

(द) **सूख हाड़ लै भाग सठ, स्वान निरखि मृगराज।**
छीनि लेइ जनि जान जड़ तिमि सुरपतिहि न लाज।।[१५९]

(क) **राम जननि जब आइहिं धाई। सुमिरि बच्छु जिमि धेनु लबाई।।**
पूछत उतरु देब मैं तेही। गे बनु राम लखन वैदेही।[१६०]

(ख) **मानस सलिल सुधा प्रतिपाली। जिअइ कि लवन पयोधि मराली।।**
नवरसाल बन बिहरन सीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला।।[१६१]

(ख) **नगर व्यापि गई बात सुतीछी। छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी।**[१६२]

(ग) **बिहरहिं बन चहुँ ओर प्रतिदिन प्रमुदित लोग सब।**
जल क्यों दादुर मोर भए पीन पावस प्रथम।।[१६३]

(घ) **भरत बिमल जसु बिमल बिधु सुमति चकोर कुमारि।**
उदित बिमल जन हृदय नभ इकटक रही निहारि।।[१६४]

इस प्रकार इस संक्षिप्त विवेचन से यह स्पष्ट है तुलसी ने प्रतीक योजना के माध्यम से उत्कृष्ट भावाभिव्यक्ति और सौन्दर्याभिव्यक्ति व्यंजित की है जो उनकी अभिव्यंजनात्मक सौन्दर्य अंकन प्रतिभा का परिचय देती है।

शब्द-शक्ति-

शब्द के अर्थ का बोध कराने वाली शक्ति को शब्दशक्ति की संज्ञा दी जाती है। शब्द शक्तियों के तीन भेद माने गये हैं- (१) अभिधा (२) लक्षणा (३) व्यंजना

ये शक्तियाँ क्रमशः वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ की प्रतीति कराती हैं। तुलसी काव्य में शब्द-शक्तियों की सांगोपांग अभिव्यक्ति उपलब्ध होती है। जो उनके शिल्प कौशल का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं।

अभिधा- वाच्यार्थ का बोध कराने वाली शक्ति को अभिधा कहा जाता है। मानस का निम्न दोहा उदाहरणार्थ प्रस्तुत है जिसमें प्रथम बार जननी शब्द सम्बोधन को तथा दूसरी बार प्रयुक्त

जन्मदात्री के अर्थ को संकेतित करता है-

"जननी तूँ जननी भई, बिधि सन कछु न बसाइ।"[१६५]

इसमें अभिधा के द्वारा अर्थ ग्रहण हुआ है।

लक्षणा- जहाँ मुख्यार्थ के बाधित होने पर उससे सम्बन्धित अन्य अर्थ प्राप्त होता है जो रूढ़ि या वक्ता के अनुसार होता है, उसे लक्षणा कहा जाता है। तुलसी काव्य में लक्षणा के सभी भेदोपभेद उपलब्ध होते हैं। दृष्टव्य है प्रयोजनवती शुद्धा लक्षणा का उदाहरण-

उमँगी अवध अनन्द भरि अधिक-अधिक अधिकाति।[१६६]

इसमें आधार-आधेय सम्बन्ध से अवध के उमगने का अर्थ अवधवासियों के उल्लास को व्यंजित करता है जो प्रयोजनवती शुद्धा लक्षणा के द्वारा स्पष्ट हुआ है।

व्यंजना- काव्यकल्पद्रुम के अनुसार अपने-अपने अर्थ का बोध कराके अभिधा और लक्षणा विरत (शांत) हो जाने पर जिस शक्ति द्वारा व्यंग्यार्थ का बोध होता है उसे व्यंजना कहते हैं। तुलसी ने व्यंजना के सभी भेदों-प्रभेदों को अपने काव्य में नियोजित किया है। यथा दृष्टव्य हैं कतिपय उदाहरण-

जेहि वाटिका बसति तहँ खग मृग तजि-तजि भजे पुरातन मौन।
स्वास समीर भेंट भोरेहुँ तेहि मग पगु न धरयौ तिहुँ पौन।।[१६७]

उपर्युक्त पंक्तियों में सीता के विरहातिरेक के बावजूद राम की निश्चिन्तता व्यंग्य है अतः इसमें वक्तृवैशिष्ट्योत्पन्न वाच्य संभवा आर्थी व्यंजना है। इसी प्रकार चेष्टा वैशिष्ट्योत्पन्न वाच्य सम्भवा आर्थी व्यंजना का उदाहरण भी दृष्टव्य है जिसमें सीता की चेष्टायें स्पष्ट रूप से संकेतित करती हैं-कि राम उनके पति हैं-

सुनि सुन्दर बैन सुधारस साने सयानी हैं जानकी जानी भली।
तिरछे करि नैन दे सैन तिन्हें समुझाइ कछू मुसकाइ चली।।[१६८]

इस प्रकार शब्द शक्तियों के सभी भेद तुलसी काव्य में नियोजित हैं जो विषय और अर्थ के सौन्दर्य को भली भाँति अभिव्यक्त करते हैं।

(ङ) गुण रीति एवं वृत्ति

गुण-

काव्य के लालित्यवर्द्धन में काव्यगुणों का सहयोग आवश्यक माना जाता है। नाट्यशास्त्र में काव्य के दस गुणों का उल्लेख मिलता है। **वामन** ने शब्द और अर्थ दोनों के दस, दस गुण माने हैं। **भोज** शब्द और अर्थ के चौबीस-चौबीस गुणों को मान्यता देते हैं। सभी आचार्यों ने इसका घनिष्ठ सम्बन्ध पद विन्यास से स्वीकार किया है। गुणों की संख्या के सम्बन्ध में पारस्परिक मतवैभिन्य लक्षित होता है किन्तु बाद में आचार्यों ने केवल तीन गुणों को ही मान्यता प्रदान की है। ये हैं ओज,

माधुर्य और प्रसाद।

तुलसी काव्य में गुणों का सुन्दर प्रयोग दृष्टिगत होता है इनका क्रमशः विवेचन निम्नवत है।

ओज-

ओज गुण में चित्त को उद्दीप्त करने की क्षमता होती है। प्रायः वीर, रौद्र तथा वीभत्स रसों के अंकन में इसका आधिक्य मिलता है। द्वित्व युक्त वर्णों, संयुक्तवर्णों, ट वर्ग के चार वर्णों, कठोर वर्णों का प्राचुर्य तथा लम्बे समास ओज गुण की प्रतिष्ठा हेतु अनिवार्य हैं। परुषावृत्ति ओज गुण की प्रकाशिका होती है। मानस के निम्न छन्द में ओज की व्यंजना दृष्टव्य है-

भए क्रुद्ध जुद्ध बिरुद्ध रघुपति त्रोन सायक कसमसे।
कोदंड धुनि अति चंड सुनि भनुजाद सब मारुत ग्रसे।।
मंदोदरी उर कंप कंपति कमठ भू भूधर त्रसे।
चिक्करहिं दिग्गज दसन गहि भहि देखि कौतुक सुर हँसे।।[१६९]

माधुर्य-

चित्त को द्रवीभूत करने वाले आनन्द विशेष को माधुर्य की संज्ञा दी जाती है। यह गुण श्रृंगार, करुण तथा शान्त रस के अनुकूल माना जाता है। ट वर्ग के कर्ण कटु वर्णों को छोड़कर 'क' वर्ग से 'प' वर्ग के वर्ण अपने वर्ग के अंतिम वर्ण से संयोग कर श्रुति मधुर ध्वनि उत्पन्न करते हैं। इसमें उपनागरिका वृत्ति होती है।

तुलसी मन-रंजन रंजित अंजन, नैन सुखंजन जातक से।
सजनी ससि में समसील उभै नवनील सरोरुह से बिकसे।।[१७०]

कभी-कभी सानुनासिक ध्वनियों का प्रयोग न होने पर भी माधुर्य गुण की सृष्टि होती है क्योंकि चित्त का द्रवीभूत होना ही माधुर्य की अनिवार्यता है यथा-

जबहिं रघुपति संग सीय चली।
विकल वियोग लोग पुरतिय कहैं अति अन्याय अली।।
कोउ कहै मनिगन तजत काँच लगि, करत न भूप भली।
कोउ कहै कुल-कुबेलि कैकेयी दुख-विष-फलनि फली।।
एक कहैं बन जोग जानकी! विधि बड़ बिषम बली।
तुलसी कुलिसहु की कठोरता तेहि दिन दलकि दली।।[१७१]

प्रसाद- साहित्य दर्पण के अनुसार-

चितं व्याप्नोति यः क्षिप्रं शुष्केन्धनमिवानलः।
सः प्रसादः समस्तेषु रसेषु रचनासु च।।
शब्दास्तद व्यंजका अर्थ बोधकाः श्रुतिमात्रतः।।[१७२]

अर्थात मन को विस्तार देने में समर्थ गुण को प्रसाद की संज्ञा दी जाती है। जिस प्रकार सूखी लकड़ी में अग्नि शीघ्रता से व्याप्त हो जाती है उसी प्रकार प्रसाद गुण चित्त में सहज रूप में व्याप्त हो जाता है। यह गुण समस्त रसों और रचनाओं में उपलब्ध हो सकता है। जिनके श्रवण मात्र से अर्थ की प्रतीति हो जाये, ऐसे सरल और बोधगम्य पद ही इस गुण के व्यंजक माने जाते हैं। सरलता और सरसता इसके मुख्य लक्षण हैं। सम्पूर्ण तुलसी साहित्य में प्रसाद गुण की व्याप्ति और व्यंजना का प्राचुर्य स्पष्ट परिलक्षित होता है। यथा दृष्टव्य हैं निम्न पंक्तियाँ-

बिहरत अवध वीथिन राम।
संग अनुज अनेक सिसु नव-नील-नीरद-स्याम।।
तरुन अरुन-सरोज-पद बनी कनकमय पद आन।
पीत पट कटि तून बर, कर ललित लघु धनु बान।।
लोचननि को लहत फल छबि निरखि पुर नर नारि।
बसत तुलसीदास उर अवधेस के सुत चारि।।[१७३]

इस पद में तुलसी ने सरल समास-योजना के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है जो पाठक के मानस में अर्थबोध को अत्यन्त सहजता से स्पष्ट करने में पूर्ण सक्षम है। सम्पूर्ण साहित्यावलोकन से यह स्वतः स्पष्ट होता है कि प्रसादत्व तुलसी की प्रमुख विशेषता है जिसके कारण उनका सम्पूर्ण वांग्मय लोक विश्रुत बन सका। अन्य कवियों में यह वैशिष्ट्य दुर्लभ है।

रीति एवं वृत्ति-

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार **"अंग संस्थान की भाँति पदों के संगठन या मेल को रीति की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। जिस प्रकार शरीर के अंगों का सुगठन होता है वैसे ही काव्य शरीर में शब्दों और अर्थों का भी संगठन होता है। यह रीति काव्यात्मभूत रस, भावादि की उपकारक होती है।**

पद संगठन के आधार पर ही रीति, माधुर्य, सुकुमारता या कठोरता की व्युत्पत्ति करती है। मानस की तीन वृत्तियों परुषा, उपनागरिका और कोमला के अनुसार ही ओज, माधुर्य और समवर्णो की रचनायें ही गौड़ी, वैदर्भी और पांचाली की संज्ञा से अभिहित की जाती हैं। तुलसी साहित्य में रीति और वृत्ति प्रचुरता से उपलब्ध है।

१. गौड़ी रीति (परुषा वृत्ति) -

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार **"ओज गुण के अभिव्यंजक वर्णों से युक्त, समास बहुल उद्भट रचना को 'गौड़ी रीति' कहते हैं।** इसमें शब्दाडम्बर का आधिक्य होता है। तुलसी ने यद्यपि गौड़ी रीति को प्रमुखता नहीं दी किन्तु युद्ध वर्णनादि में वे ओजव्यंजक वर्णों के प्रयोग से बच नहीं सके हैं। ट ठ ड ढ आदि वर्णों का प्रयोग माधुर्य का निषेध कर चित्त को उद्दीप्त करने में सहायक

होता है। ओज व्यंजक वर्णों के प्रयोग से रौद्र, वीर तथा भयानक आदि रसों की अभिव्यंजना करने सफल में सफल रहे हैं। यथा प्रस्तुत है मानस का एक चित्र-

''सुनि कठोर टंकोर घोर असि चौंके विधि त्रिपुरारि।
जरा पटल तें चली सुरसरी सकत न संभु सँभारि।।[१७४]
''कटकटात भट भालु विकट मरकट करि केहरि-नाद।
कूदत करि रघुनाथ-सपथ उपरी उपरा बदि-बाद।।''[१७५]

२. वैदर्भी (उपनागरिका वृत्ति)-

माधुर्य गुण पर अवलंबित रीति को जाती है। माधुर्य गुण की सृष्टि करने वाले वर्णों से युक्त रचना को उपनागरिका वृत्ति कहा जाता है। इसमें ट वर्ग का निषेध होता है और ककार से मकार तक के वर्ण अपने वर्ग के अन्तिम वर्ण से संयुक्त हो माधुर्य की सरस सृष्टि करते हैं। इन वर्णों द्वारा सृजित समास रहित सुन्दर रचना को वैदर्भी अभिधान से अभिहित किया जाता है। तुलसी साहित्य में इसका प्राचुर्य 'गीतावली' में उपलब्ध होता है। मानस की कतिपय पंक्तियाँ माधुर्य गुण से युक्त भावना के उत्कृष्ट सौन्दर्य को अभिव्यक्त करती है-

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन रामु हृदयँ गुनि।।
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व बिजय कहँ लीन्हीं।।
अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा।।
भए बिलोचन चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल।।[१७६]

गीतावली का एक उदाहरण देखें-

बाल-भूषन-वसन, तन सुन्दर रुचिर रजभरनि।
परसपर खेलनि अजिर, उठि चलनि, गिरिगिरि परनि।।
झुकनि झाँकनि, छाँह सी किलकनि, नटनि हठि लरनि।
तोतरी बोलनि विलोकनि मोहनी मन हरनि।।[१७७]

इसमें म और न वर्णों का प्राचुर्य दृष्टव्य है जो सौन्दर्य की सरस संसृष्टि करने में पूर्ण सक्षम है।

पांचाली (कोमला वृत्ति)-

माधुर्य तथा ओज व्यंजक वर्णों से रहित शेष वर्णों से युक्त रचना कोमलावृत्ति मानी जाती है। वामन के अनुसार पांचाली में ओज तथा कान्ति का अभाव तथा सौकुमार्य का सद्भाव निहित रहता है। इसमें य, र, ल, ख, प, अ आदि वर्णों की नियोजना द्वारा सुकुमारता की सृष्टि की जाती है। गीतावली में इसका बाहुल्य स्पष्ट दृष्टिगत होता हैं यथा प्रस्तुत है एक उदाहरण-

फटिक सिला मृदु विसाल, सँकुल सुरतरु तमाल
ललित-लता-जाल हरित छवि वितान की।

मंदाकिनि तटिनि तीर मंजुल मृग विहग भीर,
धीर मुनि गिरा गम्भीर सामगान की ।।
मधुकर पिक बरहि मुखर, सुन्दर गिरि निर्झर झर
जल-कन घन-छाँह, छन प्रभा न भान की।
सब ऋतु ऋतुपति प्रभाउ, संतत बहै त्रिबिध बाउ,
जनु विहार वाटिका नृप पंचबान की।।
विरचित तहँ पर्नसाल, अति बिचित्र लखन लाल
निवसत जहँ नित कृपालु राम जानकी।
निजकर राजीव नयन पल्लव-दल रचित सयन
प्यास परसपर पियूष प्रेम-पान की।।[१७८]

इसमें ल, र, प, व आदि वर्णों के सहयोग से सुकुमारता की व्यंजना तुलसी के अभिव्यक्ति कौशल के सौन्दर्य को प्रकट करती है। इस प्रकार तुलसी काव्य में गुण, रीति तथा वृत्ति का सुन्दर प्रयोग दृष्टिगत होता है जो उनकी सौन्दर्याभिव्यक्ति में सहायक है।

(च) ध्वनि एवं वक्रोक्ति

ध्वनि-

नाद सौन्दर्य तथा वर्ण मैत्री का सौन्दर्य अभिव्यंजना को उत्कृष्ट और मनोहर बनाने में सहायक होता है। ध्वनि के सम्बन्ध में भारतीय आचार्यों ने अनेक मताभिमत व्यक्त किये हैं। मम्मट के अनुसार **जिसमें वाच्यार्थ की तुलना में व्यंग्यार्थ अधिक सुन्दर और चमत्कार पूर्ण होता है उसे ध्वनि नामक उत्तम काव्य कहते हैं।**[१७९] आनन्दवर्धन का अभिमत है कि **जहाँ वाचक शब्द अपने अर्थ को गौण बनाकर दूसरे प्रकार के अर्थों को प्रमुखता से अभिव्यक्त करते हैं वहाँ ध्वनि होती है।**[१८०] आचार्य विश्वनाथ के मतानुसार **व्यंग्य के वाच्यातिशायी होने पर ध्वनि होती है।**[१८१] भर्तृहरि की धारणा है कि **शब्द के संयोग और वियोग से व्युत्पन्न स्फोट को ध्वनि कहते हैं।**[१८२] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ध्वनि काव्य की अनिवार्यता है। ध्वनि के दो प्रकारों को मान्यता दी गई है।

१. **लक्षणामूलक ध्वनि** (अविवक्षित वाच्य ध्वनि)

२. **अभिधामूला ध्वनि** (विवक्षित वाच्य ध्वनि)

लक्षणामूला ध्वनि में लक्षणा की उपस्थिति आवश्यक है किन्तु अभिधामूला में अभिधा की उपस्थिति की बाध्यता नहीं है। लक्षणा रहित होने पर स्वतः अभिधामूला ध्वनि होती है। तुलसी साहित्य में ध्वनि का अध्ययन इन प्रकारों के अन्तर्गत करना पूर्णतः समीचीन है।

१. लक्षणामूलक ध्वनि (अविवक्षित वाच्य ध्वनि)-

जिस ध्वनि में वाच्य विवक्षित नहीं होता उसे लक्षणामूला (अविवक्षित वाच्य) ध्वनि की संज्ञा दी

जाती है। इसके दो भेद सर्वमान्य हैं-

(क) अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि

(ख) अत्यन्त तिरस्कृत वाच्यध्वनि

(क) अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि-

जहाँ प्रयुक्त पद का अर्थ वाच्यार्थ के अनुरूप न होने से किसी अन्यार्थ में संक्रमित हो जाता है वहाँ अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि होती है। यह ध्वनि मूलतः उपादान लक्षणा में उपस्थित रहती है। यथा प्रस्तुत है मानस का एक उदाहरण-

सीता हरन तात जनि कहहु पिता सन जाइ।

जौं मैं राम त कुल सहित, कहिहि दसानन आइ।।[१८३]

इस दोहे में राम का अर्थ अत्यन्त पराक्रमी शूरवीर और राक्षसों का विनाश करने वाला है। इसमें निहित व्यंग्यार्थ है कि अब दशानन अर्थात रावण का शीघ्र विनाश होने वाला है। चमत्कारयुक्त व्यंग्यार्थ के कारण यहाँ अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है।

ख- अत्यन्त तिरस्कृत अर्थान्तर वाच्य ध्वनि- इसमें व्यंग्यार्थ प्रधान और वाच्यार्थ असंगत होने के कारण वाच्यार्थ तिरस्कृत हो जाता है। यह ध्वनि मूलतः लक्षण लक्षणा में विद्यमान हाती है-

बाउ कृपा मूरति अनुकूल। बोलत बचन झरत जनु फूला।।[१८४]

इस पंक्ति में कृपा, अनुकूल और फूल शब्द अपने वाच्यार्थ के विपरीतार्थ को प्रकट करते हैं अतः यहाँ तिरस्कृत वाच्य ध्वनि है।

२. अभिधामूला ध्वनि (विवक्षित वाच्य ध्वनि)-

इससमें वाच्यार्थ विवक्षित होने के साथ साथ व्यंग्यनिष्ठ होता है। इसके दो प्रकार होते है-

क- असंलक्ष्य क्रम व्यंग्य ध्वनि

ख- संलक्ष्य क्रम व्यंग्य ध्वनि

(क) असंलक्ष्य क्रम व्यंग्य ध्वनि- जहाँ वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ का पौर्वापर्य क्रम आभासित नहीं होता वहाँ असंलक्ष्य क्रम व्यंग्य ध्वनि भासित होती है। इसके आठ प्रकार स्वीकृत हैं यथा कतिपय उदाहरण दृष्टव्य है-

रस ध्वनि-

जहाँ रस व्यंग्य होता है वहाँ रस ध्वनि लक्षित होती है-

पलंग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सिय न दीन्ह पगु अवनि कठोरा।।

जिअनभूरि जिमि जोगवत रहऊँ। दीप बाति नहिं टारन कहऊँ।।[१८५]

सिय बन बसिहि तात केहि भाँती। चित्र लिखित कपि देखि डराती।।[१८६]

यहाँ वाच्यार्थ के साथ-साथ व्यंग्यार्थ रूप रस का प्रभाव उद्दीपन तथा प्रिय अनिष्ट की आशंका

के कारण स्थायी भाव शोक तथा करुण रस की स्थिति स्पष्ट प्रकट होती है।

इसी प्रकार निम्न पंक्तियाँ सीता के प्रणय भाव को अभिव्यंजित करती हैं-

बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी।।
खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सिय सकननि।[१८७]

उपर्युक्त पंक्तियों में श्रंगार रस व्यंग्य रूप में है। मुख को घूघँट तथा शरीर को आँचल से ढाँकना तथा पति की ओर तिरछे नयनोंसे दृष्टि निक्षेप उद्‌दीपन विभाव का बोध कराते है। इन विभावों की उपस्थिति श्रंगार रसानुभूति को स्पष्ट करती है अतः यहाँ असंलक्ष्य क्रम व्यंग्य ध्वनि की प्रतीति दृष्टिगत होती है।

भाव ध्वनि- जहाँ स्थायी भाव की अपुष्टता या संचारी भाव का प्रकाशन दृष्टिगत होता है वहाँ भाव ध्वनि होती है। यथा-

खर कुठार मैं अकरुन कोही। आगें अपराधी गुरु द्रोही।।
उतर देत छोड़उँ बिनु मारें। केवल कौसिक सील तुम्हारें।।[१८८]

उपर्युक्त पंक्तियों में रस का पूर्ण निर्वाह नहीं हुआ है क्योंकि विश्वामित्र के शील के कारण स्थायी भाव क्रोध का पूर्ण परिपाक नहीं हो पाया है अतः यहाँ भाव ध्वनि की स्थिति प्रकट होती है।

(ख) संलक्ष्यक्रमव्यंग्य ध्वनि- इसमें वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ के बोध का क्रम स्पष्ट आभासित होता है। प्रकारान्तर से इसे अनुरणनमूला ध्वनि की संज्ञा भी दी जाती है क्योंकि जिस भाँति घंटे पर आघात करने से टंकार के बाद सूक्ष्म ध्वनि की प्रतीति होती है उसी भाँति इस ध्वनि में वाच्यार्थ से स्वतः व्यंग्यार्थ ध्वनित होता है। शब्द, अर्थ और उभय व्यंजना से व्युत्पन्न होने के कारण इसके तीन प्रकार होते है। इसमें वस्तुध्वनि और अलंकार ध्वनि का प्राधान्य होता है। इसमें व्यंजित वस्तु या अलंकार वाच्य की तुलना में अधिक चमत्कृत करता है।

वस्तु ध्वनि- जहाँ किसी वस्तु या घटनादि की व्यंजना प्रस्तुत की जाती है वहाँ वस्तु-ध्वनि होती है यथा-

मोरे जियँ भरोस दृढ़ सोई। मिलिहहिं राम सगुन सुभ होई।।
बीतें अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना।।[१८९]

यहाँ शुभ शकुन वस्तु की द्योतक है इसके माध्यम से प्रतीक्षातुर भरत की अवस्था की व्यंजना व्यंजित की गई है अतः यहाँ वस्तु ध्वनि है।

अलंकार ध्वनि- शब्द और अर्थ को कविता के कलेवर के रूप में मान्यता दी गई है। प्रकारान्तर से इन्हें अलंकार्य भी कहा जाता है। जिन उपकरणों उपादानों या साधनों के द्वारा इनका अलंकरण किया जाता है वे अलंकार कहलाते है। निम्न पंक्ति में सीता का रूप अलंकार्य तथा उपमान विधान अलंकार के रूप में प्रस्तुत किया गया है अतः यहाँ अलंकार ध्वनि है।

सुन्दरता कहुँ सुन्दर करई। छबिगृहँ दीपसिखा जनु बरई।।[१९०]

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि तुलसी ने ध्वनि के समीचीन और उपयुक्त प्रयोग से सम्यक रसाभिव्यंजना प्रस्तुत की है। नाद सौन्दर्य के कुशल और कलात्मक प्रयोग ने उनके काव्य को सजीवता और जीवन्तता प्रदान की है। ध्वनियों का चातुर्यपूर्ण और शास्त्रानुसार प्रयोग उनके अभिव्यंजनात्मक कौशल को स्पष्ट करता है।

वक्रोक्ति- वक्रोक्ति का आशय मात्र कथन की वक्रता या काल्पनिक उड़ान नहीं होता। वक्रोक्ति का अभिप्राय कथन के उस विचित्र और अनूठे ढंग से है जो श्रोता को सहजाकृष्ट करने में समर्थ होता है तथा विषय के ज्ञान के साथ-साथ तद्भव भावों को सम्यक रूपेण व्यंजित करता है। इन उक्तियों को लक्षणा, व्यंजना शक्तियों तथा काकु पर्यायोक्ति अलंकारों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। तुलसी साहित्य में ऐसी उक्तियों का बाहुल्य उपलब्ध है। तुलसी काव्य में उक्ति का सौन्दर्य भाव-व्यंजना और वस्तु-व्यंजना इन दो प्रकारों में मिलता है।

एक चित्र प्रस्तुत है जिसमें दशरथ की दारुण दशा और पीड़ा की अनूठी व्यंजना दर्शित की गई है। राम के वियोग में आकुल दशरथ अत्यन्त मार्मिक वाणी में सुमन्त से कहते हैं कि हे सुमंत! तुम या तो मेरे प्रिय पुत्रों को मेरे समक्ष लाकर मुझे उनके साथ ही जीवित रखो अथवा मृत्यु रूपी अमृत का पान करा दो।

सुनि सुमंत कि आनि सुन्दर सुवन सहित जिआउ।
दास तुलसी नतरु मोको मरन अमिय पिआउ।।[१६१]

ऐसी ही मार्मिक उक्ति के माध्यम से तुलसी वेदना विह्वल कौशल्या की व्यथा का चित्र खींचते हैं- राम के वनगमनोपरान्त पति स्वर्गलोक सिधार गये, भरत ने मुनिव्रत ले लिया है। ऐसी स्थिति में कौशल्या ही अकेली अयोध्या में रह गई हैं। अपनी आत्मग्लानि को व्यंजित करती कौशल्या का कथन है कि अब यह घर श्मशान की भाँति प्रतीत हो रहा है इसकी प्रज्वलित अग्नि में मुझे अब तक जल जाना चाहिए था किन्तु ऐसा लगता है कि मैंने स्वयं अपनी मृत्यु के शव को इसमें जला दिया है। कहने का आशय है कि इतनी विषम परिस्थिति में भी मुझे मृत्यु नहीं आई। इस प्रकार की अभिव्यक्ति तुलसी के कौशल को प्रकट करती है।

पति सुरपुर सिय राम लखन वन मुनि व्रत भरत गह्यो।
हौ घर रहि मसान पावक ज्यों मरिबोई मृतक दह्यो।।[१६२]

एक अन्य उदाहरण में वक्रोक्ति की सुन्दर अभिव्यंजना मननीय है। राम जटायु से अनुरोध करते हैं कि आप सीता-हरण की घटना को पिताश्री से न कहें। यदि मैं राम हूँ तो अपने कुल सहित पिता के समक्ष आकर सम्पूर्ण कथा कहूँगा। यहाँ अनूठे ढंग से राक्षसों के विनाश और राम की विजय का अंकन किया गया है-

सीता हरन तात जनु, कह्यौ पिता सन जाइ।
जो मैं राम त कुल सहित, कहिय दसानन आइ।।[१६३]

एक अन्य साधारण उक्ति में तुलसी ने असाधारणत्व को निहित कर दिया है यथा-

किये न कछू, करिबो न कछू, कहिबो न कछू मरिबोई रह्यो है।

उपादान लक्षणा के उदाहरण हिंदी साहित्य में अत्यल्प रूप में उपलब्ध होते हैं देखिये दो चित्र-

(क) बड़े ही समाज आज राजनि की लाजपति
हाँकि आँक एक ही पिनाक छीनि लई है।।[१६४]

(ख) तुलसी बैर सनेह दोउ रहित बिलोचन चारि।[१६५]

शरणागत की सुरक्षा प्रत्येक व्यक्ति का सर्वप्रमुख कर्तव्य है तुलसी ने इसकी व्यंजना वक्रोक्ति के माध्यम से तिनके का उदाहरण लेकर अत्यन्त चातुर्यपूर्ण और कुशल ढंग से अभिव्यंजित की है।

तुलसी तृन जल-कूप को निरबल निपट निकाज।
कै राखै कै संग चलै, बाँह गहे की लाज।।[१६६]

इस प्रकार उपर्युक्त अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी का काव्य ऐसी उक्तियों से परिपूर्ण है। वक्रोक्तियों के माध्यम से तुलसी ने भावों, स्थितियों, दशाओं और वस्तुओं की सशक्त अभिव्यक्ति चित्रित की है। उक्तियों की वक्रता एक अनूठे सौन्दर्य की व्यंजना करने में समर्थ होती है। तुलसी काव्य को अनूठा चारुत्व प्रदान करने में उनकी वक्रोक्तियों के महत्व को नकारा नहीं जा सकता है।

(छ) औचित्य

औचित्य को परिभाषित करते हुये **आचार्य क्षेमेन्द्र** का अभिमत है **"जो वस्तु किसी अन्य वस्तु के सदृश अर्थात अनुरूप होती है, उसे आचार्य उचित कहते हैं। उचित का जो भाव है वह औचित्य कहलाता है।"[१६७]**

जीवन और साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में औचित्य का अपना विशिष्ट महत्व है क्योंकि कोई पदार्थ या वस्तु निरपेक्ष होकर सुन्दर की श्रेणी में नहीं आती। दूसरी अन्य वस्तुओं के अनुरूप वस्तु ही सुन्दर या असुन्दर की संज्ञा पाती है। सौन्दर्य वर्धक तत्वों के सम्बन्ध में भी यही बात सत्य सिद्ध होती है। वे यदि परिवेश और स्थिति के अनुरूप प्रयुक्त होते हैं तो वे सौन्दर्य की वृद्धि में सहायक होते हैं अन्यथा वे सौन्दर्य का ह्रास ही करते हैं। उदाहरणार्थ यदि कोई कटि में हार तथा कंठ में मेखला धारण कर ले तो अशोभन ही प्रतीत होगा। सधवा को विधवा और विधवा को सधवा की भाँति आभूषणों से युक्त और रहित करना जिस प्रकार उपहास की बात होगी उसी प्रकार दुर्बल के प्रति वीरता और शत्रु के समक्ष कायरता का भाव औचित्यपूर्ण नहीं माना जा सकता। अर्थात् बिना औचित्यपूर्ण नियोजन के अलंकार अथवा गुण शोभावृद्धि में सहायक नहीं होते।

काव्य में गुण, शक्ति, भाषा, रस अलंकारादि का औचित्यपूर्ण संयोजन ही काव्य को श्रेष्ठत्व की संज्ञा दिलाता है। काव्य के प्रत्येक अंग हेतु औचित्य का निर्वाह अत्यन्त आवश्यक है। **आचार्य क्षेमेन्द्र**

ने औचित्य का विशद विवेचन प्रस्तुत कर उसके २८ प्रकारों को मान्यता दी है। यथा-पद, वाक्य, प्रबन्धार्थ, अलंकार, रस, प्रतिभा, अवस्था, गुण, विचार, अभिप्राय, स्वभाव, सार-संग्रह, नाम, क्रिया, कारक, वचन, विशेषण, उपसर्ग, लिंग, निपात, देश, कुल, काल, सत्व, तत्व, व्रत, आशीर्वाद तथा अन्य काव्यांग।

तुलसी का सम्पूर्ण काव्य औचित्य के धरातल पर ही अवस्थित है। सर्वथा औचित्य पूर्ण अभिव्यक्ति के कारण ही उन पर नैतिकतायुक्त उपदेशात्मक आदर्शवादी साहित्य सर्जना का आरोप आरोपित किया जाता है। तुलसी काव्य में सर्वत्र क्रियापदों, विशेषणों, शब्दों, नामों, अलंकार, गुणादि अन्य तत्वों का औचित्यपूर्ण समन्वय उनकी प्रतिभा को स्पष्ट संकेतित करता है। काव्यांगों का औचित्यपूर्ण निवेशन उनका निजी वैशिष्ट्य है जो उन्हें समकालीन अन्य कवियों से अलग कर शीर्ष स्थान का अधिकारी बना देता है। भावों और अनुभूतियों की इतनी औचित्यपूर्ण सक्षम अभिव्यक्ति शायद तुलसी के वश की ही बात थी।

तुलसी काव्य में सर्वत्र औचित्य की स्थिति व्यंजित हुई है। राम के वंश का उल्लेख तुलसी ने अत्यन्त सरल किन्तु औचित्य पूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है यथा-

१. रघुबंसिन्ह महुँ जहँ कोउ होई। तेहि समाज अस कहइ न कोई।।

२. रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरु बचन न जाई।।[१९८]

पदगत औचित्य का निर्वाह अत्यन्त मनोहर ढंग से निम्न अर्द्धाली में तुलसी ने किया है यथा-

कहँ कुंभज कहँ सिंधु अपारा। सोखेउ सुजसु सकल संसारा।।[१९९]

इसमें कुंभज पद का प्रयोग अगस्त्य के लिये किया गया है जो समुद्र से अन्तर बताने के लिये प्रयुक्त हुआ है। इसी भाँति राम के वियोग में आकुल दशरथ सुमन्त के लिये सखा शब्द का प्रयोग करते हैं जो भाव सौन्दर्य को द्विगुणित करने में पूर्ण सक्षम है-

सखा रामुसिय लखनु जहँ, तहाँ मोहि पहुँचाउ।
नाहिन चाहत चलन अब, प्रान कहउँ सतिभाउ।।[२००]

प्रसंगोचित गुणयुक्त भाषा का सर्वाधिक प्रयोग तुलसी काव्य में ही उपलब्ध होता है। यथा प्रस्तुत है भगवान राम के शैशव का वर्णन जिसमें प्रसाद और माधुर्य अपने पूर्ण औचित्य के साथ व्यंजित हुये हैं-

काम कोटि छबि स्याम सरीरा। नीलकंज बारिद गंभीरा।।
अरुन चरन पंकज नख जोती। कमल दलन्हि बैठे जनु मोती।।
रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहे। नूपुर धुनि सुनि मुनि मन मोहे।।
उर मनिहार पदिक की सोभा। विप्र चरन देखत मन लोभा।।
कंबु कंठ अति चिबुक सुहाई। आनन अमित मदन छबि छाई।।
दुइ दुइ दसन अधर अरुनारे। नासा तिलक को बरनै पारे।।

चिक्कन कच कुंचित गभुआरे। बहु प्रकार रचि मातु सँवारे।।[201]

जहाँ कवि प्रसंगानुरूप नाम का उल्लेख करता है वहाँ नामगत औचित्य होता है। कलिकाल रूपी व्याल से ग्रसित भक्त गरुड़गामी ईश्वर की शरण में सार्थकता पा सकता है क्योंकि गरुड़ को देखकर व्याल का पलायन करना स्वभावोचित है यथा-

मैं अपराध सिंधु करुनाकर जानत अंतरजामी।
तुलसिदास भव-व्याल-ग्रसित तव सरन उरग-रिपुगामी।[202]

इसी भाँति भ्रम को हरने की प्रार्थना में हरि शब्द का प्रयोग किया गया है जिसका अर्थ स्वयं हरण करने वाला है।

हे हरि कस न हरहु भ्रमभारी।
जद्यपि मृषा सत्य भासै जब लगि नहिं कृपा तुम्हारी।।[203]

श्रृंगार और प्रेम वर्णन में तुलसी ने अत्यधिक सावधान होकर औचित्य का निर्वाह किया है। उनकी अभिव्यक्ति चरम उत्कर्ष को व्यंजित करने में भी मर्यादा का साथ नहीं छोड़ती। प्रेम-प्रसंगों को तुलसी ने अत्यधिक मर्यादोचित ढंग से अंकित किया है। ग्राम-वधुओं की प्रेमानुभूति का चित्र खींचते हुये तुलसी कहते हैं-

ऐसी मनोहर मूरति ये बिछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है।
आँखिन में सखि, राखिबे जोग इन्है किमि कै बनवास दियो है।।[204]

च र मआसक्ति का अंकन भी तुलसी पूर्ण औचित्य के साथ व्यंजित करते हैं। यथा प्रस्तुत है एक चित्र-

धरि धीर कहैं, चलु देखिय जाइ जहाँ सजनी रजनी रहिहैं।
कहिहैं जग पोच न सोच कछू, फल लोचन आपन तौ लहिहैं।।
सुख पाइहैं, कान सुने बतियाँ कल आपुस में कछु पै कहिहैं।
तुलसी अति प्रेम लगी पुलकैं, पुलकीं लखि राम हिए महिहैं।।[205]

वाटिका प्रसंग में तुलसी ने राम और सीता के पूर्वराग को चित्रित किया है। प्रेम और हास्य का इतना औचित्यपूर्ण वर्णन अन्यत्र दुर्लभ ही है। राम, सीता के रूप सौन्दर्य को देखकर आकर्षित हो जाते हैं। कहीं लघु भ्राता इस आकर्षण और आसक्ति को अन्यथा न ले, लें इस कारण राम अत्यत औचित्यपूर्ण तरीके से लक्ष्मण से कहते हैं

(क) **सिय सोभा हिय बरनि प्रभु आपनि दसा बिचारि।**
बोले सुचि मन अनुज सन, बचन समय अनुहारि।।[206]

(ख) **जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज, पुनीत मोर मन क्षोभा।।**
सो सब कारण जान बिधाता। फरकहिं सुभग अंग सुनु भ्राता।।
रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मन कुपन्थ पगु धरै न काऊ।।

मोहि अतिशय प्रतीत मन केरी। जेहि सपनेहु परनारि न हेरी।।[२०७]

इसी प्रकार राम के सौन्दर्य से मुग्ध हो सीता प्रेमाधिक्य के कारण अपनी आँखें बन्द कर लेती हैं। इस पर एक सखी अत्यंत विनोद के साथ कहती है कि सीता ! पहले राजकुमारों को तो देख लो, पार्वती जी का स्मरण बाद में भी किया जा सकता है। अत्यधिक लाज और संकोच के कारण सीता धीरे-धीरे अपने नेत्र खोलती हैं। हास्य के औचित्य का कितना सुन्दर निर्वाह तुलसी ने व्यंजित किया है?

धरि धीरज एक आलि सयानी। सीता सन बोली गहि पानी।।

बहुरि गौरि करि ध्यान करेहू। भूप किसोर देखि किन्ह लेहू।।

सकुचि सीय तब नयन उघारे। सनमुख दोउ रघुसिंघनिहारे।।[२०८]

राम के रूप को देखकर सीता अत्यंत हर्षित हो उठती हैं लेकिन तभी उन्हें पिताजी की कठोर प्रतिज्ञा याद आ जाती है और वे अत्यन्त दुखी हो जाती हैं। इस पर एक सखी व्यंग करती हुई कहती है-

परबस सखिन्ह लगी जब सीता। भयउ गहरु सब कहहिं सभीता।।

पुनि आउब एहि बेरिआँ काली। अस कहि मन बिहँसी एक आली।।[२०९]

यह कहना असंगत न होगा कि औचित्य का सर्वोत्कृष्ट निर्वाह पुष्प वाटिका प्रसंग में उपलब्ध है।

अलंकारों का औचित्यपूर्ण अंकन सम्पूर्ण तुलसी काव्य में परिलक्षित होता है। तुलसी ने अलंकारों को प्रस्तुत अर्थ के अनुरूप ही वर्णित किया है। रामादि शिशुओं के शोभा-निरूपण में तुलसी ने वर्ण्य के अनुरूप साम्य का चित्र उकेरा है-

भूमि तल भूप के बड़े भाग।

राम लखन रिपुदमन भरत सिसु निरखत अति अनुराग।।

बाल बिभूषन लसत पाइ मृदु मंजुल अंग बिभाग।।

दसरथ सुकृत मनोहर बिरवनि रूप करह जनु लाग।।[२१०]

इसमें रामादि शिशुओं की उत्प्रेक्षा दशरथ के पुण्य तक के अंकुरों से प्रस्तुत की गई है। जिससे एक ओर शिशुओं के कोमल कान्त कलेवर तथा दूसरी ओर उनकी पुण्यमयता का प्रत्यक्षीकरण होता है। तुलसी ने एक अन्य प्रसंग में क्रोधान्ध कैकेयी के लिये उफनाती नदी के सांगरूपक द्वारा अत्यन्त प्रसंगानुकूल चित्रण प्रस्तुत किया है-

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी। मानहु शेष तरंगिनि बाढ़ी।।

पाप पहार प्रगट भइ सोई। भरी क्रोध जल जाइ न जोई।।

दोह बर कूल कठिन हठ धारा। भवँर कूबरी बचन प्रचारा।।

ढाहत भूप रूप तरु भूला। चली बिपति बारिधि अनुकूला।।[२११]

तुलसी ने अलंकारों को अनौचित्य पूर्ण ढंग से केशव की भाँति प्रयोग नहीं होने दिया। उनके अलंकार औचित्यपूर्ण ढंग से भावों का निदर्शन कराने में सफल रहे हैं। क्रिया-व्यापारों एवं चरित्र

की प्रसंगानुकूल अभिव्यक्ति में उनके सम्यक अलंकार प्रयोग ने सहयोगी की भूमिका निभाई है।

तुलसी के काव्य में सभी काव्यांगों का औचित्यपूर्ण निदर्शन मिलता है। संज्ञा, विशेषण तथा क्रियापदों को भाव और परिस्थिति के अनुरूप ही प्रयुक्त किया गया है। तुलसी काव्य का प्रत्येक शब्द प्रसंगानुकूल विशिष्ट भावों का बोध कराने में पूर्ण समर्थ है। प्रकारान्तर से हम कह सकते हैं कि सम्पूर्ण तुलसी काव्य में औचित्य का सौन्दर्य दृष्टिगोचर होता है। किसी भी कवि का काव्य तभी हमारे मानस को प्रभावी ढंग से उद्वेलित कर सकता है जब उसमें सभी काव्यांगों का औचित्यपूर्ण समन्वय होता है। यह बात तुलसी काव्य पर पूर्ण रूपेण सत्य उतरती है। यही कारण है कि तुलसी का काव्य सम्पूर्ण विश्व जनमानस पर एक विशिष्ट प्रभाव छोड़ता है और उनको जन-जन का कवि बना देता है। औचित्य के धरातल पर सर्वथा अवस्थित उनकी अभिव्यक्ति लोक मंगल का संदेश प्रसारित करती है।

उपर्युक्त विवेचन से यह पूर्णतः स्पष्ट है कि तुलसी काव्य में अभिव्यंजनात्मक सौन्दर्य अपनी पूर्ण गरिमा और उत्कर्ष के साथ व्यंजित हुआ है। जिसकी ललिताभा जनमानस को सौन्दर्य की उदात्तता और सात्विकता से परिचित कराती है।

❑❑❑

संदर्भ

१. दोहावली पृष्ठ ५७२

२. डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव, तुलसीदास की भाषा पृष्ठ ५,

३. विनयपत्रिका, ५७

४. रामचरितमानस २/२ (श्लोक)

५. कवितावली ६/३६

६. विनयपत्रिका १८६

७. कवितावली १/१५

८. रामनरेश त्रिपाठी, तुलसीदास और उनका युग पृष्ठ ४०७

९. मानस २/१८/४

१०. मानस २/५४/२

११. मानस २/१६२/१

१२. कवितावली ७/६

१३. मानस १/२६०/२

१४. गीतावली १/३०

१५. कवितावली ६/४०

१६. डॉ० इन्द्रपाल सिंह इन्द्र, तुलसी साहित्य और साधना पृष्ठ २०६

१७. गीतावली ५-८

१८. मानस १-२५८

१९. मानस २/८२/४

२०. गीतावली २/७१

२१. गीतावली ७/२६

२२. कवितावली

२३. गीतावली ७/२

२४. मानस

२५. मानस

२६. कवितावली १/१

२७. गीतावली १/३०

२८. गीतावली १/१२

२९. मानस १/२०३

३०. श्रीकृष्णगीतावली ५

३१. गीतावली २/५२

३२. आचार्य चन्द्रबली पाण्डे, तुलसीदास पृष्ठ १५६

३३. मानस २/१५५/३

३४. कवितावली ७/३१

३५. कवितावली १/२७

३६. कवितावली ६/६४

३७. कवितावली ६/६

३८. कवितावली ६/५०

३९. कवितावली २/२८

४०. मानस १/२५२/३

४१. मानस १/२५३

४२. कवितावली ५/३२

४३. मानस ५/४६/ख

४४. गीतावली ३/१३/१

४५. गीतावली १/५२/६

४६. मानस २/५७/३

४७. कवितावली २/२३

४८. मानस १/८४/१

४९. श्रीधर सिंह का लेख तुलसी की कारयित्री प्रतिभा से उद्धृत तुलसी सं. उदयभानु सिंह पृष्ठ १३२-१३३

५०. मानस १/७६/४

५१. गीतावली १/७७

५२. आचार्यशुक्ल, चिन्तामणि (१) पृष्ठ १४७/१४८

५३. असीम मधुपुरी, महादेवी काव्य के विविध आयाम पृष्ठ ९६
५४. गीतावली ७/२०
५५. पार्वतीमंगल ९६/९८
५६. विनयपत्रिका २२
५७. विनयपत्रिका २१
५८. गीतावली १२
५९. कवितावली १/४
६०. गीतावली १/२७
६१. जानकीमंगल १२-१३
६२. कवितावली ५/८
६३. कवितावली ५/६
६४. कवितावली ६/४१
६५. कवितावली १/३
६६. कवितावली २/१४
६७. विनयपत्रिका २
६८. विनयपत्रिका २८
६९. बरवैरामायण ४-५
७०. कवितावली २/११
७१. बरवै रामायण
७२. जानकी मंगल १५८
७३. जानकी मंगल ९१-९२
७४. गीतावली १/१०३
७५. कृष्णगीतावली ४३वाँ पद
७६. विनयपत्रिका
७७. गीतावली १/६५
७८. कृष्णगीतावली ४७ वाँ पद
७९. विनयपत्रिका
८०. गीतावली ५/१९
८१. कवितावली ६/८
८२. विनयपत्रिका पद ९
८३. गीतावली १/७६
८४. विनयपत्रिका पद ११६
८५. कृष्णगीतावली पद संख्या २३
८६. गीतावली ७/२३
८७. गीतावली ५/४९
८८. कृष्णगीतावली पद संख्या १४
८९. जानकी मंगल ८७
९०. विनयपत्रिका पद १४९
९१. गीतावली १/२६
९२. गीतावली १/३२
९३. कवितावली २/१६
९४. कवितावली ५/५
९५. गीतावली २/२४
९६. विनयपत्रिका पद ३०
९७. बरवै रामायण ३१
९८. विनयपत्रिका पद १४०
९९. मानस १/२१
१००. दोहावली १४४
१०१. जानकीमंगल ९७
१०२. विनयपत्रिका पद १९६
१०३. कवितावली २/४
१०४. कवितावली २/२७
१०५. मानस ६/१३/१-२
१०६. वैराग्य संदीपनी ४१
१०७. दोहावली १११
१०८. गीतावली २/५२/१
१०९. कवितावली ७/१४५
११०. गीतावली १/३२५/८-९
१११. मानस १/१
११२. मानस २/४७
११३. कृष्णगीतावली ६१
११४. गीतावली ६/१५
११५. गीतावली २/५३
११६. कृष्णगीतावली ५९
११७. विनयपत्रिका

११८. कवितावली ६/४२

११९. कवितावली ६/४७

१२०. कवितावली ६/४४

१२१. हनुमान बाहुक ४

१२२. कवितावली २/२५

१२३. बरवै रामायण ३१

१२४. पार्वतीमंगल ६७

१२५. मानस १/१०/१

१२६. मानस १/१०/२

१२७. मानस १/१

१२८. मानस १/२६४

१२९. मानस १/२३६

१३०. मानस ६/६४

१३१. मानस १/१८५/१

१३२. मानस १/१८४

१३३. मानस ६/१००/१

१३४. मानस ३/१६/१

१३५. मानस ६/११२/१

१३६. मानस ६/११४/१

१३७. मानस ७/६वां श्लोक

१३८. मानस २/३रा श्लोक

१३९. मानस ७/१३ख छंद

१४०. मानस ५/३ श्लोक

१४१. मानस ७/२रा श्लोक

१४२. मानस ७/१०७/१

१४३. मानस २/२

१४४. मानस १/७

१४५. मानस ६/१

१४६. मानस १/६

१४७. मानस ७/१२२ ग श्लोक

१४८. जानकी मंगल १३८

१४९. जानकी मंगल १२५

१५०. मानस १/२३२

१५१. मानस १/२५४

१५२. गीतावली ७/२०/२

१५३. मानस १/२६३

१५४. मानस २/२१५

१५५. विनयपत्रिका १६७

१५६. मानस १/२६७

१५७. मानस २/३६

१५८. मानस ३/२८/४

१५९. मानस १/१२५

१६०. मानस २/१४५/२

१६१. मानस २/६२/३-४

१६२. मानस २/४५/३

१६३. मानस २/२५१

१६४. मानस २/२०३

१६५. मानस २/१६१

१६६. मानस १/३५६

१६७. गीतावली ५/२०

१६८. कवितावली २/२२

१६९. मानस ६/६१

१७०. कवितावली १/१

१७१. गीतावली २/१०

१७२. साहित्यदर्पण ८/७,८

१७३. गीतावली १/४१

१७४. गीतावली ५/२२/२

१७५. गीतावली ५/२२/४

१७६. मानस १/२३०/१,२

१७७. गीतावली १/२८/१,२

१७८. गीतावली २/४४/१,२,३

१७९. इदमित्तमतिशयनि व्यंग्ये वाच्याद ध्वनिर्बुधैः कथितः। काव्यप्रकाश १/२

१८०. यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुप सर्जनीकृत स्वार्थो व्यक्तः काव्य विशेषः सध्वनिरिति सूरिभिः कथितः। ध्वन्यालोक १/१३

१८१. वाच्यातिशयनि व्यंग्ये ध्वनिः।
साहित्यदर्पण ४/१
वाच्यादधिक चमत्कारिणि व्यंग्यार्थेध्वन्यस्ते ऽस्मिन्निति।
व्युत्पत्त्याध्वनिर्नामोत्तमं काव्यम। सा० द० ४/१ की विवृत्ति

१८२. संयोग वियोगाभ्यांकारणैरूपजायते।
यः स्फोट शब्दजः शब्दो ध्वनिरिति उच्यते बुधैः।। वाक्यपदीय

१८३. मानस ३/३१

१८४. मानस १/२८०/२

१८५. मानस २/५६/३

१८६. मानस २/६०/२

१८७. मानस २/११७/३,४

१८८. मानस १/१७५/३,४

१८९. मानस ७/१/४

१९०. मानस १/२३०/४

१९१. गीतावली २/५७/४

१९२. गीतावली २/६४

१९३. मानस ३/३१

१९४. गीतावली १/८५/१

१९५. दोहावली ३२६

१९६. दोहावली ५४४

१९७. उचितं प्राहुराचार्याः सदृशं किल यस्यवत्।
उचितस्य हियो भावस्तदौचित्यं प्रचक्षते।-

१९८. मानस २/२७/१

१९९. मानस १/२५५/४

२००. मानस २/१४६

२०१. मानस १/१६८/१,४,५

२०२. विनयपत्रिका ११७

२०३. विनयपत्रिका १२०

२०४. कवितावली २/२०

२०५. कवितावली २/२३

२०६. मानस १/२३०

२०७. मानस १/२३०/२-३

२०८. मानस १/२३३/१-२

२०९. मानस १/२३३/३

२१०. गीतावली १/२६/१-२

२११. मानस २/३३/१-२

●●●

नवम अध्याय

तुलसी की सौन्दर्याभिव्यक्ति का प्रभाव

(क) साहित्य एवं कला पर

(ख) समाज एवं संस्कृति पर

(ग) सौन्दर्याभिव्यक्ति के क्षेत्र में तुलसी का स्थान

(क) साहित्य एवं कला पर

जो अनन्त सौन्दर्य से युक्त होता है, उसका सर्वत्र प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है फिर चाहे जड़ हो या चेतन उससे अछूता नहीं रह सकता। तुलसी का समूचा साहित्य उस अगाध और अथाह सिन्धु की भांति है जिसमें जन कल्याण की शुभ्र और अभिनव उर्मियाँ अठखेलियाँ कर रही हैं। इसमें कितनी ही छोटी बड़ी सरितायें आकर क्यों न मिल जायें, ये सब समुद्र को उद्वेलित नहीं कर सकतीं। ठीक इसी प्रकार तुलसी के समूचे वांग्मय के असीमित प्रशान्त रत्नाकर में समकालीन और पूर्वकालीन साहित्य की अनेक विधाओं की स्वाभाविक अभिव्यक्तियों ने तुलसी के मानस को क्षुभित नहीं कर पाया है वरन उन सबको अपने में आत्मसात करके अपनी सौन्दर्याभिव्यक्ति को अनेकानेक आकर्षक भंगिमाओं में सहज रूप से उद्घाटित करके उसे और अधिक जीवन्त और अलौकिक बना दिया। कालान्तर में यही अखण्ड सौन्दर्य तत्व प्राणों की ऊष्मा प्राप्तकर हिमगिरि के सांस्कृतिक शिखरों का स्पर्श पाकर, करुणार्द्र और द्रवीभूत होकर सर्वसृष्टि कल्याण-कारिणी सुरसरि के रूप में प्रवाहित हो उठा जिसमें तीनों लोकों के उद्धार की क्षमता विद्यमान है।

ऐसी पूर्णता को प्राप्त साहित्य का प्रभाव परवर्ती साहित्य पर न पड़े, यह असंभव है। साहित्य की सरस धारा अनवरत रूप से इस लोक में प्रवहमान होती रहती है। यह श्रेष्ठता के उत्तुंग शिखरों का स्पर्श करके अपने में जो उदात्त भाव सन्निहित रखती है, उसी की अभिव्यक्ति का प्रभाव साहित्य की विभिन्न विधाओं पर अवश्यमेव पड़ता है।

यह तो सर्वविदित है कि साहित्य जीवन के लिये है और जीवन साहित्य के लिये। वे एक दूसरे के पूरक हैं एक रहते भी अनेक। इन दोनों का परस्पर अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। इसलिये लोक की प्रत्येक छोटी बड़ी अथवा सद और असद घटना को प्रभाव दोनों पर पड़ना सहज और नैसर्गिक है। किन्तु जैसे जब दर्पण धूल धूसरित हो जाता है तब उसमें दर्शक अपनी सुस्पष्ट प्रतिच्छवि नहीं देख पाता पर, जब उसकी मलिनता हटा दी जाती है तब दर्शक को आत्म स्वरूप का यथार्थ बोध हो उठता है। अस्तु साहित्य के दर्पण पर समाज की मलिनता की धूल न पड़ने पाये, यही हितकर है अन्यथा उसमें हम सब अपना वास्तविक स्वरूप नहीं देख पायेंगे। यद्यपि सृष्टि में न तो कुछ श्लील है और न ही कुछ अश्लील। केवल दृष्टिकोण से ही कोई वस्तु हमें रंगीन चश्में की भांति उसी रंग की दृष्टिगोचर होने लगती है जिस रंग का चश्मा होता है जबकि उसका मूल स्वरूप कुछ और ही होता है तो भी हमें प्राणहर्ता विष का परित्याग और प्राणदायी अमृत का पान करना ही होगा।

साहित्य पर, तुलसी की सौन्दर्याभिव्यक्ति का ही प्रभाव है जिसके कारण परवर्ती साहित्यकारों ने शील, शक्ति और सौन्दर्य को अपना आदर्श बनाया इसीलिये आज तक साहित्य में सत्यं, शिवं और सुन्दरम् की

अक्षय और अखण्ड भावना विद्यमान है। तुलसी के परवर्ती साहित्य में जहाँ-जहाँ हमें उदात्त भावना का दर्शन दृष्टिगोचर होता है वहाँ-वहाँ तुलसी के प्रदेय को विस्मृत नहीं किया जा सकता है।

न केवल राम कथा पर आधारित साहित्य में यह अभिव्यंजना सुस्पष्ट दृष्टिगोचर होती है वरन भक्तिकाल के समूचे फलक पर इसे भली-भांति देखा जा सकता है। राज्याश्रय, सुखसुविधा और कंचन कामिनी के सौन्दर्य पर मुग्ध कुछ कवियों ने अवश्य रीतिकाल में मलिनता का विस्तार किया। किन्तु यह अधिक दिनों तक न टिक सकी। असत् भावनाओं का अस्तित्व क्षणिक ही होता है, स्थायी नहीं हो सकता। यही कारण है कि केवल आधुनिक युग के नई कविता के कुछ कवियों को छोड़कर शेष अन्य कवि एवं साहित्यकार तुलसी की ही सौन्दर्याभिव्यक्ति को प्रकारान्तर से अपना आदर्श मानते हैं। कोई नहीं चाहता कि समाज में असत की प्रतिष्ठा हो और सत अपमानित होकर मारा-मारा फिरता रहे बिल्कुल उपेक्षित की भाँति। वास्तव में यही प्रत्येक साहित्यकार का ध्येय भी है कि समाज में एकमात्र मर्यादा का वर्चस्व स्थापित रहे, उदात्तता को यश मिले और श्रेष्ठता की विजय-दुन्दुभी सदैव सर्वत्र बजती रहे।

सद्वृत्ति सारथी बनकर जब जीवन के रथ का कुशल संचालन करती है तभी मनुष्य के भीतर बैठी जीव आत्मा में परमात्मा का दिव्य भाव अभिव्यक्त होता है। असत की धूल उड़ती हुई दृष्टिगोचर होती है। तभी और तभी साहित्य के माध्यम से ज्ञानालोक विकीर्ण कर अन्धकार के सघन कुहरे को दूर किया जा सकता है। क्योंकि-

''जो करता तम अन्त, वही आदित्य है।
जो देता देवत्व, वही साहित्य है।''-युग कवि डॉ० रामस्वरूप खरे

जिस प्रकार कवि के अन्तर्जगत की भावनाओं का विमंथन करने पर उसके मानस-सिन्धु से साहित्य रूपी अमृत कलश प्रादुर्भूत होता है जिस के पान करने पर प्रत्येक प्राणी अमर हो सकता है। ठीक उसी प्रकार जब कोई कलाकार साहित्य में वर्णित छवियों का अनन्य भाव से चिन्तन और मनन करके उन्हें अपने मन मन्दिर में प्रतिष्ठापित करता है तभी निराकार विचारों को आकार मिलता है और विभिन्न उपकरणों के माध्यम से साहित्यकार की कल्पना कलाकार की अखण्ड साधना की ज्योति से मूर्तिमत हो भली भांति आलोकित हो उठती है। इसी का अभिधान 'कला' है।

स्थूल रूप से कला के दो प्रकार हैं। प्रथम उपयोगी कला और दूसरा ललित कला। इस प्रकार साहित्य और कला एक ही वर्ग के अवयव हैं। सहोदर और सहोदरा की भांति वे एक दूसरे के पूरक और अन्योन्याश्रित हैं। कला भी कुत्सित हो सकती है यदि उसके मूल में कलाकार की वासना, विद्यमान हो, किन्तु निखिल सृष्टि में समादरणीय मात्र वही हो सकता है जिसकी कला उदात्तता के शिखरों का संस्पर्श करती हो। दीप्ति, सुडौलता, अलंकृत सौन्दर्य, सहज और सामाजिक आकर्षण के साथ-साथ नैसर्गिकता का भाव एवं सफल और कुशल अभिव्यक्ति ही कला का समुच्चय है।

काव्य कला का आनन्द हम श्रवणेन्द्रिय द्वारा प्राप्त करते हैं जबकि नाट्य-कला का आनन्द हम नेत्रेन्द्रिय द्वारा प्राप्त करते हैं। एक श्रव्य है, दूसरा दृश्य। कला भी दृश्य है। बुरी से बुरी वस्तु भी कलाकार के कुशल करों का संस्पर्श पाकर अच्छी बन जाती है। कलाकार में 'कलयन' की क्षमता होती है। वह विष को भी अमृत के रूप में परिवर्तित कर सकता है। सच्चा साधक ही सच्चा कलाकार होता है। प्रत्येक कलाकार. साहित्य से संजीवनी शक्ति पाकर सदा सदा के लिये अमर हो जाता है।

साहित्य की भांति तुलसी की सौन्दर्याभिव्यक्ति का प्रभाव कला पर भी पड़ा। यही कारण है कि कोई साधारण पाषाण खण्ड प्राण-प्रतिष्ठा पाकर देवत्व की महिमा से अभिमण्डित हो मन्दिर में सबकी प्रणम्या और आराध्या मूर्ति के रूप में प्रतिष्ठित हो उठता है। इसमें भी सत्यं शिवं और सुन्दरम् की भावना व्याप्त रहती है। साहित्य की भांति कला ने भी भक्ति युग में अभिव्यक्ति की चरम सीमा को छूकर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध की है। स्थापत्य और मूर्ति कला ने दर्शकों को जो चाक्षुष आनन्द प्रदान किया, वह अतुलनीय है। अनेक भव्य विशाल और सुन्दर भवन एवं मन्दिर इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। इनमें वास्तुविदों की अनूठी, अद्भुत और अलौकिक क्षमता का उत्कर्ष दृष्टि गोचर होता है। परवर्ती मूर्तिकारों की कला आज भी क्षण क्षण रूप-सौन्दर्य की नवीनता को स्मरणीय स्वरूप प्रदान करती है। इसीलिये वह वर्तमान युग में दर्शनीय, स्मरणीय और पूजनीय है।

जैसे आज तक कोई तुलसी के मानस की थाह नहीं ले पाया है, उसी प्रकार उनके माप-दण्डों और आदर्शों पर प्रतिष्ठित कला को कोई भी 'इदमित्थं, नहीं कह पाया है। कला स्वयं में एक अखण्ड तत्व है। उसे खण्ड-खण्ड करके नहीं देखा जा सकता। समग्रता ही कला को पूर्णता प्रदान करती है। तुलसी की काव्य-कला ने जहाँ एक साधारण राजकुमार को असाधारणत्व का प्रदान करके 'रामत्व' दिया। अधमयोनि प्राप्त वानर को 'देवत्व' प्रदान किया उसी प्रकार तुलसी के परिवर्ती कलाकारों ने भी इसका अनुगमन किया। दुग्धपान करते हुए गोवत्स की मूर्ति को देखकर सममुच दूसरा बछड़ा दूध पीने हेतु उद्यत हो उठता है। इसी प्रकार स्तन्य पान कराती भोली-भाली माँ की ममतामयी मूर्ति दर्शनीय ही नहीं प्रणम्य है। इनमें भावों की उदात्तता है, उद्दामता नहीं। यही कारण है कि भावों की उद्दामता 'वासना' को जाग्रत करती है जबकि उदात्तता 'दिव्य-भाव' को उत्पन्न करती है।

सत्रहवीं और अठारहवीं सदी के अनेक चित्र मन्दिर और मूर्तियां इसके जीवन्त उदाहरण हैं।

कला मानव जीवन का श्रृंगार करती है। कला की एक हल्की सी छुअन से जड़ता में चेतनता आ जाती है। कला की अधिष्ठात्री जिधर अपने नयनों का उन्मेष करती है, उधर शत-शत सुन्दर प्रसून खिल उठते हैं। उसकी प्रतिच्छाया के पड़ते ही असुन्दर भी सुन्दर दृष्टिगोचर होने लगता है, उसका मन्द मधुर हास्य अभिनव सौन्दर्य का अधिवास बन जाता है।

नैतिकता, उदारता, विश्वविधुता, अपार करुणा, असीम निश्छल प्यार और प्राणिमात्र के कल्याण की कामना कला का ध्येय है। इस सन्दर्भ में दृष्टव्य हैं कुछ स्मरणीय पंक्तियाँ

''जो करे असुन्दर को सुन्दर, वह ही कहलाती यहाँ कला।
भावों को दिव्य रूप देती है कला वही जो करे भला।।''

(ख) समाज एवं संस्कृति पर

जैसे बिना समाज के कोई संस्कृति विकसित नहीं हो सकती है उसी प्रकार बिना संस्कृति के कोई समाज उन्नत नहीं हो सकता है। अतएव समाज और संस्कृति एक दूसरे के पूरक हैं। सुशिक्षित और सभ्य व्यक्तियों के समूह को ही समाज की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। यद्यपि अपढ़ और असभ्य व्यक्तियों का समूह भी समाज की परिधि में परिव्याप्त रहता है, पर उसे शिष्टता पाना अपेक्षित रहता है। मानवीय मूल्यों की संस्थापना करके ही ही कोई समाज संसार में समादृत हो पाता है। उत्तरोत्तर उन्नति और विकास की कामना इसके मूल में बनी रहती है तो भी जैसे भाषाविज्ञान में जीव-जन्तु और पशु-पक्षियों की ध्वनियों को 'भाषा' नहीं कहा जा सकता मात्र मनुष्यों के भावों के आदान-प्रदान के साधन को ही भाषा माना जाता है उसी प्रकार शिष्ट और आभिजात्य वर्ग की भाषा में ही उदात्त भाव सन्निहित रह पाते हैं। असभ्य और अशिष्ट लोगों की भाषा को परिष्कार की आवश्यकता होती है। भाषा समाज के लिये एक उपयोगी वस्तु है। इसके बिना विचारों की सार्थक अभिव्यक्ति असंभव है। अच्छी भाषा से अच्छे समाज का निर्माण होता है। इस प्रकार समाज पर भाषा का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। **भाषा से ही सद्साहित्य की निर्मिति होती है। साहित्य एक ऐसी ज्योति-शिखा है। जिसको थामकर मनुष्य-समूह अर्थात् पूरा का पूरा समाज अज्ञानान्धकार से विमुक्त होकर ज्ञानालोक में पदार्पण करके अपने जीवन को श्रेष्ठ बनाता है। साहित्य का समाज पर त्वरित प्रभाव पड़ता है।**

जैसे सभ्यता के अन्तर्गत विकसित होने वाली 'फैशन' समाज में तुरन्त अनुकरणीय हो जाता है। उसी प्रकार बुरे साहित्य का प्रभाव भी तत्क्षण एवं अवश्यंभावी होता है। यह रीतिकाल का साहित्य ही तो है जिसने तत्कालीन समूचे समाज की वासना के पंक में ढकेल दिया था। इस काल में नारी मात्र एक भोग की वस्तु बनकर रह गई थी। वीरगाथा काल भी तत्कालीन साहित्य से प्रभावित हुआ था। ठीक इसी प्रकार भक्ति काल और आधुनिक काल का समाज भी अपने-अपने युग के साहित्य से प्रभावित हुये बिना नहीं रह सका। इसी अर्थ में साहित्य समाज का दर्पण और समाज साहित्य की प्रतिच्छाया है।

प्रत्येक समाज चाहता है कि उसके अन्दर मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा हो और अमानवीय मूल्यों की अभिवृद्धि न हो क्योंकि यदि समाज में असद् वृत्ति को संरक्षण मिला तो पूरा का पूरा समाज उच्छृंखल और उद्दण्ड होकर अधः पतन के गर्त में जा गिरेगा। **समाज को 'रावणत्व' की नहीं 'रामत्व' की अपेक्षा है। श्रेष्ठ मानव-मूल्यों के द्वारा ही समाज में नीति और न्याय की प्रतिष्ठा की जा सकती है। तुलसी के पश्चात् जितने भी साहित्यकार हुये उन सबके साहित्य में तुलसी के उच्च** आदर्शो, मानवता वाद और नैतिकता की अक्षुण्ण धारा प्रवाहित हुई है क्योंकि वे सब भली भांति जानते थे कि तुलसी के आदर्श मानदण्डों की रक्षा करते हुये ही हम सब समाज को प्रगति के उच्चतम

शिखरों तक पहुँचा सकते हैं।

युग-युगों के ज्ञान की संचित राशि को संस्कृति कहते हैं। प्रत्येक देश की एक अपनी संस्कृति होती है। संस्कृति हमारी शुभ एवं असद भावनाओं का परिष्कार करके उदात्तता की ओर ले जाती है। उपनिषद्कार की निम्नांकित वाणी इसी ओर संकेत देती प्रतीत होती है। यथा- **'असतो मा सदगमय।' तुलसी के समूचे साहित्य का अवगाहन करने पर ज्ञात होता है कि उनका समूचा वांगमय सत्यं-शिवं-सुन्दरम से ओत-प्रोत है। उनके द्वारा सृजित पात्रों (जैसे राम, सीता, भरत, हनुमान) की परवर्ती साहित्य पर अमिट छाप है। तुलसी के परवर्ती सहित्यकारों ने इन्हीं से प्रेरणा लेकर अनेकानेक खण्डकाव्य, मुक्तक काव्य, महाकाव्य और प्रबन्ध काव्यों की सर्जना की, जिनके द्वारा सद्साहित्य का निर्माण हुआ। यह सद् साहित्य ही संस्कृति का प्राण तत्व सिद्ध हुआ है।**

सभ्यता का प्रभाव जहाँ अस्थायी होता है वहां संस्कृति का प्रभाव स्थायी और दूरगामी होता है। यह तुलसी साहित्य में सौन्दर्याभिव्यक्ति का ही कारण है जिससे आज शहर और गांव के प्रत्येक घर में अपने अपने वर्णानुसार राम की पूजा-अर्चना की जा रही है। इसी प्रकार तुलसी की सीता आज भारत की प्रत्येक नारी को आदर्श रूप में मान्य है। प्रत्येक माता-पिता अपने पुत्र को राम और पुत्री को सीता के रूप में देखना चाहता है क्योंकि इनमें मानवता का उत्कृष्ट रूप विद्यमान है।

माता-पिता और सम्पूर्ण परिवार के सदस्यों के साथ ही नहीं वरन् समूचे प्राणियों के प्रति हमारे मन में जो समादर, स्नेह और श्रद्धा का भाव है, वह तुलसी की सांस्कृतिक देन है।

सृष्टि के कण-कण में और प्रत्येक प्राणी के भीतर एक मात्र उसी पर ब्रह्म परमात्मा का अंश विद्यमान है इसीलिये वह चेतन है, योग्य है, विवेकवान है और साधना के द्वारा अपने साध्य को प्राप्त करने में सक्षम है। आज हमें कहीं वनों में सन्यासी बनकर जाने की आवश्यकता नहीं है। राम की भांति आदर्श एवं मर्यादित गृहस्थ जीवन में रहते हुये अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष की प्राप्ति कर सकते हैं। गृहस्थाश्रम समग्र आश्रमों से श्रेष्ठ और सब आश्रमों और वर्णों का पोषक है। पाश्चात्य युग की चकाचौंध से प्रभावित होकर भी वर्तमान युग में स्नान, ध्यान, पूजन, हवन-यज्ञ, तुलसी-परिक्रमा एवं मन्दिरों में जाकर देव-दर्शन करके हम सब किसी न किसी रूप में अपनी भारतीय संस्कृति का परिपालन करते चले आ रहे हैं। बड़े से बड़े भीषण अत्याचार और लोलुपों के आक्रमण हमें संस्कृति से विरत नहीं कर पाये हैं। आपसी भाई-चारा, पारस्परिक सौहार्द्र, सर्वधर्म समभाव, अतिथि देवो भव और मानवता के प्रति हार्दिक एवं सच्चा लगाव उत्कृष्ट मानव-मूल्य हैं। इन्हीं से मनुष्य मात्र में सेवा और भक्ति का प्राकट्य होता है। प्रगाढ़ अनुरक्ति ही सच्ची भक्ति में परिवर्तित हो जाती है। भारतीय संस्कृति पर आधारित चारों धाम, सप्त पुरियों एवं अन्यान्य तीर्थों के प्रति श्रद्धा का भाव तुलसी की अनूठी सांस्कृतिक देन है।

(ग) सौन्दर्याभिव्यक्ति के क्षेत्र में तुलसी का स्थान

जहां तक सौन्दर्याभिव्यक्ति के क्षेत्र में तुलसी के स्थान का प्रश्न है वहां हमें ऐसा मानना पड़ेगा कि जैसे आकाश में नीलिमा, पुष्प में सुगन्धि, पृथ्वी में सहिष्णुता, सागर में गम्भीरता और वायु में स्पर्शिता का भाव प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में सदा सर्वदा विद्यमान है उसी प्रकार पूर्ववर्ती एवं परवर्ती साहित्यकारों में तुलसी का अपना विशिष्ट महत्व है। क्या भाषा, क्या छन्द, क्या अलंकार और क्या अर्थ की प्रतीति और क्या रसाभिव्यक्ति तथा क्या रसानुभूति सभी में तुलसी अभूतपूर्व हैं। उन्होंने सभी प्रकार की प्रचलित और अप्रचलित शैलियों को अपनाकर उनमें समन्वय का प्रयत्न किया। सभी धर्म, सम्प्रदाय, मत-मतान्तर ऊँच-नीच, कर्त्तव्याकर्त्तव्य और सभी वर्गों में उनकी समन्वय भावना एक विराट चेष्टा है, एक अद्भुत और अनूठा आध्यात्मिक अनुष्ठान है।

यद्यपि सूर, मीरा, रसखान, बिहारी घनानन्द, केशव, मतिराम, मैथिलीशरण गुप्त इत्यादि प्रकृति कवियों ने अपने-अपने मनोगत भावों के अनुरूप सौन्दर्य की सर्जना की है। इन महानुभावों की उड़ान अत्यधिक सुन्दर और प्रभावी बन पड़ी है तथापि जो वैशिष्ट्य तुलसी की सौन्दर्याभिव्यक्ति में है, वह अन्यत्र सर्वथा दुर्लभ है। शैली, अनुभूति और अभिव्यक्ति ही किसी काव्य को विशिष्टता प्रदान करती है। तुलसी के समूचे साहित्य में यह पदे-पदे परिलक्षित है। एक दो उदाहरण सम्पुष्टि के लिये पर्याप्त होंगे-

(अ) बरदन्त की पंगति कुन्दकली अधराधर पल्लव खोलन की।
चपला चमकै घन बीज जगै छबि मोतिन माल अमोलन की।।
घुँघरारि लटैं लटकें मुख ऊपर कुण्डल लोल कपोलन की।
नैवछावरि प्रान करै तुलसी बलि जाऊँ लला इन बोलन की।।

(ब) पुरतें निकसी रघुबीर वधू धरि धीर दये मग में डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनी जल की पुटि सूखि गये अधराधर स्वै।।
फिर बूझति हैं चलनी अब केतिक, पर्ण कुटी करिहौ कित द्वै।
तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियां अति चारु चलीं जलच्वै।।

सौन्दर्य सुधा का पान मुख से नहीं नेत्रों से होता है। रस की भांति यह भी परम अलौकिक और अनुभव से परे है। फिर भी प्राय सभी कवियों ने अपनी-अपनी उपयुक्त और समर्थ वाणी का विधान करके इसका निरूपण किया है। किसी ने आनुप्रासिक चमत्कार दिखाया, किसी ने कोमल कान्ता पदावली का प्रयोग किया, किसी ने शैलियों के वैविध्य में इसका प्रकटीकरण किया, किसी ने औचित्य और अनौचित्य का प्रश्न उठाया, किसी ने इस एक के रूप को अनेक छन्दों में बाँधने का प्रयास किया, किसी ने विभिन्न अलंकारों से समलंकृत कर इसे और रूपवान बनाने की चेष्टा की और किसी ने अनुभूति के विशाल रत्नाकर में आकण्ठ निमग्न होकर इसे निखारने का असफल प्रयत्न किया पर,

पूरी तरह से कोई भी सफलता न पा सका। सब किंकर्त्तव्य विमूढ़ से ठगे-के ठगे रह गये। वास्तव में है भी तो यह वर्णनातीत, इन्द्रियों से अगम अगोचर और ब्रह्मानन्द सहोदर अलौकिक एवं दिव्य रस। इसमें आप ज्यों-ज्यों डूबेंगे त्यों-त्यों उज्जवल होकर उसी में लय हो जायेंगे। यह लय होने का विषय है, अपने को विस्मृत करने का विषय है- तभी और तभी वह अलभ्य तुम्हें सहज ही अनायास प्राप्त हो जायेगा! देखे जायें अपने प्यारे मन-मोहन को और कहते जाइये

"जनम अवधि हम रूप निहारिल नयन न तिरपत भेल।"

सौन्दर्याभिव्यक्ति के क्षेत्र में तुलसी का स्थान उस पीयूष वर्षा सुधाकर के समान है जो सभी भांति निष्कलंक और विश्ववंद्य है। इसकी शुभ्र ज्योत्स्ना में स्नात होकर मानव-मन सर्वथा अकलुष बनकर परम पवित्र बन जाता है।

तुलसी ऐसे काव्य-कलाधर हैं जिसमें से सदैव अमृत झरता रहता है जिसे प्राप्तकर यह माया वद्ध जीव मुक्त हो जाता है।

तुलसी का साहित्य नन्दनोपवन का दिव्य कल्प तरु है जिसके नीचे बैठकर मनुष्य का अभीष्ट ही नहीं वरन् उसकी सारी मनोकामनायें तुरन्त पूरी हो जाती हैं। इसे पाकर प्रत्येक याचक अयाचक बन जाता है।

तुलसी का सान्निध्य पारस-स्पर्श की भांति है जिसका संस्पर्श कर मनुष्य का अयस भाव स्वर्ण-सा दिव्य और अनमोल बनकर दूसरों का अभिनव शृंगार करता है।

विश्व काव्याकाश में तुलसी उस देदीप्यमान दिनमान की भांति तेजस्वी और माला के मनकों में सुमेरु की भांति अलंध्य और पूज्य हैं।

वास्तव में तुलसी काव्या काश के अचल ध्रुवतारा हैं जिसके इधर-उधर बाल्मीकि जैसे विद्वान सप्त ऋषि उनकी परिक्रमा करते रहते हैं। उनका स्थान अटल, अनूठा और दिव्यातिदिव्य है। वे सचमुच रामचरित मानस के राजहंस हैं!

❑❑❑

दशम अध्याय

उपसंहार

समूची सृष्टि अपने प्रारम्भ काल से असुन्दर और सुन्दर इन दो प्रधान तत्वों में विभक्त है। इसी को असत् और सत् भी कहा जाता है। असत् कभी भी सुन्दर नहीं होता भले ही उसका बहिरंग हमें सुन्दर प्रतीत हों पर, सत देशकाल और युग से नितान्त निरपेक्ष है। सत्य चेतन, शाश्वत और सनातन है। वह एक है, अखण्ड है इसी से समूची सृष्टि प्रादुर्भूत होती है। सत चित् आनन्द में इसी की एकत्र शक्ति का अधिवास है।

विश्वकवि गोस्वामी तुलसीदास का सम्पूर्ण काव्य-वांग्मय एक ऐसा असीम और अनन्त शोभा-सिन्धु है जिसमें सिद्धान्तों और विचारों की लोल-लोल कोमल उर्मियाँ ही दृष्टिगोचर होती हैं। यद्यपि इसमें दर्शन के मकर यत्र-तत्र मुसकराते दिख जाते हैं पर वे अपना जन्मजात भयावह रूप त्यागकर मत्स्य-शावकों की भांति ऋजु, मृदु और आकर्षक दिखाई देने लगते हैं। कहां तक कहें इस सिन्धु के इतस्ततः यदि कोई काई भी दिखती है तो वह भी शान्त और शुद्ध जल का सान्निध्य पाकर और अधिक निखरे रूप में अपनी सुन्दरता विकीर्ण करने लगती है। इसमें यदा-कदा जो ज्वार का उभार दृष्टिगोचर होता है वह भी अनन्तशील, अनन्तशक्ति और अनन्तसौन्दर्य से युक्त पुरुषोत्तम राम के प्रशान्त शशि-मुख को देखकर स्वयं शांत होकर अठखेलियां करने लगता है।

संसार के साहित्य में ऐसा साहित्यकार शायद ही मिले जो एक साथ सामान्य जन और मूर्धण्य विद्वान का कण्ठहार बन सके। यह अपूर्व क्षमता एक मात्र तुलसी में परिलक्षित होती है। वे साहित्याकाश के दैवी प्रभा से सम्पन्न ऐसे पीयूष वर्षी सुधांशु हैं जिसकी अलौकिक ज्योत्सना की रश्मियों से लोक-परलोक सभी पूर्णरूपेण अनुरंजित दृष्टिगोचर होते हैं। उनके साहित्य सौन्दर्य के मानसरोवर में रंक और राजा, निम्न और उच्च, मूर्ख और विद्वान, असत्-सत्, असुर-सुर, अभक्त-भक्त, एक साथ अवगाहन करते हैं और अवगाहनोपरान्त कुछ न कुछ अपने साथ लेकर लौटते हैं। हर पाठक को भी इस प्रकार कुछ न कुछ अवश्यमेव प्राप्त होता है। कोई भी अध्येता निराश नहीं लौट सकता। हाँ, यह अवश्य है कि जब वह मुड़कर पश्चावलोकन करता है तब उसे विस्मय होता है कि जितना वह साथ लेकर लौटा है, उससे कई गुना अभी वहीं पड़ा हुआ है। सौन्दर्य-महोदधि की अनन्त जलराशि में उनके हाथ वस्तुतः एक कण भी नहीं आ सका है-

'सागर सीप कि जाहिं उलीचे।'

तुलसी साहित्य पर शोध-समीक्षा के विशाल एवम् भव्य प्रसाद निर्मित हो जाने के पश्चात् ऐसा प्रतीत होता है कि इन भवनों को प्रकाशित करने के अनन्तर भी यह साहित्य-प्रदीप इनसे पृथक् रह कर अपनी एकान्त आलोक साधना में आज भी निष्कम्प भाव से लीन है। ये रत्न-सौध उस आलोक सौन्दर्य के दो चार कणों को पाकर ही कृतकृत्य हो उठे हैं। तुलसी साहित्य के कल्पतरु से असंख्य सुधी पाठकों शोधकों, समीक्षकों और भक्तों ने मनोवांछित सामग्री एकत्र की है। तब भी इस परिजात का एक दल, एक सुमन भी विश्लेषित नहीं प्रतीत होता। निःसन्देह यह शोध-समीक्षा का अक्षय

भण्डार है-

'पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।'

रस जिस प्रकार से सृजित होकर हृदय में आनन्द उत्पन्न करता है, सौन्दर्य भी उसी प्रकार आँखों के माध्यम से आनन्द का विषय बनता है। यही कारण है कि वैदिक कालीन **'स्वस्ति'** उषस् की दिव्य आभा बनी, औपनिषदिक साहित्य में **'तत्सत्यं स्व आत्म तत्वमसि, सर्वखल्विदं ब्रह्म नेह नानास्तिकिंचन'** के रूप में प्रस्फुटन हुआ और वही सौन्दर्य पौराणिक काल में भी मद्-भागवत् पुराण के विशेषतः दशम स्कन्ध में साक्षात् मूर्तमन्त हो उठा कृष्ण के कोटि-कोटि कन्दर्पहारी किशोर रूप में। श्री मद्-भागवत पुराण के पवित्र एवं उदात्त शिखरों से निःसृत सौन्दर्य की अनिंद्य रसवती धारा हिन्दी के आदिकाल, मध्यकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल को अभिसिंचित करती हुई अब भी अमन्दवती रसिकों को आल्सदित करती है। इसमें स्नात अनेक कवि स्वनाम धन्य हो गये।

सौन्दर्य का मानवीकृत रूप सबको भाता है। कहीं इसकी मांसलता ने लोगों को प्रभावित किया तो कहीं यह शौर्य एवं शक्ति के साथ समन्वित हो अलौकिक बन गया। राम और कृष्ण के रूप में अवतरित सौन्दर्य जन-जन के मन को भाकर संसार बन्धन से मोक्ष का कारण बना।

निःसंदेह सत्य एक मात्र परम और दिव्यतत्व है। यही मनुष्य में प्रज्ञा के रूप में प्रतिष्ठित होता है, यही प्रणय में विरह की दीप्ति और ऊष्मा से संवलित होता है, यही लोचनों में उत्कृष्ट लावण्य बनकर सबको आकर्षित करता है तो यही लोक-सेवा में मंगलमय वरदान बनकर हम सबको व्यष्टि से समष्टि की ओर ले जाकर उदात्त तत्व का दर्शन कराता है।

सत्, चित, आनन्द का समन्वित स्वरूप ही सौन्दर्य है। इसकी अभिव्यक्ति पाकर ही कृतियां साहित्यिक कोटि का अभिधान प्राप्त करती हैं। तुलसी साहित्य में पदे-पदे इसकी अनुभूति और सफल अभिव्यक्ति के दर्शन सुलभ हैं। उसके कालजयी होने का एकमात्र यही कारण है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि तुलसी की सौन्दर्याभिव्यक्ति विशिष्ट, निजी एवं मौलिक है। उनका सौन्दर्य बोध प्रांजल, गम्भीर एवं उदात्त है। उन्होंने इस लोक-सौन्दर्य को भूतल पर किस प्रकार एवं किन-किन रूपों में उतारा है, यह विषय स्वयं ही शोध-जिज्ञासा से युक्त हो उठता है। सौन्दर्य बोध के ऊर्ध्वारोहण की प्रक्रिया में पाशविकता को मानवता और मानवता को दिव्यता के स्तर पर लाना उनकी मौलिक देन है। सौन्दर्य के साथ भक्ति और शील का सामंजस्य भी उनकी निजी दृष्टि का द्योतक कहा जा सकता है। मर्यादा के साथ सौन्दर्य का ऐसा चित्रण कर देना कि उसका एक परमाणु भी दृष्टि से बचकर न जा सके, यह तुलसी का अनूठा कला वैशिष्ट्य ही है। जिस रूप चित्र को दूसरे कवि सैकड़ों पृष्ठ रँग कर भी अंकित नहीं कर पाते, उसे तुलसी दो चार शब्दों में ही हृदयाकर्षक बना देते हैं **अरथ अमित अरु आखर थोरे** यह भी एकमात्र तुलसी की ही क्षमता है। दूसरी ओर उनकी सूक्ष्म तत्व ग्राहिणी मेधा अपरिमित है। उन्हें **एकः शब्दः सम्यक् ज्ञातः** का अनोखा अनुभव है तभी तो **'देखना'** क्रिया को अपने मानस में अनेक प्रकार से अभिव्यक्त करके भी विन्रम बने रहते

हैं। उनकी एक-एक मानस की चौपाई के अनेकानेक अर्थ उनकी असीम और अनन्त मेधा का उत्कृष्ट निदर्शन है।

उसकी सौन्दर्याभव्यक्ति स्थिर न होकर गत्यात्मक प्रतीत होती है। 'मानस' में व्यक्त सौन्दर्य विनय पत्रिका में आकर किंचित परिवर्तित हो जाता है। 'गीतावली' में पुनः दृष्टिभेद परिलक्षित होने लगता है। इस प्रकार तुलसी के सौन्दर्य दर्शन में एकता के साथ अनेकता, स्थिरता के साथ गत्यात्मकता, लौकिकता के साथ अलौकिकता का समन्वय विशेष रूप में हुआ है। द्वन्द्वों में सामंजस्य एवं अव्यवस्था में व्यवस्था स्थापित करने की कला में तुलसी अन्य कलाकारों से पृथक दिखाई पड़ते हैं- "Like a star and dwelt apart" क्रोध और करुणा, प्रवृत्ति-निवृत्ति, राजभवन-कुटिया, नगर और तपोवन, गृहस्थ और सन्यास में एक साथ सौन्दर्य देखना तुलसी की ही सामर्थ्य है। पार्थिव और दिव्य रूपों का ऐसा तेरा अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होता। मानव का और देवत्व का ऐसा संगम अन्य कलाकारों में दुर्लभ ही है। ग्राम्य और नागर, प्राकृत-अप्राकृत, सहज और कृत्रिम रूपों का एक साथ चित्रण तुलसी के सौन्दर्यानुभावन के निजत्व का परिचायक है-**'छवि सिंगार मनहुँ इक ठौरी'**

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के दस अध्यायों में विभक्त विवेच्य सामग्री का यह सार तत्व है। मुझे निर्विवाद रूप से यह कहने में किंचित भी अतिश्योक्ति प्रतीत नहीं होती कि **किसी भी दृष्टि से तुलसी साहित्य-सिन्धु का क्यों न विमंथन किया जाये। चाहे वह रस की दृष्टि से हो चाहे भाव, भाषा, छन्द, अलंकार, रीति, गुण वृत्ति, बिम्ब, प्रतीक एवं अन्य उपादानों के माध्यम से हो, उसमें से अनेकानेक दिव्य रत्न ही हमें प्राप्त होंगे। निस्संदेह तुलसी इस अर्थ में सच्चे लोक नायक हैं। उनकी प्रतिभा अनूठी है। वे इस लोक के अलौकिक एवं अप्रितम साहित्यकार हैं। उनकी सौन्दर्याभिव्यक्ति सहस्त्र धाराओं के रूप में विभक्त होकर लोक मानस का भली-भांति अभिसिंचन कर रही है। ऐसे विश्ववंद्य तुलसी के चरणों में मेरा कोटि-कोटि नमन! इत्यलम्।**

□□□

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) संस्कृत ग्रन्थ

अष्टाध्यायी : पाणिनि

अभिज्ञान शाकुन्तलम् : कालिदास

अर्थववेद, ऋग्वेद,ईशावास्योपनिषद

कठोपनिषद, कामसूत्र : वात्स्यायन

काव्यालंकार : वामन

किरातार्जुनीयम : भारवि

कुमार सम्भवम् : कालिदास

केनोपनिषद

छान्दोग्योपनिषद्

तैत्तरीय उपनिषद

बृहद संहिता

वृहदारण्यकोपनिषद्

ब्रह्माण्ड पुराण : वेद व्यास

महाभारत पुराण : वेद व्यास

मुक्तिकोपनिषद्

मण्डूकोपनिषद

यजुर्वेद

याज्ञवल्क्य स्मृति

रस गंगाधर (प्रथम भाग) : का० वि०वि० अनुसंधान समित्याप्रकाशन

वाचस्पत्य कोश

शतपथ ब्राह्मण

शिशुपाल वधम् : माघ

श्वेताश्वतरोपनिषद् :

साहित्य दर्पण : आचार्य विश्वनाथ

सौन्दर्य लहरी : शंकराचार्य

हलायुध कोश

❑❑❑

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

(ख) आँग्ल भाषा

द प्रेक्टीकल संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी	:	आप्टे (संस्करण १९५९)
ट्री टाइज ऑफ ह्यूमन नेचर	:	वाल्यूम II ग्रीन एण्ड ग्रोज
प्रिंसिपल्स ऑफ क्रिटीसिज्म	:	वी०बी० वर्सफोल्ड
हिस्ट्री ऑफ एस्थेटिक्स	:	बोसानक्विट
स्वाट इज आर्ट	:	टॉल्सटाय
कीट्स पोइम	:	एम. अर्नाल्ड्स ऐसेज इन क्रिटीसिज्म II सीरीज
फिलोस्फीज ऑफ ब्यूटी	:	कैरिट
ऐसथेटिक्स	:	बी० क्रोसे
लैक्चर्स ऑन आर्ट	:	रस्किन
मॉडर्न पेन्टर्स वाल्यूम I	:	रस्किन
द डिसेन्स ऑफ मैन	:	चार्ल्स डार्विन : वेस्ट एण्ड कम्पनी, लन्दन संस्क० १९३६ ई०
थ्योरी ऑफ ब्यूटी	:	लंदन, १९५२, एच० ऑसबर्न
इण्डियन ऐस्थेटिक्स		रामास्वामी
ऑक्सफोर्ड लैक्चर्स ऑन पोइट्री	:	ब्रेडले
द मीनिंग ऑट आर्ट	:	हरबर्ट रीड
ऑन आर्ट एण्ड ऐस्थेटिक्स	:	रवीन्द्र नाथ
इण्डियन ऐस्थेटिक्स	:	के०सी०पाण्डेय
द आइडिया ऑफ नेचर	:	आर० जी० कॉलिंग वुड

बेबर्स डिक्शनरी

डिक्शनरी आफ कुटेशन्स

न्यू डिक्शनरी आफ थाट्स

□□□

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(ग) आधार ग्रन्थ (हिन्दी)

कवितावली : गोस्वामी तुलसीदास

कृष्ण गीतावली : गोस्वामी तुलसीदास

गीतावली : गोस्वामी तुलसीदास

जानकी मंगल : गोस्वामी तुलसीदास

दोहावली : गोस्वामी तुलसीदास

पार्वती मंगल : गोस्वामी तुलसीदास

बरवै रामायण : गोस्वामी तुलसीदास

रामचरित मानस : गोस्वामी तुलसीदास

रामलला नहछू : गोस्वामी तुलसीदास

रामाज्ञा प्रश्न : गोस्वामी तुलसीदास

विनय पत्रिका : गोस्वामी तुलसीदास

वैराग्य सन्दीपनी : गोस्वामी तुलसीदास

हनुमान बाहुक : गोस्वामी तुलसीदास

सहायक ग्रन्थ

अरस्तू का काव्य : डॉ० नगेन्द्र

अपर्णा (अप्रका० महाकाव्य) : डॉ० रामस्वरूप खरे

अकेले कण्ठ की पुकार : अजित कुमार

आस्था और सौन्दर्य : डॉ० राम विलास शर्मा

आधुनिक काव्य में सौन्दर्य भावना : डॉ० शकुन्तला शर्मा

आँसू : जयशंकर प्रसाद

आधुनिक कविता में 'प्रेम और सौन्दर्य(प्र०सं०) : डॉ० रामेश्वर लाल खण्डेलवाल

उर्वशी : रामधारी सिंह दिनकर

उमंग : मनोरंजन प्रसाद सिंह

एकलव्य : डॉ० रामकुमार वर्मा

कला विवेचन : डॉ० कुमार विमल

कल्पलता : हजारी प्रसाद द्विवेदी

कला के दार्शनिक तत्व : डॉ० चिरंजी लाल झा

कला और आधुनिक प्रवृत्तियाँ : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
कला साहित्य समीक्षा : डॉ० भगीरथ मिश्र
कदली वन : नरेन्द्र शर्मा
कनुप्रिया : डॉ० धर्मवीर भारती
कवितायें : सम्पादक, अजित कुमार
कबीर ग्रन्थावली : सम्पादक हजारी प्रसाद द्विवेदी
कामायनी : जयशंकर प्रसाद
काव्य में उदात्त तत्व : डॉ० नगेन्द्र
काव्यालंकार सूत्र वृत्ति : डॉ० नगेन्द्र
कानन कुसुम : जयशंकर प्रसाद
काव्यकला तथा अन्य निबन्ध : जयशंकर प्रसाद
काव्य मीमांसा (द्वितीय अध्याय) :
काव्य सिद्धान्त और सौन्दर्य शास्त्र : डॉ० जगदीश शर्मा
काव्यास्वाद का विवेचन : डॉ० कृष्णबल
ग्राम्या : पं० सुमित्रानन्दन पन्त
गीत गुंज : सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
गीतिका : सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
गुंजन : पं० सुमित्रानन्दन पन्त
गोदान : प्रेमचन्द
गोस्वामी तुलसीदास : डॉ० श्यामसुन्दर दास
गोस्वामी तुलसीदासं : आचार्य पं. रामचन्द्र शुक्ल
घनानन्द ग्रंथावली : सम्पादक विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
चिन्तामणी (भाग १) : आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल
चिद्विलास : डॉ० सम्पूर्णानन्द
छायावादी काव्य में सौन्दर्यदर्शन : डॉ० सुरेश त्यागी
जयशंकर प्रसाद : वस्तु और कला : डॉ० रामेश्वर प्रसाद खण्डेलवाल
ठण्डा लोहा तथा अन्य कवितायें : डॉ० धर्मवीर भारती
तार सप्तक (प्रथम) : सं० सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय
तार सप्तक (द्वितीय) : सं० सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय
तार सप्तक (तृतीय) : सं० सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय

तुलसी दर्शन	:	डॉ० बलदेव मिश्र
तुलसी साहित्य और साधना	:	डॉ० इन्द्रपाल सिंह 'इन्द्र'
तुलसीदास का सौन्दर्यबोध	:	डॉ० छोटेलाल दीक्षित
तुलसीदास	:	डॉ० माता प्रसाद
तुलसीदास और उनका युग	:	डॉ० राजपति दीक्षित
तुलसीदास और उनका काव्य	:	रामनरेश त्रिपाठी
तुलसीदास और उनकी कविता	:	
तुलसीदास और उनका साहित्य	:	
तुलसी काव्य मीमांसा	:	डॉ० उदयभानु सिंह
तुलसीदास की भाषा	:	डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव
तुलसीदास और उनका युग	:	डॉ० रामनरेश त्रिपाठी
तुलसीदास	:	मैथिलीशरण गुप्त
द्वापर	:	मैथिलीशरण गुप्त
दीपशिखा	:	महादेवी वर्मा
देवसुधा	:	सम्पादक मिश्र बन्धु
नख शिख संग्रह	:	श्रीधर पाठक
नये पत्ते	:	सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
नारी तेरे रूप अनेक	:	सम्पादक क्षेमचन्द्र 'सुमन'
नाश और निर्माण	:	गिरिजाकुमार माथुर
निशीथ	:	डॉ० रामकुमार वर्मा
निबन्ध निचय	:	सम्पादक आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी
नीहार	:	महादेवी वर्मा
नीरजा	:	महादेवी वर्मा
नीलिमा	:	गोपाल शरण सिंह नेपाली
नूरजहाँ	:	गुरुभक्त सिंह
पल्लव	:	सुमित्रानन्दन पन्त
परमानन्द सागर	:	परमानन्द
पथिक	:	रामनरेश त्रिपाठी
परिमल	:	सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
पद्मावत	:	सम्पादक, डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल
पद्माकर ग्रन्थावली	:	सम्पादक विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
पारिजात	:	अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

पाश्चात्य काव्य शास्त्र की परम्परा	:	डॉ० नगेन्द्र
पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धान्त	:	डॉ० शान्ति स्वरूप गुप्त
पंचवटी	:	मैथिली शरण गुप्त
पूर्वा	:	सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'
प्रणय पत्रिका	:	हरवंश राय 'बच्चन'
प्रत्यूष की भटकी किरण	:	रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'
पृथ्वी राज रासो	:	चन्द्रबरदायी
प्रसाद का सौन्दर्य दर्शन	:	वीणा माथुर
प्रसाद की सौन्दर्य चेतना (अप्रकाशित)	:	डॉ० दुर्गा प्रसाद श्रीवास्तव
प्रसाद के नारी चरित्र	:	डॉ० देवेश ठाकुर
प्रसाद की कला	:	गुलाब राय
प्राचीन भारतीय कला	:	रामचन्द वालिवे
प्राचीन भारत में कलात्मक विनोद	:	डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी
प्रिय प्रवास	:	अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
बावरा अहेरी	:	सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'
बिहारी	:	सम्पादक, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
बिहारी सतसई	:	कविवर बिहारी
भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका	:	डॉ० फतह सिंह
भारतीय काव्य सिद्धान्त	:	आचार्य काका कालेलकर, डॉ० नगेन्द्र
भारतीय कला के पदचिन्ह	:	डॉ० जगदीश गुप्त
भारतीय दर्शन	:	बलदेव उपाध्याय
मर्म स्पर्श	:	अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
मतिराम ग्रन्थावली	:	सम्पादक कृष्ण बिहारी मिश्र
मतिराम सतसई	:	सम्पादक, डॉ० श्यामसुन्दर दास
महादेवी के काव्य में लालित्य विधान	:	डॉ० मनोरमा शर्मा
महादेवी काव्य के विविध आयाम	:	असीम मधुपुरी
मिलन	:	रामनरेश त्रिपाठी
मानस पीयूष	:	अंजनी नन्दन
मंझन का सौन्दर्य दर्शन	:	डॉ० लालता प्रसाद सक्सेना
मेंहदी और महावार	:	उमाकान्त मालवीय
यामा	:	महादेवी वर्मा
युग पथ	:	सुमित्रानन्दन पन्त
युगवाणी	:	सुमित्रानन्दन पन्त
युग की गंगा	:	केदार नाथ

रस सिद्धान्त का पुनर्विवेचन	:	डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त
रस सिद्धान्त और सौन्दर्यशास्त्र	:	डॉ० निर्मला जैन
रस सिद्धान्त	:	डॉ० नगेन्द्र
रस मीमांसा	:	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
रश्मि	:	महादेवी वर्मा
रसवन्ती	:	रामधारी सिंह 'दिनकर'
रवीन्द्रनाथ साहित्य	:	वीणा माथुर
राम की शक्ति पूजा	:	सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
रामचन्द्रिका	:	आचार्य केशवदास
रीति श्रृंगार	:	सम्पादक, डॉ० नगेन्द्र
रूप तरंग	:	डॉ० राम विलास शर्मा
रेणुका	:	रामधारी सिंह 'दिनकर'
लहर	:	जय शंकर प्रसाद
लहर पुकारे	:	नीरज
लोकायतन	:	सुमित्रानन्दन पंत
विद्यापति पदावली	:	विद्यापति
विवेचना संकलन	:	डॉ० जगदीश गुप्त
विनय पत्रिका समीक्षा	:	प्रो० दानबहादुर पाठक
विनय पत्रिका परिचय	:	सम्पादक वियोगी हरि
वैदिक जीवन	:	बलदेव उपाध्याय
वैदिक साहित्य	:	बलदेव उपाध्याय
वांग्मय विमर्श	:	विश्वनाथ मिश्र
शतमन्यु	:	डॉ० रामस्वरूप खरे
स्वतंत्र कला साहित्य	:	डॉ० कान्तिचन्द्र पाण्डेय
सत्यं शिवं सुन्दरं	:	डॉ० रामानन्द तिवारी 'भारतीनन्दन'
स्वप्न	:	रामनरेश त्रिपाठी
सतरंगे पंखों वाली	:	नागार्जुन
साहित्य और सौन्दर्य	:	डॉ० फतेह सिंह
साहित्य की मान्यतायें	:	भगवती चरण वर्मा
साहित्य सन्तरण	:	इलाचन्द्र जोशी
साहित्य शास्त्र	:	डॉ० रामकुमार वर्मा
साहित्य दर्पण	:	डॉ० सत्यव्रत सिंह
साहित्य शास्त्र के सिद्धान्त	:	डॉ० सरोजिनी मिश्र
साहित्यालोचन सिद्धान्त और अध्ययन	:	डॉ० सीताराम 'दीन'

साहित्य का समाज शास्त्र :मान्यता और स्थापना		: श्री राम मेहरोत्रा
साहित्य का श्रेय और प्रेय	:	जैनेन्द्र कुमार
साहित्य चिन्तन	:	डॉ० राम कुमार वर्मा
साहित्य तरंग	:	सद्‌गुरु शरद अवस्थी
साहित्य की मान्यतायें	:	भगवती चरण वर्मा
साधना	:	रवीन्द्र नाथ ठाकुर
साधारणी काव्य और तादात्म्य	:	रामचन्द्र पुरी
सान्ध्यगीत	:	महादेवी वर्मा
साकेत	:	मैथिली शरण गुप्त
संधिनी	:	महादेवी वर्मा
संचारिणी	:	शान्ति प्रिय द्विवेदी
संक्षिपत पृथ्वीराज रासो	:	सम्पादक, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
सूर एवं तुलसी की सौन्दर्य भावना	:	डॉ० बद्रीनारायण श्रोत्रिय
सूर सागर	:	सूरदास
सूर की सौन्दर्य चेतना	:	एस०टी० नरसिंहाचारी
सूर्य का स्वागत	:	दुष्यन्त कुमार
सौन्दर्य शास्त्र परम्परा	:	राजेन्द्र प्रताप सिंह
सौन्दर्यशास्त्र के तत्व	:	डॉ० कुमार विमल
सौन्दर्य विज्ञान	:	डॉ० हरिवंश सिंह
सौन्दर्य शास्त्र	:	हरद्वारी लाल शर्मा
सौन्दर्य तत्व की भूमिका	:	डॉ० आनन्द प्रकाश दीक्षित
सौन्दर्य तत्व	:	डॉ० सुरेन्द्रनाथ दास गुप्त
सौन्दर्य तत्व और काव्य सिद्धान्त	:	सुरेन्द्र बारलिंगे
सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका	:	डॉ० फतह सिंह
हल्दी घाटी	:	श्याम नारायण पाण्डेय
हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास	:	डॉ० शम्भूनाथ सिंह
हिन्दी साहित्य	:	डॉ० श्याम सुन्दर दास
हिन्दी काव्य में श्रृंगार परम्परा और बिहारी	:	डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त
हिन्दी नाटक उद्‌भव और विकास	:	डॉ० दशरथ ओझा
हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी	:	आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी
हिन्दी वक्रोक्ति जीवितम् (मूल कुन्तक)	:	अनुवादक, विश्वेश्वर
हिन्दीसाहित्य का इतिहास	:	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण	:	डॉ० किरण कुमारी गुप्त

❑❑❑

हिन्दी पत्र-पत्रिकायें एवं सन्दर्भित कोश

आलोचना (त्रैमासिक) अक्टूबर, १९५३ ई०

विशाल भारत, सन् १९३० ई०

सारिका, सितम्बर, १९६२ ई०

समालोचक, फरवरी १९५८ ई०, सम्पादक डॉ० राम विलास शर्मा

समीक्षालोक (सौन्दर्य शास्त्र विशेषांक) सम्पादक भगीरथ दीक्षित

हिन्दी अनुशीलन, वर्ष १६, अंक १, २

मानक हिन्दी कोश (तृतीय खण्ड) सम्पादक, रामचन्द्र वर्मा

हिन्दी साहित्य कोश, सम्पादक, डॉ० धीरेन्द्र वर्मा

संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर

□□□